साधना का महायात्री

प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत ग्रन्थ में महामना श्री सुमनमुनि जी महाराज के उज्ज्वल, धवल, निर्मल इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व का विविध अध्यायों में जो विवेचन हुआ है, वह एक ऐसे निःस्पृह अध्यात्मयोगी के जीवन के शाश्वत मूल्यपरक दस्तावेज है, जो मानव मेदिनी को विपथगामिता से अपाकृत कर सुपथगामिता की दिशा में अग्रसर होते रहने की न केवल प्रेरणा ही प्रदान करेगा अपितु एक सुधा-संसिक्त पाथेय का भी काम देगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ पाँच खण्डों में विभाजित है। इसके प्रथम खण्ड में आचार्यों, जन नेताओं एवं समाज सेवियों के संदेश, अभिनन्दनोद्गार, चरित नायक के जीवन की विशेषताओं को उद्घाटित करने वाली गद्य पद्यात्मक सामग्री संकलित है, जिससे मुनिवर्य के प्रति लोकमानस में परिव्याप्त श्रद्धा एवं समादर का परिचय प्राप्त होता है।

द्वितीय में श्वे. स्था. जैन संघ तथा पंजाब श्रमण संघ की परंपरा, श्री सुमनमुनि जी म.सा. के प्रगुरुवर्य तथा गुरुवर्य का जीवन-परिचय उपस्थापित किया गया है, जिसकी कीर्ति-वल्लरी न केवल पंजाब तक ही सीमित है, वरन् भारत-व्यापिनी है।

तृतीय खण्ड में चरित-नायक के शैशव, पारिवारिक जीवन तद्गत विषम घटनाएँ, धार्मिक प्रश्रय, दिशा-बोध, प्रव्रज्या, विद्याध्ययन, विहरण, धर्म-संघ में महत्त्वपूर्ण पदोपलब्धि आदि का विवेचन किया गया है, वह इनके देव-दुर्लभ व्यक्तित्व का उत्क्रान्तिमय जीता-जागता लेखा-जोखा है। साथ ही साथ इनके जीवन के विविध प्रसंगों की चित्रात्मक झांकियाँ भी अंकित हैं।

चतुर्थ खण्ड में मुनिवर्य के साहित्यिक कृतित्व और वाग्मिता का जो प्रवचनमयी पीयूषधारा के रूप में संप्रवाहित होती रही है, वर्णन है। साथ ही साथ इनके साहित्य पर समीक्षात्मक दृष्टि से चिंतन तथा इनकी सूक्तियों का आकलन किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधना का महायात्री

प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि

(श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री प्रज्ञामहर्षि मुनि श्री सुमनकुमार जी म. के संयमी जीवन के पचासवें वर्ष-प्रवेश/दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति की पुनीत वेला पर प्रकाशित)

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

प्रधान सम्पादक

डॉ. श्री भद्रेशकुमार जैन

साहित्यरत्न, एम.ए., पी.एच.डी.

प्रकाशक

श्री सुमन मुनि दीक्षा-स्वर्ण जयन्ति समारोह समिति, चेन्नई-17

एवं

श्री भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ, बर्किट रोड़, चेन्नई-17

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ : ➢ साधना का महायात्री : प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि

पृष्ठ संख्या : ➢ ६००

प्रतियाँ : ➢ १०००

प्रसंग : ➢ ५०वीं दीक्षा-जयन्ति के उपलक्ष में प्रकाशित

संप्रेरक : ➢ मुनि श्री सुमन्तभद्र जी म. 'साधक'

संयोजक : ➢ श्री दुलीचन्द जैन, 'साहित्यरत्न', 'साहित्यालंकार'

प्रधान संपादक : ➢ डॉ. श्री भद्रेश कुमार जैन, एम.ए.,पी.एच.डी., साहित्य रत्न

संपादक मंडल : ➢ श्री दुलीचन्द जैन, 'साहित्यरत्न', 'साहित्यालंकार'
➢ श्रीमती विजया कोटेचा, बी.ए.
➢ श्री विनोद शर्मा, 'साहित्यरत्न'

प्रकाशन अवधि : ➢ २३-१०-१९९९

प्रकाशक एवं
प्राप्ति स्थान : ➢ १) श्री भीकमचन्द गादिया, मंत्री,
श्री सुमन मुनि दीक्षा स्वर्ण जयन्ति अभिनंदन समारोह समिति,
४६, बर्किट रोड, टी. नगर, चेन्नई - ६०० ०१७

➢ २) श्री उत्तमचन्द गोठी, मंत्री
श्री भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ
श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम,
४६, बर्किट रोड, टी. नगर, चेन्नई - ६०० १७

मुद्रक : ➢ सी.जी. ग्राफिक्स, चेन्नई - ६०० ००६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

परम श्रद्धेय, प्रज्ञामहर्षि, **श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनिश्री सुमन कुमार जी म.सा.** के पचासवें दीक्षा वर्ष – प्रवेश के उपलक्ष में **"साधना का महायात्री : श्री सुमनमुनि"** अभिनन्दनात्मक ग्रन्थ पाठकों के कर-कमलों में प्रेपित करते हुए हमें अपार प्रसन्नतानुभव हो रहा है।

"श्री भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ" की स्थापना-परम-श्रद्धेय गुरुदेव श्री सुमनमुनि जी म.सा. के ५८वें जन्म-दिवसोपलक्ष में एवं माम्बलम के नवर्निर्मित जैन स्थानक के उद्‌घाटन के शुभ प्रसंग पर दि. २६ जनवरी १९९३ को पूज्य गुरुदेव श्री की सन्निधि एवं श्री युत भीकमचंद जी गादिया की प्रबल प्रेरणा के फल स्वरूप हुई थी। श्री भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ का मूल उद्देश्य है – भावी पीढ़ी में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण, धार्मिक शिक्षण शिविरों का आयोजन, धार्मिक पठन-पाठन की सामग्री प्रकाशित करवाकर शिक्षार्थियों – स्वाध्यायियों को निःशुल्क वितरित करना। इस संस्थान द्वारा अद्यावधि तक १५ पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका हैं। ११ धार्मिक शिक्षण-शिविर आयोजित किये जा चुके हैं। साप्ताहिक धार्मिक कक्षाएं भी सुनियोजित हैं। यह परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री की सत्कृपा का ही सुफल है। भारतवर्ष के कोने कोने से पाठक गण स्वाध्याय पीठ की निःशुल्क पुस्तकों को मंगवाकर धार्मिक ज्ञानार्जन का लाभ प्राप्त कर रहे हैं। स्वाध्याय से ज्ञान-अभिवृद्धि और शिविरों से धार्मिक संस्कारों की सभी के जीवन में उपलब्धि हो – यही हमारी शुभेच्छा एवं मंगलकामना है।

पूज्य गुरुदेव श्री द्वारा जैन समाज को प्रदत्त उनकी अनमोल सेवाओं के प्रति यह ग्रन्थ एक गौरवाभिनन्दन है। "साधना का महायात्री : श्री सुमनमुनि" ग्रंथ के **प्रधान संपादक – श्री युत भद्रेशकुमार जी जैन** (एम.ए.,पी.एच.डी.) एवं **संयोजक श्री युत दुलीचंद जी जैन** (साहित्यरत्न, साहित्यालंकार) के हृदय से आभारी हैं कि इनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप यह कार्य समय पर सुसम्पन्न हो सका।

श्री सुमनमुनि दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति अभिनन्दन समारोह समिति, चेन्नई के समस्त पदाधिकारियों, सदस्यों एवं सहयोगियों को अनेकानेक धन्यवाद प्रदान करते हैं कि जिनके सहयोग से यह ग्रंथ प्रकाशित हो सका।

समस्त आर्थिक सहयोग प्रदाताओं (जिनके चित्र एवं परिचय ग्रंथ के परिशिष्ट विभाग में मुद्रित हैं) सर्वश्री श्री सोहनलालजी कांकरिया – सेलम, श्री भंवरलालजी सांखला – मेटुपालयम, श्री भीकमचन्दजी गादिया – टी.नगर, श्री सुमेरमलजी लूणावत – साहूकारपेठ, श्री लूणकरणजी सेठिया – साहूकारपेठ, श्री जवाहरलालजी बागमार – कोंडीतोप, श्री हरीशकुमारजी उदयकुमारजी मेहता – टी.नगर, श्री अमृतलालजी सिंघवी – टी.नगर, श्री इन्दरचन्दजी गादिया – कोयम्बत्तूर, श्री पारसमलजी नाहर – टी.नगर, श्री हनुमानमलजी नाहर – मेटुपालयम, श्री सुदर्शनलालजी पीपाडा – कुन्नूर, श्री चम्पालालजी तातेड़ – साहूकारपेठ, श्री मीठालालजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुगड़ – मेटुपालयम, श्री भंवरलालजी सुराणा – मेटुपालयम, श्री इन्दरचन्दजी मेहता – साहुकारपेठ, श्री सम्पतराजजी गुन्देचा – टी.नगर, श्री प्यारेलालजी गुन्देचा – टी.नगर, श्री मांगीलालजी कोठारी – आलन्दूर, श्री किशनलालजी वेताला – साहुकारपेठ, श्री शोभाचन्दजी इन्दरचंदजी कोठारी – ऊटी, श्री पुखराजजी ज्ञानचंदजी मुणोत – ताम्बरम, श्री मोहनलालजी गौतमचन्दजी चौरड़िया – मैलापूर, श्री मदनलालजी उत्तमचन्दजी गोठी – टी.नगर, श्री रिखवचन्दजी लोढ़ा-साहूकारपेठ, श्री कुशलराजजी दिलीपकुमार जी सिसोदिया – बैंगलोर के भी हम अत्यन्त आभारी हैं, जिनके सहयोग से यह ग्रन्थ साकार रूप ले सका। आशा ही नहीं अपितु विश्वास है कि भविष्य में भी आप सभी का सहयोग यथावत् बना रहेगा।

हम श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम के सभी पदाधिकारियों एवं सदस्यों के भी आभारी हैं कि जिन्होंने अपना पूर्ण सहयोग हमें प्रदान किया तथा इस पावन प्रसंग पर एक भव्य महोत्सव आयोजित कर उसमें इस ग्रन्थ का विमोचन कर रहे हैं।

अंत में हम इस ग्रंथ के प्रकाशन में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से, तन-मन-धन से जिनका भी हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सभी को शतशः धन्यवाद ज्ञापित करते हुए यह विशाल ग्रन्थ पाठकों के कर कमलों में अर्पित कर रहे हैं ताकि वे अपने ज्ञान में और मौलिक अभिवृद्धि कर सकें।

श्री भीकमचन्द गादिया, मंत्री
श्री सुमनमुनि दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति
अभिनन्दन समारोह समिति

- **डॉ. एम. उत्तमचन्द गोठी,** B.E., M.I.E., Ph.D.
मंत्री, भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ,
श्री एस.एस. जैन संघ,
जैन स्थानक, ४६, वर्किट रोड़,
टी.नगर, माम्बलम्, चेन्नै-६०० ०१७

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादकीय

प्रव्रज्या, दीक्षा, चारित्र तथा संयम ये जैन दीक्षा के ही पर्यायवाची शब्द हैं। सामान्य जग-जीवन से ऊपर उठना तथा आत्मा से महान् आत्मा की ओर अग्रसर होना ही जैन भागवती दीक्षा है। श्रामण्य दीक्षा केवल वेशभूषा परिवर्तन ही नहीं है अपितु आत्मा का कायाकल्प भी है। असम्यक् से सम्यक् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर लौटना अभिनिष्क्रमण/दीक्षा है। जीवन का सम्यक् प्रकारेण आमूलचूल परिवर्तन ही संयम की धवल गाथा का द्योतक है। दीक्षा अच्छे वस्त्र पहनना, विशाल भव्यातिभव्य भवनों में रहना, रुच्यानुसार स्वादिष्ट भोजन करना, लोगों को उच्चासन पर बैठकर उपदेश देना, भक्तगणों से पूजित-वंदित होना, प्रान्तों में घूमना ही नहीं है। दीक्षा तो जीवन की सर्वोच्च शिक्षा है, सर्वश्रेष्ठ पद है, आत्मा को परमात्म तत्त्व तक पहुँचाने का उपक्रम है, मुक्तिमार्ग का सोपान है, अप्रमत्त रहकर धर्मजागरण करना, करवाना है। पंचेन्द्रियों तथा तीनों गुप्तियों का निग्रह करना, पंच महाव्रत, पंच समिति, इस प्रकार के श्रमण धर्म का पालन करना, विवेक से कार्य निष्पत्ति, जिन आज्ञा में रहते हुए आत्म रमणता में प्रवृत रहना, स्व-दोष खोजना तथा 'स्व' को 'स्व' में ढूंढना ही दीक्षा है।

जो पंचेन्द्रयों के निग्रह में 'श्रम-ण'=श्रम नहीं करना वह वस्तुतः श्रमण नहीं है। जो सांसारिक श्रम नहीं करके केवल मोक्ष तत्व की प्राप्ति हेतु श्रम करता है, वही सच्चा श्रमण है। श्रमण की वेशभूषा श्वेतांवर है जो स्वच्छता, शुद्धता, निर्मलता, शुचिता, पवित्रता की द्योतक है। साधु को 'द्विज' भी कहते हैं। एक बार माता के उदर से जन्म लेता है तथा दूसरी बार साधु-संस्कारों से जीवन संस्कारित होने के कारण जन्म लेता है। साधु निर्ग्रंथ होते हैं अर्थात् ग्रंथि/छल-कपट राग-द्वेष रहित।

जो साधक भगवान् महावीर के उपदेशानुसार जिनधर्मालोक से अपना जीवन आलोकित करता है वही सच्चा संयमी, श्रमण, निर्ग्रन्थ और अणगार है। आज के भौतिकवादी युग में इस पवित्र वेशभूषा की आड़ में कतिपय तथाकथित साधु इसी पवित्र वेष और मर्यादाओं को लज्जित कर रहे हैं-अपने दुराचरण, दुराग्रह तथा पाखंड से। यह सोचनीय, गंभीर एवं ज्वलंत प्रश्न है – धर्म संघों के समक्ष। कथनी-करणी में एकरूपता का नितांत अभाव भी हमें एवं समाज को सोचने-समझने को बाध्य कर रहा है। अस्तु।

'प्रव्रज्या' की व्याख्या इसलिए करनी पड़ रही है कि पं. रत्न. विद्वद्वर्य श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री परम श्रद्धेय श्री सुमनकुमारजी महाराज का पचासवां प्रव्रज्या दिवस आसोज शुक्ला त्रयोदशी वि.सं. २०५६ तदनुसार दि. २२ अक्टूवर १९९९ की पुनीत वेला में श्री एस.एस. जैन संघ, माम्वलम्, चेन्नई द्वारा समायोजित हैं। संघ में आपके वर्षावास से उत्साह है। अनेक जन्म-दिवसों, दीक्षा-प्रसंगों, पुण्य-तिथियों के क्रम में आपका दीक्षा-दिवस भी समुपस्थित हो गया जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दिवस है।

इस पावन प्रसंग पर **साधना का महायात्री : प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि** ग्रंथ का प्रकाशन होना एक सुखद स्मृति को स्थायित्व देना तथा जन-जन तक आपकी जीवन-सुरभि को पहुँचाने का उपक्रम मात्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस ग्रन्थ के सम्प्रेरक हैं – मुनि श्री सुमन्तभद्र जी म. 'साधक'। आपश्री ने ही श्रीयुत दुलीचन्दजी जैन चेन्नई, श्री भंवरलालजी सांखला मेटुपालयम को एवं मुझे इस ग्रन्थ के निर्माण की प्रबल प्रेरणा दी। इस ग्रन्थ को ४०० पृष्ठों में ही प्रकाशित करना था किंतु सामग्री आती गई, जुड़ती गई और यह ६०० पृष्ठों का विशालकाय ग्रंथ बन गया। पाँच खंडों में विभक्त ग्रंथ का संक्षिप्त वर्णन 'प्रस्तावना' में आ ही गया है। ग्रंथ-कार्य विशाल था, तथापि पूर्णाहूति करते हुए मुझे आज अत्यधिक सन्तुष्टि है।

इस ग्रंथ की संरचना में सर्वप्रथम मैं स्वर्गीय श्रद्धेय गुरुदेव आचार्य-प्रवर श्री जीतमल जी म.सा. के अदृष्ट आशीर्वाद के प्रति प्रणत हूँ तदनन्तर गुरुवर्या महासती श्री सुगनकंवर जी म. के साक्षात् आशीर्वाद के प्रति नतमस्तक। क्यों कि उन्हीं के द्वारा प्रदत्त ज्ञान ने इस ग्रंथ-संपादन में अहं भूमिका निभाई है। परम श्रद्धेय श्री सुमनमुनि जी महाराज के वरदहस्त एवं सत्कृपा का ही यह सुफल है कि यह कार्य सानंद सम्पन्न हो सका। मुनि श्री सुमंतभद्र जी महाराज एवं मुनि श्री प्रवीणकुमार जी महाराज की भी सतत प्रेरणा भी बनी रही।

मद्रास विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक तथा जैन दर्शन के ख्याति प्राप्त विद्वान् डॉ. श्री छगनलालजी शास्त्री एम.ए. (त्रय), पी.एच.डी. ने इस ग्रन्थ की सुंदर प्रस्तावना लिखी है, अतः मैं उपकृत हूँ उनके प्रति।

समाजसेवी, शिक्षाप्रेमी व साहित्यकार श्री दुलीचंद जी जैन (सचिव : जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, चेन्नई) ने न केवल संयोजन एवं सामग्री-संकलन में योगदान दिया अपितु इस ग्रंथ के पंचम खण्ड में प्रकाशित अंग्रेजी लेखों का सम्पादन भी किया है तथा चतुर्थ खंड हेतु "सुमन साहित्यः एक अवलोकन" विषयक आलेख भी लिखा है जो कि अत्यन्त सारगर्भित एवं समीक्षात्मक है अतः आभार प्रदर्शन ! ग्रन्थ-प्रकाशन हेतु भी उन्होंने पूर्ण सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आत्मप्रिया विदुषी बहन श्रीमती विजया कोटेचा का तो मैं अत्यन्त ही आभारी हूँ। उनकी दूरभाष के माध्यम से निरंतर 'विजयी भव' की प्रेरणा प्राप्त होती रहती थी जिससे ग्रंथ-लेखन की थकान पुनः स्फूर्ति एवं उमंग में परिवर्तित हो जाती थी। बहन विजया ने प्रज्ञामहर्षि श्रद्धेय श्री सुमनमुनि जी म. के प्रवचनों से सूक्तियों एवं प्रवचनांशों का प्रभावी संकलन किया है। "सुमन वाणी" "सुमनवचनामृत" एवं "सुमन प्रवचनांश" की प्रस्तोता बनकर मेरे कार्य को और भी सुगम बना दिया।

हिन्दी-साहित्य के सुलेखक श्री विनोदजी शर्मा का भी मैं आभारी हूँ कि उन्होंने दिल्ली से आकर "पंजाब श्रमण संघ परंपरा" आलेख लिखा एवं अन्य सामग्री संपादन में मुझे सहयोग प्रदान किया। उनके साथी श्री सुनील जैन का कार्य भी प्रशंसनीय रहा।

सुश्री चंदना गादिया, घोड़नदी के प्रति भी साधुवाद अर्पित करता हूँ कि उसने मेरे द्वारा संशोधित-सम्पादित आलेखों की अतीव सुन्दर एवं सुवाच्य मुद्रण पाण्डुलिपियाँ तैयार करने में सोत्साह श्रम दिया एवं सद्भावपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ-आवरण-चित्र श्री प्रवोधकुमार जी जैन (बी.टेक.) ने तैयार किया है। इस ग्रन्थ को सुंदर रूप में मुद्रित करने में सी.जी ग्राफिक्स, चेन्नई के श्री युत गोपाल जी ने जो सहयोग प्रदान किया वह अत्यधिक प्रसंशनीय है। चित्रों की कलात्मक सजावट के लिये श्री केथा मोहन ने बहुत ही श्रमपूर्ण कार्य किया है। अतः इन सभी के प्रति भी आभारी हूँ।

इस प्रसंग पर मैं श्री एस.एस. जैन संघ के पदाधिकारीगण श्री युत रिद्धकरणजी बेताला, श्री भीकमचन्दजी गादिया, डॉ. उत्तमचन्दजी गोठी एवं श्री महावीरचन्दजी मूथा एवं श्री सुमनमुनि दीक्षा स्वर्ण-जयन्ति-अभिनन्दन समिति के पदाधिकारी श्रीयुत सोहनलालजी कांकरिया, श्रीयुत भंवरलाल जी साखंला व अन्य पदाधिकारियों तथा सदस्यों को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने खुले हृदय से मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

उन सभी श्रमणों, श्रमणियों, विद्वान् लेखकों, कवियों का एवं गुरु भक्तों का भी आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनकी लेखनी से संस्मरण एवं लेखों की संरचना हुई।

श्री भंवरलाल जी बैताला, साहूकारपेठ ने निष्काम एवं मूक भाव से मेरे निवास स्थान से गुरुदेव के विश्राम स्थल तक पहुँचाने में सहयोगी बने रहे अतः उन्हें भी हार्दिक धन्यवाद।

एक धन्यवाद उन सज्जनों को भी प्रेषित कर दूँ जिन्होंने माम्बलम-प्रवास के क्षणों में निष्ठापूर्वक सेवा की तथा भोजनादि की समुचित व्यवस्था का ध्यान रखा। एतदर्थ महाराज (रसोइया) श्री सुलतान सिंह राजपुरोहित, श्री प्रभुसिंह राजपुरोहित एवं श्री खेमराज प्रजापत को मैं धन्यवाद देता हूँ।

ग्रन्थ-कार्य बहुत ही शीघ्रता से हुआ है और त्रुटि स्वाभाविक है अतः उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। यह ग्रंथ पाठकों को संयम-जीवन और नैतिकता की ओर अग्रसर करता रहेगा तथा मानवता का पाठ पढ़ाता रहेगा, इसी सद्भावना के साथ विराम।

जैन जयति शासनम् ! जय जिनेन्द्र !!

भद्रेशकुमार जैन, संस्थापक निदेशक

श्री भारतवर्षीय जैन धर्म प्रचार-प्रसार संस्थान, चेन्नई-७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

केवल मांसल कलेवर मात्र ही जीवन नहीं है। समग्रतया जीवन की परिभाषा तब घटित होती है, जब वह चैतन्य-भावापन्न पांचभौतिक शरीर उन उदात्त गुणों पर संश्रित होता है, जो परम सत्य, परम सौंदर्य और परम श्रेयस् के उपजीवक हैं। "धृतः शरीरेण मृतः स जीवति" जैसी उक्तियाँ इसी तथ्य की परिचायक हैं।

जीवन की अवधि केवल वर्तमान तक ही सीमित नहीं है। वह अतीत तथा भविष्य की शृंखला से भी जुड़ी है। काल त्रय का यह समवाय परस्पर एक विलक्षण सामंजस्य लिए हुए हैं। कर्मवाद, पुरुषार्थवाद, आत्मवाद एवं मुक्तिवाद आदि दार्शनिक पक्ष इसीसे प्रस्फुटित हुए हैं।

व्यष्टि और समष्टि का जैसा पार्थक्य हम बहिर्दृष्ट्या देखते हैं, वैसा नहीं है। दोनों का एक ऐसा शाश्वत सम्बन्ध है, जिसका परिणाम यह सृष्टि है। व्यष्टि के अभाव में समष्टि की संकलना या सर्जना कदापि संभाव्य नहीं है और व्यष्टि के अपने निर्वहण में समष्टि का परोक्ष, अपरोक्ष सहयोग किंवा साहचर्य नितान्त वाञ्छित है। अतएव वैयक्तिक भूमिका का गति-क्रम समष्टि के प्रेयस् तथा श्रेयस् से भिन्न नहीं होता। वैदिक दर्शन का केवलाद्वैत, जैन दर्शन की सर्वक्षेमंकरी अहिंसा, बौद्ध परंपरान्तर्गत महायान की महाकरुणा का मूल उत्स भी इसी में सन्निहित है।

निश्चय ही यह अत्यन्त गौरवास्पद है कि भारतीय मनीषा इसी चिन्तन-धारा के परिप्रेक्ष्य में सदैव गतिशील रही। आज के युग में भी जहाँ प्रायः लोग भौतिकवाद की भ्रामकता में आकण्ठ-निमग्न हैं, प्रेयस्-लोलुप होते हुए श्रेयस् को विस्मृत करते जा रहे हैं, यह वैचारिक स्रोत शुष्क नहीं हुआ है।

विश्व-वात्सल्य, समता, अनुकंपा, सेवा, तितिक्षा, विरति, ध्यान, समाधि आदि गुण इसीलिए जीवन के अलंकरण माने गये, क्योंकि इनकी व्यष्टि और समष्टि – दोनों के अभ्युदय तथा उन्नयन के साथ गहरी संलग्नता है। इन परमोदात्त गुणों के सर्वथा स्वीकरण, अनुभवन, तन्मूलक आत्म-परिष्करण तथा परमात्मसंस्करण – परमात्मभावापन्न स्वरूपोपलब्धि की अस्मिता संन्यास, श्रामण्य या भिक्षुत्व में उद्भासित हुई।

सद्गुण-समादर एवं सम्मान इस देश की महनीय गरिमा रही है। इस गरिमा की परिणति सद्गुण-समर्जन और संवर्धन में कितनी अधिक रही, यह निम्नांकित सूक्तियों से प्रकट है –

गुणि-गण-गणनारम्भे, न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्यं
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद वन्ध्या कीदृशी भवति ?

अर्थात् गुणी जनों की गणना के आरंभ में जिसकी ओर आदरपूर्वक तर्जनी नहीं उठती, वैसे पुत्र को जन्म देकर माता यदि पुत्रवती कही जाए तो बतलाएं, फिर वन्ध्या कौन होगी ?

सूक्तिकार का यहाँ अभिप्राय यह है, वस्तुतः वही मात्रा पुत्रवती है, जो गुणवान् पुत्र को जन्म देती है – जिसका पुत्र गुण-निष्पन्न होता है। और भी कहा है –

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख-शतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति, न च तारागणोऽपि वा।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणी पुत्र यदि एक भी हो, तो वह उत्तम है, मूर्ख सैकड़ों भी हों तो कोई लाभ नहीं। अकेला चन्द्रमा अंधकार का हनन-विनाश करता है, असंख्य तारागण भी वैसा करने में सक्षम नहीं है।

सद्गुण-संपन्न सन्त, साधक, योगी सर्वथा निःस्पृह होते हैं। उनके मन में कभी भी यह अभीप्सा उत्पन्न नहीं होती कि उनका कीर्ति-गान एवं संस्तवन हो। क्योंकि वे तो आत्म-तुष्टि को ही जीवन का परम साध्य मानते हैं। यद्यपि आज इसका बहुलांशतया विपर्यास दृष्टिगोचर होता है, जो तथाकथित महात्मवृन्द के अन्तर्दौर्बल्य का परिचायक है, जिसे वे ऐहिक संस्तुति, प्रशस्ति और यशस्विता की मोहकता में विस्मृत किये रहते हैं। भारत जैसे परम अध्यात्म प्रवण देश में जो आज ऐसा परिलक्षित होता है, उसे एक असह्य विडंबना की संज्ञा दी जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। किन्तु इस युग में भी OASIS IN DESERT (रेगिस्तान में नखलिस्तान) के रूप में ऐसे वरेण्य संतप्रवर विद्यमान हैं, जो स्व-पर-कल्याण में सर्वथा निरत रहते हुए साधना के प्रशस्त पथ पर समर्पण भाव से गतिशील हैं। यह लिखते हुए जरा भी संकोच नहीं होता कि श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के परामर्शक एवं मंत्री, विद्या और चर्या के अप्रतिम संवाहक मुनिवर्य श्री सुमनकुमारजी म.सा. एक ऐसे ही सौम्य, सहृदय एवं सात्विक चेता महापुरुष हैं। उनके आर्जव, मार्दव, सौहार्द, सौमनस्य, लोक-वात्सल्य तथा समत्व आदि सद्गुण सहज रूपेण जन-जन में अप्रयत्न साध्यतया सर्वत्र संप्रसृत हैं, जैसा आज के युग में दुर्लभ प्राय हैं। "न हि कस्तूर्यामोदः शपथेन विभाव्यते" – कस्तूरी की सुरभि शपथ द्वारा – दृढ़तापूर्वक कहकर नहीं बतलाई जाती, वह तो स्वयमेव प्रसार पा जाती है। वास्तव में मनीषा, साधना एवं चिन्तन के महान् धनी, ये मुनि-मूर्धन्य सर्वथा अभिनन्दनीय तथा अभिवन्दनीय हैं। निःसन्देह चेन्नई महानगरी एवं तमिलनाडु राज्य के गुणग्राही, श्रद्धालु सुजनवृन्द साधु वादार्ह हैं, जिन्होंने मुनिवर्य के अभिनन्दन-ग्रन्थ-प्रकाशन तथा दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ती-समारोह का आयोजन करने का निश्चय कर एक ऐसा ऐतिहासिक तथा चिरस्मरणीय उपक्रम समुपस्थापित किया है, जो लोक-मानस में गुणग्राहिता की पवित्र भावना को उजागर करेगा। ये संत प्रवर, जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, ऐसे आयोजनों से किसी प्रकार का आत्म-परितोष नहीं मानते। यह तो उपकृत जनमानस का एक प्रकार से आनृण्यभाव ही है। यद्यपि इन महान् साधक के उपकारों से अनृणता या उऋणता इतने मात्र में नहीं सधती, क्योंकि उपकार अनन्त हैं, जिनके समक्ष यह उपक्रम अत्यन्त नगण्य है, किन्तु जन-मानस की सत्वगुणमयी भावना का तो संसूचन इसमें है ही।

परम श्रद्धेय श्री सुमन मुनिजी म.सा. का जीवन एक ऐसे कर्मयोगी, भक्तियोगी तथा ज्ञानयोगी की गौरवमयी गाथा है, जिसका अक्षर-अक्षर एक ऐसी अन्तः प्रेरणा को उज्जीवित करता है, जो जन-जन को आसक्ति-विवर्जित, सत्कर्मनिष्ठ, परमात्म-परायण एवं सद् ज्ञानानुशीलन के पावन पथ पर गतिशील बनाती है।

एक श्रमनिष्ठ कृषिजीवी परिवार में जन्म लेकर इन्होंने जिस संयमानुप्राणित श्रमनिष्ठता की अपने जीवन में अवतारणा की, वह एक ऐसी घटना है, जिसके इर्द-गिर्द विकीर्ण आध्यात्मिक ज्योति! स्फुलिङ्ग एक अनुपम दिव्यता लिए हुए हैं। तब किसी ने बालक 'गिरिधारी' को (श्री सुमनमुनिजी का गृहस्थ नाम) देखकर शायद यह कल्पना तक नहीं कि होगी कि एक दिन यह बालक श्रामण्य के गिरितुल्य भार का संवहन कर वास्तव में अपने आपको गिरिधारी सिद्ध करेगा किन्तु जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों अथवा क्षायिक-क्षायोपशमिक भावों के प्राबल्य का ही यह परिणाम था कि परंपरागत कृषिजीविता, ऋषिजीविता में परिणत हो गई। नीतिकार ने ठीक ही कहा है –

"प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो, देवोऽपि तं लंघयितुं न शक्तः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे, यदस्मदीयं न तत्परेषाम्।।"

पुनश्च –

"यद् भावि न तदभावि, भावि चेन्न तदन्यथा।

इति चिन्ता-विषघ्नोऽयमगदः, किं न पीयते।।"

तात्पर्य यह है कि जीवन में जो घटित होना है, प्राप्त होना है, वह होता ही है। इसे दैव भी नहीं रोक सकता। भावि-भवितव्य, अभावि-अभावितव्य कभी नहीं बनता।

यही घटित हुआ, सत्संस्कारों के धनी इन महामानव के साथ। शैशव में ही अवांछित, अप्रत्याशित, अवितर्कित मातृ-पितृ-भ्रातृवियोग का इन्हें सामना करना पड़ा, जो एक बालक के लिए प्रलयंकर जैसा था, किन्तु उस भीषण परिस्थिति में, जहाँ सब ओर तमिस्रा परिव्याप्त थी, एक दीप-शिखा की ज्यों बालक को एक सहृदया, मातृ-कल्पा सन्नारी गुरुणीवर्या श्री रुक्मा देवी का जो सर्व-सम्मत आश्रय प्राप्त हुआ, वह इनके महिमामय जीवन-पादप के संवर्धन एवं विकास का अनन्य साधन सिद्ध हुआ। ऐहिकता आमुस्मिकता से पराभूत होती गई। जीवन एक ऐसे साधना-पथ की गवेषणाओं में लगा, जो चरम प्रकर्ष की मंजिल तक पहुँचा सके। वैष्णव वैरागी साधु, नाथ योगी आदि विभिन्न धार्मिक परंपरानुगत साधना पद्धतियों का पर्यवलोकन करते हुए ये जैन जगत के महान्, ऋषिवर्य्य, साधक शिरोमणि, पंचनद प्रदेश के युवाचार्य विद्वन्मूर्धन्य श्री शुक्ल चन्द्रजी म.सा. तथा उनके अंते वासी श्रीमहेन्द्र कुमारजी म.सा. के सान्निध्य सेवी बने, जहाँ उनकी विद्वत्ता, संयत चर्या और साधना से इनकी अतृप्त अध्यात्म, पिपासा परितृप्ति प्राप्त कर सकी, जिसकी परिणति श्रमण-दीक्षा के रूप में परिघटित हुई।

जीवन का रूपान्तरण हुआ। वंशानुगत श्रममयी जीवन-सरणि शम, सम एवं श्रमात्प्लावित पावन त्रिवेणी में परिणत होकर ऐसे आत्मोज्ज्वल रूप में उद्भावित हुई, जिसकी उत्तरोत्तर समुच्छलित भाव-तरंगे न केवल अन्तरतम में ही, वरन् विराट् जन-मानस में भी परमात्मा उप्राणित अभिनव सृष्टि को संस्फुटित करने लगी, संप्रति कर रही हैं। यहां इस सन्दर्भ में जैन जगत् के क्रान्तिकारी अधिनायक महामहिम आचार्य हरिभद्र सूरि का विचार प्रस्तोतव्य है। उन्होंने योग दृष्टि समुच्चय नामक अपने महान् ग्रन्थ में कुलयोगी, गोत्रयोगी, प्रवृत्त-चक्रयोगी तथा निष्पन्न योगी के रूप में योगियों के चार भेद किये हैं। कुलयोगी उन्हें कहा गया है, जो पूर्व जन्म में अपनी योग-साधना को पूर्ण नहीं कर पाते, उससे पूर्व ही जिनका आयुष्य पूरा हो जाता है। उनका अग्रिम जन्म योगानुभावित संस्कार लिये होता है। निमित्त विशेष पाकर उनके यौगिक संस्कार स्वयमेव प्रस्फुटित हो जाते हैं। न यह अतिरंजन है और न अतिशयोक्ति ही, श्री सुमन मुनिजी म.सा. वस्तुतः एक कुल योगी हैं। उनकी धीर, गंभीर मुखाकृति, निश्छल, निर्मल प्रकृति तथा विकृति-विवर्जित चर्या इसके स्पष्ट निदर्शक हैं। गुरुवर्यों के अनुग्रह और अनुशासन का संबल पाकर इनका जीवन उत्तरोत्तर, अधिकाधिक विकास-प्रवण होता गया, जिसकी फल-निष्पत्ति स्थितप्रज्ञत्व के रूप में प्रकटित हुई। श्रीमद् भगवद्गीता के निम्नांकित श्लोक इनके जीवन में सम्यक् परिघटित होते हैं -

"प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान् पार्थ ! मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।
दुखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगत-स्पृहः।
वीतराग-भय-क्रोधः, स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।" अध्याय २ - ५५-५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत अभिनन्दनग्रन्थ में विविध स्थलों में इन विषयों पर जो ऊहापोह हुआ है, यह वास्तव में पठनीय है।

"चरत भिक्खवे। चारिकां वहुजनहिताय बहुजनसुखाय कल्लानाय दैवमानुसानं।। – तथागत भगवान् बुद्ध की यह उक्ति मुनिवर्य के जीवन में सर्वथा सार्थक सिद्ध हुई। राजस्थान की वीर-प्रसविनी, संत-प्रसविनी पुण्य धरा में तो, जहाँ आपका जन्म हुआ, आपने ग्रामानुग्राम, नगरानुनगर जन-कल्याण का महान् लक्ष्य लिये विहरण किया ही, किन्तु उसके अतिरिक्त हरियाना, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि में भी जो आध्यात्मिक विजय-वैजयन्ती संस्फुटित की, वह आपके श्रमणोचित महान् लक्ष्य की संपूर्ति का अविस्मरणीय उदाहरण है।

उत्तर एवं दक्षिण भारत भाषा, वेषभूषा, आदि की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक एकता के सूत्र में आवद्ध है। वैदिक संस्कृति के साथ साथ श्रमण-संस्कृति भी प्राचीन काल से जहाँ पल्लवित, पुष्पित एवं विकसित होती रही है। मुनिवर्य ने उत्तर भारत के विविध अंचलों में पर्यटन तथा प्रवास करने के अनन्तर दक्षिण की ओर प्रयाण किया। महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक तथा तमिलनाडु आदि विभिन्न प्रदेशों में धर्म प्रसार करते हुए जन-जन में आर्हत संस्कृति, सदाचार एवं व्रतमय जीवन के जो दिव्य संस्कार ढाले एवं ढाल रहे हैं, वह यहाँ के शताब्दियों पुराने गौरवमय जैन इतिहास का एक प्रकार से पुनरावर्तन कहा जा सकता है। दक्षिण प्रवास के वीच चेन्नई महानगरी को इन महामहिमान्वित श्रमण-मूर्धन्य का जो चिर सान्निध्य प्राप्त हुआ है, हो रहा है, वह यहाँ की सांस्कृतिक गरिमा के सर्वथा अनुरूप है।

जनपद-विहार एवं लोक-जागरण के अतिरिक्त स्वान्तः सुखाय के साथ साथ जन-जन में उदात्त मानसिकता आविष्कृत करने हेतु आपने साहित्यिक प्रणयन के रूप में जो वाङ्मयी सृष्टि की, वह आपके प्रज्ञा एवं प्रतिभामय कृतित्व का वह उज्ज्वल पक्ष है, जिसमें सत्-चित्-आनन्द के दर्शन होते हैं, जीवन-वृत्त, तत्व-चिन्तन, सिद्धान्त-दर्शन आदि विविध विधाओं में आपकी रचनाएँ ऐसी लोकजनीनता, सरलता एवं सुबोध्यता लिये हुए हैं, जिससे सर्व साधारण जिज्ञासुवृंद का बहुत बड़ा उपकार सधा है, सधता रहेगा। क्योंकि साहित्य तो वह भाव-निश्चयोतित अमृत हैं, जो पाठकों और श्रोताओं के मन में नव जीवन का संचार करता है।

कितना बड़ा आश्चर्य है, महामना सुमन मुनिजी म.सा. का जीवन अनेकानेक दुर्लभ विशेषताओं का अद्वितीय संगम है। उपर्युक्त वैशिष्ठमूलक जीवन-क्रमों के साथ साथ सेवा भावना भी आपकी रग-रग की अनुस्यूत है, जिसका प्राकट्य समय-समय पर संतों के वैयावृत्त्य के रूप में होता रहा है। "सेवा-धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्य" – योगिराज भर्तृहरि द्वारा प्रतिपादित योगियों के लिए भी दुर्लभ – दुःसाध्य सेवा धर्म की गहनता में अत्यन्त सहजता और सुकरता के रूप में परिणति पा सकी, यह कोई कम आश्चर्य की बात नहीं है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में आपके उज्ज्वल, धवल, निर्मल, इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व का विविध अध्यायों में जो विवेचन हुआ है, वह एक ऐसे निःस्पृह अध्यात्मयोगी के जीवन का शाश्वत मूल्य परक दस्तावेज है, जो मानव-मेदिनी को विपथगामिता से अपाकृत कर सुपथ-गामिता की दिशा में अग्रसर होते रहने की न केवल प्रेरणा ही प्रदान करेगा अपितु एक सुधा-संसिक्त-पाथेय का भी काम देगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ पाँच खण्डों में विभाजित है। इसके प्रथम खण्ड में आचार्यों, संतों, विद्वज्जनों, जन-नेताओं एवं समाजसेवियों के संदेश, अभिनन्दनोंद्गार, चरितनायक के जीवन की विशेषताओं को उद्घाटित करने वाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गद्यपद्यात्मक सामग्री संकलित हैं, जिससे मुनिवर्य के प्रति लोक-मानस में परिव्याप्त श्रद्धा एवं समादर का परिचय प्राप्त होता है।

द्वितीय खण्ड में श्वे. स्था. जैन संघ तथा पंजाब श्रमण संघ की परंपरा, श्री सुमन मुनि जी म.सा. के प्रगुरुवर्य तथा गुरुवर्य का जीवन-परिचय उपस्थापित किया गया है, जिनकी कीर्तिवल्लरी न केवल पंजाब तक ही सीमित है, वरन् भारत-व्यापिनी है।

तृतीय खण्ड में चरित नायक के शैशव, पारिवारिक जीवन, तद्गत विषम घटनाएँ, धार्मिक प्रश्रद, दिशा-बोध, प्रव्रज्या, विद्याध्ययन, विहरण, धर्म-संघ में महत्त्वपूर्ण पदोपलब्धि आदि का विवेचन किया गया है, वह इनके देव-दुर्लभ, उत्क्रान्तिमय व्यक्तित्व का जीता-जागता लेखा-जोखा है। साथ ही साथ इनके जीवन के विविध प्रसंगों की चित्रात्मक झांकियाँ भी अंकित हैं।

चतुर्थ खण्ड में मुनिवर्य के साहित्यिक कृतित्व और वाग्मिता का जो प्रवचनमयी पीयूष धारा के रूप में संप्रवाहित होती रही है, वर्णन है। साथ ही साथ इनके साहित्य पर समीक्षात्मक दृष्टि से चिन्तन तथा इनकी सूक्तियों का आकलन किया गया है।

पंचम खंड में देश के ख्यातनामा विद्वानों एवं विचारकों के विश्लेषणात्मक तथा शोधपूर्ण निबन्ध है, जिनके कारण यह ग्रन्थ एक सार्वजनीन महत्वपूर्ण अध्येय सामग्री में संपुटित होकर और अधिक महिमा-मंडित हुआ है।

निर्मल, कोमल एवं मृदुल हृदय के सजीव प्रतीक, संयतचर्या और सेवा के अनन्य संवाहक, गुरुसमर्पित चेता सम्मानास्पद श्री सुमन्त भद्र मुनि जी म. का प्रस्तुत ग्रन्थ की संरचना में जो प्रेरणात्मक संबल रहा, वह ग्रन्थ की स्पृहणीय निष्पत्ति में निश्चय ही बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है जो सर्वथा स्तुत्य है।

भारतीय संस्कृति एवं जीवन-दर्शन के अनन्य अनुरागी, प्रबुद्ध चिन्तक, लेखक तथा शिक्षासेवी प्रस्तुत ग्रन्थ के व्यवस्थापक **श्रीयुत दुलीचंद जैन**, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार तथा जैन धर्म एवं साहित्य के समर्थ विद्वान्, सुप्रसिद्ध लेखक और इस ग्रन्थ के संपादक **श्रीयुत डॉ. भद्रेशकुमार जैन** एम.ए.,पी.एच.डी. ने जिस लगन, निष्ठा तथा तन्मयता के साथ इस ग्रन्थ का अविश्रान्तरूपेण जो कार्य किया, उसी का यह सुपरिणाम है कि ग्रन्थ इतने सुन्दर तथा आकर्षक रूप में प्रकाशित हो सका। ये दोनों विद्वान् शत्-शत् साधु वाद के पात्र हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सभी सहयोगी बन्धुवृन्द, जिन्होंने इस पावन सारस्वत कृत्य में मेधा, श्रम और वित्तादि द्वारा सहयोग किया, सुतरां प्रशंसास्पद हैं।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि यह ग्रंथ एक महापुरुष का गरिमान्वित जीवन-वृत्त होने के साथ-साथ आध्यात्मिक साधना, भक्ति, सद्गुणसम्मान, सत्कर्त्तव्यनिष्ठा और पुरुषार्थ जैसे विषयों से सम्बद्ध वह महत्त्वपूर्ण सामग्री लिए हुए हैं, जो संयम, सेवा और त्याग-पथ के पथिकों के लिए निःसंदेह उद्बोधक सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

कैवल्य धाम,
सरदारशहर (राज.)
दिनाङ्क १-१०-६६

– **डॉ. छगनलाल शास्त्री**, *एम.ए. (त्रय) पी.एच.डी.*
काव्यतीर्थ, विद्यामहोदधि, प्राच्यविद्याचार्य
पूर्व प्राध्यापक-वैशाली शोध संस्थान एवं मद्रास विश्वविद्यालय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

प्रथम खण्ड : वंदन-अभिनंदन

गद्य-विभाग

आप हमारी भुजा हैं	*आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी*	१
श्रमण संस्कृति के गौरवशाली सन्त	*आचार्य श्री शिवमुनि जी*	१
वन्दन-अभिनन्दन	*उपाध्याय श्री विशालमुनि जी*	२
शुभाशीर्वचनम्	*सलाहकार श्री ज्ञानमुनि जी*	२
मेरा हार्दिक आशीष	*प्रवर्तक मुनि पद्मचन्दजी भंडारी*	३
गौरवास्पदमदीयम्	*प्रवर्तक श्री रूपचन्द्रजी म. 'रजत'*	३
मंगल कामना	*उपप्रवर्तक मुनि हेमचन्द्र जी*	३
स्नेह सुमनाञ्जलि	*श्री रतनमुनि जी*	४
स्पष्टवक्ता एवं अनुशासन प्रिय	*वरिष्ठ सलाहकार श्री मोहनमुनि जी*	४
महापुरुष	*तपाचार्या साध्वी श्री मोहनमाला जी*	४
मेरी आस्था के देवता	*डॉ. साध्वी पुनीतज्योति जी*	४
विराट् व्यक्तित्व के धनी	*महामंत्री श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद'*	५
गुणों के धारक महापुरुष	*युवाप्रज्ञ डॉ. सुव्रतमुनि जी*	७
वहुमुखी व्यक्तित्व	*श्री उदयमुनिजी "जैन सिद्धान्ताचार्य"*	८
शांतिदूत	*मुनि श्री प्रकाशचन्द्रजी 'निर्भय'*	८
आन्तरिक शुभाशंषा	*श्री विनोदमुनि जी*	९
मेरी अनन्त आस्था के केन्द्र : पूज्य गुरुदेव	*मुनि श्री सुमन्तभद्रजी 'साधक'*	१०
कुछ कर गुजरने की तमन्ना	*श्री मेजर मुनि जी*	१२
गुजरात को भी पावन करें	*श्री गिरीश मुनि जी*	१३
फैले यश सौरभ, दिन दूना, रात चौगुना	*मुनि श्री लाभचन्द्र जी*	१३
उदारचेता श्रमण	*श्री सुरेशमुनि जी 'शास्त्री'*	१४
गुरुदेव! सुध लो अपने वतन की	*साध्वी श्री उमेश 'शास्त्री'*	१४
यथानाम तथागुण सम्पन्न मुनिराज	*साध्वी श्री मंजुश्री जी*	१४
सुमन सुरभि	*डॉ. साध्वी श्री सरोज कुमारी जी*	१५
दिव्य गुणों के धनी	*साध्वी श्री विमल कुमारी जी*	१६
वात्सल्यमूर्ति	*साध्वी आदर्श ज्योति जी*	१७
वीर प्रभु के अमर सेनानी श्री सुमन मुनि जी	*उपप्रवर्तिनी साध्वी श्री पवनकुमारी जी*	१७
जीवन शिल्पी, प्रवुद्ध कलाकार, कुशल चितेरे	*साध्वी श्री ऋद्धिमा जी*	१७
वहुआयामी व्यक्तित्व के धनी	*उप प्रवर्तक डॉ. राजेन्द्रमुनि जी*	१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिर्मय व्यक्तित्व के प्रतीक	*उपप्रवर्तिनी साध्वी कौशल्या जी*	२०
दिव्यविभूति	*मुनिश्री सतीशकुमार जी*	२१
जैन जगत् के चमकते सितारे	*साध्वी श्री ओमप्रभा जी*	२१
जैन जगत् के गौरवशाली सन्त	*श्री चेतनप्रकाश डूंगरवाल*	२२
संयमनिष्ठ मुनिराज	*उपप्रवर्तक श्री अमरमुनि जी*	२२
अभिनन्दनाञ्जलि	*एस.एस. जैन संघ, कोंडीतोप*	२३
धर्म दिवाकर	*जे. माणकचन्द कोठारी*	२३
चिरायु जीवन की कामना	*जे. मोहनलाल चोरड़िया*	२३
धन्य है आपकी अद्वितीय साधना	*श्री टी.आर. जैन*	२४
समन्वयवादी विचारों के धनी	*श्री राधेश्याम जैन*	२५
गिरा अनयन नयन बिनु वाणी	*श्री भंवरलाल साँखला*	२५
गुणों के सागर	*डॉ. एम. उत्तमचंद गोठी*	२७
प्राकृत भाषा प्रचारक	*श्री बी.ए. कैलाशचंद जैन*	२८
ज्ञान-दर्शन-चारित्र की त्रिपथगा	*श्री शांतिलाल वनमाली शेठ,*	२६
संतप्रवर : सुमन मुनिवर	*डॉ. श्री इन्दरराज बैद*	३०
निष्कलंक व्यक्तित्व	*श्री चन्द सुराना 'सरस'*	३३
जैन दर्शन के प्रकांड पंडित	*श्री एस. कृष्णचन्द्र चौरड़िया*	३३
प्रज्ञामहर्षि : श्री सुमनमुनि जी महाराज	*श्री दुलीचन्द जैन*	३४
चलता फिरता मसीहा	*श्री मिट्ठालाल मुरड़िया*	३७
ज्ञान-सागर से निकला अमृत	*श्री महावीरचंद ओस्तवाल*	३८
सर्वतोभद्र व्यक्तित्व के धनी	*प्रो. श्री प्रेमसुमन जैन*	४१
चरण कमलों में वन्दन!	*श्री दिलीप धींग*	४१
उद्बोधन के माध्यम से	*श्री हरकचन्द ओस्तवाल*	४२
चरित्रात्मा	*श्री भंवरलाल नाहटा*	४३
दीर्घ अनुभवी स्पष्टवक्ता	*श्री केसरीचन्द सेठिया*	४४
भीष्म पितामह-से	*श्री अशोक बोरा*	४४
महामना संत	*श्री शांतिलाल दूगड़*	४४
गरिमा-महिमा की बात	*श्री बी. मोहनलाल भुरट*	४५
पंडितरत्न मुनि श्री सुमनकुमारजी म.: एक संस्मरण	*श्री पारस जे. नाहर*	४५
सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय	*श्री चमनलाल मूथा*	४६
अर्पित है मंगलमयी भावना	*श्री शांतिलाल पोकरणा*	४७
यथानाम तथागुण	*श्री वेदप्रकाश जैन*	४८
गुरुदेव मेरे, मैं उनका	*श्री मांगीलाल जांगड़ा*	४८
सुरभित हो ज्यों चन्दन	*श्री सोमप्रकाश जैन*	४८
अनुभव शास्त्र के धनी	*श्री प्रकाशचन्द डागा*	४६
अनंत उपकारी गुरुदेव	*श्री शांतिलाल खाबिया*	४६
आध्यात्मिक साधना के प्रभावी उद्घोषक	*श्रीमती विजया कोटेचा*	५०
संयम के महासाधक	*श्री जगदीशचन्द्र जैन 'भ्राता'*	५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विराट् व्यक्तित्व के धनी	*श्री भंवरलाल बैताला*	५६
माधुर्य, सरलता, सद्भावना के प्रतीक	*श्री शांतिलाल खाबिया*	५६
देदीप्यमान जीवन	*श्री कैलाशमल दुगड़*	६०
प्रभाव : गुरुदेव के उपदेश का	*श्री मोतीलाल जैन*	६०
अभिनन्दन : संयमी जीवन का	*श्री एन. सुगालचन्द जैन*	६१
जैन समाज के ज्याजल्यमान नक्षत्र	*श्री जवाहरलाल बाघमार*	६१
एक आदर्श महापुरुष	*के. पिस्तादेवी बोघरा*	६१
श्रमण संघ की शान	*सौ. शकुन्तला मेहता*	६२
मेरे विचार	*श्री तेजराज सिंघवी*	६३
नई पीढ़ी के मार्गदर्शक	*श्री महावीरचंद जैन*	६४
करुणाशील निर्ग्रन्थ	*श्री उत्तम राजेश जैन*	६४
ज्ञानी एवं दार्शनिक महापुरुष	*श्री एस. मदनलाल गुन्देचा*	६५
जिनवाणी के सफल जादूगर	*श्री पारसमल दक*	६६
सरस्वती पुत्र : मुनि श्री सुमनकुमार जी	*श्री रमेशचन्द्र जैन*	६७
श्रमणसंघ का अद्वितीय सुमन	*श्री पारस गोलेच्छा*	६८
महावीर-सिद्धांतों के कुशल संवाहक संत	*श्री कैलाशचन्द्र जैन एडवोकेट*	६६
गुरु शुक्ल के सच्चे उत्तराधिकारी	*श्री बनारसीदास जैन*	६६
अविस्मरणीय हैं और रहेंगे	*श्री मोतीलाल जैन*	७०
सुमनाः सुमनाः	*कृ. श्रीनिवासः*	७१
सुमन-सौरभ	*श्री सज्जनराज तालेड़ा*	७३
सरलता साधुता के प्रतीक	*श्री हीराचन्द गोलेच्छा*	७३
संयम का अभिनन्दन	*श्री चम्पालाल मकाणा*	७३
साधना सम्पन्न महानयोगी	*युवामनीषी श्री सुभाषमुनि जी*	७४
लोक में आलोक के प्रतीक	*श्री घीसूलाल हिंगड़*	७४
प्रकाश पुरुष गुरुदेव	*श्री भंवरलाल गोठी, रिखवचन्द लोढ़ा*	७५
स्व-पर कल्याण रत गुरुदेव !	*श्री इन्द्रचन्द मेहता*	७५
अभिनन्दन एवं मंगल कामना	*डॉ. साध्वी श्री सरिता*	७५
एक बहुआयामी व्यक्तित्व	*श्री राजेन्द्रपाल जैन*	७६
मृदु-हृदय मुनिराज	*श्रीमती दमयंती भंडारी*	७७
संयम को नमन	*श्री डूंगरचंद शांतिलाल रांका*	७७
पूज्य गुरुदेव का चमत्कारी व्यक्तित्व	*श्री मदनलाल मरलेचा*	७८
सामाजिक चेतना के संवाहक	*श्री मांगीलाल कोठारी*	७८
शत-शत अभिनन्दन	*श्री देवराज बम्ब*	७६
वीतराग वाणी के महान् व्याख्याता	*श्री सुरेन्द्रभाई एम. मेहता*	७६
अभिनन्दन एवं मंगलकामना	*श्री किशनलाल बैताला*	८०
यशस्वी मुनि पुङ्गव	*श्री राजकुमार जैन*	८०
Sri. Suman Muniji : A Saint of Great Wisdom	*Nawrathan K. Kothari*	81

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्य विभाग

यशोगानम्	*श्री रमेशमुनि जी ' शास्त्री'*	१
मेरे मन को सुमन वना दो	*श्री दुलीचंद जैन*	१
जिनशासन सिणगार	*श्री शांतिलाल खाबिया*	१
सुमन-गौरव-गाथा	*श्री हस्तीमल समदड़िया*	२
श्रमणरत्न श्री सुमनमुनि	*श्री दीपक भाई*	५
श्रमणसंघ की ढाल, हृदय से विशाल	*श्री के. मोतीलाल रांका*	५
कितने सच्चे, कितने अच्छे मेरे गुरुवर!	*श्री मांगीलाल जांगड़ा*	६
सुमन की सौरभ	*राजेन्द्र जैन*	६
सब ही देते बधाई	*वैरागी दीपक जैन*	७
जय-जय सुमनमुनि गुणवान	*मुनि श्री सुमन्तभद्र जी "साधक"*	७
युग-युग जिओ गुरुवर	*मुनि श्री प्रवीण कुमार जी 'विद्यार्थी'*	८
शांति का बिगुल बजाते है	*श्री पारसमल बाफणा*	६
सुमन-सौरभ	*श्री मांगीलाल जांगड़ा*	६
संयम की उज्ज्वल ज्योति	*श्री भीकमचंद गादिया*	६
ज्ञान प्रकाश फैलायो संघ में	*श्री निहालचंद बांठिया*	१०
शुभ दिन आज है	*श्री सुरेन्द्र खिंवसरा*	१०
मुनि जीवन की शान	*श्री सम्पत लोढ़ा*	११
श्रमण संघ की शान	*श्रीमती शकुंतला मेहता*	११
विरागी का विरागाभिनन्दन!	*श्री जे. पारसमल गादिया*	१२
सुमणत्थुई	*डॉ. एन. सुरेशकुमार*	१२
लाखों लाख बधाई	*कविरत्न श्री चन्दनमुनि जी*	१३
श्रद्धा-पुष्प	*श्री गुणभद्रमुनि । मेजरमुनि जी*	१४
मंजुल व्यक्तित्व विशाल	*प्रवर्तिनी साध्वी श्री प्रमोदसुधा जी*	१५
ऐसा वरदान दे दो गुरुवर !	*साध्वी श्री रिद्धिमा जी*	१५
भक्ति के सुमन अर्पण करू मैं	*साध्वी श्री हिमानी जी*	१६
हार्दिक वन्दन-अभिनन्दन	*श्री विमलकुमार कोटेचा*	१६
गुरुवर सुमनमुनि जी	*श्री देवराज वम्ब*	१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय खण्ड : परम्परा

	पृष्ठ
श्री श्वेताम्वर स्थानकवासी श्रमण-परंपरा	१
पंजाव श्रमणसंघ की आचार्य परम्परा	१७
अ.भा.स्था. वर्धमान श्रमणसंघ के आचार्यों का संक्षिप्त जीवन परिचय	३१
प्रवर्तक पं.र. श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज	३५
गुरुदेव प. रत्न श्री महेन्द्रकुमारजी महाराज	४७
श्रद्धेय चरितनायक गुरुदेव का शिष्य परिवार	५१
गुरुदेव श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज के शिष्य रत्न	५३
पंजाब श्रमणी परंपरा	५८

तृतीय खण्ड : सर्वतोमुखी व्यक्तित्व

सर्वतोमुखी व्यक्तित्व	*भद्रेशकुमार जैन*	१ से ११२

चतुर्थ खण्ड : सुमन साहित्य एक अवलोकन

श्री सुमनमुनि जी की साहित्य साधना	*श्री दुलीचन्द जैन*	१
मत-अभिमत		२०
श्री सुमनमुनि जी का सर्जनात्मक साहित्य	*डॉ. इन्दरराज वैद*	२५
एक लघु साक्षात्कार	*श्री गौतम कोठारी*	३०
सुमन वचनामृत	*श्रीमती विजया कोटेचा*	३२
सुमन प्रवचनांश		
सुमन पत्रांश		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम खण्ड : जैन संस्कृति का आलोक

हिन्दी-विभाग

अनेकान्तवाद : समन्वय का आधार	*डॉ. प्रेम सुमन जैन*	१
भगवान् महावीर के जीवन सूत्र	*श्री चन्द सुराना 'सरस'*	७
श्रमण संस्कृति के संरक्षण में चातुर्मास की सार्थक परम्परा	*डॉ. राजाराम जैन*	१२
जैन एकता : आधार और विस्तार	*आचार्य विजयनित्यांनदसूरी*	१६
सामाजिक समरसता के प्रणेता तीर्थंकर महावीर	*डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन*	२१
अहिंसा परमो धर्मः	*स्वामी ब्रह्मेशानन्द*	२४
जैन कर्म सिद्धान्त : नामकर्म के विशेष संदर्भ में	*डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'*	३४
जैन आगमों की मूल भाषा अर्द्धमागधी या शौरसेनी?	*डॉ. सागरमल जैन*	४३
जैन साधना और ध्यान	*डॉ. छगनलाल शास्त्री*	६२
साधना और सेवा का सहसम्बन्ध	*डॉ. सागरमल जैन*	७२
कर्म सिद्धान्त की वैज्ञानिकता	*डॉ. जयन्तिलाल जैन*	७८
विश्व का प्राचीनतम धर्म	*श्री मेघराज जैन*	८३
जैन साधना एवं योग के क्षेत्र में आचार्य हरिभद्र सूरि की अनुपम देनः आठ योग दृष्टियाँ	*श्री महेन्द्रकुमार रांकावत*	८८
कषाय क्रोध तत्त्व	*प्रो. कल्याणमल लोढ़ा*	६४
ध्यान और अनुभूति	*डॉ. अशोक जैन*	१११
तमिलनाडु में जैन धर्म	*पं. श्री मल्लीनाथ जैन 'शास्त्री'*	११५
श्रमण संस्कृति का हृदय एवं मस्तिष्क	*डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन*	१२६
आत्म साक्षात्कार की कला : ध्यान	*आचार्य शिवमुनि*	१३१
जैन संस्कृति में नारी का महत्व	*साध्वी डॉ. धर्मशीला जी*	१३६
प्राचीन जैन हिंदी साहित्य में संत स्तुति	*साध्वी विजयश्री 'आर्या'*	१४५
धर्म साधना का मूलाधार : समत्वयोग	*श्री विनोदमुनि जी*	१५४
जैनागम पर्यावरण संरक्षण	*श्री कन्हैयालाल लोढ़ा*	१६३
ध्यान : स्वरूप और चिंतन	*श्री रमेशमुनिजी 'शास्त्री'*	१७२
तीर्थंकर पार्श्वनाथ का लोकव्यापी व्यक्तित्व और चिंतन	*डा. फूलचंद जैन 'प्रेमी'*	१७८
जैनागम में भारतीय शिक्षा के मूल्य	*श्री दुलीचंद जैन*	१८३

ENGLISH SECTION

A Brief Account of Jaina Tamil Literature	*Sri. S. Krishnachandd Chordia*	1
The Uniqueness of Jain Spirituality	*Prof. Ramjee Singh*	9
Studies on Biology In Tattvartha Sutra	*Prof. N.L. Jain*	17
Mathematical Philosophy in the Jaina School of Thought	*Prof. L.C. Jain, S.K. Jain*	35

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रबुद्ध चिन्तक, श्रेष्ठ लेखक, प्रभावशाली वक्ता, साहित्य-साधना के धनी डॉ. भद्रेश कुमार जैन ने एम.ए. एवं साहित्यरत्न की परीक्षाएं उत्तीर्ण करके शोध कार्य किया व पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपके शोध का विषय था - "[illegible] आचार्य कवियों की काव्य-परम्परा"। आपने कई ग्रन्थों का सम्पादन किया जिनमें मुख्य हैं - 'महावीर [illegible] ग्रन्थ', '[illegible]' एवं 'मुक्त ज्योति'। आप एक श्रेष्ठ शिक्षक हैं तथा स्वाध्यायियों को प्रशिक्षण देने में अतीव कुशल हैं। आप विवेचित प्रवचन भी देते हैं जो बहुत ही सारपूर्ण व प्रभावोत्पादक होते हैं। आपने [illegible] 'जैन भारती' पत्रिका का [illegible] महीनों तक कुशलतापूर्वक सम्पादन किया। सम्प्रति: मुद्रक, सम्पादक व प्रकाशक। अनेक [illegible] धार्मिक पाठशालाओं, स्वाध्याय कक्षाओं का संचालन किया। श्री पार्श्वनाथ जैन धर्म प्रचार प्रसार संस्थान, चेन्नई के संस्थापक व निर्देशक।

सम्पर्क-सूत्र :

जैन प्रकाशन केन्द्र, ५३, आदिअप्पा नायकन स्ट्रीट, साहूकार पेठ, चेन्नई-७९. फोन : ५२२६७३६ / ८५५२७३८

निवास : ४६/८, पचिअप्पा स्ट्रीट, एलिस रोड, चेन्नई-२

डॉ. भद्रेशकुमार जैन

प्रधान सम्पादक

श्रेष्ठ समाजसेवी, कर्मठ अध्यवसायी, शिक्षा प्रेमी एवं लेखक श्री दुलीचन्द जैन का जन्म १ नवंबर १९३६ को हुआ। आपने बी.कॉम., एल.एल.बी. व साहित्यरत्न की परिक्षाएं उत्तीर्ण की। आप विवेकानन्द एजुकेशनल ट्रस्ट एवं विवेकानन्द एजुकेशनल सोसाइटी, चेन्नई के अध्यक्ष-उपाध्यक्ष हैं। आप जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान एवं जैन विद्याश्रम, चेन्नई के सचिव हैं। करुणा क्लब संगठन के संस्थापक तथा भारत विकास परिषद के उपाध्यक्ष हैं। विद्या भारती के कोषाध्यक्ष भी हैं। लायन्स क्लब मद्रास नंदमबाक्कम के अध्यक्ष व जिला के चेयरमेन भी रह चुके हैं। सम्प्रति : लोहे का व्यवसाय। 'जिनवाणी के मोती' 'जिनवाणी के निर्झर' व & 'Pearls of Jaina Wisdom' ग्रन्थों के प्रणेता। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविताएँ, बोधकथाएं प्रकाशित। कई पुरस्कारों से सम्मानित-अभिनन्दित।

सम्पर्क सूत्र : **जैन इंडस्ट्रीयल कार्पोरेशन,** ७०, शम्बुदास स्ट्रीट, चेन्नई-६०० ००१

दुलीचन्द जैन

संयोजक – संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समिति अध्यक्ष
श्री सोहनलालजी कांकरिया,सेलम.

समिति कार्याध्यक्ष
श्री भंवरलालजी सांखला,मेटुपालयम.

समिति मन्त्री
श्री भीकमचन्दजी गादिया, टी.नगर.

परम श्रद्धेय गुरुदेव,
श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री
श्री सुमनमुनिजी म.सा. के पचासवें
दीक्षा वर्ष के शुभारम्भ के
पावन प्रसंग पर समिति के
पदाधिकारियों एवं सदस्यों की ओर से
हार्दिक वन्दन-अभिनन्दन !

श्री एस. एस. जैन संघ,माम्बलम के
पदाधिकारियों एवं सदस्यों का
हार्दिक सहयोग हेतु
श्री सुमनमुनि दीक्षा स्वर्ण-जयन्ति-
अभिनन्दन समारोह समिति,चेन्नई
की ओर से शतशः अनेकशः धन्यवाद.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति महोत्सव पर श्रद्धेय गुरुदेव को वन्दन ! हार्दिक अभिनन्दन !

अध्यक्ष
श्री रिद्धकरणजी बैताला

चातुर्मास अध्यक्ष
श्री भीकमचंदजी गादिया

उपाध्यक्ष
श्री कल्याणचंदजी मूणोत

मंत्री
डॉ.श्री उत्तमचंदजी गोठी

सहमंत्री
श्री पारसमलजी छाजेड

सहमंत्री
श्रीइन्दरचंदजी लोढ़ा

कोषाध्यक्षः
श्री [illegible]जी मूथा

स्व.कोषाध्यक्षः
श्री [illegible]

ट्रस्ट कोषाध्यक्षः
श्री सरदारमलजी [illegible]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम नमः

जय श्रमण संघ

जय गुरु मुक्ताः

जय मरुधरकेसरी

अर्हम नमः

लोकमान्य सन्त पू. प्रवर्तक

श्री रूपचन्दजी म. सा. 'रजत'

शुभा-शंसा

श्रमणसंघ के सलाहकार मंत्री पं. रत्न श्री सुमनकुमार जी म. सा. —

वीतराग गुरु वाणी मुक्ता की निस्सरणी —
"मुनि सुमनकुमार" पादपद्मवंद भागी हैं।
"महेन्द्र गुरु" के शिष्य संघहित सलाहकार —
जन्मस्थल पंचकोने में धर्मज्योति जागी है।
संस्कृत प्राकृत ज्ञान अध्यापन कियो वरवाणा —
तपनोप शील स्वान विशेष रस भोगी है।
मानी मरदानी वाणी ज्ञानी गुणखान दानी —
शासन का शासन तुम शिवपथ पागी है।
रजत संयम धार, सहे उपसर्ग कई —
निरभीक पराक्रम सुबल वैरागी है।

आयया कला प्रवीणा — पूना सम्मेलन स्थापना किये।
सुमनमुनिः गुणखान — वाङ्मय वाचस्पति ॥
शान्ति रक्षक पद मिल्यो, पूछा प्रवर्तक पाया।
रजत "सुमन" सौरभ खिली, जिन उपवन री छाया ॥
सुमन कई संस्था रची, परमारथ रे काज।
सदा सदा निर्भय रहो, सुमन साधना साज ॥
अनेकान्त की क्रान्ति में — सतत सदा सुस्पन्दना।
"अभिनन्दन अर्पित ग्रन्थ में" "रजत" सदा अभिनन्दना ॥
"पंचानन" नभ रवि-शशि — कल्मष करत निकन्दना।
"सुमन मुनि" यश अविचल रहे — अविरल-वपु-अभिनन्दना ॥

लो. सं. रजतमुनि"

॥ मानव सेवा ही परमात्मा की भक्ति है ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री गुरुदेवाय नमः

समर्पण

साधना के महर्षि, ज्ञान के कुबेर।
सहृदयता की निधि, सद्गुण के भंडार।।

जिनकी सद्गुण सुवास से, जन-जन है आलोकित।
जिनके प्रवचन सदा वीर वाणी से गूंजित।।

श्रमणसंघ के सलाहकार मंत्री और उपप्रवर्तक।
इतिहासज्ञ बहुभाषाविद् जैन धर्म के संवर्द्धक।।

श्रद्धा-भाव के चन्दन से चर्चित अरु वन्दित।
श्री सुमनमुनि के कर-कमलों में ग्रन्थार्पित।।

स्वस्थ और प्रसन्न रह प्रशान्त करे जन-मन का ताप।
मोक्षमार्ग के हे पथिक! विश्व का हरो त्रिविध संताप।।

दीक्षा की स्वर्ण-जयन्ति पर स्वीकारो अभिनन्दन।
ग्रन्थार्पण की सुवेला में पुलकित है तन-मन।।

- मद्रेश जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिनंदनाष्टकम्

प्रणेता

प्रो. डॉ. छगनलाल शास्त्री एम.ए. (त्रय), पी.एच.डी.,
काव्यतीर्थ, विद्यामहोदधि, प्राच्यविद्याचार्य.

शान्तचेतासुधीर्धीरः, मान्यः सेव्यो महामुनिः।
सुमनः सुमनाः सौम्यः, राजते जगती-तले।।१।।

महामान्यस्य शुक्लस्य, मुनीशस्य प्रशिष्यकः।
शिष्यश्चैव महेन्द्रस्य, साधुवर्यस्य संयतेः।।२।।

द्वयोरादर्श-संश्रेणीं, साधयन् वर्धयन् तथा।
सुमनोऽयं मुनिश्रेष्ठः, सर्वकल्याणकारकः।।३।।

सरलः सस्मितास्यश्च, मृदुलः श्रमणो महान्।
धर्मप्रभावकः वाग्मी, लोकमानसबोधकः।।४।।

उत्तरे भारते भव्ये, विहृत्य धर्मशासनम्।
सम्यक् प्रसारयामास, बोधयन् मोदयन् जनान्।।५।।

धन्या पुण्या च सञ्जाता, दाक्षिणात्या वसुन्धरा।
मुनेः पादाब्ज-संस्पर्शात्, शुभात् धर्म्यान्मनोहरात्।।६।।

गंभीरो शौर्यसंपृक्तः, जैनसिद्धान्तपारगः।
मनस्वी च तपस्वी च, वर्चस्वी दंभवर्जितः।।७।।

भ्राजतामेधतां नूनं, शतायुः स्वस्थतामितः।
वाञ्छति श्रद्धया नित्यं, डाक्टरश्छगनोहृदा।।८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१

मंगलकामनाओं से
आप्लावित सन्देश-
वन्दन-अभिनन्दन के !

संस्मरण-
व्यतीत पलों के
विगत दिनों के !

स्मृतियाँ सजीव हो उठी-
मुनिपुंगवों की
श्रमणीवृन्द की
श्रद्धालुओं की !

संयमी जीवन में
किये गये
सत्कार्यों की
अभिवन्दना !
ज्ञान-दर्शन-चारित्र
त्रिपथगा को
शतशः वन्दना !

दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति
पर यही
मंगलभावना-
धर्मालोक में,
ज्ञानालोक में,
आत्मालोक में
अहर्निश विचरते रहे
स्वस्थता एवं
दीर्घायु के साथ !

जन-जन की
यही भावनाएं
शुभकामनाएं
अभिव्यंजित हुई है
इस परिच्छेद में !

-भद्रेश जैन

प्रथम खण्ड

वन्दन-अभिनन्दन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप हमारी भुजा हैं

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री पण्डित मुनि श्रीसुमनकुमार जी.म.सा. श्रमणसंघ के एक ज्योतिर्मान नक्षत्र हैं। आप चिन्तनशील महामनीषी हैं, श्रमणसंघ को आप जैसे संतरत्नों पर सात्विक गौरव है, आप द्वारा समय-समय पर जो शासन की प्रभावना की जी रही है वह कालजयी है।

आप उस गुरु के शिष्य हैं जिन्होंने श्रमण-संघ के लिए कितना बलिदान दिया, कितने-कितने कष्ट सहन किये।....आप हमारी भुजा हैं....!

❑ आचार्य देवेन्द्रमुनि

श्रमणसंस्कृति के गौरवशाली संत

परमश्रद्धेय श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्रीवर पूज्य श्री सुमनमुनिजी म.सा. की दीक्षा-स्वर्ण जयंति के पावन पुनीत अवसर पर हार्दिक श्रद्धार्पण-अभिनंदन स्वीकार करें।

श्रमण संस्कृति का आधार है - श्रम, सम और दम। जो साधक अपने श्रम से मन एवं इंद्रियों का निग्रह करता हुआ समता की साधना करता है, वही श्रमण कहलाता है। वही सच्चा पुरुषार्थी है। उसका जीवन तप, त्याग, साधना की ज्योति से प्रकाशमान; स्वपर कल्याण करता हुआ संसार के सभी प्राणियों के लिए मंगलभावना भाता है। कमल की तरह संसार में रहता हुआ भी संसार से ऊपर उठकर सभी को अपनी साधनामय जीवन की सुगंधि प्रदान करता है। पूज्य श्री सुमनमुनिजी म.सा. श्रमण संस्कृति के गौरवशाली उज्ज्वल एवं ओजस्वी संतरत्न हैं। श्रमण संस्कृति, श्रमण-आचार एवं श्रमणव्यवहार का त्रिवेणी संगम आपके जीवन में दृष्टिगोचर होता है। जिस धरा पर भी आपश्री ने विचरण किया है वहाँ यथा नाम तथा गुणसंपन्न व्यक्तित्व की सुरभि प्रवाहित हुई है।

१५ वर्ष की अल्पायु में दीक्षा लेकर पंजाब प्रदेश में तत्कालीन युवाचार्य पंडितरत्न श्री शुक्लचंदजी म.सा. पंडितरत्न श्री महेन्द्रकुमारजी म.सा. के पावन सान्निध्य में रहकर हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत इत्यादि अनेक भाषाओं का गहन अध्ययन करते हुए आगम साहित्य का भी विशेष रूप से अध्ययन किया। आपकी अंतर रुचि का विषय इतिहास रहा है। अतः जैनधर्म के इतिहास का भी आपने सूक्ष्म, तत्त्वस्पर्शी एवं तुलनात्मक अध्ययन किया है। आपका बाह्य व्यक्तित्व-गौरवर्ण, उन्नत भाल, विशालनेत्र एवं सुडौल देहयष्टि है। आप में आंतरिक व्यक्तित्व की छटा, करूणाशीलता सहजता, स्पष्ट वक्ता, सहृदयता है।

आप एक अनुभवी संत पुरुष हैं तथा साहित्यकार, प्रवचनकार, प्रमुख विचारक, एक कुशल नीतिज्ञ होने के साथ-साथ संघ के मार्गदर्शक भी रहे हैं। आपने आज तक पाँच श्रमण सम्मेलन में मुख्य रूप से सक्रिय भाग लेकर श्रमणसंघ की समस्याओं का समाधान किया है। पूना में सन् १९८७ में संपन्न हुए श्रमण महासम्मेलन में आचार्यश्री ने आपश्री को निमंत्रित करते हुए 'शान्तिरक्षक' पद से सुशोभित किया था। उस श्रमण सम्मेलन में मैंने स्वयं देखा, अनुभव किया कि सत्य एवं न्याय के लिए सदैव संघर्ष करते हुए आपने सत्य की विजयश्री दिलवाई है। उस महासम्मेलन का सुचारु रूपेण संचालन आपकी कुशाग्र बुद्धि, समन्वय दृष्टि और महती योग्यता का स्पष्ट उदाहरण है। तत्कालीन श्रमण संघीय विधान-संशोधन, प्रवर्तक एवं उपाचार्य-युवाचार्य पद के विवादास्पद न्याय पक्ष पर अड़िग रहकर जो समाधान दिया वह सभी पर अमिट छाप है।

आपका जीवन नारियल की भाँति बाहर से कठोर अंतर से निर्मल, निर्झरवत् है। धर्मशासन, संघनिष्ठा, आचार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार पालन की दृष्टि से कठोरता भी आवश्यक है। कुंभकार की भाँति बाह्य कठोरता एवं अंतर से प्यार आपश्रीजी का निजीगुण है।

आप प्रकृति से स्पष्ट, निर्भीक, सिद्धांतवादी हैं। अतिशय प्रशंसा से दूर, गहन गंभीर आगमज्ञान से युक्त, सादा जीवन और आचार-विचार का पालन आपके जीवन की साधना रही है।

मुझ पर आपश्री की सदैव कृपादृष्टि रही है। दीक्षा से पूर्व भी मुझे आपके सान्निध्य में रहने का अवसर मिला। मालेरकोटला, लुधियाना, देहली, पूना और हैदराबाद आदि क्षेत्रों में आपके सान्निध्य में रहने का अवसर मिला। बहुत सी गंभीर गहन आगम युक्त ज्ञान की धारा में प्रवाहित होने का शुभ अवसर मिला। श्री शिरीषमुनिजी की दीक्षा आज्ञा का कार्य बहुत ही सुंदर ढंग से न्याय-नीति पक्ष का संबल लेते हुए आपश्रीजी ने संपूर्ण किया। मुझे आज भी आपकी कृपादृष्टि स्मरण हो आती है। जब भी आपके पास बैठने का अवसर मिलता है तो प्रत्येक घटना चाहे वह आज से पचास वर्ष पहले की ही क्यों न हो आप इस प्रकार वर्णन करते है कि वह घटना अभी घट रही है। उस घटना के सभी दृश्य चलचित्र की भाँति हृदयपटल पर छा जाते हैं। श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाता है।

आपकी प्रज्ञा, प्रतिभा, गहन तर्कणाशक्ति, ओजस्वी विचारधारा, शास्त्र सम्मत सैद्धांतिक दृष्टिकोण जैनधर्म के इतिहास की अत्यंत सूक्ष्म जानकारी इत्यादि आपके जीवन के मौलिक सद्गुण हैं। श्रमणसंघ की शक्ति संगठन एकता पर आपका अपूर्व अद्वितीय योगदान रहा है।

आपश्री शतायु होकर जिनशासन की प्रभावना करते रहें, यह मेरी हार्दिक मंगलकामना है।

❑ आचार्य डॉ. शिवमुनि

वंदन - अभिनन्दन

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री-उपप्रवर्तक प्रखरवक्ता श्री सुमनमुनिजी म.सा. की जैन भागवती साधना के पचास वर्ष पूर्ण होने पर हार्दिक मंगलकामनायें है।

इस पचास वर्ष की साधना में आपने जीवन की महानतम ऊँचाइयों को छुआ है, संघ की भरपूर सेवा की है ऐसे सन्त का सम्मान करना समसामयिक आवश्यकता है।

दीक्षा जयंती के उपलक्ष्य में हमारी हार्दिक हार्दिक मंगल कामनायें हैं, सद्भावनायें हैं। आप दीर्घायु हो। आपकी संयम-यात्रा संघ के लिए मार्गदर्शक बनी रहे। आपका मंगलमय आशीर्वाद संघ के लिए वरदान रूप सिद्ध हो ऐसी सद्भावनायें हैं।

आपका बहु आयामी जीवन हर्षानुभूति का कारण है। सभी दृष्टियों से विकासोन्मुख व्यक्तित्व ही आपके जीवन की विशेषता है, आपके लिए शुभकामनाएँ तथा वंदन अभिनंदन।

❑ उपाध्याय विशालमुनि

शुभाशीर्वचनम्

आपकी यशोगाथाएँ सुन कर मन आनन्दित हो उठता है, हमें अपने अजीज़ साथी की कार्यक्षमता एवं सूझ-बूझ पर स्वाभिमान है।

"इसी तरह ही सुमन जी, बढ़े मान-सम्मान!
दिनकर सम चमको सदा, कहता है मुनिज्ञान!!"

❑ **ज्ञानमुनि**, बहुश्रुत, सलाहकार (पंजाब)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरा हार्दिक आशीष

स्थविर, कर्मठ मुनिराज श्री सुमनकुमार जी महाराज पंजाब श्रमण परम्परा के एक तेजस्वी, ओजस्वी और वर्चस्वी संत हैं। परम श्रद्धेय, पंजाब श्रमणसंघ की शान, पूज्यवर्य पण्डित रत्न प्रर्वतक श्री शुक्लचन्द जी महाराज तथा अपने श्रद्धेय गुरुदेव पण्डित रत्न श्री महेन्द्र कुमारजी महाराज के जीवनादर्शों को आत्मसात् करके आप जैन-जैनेतर जगत को जिनवाणी का अमृत पान करा रहे हैं। वैसे तो आपकी विहारस्थली प्रमुखतः पंजाब ही रही है परन्तु पिछले तेरह वर्षो से आप दक्षिण भारत में विचरणशील हैं। मुझे सात्विक गर्व अनुभव हो रहा है कि आपने सुदूर दक्षिण भारत के कोने कोने में न केवल पंजाब का नाम रोशन किया है अपितु उसके गौरव में और अभिवृद्धि की है।

आप प्रारंभ से ही एक निर्भिक मुनि रहे हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में पराजित होना आपने नहीं सीखा। आप अपनी धुन के पक्के फकीर हैं। जो ठान लेते हैं उसे पूर्ण करके ही विश्राम लेते हैं।

पूना मुनि सम्मेलन में आपको सर्वसम्मति से संत-संसद का सभापति (शान्तिरक्षक) चुना गया था। बाद में आपको श्रमणसंघीय सलाहकार और श्रमणसंघीय मंत्री नियुक्त किया गया। आप अपने मुनि परिवार के उप-प्रवर्तक भी हैं।

ऐतिहासिक शोध आपका रुचिपूर्ण विषय रहा है। पंजाब की श्रमण परंपरा व श्रमणी परंपरा के इतिहास पर आपने पर्याप्त शोध किया है। **"पंजाब श्रमणसंघ गौरव"** नामक ग्रन्थ जिसमें उक्त शोध पूर्ण इतिहास प्रस्तुत किया गया है तथा आचार्य श्री अमरसिंह जी म.का चरित्रांकन किया गया है आपकी एक कालजयी कृति है।

अन्त में मैं कहना चाहूंगा कि आप पंजाब मुनि परम्परा के ही नहीं अपितु सकल स्थानकवासी मुनि-परम्परा के एक महान मुनिराज हैं। जिनशासन के श्रृंगार हैं। आपके पचासवें - दीक्षा वर्ष में प्रवेश पर मैं समग्र पंजाब चतुर्विध संघ की ओर से मंगलकामना करता हूँ कि आप अपने बहुआयामी व्यक्तित्व से जैन-जैनेतर जगत को सुदीर्घ काल तक उपकृत करते रहें। मेरा हार्दिक आशीष, आपके साथ हैं।

❑ प्रवर्तक **मुनि पद्मचन्द्र "भंडारी"**
(उत्तर भारतीय प्रवर्तक)

गौरवास्पदमदीयम्

"दक्षिण दाक्षिण्य समन्वितेषु **दक्षिण** प्रान्तेषु शासनस्यास्य सुललितं सुखचलितं जिन धर्म सम्वलितं प्रचारं-प्रसारं सम्यक् रूपेण कुर्वन्तीति"..... गौरवास्पदमदीयम्!

❑ **रजत मुनि**
(श्रमणसंघ के प्रर्वतक लोकमान्य संत
श्री रूपचन्द जी म. 'रजत')

मंगल कामना

पंजाब प्रवर्तक पण्डितरत्न श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के पौत्र शिष्य, श्रमण संघीय सलाहकार, मंत्री, मुनि श्री सुमन कुमार जी महाराज के पचासवें दीक्षा वर्ष के उपलक्ष्य में एक बृहद् अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है – यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

मुझे विश्वास है कि इस अभिनन्दन ग्रन्थ में मुनि श्री जी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के अतिरिक्त अन्य भी बहुत कुछ ठोस सामग्री होगी जो समाज के लिए एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मील का पत्थर सिद्ध होगी।

अन्त में मैं अपने हृदय की अनन्त-अनन्त शुभकामनाओं सहित मुनि श्री जी के सुदीर्घ संयमीय जीवन की मंगल कामना करता हूँ।

❑ उपप्रवर्तक मुनि हेमचन्द्र
दिल्ली

स्नेह सुमनाञ्जलि

विद्वद्वर्य पं. रत्न श्र.सं. मंत्री श्री सुमनमुनि जी म. सादर सुखशान्ति पृच्छा!

पत्र मिला, पुस्तिका भी! सुमन-प्रव्रज्या में आपके जीवन के चलचित्र दृष्टिगोचर हुए! विगत स्मृतियाँ उद्घाटित होने लगी।.....

प्रव्रज्या की इस स्वर्णिम वेला पर मेरी एवं संत मंडली की ओर से स्नेह सुमनाञ्जलि स्वीकार करें। चिरकाल तक आप भगवद् वाणी का प्रकाश जन-जन के मन में प्रकाशित करें।

२२ अक्टूबर १९९९ के दिन आप अपने यशस्वी संयमी जीवन के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। मैं हार्दिक कामना करता हूँ कि आपका संयम स्वर्णमय चमकता रहे। आप चिरायु हों। स्वस्थ और सानन्द रहकर समाज की सेवा करते रहें। जन-जन को धर्मालोक से आलोकित करते रहें। इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ –

❑ रतन मुनि
(आत्म कुल कमल)

स्पष्टवक्ता एवं अनुशासन प्रिय

पंडितमुनि, इतिहास वेत्ता, श्रमणसंघ के मंत्री, मधुर-वक्ता श्री सुमनमुनिजी म.सा. के अभिवंदन स्वरूप अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है - प्रसन्नता हुई।

मुनि श्री के प्रति हमारी आत्मीयता है। वे स्पष्टवक्ता एवं अनुशासन प्रिय हैं। संयमाराधना के साथ-साथ वीतराग वाणी के प्रचारक भी हैं। उनकी संयम साधना का हम हार्दिक अभिनंदन करते हैं और भी शुभेच्छा व्यक्त करते हैं कि वे दीर्घायु रहे, स्वस्थ प्रसन्न रहे। जिनशासन की खूब प्रभावना करते हुए संयमाराधना में रत रहे।

❑ **मोहनमुनि**
श्रमणसंघीय वरिष्ठसलाहकार

महापुरुष

साधारण व्यक्ति युग के अनुसार चलता है परन्तु महापुरुष युग के अनुसार नहीं चलता अपितु युग उसके अनुसार चलता है। वह अपने जीवन्त जीवनादर्शों से युग की धारा को मोड़ देता है। वह युग के नाम से नहीं अपितु युग उसके नाम से जाना जाता है।

हमारे श्रद्धेय परम वंदनीय इतिहास केसरी, श्रमणसंघीय सलाहकार एवं मंत्री श्री सुमनमुनिजी महाराज साधारण व्यक्ति नहीं है। वे महापुरुष हैं। उन्होंने अपने जीवन्त जीवन आदर्शों और क्रान्तिकारी विचारों से समाज के एक बड़े वर्ग को प्रभावित किया है। आपके मौलिक और तर्क संगत विचार सुनकर श्रोता आत्यन्तिक रूप से प्रभावित होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी जीवन के उत्थान में आपकी वाणी युगवाणी का रूप लेकर मुखर हुई हैं। आपके नवनीत सम मानस में नारी-पीड़ा की अनुभूति चरम सीमा पर है। यह कह दूं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी –

गुरुदेव आपकी वाणी से
अवला को संवल मिला है।
पूजा के मन्दिर की थाली बन
एक चमत्कृत रूप खिला है।

इसका ज्वलन्त प्रमाण आपकी साहसिक और श्रमसाध्य खोज "पंजाब श्रमणी इतिहास" है।

गुरुदेव! आपकी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती पर कोटिशः वन्दन एवं शुभकामनाएं! आप चिरायु हों। शतायु हों। जिनशासन को दिपाते रहें। विभ्रमितों का पथ-दर्शन करते रहें.....इन्हीं शुभाशाओं के साथ पुनः वन्दन।

❑ **साध्वी मोहनमाला** (तपाचार्या)
दिल्ली

मेरी आस्था के देवता

राजस्थान की धरती ने असंख्य शूरमाओं को जन्म दिया है। शूरमा वह ही नहीं होता जो सिर पर कफन वान्ध कर प्राणों की ममता त्यागकर युद्ध भूमि में दुश्मन के दांत खट्टे करता है, शूरमा वह भी होता है जो संयम-संग्राम में आत्मशत्रुओं को रौंद देता है। भारतीय संस्कृति में दूसरे प्रकार के शूरमाओं को प्रथम प्रकार के शूरमाओं पर वरीयता दी है। आगम कहते है-

"दस लाख सुभटों को जीतने वाले वीर से भी बड़ा वीर वह होता है जो अपने को जीत लेता है। अपने मन को जीत लेता है।"

मेरे गुरुदेव इतिहास मार्तण्ड, श्रमणसंघीय सलाहकार श्री सुमनमुनि जी महाराज भी राजस्थान की धरती पर जन्म लेने वाले एक वीर हैं....महा वीर हैं। आप आत्मसाधना के महासंग्राम-पथ पर पिछले पचास वर्षों से अविश्रान्त, अक्लान्त बढ़ रहे हैं। आपकी शौर्य साधना को मेरे लक्ष-लक्ष प्रणाम!

गुरुदेव का मुझ पर महान् उपकार है। मुझे याद आ रहा है वह दिन....अप्रैल १९७४ का समय जब मेरी दीक्षा तिथि निश्चित हो चुकी थी पर मेरे माता-पिता दीक्षा की अनुमति न देने के लिए कटिबद्ध हो गए थे। चमत्कार कहूं, वचन सिद्धि कहूँ या फिर संयम का अचूक प्रभाव कहूं। गुरुदेव ने कैसे और किस ढंग से मेरे बड़े भाई को समझाया कि सब शान्त हो गए और मुझे सहर्ष दीक्षा की अनुमति मिल गई। नियत दिन ही दीक्षा हुई। गुरुदेव ने ही अपने मुखारविन्द से मुझे दीक्षा पाठ पढ़ाया।

गुरुदेव के इस परम उपकार को मैं जन्म-जन्मान्तरों में भी विस्मृत नहीं कर पाऊंगी।

मेरी आस्था के देवता के पचासवें दीक्षावर्ष पर मेरे अनन्त-अनन्त अभिनन्दन! वन्दन!

❑ **डॉ. साध्वी पुनीतज्योति**
(दिल्ली)

विराट् व्यक्तित्व के धनी

व्यक्ति की मौलिकता व्यक्तित्व में निहित होती है। व्यक्ति की बाह्य संरचना में व्यक्तित्व का संपूर्ण परिचय कभी नहीं मिला करता, वह एक पक्ष हो सकता है किन्तु व्यक्तित्व का वास्तविक निखार व्यक्ति की आन्तरिकता में ही पाया जाता है।"

हमारे श्रमणसंघ के मंत्री प्रवर श्री सुमनकुमार मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जी भी संत के रूप में व्यक्ति हैं। बाह्य दृष्टि से एक सामान्य मुनि दिखाई देंगे किन्तु यदि उनका वास्तविक परिचय पाना है तो उनकी आन्तरिकता में जाइए, उनसे ज्ञान चर्चा करके, उनका प्रवचन श्रवण करके, साहित्य पढ़कर उन्हें देखिए-समझिए। साधारण देह छवि के पीछे कितना विराट् और महान व्यक्त्वि छिपा हुआ है, आप उसका परिचय प्राप्त कर धन्य हो जायेंगे।

निश्चित ही व्यक्ति कैसा भी क्यों न हो बाह्य परिवेश में सीमित ही हुआ करता है किन्तु उसका आन्तरिक व्यक्तित्व कितना विराट और विशाल हो सकता है, इसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता।

मुनि सुमनकुमार जी सीमित होकर भी विराट् हैं, विशाल अन्तर से, भावनाओं से, ज्ञान से और कर्म से। यह विराटता, यह कर्मठता उन्हें विरासत में नहीं मिली है, यह इनकी साधना का उपार्जन है।

राजस्थान जैसे आनबान के पक्के प्रान्त के एक चौधरी परिवार में जन्में श्री सुमनकुमार जी ने बचपन में ही मुनि जीवन पा लिया। यह उनके पूज्य गुरुवर श्री महेन्द्र कुमार जी म. की पुण्य-श्लोकी कृपा का ही प्रसाद है जिसे पाकर ये धन्य-धन्य हो उठे। अब तक पचास वर्ष संयम साधना में लगा दिए। पचास वर्ष का समय छोटा नहीं होता। कोई पीछे मुड़कर अपने पचास वर्षों पर दृष्टिपात करे तो हजारों मील दूर जैसा लगेगा। इस लम्बे संयमी जीवन में समय की बहती धारा के साथ अनेकों खिले खिलाए सुगन्धित फूल भी आए होंगे तो कठोर कंकड़ पत्थर के ढ़ेर भी आते रहे होंगे। यह धारा कभी समतल पर बही होगी, तो कहीं घाटियों में भी बही होंगी किन्तु सभी को मुस्कुराते हुए पार किया मुनिजी ने। कंकड़ पत्थर और कांटों का भी स्वागत कर उन्हें चलने दिया होगा तभी तो संयमी जीवन की इस बहुमूल्य धरोहर को पिछले पचास वर्षों से निर्बाध सुरक्षित रख पाए हैं।

गुरुअनुशासन, शास्त्रीय मर्यादा, संघीय इच्छा सभी को व्यवस्थित चरितार्थ करते हुए जीवन को आदर्श की ऊँचाईयों की तरफ बढ़ाते रहे, बुलन्दियों को छूते रहे तो एक सफल जीवन की साधना बनी।

संघ आज आपका अभिनन्दन करने को प्रस्तुत है तो अहेतुक नहीं है। संयमी जीवन की परिपक्वता में संघ का यह अभिनन्दन जिन शासन के लिए ही गौरव का प्रसंग है।

मुनि सुमन कुमार जी को मैं ठेठ बचपन से जानता हूँ। सादड़ी सम्मेलन में हम दोनों लघु वय में दीक्षित संत थे। हम सभी के स्नेह पात्र थे। प्रायः साथ-साथ रहते।

उसके बाद और भी सम्मेलनों में हम मिलते रहे, श्रमण संघ का कार्य मिलकर करते रहे। आज भी हमारा यही क्रम विद्यमान है।

हम युवा मुनियों में मुनि सुमनकुमार जी की एक अलग ही छवि रही, स्पष्ट वक्ता की। यह छवि आज भी वैसी ही विद्यमान है।

बड़े सन्तों को जो बात हम संकोचवश नहीं कह पाते, मुनि सुमन कुमार दृढ़ता के साथ स्पष्ट रख देते थे। यह इनकी विशेषता थी।

मुनिजी की इस स्पष्टवादिता से कोई यह सोचे कि मुनि जी कुछ तेज हैं तो सोच सकता है, कोई आपत्ति नहीं। स्टोव और बल्ब में भी तेज होता है। वह तेज पकाने और प्रकाश देने का काम करता है। अतः उपयोगी है। मुनि श्री का तेज भी एक उपयोगी तेज है जो संघ व समाज के लिए कहीं न कहीं हितावह होता है।

मुनि श्री अभी हमारे संघ में मंत्री पद पर हैं, सुयोग्यता के साथ अपना दायित्व निभा रहे हैं। मुनि श्री अच्छे विद्वान, वक्ता और लेखक हैं।

जीवन में सतत् प्रयत्न कर जिस तरह इन्होंने अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहुमुखी व्यक्तित्व का निर्माण किया है वह सभी के लिए अनुकरणीय है।

संयमी जीवन के पचासवें वर्ष/स्वर्ण जयन्ति उत्सव के अवसर पर मैं इनके सुदीर्घ संयमी जीवन की कामना करता हुआ भविष्य और सुखद उल्लास पूर्ण होगा, ऐसी आशा करता हूँ।

❑ सौभाग्य मुनि 'कुमुद'
श्रमणसंघीय महामंत्री

गुणों के धारक महापुरुष

साहित्य के विविध विधाओं में जीवन चरित्र भी एक उत्तम विधा है। सृष्टि के प्रारम्भ काल से ही जीवन चरित्र लेखन की परम्परा प्रचलित रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह विधा अतीत से शुरु हुई और पवित्र गंगा की जलधारा की भाँति निर्वाध रूप से भविष्य में भी गतिशील रहेगी।

वस्तुतः मानव जीवन के निर्माण में जीवन चरित्र से वढ़कर कोई दूसरा ऐसा सशक्त आलम्बन नहीं है। विश्व का प्रत्येक महापुरुष अपनी शक्तियों को जागृत कर आत्म-बल और आत्म-विश्वास उत्पन्न करता है। महापुरुषों के उत्तम त्याग, तप, क्षमा, वैराग्यादि गुणों को देखकर मानव अपने जीवन में आने वाली विघ्न वाधाओं को साहस पूर्वक पार करके अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। ऐसे ही महान संत हैं – श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनमुनि जी म.। पूज्य श्री सुमन मुनि जी महाराज का जीवन तप, त्याग, अध्यात्म विद्या, ज्ञान, ध्यान आदि से ओत प्रोत है। आप ५० वर्षों से संयम साधना करते हुए निरन्तर स्वयं के कल्याण में तत्पर हैं। इस अर्द्ध शताब्दि के संयमी जीवन में आपने समाज सुधार के अनेक उपक्रम किए हैं। कई संस्थाओं का नव निर्माण कराया तो कइयों को नव जीवन प्रदान किया है – जीर्णोद्धार करा कर। आपने साहित्य लेखन में भी पूर्ण कार्य किया है। इतिहास में आपकी विशेष रुचि रही है। इसके अतिरिक्त सैद्धान्तिक, जीवन परक एवं प्रवचन साहित्य भी आपका प्रकाशित हुआ है। समय समय पर आपने संघ को कुशल नेतृत्व भी प्रदान किया है। पूज्य गुरुदेव उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक भण्डारी श्री पद्म चंदजी म. ने आपकी इसी नेतृत्व क्षमता को परखकर सन् १९८७ के पूना साधु सम्मेलन में आपको अपना प्रतिनिधि बनाया था तो वहाँ पर आचार्य प्रवर ने आपको शान्तिरक्षक नियुक्त किया। आपकी इसी नेतृत्व कुशलता के कारण आप जहाँ भी जाते हैं वहीं अपनी धाक जमा लेते हैं। आपने उत्तर से लेकर दक्षिण तक की लम्बी विहार यात्रा की है। आपके इस गौरव पूर्ण संयमी जीवन से उपकृत सव आपका अभिनन्दन कर भगवान की इस महान वाणी **"कंखे गुणे जाव सरीर भेउ"** को चरितार्थ कर रहा है।

यह आपका अभिनन्दन नहीं अपितु उन महान गुणों का अभिनन्दन है जिनके लिए महाभारत के उल्लेख के अनुसार महाराजा परीक्षित ने कहा था - **"न हि तृप्यामि पूर्वेषाम् शृण्वांश्चरितं महत्"** अर्थात् महापुरुषों के महान चारित्र को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती बल्कि इच्छा रहती है कि इन्हें निरन्तर सुनता रहूँ। वस्तुतः ऐसे गुणों के धारक महान् सन्त पुरुष विरले ही होते हैं। ऐसे महानपुरुषों के लिए ही किसी कवि ने कहा था –

अगर ये सत्य संयम का हृदय में बीज न बोते,
तो संसार-सागर में हम खाते सभी गोते।
न पावन आत्मा होती, न जीवित मंत्र ही होते,
कभी का देश मिट जाता जो ऐसे सन्त न होते।।

प्रकाशमान अभिनन्दन ग्रन्थ ऐसे ही उज्ज्वल समुज्जवल गुणों के आधारभूत महान सन्त पूज्य श्री सुमन मुनि जी महाराज का अभिनन्दन ही नहीं अपितु इतिहास और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृति की धरोहर का पुनर्मूल्यांकन है। पूज्य महाराज श्री के दीक्षा जयन्ति के शुभ अवसर पर उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए हार्दिक गौरव का अनुभव हो रहा है।

❑ युवाप्रज्ञ डॉ. सुव्रत मुनि
एम.ए.पी-एच.डी

बहुमुखी व्यक्तित्व

जीवन की क्षणभंगुरता तथा भौतिक सुखों की निस्सारता को भलीभाँति समझकर अनेक भव्य जीवों ने समय समय पर संसार का परित्याग करके संयम पथ को अंगीकार किया है। संयम मार्ग के पथिक बनकर स्व आत्मकल्याण के साथ साथ जन कल्याण का कार्य करनेवाले संत जन ही पूजनीय, आदरणीय तथा अनुकरणीय होते हैं। जैन श्रमण परम्परा में अनेक महान् संत हुए हैं जिन्होंने अपने बहुमुखी व्यक्तित्व तथा कृतित्व के द्वारा अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाकर समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमारजी म.सा. भी एक ऐसे ही संतमना है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व द्वारा समाज को प्रेरित किया है उसे मार्गदर्शन प्रदान किया है।

मात्र पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में २० अक्टू. १९५० को पं. श्री महेन्द्रकुमारजी म.सा. के श्रीचरणों में दीक्षित होकर आपने सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर जो संयम तथा साहित्य की साधना की है, वह आज मुमुक्षु मानवों के लिए प्रेरक व अनुकरणीय बन गई है। आपकी सरलता निर्भीकता, स्पष्टवादिता, सिद्धांतों की दृढ़ता तथा समन्वय वादी विचारों की प्रमुखता ने आपको एक बहुमुखी व्यक्तित्व का धनी बना दिया है। लेखन, सम्पादन तथा प्रवचन क्षेत्र में भी आपकी विशिष्ट शैली अपनी अलग ही पहचान रखती है। आपके इसी बहुआयामी व्यक्तित्व तथा कृतित्व से प्रभावित होकर श्रमणसंघ ने आपको श्रमणसंघीय सलाहकार, मंत्री के पद पर सुशोभित किया है। समय-समय पर समाज द्वारा आपको निर्भीक वक्ता, इतिहास केसरी, प्रवचन दिवाकर, श्रमणसंघीय सलाहकार, उपप्रर्वतक, मंत्री आदि उपाधियों से अलंकृत किया गया है जो कि आपकी बहुमुखी प्रतिभा के जीवन्त द्योतक है।

आपके दीक्षित जीवन के पचास वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं। इस अवसर पर 'दीक्षा स्वर्ण जयंति ग्रंथ' के प्रकाशन का कार्य वास्तव में आपकी प्रतिभा का सही सम्मान है। आप दीर्घायु होकर संघ-समाज का कुशलमार्ग-दर्शन करते रहें तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप की अभिवृद्धि करते रहें। इस अवसर पर यही हार्दिक शुभकामना है।

सरल निर्भीक लेखक आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी है,
प्रवचन प्रभाकर श्रमणसंघीय सलाहकार आप बड़े-गुणी है।
आया अवसर शुभ दीक्षा स्वर्ण जयंति का 'प्रिय शिष्य'
मुनि सुमन रहो रत संयम-साहित्य-साधना में शुभ भाव यही है।

❑ उदयमुनि (प्रियशिष्य) जैनसिद्धांताचार्य'
रतलाम (म.प्र.)

शांतिदूत

श्रमणसंघीय मंत्री प्रवर, स्नेहमूर्ति, इतिहासकार पूज्यप्रवर श्री सुमनमुनिजी म.सा. के प्रथम दर्शन धूलिया (महाराष्ट्र) में हुए थे। उनके बाह्य व्यक्तित्व एवं आभ्यंतर वैचारिक व्यक्तित्व से मैं बहुत प्रभावित हुआ। फिर पूना (महा.) में आयोजित श्रमणसंघीय संत-सति मंडल के सम्मेलन के पुनीत अवसर पर भी दर्शन का लाभ हुआ। वहाँ पर आपने मुझे बहुत स्नेह दिया। दैनिक सम्मेलन की कार्यवाही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पश्चात् रात्रि में आपश्री के पास बैठकर बहुत कुछ जानने समझने का अवसर मिला। आपकी वार्तालाप शैली, प्रवचन शैली एवं सम्मेलन के समय शांतिदूत की भूमिका का निर्वाहन करते समय समस्याओं के समाधान की शैली से मैं बहुत प्रभावित हुआ। श्रमणसंघ के अनेक महापुरुषों के बीच आपका भी अपना एक निराला ही वर्चस्व है।

दीक्षा स्वर्णजयंति के पावन प्रसंग पर मैं भी आपका हार्दिक अभिनंदन करते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। आप दीर्घायु हो, स्वस्थ-प्रसन्नता के बीच जिनशासन की अजेय वैजयंती-पताका लहराते रहें, यही सद्भावना !

मुनि प्रकाशचंद्र 'निर्भय' (एम.ए.)

आन्तरिक शुभाशंषा

"**दीक्षा** का शब्द बड़ा प्यारा शब्द है। दीक्षा का शब्द जब भी कर्णगोचर होता है तो मन प्रफुल्लित हो उठता है। जब वही शब्द साकार रूप में, प्रयोगरूप में अभिव्यक्त होता है तो उसके आनंद की बात तो शब्दातीत हो जाती है। उसका आनंद अनुभूतिमूलक ही होता है।"

"दीक्षा वेश-भूषा का परिवर्तन मात्र ही नहीं है। एक ही जिंदगी में वेशभूषा तो अनेकों बार बदल दी जाती है। इतने मात्र से दीक्षा का प्राणतत्त्व आत्मा में नहीं उतर पाता। उसका भावार्थ जीवन में घटित नहीं हो पाता। जिस धरती पर खड़े-बैठे वहीं के वहीं वैसे के वैसे ही रह गये। जीवन में किसी तरह का नया परिवर्तन नहीं आया। वही पुरानी मोह-ममता की वृत्तियां क्रीड़ाएँ करती रहीं। कषायानुरंजित भावनाएं चलती रहीं, पलती रही और फलती रहीं। ऐसी दीक्षा से आत्मोत्कर्ष का कोई संबंध स्थापित नहीं हो पाता। आत्मा आध्यात्मिकता से रीता का रीता ही रह जाता है।"

"वास्तव में दीक्षा का स्वरूप है/मिथ्यात्व का मिटना, सम्यक्त्व का जगना/अज्ञान का खोना, ज्ञान का पाना / असंयम से अलग, संयम से संलग्न/ममता से मुड़ना, समता से जुड़ना/स्व में बसना, पर से हटना ही दीक्षा का चरितार्थ होना है।

ऐसी दीक्षा दिन, महीना या वर्ष की ही नहीं किंतु एक घंटे के लिए भी आ जाय तो जानो, समझो, जीवन में एक मूल्यवान् उपलब्धि है।"

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्रीप्रवर श्री सुमनमुनिजी अपने संयमी जीवन के पचास वसंत पूरे कर रहे हैं। यह अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण बात है। जीवन को गौरवान्वित करने का सुष्ठु योग है। श्रमणसंघ में आप अनेक पदों से विभूषित हैं। साहित्य क्षेत्र में भी आपका काफी अच्छा योगदान रहा है। कई सैद्धान्तिक पुस्तकों के साथ साथ प्रवचन-ग्रंथ, कई महानों की जीवन गाथाएँ तथा इतिहास के संबंध में भी आपकी लेखनी चली है। जन सामान्य में प्रचलित एवं व्याप्त व्यसनों व रूढ़ियों आदि बुराईयों से मुक्त करने में भी आप तत्पर रहे हैं। इस प्रकार अपनी साधना के साथ साथ अन्य लोगों को भी पापों से बचाने में निमित रहे हैं।

जैन समाज के कई लोग पचास वर्ष के उपलक्ष्य में अथवा किसी व्यक्ति मुनिवर, संस्था, पत्रिका आदि के प्रसंगो को लेकर स्वर्ण जयंतियों का आयोजन करते रहे हैं। त्यागी व संयमी आत्माओं की स्वर्ण-जयंती का आयोजन अपने आप में विशेष महत्त्वपूर्ण है। यह आयोजन त्याग-संयम का प्रतीक बने। अन्य लोगों को भी कुछ जानने सीखने व समझने की प्रेरणा मिले। सामाजिक व्यवहारिक शुभ प्रवृत्तियों के साथ-साथ समाज और राष्ट्र का जीवन आध्यात्मिकता की ओर गतिशील बने। यह आयोजन की सफलता में चार चांद लगाने जैसा उपक्रम होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंत्री प्रवर की दीक्षा स्वर्ण जयंती के स्वर्णिम-शुभ अवसर पर हमारी ओर से हार्दिक शुभाशंषा व कोटि-कोटि बधाइयाँ।

❑ विनोदमुनि
अहमदनगर (महाराष्ट्र)

मेरी अनन्त आस्था के केन्द्र पूज्य गुरुदेव

गुजरने को गुजर जाती हैं, उमरें शादमानी में।
मगर ये मौके कम, मिला करते हैं जिन्दगानी में।।

संसार बंधन से छूटने के लिए प्रभु ने हमें साधना का मार्ग प्रदान किया। यह साधना-मार्ग प्रभु आदिनाथ से प्रभु महावीर तक और श्रमण महावीर से आज तक चला आ रहा है।

साधना एक ऐसी शक्ति है जिसे पाकर कर्म निर्जरा करता हुआ संसार बंधन से सदा-सदा के लिए प्राणी मुक्त हो जाता है।

जैन जगत् में अनेकों महान् विभूतियाँ उत्पन्न हुई हैं जिन्होंने इस साधना मार्ग पर चलते हुए प्रभु के उपदेश को घर घर, जन-जन तक फैलाने का प्रयास किया है।

इसी कड़ी में हमारे पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी का नाम भी आता है। आचारांग सूत्र में श्रमणों के आचार का प्रतिपादन है। हमें उस आचार को जीवन में लाना है। यह आचार साधु के लिए ही नहीं अपितु श्रावकों के लिए भी आवश्यक है। यही कारण है कि पूज्य गुरुदेव अपने प्रवचनों में आचार के परिपालन पर बहुत जोर देते हैं। आज हमारा आचार, चरित्र, आहार विकृत हो रहा है। मन मस्तिष्क के विचार भी असंतुलित हो रहे हैं ऐसी स्थिति में जन-जन को सम्यक् पथ प्रदर्शन में पूज्य गुरुदेवश्री जी ने अहं भूमिका निभाई है।

गुरुदेव श्री का जन्म राजस्थान प्रांत के बीकानेर जिला पाँचूं ग्राम में हुआ। किसे पता था कि इस छोटे से गांव की मिट्टी में खेलनेवाला यह बालक बड़ा होकर महान् बनेगा। एक असहाय बालक ! माता पिता का साया भी जिस पर नहीं है वह जैन धर्म की ज्ञान गंगा को प्रवाहित करेगा? कहा है -

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"

यह उनकी पूर्व जन्म की साधना ही थी कि इस जन्म में उन्हें साधना पथ पर ले आई। आप श्री ने साढ़े चौदह वर्ष की अल्पायु में ही अम्बाला के निकट साढ़ौरा ग्राम में जैन भागवती दीक्षा ग्रहण की।

जैसे स्वाति नक्षत्र की बूंद सीप में पड़कर मोती बन जाती है इसी प्रकार आपश्री का जीवन भी महापुरुषों के ज्ञान रूपी समुद्र की सीप में पड़कर आज पूरे भारत में मोती सा उद्दीप्त हुआ है। और जन-जन को आलोकित कर रहा है। आपका गहन अध्ययन आज सबका मार्ग दर्शक बन गया है। ज्ञानाराधना, श्रुत-सेवा, प्रवचन आदि के साथ ही आप में सेवा का गुण भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। आपने संघों की एवं महान सन्तों की अत्यधिक सेवा की है। आपका कथन है कि हमें सेवा के लिए ही जीवन मिला है। हमें धर्म की, समाज की, साधु सन्तों की सेवा करनी ही चाहिए। सेवा का फल कभी निष्फल नहीं जाता है।

पूज्य गुरुदेव अनेक गुणों के सागर हैं। ऐसे महान गुरु के गुणों का वर्णन करना मेरे सामर्थ्य की बात नहीं है। संत कबीरदास जी ने ठीक ही कहा है –

"सात समुंद की मसि करूं, लेखनी सब वनराय।
धरती को कागद करूँ, गुरुगुण लिखा न जाय।।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु के गुणों को उद्घाटित करने में शिष्य भला समर्थ हो सकता है? मैं तो अल्पज्ञ ही हूँ। गुरु गुण अनंत हैं। मैं चाहते हुए भी गुरु ऋण से उऋण नहीं हो सकता। गुरुदेव का हमारे जीवन पर महान उपकार है। माता पिता ने तो जन्म ही दिया है परन्तु गुरुदेव ने जीवन को श्रेयस्कर बनने का मार्ग प्रदान किया है। जीवन जीने की कला सिखाई है। मुझे ज्ञान दृष्टि प्रदान करने वाले परमोपकारी गुरुदेव ही हैं। गुरु हमारी असद्प्रवृत्ति को सद्प्रवृत्ति में परिवर्तित करते हैं।

हमारा जीवन जो भौतिकता की चकाचौंध से दिग्भ्रान्त है उसे दूर करने में गुरुदेव ही समर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेव श्री साहित्यसेवी भी हैं। केवल कथा कहानी ही नहीं अपितु आपकी पुस्तकें तत्त्व सामग्री से युक्त हैं।

जब भी कोई व्यक्ति किसी समस्या को लेकर गुरुदेव श्री के चरणों में आता है। इनका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं हो तब भी समाज के लिए, धर्म के लिए सदैव कार्यरत रहते हैं। गुरुदेव कहते हैं- "व्यक्ति कितनी आशाएँ लेकर आता है। उनकी जिज्ञासाओं का समाधान अगर हम नहीं करें तो उनके आगमन का प्रयोजन ही क्या है?"

वस्तुतः साधु का जीवन ऐसा ही होना चाहिए। आपसे समाधान पाने हेतु श्रावक गण रात्रि को १०-११ बजे तक भी उपस्थित रहते हैं। आपको दिन भर तनिक भी विश्राम का समय नहीं मिलता है। आप सतत् कर्मशील रहते हैं। आप कभी गुरुदेव के पास आएँ आप उन्हें खाली बैठे नहीं देखेंगे। इस उम्र और रुग्णावस्था में भी आपमें कितनी कर्मठता है।

आचार्य श्री आत्माराम जी म.कहा करते थे, साधु में चार गुण होने चाहिए – १. साधु विद्वान होना चाहिए २. साधु व्याख्यानी होना चाहिए ३. साधु तपस्वी होना चाहिए और साधु सेवाभावी होना चाहिए।

मैंने प्रत्यक्षतः देखा है – मैं इनका शिष्य हूँ लेकिन आप कभी मेरी सेवा करने से भी पीछे नहीं हटते। रूग्णावस्था में मुझे आहार, पानी, दवाई आदि लाकर देते हैं और मेरे वस्त्रों का भी प्रक्षालन कर देते हैं। आप कभी भी छोटे या बड़े सन्तों की सेवा से हिचकिचाते नहीं।

आज हम गुरुदेव का गुणगान करते हैं। किसलिए करते हैं? उनको प्रसन्न करने या रिझाने के लिए? नहीं! हम उनके जीवन की आन्तरिक विशेषताओं को अभिव्यक्ति देना चाहते हैं जिससे कि इनके जीवन का आदर्श जनता के समक्ष उद्घाटित हो सके तथा कुछ इनके जीवन से जन-जन भी शिक्षा ग्रहण कर सके।

महापुरुष हमेशा पूज्य हैं तथा गुणगान के योग्य हैं। गुरुदेव ने अपने जीवन में उन समस्त गुणों को समाहित कर लिया है जो भगवान महावीर ने साधना पथ के लिए आवश्यक बताए थे। जो दीपक लौ के सम्पर्क में आता है वह जगमगाहट से भर जाता है। उसका प्रकाश अंधेरे में भटकते प्राणी के लिए मार्ग दर्शन का कार्य करता है।

गुरुदेव का जीवन भी ऐसा ही प्रकाशपुञ्ज है, जो कोई भी इनके सम्पर्क में आता है वह अवश्य ही प्रकाशमय बन जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन समस्याओं से ग्रसित है जिसका समाधान पूज्य गुरुदेव सत्यता लेकर कर देते हैं।

पूना श्रमण सम्मेलन में कितनी प्रकार की समस्याएँ आई थीं। आचार्य प्रवर श्री आनन्दऋषि जी म.सा. को चिन्ता थी कि कौन इस सम्मेलन के संचालन का भार सम्भालेगा? वह व्यक्ति ऐसा हो जो सभी छोटे-बड़े सन्तों को साथ लेकर चल सके, सभी का मार्गदर्शन कर सके सम्मेलन को कुशलता पूर्वक संचालित कर सके। आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री ने आपको ही इस योग्य समझा और सम्मेलन के संचालन हेतु **'शान्ति रक्षक'** का पद प्रदान किया। आपने भी कुशलता के साथ दायित्वों का परिपालन करते हुए सम्मेलन का संचालन किया और पूर्ण शान्ति के साथ उस महासम्मेलन को सुसम्पन्न करने में यशस्विता प्राप्त की। किसी संत को शिकायत का मौका नहीं दिया। जो बात आपको मान्य नहीं थी उसे इस प्रकार से समझाया कि किसी को यह महसूस नहीं होने दिया कि हमारी बात नहीं मानी गई है। यह भी कला है, इसी योग्यता को देखते हुए आचार्यश्री ने आपको श्रमणसंघ के सलाहकार पद से सम्मानित किया। आप काम के लिए काम करते हैं, नाम के लिए नहीं। आप अक्सर व्याख्यानों में कहा करते हैं- "काम के लिए काम करो नाम के लिए नहीं। नाम तो तो स्वतः ही हो जाएगा।" आप समाज में कुछ परिवर्तन देखना चाहते हैं। आपका यही प्रयास रहता है कि हमारी आनेवाली युवापीढ़ी धर्म के प्रति आस्थावान बनें। जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए आस्था एवं सम्यक्त्व की अत्यंत आवश्यकता है।

आपके जीवन में जैनधर्म के प्रति कितनी अटूट श्रद्धा है। आप की कथनी और करनी में एकरूपता है। जैसा आपका नाम सुमन है वैसा ही सु-मन भी हैं। जिसका मन अच्छा होता है उसका आचार, विचार और चरित्र भी अच्छा होता है।

आपका जीवन कितना महान है। आपकी सेवा में मेरा सारा जीवन अर्पित हो यही मेरी भावना है। किस प्रकार से भटकते हुए मेरे जीवन को आप श्री ने संभाला है। जैसे एक कुशल कुंभकार पैरों से रौंदी हुई मिट्टी को घड़े के रूप में बदल देता है और वही मिट्‌टी घड़े के रूप में ढ़ल कर व्यक्ति के सिर पर चढ़ जाती है। मैंने कई वर्षों तक वैरागी अवस्था में रहते हुए कुछ ज्ञान सीखने का प्रयास किया है। परम श्रद्धेय आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. के छोटे शिष्य उपाध्याय श्री मनोहर मुनि जी म. कहा करते थे कि दीक्षा लेने के बाद तो कोई भी पूज्यनीय बन जाता है। उसे पूजा प्रतिष्ठा से ही फुरसत नहीं मिलती। कुछ समय साधु-संतों की सेवा में लग जाता है। इसलिए वैराग्यावस्था ही ज्ञानार्जन की एक मात्र साधना है। इस सूत्र को मैंने समझा और आप श्री के चरणों में रहकर यथा संभव सीखने का प्रयास किया। इस गुरु-ऋण से मैं कभी उऋण हो सकूंगा? मेरे जीवन का हर क्षण आप श्री जी की सेवा में व्यतीत हो। एक क्षण भी आप श्री से अलग होने का अवसर न मिले। मैं तपस्या भी करता हूँ – स्वाध्याय भी करता हूँ परन्तु करता उतनी ही हूँ जिससे आपकी सेवा में बाधा न पड़े।

पूज्य गुरुदेव की छत्र-छाया मुझपर सदैव बनी रहे। मैं आपकी दीर्घायु की कामना करता हूँ।

❑ मुनि सुमंतभद्र "साधक" (शिष्य)
"जैन सि.विशारद"

कुछ कर गुजरने की तमन्ना

इस मनुष्य लोक में अनंतानंत जीव आते हैं, आयु समाप्त होने पर चले जाते हैं। किसी को पता भी नहीं चलता कि कौन कब आया और कब चला गया। धर्म की आराधना-साधना के बिना ही मनुष्य जन्म गँवाकर संसार के गहरे समुद्र में डूब जाते हैं। यहां से निकलना अति दुष्कर हो जाता है। मनुष्य जन्म का प्राप्त होना बड़े फ़ख्र की बात है क्योंकि यह बहुत भाग्य से ही मिलता है। कहा भी है –

मनुष्य जन्म का पाना, कोई बच्चों वाला खेल नहीं।
जन्म-जन्म के शुभ कर्मों का, होता जब तक मेल नहीं।।
नरतन पाने के लिए उत्तम कर्म कमाया कर।
मन मन्दिर में गाफिले, झाड़ू रोज लगाया कर।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य जन्म को अमूल्य हीरे की उपमा दी जाती है जिसकी कद्र कोई कद्रदान/जौहरी ही जानता है।

हाँ, तो इस मनुष्य जन्म की कद्र को, मूल्य को समझा, परखा, पंडितरत्न श्री सुमनकुमार जी महाराज ने जो शेरों का बाना पहनकर निकल पड़े मैदान-ए- जंग में, कर्मों से युद्ध करने, उनको पराजित करने। वह युद्ध आज भी निरंतर जारी है।

श्रद्धेय महाराज श्री ने आज तक कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं तथा श्रमणसंघ में कई प्रतिष्ठित पद पाकर समाज की भरपूर सेवा की है। सत्य बात तो यह है कि आपके कोमल हृदय में श्रमणसंघ के प्रति कुछ कर गुजरने की शुभ भावना समाहित है। श्रमणसंघ के लिए आपश्री जी का तन-मन अर्पण है। आपश्री जी प्रधानाचार्य पूज्य श्री सोहनलालजी म.सा. की वाटिका के उज्ज्वल पुष्प हैं।

परम श्रद्धेय पंडितरत्न श्री सुमनकुमारजी म.सा. पंजाब प्रवर्तक पूज्यपाद श्री शुक्लचंद्रजी म.सा. के संत परिवार में चमकते-दमकते सूर्य के समान है। जो अपनी तेजोमय आभा से जैन समाज को चमका रहे हैं। आप एक कुशल रहबर की भांति समाज को सुमार्ग दिखा रहे हैं।

आपश्री जी पूज्य गुरुदेव श्री महेन्द्रकुमार जी म.सा. के बेशकीमती लाल हैं। जो अपना अमूल्य समय देकर श्रमणसंघ को चमकाना चाहते हैं, सुधार लाना चाहते हैं। संघ को गौरवमय स्थान दिलाना चाहते हैं। आपकी यह शुभ भावना कब फलीभूत होती है, यह तो समय ही बताएगा। अस्तु, आपश्री जी एक नेक दिल दरिया संत रत्न हैं। आपश्री जी की बलवती शुभभावना है, कि जैन समाज अपने पाँवों पर मजबूती के साथ खड़ा हो ताकि कोई विरोधी अंगुली उठाने की हिम्मत न करे।

आप चिरायु हों। आपका वरद्हस्त इस दास पर सदैव बना रहे। दीक्षा स्वर्ण जयंति के सुअवसर पर मेरा कोटि-कोटि वन्दन है, अभिनंदन है।

दरबार में मेरे सत्गुरु के, दुख-दर्द मिटाए जाते हैं।
गर्दिश के सताए लोग, यहां सीने से लगाए जाते हैं।।

आपश्री के चरणों में भावाञ्जलि! विनयाञ्जालि!!

❑ **मेजर मुनि,** पंजाब

गुजरात को भी पावन करें

पण्डित रत्न श्रमणसंघ के मंत्रीवर श्री सुमनमुनि जी म. के पावन चरणों में सविधि वन्दन! अभिनंदन!! (इस पावन प्रसंग पर!) आपश्री ने दक्षिण प्रान्त में धर्म जागृति का एक नया आयाम खड़ा किया है।.... अब आप अवश्य गुजरात पधारें। इस धरा को भी पावन करें।

❑ **गिरीशमुनि,** गुर्जरप्रदेश

फैले यश सौरभ, दिन दूना, रात चौगुना

परम श्रद्धेय श्री गुरुदेवजी म.की दीक्षा-स्वर्ण-जयंति अभिनंदन की सूचना प्राप्त कर मन गद्-गद् हो गया। पंडितरत्न श्री शुक्लचंदजी म.सा. की कृपा का ही यह प्रतिफल है कि आप एक ज्ञानवान्, गुणवान्, चारित्रवान् संत है तथा साहित्यिक प्रतिभा के धनी एवं खोजी गवेषक हैं। आपश्री ने ही नाभा से आचार्य श्री अमरसिंहजी म. का चित्र प्राप्त किया और जैनदर्शन की अतिविशिष्ट सामग्री प्राप्त की जिसका आलेख आत्मरश्मि के अंक में पढ़ने को मिला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपश्री का यश-गौरव दिन दूना रात चौगुना प्रसारित होता रहे इसी श्रद्धा के साथ प्रणति!

❑ मुनि लाभचन्द्र
पंजाब

उदारचेता श्रमण

पंजाब प्रान्त के यशस्वी-मनस्वी संत मुनि श्री सुमनकुमार जी म. जैन जगत के आकाश पर सूर्य की भांति देदिप्ययान हैं। आपका संयमीय जीवन ज्ञान की आभा से चमत्कृत, दर्शन की दिव्यता से अलंकृत तथा चारित्र की पदयात्राएं करके जन जागरण के कई अविस्मरणीय उपक्रम किए हैं।

आपकी प्रवचन शैली अद्भुत है जिसे सुनकर श्रोताओं का हृदय निर्मल बन जाता है और वे धर्म में रम जाते हैं। समाज के कल्याण के लिए आप सदैव चिन्तनशील रहते हैं। आपकी मंगल प्रेरणाओं से समाज में कई रचनात्मक कार्य हुए हैं। अनेक स्थानों पर स्थानक भवन तथा समाजसेवी संस्थाएं अस्तित्व में आई हैं।

ऐसे उदारचेता, सत्यनिष्ठ श्रमण की दीक्षा-स्वर्ण-जयंती पर हम उनका अभिनन्दन करते हैं।

❑ सुरेश मुनि 'शास्त्री'
आलन्दुर (चेन्नई)

जियो और जीने दो

गुरुदेव! सुध लो, अपने वतन की

आत्मीयता की प्रतिमा, गुणों के पुञ्ज, श्रद्धा के केन्द्र श्रेष्ठमना पूज्य गुरुदेव श्री सुमनमुनि जी म.सा. के चरणाम्बुजों में कोटिशः वन्दनाभिनन्दन!

"प्रभो! आपकी मधुर स्मृतियाँ कायम हैं, अमिट हैं। अपने कभी 'अपने' आत्मभाव से नहीं जा सकते! आपका अभाव अतीव खटकता है। प्रत्यक्ष दर्शनों की तमन्ना भी प्रबल रहती है। बेशक, दिल से दूर नहीं पर आँखें भी तृप्त होना चाहती हैं।"

यह ठीक है कि आपश्री भक्ति की नूतन जंजीरों में बंध चुके हैं पर अपने घर (पंजाब-प्रान्त) की भी तो सुध लेनी चाहिए। महामना अन्यत्र जाकर रह नहीं सकते, उन्हें तो घर आना अनिर्वाय होता है। ठीक है, संघ स्थिति दयनीय है, जर्जरित है पर अन्ततः परिणाम.....? आओ, भगवन्! आपकी इधर भी आवश्यकता है, अपने वतन की भी सुध लो!

कृपानिधे! पंजाब की ओर मुख कीजिएगा, कदम बढ़ाइएगा! हम प्रतीक्षा में है....! किं बहुना, इत्यलम्!

❑ साध्वी उमेश (शिमला) शास्त्री
पंजाव

यथानाम तथागुण सम्पन्न मुनिराज

परम श्रद्धेय श्रमणसंघीय सलाहकार, मंत्री श्री सुमनमुनि जी म. के दर्शनों का सौभाग्य मुझे सर्वप्रथम सन् १९६४ में जयपुर चातुर्मास के समय प्राप्त हुआ। तब मुझे आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहुत मेधावी एवं तीक्ष्ण प्रज्ञा-सम्पन्न प्रतीत हुए थे।

उसके बाद दूसरा अवसर पूना सम्मेलन के समय आया। उस समय आपने 'शान्ति रक्षक' की जो भूमिका निभाई उससे मैं बहुत प्रभावित हुई। आप यथानाम तथा गुण सम्पन्न मुनिराज हैं।

२२-१०-६६ को चेन्नई में आपकी दीक्षा-स्वर्ण-जयंती मनाई जा रही है। तत्रस्थ श्रीसंघ आपके संयम को अभिनन्दन करने के लिए एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है। इस पावन प्रसंग पर हम सव साध्वियों की ओर से आप श्री के चरणों में प्रणमाञ्जलि एवं भाव-सुमनांजलि अर्पित है। हम कामना करती हैं कि आप स्वस्थ रहें, निरोग रहें, चिरायु हों एवं सुदीर्घ काल तक जिन शासन की सेवा करते रहें।

❑ **साध्वी मंजुश्री** (दिल्ली)

सुमन सुरभि

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिए कुछ लिखना अति कठिन है। क्योंकि जैसे बीज को वृक्ष बनने के लिए लम्बी यात्रा करनी पड़ती है उसी प्रकार व्यक्तित्व की पहचान भी दीर्घ यात्रा के बाद संभव हो सकती है। पर वह जीवन जो संसार में खुली पुस्तक की तरह हो, चमकते हुए सूर्य के आलोक की भांति भासित हो, शीतल पवन की तरह से सुखद हो, उस जीवन को जानने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता और न ही शंका है कि हम उसे जान सकते हैं या नहीं।

श्रमणोद्यान के खिलते महकते फूल श्री सुमन मुनि जी महाराज आपकी जीवन यात्रा ने खूब स्पष्ट कर दिखाया है कि आप श्रमणसंघ के अद्वितीय मुनि-पुष्प हो। पुष्प की महक से भँवरें भी अपने आप आगे लगते हैं उन्हें निमंत्रण एवं सूचना की आवश्यकता नहीं। अध्यात्म-भक्त जन भी मुनि-पुष्प की सुगन्ध से स्वयं ही खिंचे चले आ रहे हैं। आपकी पहचान के लिए किसी भक्त जन को कोई आधार की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि **'यथा नाम तथा गुण'** की पहचान, सहारे की अपेक्षा नहीं रखती।

साधक के लिए सबसे प्रथम आवश्यक है कि आध्यात्मिक साधना का प्रारम्भ सु-मन से हो। एक साधक श्री सुमन मुनि जी की ओर बढ़ता ही जा रहा था बीच में किसी ने पूछ लिया कि आप उधर क्यों जा रहे हो ? तब साधक प्रत्युत्तर देता है – अरे, मुझे क्या सोचने की जरूरत है वह व्यक्तित्व श्रेष्ठ मन वाला है। सम्यक्-आचरण की महक से स्वयमेव ही प्रगट हो रहा है। मुझे जीवन की गरिमा के लिए आदर्श भी मिला और आधार भी। जो चाहिए था मिल गया यह सुमन संत है, मुनि है, साधु है, गुरु है अर्थात् इसका मन श्रेष्ठ-शुद्ध है। प्राकृतिक चंचलता से रहित है। अतः शत-शत वन्दन !

संत अर्थात् समता। अपने आप को तपाया है, पकाया है। कच्चा जीवन नहीं है। अपूर्ण नहीं है। पूर्ण पुरुष का दर्शन समागम ज्ञेय और उपादेय है। अतः हम प्रसन्न हैं इस पूर्णपुरुष को पाकर।

यह मुनि हैं। इन्हें पता है सत्य की रक्षा के लिए मौन अधिक आवश्यक है। यह संत का लक्षण भी है कि कम बोले और तोलकर बोले। आप ऐसे ही सत्य पुरुष हैं। धन्य है, आपके सत्यनिष्ठ जीवन को। ये साधु-जीवन-युक्त हैं। आपकी प्राणी मात्र के प्रति मित्रता की भावना आत्महित का साक्षात्कार कराती है। आप के श्री चरणों में पहुँच कर कोई खाली नहीं जाता। वह भी आप सम बनने का सौभाग्य पा सकता है। कवि की उक्ति भी इसी तथ्य को दिखा रही है –

पारस में अरु संत में, अन्तर जान महान्।
वह लोहा कंचन करे, वह करे आप समान।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप गुरु हैं। आपका संत जैसा जीवन, मुनि जैसी मौन, साधु जैसी दिव्यता, भव्य स्थिरता साक्षात् गुरुत्व का दर्शन कराती है। गुरु तेरा नाम भी तारणहारा है। तेरा दर्शन भी है ओजस्वी ! तेरी वाणी कष्ट संहारक! जय-जय गुरुदेव ! किसी ने कहा है कि –

गुरु तेरी चर्चा हमारा प्राण है।
गुरु तेरी चर्चा सुखों की खान है।
गुरु की चर्चा हमारी शान है।

हे मुनिवर! आप संयम से उजले, मन से उजले हो। हमारा वन्दन श्रद्धार्चन स्वीकार करो। जो भक्त जन आए शरण बेड़ा पार करो।

डॉ. साध्वी सरोज (जम्मू)

दिव्य गुणों के धनी

'अभिनन्दन'

"विमल चन्दन सा सुरभित,
श्री सुमन मुनि का जीवन है,
श्रमण संघ के सलाहकार मंत्री,
सद्गुण का खिलता उपवन है।।"

आपश्री के दिव्य गुणों का चित्रण असंभव है। तथापि श्रद्धावश कुछ लिखने का प्रयास उसी प्रकार कर रही हूँ जिस प्रकार चन्द्रमा की छाया जल में देखकर बालक उसे पकड़ने हेतु हठ करता है।

इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ उसी जीवन का स्मरण करते हैं जिसमें सूर्य-सा तेज हो, चन्दमा-सी शीतलता हो, हिमालय-सी ऊँचाईयाँ हो, समुद्र सी गहराई हो, फलों-सा माधुर्य हो, फूलों-सी महक हो और यह सब कुछ स्व के लिए नहीं पर के लिए हो वही जीवन वन्दनीय, अर्चनीय एवं पूजनीय माना गया है।

मनुष्य के जीवन में गुरु की प्राप्ति होना महान उपलब्धि है। गुरु एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति है जिसकी कृपा से मनुष्य नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा बन जाता है। गुरु चिन्तामणि रत्न के सदृश्य सभी की चिन्ताएँ हरण करनेवाले कामकुंभ के समान होते हैं।

ऐसे ही गुरुदेव हमारे भी हैं जिनका आज ४६ वां वर्ष दीक्षा का पूर्ण हुआ है और ५०वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। आपकी वाणी में इतना माधुर्य एवं जीवन में इतनी नम्रता तथा समता है कि हम सभी अभिभूत हो जाते हैं।

फूलों से लदी सुरभित वाटिका से कोई गुजरे और उसे देखकर मन आनंदित न हो यह कैसे हो सकता है? चाँद की सुन्दर चाँदनी खिली हो और मन प्रसन्नता से न भरे, यह नहीं हो सकता? वसंतऋतु में और वह भी आम्रवन में कोयल को किसीने चुप देखा है? ऐसे ही सुमन मुनि जी म.सा. के दीक्षा दिवस पर किस को खुशी न होगी?

"जल समुद्र और गुरु समुद्र में, कितना भेद अपार।
वह भंडार है क्षार का, यह मधु का है भण्डार।।"

हर पहाड़ पर हीरे पन्ने नहीं होते, और न ही हर वन में चन्दन वृक्ष होते हैं। ऐसे ही हर जगह पर ऐसे गुरु नहीं मिलते। हम भाग्यशाली हैं जो ऐसे गुरु मिले हैं। जिनकी वाणी में चुम्बक का अद्भुत आकर्षण है जिनका उज्ज्वल जीवन हम सबका दर्पण है। शासन के ये रत्न हैं।

आप श्री के ५०वें दीक्षा-वर्ष पर अनंत-अनंत मंगल कामना।

❑ **साध्वी विमल कुमारी**
'जैनसिद्धान्त शास्त्री'
शिष्या : महासती श्री अजित कुमारी जी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वात्सल्य मूर्ति

ओजस्वी-तेजस्वी-व्यक्तित्व के धनी, स्पष्टवक्ता पूज्यवर श्री सुमनमुनिजी म. के पावन चरणों में वन्दन!

आपकी वाणी में वह मधुरता है कि हर कोई व्यक्ति स्वतःही आकर्षित हो जाता है।.... चंगलपेट में आपश्री से जो आत्मीयता, सौहार्द और वात्सल्य पाया वह हमेशा अक्षुण्ण रहेगा!

पुनः श्री चरणों में वन्दन !

❑ आदर्श ग्रुप
(साध्वी आदर्श ज्योति)

वीर प्रभु के अमर सेनानी श्री सुमन मुनि जी

श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन श्रमण संघ को स्वर्ण कंकण की उपमा दी जाए तो निश्चित ही श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमन मुनिजी म. उस स्वर्ण कंकण में जटित सर्वाधिक दीप्तिमान तेजस्वी मणि के रूप में देखे जा सकते हैं। मुनिश्रीजी के सरल विनम्र एवं निर्मल व्यक्तित्व-मणि की शुभ्र आभा ने न केवल अपने व्यक्तित्व गौरव को ही बढ़ाया है, अपितु स्वर्ण कंकण भी निश्चित रूप से गौरव मंडित हुआ है।

आपश्री श्रमणसंघ के एक अपूर्व कर्णधार हैं जो कि संघ को विषम परिस्थितियों और भयंकर तूफानों से बचाते हुए सुरक्षित रूप से गतिशील कर रहे हैं।

मुनिश्री का जैसा नाम है तदनुरूप ही वे सर्वत्र अपने सद्गुणों की सौरभ को प्रसारित कर रहे हैं। आपका जीवन सुमधुर सुकोमल एवं सौरभान्वित सुमन सम है। आप मानव पुष्प के रूप में अवतरित होकर सेवा समता एवं सहिष्णुता की सुमधुरता स्वभाव सौंदर्य तथा सद्गुणं-सौरभ सर्वत्र वितरित कर रहे हैं।

ऐसी महान संत आत्मा के प्रत्येक मौलिक पहलू की आदर्श कथा को लिखने मे श्री वीर प्रभु लेखक को सत् प्रेरणा, सद्बुद्धि प्रदान करें। यही हार्दिक मनोकामना है।

श्री वीरप्रभु के वीर सेनानी की संघैक्य-साधना-साध्य करने की आन्तरिक मनोकामना फलीभूत हो। आदर्श संघ बनाने के लिए दीर्घायु करें। यथा शक्ति मुक्ति बुद्धि प्रदान करें तथा मार्ग में जो शूल हों वे फूल बनें, यही सदिच्छा रखती हूँ।

❑ **उपप्रवर्तिनी साध्वी पवनकुमारी**, दिल्ली

जीवन शिल्पी, प्रबुद्ध कलाकार, कुशल चितेरे

भींवराज के दुलारे वीरां के नन्दन हो।
दुखियों के सहारे करुणा के स्पंदन हो,
अन्तर आस्था सहित किए वन्दन को स्वीकार करो।
जन-जन के तारण हारे, कोटिशः अभिनन्दन हो।।

भारत की संस्कृति में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। गुरु की महिमा सभी पंथों के ग्रंथों में अपनी अपनी भाषा में अपने अपने तरीके से की गई है। शरीर के लिए आँखों का होना आवश्यक है। गुरु जीवन बनानेवाला होता है। वह जीवन के अन्धकार को दूर करके प्रकाशमान करता है। भटके हुए राही को सही सन्मार्ग प्रदान करने की शक्ति केवल गुरु में ही है। वैदिक धर्म में गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है:-

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परमब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैदिक महर्षियों ने गुरु में ही तीनों शक्तियों का विस्तार बताया है। आइए मैं आपको एक ऐसे ही गुरुदेव के दर्शन करवाऊँ जो वास्तव में गुरु शब्द को सार्थक कर रहे हैं।

वे हैं – परम श्रद्धेय जैन जगत् की शान, श्रमण संघ के उज्ज्वल नक्षत्र श्रमणसंघीय सलाहकार परमपूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी म.। गुरुदेव का नाम सुमन है। वास्तव में यदि देखा जाए तो उनका जीवन एक सुवासित सुमन की भाँति ही है। जिस तरह एक गुलाब का खिला हुआ फूल अपनी बगिया को महका देता है। तथा उसकी सुन्दरता को और अधिक सुन्दर बना देता है। इसी प्रकार परमपूज्य गुरुदेव का जीवन भी उस खिले फूल की भाँति अपनी श्रमणसंघ रूपी बगिया में चार चाँद लगा रहा है। गुरुदेव के दर्शनों का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त है। मैंने देखा – गुरुदेव का जीवन सामान्य सन्तों से बहुत ऊपर उठा हुआ है। गुरुदेव के चेहरे पर एक अपूर्व तेज देखा है; मैंने। वृद्धावस्था होने पर भी सदा अध्ययन में ही रमे देखा है। किसी भी बात को एक बार करने का ठान लिया तो उसे पूर्ण करके ही दम लिया। इतने दृढ़ निश्चयी हैं, गुरुदेव। बड़ी-बड़ी कठिन समस्याओं को पल भर में सुलझा देते हैं। उनका मैंने निर्भीक व्यक्तित्व देखा है।

गुरुदेव की वाणी में ओज है। व्यवहार में माधुर्य इतना कि यदि बालक भी चरणों में पहुँच जाए तो गुरुदेव स्वयं भी बालक की भाषा में ही बोलने लग जाते हैं। और गंभीर इतने कि उपमा देना भी व्यर्थ सिद्ध होगा। मैं जब कभी एकान्त क्षणों में बैठती हूँ तो स्वतः ही गुरुदेव का ध्यान आ जाता है। मुक्त अनगढ़ पत्थर को जमीं से उठाकर मेरी गुरुणी मैया श्री महासती पवन कुमारी जी म. रूपी शिल्पकार के हाथ में देनेवाले पूज्य गुरुदेव ही हैं। मैं तो गुरुदेव का ऋण जन्म-जन्मान्तरों में भी पूरा करने में असमर्थ हूँ।

गुरुदेव एक अद्भुत कलाकार हैं। ऐसे कलाकार जो भोग-क्षोभ से, विभ्रम-विलास से, सत्ता-महत्ता से, एवं मोह-माया से ग्रसित आत्माओं को वास्तविक सत्य-तथ्य का संदर्शन कराते हैं।

आत्मस्थ सत्य और सौंदर्य पर पड़े हुए घने तमसावरण को हटाकर सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की समुज्ज्वल ज्योति प्रज्वलित करते हैं। आप ऐसे कलाकार हैं जो जन-जीवन-निर्माण की महान् साधना में संलग्न रहकर अपने ज्ञान और चारित्र के औजारों से अनगढ़ जन-जन-प्रस्तर से सौंदर्य समन्वित प्रतिमा का भव्य निर्माण करते है। ऐसा चितेरा जो अपने सद्गुणों के रंग और तूलिका से विश्व विख्यात भव्यचित्र का निर्माण करता है। कहा भी है-

संत वही जो घृणित जीवन को, महिमावान बना देता है।
ठोकर खाते पत्थरों को जो, भगवान बना देता है।।

परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री जी ऐसे ही सच्चे जीवन शिल्पी, प्रबुद्ध-कलाकार और चतुर चितेरे हैं। अपने जीवन निर्माण के साथ-साथ जन-जीवन का भी नव निर्माण करते हैं।

एक छोटी सी किरण बनकर प्रस्फुटित हुए थे राजस्थान की शस्यश्यामला पृथ्वी पर ! वह ग्राम पाँचू भी धन्य हो उठा जब वहाँ ऐसे अद्भुत् चितेरे ने जन्म लिया था।

पतझर खड़ा रहा सिराहने,
लेकिन और अधिक तुम महके।
तुम दीपक थे पर आँधी में
बनकर तुम अंगारा दहके।।

समय अनुसार नव क्रांति करते हुए, समाज को नई दिशा प्रदान करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहे हैं। गुरुदेव के वे लम्बे-लम्बे विहार अब भी मेरी स्मृति में एक चित्र की भाँति उभर रहे हैं। सन् १९८७ में पूना में साधु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मेलन का ऐलान हुआ। पूज्य गुरुदेव पंजाब की धरती पर अपनी महक बिखेर रहे थे। गुरुदेव को भी आमंत्रित किया गया था, सम्मेलन में। गुरुदेव की शारीरिक शक्ति क्षीण थी परन्तु दृढ़ संकल्प था कि मुझे जाना है। कई बार मैंने देखा विहारों में गुरुदेव को इतना तेज बुखार आ जाता था कि एक कदम भी आगे बढ़ पाना असंभव प्रतीत होता था परन्तु गजब की शक्ति गुरुदेव में देखी है मैंने कि वे फिर स्वयं उठकर चल पड़ते थे तथ सन्तों को भी आगे बढ़ने की प्रेरणा देते थे। आचारांग सूत्र में भी कहा है-

वीरेहिं एयं अभिभूय दिट्ठं संजतेहिं सया अप्पमत्तेहिं।

अर्थात् सतत अप्रमत्त / जागृत रहने वाले जितेन्द्रिय वीर साधक मन के समग्र द्वन्दों को अभिभूत करके सत्य का साक्षात्कार करते हैं। संयम जीवन में एक एक से बढ़कर भयंकर कठिनाइयाँ सामने आईं परन्तु गुरुदेव विचलित नहीं हुए।

गुरुदेव एक सफल प्रवचनकार है। जो कहना स्पष्ट कहना। कभी किसी का दबाव उन्हें पसन्द नहीं है। गुरुदेव को अनेक उपाधियों से अलंकृत भी किया गया परन्तु पद का अहंकार उनमें दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

गुरुदेव का विचरण क्षेत्र अति विस्तृत रहा है - पंजाब, हरियाणा, राजस्थान हिमाचल, दिल्ली, उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश-महाराष्ट्र, आँध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि अनेक छोटे बड़े प्रान्तों में आपने धर्म-ध्वजा फहराई है। गुरुदेव उत्तर भारत की श्रमण परम्परा की शान हैं। मैं तो अल्पज्ञ और मतिहीन हूँ। गुरुदेव की गुण-गाथा को लिखने की शक्ति मुझमें नहीं है। गुरुदेव के एक सद्गुण की प्रशंसा में ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। जिस प्रकार से व्योमस्थ तारागणों की गणना असम्भव है उसी प्रकार श्रद्धेय गुरुदेव की सद्विशेषताओं की गणना भी अशक्य है।

गुरुदेव की दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति पर अभिनन्दन-ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है यह जानकर अपार प्रसन्नता हुई। मैं तो छोटी सी साध्वी हूँ अपने सम्पूर्ण साध्वी मंडल की ओर से गुरुदेव के पावन पदाम्बुजों में अपनी भाव भीनी वन्दनांजलि अर्पित/समर्पित करती हूँ और यही मंगल कामना करती हूँ आपश्री चिर आयु हों और जिन शासन की दिनों दिन प्रभावना बढ़ती रहे।

मन मन्दिर के देव! गुरुवर! हम सबका उद्धार करो।
श्रद्धा-प्रेम और भक्ति के, दो चार सुमन स्वीकार करो।
गुरु वर्णन में क्या करूँ, नहीं गुणों का पार।
गागर में सागर भरूं कर लेना स्वीकार।।

❑ **साध्वी ऋद्धिमा**, पंजाब
(प्रशिष्या: उपप्रवर्तिनी श्री पवन कुमारी जी)

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी

किसी जिज्ञासु ने साधक से पूछा – 'किं जीवनम्?' क्या है ! उत्तर देते हुए उस महापुरुष ने कहा –

संयम खलु जीवनम्

संयम ही जीवन है। आज के इस भौतिकवादी युग में जहां व्यक्ति आधुनिक चकाचौंध में जीवन की विकृत करने में लगा हुआ है वहीं कुछ साधक अपनी साधना द्वारा ज्ञान का दिव्य आलोक प्रदान कर रहे हैं।

परम श्रद्धेय सलाहकार मन्त्रीवर सुमनमुनि जी म. एक उच्चकोटि व्यक्तित्व के धनी हैं। आपका जीवन विभिन्न गुणों से ओत प्रोत रहा है।

मैंने समीपता से देखा है; आप में सरलता है, जैसे अन्दर है, वैसे ही बाहर है। आपकी वाणी, आपका विचार और जीवन का प्रत्येक व्यवहार सरल है। कहीं पर भी छुपाव-दुराव नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्त जीवन में जिन गुणों की अनिवार्य/आवश्यकता है उसमें विनम्रता भी प्रमुख गुण है। विनय को धर्म का मूल कहा है तो अहंकार को पाप का मूल बताया है। जिस साधन को अहं का काला नाग डस लेता है, वह साधना की सुधा पी नहीं सकता।

आपका जीवन विनम्र है, आप श्रमण संघ के वरिष्ठ सन्त हैं।

जीवन में शिक्षा का भी वही महत्त्व है जो शरीर में प्राण का है। शिक्षा के अभाव में जीवन में चमक-दमक पैदा नहीं हो सकती। दीक्षा के साथ-साथ शिक्षा की भी अनिवार्यता है। यही कारण है कि आपने स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया है।

इसी तरह साहित्य की दृष्टि से भी आपश्री ने स्तुत्य कार्य किया है। प्रवचन-साहित्य आदि के माध्यम से भी आपकी अपूर्व देन रही है। आप वाणी के जादूगार हैं। आप श्री जब बोलना प्रारम्भ करते हैं तब समस्त सभा मन्त्र मुग्ध हो जाती है, आपकी वाणी में हास्य, करुण, शान्त आदि रसों की अभिव्यक्ति सहज रूप से होती है। मधुरता, सहज, सुन्दरता भावों को लड़ी, भाषा की झड़ी और तर्कों की कड़ी का ऐसा सुमेल होता है, कि प्रवचन श्रवण करते समय श्रोता झूम उठते हैं। लेश्या, आत्मा, परमात्मा, सम्यग्दर्शन, तत्त्व जैसे गम्भीर विषयों को भी सहज रूप से प्रस्तुत करते हैं। श्रोता ऊबता नहीं, थकता नहीं। आपका प्रवचन सुलझा हुआ है। आपके प्रवचनों में नदी की धारा की तरह गति है। जब कि आपकी मधुर व जादूभरी भाषा से सामान्य जन को ही नहीं किन्तु साक्षर व्यक्ति भी पूर्ण रूप से प्रभावित होते हैं। आपमें विचारों की अभिव्यक्ति की कला गजब की है। ओज-तोज से परिपूर्ण आपकी वाणी है।

आप के जीवन की कई विशेषताएं है जो यहाँ विस्तार भय से उल्लिखित नहीं की जा सकती। पूना साधु सम्मेलन में शान्तिरक्षक के रूप में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, औरंगाबाद आदि स्थलों पर भी परम पूज्य आचार्य देव के संग आप श्री का मधुर मिलन रहा है जो आज भी स्मृति पटल पर अंकित है। दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के पावन अवसर पर हृदय की अनन्त आस्था के साथ वन्दन-अभिनन्दन करता हूँ। आपका वरद हस्त हम पर बना रहे, इसी शुभ भावनाओं के साथ

❑ उप प्रवर्तक **डॉ. राजेन्द्रमुनि**
(आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्र मुनि जी के शिष्य)

ज्योतिर्मय व्यक्तित्व के प्रतीक

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री पं. रत्न मुनि श्री सुमन कुमार जी म.सा. दीक्षा के ५० वें वर्ष में यशस्वी रूप से प्रवेश कर रहे हैं। इस उपलक्ष्य में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। अभिनन्दन ग्रन्थ एक प्रकार से धर्म-दर्शक साहित्य और संस्कृति के ऐसे अक्षय कोष होते हैं जिन की तुलना करना कठिन है। उसमें मूर्धन्य मनीषियों के विचारों का नवनीत होता है।

पं. रत्न श्री सुमन मुनि जी म.सा. ने अपने जीवन-स्वर्ण को संयम में तपा कर कुन्दन बनाया है। प्रज्ञा की प्रखरता, विद्वत्ता से मण्डित आपने अनेकों कृतियों का प्रणयन किया है।

पूना सम्मेलन के सुनहरे अवसर पर आप को "शान्तिरक्षक" के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। आप के जीवन में अध्यात्म ज्योत्स्ना, साधना की यात्रा और ज्ञान की ज्योति सर्वत्र अनुस्यूत है। आप की चिन्तन-धारा सत्योन्मुखी है। आपकी सरलता, स्पष्टता, निष्पक्षता योग्यता आदि सद्गुणों को अवलोकित कर सभी प्रभावित हुए, यही कारण है कि सलाहकार मंत्री के रूप में आप लोकप्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। आप में आगम दर्शन का तत्त्व सम्बन्धी गम्भीर ज्ञान है। आप की स्मृति इतनी तीव्र है कि इतिहास के स्मृति पथ पर अक्षरशः अंकित है।

आप के जीवन-सुमन की सुरभि का विस्तार कर सब को प्रेरित करने वाला अभिनन्दन ग्रन्थ त्याग-शील-संयम-श्रुत की गौरवगाथा बने; यही हार्दिक भावना है। अभिनन्दन ग्रन्थ के सफल प्रकाशनार्थ हार्दिक शुभकामनाएँ।

❑ **उपप्रवर्तिनी साध्वी कौशल्या 'श्रमणी'**
नालागढ़ (सोलन-हिमाचल)

दिव्य विभूति

आप परम श्रद्धेय सर्वतोमुखी व्यक्तित्व के धनी, निर्भीक वक्ता, इतिहास केसरी, प्रवचन दिवाकर, श्रमणसंघीय सलाहकार-मंत्री, शान्तिरक्षक एवं उपप्रवर्त्तक श्री सुमनमुनि जी म. के ५० वें दीक्षा-दिवस को दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के रूप में मनाने जा रहे हैं, प्रसन्नता हुई। हम ऐसी दिव्य विभूति के पावन चरणों में हार्दिक वन्दन-अभिनन्दन करते हैं। एवं उनके स्वस्थ, सुदीर्घ संयमी जीवन की मंगल कामना करते हैं।

❑ **मुनि सतीशकुमार**
जैन स्थानक, नालागढ़ (हि. प्र.)

जैन जगत के चमकते सितारे

जैन संस्कृति श्रम प्रधान संस्कृति है। इसलिए इसे श्रमण संस्कृति कहा जाता है। श्रमण संस्कृति का मुख्य आधार साधना, त्याग, सेवा और समर्पण रहा है। श्रमण संस्कृति ऊँचे महलों भव्य-भवनों एवं सोने चाँदी के अम्बारों को महत्त्व नहीं देती बल्कि यह मानव की आन्तरिक साधना, त्याग व उच्च विचारों पर बल देती है। इसे सन्त जीवन के पवित्र भाव विरासत में मिले हैं।

यह बहुत प्रसन्नता का विषय है कि श्रमण संस्कृति के प्रतीक परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी म. अपने जीवन का अधिकांश भाग तप-त्याग व साधना में लगाकर श्रमण संघ के गौरव को बढ़ा रहे हैं।

आपने श्रमणत्व की मौलिक विशेषताओं को अपने जीवन में उतार कर सन्तत्त्व का सजीव चित्रण उपस्थित किया। आप अपने जीवन के अनमोल क्षणों में सजग प्रहरी की भाँति साधु-मर्यादाओं का पालन करते हुए संघ के गौरव में चार चांद लगा रहे हैं। आपके जीवन के कण-कण में, अणु-अणु में साधना का स्रोत बहता है। जिस प्रकार धुन्ध में धवलता, पुष्प में सुगन्ध एवं चन्द्र में शीतलता समाई हुई है, इसी प्रकार आपके जीवन में साधना व्याप्त है। आपका हृदय नवनीत के समान-कोमल, गंगा-सम निर्मल, चन्दन-सम शीतल एवं सूर्य-सम तेजस्वी है। आपकी वाणी में मधुरता है।

महापुरुषों के जीवन को लाईनों में नहीं बांधा जा सकता क्योंकि महापुरुषों का जीवन तो अथाह समुद्र की भाँति होता है। मुझे आपश्री जी के पावन दर्शनों का सौभाग्य अनेकों बार मिला है। इतनी प्रसन्न मुद्रा, सौम्यता शायद ही किसी में देखने को मिली।

आज आपकी पावन दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के मंगलमय अवसर पर मैं आपके श्री चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ एवं शासनेश प्रभु से यही कामना करती हूँ कि आप इसी प्रकार अपनी यश रूपी किरणें फैलाते रहें और हमें मार्ग दर्शन देते रहें।

दीक्षा-जयन्ति के शुभ अवसर पर मैं आपको समस्त साध्वी मण्डल की ओर से बहुत-बहुत बधाई देती हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा :
उप प्रवर्त्तक पद है पाया, श्रमण संघ के दृढ़ आधार।
युग युग जीओ सुमन गुरुवर, सर्वत्र जय जयकार।।

❑ साध्वी ओमप्रभा
(उपप्रवर्तिनी महासाध्वी श्री कैलासवती जी की शिष्या, पंजाब)

जैन जगत के गौरवशाली संत

श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनकुमार जी म.सा. ने संयमी जीवन के ४६ वर्ष पूर्ण किए हैं। वस्तुतः संत चलते-फिरते 'पावर हाउस' है जिन्हें जीवन में ऊर्जा (शक्ति) चाहिए उन्हें संतों तथा महान पुरुषों से जुड़ना ही पड़ेगा।

सन्त चलता फिरता आइना है, जो सन्तों के सामने आता है उसका प्रतिबिम्ब आइने में झलक जाता है, सन्तों के पास आने से वे डरते हैं जो कुरूप होते हैं। पहाड़ के पास आने से ऊंट डरता है, संत के पास आने से झूठ डरता है।

सन्तों की वाणी समस्याओं की पूर्ति है और जिज्ञासाओं का समाधान है। संत समाधि के स्वर हैं। संत नर और नारायण के माध्यम हैं। यदि सन्तों तथा साध्वियों से कुछ पाना है तो अपने अस्तित्व को उनके चरणों में विलीन करना आवश्यक है।

इन युक्त परिभाषाओं का चित्रण एवं मिश्रण हमारे चरित्रनायक श्री सुमनकुमार जी में सहज परिलक्षित होता है। आपकी भक्ति में सराबोर अनेक भक्तों ने संघ-समाज के लिए कई अनुपम कार्य किये हैं।

मैसूर में जैन दर्शन एवं प्राकृत भाषा का कार्य जो आपने करवाया है वह तो जैन जगत के लिए एक विशेष गौरव की बात है और भविष्य में भी गौरवशाली बात रहेगी।

आपके अतिशय एवं प्रवचन से प्रभावित होकर आपके आशीर्वाद हमेशा प्राप्त होते रहें इसलिए "गिरवी ऐसोसिएशन भवन" बैंगलोर पर आपके आशीर्वचन का शिलालेख भी लगवा दिया है। ताज्जुब ही है कि यहाँ अकसर संत सतियों का ठहरना हो ही जाता है।

आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का लेखा जोखा करना आसान नहीं है। कब, कौन, कहाँ इनके आशीर्वाद से पल्लवित पुष्पित हुआ, वे सब एक जगह इकट्ठे हो और कह भी दे तो भी वह क्रिया आधी अधूरी ही रहेगी, गुरु कृपा की महिमा अपार है। यह कृपा भी अनेकानेक भक्तों ने प्राप्त की है। मुझे भी विगत नौ वर्षों से मिल रही है। आभार व्यक्त करने को शब्द नहीं है। आपके संयम के ५०वें वर्ष में यही मंगल कामना करता हूँ कि आप अपने लक्ष्य को प्राप्त करें। साथ ही जन साधारण के लिए आप कामधेनु एवं कल्पवृक्ष बनें। आपके सान्निध्य में आने वाला जिज्ञासु अपने भवों की शृंखला को कम से करे और सन्तोमय जीवन यापन करें।

पूज्य श्री के चरणों में सविधि वन्दना

❑ श्री चेतन प्रकाश डूंगरवाल,
बैंगलोर

संयम - निष्ठ मुनिराज

पंजाब प्रान्त के मूर्धन्य मनस्वी संत रत्न श्रमणसंघीय सलाहकार श्री सुमन मुनि जी महाराज की पचासवीं दीक्षा-स्वर्ण-जयंति माम्बलम् चेन्नई श्री संघ द्वारा समारोह पूर्वक आयोजित की जा रही है। यह परम प्रसन्नता का विषय है। पूज्य श्री का समग्र जीवन संयम और साधुता के लिए समर्पित रहा है। ऐसे संयम निष्ठ पुरुषों की दीक्षा-स्वर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयंतियां नवयुग चेतना में संयम के प्रति निष्ठा जागृत करेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इस गौरवमयी क्षण पर मैं अपने मुनि संघ की ओर से पूज्य श्री का अभिनन्दन करता हूँ।

उप प्रवर्तक अमर मुनि
नांगलोई, दिल्ली

अभिनन्दनाञ्जलि

परम वंदनीय पूज्यवर श्री सुमन मुनि जी महाराज श्रमण संघ के एक वरिष्ठ मुनिराज हैं। विगत पचास वर्षों से आप अपने गुरु गुरुमह आदि पूर्वजों के पदचिन्हों पर चलते हुए श्रमण संघ को सुदृढ़ बना रहे हैं तथा उसकी गौरवमयी परम्पराओं की संरक्षा के लिए सम्यक् श्रम कर रहे हैं।

आप एक अत्यन्त सरल मुनिराज है। आपकी वाणी-विचार और व्यवहार की एकरसता सबको अपना बना लेती है। आप हमारे क्षेत्र में पधारे। आपकी प्रेरणा से हमारे श्री संघ में नवचेतना का संचार हुआ और स्थानक भवन की आधारशिला रखी गई जो वर्तमान में मूर्त रूप ले चुकी है।

कुण्डीतोप श्रीसंघ आपका हृदय से आभारी है एवं आपकी दीक्षा-स्वर्ण-जयंति पर आपका अभिनन्दन करता है।

मंत्री
एस.एस.जैन संघ कोंडीतोप, चेन्नई

धर्म दिवाकर!

श्रमणसंघ के निर्माण से लेकर आज तक जिनकी श्रमणसंघ-विकास व व्यवस्था में अहम् भूमिका रही है, उनमें से ही एक संत रत्न है – स्पष्टवक्ता, इतिहास केसरी, प्रवचन भास्कर, श्रमणसंघ के सलाहकार, मंत्री पूज्य श्री सुमनकुमार जी म.सा.।

आप युवाकाल से ही निर्भीक एवं स्पष्टवक्ता सन्त रहे हैं। आपकी सेवा करने का एवं दर्शन - प्रवचन श्रवण का अनेक बार मुझे शुभावसर मिला है। मैं आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व से सदैव प्रभावित रहा। पूना-श्रमण-सम्मेलन में आपकी भूमिका इतिहास के पृष्ठों में उल्लेखनीय है। बैंगलोर में तपसम्राट् श्री सहजमुनि जी म.सा. के ३६५ दिवस के तपोत्सव पर भी हमें आपका मार्गदर्शन मिला। श्रमणसंघ के लिए आपकी सदैव महती भूमिका रही है।

दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति पर मनोर्मियाँ यही लहरा-लहरा कर कह रही हैं कि आप शतायु हों और अपने मार्गदर्शन से जन-जन का कल्याण होता रहे ! यही सद्भावना कि-

जिन-धर्म की बगियाँ में
सुमन की सुरभि प्रसरे !
धर्म-प्रचारक बनकर गुरुवर
कितने क्षेत्रों में विचरे !!
हे धर्म दिवाकर! जय हो,
विजय हो, यश पताका फहरे !!!

❑ **जे. माणकचंद कोठारी**
महामंत्री
श्री अ.भा. श्वे-स्था. जैन कॉन्फ्रेन्स, नई दिल्ली

चिरायु जीवन की कामना

भारतीय संस्कृति की संरचना में ऋषि-मुनियों का महान् योगदान रहा हैं। इस संस्कृति को संत भगवंतों ने ही विवेक की सरिता में निमज्जित कर उज्ज्वल बनाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संत का जीवन उपवन में खिले सुमन के समान है, उनकी साधना-सौरभ का मधुपान करने हेतु प्रत्येक जिज्ञासु लालायित है।

परमश्रद्धेय श्री सुमनमुनि जी म.सा. का जीवन भी त्याग, संयम, सरलता, समता और शुचिता का जीता जागता स्वरूप है। अर्धशतक संयम साधना से शुचिभूत आपका जीवन सभी के लिए वंदनीय है। आपका बाह्य-व्यक्तित्व जितना मोहक और भव्य है, उससे भी कहीं अधिक अंतरंग जीवन प्रतिबिंब आकर्षक है और वह आपके दैनिक कृतित्व में झलकता हैं। आपका जीवन साहस, स्नेह, संगठन की निर्मल गंगा बहानेवाले सद्गुणों का सुहावना 'सुमनदस्ता' है। जिसकी सुवास से आकृष्ट होकर मेरा मन भ्रमर सदैव आपके चरणों में आस्थावान् रहा है। आपकी कृपा का पात्र बनकर मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूँ। मैं आपके चिरायु जीवन की शुभकामना करता हुआ, आपके पुनीत पदाम्बुजों में प्रणाम करता हूँ।

❑ **जे. मोहनलाल चोरड़िया,** मैलापुर
(अध्यक्ष, अ.भा.स्था. जैन कॉन्फ्रेंस, तमिलनाडु – शाखा)

धन्य है आपकी अद्वितीय साधना

विद्वद्वरेण्य श्री सुमनमुनिजी महाराज के चरणों में श्रध्दार्पित। इस विश्व में कुछ ऐसी महान आत्माएं भी होती हैं जो विश्व को नवजागृति का मधुर संदेश देती हैं, सुप्त मानव जाति में नवचेतना जागृत करती हैं, संसार को नवजीवन प्रदान कर अच्छे एवं अत्यंत समुन्नत संस्कार प्रदान करती है।

भारत की पावनभूमि "धर्म-क्षेत्र" के नाम से भी प्रसिद्ध रही है। इस धर्मक्षेत्र को शासक वर्ग ने प्रबंध एवं अन्य दृष्टि से अनेक प्रांतों के रूप में विभक्त करके अनेक नाम दिए हैं। इन नामों में एक गौरवशाली नाम है – "राजस्थान" मरूधरा की भूमि; वह भूमि है जो सभी क्षेत्रों – धर्म, वीरता, देश भक्तों आदि की जननी रही है। राणा सांगा, महाराणा प्रताप आदि ऐसे वीरों के नाम हैं जो देश की रक्षा के लिए तन-मन-धन से सदैव तत्पर रहे हैं। भामाशाह जैसे दानवीर भी इसी धरा की देन हैं। मीराँ जैसी भक्त-प्रवीणा महिला भी इसी प्रांत की गुण गरिमा को प्रकट करनेवाली देवी रही है और इसी धरा पर (बीकानेर की वीर प्रसू भूमि में) श्री मुनि सुमन कुमारजी जैसे तपस्वी त्यागी-संयमी गुणों से युक्त अद्वितीय संयमी साधु ने जन्म लिया।

आपश्री आगमों के व्याख्याता हैं, प्रबंध की दृष्टि एवं संघ-ऐक्य की दृष्टि से दूरदर्शी विद्वान् संत है। जिनकी साधना की सुगंध समस्त जैन समाज को सुगंधित कर रही है। उन्होंने सर्वत्र धर्मप्रचार करते हुए समस्त उत्तरी भारत को अपनी चरण रज से पावन किया है और अब दक्षिण भारत को अपने धर्मसंदेशों द्वारा पावन कर रहे हैं। त्याग-तपस्या, सरलता, संयम आदि की दृष्टि से आपश्री का उत्तराध्ययन सूत्र के इन शब्दों से गुणगान किया जाय तो वह अत्युक्ति नहीं होगी –

अहो ते अज्जवं साहू अहो ते साहू मद्दवं।
अहो ते उत्तमा खन्ति, अहो ते मुत्ति उत्तमा।।

मुनिवर, आपकी आर्जवता, सरलता, सहनशीलता, क्षमा प्रदान करने की क्षमता और आपकी मोक्ष के लिए की जानेवाली साधना अद्वितीय है, धन्य है ! प्रशंसनीय है।

आपकी प्रवचन शैली अत्यन्त सरल, सुस्पष्ट, उद्बोधक एवं धर्ममयी होती है। आपकी दिनचर्या की पावनता एवं सुदृढ़ता के दर्शन कर श्रावक-श्राविकाएँ कृत-कृत्य हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धेय गुरूदेवश्री को यदि पंजाब, उत्तरीभारत का, श्रमणसंघ के आज तक के इतिहास की जानकारी का सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पूना जैसे श्रमणसंघीय सम्मेलन को निर्विघ्नता से संपन्न करवाने में इन्हीं का कुशल हाथ है। विद्वान् मुनियों में भी आपका स्थान शीर्षस्थ है। पंजाब प्रान्त से बाहर-जाकर बारह वर्षों में आपने जो ख्याति प्राप्त की है उससे आपश्री के गुरुदेवों का महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडू, आंध्रप्रदेश आदि में भी नाम उज्ज्वल हुआ है। हम आपश्री के सदैव ऋणी रहेंगे। श्रमणसंघ में आई अति गंभीर समस्याओं को सुलझाने में आपका सदैव सहयोग रहा है।

उत्तरी भारत में उपाध्याय पद की समस्या जो आई थी और आचार्य सम्राट श्री आनंदऋषि जी महाराज के समय अत्यंत गंभीर स्थिति ले चुकी थी उस गहन समस्या को सुलझाने में आपका योगदान कभी भी विस्मृत नहीं कर सकेंगे।

अंत में मैं केवल इतना ही लिख सकता हूँ कि ऐसे दूरदर्शी निडर स्पष्ट वक्ता संत बहुत ही कम होंगे।

"कदम चूम लेती है खुद आके मंजिल।
मुसाफिर अगर, हिम्मत न हारे।"

❑ **टी. आर. जैन,** लुधियाना
संरक्षक : श्री अ.भा.श्वे.स्था. जैन कान्फ्रेंस, नई दिल्ली

समन्वयवादी विचारों के धनी

प्रायः देखने में आया है कि जिस व्यक्ति का जन्म अथवा दीक्षा वसन्त पञ्चमी को हो तो वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली होता है, उसका जीवन चमकता है और वह दूसरों के लिए आदर्श बनता है। ....यह बात श्रद्धेय मुनिश्रेष्ठ पर पूर्णरूपेण सिद्ध होती है।

आपने अपने सुदीर्घ प्रवास में अनेक प्रान्तों में विचरण करके पंजाब-हरियाणा का नाम रोशन किया है। आपका जीवन संयमशील एवं विवेकशील है। आप निर्भीक वक्ता और सूझबूझ के धनी हैं। जिन-जिन पदों से आपको अलंकृत किया है, उन पदों के लिए आपश्री का व्यक्तित्व अनुकूल हैं। आप मिलनसार, समन्वयवादी, विचारों के धनी एवं सरल आत्मा हैं।

दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के अवसर पर हम आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं तथा भावना भाते हैं कि आप वीर प्रभु के संयम-मार्ग पर अग्रसर होते रहें तथा शिथिलाचार जहाँ भी नज़र आये, उसका घोर विरोध करें।

❑ **राधेश्याम जैन**
प्रधान, एस.एस. जैन सभा, चण्डीगढ़
एस.एस. जैन महासभा, हरियाणा

गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी

जीवन क्या है? जीवन कैसे जीना चाहिए? जीवन का उद्देश्य क्या है और क्या होना चाहिए? इन सभी का उत्तर पाने की जिज्ञासा हुई। इसके लिए बड़े-बूढ़ों के अनुभवों को सुना, कुछ किताबें पढ़ीं, कुछ जीवन चरित्र पढ़े। सब में और सबसे एक ही उत्तर मिला – सत् गुरु की प्राप्ति। सत्गुरु की प्राप्ति में सब प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा।

"रत्नगर्भा वंसुधरा" की उक्ति आज भी है और भविष्य में भी रहेगी। अनेक भिन्न-भिन्न मतावलंबी है। हर एक मत में अपने-अपने पूज्यनीय है जो अपने संगठनों, अपनी मान्यताओं और अपनी धार्मिक वृत्तियों को संचालित करते आ रहे हैं और समाज भी एक सूत्र में बंधकर उक्त मान्यताओं के अनुरूप कार्यकर यशस्वी बनता है। जब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज यशस्वी होता है तो उसका श्रेय उसके संचालक को ही जाता है। ऐसे महामानव पूर्व काल में अनेक हो गए हैं और आज भी है और आगे भी होंगे।

इसी क्रम में जैन श्रमण भी है जिन्होंने जैन समाज के स्थायित्व के लिए बड़े-बड़े कार्य करवाये हैं। ये साधक सर्वप्रथम "जीवन क्या है?" उससे सभी को परिचित करवाते हैं। इनके सदुपदेशों से जिज्ञासु मानव जीवन जीने की कला सीख लेता है। तप-त्याग, व्रत-प्रत्याख्यान, दान-पुण्य उसके जीवन के अंग बन जाते हैं। वह समझ के साथ समाज के लिए समर्पित हो जाता है क्योंकि उसे जीवन जीने की कला तथा जीवन उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। अनेकानेक उदाहरण आपको मिल जाएँगे कि अमुक व्यक्ति अमुक श्रमण-श्रमणी के संपर्क में आने के पश्चात् उसका जीवन ही बदल गया और समाज का वल्लभ एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति हो गया। सिंकदर के समय से लेकर आज तक अनेकानेक व्यक्ति इसके उदाहरण है जिनसे इतिहास भरा पड़ा है। ठीक वैसे ही आज दक्षिण में श्रमणाचार की प्रतिमूर्ति श्री सुमनमुनिजी म.सा. है। इनका जीवन ४६ वर्ष के श्रमणत्व जीवन के उदाहरणों से आते प्रोत है। आपश्री ने जैन स्थानकवासी परंपरा के प्रथम आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा., द्वितीय पट्टधर श्री आनंदऋषिजी म.सा. एवं तृतीय पट्टधर देवेन्द्रमुनिजी म.सा. का सानिध्य प्राप्त किया है। जीवन के प्रथम चरण में ही इन्हें सद्गुरु की प्राप्ति हो गई थी। उनका सदुपदेश सुनकर सन्मार्ग की ओर अग्रसर हो गए, यह आपके प्रबल पुण्यशील होने का द्योतक है। फिर सद् साहित्य का गहन अध्ययन उस पर विद्वानों के संपर्क से चिंतन मनन करने का सुअवसर भी प्राप्त हो गया। खुद परिपक्व हो जाने के पश्चात् अपने अनुभवों के साथ लेखनकार्य भी आपने संपन्न किया जो समाज को तथा साधकों के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

साधक जीवन में ग्रामानुग्राम विचरण करते आपने अपने सद् उपदेशों से, प्रेरणाओं से समाजहित में अनेकानेक कार्य करवाये हैं। वर्तमान में समाज उन कार्यों से लाभान्वित हो रहा है और समाज का उज्ज्वल भविष्य सुरक्षित है।

एक साधक अपनी साधना में सचेत रहते हुए भी समाज के लिए बहुत कुछ कर सकता है। वस्तुतः जीवन की सार्थकता, अंतिम लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष पानेवालों को श्रमणत्व के दौर से गुजरना ही पड़ेगा। कौन जाने यह आत्मा भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के कौन से चरण में है। मगर यह सत्य है कि भवों-भवों तक साधना करते रहने से ही कर्मबंध शिथिल होते हैं और श्रमणत्व प्राप्त कर सीढ़ी दर सीढ़ी वे अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करते है। आप भी अपने लक्ष्य में सफल हो यही मेरी मंगल मनीषा है। आपकी असीम कृपा रही जो आपके इतने सन्निकट आ सका। आपने असीम कृपा करके मेटुपालियम् में चार्तुमास किया एवं मुझे तथा मेरे परिवार को उपकृत किया है। हमें सद्मार्ग सिखाया है। समाज की भावी पीढ़ी पर आपने अनंत उपकार किया है। चार महीनों तक सतत धार्मिक शिक्षण देकर बालक बालिकाओं को शिक्षित किया है। युवकों में धर्म के प्रति रुचि पैदा की है। प्रौढ़ एवं बुजर्गों को उनके दायित्व से परिचित करवाकर उन्हें श्रद्धान्वित बनाया है। यह हमारे अपने अनुभव हैं। मैं तथा समग्र समाज आपश्री के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। आपके सन्निकट आने से हम आपकी महानता, श्रेष्ठता से प्रभावित हुए हैं। हम आपकी दीर्घायु की तथा स्वस्थ स्वास्थ्य की मंगल कामना करते हैं।

आज मेरी स्थिती गूंगे की है। मैं आपकी विशेषताओं का, आपके द्वारा की गई समाज के प्रति सेवाओं का वर्णन अपने शब्दों में नहीं कर सकता हूँ। सच ही कहा है – **"गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी।"** हूँ। आप चतुर्विध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघ के लिए है। मैं पूर्ण रूप से सराहना कर रहा हूँ कि आप श्रमणत्व के प्रतीक हैं। पहचान हैं। गौरव हैं। हम गौरवान्वित हैं आपके दर्शन पाकर।

आप दक्षिण के समस्त प्रांतों को घूम-घूम कर घर-घर जिनशासन की जाहोजलाली करें और ग्राम नगर पधारकर धर्म संदेश को पहुँचावें। साथ ही जैनेत्तर लोगों में भी जैनत्व की छाप पड़े इस पर एक विस्तृत कार्यक्रम बनाकर श्रावकों की एक समिति बनाकर उन्हें काम सौंपे। आप सक्षम हैं। आप कार्य में विश्वास रखनेवाले व्यक्तित्व है।

आपसे श्रमणसंघ गौरवान्वित है। उसी अनुरूप आप चतुर्विध संघ का मार्गदर्शन करावें और कार्य की क्रियान्विती पर जोर दिरावें। यही मंगलकामना है।

वस्तुतः- मैंने आपसे बहुत कुछ पा लिया है। कारण आपने भी मुझे बहुत कुछ दिया है। इसलिये पुनः मांग कर रहा हूँ अतः क्षमा करावें। आपकी प्रेरणा से यहाँ स्थानक भवन तथा आप द्वारा उद्घाटित पथ का विश्रामगृह दोनों साधना क्षेत्र में उपयोगी हो रहे हैं।

समग्र शुभकामनाओं सहित आप अपने ५० वें दीक्षा के वर्ष में प्रवेश करें। साथ ही पूर्व की भांति आप उसी उत्साह एवं लगन के साथ जिनशासन की सेवा में अग्रसर हों। आप सदा-सदा स्मरणीय रहें। इन्हीं मंगल कामनाओं के साथ –

"श्रद्धा की दूरबीन में झलकती ज्योति,
इनको अर्पित मेरे ये मोती"।।

❑ भंवरलाल साँखला
अध्यक्षः एस.एस. जैन संघ, मेटुपालियम्

गुणों के सागर

मुझमें यह योग्यता नहीं कि किसी महान सन्त जीवन का सही-सही विश्लेषण कर सकूं, और न ही मेरी लेखनी में इतना बल है कि पूज्य गुरुदेवश्री के दिव्य गुणों का वर्णन कर सकूं। पूज्य गुरुदेव के सम्बन्ध में मुझ जैसे अल्पज्ञ द्वारा कुछ लिखना, सूर्य की रोशनी का मूल्यांकन एक दीपक की रोशनी से करने जैसा होगा। तथापि श्रद्धेय गुरुदेव के सम्बंध में यथा सामर्थ्य कुछ भावोद्गार प्रकट करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

श्रमण संघीय सलाहकार-मंत्री, उपप्रवर्तक, पंडितरत्न परम श्रद्धेय पूज्य श्री सुमनकुमार जी म.सा. से मेरा पहला परिचय २६ जनवरी सन् १९९३ को. माम्बलम् (चेन्नै) के नवनिर्मित स्थानक भवन के उद्घाटन के शुभ अवसर पर माम्बलम् श्रीसंघ के पूर्व मंत्री श्री मान् भीखमचन्दजी गादिया ने एक सिविल इन्जीनियर के रूप में करवाया। तत्पश्चात् १९९३ के माम्बलम् चातुर्मास में मुझे आपश्री के दर्शन एवं जिनवाणी श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। लेकिन पूज्यश्री का निकट परिचय जून १९९८ में हुआ। जब पूज्यश्री पाँच दिन के लिए शेष काल में माम्बलम पधारे एवं मुझे माम्बलम् श्री संघ के एक मंत्री के रूप में पूज्यश्री जी की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् १९९८ के साहूकार पेट (चेन्नै) चातुर्मास में अनेक बार गुरुदेवश्री के पावन दर्शन व प्रवचन का लाभ प्राप्त होता रहा। जैसा मैंने मुनिश्री को देखा है, समझा है, उसका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है –

मैंने अनुभव किया कि **"पूज्य गुरुदेव गुणों के सागर हैं।"** और जिनका वर्णन मेरी यह लेखनी सैंकड़ों वर्षों तक भी नहीं कर सकती। आपश्री एक उच्चकोटि के प्रवचनकार के साथ साथ निर्भीक वक्ता, आगमज्ञ, अनुभवी संत एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आपकी वाणी में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपूर्व बल है, जो भी आपके संपर्क में आता है प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अंग्रेजी की एक कहावत है –

"The Finest Eloquence is that which gets things done." आपश्री जी के जीवन से पूर्ण चरितार्थ होती है। आप श्री की प्रवचन शैली श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देती है। स्पष्ट वक्ता होने के नाते सत्य बात को जनता के समक्ष प्रगट करने में आप हिचकिचाते नहीं। आपश्री भक्तों को सुधारने के लिए कभी-कभी कठोर शब्दों का प्रयोग भी करते हैं, परन्तु उसका प्रभाव श्रोतों पर अमृत के समान होता है। यही नहीं आप आने वाले भक्तों की इच्छाओं को समझ कर यथा-विधि व्यवहार करते हैं। आप श्री जैन आगमों का विवेचन बड़े ही सुन्दर ढंग से छोटे-छोटे दृष्टांतों के माध्यम से प्रस्तुत कर श्रोताओं का दिल जीत लेते हैं। सम्पूर्ण चेन्नई महानगर आपश्री के तेजस्वी-ओजस्वी प्रवचनों को श्रवण कर कृतार्थ अनुभव कर रहा है। पूज्य गुरुदेव को श्रमण संघ का एक कर्णधार, आधार स्तम्भ, ज्योतिर्मान नक्षत्र एवं प्रकाशमान सूर्य कह दूं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा।

पूज्यश्री सुमन मुनि जी म.सा. साहित्यकार एवं लेखक भी हैं। आप श्री की ही प्रबल प्रेरणा से आपके ५६ वें जन्म दिवस पर एवं माम्बलम के जैन स्थानक के उद्घाटन के अवसर पर **“भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ”** की स्थापना हुई। इस संस्था से अभी तक करीब १२ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिन्हें पूरे भारत में अमूल्य वितरित किया जाता है। इस स्वाध्याय पीठ का श्रेय पूज्य गुरुदेव को ही जाता है।

सम्पूर्ण माम्बलम श्री संघ के लिए यह गौरव एवं गरिमा का विषय है कि आपश्री का द्वितीय वर्षावास हमारे श्रीसंघ को प्राप्त हुआ एवं पूज्यश्री का **‘दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति-समारोह’** जो कि आसोज शुक्ला त्रयोदशी दिनांक २२ अक्तूबर १९९९ को सुनियोजित करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा है। श्रीसंघ में आपके वर्षावास से भारी उत्साह है। सभी श्रोतागण आपश्री के मुखारविन्द से ‘आचारांग सूत्र’ के माध्यम से भगवान महावीर की वाणी को श्रवण करने का लाभ उठा रहे हैं। माम्बलम श्री संघ इसके लिए आपका आभार व्यक्त करता है।

हम दीक्षा स्वर्ण जयन्ति के मंगलमय अवसर पर आपश्री के स्वास्थ्य की मंगल कामना करते हुए आपश्री के पावन पवित्र चरण सरोजों कोटिशः- कोटिशः वन्दन नमस्कार करते हुए हार्दिक अभिनन्दन के साथ भावाञ्जलि! विनयाञ्जलि !

हम यही सत्कामना करते हैं कि आप सदा हमारे बीच अन्धकारमय समुद्र में देदिप्यमान प्रकाश स्तंभ की तरह समाज का मार्ग दर्शन करते रहें एवं अपने ओजस्वी प्रवचन के माध्यम से मनुष्य मात्र के मन से घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ एवं मोह माया के अन्धकार के नष्ट करते रहें।

इन्हीं शुभ एवं मंगल कामनाओं के साथ अंत में केवल दो पंक्तियाँ लिखकर अपनी लेखनी को विराम दूंगा।-

हे श्रमण संघ के सुमन, शतशः-शतशः प्रणाम!
दीक्षा जयन्ति का वर्ष, अभिनन्दन करते हैं सहर्ष!!

❑ **एम. उत्तमचन्द गोठी** (सिविल इंजि.)
मंत्री, श्री एस एस जैन संघ
टी. नगर माम्बलम

प्राकृत भाषा प्रचारक

पंडितरत्न मुनि श्री सुमन कुमार जी म. की दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के पावन प्रसंग पर श्री सुमन मुनि दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति-अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है, जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस शुभ प्रसंग पर अनेकों पदवियों से अलंकृत सरल स्वभावी, मृदुभाषी, स्पष्ट एवं निर्भीक वक्ता परमपूज्य गुरुदेव श्री सुमन कुमार जी म.सा. को मेरा विनम्र भक्तिभाव पूर्ण वन्दन और दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के अवसर पर अभिनन्दन।

मुनि सुमनकुमार जी म. के दर्शन का सौभाग्य दक्षिण भारत में आपश्री के प्रवेश के पश्चात् हुआ। तबसे निरन्तर दर्शन का संयोग प्राप्त होता रहा है। धार्मिक कार्यों एवं समाज के उत्थान हेतु समय-समय पर आपसे चर्चा होती रही है। सन् १९९६ में आपका चातुर्मास मैसूर शहर में होने से तथा मैसूर संघ के मंत्री पद पर होने से संपर्क और अधिक गहराया कई बातें जीवन उन्नति की आपसे सीखी।

आप सरल हृदयी, सौम्य स्वभावी, तेजस्वी एवं ओजस्वी हैं। आपके समक्ष अधिकारी हो या कर्मचारी, श्री मन्त हो या सामान्य, निडरता से अपने सही-सुन्दर विचारों को प्रकट करना आपका उत्तम गुण है। आपकी प्रवचन-शैली अपने आप में भिन्न है। बड़े से बड़े विद्वान भी आपके दर्शनार्थ आते हैं। ज्ञान-चर्चा आगम सम्बन्धी हो या सामाजिक हो, आप उसका सटीक उत्तर देते हैं। कई उलझी हुई समस्या को भी आपने आसानी से समझाया, सुलझाया, २४-१०-९६ को आपकी ४७ वीं दीक्षा-जयन्ति महोत्सव पर मैसूर के युवराज एवं सांसद श्री कंटदत्त नरसिंहराज-वोडेयार मुख्य-अतिथि के रूप में पधारे और मुनिश्री को हार्दिक बधाईयाँ दी। मुनि श्री के प्रवचन से काफी प्रभावित रहे। उन्होंने मुनिश्री से कुछ समय तक धर्म-चर्चा भी की। आपके चातुर्मास काल में मैसूर के सांसद, सभी विधायक, मेयर, महापौर, जिलाधीश, अधिकारी गण एवं विश्वविद्यालय के विद्वद् जनों का आगमन होता रहा जनोपयोगी सेवाएँ, विभिन्न कार्यक्रम निरंतर चलते ही रहे।

आपने जैन आगमों की भाषा को जन-जन तक पहुँचाने की भावना से श्रीसंघ को प्रेरणा देकर एक विशाल 'प्राकृत भाषा एवं जैन सम्मेलन' आयोजित करवाया। सम्पूर्ण योजना में देश भर के कई प्राकृत-भाषाविद् जैन धर्म- दर्शन साहित्य के जानकार, विद्वद् जनों ने भाग लेकर दिनांक १६-१७ नवम्बर १९९६ के दिनों को एक अविस्मरणीय और ऐतिहासिक बना दिया। जिसके ही फल स्वरूप (२६-१-१९९७) को यहाँ पर 'भगवान महावीर प्राकृत भाषा जैन विद्यापीठ' की स्थापना हुई और लगातार अब तक प्रति शनिवार-रविवार को कक्षाएँ चलती आ रही हैं। १६ विद्यार्थी अध्ययन रत हैं। प्राकृत व्याकरण, जैन आगमों का अध्ययन इसमें करवाया जा रहा है। स्वाध्यायी बन्धुओं के निर्माणकार्य में इसका भविष्य अवश्य ही उज्ज्वल रहेगा।

समय-समय पर मुनि श्री का आशीर्वाद-मार्गदर्शन-प्रेरणा भी हमें मिलती रही है। मुनि श्री जी म. स्वयं प्राकृत भाषाविद् हैं।

अंततः आपश्री स्वस्थ एवं नीरोग रहे ताकि हम और अधिक लाभान्वित हो सके। आप दीर्घायु हों, इसी भावना के साथ

श्रद्धार्पण! वन्दन!!

❑ **बी.ए. कैलाशचंद जैन,** चेयरमेन,
भगवान महावीर प्राकृत भाषा जैन विद्या पीठ, मैसूर

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की त्रिपथगा

परम श्रद्धेय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी म. भगवान् महावीर की श्रमण-संस्कृति के सन्देशवाहक हैं। आप श्री ने श्रमण-संस्कृति की शिक्षा-दीक्षा लेकर जीवनपर्यन्त संस्कृति, साहित्य, तत्त्वज्ञान, इतिहास, धर्मशास्त्र, ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि के प्रचार-प्रसार करने में ही आपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रामण्य जीवन को सफल, सार्थक एवं धन्य बनाया है। ऐसे श्रमणवर्य सन्त की शिक्षा-दीक्षा-जयन्ति राष्ट्र, समाज एवं धर्म संघ को प्रगतिशील बनाने में अवश्य ही पथ-प्रदर्शक सिद्ध होगी। ऐसा मुझे विश्वास है।

परम श्रद्धेय श्रमणवर्य मुनि श्री सुमनकुमार श्री म. की दीक्षा-स्वर्णजयन्ति समारोह का विराट् आयोजन वस्तुतः ज्ञान-दर्शन - चारित्र युक्त महिमामय श्रामण्य जीवन का सत्कार एवं सम्मान है। इसके लिए मैं इसके आयोजकों को धन्यवाद देता हूँ।

मैं अनेक पूज्य सन्त-सतियों के निकट परिचय में आया हूँ लेकिन पूज्य श्री सुमनमुनि जी के उत्कृष्ट श्रामण्य-जीवन के विशुद्ध आचार-विचार, आहार-विहार, प्रचार-प्रसार एवं चतुर्विध संघ के समुत्थान के लिए सर्वोदयमूलक जो अहिंसा नीति एवं विवेकपूर्ण अनेकान्तदृष्टि से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। ऐसे प्रतिभा सम्पन्न एवं तेजस्वी सन्त समाज में विरले ही दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे तेजस्वी 'विरले' सन्तों में पूज्य श्री सुमनमुनि जी म. भी है। वस्तुतः श्री सुमनमुनि जी म. अपने नाम के अनुरूप गुणसम्पन्न भी है। सुमन – सुमनस्वी हैं साथ ही सुमन का बहिरंग सत्यं, शिवं, सुन्दरं है तो अन्तरंग भी सुरभित है। आप श्री का श्रामण्य जीवन बाहर से जैसा मनोहारी एवं चित्ताकर्षक है वैसे ही अंदर से भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की 'सौरभ' से सुवासित भी है। जैसा आपश्री का वेष-परिधान शुक्ल है वैसे ही आचार-विचार भी निष्कलंक एवं शुक्ल है। आप श्री का श्रामण्य जीवन ही शुक्ल नहीं है, अपितु ज्ञान-दर्शन-चारित्र की त्रिपथगा की पवित्र - निर्मल रसधारा से परिप्लावित है।

ऐसे सन्तरत्न श्री सुमनमुनि जी म. के श्रामण्य जीवन को शतशः अभिवंदन के साथ विनम्र अभिनंदन! श्रद्धावनत-

❑ **शांतिलाल वनमाली सेठ**
संस्थापक एवं संचालक
सन्मति विद्यापीठ, जयनगर, बेंगलोर

संत प्रवर : सुमन मुनिवर

दीक्षा-स्वर्ण जयंती वर्ष के सदर्भ में

जीवन के समस्त आचरणों का समष्टिगत नाम चरित्र है। जब ये आचरण शुभ और निःस्वार्थ भाव से प्रेरित होते हैं, तो वे सच्चरित्र की सृष्टि करते हैं। जीवन-भर अपनाया जानेवाला सच्चरित्र ही चारित्र्य कहलाता है। इस चारित्र्य के मार्ग पर चरणन्यास करनेवाले ही साधु या संत होते हैं। मन-वचन-कर्म से सदाचरणों का पालन करते हुए समर्पित जीवन जीने वाले संत-महात्माओं द्वारा ही संसार का उद्धार संभव है। पर चारित्र्य के मार्ग पर चलना सहज और सरल नहीं है, वह तो **'तरवारि की धार पे धावनो है'**। ऐसे ही चारित्र्य-धर्मी साधुओं की **'नमो लोए सव्व साहूणं'** कहते हुए वंदना की गई है। 'नवकार मंत्र' के **'आयरियाणं'** और **'उवज्झायाणं'** पदों का समाहार भी 'साहूणं' में हो जाता है। इसीलिए साधु का पद मंगलकारी और लोकोत्तम माना गया है। यही कारण है कि जीवात्मा भव-भव में **'साहू सरणं पवज्जामि'** का उद्घोष करती हुई और अरिहंत के बताये हुए मार्ग का अनुसरण करती हुई सिद्धत्व के अंतिम लक्ष्य की ओर बढ़ती रहती है।

आत्मोद्धार की प्रेरणा देने वाले आदर्श संत-महात्माओं में एक नाम है – परम श्रद्धेय मुनिवर श्री सुमनकुमार जी महाराज साहब का, जिनकी दीक्षा की स्वर्ण-जयंती का वर्ष हर्षोल्लास के साथ मनाने के लिए समूचा जैन समाज कृतज्ञतापूर्वक समुद्यत है। पूज्य मुनिवर आश्विन शुक्ला १३, संवत् २०५६ विक्रमी तदनुसार २३ अक्टूबर १९९९ ईस्वी, शनिवार को अपने दीक्षित जीवन के पचासवें वर्ष में प्रवेश करेंगे। २३-१०-१९५० को प्रव्रज्या अंगीकार करने वाले श्रद्धेय मुनिवर का ५० वाँ दीक्षा-दिवस २३-१०-१९९९ को मनाया जा रहा है। इसी दिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसोज सुदी १३ (दीक्षातिथि) की पुनरावृत्ति भी है। भारतीय और पाश्चात्य तिथियों की समरूपता का यह सुखद संयोग संत जीवन की विशिष्ट उपलब्धि ही तो है।

मुनि वही है जो मनन करता है, वर्तमान और भविष्य का चिंतन करता है, तथा लोक-परलोक का अनुशीलन करता रहता है। यथाः-

'यो मुनाति उभो लोके मुनि तेन पवुच्चति।'

धम्मपद की तरह तिरुक्कुरल भी घोषित करता हैः

भव का दुख, सुख मोक्ष का, जिसको दोनों ज्ञात।
ऐसा सन्त मुमुक्षु ही, होता जग सुख्यात।।
(तिरु.३/३)

वास्तव में अभिनिष्क्रमण वही करता है जिसे संसार की निस्सारता और मोक्ष की महत्ता का पूर्वानुमान हो जाता है। लगभग पचास बरस पहले ऐसा ही पूर्वानुमान बीकानेर (राजस्थान) के पांचू गाँव के एक पंद्रह वर्षीय बालक 'गिरधारी' को हुआ था, जिसने पर्याप्त चिंतन-मनन के उपरांत मुनि-जीवन स्वीकार किया। कौन जानता था कि चौधरी भींवराजजी और वीरांदे जी के मँझले लाड़ले का कुसुम-सा सुकुमार तारुण्य एक दिन संयम के विशाल पर्वत को उठाने का साहस दिखाएगा। वही तरुण 'गिरधारी' आज 'सुमन मुनि' हैं, जो विगत पाँच दशकों से संयम के पथ पर अग्रसर हैं।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं जीवन में दो विशिष्ट सुमनों के संपर्क में आया हूँ। पहले हैं, हिंदी के मर्मज्ञ साहित्यकार और भाषाशास्त्री श्रद्धेय गुरुवर डॉ. अंबाप्रसादजी 'सुमन' जिन्होंने मेरे साहित्यिक संस्कारों को परिपुष्ट करने की महती कृपा की, और दूसरे हैं, श्रमणसंघीय सलाहकार और मंत्री श्रद्धेय मुनिवर श्री सुमनकुमारजी महाराज, जिनके पांडित्य पूर्ण साधु व्यक्तित्व से मैं अत्यधिक प्रभावित-प्रेरित हुआ हूँ। दोनों ही मेरे लिए वरेण्य, प्रणम्य और श्रद्धेय हैं। प्रथम का मैं एम.ए. वर्गीय छात्र रहा और दूसरे का मैं मौन प्रशंसक-अनुमोदक हूँ।

श्रद्धेय श्री सुमनमुनि जी के प्रथम साक्षात् दर्शन मैंने २७ सितंबर १-६-६३ ई. को मद्रास के माम्बलम-स्थित जैन स्थानक में आयोजित एक समारोह में किये थे। श्रीमान रिद्धकरण जी बेताला, श्रीमान भीकमचंदजी गादिया आदि धर्मनिष्ठ स्नेही बंधुजनों के आदेश पर महाराज साहब के ४४वें दीक्षा-दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित उक्त समारोह में अपने हृदयोद्गार व्यक्त करने का सौभाग्य मुझे मिला था। उसी सभा में प्रथम बार मैंने उनका व्याख्यान सुना। सधी हुई वाणी, भाषा पर असाधारण अधिकार, आत्मीयता से भरे हुए वचन, सरल मर्मस्पर्शी शैली, विनय से अभिसंचित विद्वत्ता; श्रद्धेय सुमन मुनि की उस वर्चस्वी वाग्मी-छवि को कोई कैसे भुला सकता है? शुक्ल प्रवचन (भाग एक) की एक प्रति स्वयं मुनिश्री ने अपने हस्ताक्षरपूर्वक मुझे साशीर्वाद प्रदान की थी।

'शुक्ल प्रवचन' को पढ़कर लगा कि पूज्य सुमन मुनिजी का व्यक्तित्व आध्यात्मिक साधना और साहित्यिक प्रतिभा के आलोक से दीप्तिमान है। श्रीमद् रायचंद्र के आत्मसिद्धिशास्त्र को आधार बना कर दिये गये प्रवचनों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि विद्वान मुनिजी प्रखर वक्ता हैं, कुशल व्याख्याता हैं और वर्चस्वी शास्ता हैं। उनकी व्याख्याएँ आत्मा-परमात्मा के स्वरूप की प्रतीति कराने में समर्थ भूमिका निभाती हैं। वे गूढ़ से गूढ़ सूत्रों का सरलीकरण करके उन्हें ग्राह्य बना देने की विलक्षण क्षमता रखते हैं। प्रमाण है – आत्मसिद्धि शास्त्र के दसवें दोहे के द्वितीय चरण – **'विचरे उदय प्रयोग'** की व्याख्या। शब्द और अर्थ के मर्म को जानने की कला कोई सुमन मुनिजी से सीखें। उनके व्याख्यानों में उनका कवि-हृदय भी स्पष्ट झलकता है। सुंदर और मनहर काव्यात्मक सूक्तियाँ उनके पांडित्य को लालित्य प्रदान करती हैं। यथाः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जब तक न कर्म टूटें, तू टूटता रहेगा,
मिट्टी का यह खिलौना तू बार-बार बनकर।
दुनिया की दोस्ती पे ये दिल फ़िदा न करना,
रहना रत्न जहाँ में तू होशियार बनकर।"

यों तो श्रद्धेय सुमन मुनि जी के साक्षात दर्शन मैंने सन् १-६-६३ ई. में किए, पर उनके परोक्ष दर्शन का लाभ तो संभवतः मुझे बरसों पहले ही मिल गया था। सन् १-६-५२ ई. का वर्ष हज़ारों जैन बंधुओं की तरह मेरे जीवन का भी अविस्मरणीय वर्ष है। तब मैं सरदार हाई स्कूल (जोधपुर) में सातवीं कक्षा का छात्र था। यह वही ऐतिहासिक वर्ष है जब स्थानकवासी परंपरा के अनेक मूर्धन्य संतों का सामूहिक चातुर्मास जोधपुर के सिंहपोल-भवन में संपन्न हुआ था। मेरी नानी धर्मपरायण देवी थीं। वे मद्रास से जोधपुर आए हुए अपने पितृविहीन दोहते को प्रातःकालीन प्रार्थना-सभाओं में प्रतिदिन ले जाया करती थीं। संत-समागम का ऐसा अवसर जिसके जीवन में एक बार भी आ जाय, तो उससे बढ़कर सौभाग्यशाली और कौन होगा? कितने आनंद और उत्साह के साथ मैं और मुझ जैसे सैकड़ों बच्चे सिंहपोल की ओर दौड़े चले जाया करते थे! जैन धर्म की और प्रमुख संतों की जयजयकार करते हुए संपन्न हुआ करती थी – हमारी प्रणति-परिक्रमा। अनिवर्चनीय सुख के उन पावन क्षणों को कोई कैसे भूल सकता है? बड़े-बड़े संतों और उनके शिष्यों के चरणों में बार-बार झुककर प्रणाम करते हुए किसे पता था कि इन संतों के मध्य एक ऐसा सुमन भी है, जो बरसों बाद अपनी सुगंध से ज्ञान पिपासुओं को आकृष्ट करेगा? श्रमण-संघ के उन तेजस्वी संतों के बीच श्री सुमन मुनिजी भी थे जो अपने दीक्षित जीवन के तृतीय चातुर्मास - निमित्त अपने पूज्य गुरुदेव के संग वहाँ विराजमान थे। वह था – श्रद्धेय श्री सुमन मुनिजी का परोक्ष दर्शन। उनके चरण स्पर्श करने का सौभाग्य मुझे अवश्य ही मिला होगा।

श्रद्धेय मुनिवर अरिहंत के आराधक तो हैं ही, सरस्वती के उपासक भी हैं। उन्होंने **श्रमणावश्यक सूत्र, तत्त्व चिंतामणि, श्रावक-कर्त्तव्य, शुक्ल प्रवचन, बृहदालोयणा** आदि उत्कृष्ट कृतियों की रचना करके अपने सारस्वत धर्म का निर्वाह भी किया है। उनका जन्म विक्रम संवत् १६-६२ की बसंत पंचमी को हुआ है। वसंत पंचमी सरस्वती-पूजन का दिन है। इसी दिन हिंदी के अनुपम साहित्य-स्रष्टा महाप्राण निराला का भी जन्म हुआ था। मनीषा और ज्ञान के धनी श्री सुमन मुनि जी पर भी माता सरस्वती का वरद हस्त है। मुझ जैसे ज्ञान-पिपासु के लिए तो वे सभी सारस्वत साधक श्रद्धास्पद हैं, जो अपने सम्यक् ज्ञान का शुभ्र प्रकाश फैलाकर अंतःकरणों को आलोकित करते हैं।

विगत तीन दशकों में जीवन की दिशा ही बदल गई। परिस्थितियों के प्रहारों ने इतना जर्जर कर दिया कि धर्म के धरातल पर खड़े होने का साहस भी जाता रहा। प्रवचन-श्रवण तो दूर की बात, संत-दर्शन का सौभाग्य भी लुटता रहा। श्रद्धा अवश्य है, पर प्रकृत्ति नहीं। शायद यह सुकृत्यों के चुक जाने का ही परिणाम है। मानस की अर्धाली याद आती है: **पुण्य पुंज बिनु मिलहि न संता।** श्रद्धेय गुरुवर श्री सुमन मुनिजी शांत, समताधारी और लोकोपकारी संत हैं। जीवन का यथार्थ जानने व समझानेवाले विद्वान मुनि हैं। उनकी साधुता, उनकी सरलता, उनकी निस्पृहता, उनकी विद्वत्ता और उनकी मानवीयता किसी को प्रभावित किए बिना नहीं रहेगी। वे जन-जन के दुःखों का निवारण करनेवाले कर्मयोगी हैं। कविवर युगवीर ने ऐसे ही संतों को लक्ष्य में रखकर कहा होगा:-

"विषयों की आशा नहीं जिनको
साम्य भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित-साधन में जो
निशि-दिन तत्पर रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या
बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के
दुःख समूह को हरते हैं।"

अपने साथ अन्य जीवों के उद्धार की शुभ कामना करते हुए समत्वपूर्वक कर्मरत रहने में ही मानव जीवन की सार्थकता है। साधु जीवन चारित्र्य के इसी स्वरूप को चरितार्थ करता है। सच्चा साधु न लौकिक सुखों की, न स्वर्गिक ऐश्वर्य की और न ही एकांत मोक्ष की कामना करता है; वह तो यही चाहता है कि प्राणि मात्र का दुःख दूर हो। उसका समस्त आध्यात्मिक तपोबल जागतिक दुःखों के उन्मूलन में लग जाता है। विगत उन पचास वर्षों से श्रद्धेय श्री सुमन मुनिजी निःस्वार्थ भाव से इसी उदात्त भावभूमि पर साधनारत हैं। यही हमारा परम सौभाग्य है।

❑ **इन्दरराज बैद**
भू. उप निदेशक, दूरदर्शन, चेन्नै

निष्कलंक व्यक्तित्व

श्रद्धेय श्री सुमन मुनि जी म. का व्यक्तित्व अन्तर बाह्य रमणीय है। वे भावानात्मक दृष्टि से बहुत उदार, सहृदय, संवेदनशील और निष्कारण ही दूसरों का उपकार करने में रुचि रखते हैं। सत्य के प्रति वे प्रारम्भ से ही कठोर व निर्भीक रहे हैं। फिर भी व्यावहारिक जीवन में समन्वय और समझौता करके संघीय एकता व अखंडता के पक्षपाती भी हैं। उनका सरल मानस सभी को अपने प्रति आकृष्ट करता है। ऐसे सन्त का जीवन राष्ट्र व संघ के लिए गौरवास्पद है। उनका दीर्घ संयमी जीवन निष्कलंक होने के साथ सत्य का व्यावहारिक भाष्य जैसा कहा जा सकता है।

दीक्षा-स्वर्ण-जयंती के प्रसंग पर मेरा हार्दिक अभिनन्दन और शत-शत नमन !

❑ **श्रीचन्द सुराना 'सरस', आगरा**
प्रधान सम्पादक : देवेन्द्र भारती

जैन दर्शन के प्रकांड पंडित

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि परम पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनिजी म.सा. के ५० वें दीक्षा-महोत्सव के अवसर पर एक अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन होने जा रहा है।

आप आगम के महन् ज्ञाता एवं जैन तत्त्व ज्ञान के सुविख्यात विवेचक हैं। जैन विद्या के क्षेत्र में कार्य करने वाले हम सभी कार्यकर्ताओं को आपके जीवन एवं साहित्य से विशेष प्रेरणा प्राप्त होती है। मुझे कई बार आपके व्याख्यान श्रवण एवं धार्मिक चर्चा करने तथा आपके श्रेष्ठ साहित्य का स्वाध्याय करने का सुअवसर मिला तथा जैन विद्या विभाग (मद्रास विश्वविद्यालय में स्थापित) की प्रगति के बारे में भी आपसे यदा-कदा विचार-विमर्श हुआ।

आप जैन दर्शन के प्रकांड पंडित हैं और प्राकृत तथा जैन विद्या के प्रचार के लिए निरंतर प्रेरणा देते रहते हैं। मुझे आपके सान्निध्य में आयोजित **'प्राकृत सम्मेलन'**, जो मैसूर में आयोजित हुआ था, में जैन विद्या विभाग के कार्यकर्ताओं के साथ भाग लेने का सुअवसर मिला था। हम सभी आपके गंभीर पांडित्य से अत्यधिक प्रभावित हुए।

आप निरंतर आत्म भाव की साधना में निमग्न रहते हैं। समाज में बढ़ते हुए शिथिलाचार एवं आडंबरों का आप घोर विरोध करते हैं। आपके निर्भीक विचारों ने मुझे बेहद प्रभावित किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज जैन विद्या के सम्यक् स्वरूप को प्रचारित-प्रसारित करने की नितांत आवश्यकता है। आपने हमारे संस्थान द्वारा स्थापित आवासीय जैन विद्याश्रम की योजना को भी सराहा तथा बच्चों में जैन संस्कार देने की बलवति प्रेरणा दी।

इस पावन प्रसंग पर मैं महान् संत रत्न श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री पूज्य श्री सुमन मुनिजी के प्रति **जैनविद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान** एवं **जैन विद्याश्रम** के सभी कार्यकर्ताओं, अध्यापकों, शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों की ओर से श्रद्धा भाव एवं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आप दीर्घ काल तक स्वस्थ रहकर इसी प्रकार जन-जन में श्रमण भगवान महावीर की अमृतमय वाणी का प्रचार प्रसार करते रहें। इसी सत्कामना के साथ – जय गुरुदेव!

❑ **एस. कृष्णचंद चोरड़िया,**
प्रधान सचिव,
जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, चेन्नई.

प्रज्ञा महर्षि

श्री सुमन मुनिजी महाराज

शिरोमणि संत

हिन्दी के संत-साहित्य में महान् संत दादूदयाल का बड़ा ही गौरवपूर्ण स्थान है। एक बार संतों की सभा में उनसे पूछा गया कि आप सच्चा संत किसे मानते हैं? दादूदयालजी ने उस समय जो उत्तर दिया वह बड़ा मार्मिक है। उन्होंने कहा-

"सोई साधु-सिरोमणी, प्रभुवर गुण गावै,
ईस भजै, विषया तजै, आपा न जनावै।
मिथ्या मुख बोले नहीं, परनिंदा नाहीं;
औगुन छाँड़े, गुन गहे, मन हरि-पद माहीं।।
निर्बैरी सब आतमा, परमातम जानै;
सुखदायी, समता गहै, आपा नहीं आनै।
आपा पर-अंतर नहीं, निर्मल निज सारा;
सतवादी साँचा कहै, लौलीन विचारा।।
निर्भय भजि न्यारा रहै, काहू लिपत न होई;
'दादू' सब संसार में, ऐसा जन कोई।

उन्होंने कहा कि साधुओं में शिरोमणि संत उसे कहते हैं जो –

१. सदा ईश्वर का गुणगान करता है,
२. प्रभु को भजता है, विषयों का परित्याग करता है,
३. अहंकार को जिसने नष्ट कर दिया है,
४. जो कभी मुख से असत्य नहीं बोलता,
५. जो कभी दूसरों की निंदा नहीं करता,
६. दूसरों के दुर्गुणों पर जिसकी दृष्टि नहीं जाती और जो केवल गुणों को ही ग्रहण करता है,
७. जिसका मन सदैव प्रभु के चरणों में निमग्न रहता है,
८. जिसका किसी भी प्राणी से वैर भाव नहीं है तथा जो प्रत्येक की आत्मा को परमात्मा के समान समझता है,
९. जो सब को सुख पहुंचाता है,
१०. जो सर्वत्र समदृष्टि रखता है,
११. अपने अहंकार का जिसने विस्मरण कर दिया है,
१२. जिसका पूरा जीवन विकार रहित है,
१३. जो सदा सत्य बोलता है,
१४. जो सदैव अपने आत्म-स्वरूप में लीन रहता है,
१५. जो सदा भय से रहित है और
१६. जो किसी भी प्रकार के विषय-भोग में लिप्त नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता ऐसा संत पुरुष विरला ही संसार में मिलेगा।

विरले संत

श्रमणसंघ के सलाहकार एवं मंत्री पूज्य श्री सुमनमुनि जी महाराज उन विरले संतों में से हैं जिनमें साधुता के उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान हैं। वे महान् आत्मज्ञ संत है, निस्पृह हैं और निरहंकारी हैं। आचार्यों ने कहा है –

"आगम चक्खू साहू, इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।"- प्रवचनसार ३/३४ अर्थात् दुनियां के सभी प्राणी इन्द्रियों की आँखवाले हैं किन्तु साधु आगम की आँख वाला है। श्री सुमन मुनिजी महाराज भी आगम की दृष्टि से अपने जीवन की समीक्षा तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र से अपने जीवन को आप्लावित करते रहते हैं। ये उन शिरोमणि साधुओं में से हैं जिन पर स्थानकवासी श्रमण संघ को ही नहीं अपितु संम्पूर्ण जैन समाज को गर्व है।

आगम-मर्मज्ञ

सन् १९९३ में आपका चार्तुमास चेन्नई स्थित टी. नगर स्थानक में हुआ था। मैं कभी-कभी उनके व्याख्यान सुनने जाता था। उनका आगमिक विश्लेषण इतना मार्मिक था कि उसे सुनकर सभी श्रोता मंत्र-मुग्ध हो जाते थे। मैं उस समय भगवान् महावीर की वाणी का कुछ संकलन कर रहा था। मेरी इच्छा थी कि उसे बहुत ही सुंदर रूप में प्रस्तुत किया जाय। आगम सूक्तियों का अनुवाद अत्यंत दुष्कर कार्य था अतः मैं अनेक आगम-विशेषज्ञों से मार्ग दर्शन ले रहा था। मैंने सूत्रों के अनुवाद एवं व्याख्या के अनेक ग्रन्थों का पारायण किया और तद्विषयक सामग्री एकत्रित की/संकलित की। हमारे चेन्नई विश्वविद्यालय के जैन विद्या विभाग के प्रोफेसर डॉ. छगनलालजी शास्त्री ने उस संकलन को संशोधित किया। मैं श्री जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं में भी एक सप्ताह के लिए सम्बन्धित ग्रन्थों के अध्ययनार्थ गया था। वहाँ पर आगमज्ञ मुनिश्री दूलहराजजी म. तथा आदरणीय श्री श्रीचन्दजी रामपुरिया, जो कि तीर्थंकर-वाणी के विशेषज्ञ हैं, ने मुझे बड़ा सहयोग प्रदान किया। मैंने तदुपरांत वह संग्रह पूज्य श्री सुमन मुनिजी महाराज को दिखाया तथा उसे और अधिक परिष्कृत एवं संशोधित करने का आग्रह किया ताकि अनुवाद सही एवं त्रुटि-रहित रहे। मुझे उस समय आश्चर्य हुआ जब उन्होंने कई दिवसों तक उस संकलन को पूर्णतः देखकर न केवल अनुवाद में आवश्यक सुधार किया किन्तु मूल सूक्तियों में भी कहीं कहीं जो संशोधन आवश्यक था, वह कर दिया। मेरे ग्रन्थ **"जिनवाणी के मोती"** में न केवल श्वेताम्बर मान्य आगमों में से किन्तु दिगम्बर मान्य शास्त्रों से भी अनेक सूक्तियां संकलित थीं। बहुश्रुत मुनि श्री सुमनमुनि जी के पास उनमें से अधिकांश ग्रन्थ भी उपलब्ध थे। आप श्री का आगम-साहित्य पर ही नहीं अपितु प्राकृत, संस्कृत व हिन्दी भाषाओं के साहित्य व व्याकरण का ज्ञान भी अद्भुत था। ऐसे महान ज्ञानी, तत्त्वज्ञ एवं प्रकांड पाण्डित्य-सम्पन्न मनीषी के संशोधन से उक्त ग्रन्थ को काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई। मेरे मन में भी आगम का स्वाध्याय करने की प्रेरणा जगी, जीवन में एक नया जागरण हुआ। इस का श्रेय पूज्य गुरुदेव पण्डितरत्न श्री सुमन मुनिजी महाराज को है, जिससे उऋण होना असम्भव है।

असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण

आप श्री के व्याख्यानों में आपका गम्भीर अध्ययन और विशद चिंतन स्पष्टतया परिलक्षित होता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आपका दृष्टिकोण पूर्णतया असाम्प्रदायिक व समन्वयात्मक है। समाज में बढ़ते हुए आडम्बरों से आप चिंतित हैं। तपस्या के समय भी अनेक प्रकार के प्रदर्शन किये जाते हैं जो आपको कदापि पसंद नहीं है। आप स्पष्ट कहते हैं - "तपः क्रिया मान-सम्मान के लिए या समाज से वाहवाही प्राप्त करने के लिए नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनी चाहिये, इहलोक या परलोक के सुखों के लिए भी नहीं बल्कि विशुद्ध कर्म-निर्जरा के लिए, आत्म-शुद्धि के लिए करनी चाहिये।" समाज में व्याप्त ईर्ष्या व द्वेष की भावना, संघों के अधिकारियों का संकीर्ण व अवसरवादी व्यवहार, साम्प्रदायिक स्वार्थपरता व संकीर्णता की भावना भी आपको कचोटती रहती है तथा आप उस पर समय-समय पर तीव्र प्रहार करते हैं।

श्रावक-धर्म विश्लेषक

वर्तमान में आगम ज्ञान के प्रति श्रावक - श्राविकाओं में दिनानुदिन रुचि अल्प होती जा रही है, आगम में अभिरुचि रखने वाले प्रबुद्ध चिंतनशील वर्ग का भी अभाव हो रहा है। उसके बारे में आप निरंतर प्रकाश डालते हैं तथा श्रावक-श्राविकाओं को ज्ञानार्जन में सहयोग प्रदान करते हैं तथा आगम में अभिरूचि बढ़ाने की प्रेरणा देते हैं। आपने श्रावक-धर्म पर सुंदर प्रेरणादायक साहित्य का निर्माण किया है तथा विद्वान् श्रावकों के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद एवं विश्लेषण किया है। आपका महान् ग्रन्थ "शुक्ल-प्रवचन" श्रावकरत्न श्रीमद् रायचन्द्रभाई मेहता की अनमोल कृति है। इसी प्रकार "देवाधिदेव रचना" सुप्रसिद्ध आगमज्ञ श्रावक श्री हरजसराय की कृति है। "वृहदालोयणा" ग्रन्थ श्रावक रत्न लाला रणजीतसिंह की लोकप्रिय कृति है। आप निरंतर प्रेरणा देते हैं कि श्रावक वर्ग केवल नाम से ही 'जैन' नहीं रहे किन्तु आगम के प्रकाश में अपने जीवन को प्रकाशित कर कर्म से 'जैन' बनें।

मेरी आकांक्षा

मेरी इच्छा है कि आपके सभी व्याख्यान नियमित रूप के लिपिबद्ध हों, विभिन्न जैन व अजैन पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित हों तथा वे ग्रन्थ के रूप में भी प्रकाशित हों। इससे जैन आगम की जो व्याख्या आपके प्रवचनों में प्रवाहमान है, उसका लाभ सभी प्रबुद्ध वर्ग को प्राप्त होता रहेगा।

पचासवां पावन दीक्षा प्रसंग

जैनसंस्कृति वस्तुतः श्रमणसंस्कृति है। यहाँ पर श्रमण दीक्षा को विशेष महत्त्व दिया गया है। दीक्षा केवल बाह्य वेष-भूषा का ही परिवर्तन नहीं है, यह समूचे जीवन का आध्यात्मिक रूपांतरण है, जब व्यक्ति बहिरात्म-भाव को त्याग कर अंतरात्म भाव में प्रविष्ट होता है एवं परमात्म-भाव की ओर बढ़ने का संकल्प लेता है। यह असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर व मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ़ने का अध्यवसाय है। 'बोध पाहुड' (सूत्र संख्या ४०१) में आचार्य ने कहा है-"तृण और कनक (स्वर्ण) में जब समान बुद्धि आती है, तभी उसे प्रव्रज्या (दीक्षा) कहा जाता है।" जैन दीक्षा का पालन करना अत्यंत कठिन कार्य है लेकिन जो अंतरहृदय से पालन करते हैं, वे मुक्ति के मार्ग की ओर अग्रसर हो जाते हैं। भगवान् महावीर ने ऐसे ही श्रमणों के बारे में उत्तराध्ययन सूत्र (अध्ययन ३५/गाथा२१) में कहा है कि "ममता-रहित, आश्रव-रहित वीतरागी अणगार श्रमण धर्म का परिपालन करके सदा के लिए इस संसार से मुक्त हो जाता है।" महाश्रमण श्री सुमनमुनिजी के साधनाशील दीक्षा जीवन का पचासवाँ वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। इस पावन प्रसंग पर मैं अपने हृदय की भावाञ्जलि अर्पित करता हूँ। आपश्री इसी प्रकार निरंतर हमारे जैसे अल्पज्ञों को ज्ञान की सरिता में बहाकर उन्हें धर्म की ओर उन्मुख करते रहें। आप नीरोग रहें तथा यह पावन प्रसंग हम सब लोगों को हमेशा धर्म की प्रेरणा प्रदान करता रहे, इसी मंगल कामना के साथ सविनय भक्ति पूर्वक वंदन! अभिनंदन!!

❑ **दुलीचन्द जैन 'साहित्यरत्न'**,
सचिव, जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान
चेन्नई - ६०० ००१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चलता - फिरता मसीहा

धन्य है इस सुमन को

यह सुमन – समाज का, देश का और धर्म का खिला सुमन है। उस सुमन ने न मालूम कितने बुझदिलों में महक भरी है। कितने अनगढ़ पाषाणों को भगवान बना दिया है, कितने, लोभी, लालची और दंभियो के जीवन में मानवता जागृत की है। न मालूम कितने समाजों, व्यक्तियों साधकों के अंतर में सत्-चित्-आनंद का पीयूष रस भरा है। संतत्व के पुनीत उपादानों, जीवन के कठोर अनुभवों उत्थान और पतन की अनेक घाटियों, सुख-दुख के अनेक करिश्मों के साथ धैर्य विवेक और क्षमा का आत्मीय रस भरकर उनको जीवन जीने की कला सिखायी है। सभ्यता और संस्कृति का रहस्य हृदयंगम कराया है। इस सुमन में साधना की अनंत शक्ति भरी है। आज भी यह बड़ी हिम्मत के साथ भागता है और दौड़ता है। देखते-देखते ही यह भागा जा रहा है। यह देश का निस्पृह कर्मयोगी संत अपने संतत्व की पूरी तैयारी कर चुका है। श्रमणत्व की सभी दिशाएं लांघ चुका है। धन्य है इस सुमन को।

एकता का उद्घोष कर रहा है

साबरमती के संत की तरह यह मरूधरा का फकीर भी देश-काल की सीमाओं से ऊपर उठ चुका है। बालू के कण-कण को पावन बनानेवाला उसमें सौरभ डालने वाला यह संत अपने अदम्य उत्साह और बेफिक्रि से राष्ट्र को गौरवान्वित कर रहा है।

चश्में में चमकती और झाँकती इसकी आँखें दर्शनीय है। मंझलाकद, दुबली पतली काया, ललाट की उन्नत रेखाएँ गौरवमंडित साधना, प्रसन्नवदन, खिलखिलाना, हंसना और हंस-हंसकर ठहाके लगाना, मनोविनोद करना इस संत के फक्कड़पन की निशानी है। इसकी खोपड़ी के बाल स्वातंत्र्य संग्राम के शहीदों की तरह खड़े होकर प्रेम और एकता का उद्घोष कर रहे हैं।

इस संत का मनोबल बहुत ऊँचा और गहरा है। यह बनाता है, जोड़ता है। तोड़ता नहीं। चतुर्विध संघ की रंगस्थली का यह चतुर चितेरा है, जन-जन में प्रेम और एकता की गंगा बहाने वाला यह मस्त संत है। इस संत का मानस समता की अनन्त तरंगों से भरा है। साधना इसके कर्म की मनोभूमि है।

हिम्मत नहीं हारी :

इस संत का संतत्व साधना के अनुपम श्रोतों में बहा है। यह निर्भीक खरा और तपा हुआ अनुभवी और वयोवृद्ध संत है। यह स्वच्छ, निर्मल और पवित्र है। महान् व्याक्तित्व के धनी इस व्यक्ति ने श्रमणसंघ में बहुत बड़ा कार्य संपन्न कर कई पदों को अलंकृत किया है। इसका प्रभाव बड़ा जबरदस्त है। श्रमणत्व की दर्शन धाराओं से इस साधु पुरुष ने वीर शासन की शोभा बढ़ाई है। यह महान् व्यक्तित्व का परम पुरुषार्थ है। जीवन में इन्हें कई कटु अनुभव भी हुए हैं, इस पर कई बार संकट के बादल मंडरायें, अविवेक के तूफान उठे, मगर इस सज्जन संत ने निराश होकर कभी हिम्मत नहीं हारी। कभी घबराकर दु;खी नहीं हुआ है और निरंतर चलता ही रहा और आज भी यह निरंतर चलता ही जा रहा है।

मौलिक धन है

आज समाज, धर्म और देश को ऐसे ही धर्मवीर, कर्मवीर और फक्कड़ संतों की आवश्यकता है जो अपने आत्मबल और अपने प्रभाव से अंधश्रद्धा मिटा सके, अंधभक्ति हरा सके, आडंबरों को तोड़ सके। यह संत किसी भक्त की प्रशंसा में नहीं पड़ा, किसी की चापलूसी नहीं की, किसी के चक्कर में नहीं फंसे और निर्भीकता के साथ सामाजिक बुराइयों के प्रति अपनी मर्यादा में रहकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरोध की बौछारें करते रहे। यह इस संत की ही हिम्मत थी। हाँ में हाँ कभी नहीं मिलाया, भीमकाय पाषाण खंड की तरह अपने कर्तव्य के प्रति सुदृढ़ रहे। इस संत के पास जो भी है जैसा भी है, जिस रूप में है वह सच्चा और इसका मौलिक धन है।

लोगों का दिल धड़कने लगता है

यह संत बोलता नहीं है, गरजता है। गाता नहीं है ललकारता है। यह जब किसी सच्चाई को लेकर दहाड़ता है तब कितने ही लोगों का दिल धड़कने लगता है, कितने ही मानस हिल जाते हैं।

देश काल की परिस्थितियाँ बदल गई, मगर यह संत ज्यों की त्यों रहा, नहीं बदला। इसकी वही चिंतन धारा, वही स्वाध्याय, वही आगम अध्ययन, वही संस्कृति की बातें बता-बता कर पावन मन्दाकिनी बहा रहा है। यह संत सदा सतर्क है। जागरूक प्रहरी है।

यह मस्तमौला है

यह संत चतुर्विध संघ के गुणगाता रहा, गाता रहा और गगन को देख-देखकर उसमें झांकता रहा। सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-नदियों-झरनों-पेड़-पौधों में इस संत ने मानवता का सच्चा रूप देखा है। यह तप-त्याग का चलता-फिरता मसीहा है। इनका विपुल साहित्य है, व्याख्यानों से सभी प्रभावित हैं। ऐसे संतो के बल पर ही श्रद्धा पनपी है, भक्ति जमी है। यहीं तो मनमौजी पनपी है, भक्ति जमी है। यह तो मनमौजी स्वभाव का मस्तमौला हैं। श्रमणसंघ का उज्ज्वल सितारा है। यह राष्ट्र का वन्दनीय संत है।

आप दीर्घायु हों, यशस्वी हों, सभी को उत्तमोत्तम मार्गदर्शन दें और अपनी साधना से वीरशासन को और यशस्वी बनावें – इसी कामना के साथ-भावना है।

❑ **मिट्ठालाल मुरड़िया 'साहित्यरत्न'**
बेंगलोर - २५.

ज्ञान - सागर से निकला अमृत

वस्तुतः श्री सुमनमुनि म.सा. जैन समाज के उच्चकोटि के चमकते नक्षत्र हैं। आपका जैसा नाम है वैसा ही जीवन है। सुमन का अर्थ होता है – फूल! फूल जो अपनी महक चारों ओर फैलाकर वातावरण को सुगंधित कर देता है वैसे ही मुनिश्री ने साहुकार पेठ चातुर्मास में चारों ओर ज्ञान की सुगंध ही सुगंध फैला दी।

आपका जन्म करीब ६४ वर्ष पूर्व राजस्थान के बीकानेर जिले के छोटे से गांव पांचू में माघ सुदी पंचमी संवत् १९९२ में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री भींवराजजी चौधरी एवं माताजी का नाम वीरांदेजी था। १४ वर्ष की लघुवय में आपने पूज्य श्री शुक्लचंदजी म.सा. मुखारबिंद से दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा के बाद आपका विशेष विहार क्षेत्र – पंजाब, हरियाणा, राजस्थान रहा। वर्तमान में आपने महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक आंध्रप्रदेश एवं मालवा आदि क्षेत्रों को भी पावन किया एवं भगवान महावीर की देशना को जन-जन तक पहुंचाया।

आपका हिंदी, गुजराती, पंजाबी, मारवाड़ी, अंग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओं पर समान अधिकार है। संस्कृत एवं प्राकृत के प्रकांड विद्वान, है। आपका ज्ञान एवं चिंतन दोनों ही बहुत गहरे हैं। कबीर ने सही कहा है कि-

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय।।

आपने ज्ञान के गहरे सागर में जो सार (अमृत) निकाला उस प्रसाद को आप व्याख्यान के माध्यम से जन-जन को पिला रहे हैं।

ज्ञानक्रिया का अद्भुत संगम – आपका आगम ज्ञान बहुत गहरा है। गंगा-यमुना एवं सरस्वती जहां मिलती है उसे संगम कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी तरह आपमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र का अद्भूत संगम है। ज्ञान के आप अथाह सागर है। आगम एवं तत्वों के चिंतन में बहुत गहरे उतरे हैं। दर्शन आपके जीवन में बोलता है एवं चारित्र की तो आप साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं ही।

विलक्षण व्यक्तित्व — आपश्री विलक्षण व्यक्तित्व के धनी हैं। आपका ओजस्वी एवं तेजस्वी व्यक्तित्व हर-एक चाहे वह बच्चा हो, जवान हो, वृद्ध हो सभी को आकर्षित करता है एवं उनमें जैनधर्म के प्राण फूंकता है। श्री सुमनमुनि जी कहते हैं कि-

सच्चे जैन बनो - आप अपने प्रवचनों में हर समय जगने एवं जगाने की बात करते हैं। आप कहते हैं कि आप लोग कर्म से जैन बनो। जन्म से तो आप जैन हो ही परंतु कर्म से नहीं। लेकिन मैं जन्म से जैन नहीं अपितु कर्म से जैन हूँ। सच्चा जैन वही है जो जिन आज्ञा के अनुसार चले।

साहसी बनो — जीवन में बाधाएं निराशाएँ एवं कई प्रकार का विपरीत वातावरण आता रहता है परंतु घबराओ मत, डरो मत। यदि डर जाओगे तो जमाना तुम्हें पछाड़ देगा। वे कहते हैं कि मैंने कई बार सुना कि पृथ्वी पर प्रलय हो जायेगी। ये सृष्टि खत्म हो जायेगी। आगे आनेवाला काल विनाश का है। ये भविष्यवाणियां धरी की धरी रह गई। और भविष्यवाणी करनेवाले चले गए। परंतु अब तक सृष्टि के विनाश की ऐसी कोई घटना नहीं घटी। छोटे-मोटे झंझावात तो चलते ही रहते हैं।

हमें तो यह विश्वास रखना है कि भगवान महावीर का शासन २१००० वर्ष तक चलेगा। और भगवान की कही हुई बात असत्य नहीं होती। ऐसी श्रद्धा एवं विश्वास रखकर जीना है और मौत से भी नहीं डरना है क्योंकि प्राणी के जीवन में मौत एक बार अवश्य आती है।

सहीमार्ग पर चले — उत्तराध्ययन सूत्र पर व्याख्यान देते हुए फरमाते है कि संसार में कुपथ बहुत है परंतु हमें सही रास्ते पर चलना है। सहीमार्ग धर्म का मार्ग है जिसमें अहिंसा संयम व तप हो। इनकी जानकारी करके सही रास्ते पर चलना है। हालांकि हमारे सामने कई समस्याएं है, बाधाएँ है, जैसे परिवार की, समाज की, पैसे की, व्यापार की परंतु सम्यक् श्रद्धापूर्वक इस मार्गपर चलते रहेंगे तो सभी बाधाएँ व समस्याएँ दूर हो जायेगी। आप कहते हैं कि ज्ञान का विकास करो क्योंकि उससे ही हमें सही रास्ते पर जाने की प्रेरणा मिलती है। नहीं तो हम भटक सकते है। जैसे कि आप सामायिक करते है। इस प्रकार निरंतर सामायिक करते२ कई वर्षों बाद समभाव आ सकता है अथवा समभाव की प्राप्ति होती है। यह सब ज्ञान के मार्ग को जानकर उसपर चले तभी यह संभव है।

दृढ़ सम्यक् दृष्टि बनो — सम्यक् दृष्टि अर्थात् सही रूप में देखना, चाहे वह बड़ा हो, छोटा हो, पाप हो, पुण्य हो, सुख हो दुख हो। किसी के प्रति भी ऊंच-नीच का भाव न होकर समभाव रखे तभी आत्मा सम्यक्त्व को स्पर्श करती है। यह मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी है। एक बार आत्मा ने सम्यक्त्व को स्पर्श कर लिया तो मोक्ष निश्चित है। सम्यक् दृष्टि जीव संसार में रहता, संसार व्यवहार का पालन करता हुआ भी धाय माता के समान निर्लिप्त रहता है।

आपने मद्रास (साहूकार पेठ) के चातुर्मास काल में ज्ञान का अनुपम अमृत जन-जन को पिलाया। आपकी वाणी में मधुरता एवं भाषा में सरलता है। जो पहली कक्षा के विद्यार्थी से लेकर बड़े से बड़ा विद्वान् आसानी से समझ सकता है। सरलता इतनी हैं किं आप बड़े से बड़े प्रश्न का सहज एवं सरलता से निराकरण कर देते है। यदि कोई तर्क करता है तो भी आप अपनी बातों से उसका उचित समाधान कर देते हैं।

आज के हिंसा प्रधान युग में जहां हिंसा का वातावरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है पाप का वातावरण है आतंक का वातावरण है वहां शांति की कल्पना सिर्फ धर्म से ही हो सकती है।

श्री सुमनमुनिजी कहते हैं कि हम धर्म को व्यापार बुद्धि से करते हैं। किस काम में फायदा ज्यादा है वह करते हैं परंतु धर्म में स्वार्थ नहीं होना चाहिए। जहां कामना/इच्छा अथवा बदले में कुछ पाने की भावना रहेगी तब वह व्यापार हो जायेगा। हो सकता है उसमें आपको लाभ भी हो जाय।

ज्ञान गर्भित वैराग्य प्राप्त करो – आज हम सभी तर्क करते हैं और ज्ञान को कसौटी पर कसना चाहते हैं वह ज्ञान है कहां? संतों के उपदेश सुनते हैं तत्काल भावना जागृत होती है। व मन का झुकाव धर्म की ओर जुड़ता है परंतु उसका स्थायित्व नहीं है। आज जो भी वैराग्य का कारण है वह मोहगर्भित या दुखगर्भित वैराग्य है। मोहगर्भित वैराग्य व्यक्ति के प्रति मोह में वशीभूत होकर धर्मध्यान करता है। दुःखगर्भित वैराग्य में दुःखों से घबराकर अथवा दुःख गर्भित वैराग्य है। ज्ञानगर्भित वैराग्य अथवा त्याग की भावना जो धर्म के मार्ग को समझकर एवं संसार की असारता को समझकर जागृत होती है वह ज्ञानगर्भित वैराग्य है। जहां सब कुछ होते हुए छोड़ने की भावना होती है आसक्ति एवं ममत्व कम होता है। उस अवस्था में सुख या दुख आने पर आत्मा शांत भाव से परिस्थिति को सहन करती है वह है – ज्ञान गर्भित वैराग्य! यह अवस्था साधु व श्रावक दोनों में हो सकती है।

जीवन का आर्थिक विकास जरूरी है परंतु जीवन का ध्येय नहीं। ध्येय तो सिर्फ आत्मकल्याण है। और उसके लिए आत्मज्ञान की जरूरत है।

मुनिश्री ने प्रवचन के मध्य में कथा के माध्यम से उपर्युक्त विषय को और अधिक स्पष्ट किया। एक नगर में चार महापंडित रहते थे उनमें से एक आयुर्वेद शास्त्र का, दूसरा धर्मशास्त्र का, तीसरा नीतिशास्त्र का व चौथा कामशास्त्र का ज्ञाता था। चारों ने अपने-अपने विषय पर एक एक महान ग्रंथ रचने का संकल्प किया और एक-एक लाख श्लोक एक-एक विषय पर लिखें।

पुराने जमाने में विद्वानों की बहुत बड़ी कद्र होती थी एवं राजसभा में विशेष सम्मान पाते थे तो उन्होंने सोचा कि किसी कद्रदानी राजा को अपने ग्रंथ दिखाएं और उससे यदि राजा प्रसन्न होकर इनाम दें तो जीवनभर की चिंता मिट सकती है क्योंकि उनके भी पेट होता है, परिवार होता है एवं संसार व्यवहार चलाना पड़ता है।

उन दिनों राजा जितशत्रु विद्वानों का बड़ा आदर करता था और इसी आशा में विद्वान राजा के पास गये और कहा कि हमने एक-एक विषय पर एक-एक लाख श्लोकों की रचना की है उसे आप सुनिये! राजा ने कहा कि आपको धन्य है, परंतु मेरे पास इतना समय नहीं कि लाख लाख श्लोक सुनूं, कृपया आप संक्षेप में कहें।

विद्वानों ने कहा कि आप पच्चीस हजार श्लोक सुनिए बाद में पांच हजार-एक हजार, पांच सौ, दस, पांच व एक श्लोक पर आए तो भी राजा सुनने को तैयार नहीं हुआ। अंत में विद्वानों ने कहा कि श्लोक के एक-एक चरण में विषय का सार सुना देंगे तब जाकर राजा सुनने को तैयार हुआ।

आयुर्वेद के पंडित ने कहा-**"जीर्णे भोजनमात्रेय"** दूसरे धर्मशास्त्र के पंडित के अनुसार **"कपिल प्राणीनां दयाः"** तीसरे ने कहा **"वृहस्पति विश्वास"** एवं चौथे ने कहा **पांचाल स्त्रीषु मार्दवम्**। अर्थात् आयुर्वेद के पंडित के अनुसार पहले वाला भोजन पचने के बाद दूसरा भोजन करना चाहिए जिससे व्यक्ति स्वस्थ एवं दीर्घायु होगा। अर्थात् भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिए। धर्मशास्त्र के पंडित के अनुसार महर्षि कपिल ने प्राणिमात्र पर दया रखने को कहा है, इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। नीतिशास्त्र तो बहुत रचे गये परंतु वृहस्पति के अनुसार जीवन में वही सफल होता है जो किसी पर अंधविश्वास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं करता। चाहे वो सगा ही क्यों न हो? चौथे कामशास्त्र के पंडित के अनुसार पांचाल ऋषि ने कहा कि प्रीति की सच्ची रीत स्त्रियों के साथ मृदुता का व्यवहार करना है।

यह सुनकर राजा ने कहा – "पंडितो! आपने एक एक विषय पर एक एक लाख श्लोक रचे। आपकी बुद्धि विषय का विस्तार करने में निपुण है लेकिन मुझे देखना था कि आप विषय को कितना संक्षेप में कह सकते हैं और यह आपने करके दिखा दिया। मैं आप चारों को एक एक लाख सोने की मोहरे इनाम में देता हूँ।" इस तरह पंडितों की कद्र हुई एवं वे इनाम पाकर बहुत खुश हुए।

इसी प्रकार श्रद्धेय श्री सुमनकुमारजी म.सा. में भी धर्म की हर बात को विस्तार रूप एवं संक्षेप रूप में समझाने की अद्भुत एवं विलक्षण प्रतिभा है। यदि जीवन के कुछ क्षणों में वह सार आत्मा को स्पर्श कर ले तो निश्चय में वह आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर लेगी। मैं मुनिश्री के पावन चरणो में नत मस्तक होता हुआ उनके शतायु होने की कामना करता हूँ।

❑ **महावीरचंद ओस्तवाल**
चेन्नई - ७९.

सर्वतोभद्र व्यक्तित्व के धनी

परम श्रद्धेय श्री सुमनमुनि जी ने अपने तपःपूत साधक जीवन में देश की धरती को अपने पावन चरणों से पवित्र किया है। अनेक प्रान्तों में अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा मानव-धर्म का उद्‌बोधन देते हुए सम्प्रति आप चेन्नई के जन समुदाय को नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों से अनुप्राणित कर रहे हैं। आपने अपनी दीक्षा की अर्धशताब्दी में जैन धर्म-दर्शन के प्रचार-प्रसार में महती भूमिका निभायी है। अनेक पद और सम्मान से आप अलंकृत हुए हैं, जो आपके व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को उद्‌घाटित करते हैं।

मुनिश्री सुमनकुमारजी सर्वतोभद्र व्यक्तित्व के धनी हैं। प्रवचनकार, साधक और साहित्यसेवी-त्रिवेणी के संगम हैं। जैन परम्परा के संरक्षण में आप श्री के अनन्त उपकार हैं। जैन विद्वानों के समागम और तत्त्व चर्चा में आपको विशेष रुचि है। नयी पीढ़ी को संस्कारित करने में आप अग्रणी हैं। ऐसे साधक सन्त का साधनामय जीवन सुदीर्घजीवी हो इस मंगलकामना के साथ उनके चरणों में सादर वन्दन!

❑ **प्रो. प्रेमसुमन जैन**
आचार्य एवं अधिष्ठाता
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

चरण कमलों में वन्दन!

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमारजी की दीक्षा-स्वर्ण-जयंति के उपलक्ष्य में प्रकाश्यमान अभिनंदन-ग्रंथ के लिए मंगल-कामना एवं पूज्य मुनिश्री के चरण कमलों में वंदना प्रेषित कर रहा हूँ।

श्री सुमनमुनिजी का जीवन-वृत्त देखने से मन प्रमुदित होता है। निपट साधारण परिवार और परिवेश से यात्रा आरंभ करके आपने जो असाधारणताएँ अर्जित की हैं वे सचमुच अभिनंदनीय है। जैनधर्म मानववाद और आत्मवाद का समर्थक व पोषक रहा है। मुनिश्री के जीवन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

"जैन श्रमण जीवन अंगीकार करना आसान नहीं है। श्रेष्ठ संतों का अभाव होता जा रहा है और आस्थाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी न्यूनतर हो रही हैं।" श्री सुमनमुनिजी की दीक्षा स्वर्ण-जयंति के पुनीत अवसर पर मेरा श्रावक-श्राविकाओं से यह अनुरोध है कि वे आस्था को सम्यक् एवं सुदृढ़ बनाएं एवम् योग्य व्यक्तियों/अपनी योग्य सन्तान को जिनशासन के प्रति समर्पित करें। संकल्प और वास्तविक त्याग का जीवन जीने से ही कुछ कारगर एवं स्थायी होता है।

आप अपने आयोजन एवम् उद्देश्य में सफल हों। ग्रंथ पाठक को निर्ग्रन्थ होने की प्रेरणा देनेवाला बने। इन्हीं सद्भावों के साथ !

❑ **दिलीप धींग**

बम्बोरा

उद्बोधन के माध्यम से...!

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनिश्री सुमनकुमारजी म.सा. के प्रवचनों से मैं अत्यंत अभिभूत हुआ हूँ-उनके प्रवचन जिनवाणी महिमा के गान से प्रारंभ होता है तथा अनेक विषयों को व्याख्यायित करते हुए लोगों के दिल में अहिंसा-मानवता आदि के भाव उत्पन्न करते हैं - यथा –

जिनवाणी सर्वोदय सिद्धान्त की प्रतिपादक है। जैन संस्कृति के संस्थापक तीर्थंकर भगवंतों ने जगद् जीवों के कल्याण के लिए धर्म-संघ की संरचना की है। साधु साध्वी श्रावक-श्राविका को चतुर्विध संघ का आधार स्तंभ बताया। प्राणिजगत् में मानव को सर्वोपरि स्थान दिया क्योंकि मानव मननशील विवेकशील एवं सर्वप्रज्ञा संपन्न है। मानव का दायित्व है कि वह प्राणिमात्र की रक्षा करे। जीवन जीने के रूप में मानव को यह उद्बोधन दिया कि "तुम स्वयं सुखपूर्वक रहते हुए प्राणिमात्र के सुखपूर्वक जीने में सहयोगी बनो। यही मानवता का मार्ग है।"

संसार के सब जीव जीना चाहते हैं, मरना किसी को प्रिय नहीं। संसार के सभी प्राणी चाहे वो त्रस (चलने फिरनेवाले) या स्थावर (पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति) एक स्थान पर स्थिर होते हुए भी समस्त उनकी रक्षा करना अपना दायित्व समझे। यही अहिंसा है। यह सिद्धांत प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव की शिक्षा देता है। **"अहिंसा परमो धर्मः"** अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। भगवान् ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर तक के चौबीस तीर्थंकर भगवंतों ने 'विश्व बंधुत्व की भावना' को विश्व व्यापी बनाने हेतु अहिंसा का मंगलमय मार्ग बताया है जिसको अपनाकर आज भी विश्व शांति की सांस ले सकता है।

आज का मानव अहिंसा के महत्त्व को भूला बैठा है। यही कारण है आज विश्व में हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, मासांहार, लूट-खसोट का तांडव नृत्य हो रहा है। जनजीवन पूर्ण तथा अशांत एवं संत्रस्त है। राजनीतिज्ञों की कुटिल राजनीति से जनता असुरक्षित है। इन सबका एक मात्र कारण हम धर्म एवं नीति के मार्ग से भटक गए हैं। धर्म को जीवन से जोड़ने पर ही शांति की राह मिल सकती है।

भारतवर्ष धर्म प्रधान व कृषि प्रधान देश है। इसमें महान् ऋषि-मुनियों एवं महात्माओं ने जन्म लिया है। यह धर्मभूमि है, यहां विविध संस्कृतियाँ फली-फूली एवं मानव को मानवता का संदेश देती रही हैं तथा दे रही हैं। भारतीय संस्कृति में जैन संस्कृति का सर्वोपरि स्थान रहा है जैन संस्कृति के संस्थापक सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी परिपूर्ण पुरुष रहे हैं जिन्हें अरिहंत एवं तीर्थंकर कहा गया है। इन्होंने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया वे सर्वकालिक, सर्वदेशिक, सर्वहिताय एवं सर्वसुखाय है। उन्होंने अहिंसा संयम व तप को उत्कृष्ट धर्म बताया। "अहिंसा का अर्थ समस्त प्राणियों की रक्षा एवं उनके साथ मैत्री भाव की शिक्षा देता है। संयम का अर्थ अपने आप पर अपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुशासन एवं किसी को कोई कष्ट नहीं देना है। तप का अर्थ अपने द्वारा किये गये कुकृत्यों का पश्चाताप व शुद्धिकरण है। इस प्रकार का जीवन यापन करने की कला सिखाना ही वास्तविक धर्म है।"

ग्राम, नगर, परिवार, समाज व राष्ट्र में धर्म जीवन का अभिन्न अंग बने इस हेतु तीन जैन महान् सिद्धांतों को सर्वोपयोगी बनाया जा सकता है। ये सिद्धांत है – १. अहिंसा २. अपरिग्रह एवं ३. अनेकान्त।

वस्तुतः सिद्धांत वही है जो तीनों कालों में सर्वोपयोगी हो।

अहिंसा का अर्थ है – सर्व प्राणिरक्षा व सद्भाव, सद्व्यवहार। अहिंसा निर्भयता व वीरता सिखाती है। अहिंसा से मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ भाव का विस्तार होता है जहां ये सद्भाव रहता है वहां क्षमा, शांति व दया की अभिवृद्धि होती है।

इसके विपरीत जहां हिंसा है वहां क्रूरता निर्दयता व स्वार्थभाव है वहां नीतिगत विचार नहीं रहता वहां अन्याय व जुल्म का बोलबाला है। ऐसे व्यवहारवालों को कभी शांति नहीं मिल सकती। पर पीड़ा अधर्म का हेतु है, वहां अशांति व दुःख ही बढ़ेगा।

अपरिग्रहवाद अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखने की प्रेरणा देता है। संग्रहवृत्ति पाप है। आज जो देश संग्रहवृत्ति के शिकार हैं, वह उन्मत्त एवं सत्ता के उन्माद में है। दुनिया को नचाना व अपने वशीभूत बनाए रखने की कुचेष्टा में बड़े लोग एवं देश लगे हुए हैं। जिस देश में जीवन की आवश्यक वस्तुओं का सही वितरण है वहां छीना-झपटी व लूट-खसोट नहीं होती। परस्पर सहयोग एवं सद्भाव रहता है। वहीं शांति व व्यवस्था अक्षुण्ण बनी रहती है। अमरीका अपनी पूंजीवादी दृष्टिकोण से दुखी है ही।

अनेकांत का सिद्धांत उदारता का संपोषक है, सर्वधर्म सद्भाव के सत्य-तथ्य को समझने की दृष्टि प्रदान करता है/सदाशयता प्रदान करता है। धर्मनिरपेक्षता के साथ सत्य-तथ्य-तत्त्व का समर्थक है। मेरा सो सत्य न मानकर सत्य सो मेरा का संवाहक है। इस तरह धर्म का वास्तविक स्वरूप उजागर करना है।

जैन आगमों में जीवन जीने की कला का निर्देश है। यह समभाव, सहनशीलता की शिक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार की शिक्षा इस महाश्रमण से मुझे निरंतर मिलती रहती है। उनके उद्बोधनों के माध्यम से।

पंडितरत्न मंत्री मुनिश्री सुमनकुमारजी म.सा. आगमज्ञ, सत्यनिष्ठ, यशस्वी-मनस्वी श्रमण हैं। स्पष्टवादिता के साथ निर्भीकता आपकी मौलिक विशेषता है। आगम रहस्यों के मर्मज्ञ एवं गहन सिद्धांतों को भी सरलतम शैली में समझाना पांडित्य व विद्वत्ता का परिचायक है। धर्म जीवन से जुड़े और हमारे आचरण से हमारे धर्म की महत्ता का अन्य लोग अनुसरण करे – ऐसा धर्माचरण ही आदर्श एवं अनुकरणीय होता है। श्रद्धेय मुनिश्रेष्ठ को वन्दन अभिनंदन!

❑ **हरकचंद ओस्तवाल**

उपाध्यक्ष : दक्षिण भारत जैन स्वाध्याय संघ, चेन्नई-७६

चारित्रात्मा

पूज्य मुनिश्री सुमनकुमार जी म.सा. चारित्र आत्मा हैं उनके इस स्वर्णिम प्रसंग पर विधिवत् वंदना करते हुए उनके दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

❑ **भंवरलाल नाहटा**, कलकत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीर्घ अनुभवी - स्पष्टवक्ता

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता व प्रमोद हुआ कि श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनकुमारजी म.सा. की पचासवीं दीक्षा जयंति के मंगलमय अवसर पर एक बृहत् अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन साहित्यकार श्री भद्रेशकुमारजी जैन के संपादकत्व में तथा श्री दुलीचंदजी जैन के संयोजकत्व में हो रहा है।

जैन शास्त्रों में दीक्षा का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। पचास वर्ष के दीक्षाकाल में मुनिश्रेष्ठ ने जो आत्मचिंतन साधना, संयम एवं आध्यात्मिक उपलब्धियां प्राप्त की हैं, वे अपने आप में अद्‌भुत हैं। पचास वर्ष के साधना काल की सफलता का दिग्‌दर्शन संघ और समाज के लिए एक प्रेरणा स्रोत है।

मुनिश्री जी मात्र साहित्यकार, उपदेशक ही नहीं हैं अपितु दीर्घ अनुभवी एवं स्पष्ट वक्ता के रूप में समाज में प्रख्यात हैं। चरणों में पुन पुन वंदन ! अभिनंदन के साथ –

❑ **केसरीचन्द सेठिया**
मंत्री : श्री साधुमार्गी जैन संघ,
शाखा – मद्रास.

भीष्म पितामह - से

पूज्य गुरुदेव! वन्दन!

"श्रमण संघ को सुदृढ़ बनाने में आपश्री की महती भूमिका रही है। आपश्री श्रमण संघ के कर्णधार हैं। .... ग्रीक साहित्य के 'टाइटन' और भारतीय मानस के चिर-परिचित 'भीष्म पितामह' जैसी आपश्री की भूमिका को भला कौन भूल सकता है?"

पुनः- पुनः वन्दन! अभिनन्दन!!

❑ **अशोक बोरा, अहमदनगर**
उपाध्यक्ष
श्री अ.भा.श्वे.स्था. जैन कांफ्रेन्स

महामना संत

परम श्रद्धेय मुनि की सुमनकुमार जी म. सा. के पचासवें दीक्षा-दिवस के उपलक्ष में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाश्यमान है, जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई।

श्रद्धेय मुनिश्रेष्ठ ने अपना संपूर्ण जीवन समाज, धर्म के लिए व्यतीत किया है।

पूना श्रमण सम्मेलन के संयोजक के रूप में आपने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यह आप श्री के "शांतिरक्षक" पद का ही प्रतिफल था। वह सम्मेलन अत्यन्त शांति के साथ संपन्न हुआ।

पंजाब से लेकर दक्षिण प्रांत तक आपने जैनधर्म की ध्वजा फहरायी है। अमीर से लेकर रंक तक आपकी प्रवचन धारा के जिज्ञासु बने। सभी प्रवचनधारा में इतने निमग्न हो जाते हैं कि वे अपने आपको कृतकृत्य समझते हैं। ऐसे महामना संत की दीक्षा-स्वर्ण-जयंती मनाना एवं अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करना भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणाप्रद रहेगा।

इस ग्रंथ के लिए मेरी ओर से मंगलमनीषा।

❑ **शांतीलाल दुगड़, इंजिनियर**
मंत्री-श्री एस.एस. जैन संघ
नाशिक शहर (महाराष्ट्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गरिमा - महिमा की बात

श्री सुमनमुनि जी म. सा. की दीक्षा स्वर्ण जयंती पर अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन होने जा रहा है, यह जानकर अति प्रसन्नता हुई।

आपश्री अपने संयमी जीवन के पचासवर्ष पूर्ण करते हुए जिन-शासन की अभिवृद्धि में प्रगतिरत हैं यही सबसे अधिक गरिमा-महिमा की बात है।

आपश्री सफल प्रवचनकार, साहित्य सर्जक और काव्य कला में प्रवीण है।

आपकी तर्कशक्ति बेजोड़ है। आपने १९६४ में अजमेर के प्रतिनिधि श्रमण शिखर सम्मेलन में पंजाब प्रांत की ओर से प्रतिनिधि के रूप में तथा मुनि श्री सुशील कुमारजी तथा प्रवर्तक श्री पृथ्वी चंदजी म.सा.की ओर से भी सफल उत्तरदायित्व निभाया।

पूना में सन् १९८७ आपश्री ने श्रमण महासम्मेलन में "शान्तिरक्षक" का पद प्राप्त किया।

यों आपश्री निडर साधक, स्पष्ट वक्ता के रूप में प्रख्यात है।

मैं श्रद्धा सहित चरण वन्दना के साथ यही कामना करता हूँ कि आप श्री दीर्घायु तथा स्वस्थ रहकर संघ एवं समाज को मार्गदर्शन देते रहें।

❑ **बी. मोहनलाल भुरट**
भू.पू. अध्यक्ष, एस.एस. जैन संघ,
राजाजी नगर, बेंगलोर

पंडितरत्न मुनि श्री सुमन कुमारजी म. एक संस्मरण

श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री, उप प्रवर्तक पूज्य सुमन कुमारजी म. सा. से मेरा प्रथम परिचय दिसम्बर १९९२ में वानियम्बाड़ी (तमिलनाडु) में हुआ। माम्बलम् चातुर्मास के लिए पूज्य श्री से हमारे संघ की विनति बैंगलोर से ही चल रही थी। उस समय माम्बलम का नव निर्मित स्थानक भवन, उद्घाटन हेतु लगभग तैयार हो चुका था। उसका उद्घाटन पूज्यश्री के निश्रा में सम्पन्न कराने की भावना से हम लोग संघ लेकर पूज्य श्री की सेवा में वानियम्बाड़ी उपस्थित हुए। खूब धर्म चर्चा हुई। व्याख्यान श्रवण का भी लाभ मिला। प्रथम परिचय में ही पूज्य श्री ने हम सब के मन को मोह लिया। पूज्य श्री के चातुर्मास के लिए हमारे श्री संघ के अलावा मद्रास के कई नगरों-उपनगरों की विनतियाँ भी चल रही थी। निश्चित भाषा में हम लोगों को चातुर्मास की स्वीकृति तो नहीं दी, लेकिन स्थान भवन के उद्घाटन के अवसर पर उपस्थित रहने का आश्वासन जरूर पूज्य श्री ने हम लोगों को दे दिया।

उस समय युवाचार्य प्रवर डॉ. शिवमुनिजी म. सा. वेपेरी, मद्रास के चातुर्मास को सफलता पूर्वक सम्पन्न कर मद्रास के नगर-उपनगरों में विचरण कर रहे थे। स्थानक भवन के उद्घाटन पर उपस्थित रहने की उनकी स्वीकृति भी प्राप्त करने में हम लोग सफल हो गये। श्रमण संघ के दो महान् दिग्गजों की स्वीकृति मिल जाने पर हम लोग दुगुने जोश के साथ उद्घाटन की तैयारियों में लग गये। उद्घाटन के पांच दिन पहले पूज्य श्री का मद्रास नगर प्रवेश हो गया। हम नाहर बंधुओं को पूज्य श्री ने कृपा करके दो दिन ठहराने का लाभ प्रदान किया इस अवसर पर मुझे पूज्य श्री के अत्यन्त निकट सम्पर्क में आने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मौका मिला। तब से लेकर आज तक पूज्य श्री की हम नाहर बंधुओं पर और मुझ पर विशेषतः कृपा रही है। दि. २६ जनवरी, १९९३ को माम्बलम स्थानक भवन के उद्घाटन का कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ।

आप श्री के प्रवचनों की शैली बेजोड़ है। घंटों तक धारा प्रवाह प्रवचन देना आपकी अद्वितीय विशेषता है। गूढ़ से गूढ़ शास्त्रों के अर्थ को सुबोध एवं सरल भाषा में श्रोताओं को समझाने की कला में आप प्रवीण है। प्रवचन के समय श्रोताओं के ध्यान को इस प्रकार केन्द्रित कर देते हैं, जैसे कोई जादूगर अपनी अद्भुत कला से दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। निर्भीकता एवं स्पष्ट-वादिता आदि आपके गुण, दानवीर कर्ण के कवच एवं कुण्डल से प्रतीत होते हैं। सच्ची बात कहने में आप किसी प्रकार का संकोच नहीं करते हैं। आप श्री अक्सर कहा करते हैं, –"क्या करूँ ? मेरी जबान जरा कड़वी है। सच्ची बात कहे बिना मैं रह नहीं सकता और सच्चाई सदा कड़वी ही होती है।"

जबान से आप चाहे कितने ही कठोर हों, लेकिन हृदय आपका अत्यन्त कोमलता से परिपूर्ण है। आपकी स्पष्टवादिता से यदि आपका कोई श्रावक नाराज होकर कुछ काल के लिए आपके दर्शनार्थ आता न दिखें तो आपका हृदय अन्दर ही अन्दर अपने आपको कचोटने लगता है। श्री संघ के प्रबन्धकों से आपश्री पूछ ही लेते हैं, –"क्या बात है ? फलां आदमी आजकल दिखाई नहीं पड़ रहा है। जब वह व्यक्ति वापस दिखाई देता है तो आपश्री का हृदय कमल खिल उठता है। आप श्री बड़े ही स्नेह से उस व्यक्ति को अपने पास बिठाकर उसके संशय अथवा गलत फहमी को दूर कर देते हैं। ऊपर से कठोर एवं भीतर से कोमल, आपका यह विशेष गुण पूज्य गुरुदेव मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म.सा. की याद को ताजा कर देता है, जिन्हें स्नेह से सब लोग 'कड़क मिश्री' कह कर पुकारा करते थे।

आपश्री का प्रवचन प्रतिदिन प्रार्थना से प्रारंभ होता है। आपश्री के कंठ में सरस्वती का प्रवाह है। आपके कंठ से निकली प्रार्थना को श्रोता मंत्र मुग्ध होकर सुनते हैं एवं आपके साथ स्वर में स्वर मिलाकर गाने में तल्लीन हो जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि आपका व्यक्तित्व अनूठा है। आपकी दीक्षा की स्वर्ण-जयंति के शुभ अवसर पर दीर्घायु के लिए मंगल कामना! चरण युगल में वंदना ! अभिनन्दन !

❑ **पारस जे. नाहर**
टी. नगर, चेन्नै-१७

सर्वजनहिताय, सर्वजन सुखाय

परम पूजनीय, वादी गजसिंह, प्रखरवक्ता, आगमों के उद्भट विद्वान, संस्कृत-प्राकृत भाषा के निष्णात ज्ञानी, ज्ञानार्णव, जिनशासन प्रभावक, श्रमणसंघ के सलाहकार एवं मंत्री श्री सुमनमुनिजी म.सा. "श्रमण" के चरणों में सविधि वंदन।

पूज्यप्रवर की दीक्षा-स्वर्ण-जयंति मनाई जा रही है। प्रसन्नता हुई कि यह दीक्षा-स्वर्ण-जयंति संपूर्ण भारत के जैनियों के लिए अति आनन्दमय उत्सवरूप है।

आपने श्रमणजीवन के यशस्वी/कल्याणकारी/श्रेयस्करी वर्ष पूर्ण किये हैं। आपने **तिन्नाणं-तारयाणं** के अनुरूप अपनी आत्मा का कल्याण तो किया ही है अपितु सहस्रों लाखों भव्य आत्माओं को अपनी सद्-प्रेरणा से धर्माभिमुख करके उनकी आत्मा का भी कल्याण किया है। अनेकानेक व्यक्तियों के सम्यक्त्व को दृढ़ कर उनको मुक्ति-मार्ग की ओर प्रेरित किया है।

आपने जैनधर्म के गूढ़ एवं क्लिष्ट सिद्धांतों को सरल एवं स्पष्ट भाषा में विवेचन कर, उन्हें प्रकाशित कर साधारण व्यक्ति के ग्राह्य योग्य किया है। अन्य महान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतों जैसे श्रीमद् राजचन्द्रजी आदि की गंभीर कविताओं पर न अति विस्तार और न अति संक्षिप्त विवेचन कर उन्हें सरल, ग्राह्य एवं लोकप्रिय बनाया है।

आपके विवेचन की शैली आदर्श शैली है। जिसमें कठिन, एवं अनेकार्थ शब्दों का प्रासंगिक अर्थ, अन्य आगमों एवं ग्रंथों के उद्धरणों द्वारा उस अर्थ का ज्यादा स्पष्टीकरण तथा सरल एवं स्पष्ट विवेचन किया जाता है। आपके द्वारा विवेचित ग्रंथ को पढ़ने के बाद पाठक को उक्त विषय में कोई शंका शेष नहीं रहती है। यही है आपकी विद्वत्ता एवं विवेचन शैली की विशेषता। अतः आप **ज्ञानार्णव हैं।**

जब-जब भी अन्यमतियों ने जिन शासन की आलोचना की, अवांछित टीका-टिप्पणी की, तब-तब आपने निर्भीक रूप तत्काल प्रतिवाद कर उन्हें निरुत्तरित किया। यह आपकी असाधारण उत्पात बुद्धि एवं क्षमता है कि आपके सम्मुख सभी वादी निरुत्तर हो गए। अतः आप **वादी गजसिंह हैं।** जिसकी एक गर्जना से वादी सभी मृग तितर-बितर हो जाते हैं।

आपने जिनशासन की महती प्रभावना की है तथा जिनशासन की पताका को और अधिक फहराया है। जैन सिद्धांतों का आपश्री ने जैनों, अजैनों में खूब प्रचार-प्रसार किया है। आपकी प्रेरणा से जैनियों ने कई ऐसे **"सर्वजन हिताय सर्व जन सुखाय"** कार्य किए हैं जिससे जैन समाज की, जैनधर्म की कीर्ति एवं यश फैला है। अतः आप **जिनशासन प्रभावक हैं।**

अतः हे पूज्यप्रवर ! मैंने आपके लिए जो उपमाएँ लिखी है, वे यथार्थ हैं। हे यशस्वी ! जिनशासन प्रभावक! प्रखरवादी, महान लेखक ! ओजस्वीवक्ता ! असाधारण नेतृत्वशक्ति के धारक ! दीक्षा-स्वर्ण-जयंति के उपलक्ष्य में कोटिशः वंदन।

❑ **चमनलाल मूथा**
रायचूर

अर्पित है, मंगलमयी भावना

सर्वप्रथम पंडितरत्न श्री सुमनकुमारजी म.सा. के संयममय स्वर्णजीवन का हार्दिक वन्दन-अभिनन्दन करता हुआ यह सद्कामना करता हूँ कि आपकी यशोगाथा चारों दिशाओं में प्रसरित हो। आप कमल की भाँति इस लोक और धर्मलोक में रहते हुए संयम की साधना-आराधना में स्वस्थ रहे, दीर्घायु हो क्योंकि सच्चा संयम ही मोक्ष का द्वार है।

आपश्री से चतुर्विध संघ को बहुत अपेक्षाएं हैं। पचास वर्ष में अनेक उतार-चढ़ाव आपने देखे हैं।

"श्रमणसंघ का निर्माण समाज की बहुत बड़ी उपलब्धि है। परन्तु आज न अनुशासन है, न दृढ़ता है, न एकरूपता है, न संगठन और न संप्रदायविहीन। इन सब बिन्दुओं का प्रतिफल है-सर्वत्र शिथिलता का बोलबाला। जो भावनाएं और कामनाएं श्रमणसंघ के निर्माण में संजोई गई और आज जो कुछ हो रहा है वह आप से ओझल नहीं है अतः पुनः एक दृढ़ इच्छा शक्ति व क्रान्ति की आवश्यकता है तभी हम इककीसवीं सदी में जैनधर्म के प्रति अपने समाज राष्ट्र व विश्व को आकर्षित कर सद्मार्ग की ओर मोड़ सकते हैं।"

राष्ट्रपिता महात्मागांधी द्वारा प्रयोग की गई अहिंसा और विज्ञान के समन्वय से विश्व-बंधुत्व एवं विश्व-शांति संभव है। गंभीर चिंतन व मनन कर इस ओर अतिशीघ्र अग्रसर होने की आवश्यकता है। कथनी-करनी की एकरूपता सच्चा आचरण है। आज संख्या नहीं गुणवत्ता की आवश्यकता है। जिनशासन देव हम सबकी सोयी हुई आत्माओं को जागृत करे और हम सब मिलकर एकजुटता से कुछ कर सके, ऐसी मंगलमय मनोभावनाओं के साथ –

❑ **शांतिलाल पोखरणा जैन (भीलवाड़ा राज.)**
सदस्य : श्री अ.भा.जैन कॉन्फ्रेन्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा नाम तथा गुण

महान् युगप्रधान संत श्री शुक्लचंद्रजी महाराज के प्रशिष्य एवं पंडितरत्न, पुण्यात्मा श्री महेन्द्रकुमार जी के महान् शिष्यरत्न परम श्रद्धेय श्री सुमनमुनि जी म. को सश्रद्ध वंदना।

मेरे लिए यह शुभ एवं सुखद बात है कि मैं गुरुदेव श्री के अभिनंदनार्थ कतिपय पंक्तियाँ लिख रहा हूँ।

मन का पंछी अतीत की ओर उड़ान भरने लगा है, नेत्रों के समक्ष १९६१ में नवांशहर में किया गया आपश्री का वर्षावास उभर आया है। मन कितना प्रफुल्लित हो उठता था उस समय यह देखकर कि हमारी माताजी, परमश्रद्धेय गुरुदेव श्री शुक्लचंद्रजी महाराज के चरणों की धूलि अपने मस्तक पर लगाया करती थी। आज मेरा मन भी आपके चरणों की रज अपने माथे पर लगाने को उत्सुक है। आप यथानाम तथागुण हैं।

आपके ज्ञान की गरिमा अवर्णनीय है। गुरुदेव! दीक्षा-स्वर्ण जयंति पर यही सद्कामना करता हूँ कि आप सदैव स्वस्थ रहे और दीर्घातिदीर्घ आयु प्राप्त करे।

❑ **वेदप्रकाश जैन**
प्रधान : श्री जैनेन्द्र गुरुकुल, पंचकूला (हरियाणा)

गुरुदेव मेरे मैं उनका

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री की दीक्षा स्वर्ण-जयन्ति पर मैं अज्ञ क्या लिख सकता हूँ ? कवि-लेखक भी लिख-लिख हारे किंतु गुरु-गुण लिख नहीं पाये ! मैं बस इतना ही कह सकता हूँ – "गुरुदेव मेरे हैं, मैं उनका!"

गुरुदेवश्री का तप-त्याग-संयम विरल है।

जैन दीक्षा की कठोर साधना नंगी तलवार पर चलने के सदृश है। गुरुदेव श्री की जन्म-जयंति मनाने का शुभ एवं सुखद अवसर हमारे श्रीसंघ को भी प्राप्त हुआ था, उस समारोह की छवि आज भी हृदय में अंकित है। हमारे परिवार पर गुरुदेव का धर्ममय स्नेह अटूट है।

अंततः इकबाल का एक शेर प्रस्तुत करते हुए अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दिदावर पैदा।।

❑ **मांगीलाल जाँगड़ा**
मुनिरेड्डीपालयम्, बैंगलोर

सुरभित हो ज्यों चन्दन

शुक्ल उद्यान के उत्तम पुष्प, इतिहास केसरी, सन्तशिरोमणि श्रद्धेय श्री सुमनमुनिजी महाराज के चरण कमलों में कोटिशः सादर वन्दन!

"दक्षिण की धरा आपके चरणों के संस्पर्श से पुलकित है, भाग्यवान है – दक्षिण का भू-भाग ! आपकी वाणी से जन-जन का मन धन्य हो रहा है। दक्षिण की धरा के भाग्य पर इतरावे या हम अपने भाग्य पर ! हमारा अपना, हमारे पंजाब का, हमारे प्रातः स्मरणीय गुरुदेव युवाचार्य श्री शुक्लचन्दजी म. की भट्टी में तपा हुआ कुन्दन, शान्तमूर्ति गुरुदेव श्री महेन्द्रकुमारजी म. के कुशल शिल्पी हाथों से गढ़ा गया एक हीरा, अपने तप-संयम, गहन ज्ञान, ध्यान और विद्वत्ता की चमक-दमक से सुदूर प्रान्त में गुरुदेवों के नाम को चार चाँद लगा रहा है, पंजाब की भी कीर्ति बढ़ा रहा है, धन्य है आपके जनक एवं जननी एवं आपका तपोमय जीवन को।

शारीरिक रूप से भले ही आप दूर हैं पर मानसिक रूप से हमने सदैव अपने संग-संग पाया है। सबूत भी है; समय-समय पर बरसती आपकी महती कृपा। कृपावर्षण बना रहे इसी भाँति !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्दन - अभिनन्दन !
सुरभित हो ज्यों चन्दन !
यश फैले चतुर्दिक्
श्रमण संघ संवर्द्धित !!

❑ सोमप्रकाश जैन
मंत्री, एस.एस. जैन सभा, सुलतानपुर लोधी

अनुभव शास्त्र के धनी

जैनधर्म निष्कलंक और परम श्रेष्ठ धर्म है। इसमें शैथिल्य का तनिक भी स्थान नहीं है। परन्तु समय-समय पर कालवशात् जब-जब शिथिलता आई, तब-तब ऐसे तेजस्वी सन्त आते रहे, जिन्होंने समाज को सत्य का दिग्दर्शन कराया ! ऐसे ही सन्तों में परम श्रद्धेय श्री सुमन मुनिजी म. भी हैं। जैन मुनि चलते-फिरते तीर्थ होते हैं। जैन मुनि जिस दिन से दीक्षा स्वीकार करता है उसी दिन से सामाजिक व धार्मिक सेवा का व्रत भी साथ साथ अपना लेता है। मुनि श्री सुमन कुमारजी म. का योगदान इस क्षेत्र में ४६ वर्षों से धर्म एवं समाज को समय-समय पर मिलता रहा है। आपने अपनी जीवन-ज्योति जलाकर औरों को प्रकाश दिया। जीवन सुमन चढ़ाकर समाज एवं धर्म को अलंकृत किया।

आपने अपने त्यागमय जीवन में बहुत कुछ सीखा, अनुभव किया और यही कारण है कि आज संसार को आपके जीवन से बहुत कुछ सीखने को मिल रहा है। आपका जीवन अनुभव शास्त्र है। आपका व्यक्तित्व सूर्य के समान तेजस्वी, ओजस्वी व प्राणवान है। आप धीर-वीर व गंभीर है। आपकी जिह्वा में सरस्वती का वास है। आप गूढ़ से गूढ़ बात को सरल से सरल तरीके से कहते हैं। आप हमें जो दे रहे है वह समप्रदान महादान है तथा श्रमण भगवान महावीर की वाणी ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र का ही उपदेश है। विद्याभिलाषी तपस्वी, सेवाभावी सुमन्तभद्रजी म., मुनि श्री गुणभद्र जी म. तथा प्रवीण मुनिजी म. एवं श्री मुनि लाभचन्द जी म. आपकी शिष्य संपदा में रत्नों के समान सुशोभित हैं।

आज हम इन उच्च व्रती, विद्यावान-विद्वान सन्त, दृढ़ संकल्पी, साहित्य सेवी श्री सुमन मुनि जी म. को यह श्रद्धापुष्प - 'सु-मन' से अर्पित करते हुए वर्तमान और भावी पीढ़ियों से आग्रह भरी विनती करते हैं कि वे इन विद्वान् सन्त को समझें और विशाल दृष्टिकोण रखकर उनसे लाभ लें।

गुरुदेव के श्री चरणों में सहस्रशः वन्दन !

❑ प्रकाश चन्द डागा,
एम.ए. (जैन विद्या), मैसूर (कर्नाटक)

अनंत उपकारी गुरुदेव

हमारे जीवन में तप और त्याग का महत्त्व प्रतिपादित करने वाले, संयम-धन के संरक्षक, भौतिकता की चकाचौंध में भटकते प्राणियों के पथ-प्रदर्शक, ज्ञान-चक्षु-प्रदाता, अनन्त उपकारी परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री सुमनमुनिजी म. के पावन चरणों में भावभीना सश्रद्ध वन्दन !

जीवों को तारने वाले,
धर्म-दीप जलाने वाले
नैतिकता के पथ प्रदर्शक
सद्गुणों के संवर्द्धक
आपको करता हूँ - वंदना !
तिक्खुत्तो....मत्थेण वंदामि !!

दीक्षा-जयन्ति के शुभ प्रसंग पर हार्दिक मंगल कामना है कि आप स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे। आपकी मंगलमयी छात्रछाया सदैव बनी रहे तथा हम आपके नेतृत्व में संयम-तप-आराधना करते रहें, निर्विघ्न रूपेण ! इसी शुभेच्छा एवं अनंत-अनंत आस्था के साथ पुनः-पुनः वंदामि—नमंसामि-मत्थएण वंदामि !!!

❑ शांतिलाल खाबिया
मैलापुर, मद्रास-४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मिक साधना के प्रभावी उद्घोषक

हमारी पावन भारत माँ युगों-युगों से आध्यात्मिक साधना की उर्वरा भूमि रही है। इतिहास और वर्तमान इस बात के प्रवल साक्ष्य हैं कि यहाँ अनेकों साधकों ने जन्म लिया और उच्चकोटि की आध्यात्मिक साधना में समग्रता के साथ सदैव जिनके चरण अविराम वढ़ते रहे। ऐसी एक विरल विभूति, जिनके जीवन का एक-एक कण साधना के स्वर को प्रवाहित कर स्वयं के होने को सार्थक कर रहा है, जिनके रोम रोम में रम चुका है – आध्यात्मिक पुरुषार्थ, जिन्हें भौतिक वासनाओं की कामना नहीं बल्कि विशुद्ध आत्मिक साधना से जिनका जीवन निष्काम व निष्कपट है, जैन परम्परा के महान साधक हैं, वे हैं – श्रमण संघीय सलाहकार श्रद्धेय गुरुवर श्री सुमन मुनि जी महाराज साहब ! मेरी मानसिक व हार्दिक आस्था आपके श्री चरणों में सदैव नमन करती है।

मैंने आपश्री के प्रथम बार माम्बलम चातुर्मास के वक्त दर्शन किए और प्रवचन श्रवण का सौभाग्य भी प्राप्त किया। मैंने जब-जब भी आपश्री की वाणी सुनी, मुझे गहरा आत्मिक सन्तोष एवं परम शान्ति का अनुभव हुआ। यह एक कटु सत्य है कि जहाँ आज वर्तमान समाज साधना से स्खलित हो बाह्य आडम्बर की ओर ज्यादा अभिमुख होता जा रहा है, जिनके जीवन की पवित्रता धीरे धीरे लुप्त होती जा रही है ऐसी स्थिति में आपका सौहार्दपूर्ण, निर्भीक, स्वच्छ जीवन व्यवहार हम सबके लिए प्रेरणाप्रद तथा मिसाल बन रहा है। बाह्य आडम्बरों पर गहरा प्रहार एवं जन जीवन में नई चेतना का संचार करते हुए गुरुदेव भी भीतर की यात्रा के प्रबल समर्थक हैं। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि माम्बलम चातुर्मास में तपस्यार्थी भाई बहनों की झड़ी लगी थी। एक के बाद एक तपस्यार्थी वाजे गाजे के साथ प्रत्याख्यान के लिए आ रहे थे ऐसे में आपने व्याख्यान में जो उद्गार व्यक्त किए वे दृष्टव्य है –

"तपक्रिया मान सम्मान, समाज से वाह वाही प्राप्त करने, यश-कीर्ति, इहलोक-परलोक के सुखों के लिए नहीं बल्कि कर्म निर्जरा के लिए, आत्मशुद्धि के लिए होनी चाहिए। तपक्रिया के प्रदर्शन में हमारा जीवन-दर्शन ही लुप्त होता जा रहा है। आडम्बर, प्रदर्शन हमारे कर्मों को क्षय करने के स्थान पर बंध का कारण बन जाते हैं।"

जो भी आपके सम्पर्क में आया आप श्री के पवित्र जीवन की अमिट छाप लेकर लौटा। वैसे तो हर प्रभाव वक्त के साथ साथ कभी न कभी समाप्त हो जाता है पर आपके निष्कपट जीवन का प्रभाव अमिट है। आपके प्रवचन सदैव साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से परे होते हैं। निडर व स्पष्ट वक्ता होने पर भी, शान्ति, सौहार्द और मैत्री पूर्ण वातावरण में आपकी गहरी रुचि ही नहीं अपार श्रद्धा है। सच है, पवित्र जीवन में ही धर्म का निवास होता है। हालांकि मैं अपनी लेखन शक्ति की मर्यादा को जानती हूँ फिर भी आत्मिक प्रेरणा व आन्तरिक रूचि के कारण भक्ति भाव भीने हृदय से कुछ लिखने को प्रेरित हुई हूँ। प्रवचन के दौरान गुरुवर ने अपनी मधुर, गम्भीर और सटीक वाणी द्वारा अनेक पुण्यात्माओं को धर्म का रसिक बनाया है। जब मैंने गुरुदेव के प्रथम दर्शन किए थे तो सहज ही मनवीणा के तार इस प्रकार झंकृत हुए – "अद्भुत हैं आपके अनुपम गुण! कैसी है – आपकी सौम्य शांत आत्मस्पर्शी आकृति! और कैसा है – मंगलमय नाम-मुनि सुमन!" नाम तो सुवासित और मंगल है ही साथ ही आपके मांगलिक मस्तिष्क की उर्वरा भूमि पर सदैव शुभ ही स्थित रहता है। जीवन में कहीं कोई लाग लपेट नहीं: मिलावट नहीं। निष्पक्ष रूप से समाज के हितचिन्तक हैं। तभी तो बड़े-बड़े विद्वान्, ज्ञानी, प्रतिष्ठित जैन और जैनेतर लोग श्रद्धा से नतमस्तक हो एक आवाज में आपश्री के गुणगान करते हैं। गुरुदेव के उपकार सीमातीत हैं। स्मृत हैं माम्बलम चातुर्मास के वे दिन, जहाँ प्रवचन के माध्यम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से हमारे भीतर के मिथ्यात्व को हटाकर बेजान, निर्जीव, परम्पराओं प्रदर्शनों पर प्रहार एवं सत्कृत्यों की अनुमोदना करते हुए जीव राशि को चतुःशरणगमन करने हेतु हर क्षण प्रेरित करते दृष्टव्य हैं –

"आपके हृदय-उद्‌गार – धर्म ठहरने के लिए शरीर, वचन, मात्र स्थान शुद्धि ही नहीं बल्कि हृदय की शुद्धि चाहिए। हृदय की ऋजुता-सरलता धर्म की आवश्यक शर्त है जहाँ छल-कपट है, जलेबी के गोल-गोल आँटे की तरह वक्रता है, माया है, वहाँ शुद्धि नहीं हो सकती। धर्म नहीं हो सकता।"

जब-जब मैंने आपका साहित्य पढ़ा, मुझे लगा, जैन धर्म में चल रहे वाद-विवाद और ईर्ष्याजन्य प्रवादों से आपका हृदय दुःखी है। इसी कारण आपके हृदय में एक वेदना का स्वर यदा-कदा मुखरित हो जाता है। एक वार्तालाप के दौरान भी मैंने उनके हृदय की व्यथा को जाना। यह व्यथा और वेदना थी – जैन संघ में व्याप्त विषमता की, परस्पर के ईर्ष्या द्वेष की, साम्प्रदायिक संकीर्णताओं की, संघों में सुरसा के वदन सी फैल रही अमैत्री और स्वकेन्द्रीकरण की। आप विशिष्ठ तत्त्वचिंतक के रूप में सुवासित हो अपने 'सुमन' होने को सार्थक कर रहे हैं। एक बार आपने समयानुकूल समाधान देते हुए कहा कि समाज में मैत्री व विश्वबन्धुत्व के लिए हमें वीतराग तीर्थंकर द्वारा निर्दिष्ट मैत्री, प्रमोद, करुणा, व मध्यस्थ भाव ही अपनाना होगा।

मैं व्यक्तिगत रूप से आपके सम्पर्क में कम ही रही पर आपकी लेखनी व प्रवचन श्रवण ने मेरी श्रद्धा व आस्था को दृढ़तर बनाया। मैंने स्वयं देखा है बहुत से ज्ञानी विद्वान साधु, गृहस्थ, तत्त्वज्ञानी श्रावक आपके पास आकर घंटों-घंटों चरणों में बैठकर प्रश्न पूछते और एक सन्तुष्टी व आत्मिक अनुभूति के साथ पुनः लौटते हैं मानों उन्हें कोई सच्चा आश्रय मिल गया है जहाँ वे अपने दिल की बात निःसंकोच कह सकते हैं। आप स्व समुदाय व पर समुदाय के साथ एक जैसा वात्सल्य भाव रखने के कारण समुदाय विशेष के न रहकर समस्त संघों के पूज्यनीय व वन्दनीय हैं। शब्द व्याकरण के ममर्ज्ञ, प्रचंड बुद्धि व अनेकों प्रतिभा के स्वामी होने पर भी अहंकार नहीं। आपने अहंकार की विस्तृत व्याख्या करते हुए बड़ा सुन्दर चिन्तन दिया –

"मैं और परमात्मा" दोनों एक साथ नहीं रह सकते। वीतरागता को पाना है/परमात्मा को पाना है तो मैं को तिरोहित करना पड़ेगा"।

सोचती हूँ जन्म तो हमने भी मनुष्य के रूप में लिया है किन्तु अज्ञानता, कषाय, मोह की वजह से न जाने कब से ८४ लाख जीवयोनी के चक्कर काट रहे हैं। कब तक इन चार गतियों के चक्कर में डूबते रहेंगे? पर गुरुदेव जैसी कुछ आत्माएँ मानव जीवन को प्राप्त कर आत्मसाधना के शिखर पर आरोहण करती जाती हैं और अपने आत्म प्रकाश से जन-जीवन में आत्मजागृति का शंखनाद करके अनेकों आत्माओं को कल्याण के मंगलमय मार्ग पर अग्रसर करती हैं। निर्भीक, निष्पक्षता गुण की वजह से साधु व श्रावक समाज द्वारा चातुर्मास में व्याप्त हो रही छलना व आडम्बरों का खुलकर विरोध करते हैं। कहीं कोई भय नहीं, लाग लपेट नहीं। मैंने सदा आपको अलिप्त व अनासक्त ही पाया।

चेन्नई चातुर्मास का ही प्रसंग है। भोजनशाला में लोग भोजन कर रहे थे। सैकड़ों लोगों का भोजन हो रहा था। एक जैनैतर बच्चा भी भोजन करने बैठ गया। कार्यकर्ताओं ने उस अबोध बालक को अपमानित व प्रताडित किया और भोजन करते हुए को वहाँ से उठा दिया। गुरुदेव ने दूसरे दिन प्रवचन में हमारे इस ओछेपन का इतना मार्मिक चित्रण किया कि सबके हृदय पश्चात्ताप से भर उठे और आत्म ग्लानि होने लगी।

गुरुदेव के करुणामय हृदय में रात दिन जीवों के कल्याण की धारा प्रवाहित होती रहती है। परोपकार तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके जीवन का श्वासोच्छ्वास है। आपकी वाणी गहन से गहन विषयों को सरल बना देती है। प्रवचनों में ऐसी तारतम्यता होती है कि मानों कल कल करता कोई शांत निर्झर अपनी बेजोड़ ताल व लय के साथ प्रवाहित हो रहा हो। तत्त्व का कोई भी कोना साधना का कोई भी पक्ष, जीवन का कोई भी दृष्टिकोण आपकी प्रज्ञा से अछूता नहीं रहता। वर्तमान श्री संघों में पिछले ३-४ दशकों में जो विषमताएँ, अराजकताएँ, सम्प्रदायवाद, परस्पर विरोधी स्वरों का बोलबाला रहा है, ऐसी विकट स्थिति में आप श्री ने बड़ी निड़रता एवं मैत्री पूर्ण वातावरण में सहयोग स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया है तथा कर भी रहे हैं। भीड़ भाड़ व बाड़े बन्दी के इस युग में जब सभी अपने अपने खेमे मजबूत बनाने की फिराक मे हैं, ऐसी विकट स्थितियों में भी आपको शिष्य बनाने की कोई लालसा या आकांक्षा नहीं है। आपकी सुदृढ़ लेखनी ने सदैव व्यक्ति को गुणग्राही बनने की प्रेरणा दी। आपका कथन है –

"हम अपने विद्यमान अल्प से अल्प गुणों का भी कितना बखान करते हैं, कितना अहंकार करते हैं, मियां/ मिट्ठू बनने में कितना आनन्द आता है। उतना आनंद हमें दूसरों के गुणों को देखकर नहीं होता। अतः हमें परमानंद की प्राप्ति न हो तब तक हमारी साधना अधूरी है।"

आपका अहिंसा विषयक युगीन चिन्तन युवाओं के हृदय में जोश व उत्साह भर देता है, कुछ कर गुजरने की चाह जगा जाता है। वहीं पुरानी पीढ़ी को भी आन्दोलित कर सत्य बात को स्वीकारने को मजबूर कर देता है मानों वर्षों से शिथिल पड़ी हमारी चेतना शक्ति को झकझोर कर जागृत कर रहे हों। पीयूष प्रवचन धारा में, भाषा में न आवेश होता है न कठोरता। हाँ स्पष्टवादिता एवं सौम्यता झलकती है। उस दिन के प्रवचन में उद्‌बोधित पंक्तियाँ आज भी मेरे मानस पटल पर अंकित हैं –

"साधक का जीवन घट एक ही दिन में नहीं भर जाता बल्कि क्षण-क्षण जागृत रहने से धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होता है।"

आप श्री चेले बनाने, गुरु धारणा करवाने व तथा कथित धार्मिक ठेकेदारों एवं संकीर्ण सड़ी-गली मान्यताओं के प्रबल विरोधी हैं, यह आपका क्रान्तद्रष्टा रूप है।

एक बार गुरुदेव के पास विद्वान् जिज्ञासु बैठे थे, मैं भी थी। विराट प्रज्ञाशाली व्यक्तित्व के समक्ष, मैं संकोच वश चुपचाप बैठी थी। श्रद्धा भावना में बह जाना चाहती थी पर वाणी का प्रकटीकरण नहीं हो पा रहा था। भला भावों की सरिता को शब्दों में कहाँ बाँध पाते हैं। ऐसे में मौन ही मुखरित होता है। पर गुरुदेव ने अपनी वात्सल्यमयी दृष्टि एवं वाणी माधुर्य से सहज रूप से वार्तालाप शुरू कर दिया। मेरे भीतर का संकोच धीरे धीरे तिरोहित होता जा रहा था। अपने परिजनों से सुना था कि बड़े-बड़े साधु सिर्फ अपने भक्तों की ओर ही ध्यान देते हैं। सामान्य व्यक्ति से बात करना तो दूर, पूछते तक नहीं, नजर उठाकर भी नहीं देखते। पर आज इस निस्पृह शिरोमणि के सामने, परिजनों की बातें असत्य सिद्ध हो रही थी। भौतिक इच्छाओं से परे, पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान की तुच्छ इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने वाले इस योगी का सान्निध्य पाकर मैं आत्मिक आनंद की अनुभूति से अभिभूत थी। बार-बार मेरा हृदय इस जिन-मार्गी साधक के समक्ष श्रद्धावनत हो जाता था। आज भी जब कभी मैं अपनी अल्पज्ञता से व्यथित होती हूँ तो आत्मा आपके साहित्य एवं पीयूष वचनों का मनन करती है और स्वतः कपूर की भाँति दीनता-हीनता खुद-ब-खुद काफूर हो जाती है। फिर से नया विश्वास और मनोबल दृढ़ हो जाता है। आप अक्सर मोक्ष अभिलाषा का द्वीप प्रज्वलित करते हुए कहा करते हैं -

वक्त आएगा ऐसा कभी न कभी,
सिद्धि पाएंगें हम भी कभी न कभी...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मद्रास शहर में गुरुदेव के सुन्दर संस्मरणीय चातुर्मास मेरे जीवन में परिवर्तन के अमूल्य धरोहर हैं या यूं कहूँ कि वे क्षण अमर हो गए जब अज्ञान अन्धकार में दर-दर ठोकरें खाने वाली व जीवन के साधना पथ में गुम राह हुई, उनके आत्मसार गर्भित ज्ञान-चर्चा के श्रवण से नीर क्षीर विवेक जागृत हुआ, भेद-विज्ञान की दृष्टि मुझे मिली।

सत्य-असत्य, पुण्य-पाप, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, ग्रहण करने योग्य, छोड़ने योग्य का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। शारीरिक आँखों के होते हुए भी अन्तर चक्षुओं से अन्धी बनी अनेक आत्माओं में धर्म-बीज का वपन किया। ऐसे त्यागी, संयमी, समीति-गुप्ति के पालक, जागरुक, निडर, निर्मोही, निस्पृह, निर्मल, निरभिमानी, ज्ञानी, योगी, महात्मा के मुखारविन्द से पीयूष प्रवचन सुन सबकी थकान मिट जाती है। व्याख्यान ऐसे बेजोड़ होते हैं कि उनका अमृतमय रस पान जीवन में कभी नहीं भुला पाएँगे। सब में भाव परिवर्तन की शुद्ध, स्वच्छ, स्फटिक धारा प्रवाहित होने लगती है। इस धारा में सहज ही चित्त की मलिनता धुलकर साफ हो जाती है। मेरी एक मित्र जो प्रथम बार मेरे साथ गुरुदेव के दर्शन एवं प्रवचन सुनने आई उसने मुझे लौटते वक्त भावों में डूबते हुए कहा – "ये सद्गुरु परम उपकारी, धर्मदाता व समकित दाता हैं। हमें अपने जीवन को मोक्षगामी बनाना चाहिए।" प्रथम दर्शन एवं प्रवचन श्रवण से इतनी चित्त की निर्मलता, संतोष, शान्ति और अनन्दानुभूति प्राप्त हुई उसे। अगर सन्निध्य की लघु डोर थोड़ी ओर लम्बी हो गई होती तो जीवन का आमूलचूल परिवर्तन हो जाता। मस्तिष्क में रहे अज्ञान के कूड़े-करकट एवं भीतर के मिथ्यात्व का अग्नि संस्कार कर, समकित की प्राप्ति हेतु सहज चित्त भावित होने लगा। चित्त में शुद्ध भावों का प्रादुर्भाव हुआ। विदा के क्षणों में स्टेशन पर मेरी मित्र ने कहा – "पता नहीं इस महात्मा में कोई चुम्बकीय आकर्षण है कि जीवन में प्रथम बार जो अनुभूति हुई वह अव्यक्त है।

इस घटना के ठीक एक सप्ताह बाद चातुर्मास पर विराजित साधु सन्तों के दर्शनार्थ संघ निकाला गया। मैं भी सम्मिलित थी। सौभाग्य से व्याख्यान में पहुँच गए। भौतिकवादी मानव और उसके विषय में जीवन के वेदना युक्त उद्गार उस संवेदनशील हृदय से निकल रहे थे –

"आज की पाश्चात्य सभ्यता ने इतनी विषम और जटिल परिस्थितियों को जन्म दिया है कि मानव अपनी उच्च संस्कृति व संस्कारों को कैसे बचाएँ? अपनी साधना को उच्चता के शिखर पर कैसे ले जाए?"

आपने इस विषय पर सुन्दर मार्ग दर्शन दिया और संस्कृति के नाम पर पनप रही विकृति से सावधान किया।

उठते ही नव प्रभात की पहली किरण के साथ गुरुदेव को भाव वन्दन करती हूँ तो मन भावों की गहराई में सोचता है –

इस भीषण कलिकाल में भी गुरु का सान्निध्य व अमृतवाणी का रसास्वादन मिलता है। आपके महान व्यक्तित्व के आगे मेरा हृदय झुक जाता है। मैंने सदैव आपको जागृत व सावधान पाया। आपकी समता आश्चर्य कारी है। जड़ और चेतन के स्वरूप को हृदयंगम कराने वाले, स्व स्वरूप की रमणता पर जोर देनेवाले, सार गर्भित, भवसागर तारिणी जिनवाणी का ज्ञान देने वाले गुरुवर से अनेक आत्माओं ने हितशिक्षा पाई है और पा रहे हैं। आप अक्सर कहा करते हैं कि ज्ञानदृष्टि से अपने को देखो, विषमताएँ स्वतः ही समाप्त हो जाएँगी। अष्ट प्रवचन माता, श्रीमद् रामचन्द्रजी का आत्मसिद्धि शास्त्र, उत्तराध्ययन आदि तत्त्वों के महा मर्मज्ञ का यही है चिन्तन!

जैन दर्शन ही नहीं अन्यान्य मतों के जानकार, साहित्य तथा प्रवचन क्षेत्र में अनूठी कृतियों का सृजन यह सब एक सच्चे साधक की मौलिक दे न है। अक्सर श्रद्धा भावों के बादल उमड़-घुमड़ कर बरस ॥ चाहते हैं आपके श्री चरणों में ताकि चित्त की सारी मलीनता धुल जाए पर समझ जाते ही न जाने किस रहस्यमय शक्ति से मौन विस्तृत होने लगता है, मानों कोई शुद्ध आवरण युक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतना महा अस्तित्व में विलीन होना चाहती हो।

राजस्थान की मरुभूमि पर खिलने वाला यह महासुमन अपने गुणों की सुवास से विश्व के गगन मण्डल में छा गया। अपनी ज्ञान-धारा से मरुभूमि को ही नहीं, पंजाब, हिमाचल, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि क्षेत्रों में ज्ञानामृत बरसाते हुए तप्त हृदयों को शान्ति देते हुए अहिंसा मार्ग पर अग्रसर, अपने सम्यक् चारित्र की अमिट छाप जन मानस पर अंकित करने वाले, जिनवाणी की सरल-सरल व्याख्या करते हुए आत्मार्थी तत्त्व जिज्ञासु, भव्यात्माओं के लिए वह निरन्तर आनन्द प्रदायक है। आपके श्री मुख से जिनवाणी का एक-एक शब्द मानस मन्दिर में सुमधुर कर्णप्रिय संगीत सा झंकृत हो उठता है। सुनकर सहज ही देव-गुरु-धर्म पर अनुराग आता है। और यह जागृति जीवन में सार्थक परिवर्तन का माध्यम बन जाती है। गुरु कल्पवृक्ष की विशाल छाया देते हैं। समस्त दुःख-दर्दों को तिरोहित कर, अनिर्वचनीय आनन्द सागर में लीन कर देते हैं।

स्थितप्रज्ञ योगी की तरह आप श्री सदैव शरीर आत्मा की व्याख्या करते हुए, जड़-चेतन जैसे विषय को सरलता से हृदयंगम करा देते हैं। आपने फरमाया - "हमारी सारी शक्ति जड़ साधना में लगी है। जब तक हमारा पुरुषार्थ जड़ क्रियाओं में लगेगा तब तक हम मोक्ष मार्ग की साधना नहीं कर सकेंगे।"

हाल ही में चन्द माह पूर्व 'जैनभवन' में घटी अनमोल क्षणों के व्यापक, गहरे अमिट प्रभाव की छाप को मैं भूल नहीं सकती। हुआ यों कि "जैन विद्वद्गोष्ठि" का एक आकर्षक आयोजन रखा गया। विद्वान् स्वाध्यायियों ने अपने सार गर्भित वक्तव्य प्रस्तुत किए। यह सारा आयोजन गुरुदेव की सन्निधि में चल रहा था। आपश्री के समक्ष मेरे बोलने का यह पहला अवसर था। मन में कुछ हिचकिचाहट, संकोच व भय के भाव थे। आयोजकों ने वक्तव्य की सीमा निर्धारित कर दी थी अतः अपनी अनुभूतियों व अहसासों से जो अल्प प्रयास किया था उसे ज्यादा से ज्यादा समय-सीमा में समेट लेना चाहती थी। प्रस्तुति के समय पसीना छूट रहा था। मेरी बार-बार दृष्टि गुरुदेव की ओर जाती थी कि गुरुवर श्री सुन रहे हैं या नहीं। जिह्वा बोल रही थी - मन सोच रहा था कि शायद मेरी प्रस्तुति में कोई सार नहीं है। मैं इस परिषद् के योग्य नहीं। मन मायूस हो रहा था क्योंकि जब भी गुरुवर की ओर नजर जाती उन्हें बस कलम से छोटे से पेज पर कुछ लिखते ही पाती थी। गुरुवर द्वारा मन में तारीफ की कुछ चाह थी। एक बार भी आपश्री का ध्यान श्रवण की तरफ नहीं पाया। मानव मन की कुछ स्वाभाविक कमजोरियों में से मैं ऊपर नहीं उठ पाई थी। निराशा व अवसाद का कोहरा मानस पर छाने लगा। अपने प्रयास की निरर्थकता दृष्टिगोचर होने लगी पर महापुरुषों की महानता की थाह यह अहंकारी चित्त कब लगा पाता है? सन्तों के सारे कार्य ही विलक्षण होते हैं। आपने सभा के अन्त में जो सुन्दर समीक्षा दी वह मेरी ज्ञानदृष्टि में सहायक बनी। आप सबको गहराई से सुन रहे थे। और जहाँ सुधार की आवश्यकता होती वहीं स्नेहिल शब्दों में सुझाव दे देते।

गूढ़ से गूढ़ रहस्य भरे आध्यात्मिक विषयों पर भी सरल शैली में समझाने की अद्भुत कला है – आपश्री में। अपनत्व से भरपूर है – आप की वार्तालाप शैली। जो एक बार कुछ क्षणों के लिए ही सम्पर्क में आया वह जीवन भर के लिए समर्पित हो गया। ऐसा है आपका सच्चरित्र और प्रभावशाली व्यक्तित्व। आज आपने एक बड़ी सच्चाई कही – "अहंकार ही संसार का बन्धन है। बाह्य सभी भौतिक वस्तुएँ अहं का पोषण करती हैं। जिस दिन अहं को मिटा देंगे उस परमात्मा-शक्ति से सीधा साक्षात्कार हो जाएगा।"

परम कृपालु सद्गुरु ने वीतरागता का सच्चा मार्गदर्शन किया, मेरे मन में उठ रही जिज्ञासा एवं समस्या का समाधान हो गया। मेरे मन में मेरी वक्तृत्व कला का अहंकार सहस्र फणों के साथ फुंकार रहा था वह शांत-प्रशांत हो गया। अहंकार मिटा, जिनवाणी का सरस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्लेषण आपके श्री मुख से श्रवण कर सन्तोष की प्राप्ति हुई। अपने आप को कृतार्थ माना। साधारण तौर पर मैं जैन साहित्य से परिचित होने पर भी उसके मर्म से सर्वथा अनभिज्ञ थी। आप श्री में मैंने मर्मभेदिनी दृष्टि व कल्याण कारिणी वाणी का सतत प्रवाह देखा। आपकी सार्वभौम कृपा की छत्रछाया में जैन जैनेतर विद्वान, तार्किक, दार्शनिक, साधक, शिष्य, जिज्ञासु सभी दर्शनार्थी निर्भय हो मार्गदर्शन पाते हैं, आप सतत् हमारी सुषुप्त चेतना को जागृति की प्रेरणा देते रहते हैं।

गुरुवर के विराजित स्थान से मेरा आवास स्थल काफी दूरी पर है। संयोग की बात है आज मुझे घर गृहस्थी की कुछ आवश्यक वस्तुओं के क्रय हेतु साहूकार-पेठ आना पड़ा। शुभ अवसर सोच, गुरुदर्शन लोभ-संवरण नहीं कर पाई। कदम किसी अनजान शक्ति से प्रेरित हो, खुद-ब-खुद स्थानक पहुँचकर ही तृप्त हुए। सूक्ष्म तत्त्वचिन्तनयुत आप श्री का व्याख्यान चल रहा था। आज आप ने चित्त की स्वस्थता का जो अखूट खजाना बताया उसे मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकती। जिनवाणी के अनमोल मोती श्री मुख से बरस रहे थे "क्रोध को मारना नहीं, उस पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। व्यक्ति को बाह्य एवं आभ्यन्तर कैसी भी विकट परिस्थिति हो, वैचारिक संघर्ष हो, धैर्य का दामन थामे रखना चाहिए। व्यक्ति ऊँचे आसन पर बैठने से महान नहीं बनता, महानता गुणों से प्राप्त होती है।" जब गुरुदेव मंगलपाठ सुना चुके तब मेरे पड़ौस में खड़ी सुश्राविका ने कहा "ये मनुष्य नहीं कोई विलक्षण महापुरुष हैं।" ज्ञान का अगाध महासागर है। महामानव, परहित चिन्ता एवं करुणापरायण प्रवृत्ति द्वारा अपने जीवन को जंगम तीर्थ स्वरूप बना लेते हैं। सद्गुणों से सुवासित आपका जीवन गुलशन बहार है। तभी तो यह सुवास सम्प्रदायों की सीमा लांघकर चारों ओर फैल रही है। दुर्लभता से प्राप्त जीवन में अध्यात्म की सही राह बताकर आपने जो उपकार किया है उसे व्यक्त करने में मेरी लेखनी सक्षम नहीं।

सच तो यह है कि आपके गौरवपूर्ण पुरुषार्थी जीवन के लिए - "दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति" अभिनन्दन - अलंकरण वन्दन आदि नगण्य हैं। आपकी सत्यान्वेषी दृष्टि में भौतिक अलंकरण क्षणभंगुर हैं। आपके जीवन की सार्थकता अध्यात्म आभूषण सम्यक्ज्ञान - दर्शन-चारित्र हैं। जिसकी निरन्तर साधना के उनपचास वर्ष पूर्ण हो गए। आप हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत, अंग्रेजी, गुजराती व पंजाबी भाषाओं पर विशेषाधिकार रखते हैं। प्रतिक्रमण व अन्य विषयों पर छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के माध्यम से जिन प्ररूपित संदेशों को जन-जन में पहुँचाया है। गुरु श्री सदा शुद्ध जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। आप श्री आहार-संस्कृत-विचार व शुद्धाचार से मानव मन का शृंगार करने में, जीवन को सार्थक करने में सदैव अहर्निश प्रयत्नशील हैं।

ऐसे पतित पावन पुण्यात्मा के श्री चरणों में, मेरा भाव भीना शत् - शत् वन्दन ! नमन !!

❑ **श्रीमती विजया कोटेचा**
अम्बत्तुर, चेन्नई

संयम के महासाधक

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री पण्डितरत्न श्री सुमनमुनिजी को सादर चरण वन्दन !

सुमन प्रव्रज्या के अवलोकन से आपके श्रमण जीवन की झलकियां मिली। सर्वप्रथम मैं दीक्षा-जयन्ति के उपलक्ष में शत-शत बधाई देता हूँ।

आपश्री श्रमण संघ के सुरभित पुष्प हैं और आप श्री के ज्ञान-दर्शन-चरित्र की महक दिन-प्रतिदिन प्रसरित होती रहे-यही मंगलकामना है।

आपने अपने प्रवचनों द्वारा ही नहीं अपितु साहित्य और संयमी जीवन द्वारा भी जन-जन के हृदय में अमिट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छाप अंकित कर दी है। आप के व्यक्तित्व में सरलता, दूरदर्शिता और चुम्बकीय आकर्षण है कि आप सभी को 'अपने ही' विदित होते हैं।

मैं आपकी दीर्घायु की कामना करते हुए आपके श्रमण संघ के लिए किये गये कार्यों का स्मरण करता हुआ दीर्घकाल तक आपके नेतृत्व की आकांक्षा रखता हूँ।

संयम के महासाधक को वन्दन ! नमन !!
भावभीना स्वीकारो मम अभिनन्दन !!

❑ **जगदीशचन्द्र जैन 'भ्राता'**
लुधियाना

विराट् व्यक्तित्व के धनी

परम श्रद्धेय श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी म. सा. श्रमणसंघ के ज्योतिर्धर संत हैं। आपने अपने प्रवचन एवं तत्त्वज्ञान की छटा से दक्षिण प्रांत के श्रद्धालुओं का मनहरण कर लिया है। इससे पूर्व मैं केवल आपके नाम से परिचित था, किन्तु साक्षात् दर्शन के पश्चात् लगा के यह संत विराट् प्रतिभा का धनी, कुशल नीतिज्ञ, एवं जैन धर्म का सच्चा निष्ठावान प्रचारक है। स्पष्ट वक्ता, निडर, दृढ़ प्रतिज्ञ एवम् सरलमना के साथ-साथ जीवन की साधना का मर्मज्ञ तथा अनुभवी हैं। मैंने सलाहकार मंत्री श्री सुमनकुमारजी को जैसा देखा वैसा ही उनका जीवन आलेखित करने का प्रयास कर रहा हूँ।

उदारता

आप श्री अत्यन्त उदारमना है। उदारता के साथ आप ज्ञान दान देते रहते हैं। किंचित् भी अनुदारता नहीं है – हृदय में। जो भी इन चरणों में आया, उसने ज्ञान ध्यान पाया है। आपने श्रावक-श्राविकाओं को तत्त्वों का ज्ञान दिया तथा उन्हें और अधिक धर्म की ओर अभिमुरव किया। आबाल, वृद्ध, अमीर एवं गरीव कोई भी आये, सभी के लिए द्वार खुले हैं। यह उदारमना संत समान भाव से सबको ज्ञान दान प्रदान कर रहा है। अतः हम सभी आपके ऋणी है।

अनुभवी

एक उक्ति है –

"जहाँ नहीं पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि"
जहां नहीं पहुंचे कवि, वहाँ पहुँचे अनुभवी"!

यह उक्ति आप पर अक्षरशः चरितार्थ होती है। आपके पास अनुभव का अनमोल खजाना है। आपके मुखारविन्द से जब अनुभव का अमृत छलकता है तो श्रोताओं को लगता है कि वे घटना के अन्तस्थल में या बात के हार्द में ही गोते लगा रहे हो। आपके कथनोपकथन का तरीका इतनी तन्मयता लिए हुए है कि श्रोताओं की जिज्ञासा निरंतर बनी रहती है कि गुरुदेव अब क्या कहेंगे, अब क्या कहेंगे। हे अनुभव अमृत प्रसाद वितरित करने वाले अनुभवी संत ! आपको सश्रद्ध नमन-वंदन !!

सच्चे धर्म प्रसारक

आपश्री धर्म-दलाली करने में सिद्धहस्त हैं। व्यापारी जैसे व्यापार की कला में निपुण होता है, इसी प्रकार आप भी धर्म-व्यापार में कुशल है। चातुर्मास एवं पर्यूषण पर्व में मैंने देखा कि आप श्री अपने प्रवचनों के माध्यम से श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं को धर्म करने की निरंतर प्रेरणा देते रहते थे। समय समय पर आडम्बर एवं कुरीतियों पर प्रहार करने से भी नहीं चूकते। आप कहा करते थे – "धर्म एवं तपश्चरण आत्मा को पवित्र एवं निर्मल बनाने के लिए है फिर धर्म में यह आडम्बर क्यों ? तपश्चरण के पीछे तामझाम क्यों ? तप तो अपने आपको विशुद्ध बनाने की प्रक्रिया है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संम्प्रदाय से परे

वस्तुतः सच्चा साधक वही है जो धर्मांधता या संप्रदायवाद से परे रहता है। कई साधु अपनी-अपनी सम्प्रदायों में बंधे रहते हैं। यह प्रवृत्ति जैन समाज की एकता एवं समन्वयकता में बाधक है किंतु आप श्री के मानस में उदारता के विचार प्रतिबिम्वित है। आपने साहूकारपेट में रहते हुए अनेक महान पुरुषों की जन्म-जयंतियाँ एवं पुण्य-तिथियों में प्रवचन दिए तथा उन महान् आत्माओं की गुण गाथा का कथन किया, इससे यही उजागर होता है कि आप सभी संप्रदाय के धर्माचार्यो के प्रति आदर भाव एवं समान भाव रखते हैं तथा गुणज्ञ है। आपश्री कभी-कभी कहा करते हैं "साधु को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता, साधु तो सभी का है। अगर साधु को ही बांट लिया तो उसमें फिर साधुत्व ही कहाँ रह जाएगा? वह तो निस्पृही होता है। सब उसके अपने है, और वह सभी का है।"

स्वाध्याय प्रेरक

आप स्वाध्याय को जीवन विकास और आत्मोन्नति का एक अभिन्न अंग मानते हैं। अतः श्रावक-श्राविकाओं को आप स्वाध्याय की सतत् प्रेरणा देते रहते हैं। वर्षावास में आपश्री ने प्रार्थना के पश्चात् स्वाध्यायी महिलाओं को प्रति दिन उत्तराध्ययन सूत्र का अध्ययन करवाया करते थे। स्वाधायियों को आपने सतत् यही प्रेरणा दी कि ज्ञान को और ठोस बनाओ। आपश्री के निर्देशन में स्वाध्यायियों का ज्ञान बढ़ा है। स्वाध्याय प्रेरक! आपको वंदन !!

दृढ़ संकल्पी

आप दृढ़ संकल्प के धनी है। मद्रास वर्षावास हेतु साहूकार पेट संघ के पदाधिकारी गण कई बार आपकी सेवा में पहुंचे। टी.नगर, चातुर्मास से ही संघ विनति कर रहा था किन्तु आपका एक ही संकल्प था, यथावसर चातुर्मास करने का। तदनंतर आप श्री ने यथावसर ही चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की। साहूकारपेठ का सघ चातुर्मास की स्वीकृति पाकर धन्य हो उठा और वह चातुर्मास भी ऐतिहासिक रहा।

एकता के पुजारी

आप एकता एवं सबको साथ लेकर चलने में विश्वास रखने वाले संत हैं। साहूकारपेट में पाटे के विवाद को लेकर जब प्रकरण गहराने लगा तो आपने कहा कि चातुर्मास सम्पन्न होने तक शांति बनाए रखें। पक्ष-विपक्ष की अशांति और उद्विगनता को आपने दबाने का भरसक प्रयास किया और आपके कथन पर शांति भी वातावरण में बनी रही। चातुर्मास पूर्ण होने पर ही वह विषय पुनः उठा और उसकी चपेट में संघ, संघ के पदाधिकारी और कार्यकारी सदस्य आ गये। तथापि आपने अपनी विवेकभरी वाणी से उन अंगारों पर राख की परत चढ़ाने का काम किया। इसके लिए आपको क्या-क्या प्रयास नहीं करने पड़े। यहाँ तक कि आपने उनके संबंधित बुजुर्ग अभिभावकों तक को बुलाकर उन्हें यह समझाया कि विरोधियों को समझाओ, अन्यथा गजब हो जायगा। संघ में विभेद, दरारें पड़ जायगी। इस तरह आपने शांतिरक्षक की पूर्णतया जिम्मेवारी निभाई। हे एकता के समर्थक ! आपको श्रद्धा के साथ नमन !

संकल्प शील

जो कार्य आप श्री को लगता है कि वह समाजोपयोगी है एवं धर्म के प्रसार-प्रचार में उपयोगी है तो उसको पूरा करने का संकल्प ले लेते हैं। आपकी विचारधारा में यह कार्य उभरा कि तमिलनाडु जैन स्थानकों की एक डायरेक्टरी होनी चाहिए तो उसके लिए आपने जैन युवा संगठन के युवाओं को प्रेरणा दी। उन्होंने आपकी भावनाओं को समझा एवं कई टीमें बनाकर तमिलनाडु के दौरे पर भेज दी, स्थानकों का विवरण, संस्थाओं का परिचय, फोटो, विडियोग्राफी आदि सामग्री इन टीमों ने एकत्र कर ली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(शीघ्र ही प्रकाश्य है वह सामग्री) आपने जो सोचा था, उसे पूरा कर ही लिया। इस प्रकार धर्म एवं समाजोपयोगी जो भी संकल्प करते हैं। उसे पूर्णता की ओर ले जाते हैं। साथ ही साथ आपका संकल्प था कि एक ऐसी संस्था बनायी जाये, जो विहार रत साधु-साध्वियों की परिचर्या में संलग्न रहे। ७५ वर्ष के इतिहास में जो साधुगण कार्य न कर सके वह आपके प्रयासों से सफलता की ओर अग्रसर है। सबके प्रति सेवा के सद्भाव रखने वाले महामना संत ! आपके चरणों में विनीत वंदन !

अप्रमादी संत

आप अप्रमादी संत हैं। जब कभी भी देखे तो ज्ञान चर्चा में ही निमग्न पायेंगे। आप पर यह दोहा चरितार्थ होता है –

क्षण निकमो रहणो नहीं, करणो आतम काज।
भणणो, गुणणो, सीखणो, रमणो, आत्म-आराम।।

आप अस्वस्थ रहते हुए भी प्रवचन दिया करते थे, प्रचंड ज्वर में भी आपने अपनी प्रवचन-शृंखला बंद नहीं की। एक समय ऐसा भी आया, गुरु शिष्य दोनों ज्वर से पीड़ित हो गये तथापि "यथा गुरु तथा शिष्य" दोनों ने हिम्मत नहीं हारी। अपने अपने कार्य, गुरुदेव प्रवचन करते रहे और शिष्य सेवा कार्य। हे अप्रमादी संत ! आपकी अप्रमदता को भाव सहित वंदन।

विद्वान प्रेमी

मेरी भावना में आता है कि –

गुणीजनों को देख, हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।।

आप विद्वानों की बड़ी कद्र करते हैं। तथा उनका उचित आदर अभिनन्दन भी संघ से करवाते हैं। विद्वानों की विचार धारा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए विद्या गोष्ठियों का भी आयोजन करवाते हैं। आपने मद्रास में भी **"जैन विद्या गोष्ठी"** का आयोजन करवाया। जिससे मद्रास के अनेक सुप्रतिष्ठित विद्वानों को आमंत्रित कर उनकी प्रवचन शृंखलाएं दो दिवस तक करवाई। अत्यंत सराहनीय एवं प्रशंसनीय यह विद्या गोष्ठी रही। हे विद्वान् प्रेमी, संस्कृति एवं ज्ञान प्रेमी ! आपको हृदय की निस्सीमता के साथ वंदन !

सहृदयता एवं सदाशयता

आप श्री के मन में सहृदयता एवं सदाशयता कूट-कूट कर भरी हुई है। आपके जीवन एवं व्यक्तित्व में चुम्बकीय आकर्षण है। श्री प्रवीण मुनि जी म. आपके प्रेम भाव एवं सद्भाव के कारण ही २५०० कि.मी. की सुदूर यात्रा सम्पन्न कर सेवा हेतु शीघ्रातिशीघ्र उग्र विहार करते हुए पधारे। आपसे कोई भी व्यक्ति एक बार मिल लेता है तो आपके धर्म स्नेह एवं सद्भाव के कारण हमेशा आप का ही बनकर रह जाता है। हे प्रेमभाव के सूत्रधार आपको नमन !

जैसा गुरु वैसा चेला :

मुनि श्री सुमन्तभद्रजी भी आपका अनुसरण करते से प्रतीत होते हैं। गुरुदेव श्री ज्ञान-ध्यान संयम यात्रा में संकल्पित है तो शिष्यवर्य सेवा भाव में निपुण है एवं तनिक भी आलस नहीं करते हैं। मैंने देखा कि वे २५-२५ सीढ़ियां दिन में अनेकों बार चढ़ते-उतरते थे। कभी आहार के लिए तो कभी प्रासुक पानी के लिए, कभी दवा आदि के लिए। अतः कहा जा सकता है शिष्य भी गुरु की राह पर निरंतर अग्रसर है।

दृढ़ महाव्रती

एक बार आपको प्रचंड ज्वर आया। उस दिन देरी से दर्शनार्थ गया तो पाया कि गुरुदेव प्रचंड ज्वर से ग्रसित है और वह भी १०४ डिग्री बुखार! शरीर की नाड़ी का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पन्दन भी धीमा। शीघ्रातीशीघ्र गया और डाक्टर को लेकर आया। डाक्टर ने स्वास्थ्य निरीक्षण किया और इंजेक्शन एवं दवाई आदि देनी चाही तो गुरुदेव ने स्पष्टतः मनाकर दिया कि स्वास्थ्य निरीक्षण किया, वही बहुत है। दवा इंजेक्शन मैं नहीं ले सकता, क्योंकि मैं साधु हूँ और साधु अपने व्रत-महाव्रत पर दृढ़ रहते हैं। रात्रि में दवा सेवन एवं इन्जेक्शन से मेरा रात्रि भोजन निषेधव्रत भंग होता है, अतः मैं ग्रहण नहीं कर सकता। डॉक्टर भी ऐसे साधक को देखकर आश्चर्य चकित था। मेरा मन श्रद्धा से नत हो गया। धन्य है ऐसे दृढ़ महाव्रती को।

आपका जीवन विविध विशेषताओं से परिपूर्ण है। मेरी लेखनी उसे व्यक्त करने में असमर्थ है। मेरी यह लेखनी तो चाँद-सूर्य को दीपक दिखाने जैसी है। किसी ने ठीक ही कहा है –

"किस मुख से गुण वर्णन करूं, मेरी तो एक जबान है।"

आपका जीवन तप त्याग और संयम-निष्ठा की प्रतिमूर्ति है। आपमें ज्ञान और साधना का मणिकांचन योग है।

आपकी दीक्षा-स्वर्ण जयंति बड़े त्याग तप से सम्पन्न हो, यही शुभाभिलाषा। साथ ही साथ इस अभिनन्दन ग्रन्थ का विमोचन भी अति शीघ्र हो ताकि जन-जन आपके जीवन की गुण-गाथा पढ़कर सुरभित हो सके।

यह भी एक सुखद संयोग है कि आपश्री की दीक्षा के पचासवें वर्ष के उपलक्ष्य में "दीक्षा-स्वर्ण-जयंति' का सुनहरा अवसर-टी-नगर, माम्बलम संघ को प्राप्त होने जा रहा है।

आपश्री का पहले भी एक चातुर्मास यहाँ सम्पन्न हो चुका है। पिछले वर्षावास में भी आपने तप त्याग, ज्ञान-साधना आदि की जो ज्योति जलाई वह आज भी अमिट है। उसकी स्मृतियाँ, उसकी यादें, उसमें हुए कार्य आज भी स्मृति पटल पर अंकित है।

माम्बलम श्रीसंघ को भी मेरी ओर से हार्दिक साधुवाद! ऐसे महामना संत की निश्रा का एवं उनकी दीक्षा-स्वर्ण-जयंति मनाने का शुभ अवसर कितना सुखद है।

पुनः-पुनः गुरुदेवश्री के चरणों में वंदन! अभिनंदन! गुरुदेव इस पंक्ति को चरितार्थ करे :-

तुम जिओ हजार साल,
हर साल के दिन हो एक हजार।

इन्ही मंगलमयी भावनाओं के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

❑ **भंवरलाल बेताला,**
साहुकारपेठ, चेन्नई

माधुर्य, सरलता, सद्भावना के प्रतीक

प्रवचन दिवाकर, निर्भीक वक्ता, इतिहास केसरी, शान्ति रक्षक, श्रमण संघीय सलाहकार, मंत्री, व उप प्रवर्त्तक, मनीषी, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, पंडित रत्न श्री सुमन कुमार जी म.सा. हेतु 'शब्द संग्रह' उपलब्ध कराने में क्षमता विहीन हूँ।

विशिष्टगुणी एवं प्रखर वक्ता श्री सुमन कुमार जी म.सा. जिनकी ओजस्वी वाणी व सार गर्भित उपदेश हमारे हृदय सम्राट् बनने में प्रमुख रहे। आज भी हम आपके सरल एवं सात्विक व्यवहार से ओत-प्रोत गरिमामय व्यक्तित्व के प्रतिकृतज्ञ हैं।

हमारी श्रद्धा के केन्द्र सद्गुरुनाथ, गुरुदेव कर्नाटक गज केसरी श्री गणेशीलाल जी म.सा. की अर्द्ध शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष में श्रद्धाञ्जिल स्वरूप नव निर्मित "श्री गुरुगणेश जैन स्थानक" के नामकरण के मार्गदर्शन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी महति भूमिका रही है। ऐसे अनुभवी दीर्घ संयमी, महान मर्मज्ञ, संत जीवन के आलोकित विम्ब, सरलता-सद् भावना के प्रतीक श्री सुमनमुनिजी म. की दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के पावन प्रसंग पर हम आपश्री के चरणों में नतमस्तक है।

श्री गुरु गणेश जैन स्थानक, गणेश बाग, बैंगलोर, जिसका उद्घाटन सन् ६.७.१९९५ की पावन वेला में आपके सान्निध्य में हुआ था, उसके इतिहास में आप का नाम भी अंकित रहेगा।

श्रद्धेय गुरुदेव को नमन! दीक्षा-दिवस पर अभिनन्दन! प्रणमांजलि! विनियाञ्जलि!

❑ **कोठारी शांतिलाल खाबिया,**
मंत्री, अ.भा.श्वे.स्था. जैन कॉन्फ्रेंस कर्नाटक शाखा, बैंगलोर।

देदीप्यमान जीवन

श्रमण परम्परा के साधनामय ४६ वर्ष, एक ऐसी कठिन यात्रा है जिसको विरले साधक ही पूरा कर पाते हैं। जैन साधु उत्कृष्ट चारित्र और साधना की बेजोड़ मिसाल है। पूज्य श्री सुमन मुनिजी म.एक ऐसी ही मिसाल हैं। आपने सिर्फ १५ वर्ष की उम्र में दीक्षा अंगीकार की। निरन्तर साधना एवं ज्ञान-आराधना से आपका जीवन देदीप्यमान हो गया। ऐसे आकर्षक एवं महान व्यक्तित्व से कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। मुझे आपके दर्शन और सान्निध्य का सौभाग्य मिला है। आप आगम और शास्त्रों के ज्ञाता तो हैं ही, साथ ही साथ किसी भी विषय के प्रत्येक पहलू को सूक्ष्म दृष्टि से देखना और फिर सरल शैली में श्रोताओं को समझाना आपकी विशिष्टता है। आप स्पष्टवादी हैं, कोई भी लाग लपेट नहीं। आप सही अर्थों में फक्कड़ साधु हैं। चेन्नई, साहूकारपेठ चातुर्मास में मैंने आपसे विनती की थी कि युवकों को विशेष रूप से जैन धर्म और दर्शन के बारे में सरल शब्दों में समझावें। आपने मेरे सुभाव को सहर्ष स्वीकार करते हुए असुविधा की परवाह न करते हुए प्रति रविवार को मध्याह्न में युवकों को जैन दर्शन के गूढ़ विषयों को बड़ी सरलता और आत्मीयता से समझाते थे। आपकी सरलता और सहृदयता हर एक को वरवस छू लेती है।

स्थानकवासी समाज का सौभाग्य है कि ऐसे महान संत के दीक्षा के गौरवमय ४६ वर्ष पूर्ण करते हुए जन जन में धर्म का सन्देश फैला रहे हैं। आपके स्वास्थ्य व साधनामय जीवन के चिरायु होने की प्रार्थना करते हुए श्रमण संस्कृति के सन्त पूज्य सुमन मुनि जी म. साहब को मेरा श्रद्धापूर्ण शत्-शत् नमन!

❑ **कैलाशमल दुगड़**
अध्यक्ष, जैनभवन, साहूकारपेट, चेन्नई।

प्रभावः गुरुदेव के उपदेश का

इस सृष्टि में अनेक फूल खिलते हैं, और मुरझाते हैं। लेकिन ऐसे पुष्प नगण्य हैं जो अपनी दूर-दूर तक सौरभ फैला कर अनेक मनुष्यों के मन को ताजगी से भर देते हैं। इस विश्व में अनेक जीव जन्म लेते हैं लेकिन उस जीवन का ही मूल्य है जो प्राणियों को सही जीवन की राह दिखाता है। अहिंसा, प्रेम, सदाचार, चरित्र जैसे उच्चतम संस्कारों का खजाना जगत के समक्ष रखता है, जगत के जीवों को दिव्य जीवन जीने की कला का अपूर्व बोध देता है। जो अपने जीवन की उज्ज्वलता के साथ दूसरों के जीवन को भी उज्ज्वलता प्रदान करता है। ऐसे ही शासन के रत्न हैं – पूज्य गुरुदेव श्री सुमनकुमार जी म.सा.।

मेरी जीवन घटना

मुझे पहले पहुत गुस्सा आता था। जब से गुरुदेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का मैसूर में पदार्पण हुआ उस दिन से लगातार प्रवचन श्रवण का लाभ लेता रहा। आपने आत्मसिद्धि के बारे में बहुत ही अच्छा समझाया जिसे सुनकर मुझे लगा कि क्यों नहीं मैं अपने स्वभाव को वदलूँ। नित्य प्रवचन सुनने में मेरी भावना यही रहती कि कुछ न कुछ इसके बारे में चिन्तन करूँ और अपने जीवन में उतारूँ तथा अपने जीवन को नया मोड प्रदान करूँ।

समय ने पलटा खाया और यह वात मुझे भाई भी। नित्य रात्रि में एकान्त में बैठकर आपके मुखारविन्द से सुने हुए प्रवचनों पर गौर करता रहा और अपने कर्मों को भी हल्का बनाता रहा। अब मैं कभी - कभी सोचता हूँ कि जो मुझे पहले इतना गुस्सा आता था आज वह कहाँ चला गया? यह सब पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की ही देन है।

पूज्य गुरुदेव का समय समय पर आशीषवर्षण होता रहे, यही भावना।

- मोतीलाल जैन (दरला),
अशोका रोड, मैसूर-२.

अभिनन्दन : संयमी जीवन का

परम श्रद्धेय श्रमणसंघ के सलाहकार-मंत्री श्री सुमनकुमार जी म.सा. के ५० वें दीक्षा-दिवसोपलक्ष में - "श्री सुमनमुनि दीक्षा स्वर्ण-जयन्ति अभिनंदन ग्रंथ" प्रकाशन की योजना ज्ञातकर अतीव प्रसन्नता हुई।

आदर्श संयमी जीवन से युक्त व्यक्तित्व का अभिनन्दन करके समाज अपने आप में गौरवान्वित होगा। महामना संतों के प्रति कृतज्ञता भाव का यही प्रतिफल होता है।

श्रद्धेय मुनि श्री के सुदीर्घ संयमी जीवन से जन-जन प्रेरणा ग्रहण कर अपने आपको कृतकृत्य समझेगा।

गुरुदेव श्री के सुदीर्घ चारित्रिक यात्रा की सत्कामना के साथ उनकी शारीरिक स्वस्थता की मंगल मनीषा व्यक्त करता हूँ।

❑ **एन. सुगालचन्द जैन,** मेनेजिंग ट्रस्टी
भगवान् महावीर फाउंडेशन, चेन्नई - ६०० ००५

जैन समाज के ज्वाजल्यमान नक्षत्र

कुसुमादपि कोमल एवं सरल मना, स्पष्टवक्ता, समभावी श्रद्धेय श्री सुमनमुनिजी म. श्रमणसंघ के ही नहीं अपितु जैन समाज के ज्वाजल्यमान नक्षत्र है। आपने जैन समाज की सभी सम्प्रदायों में ख्याति अर्जित की है, कर रहे हैं।

दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के शुभ प्रसंग पर मैं कोटिशः बन्दन करता हूँ। आपकी प्रखर वाणी का तेज चतुर्दिक फैलता रहे – यही हार्दिक कामना है।

❑ **जवाहरलाल बाघमार,** चेन्नै - ७९
क्षेत्रीय प्रधान : श्री अ.भा. जैन रत्नहितैषी श्रावक संघ,
(तमिलनाडु - संभाग)

एक आदर्श महापुरुष

परम श्रद्धेय पंडित रत्न श्रमणसंघीय, सलाहकार मंत्री पूज्य श्री सुमनकुमारजी महाराज का व्यक्तित्व लिखना साधारण कार्य नहीं है। विद्वत्ता, अनुभव, स्पष्टता, निडरता, सूत्र विवेचन-शैली आदि गुणों के कारण आप जहाँ भी जाते हैं, लोग सहजता से उन्हें अपना लेते है, उनका आदर्श स्वीकार करते है। जिस प्रकार कीचड़ में रहकर भी कमल स्वच्छ रहता है और अपनी पहचान बनाता है, उसी तरह संसार सागर रूपी इस दुनिया के भीतर रहकर भी आपश्री ने एक महापुरुष युगपुरुष-आदर्शपुरुष के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप में जीवन जीया है। कांटों के बीच रहकर पुष्प जैसे कोमल रहता है, वैसे ही लोक में रहने वालों के बीच उन्होंने पुष्प यानि समुन की तरह रहे हैं, अतः आपका नाम सुमनमुनि सार्थकता का प्रतीक भी है।

अल्प आयु में मुंडित होकर संसारी वैभवों को त्यागा और भोग की जगह त्याग को अपनाया। जीवन जीना भी एक कला है, जन्म और मृत्यु के बीच में जो समय रहता है, उसमें कई कार्य किये जाते है, एक-दूसरे के सुख दुःख में काम आते है। अपनी भलाई सभी चाहते है, सुखी रहना भी सभी चाहते है। इससे भी बढकर वह होता है जो औरों को सुखी करना चाहता है। सचमुच में दूसरों की भलाई चाहने वालों को महापुरुष कहा जाता है। पूज्य श्री सुमनकुमारजी महाराज भी स्वकल्याण करते हुवे औरों को भी जिनवाणी का श्रवण कराकर मुक्ति का मार्ग बतलाते हुए, इस संसार समुद्र से तारते है।

पूज्य श्री सुमनकुमारजी महाराज ने अपने कठोर संयम को ४९ वर्षों के दीर्घकाल को सफलता से पूर्ण किया है, इस अवसर पर आपको बधाई देते हुवे श्रद्धापूर्वक नमन करती हूँ और आपका भावी जीवन यशस्वी हो, तेजस्वी हो, ऐसी कामना करते हुए,

हार्दिक अभिनंदन सहित!

❑ के. पिस्तादेवी बोहरा

सदस्य, अखिल भारतीय श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेन्स,
महिला शाखा, मैसूर

श्रमण संघ की शान

सु-मन से समर्पित है, जन कल्याण में।
महावीर की वाणी फैलाते, इस जहान में।
नत मस्तक होते हैं हम सब चरणों मे....।
मुदित हृदय से गाते हैं, गुरु तव गुणगान।
निष्ठावान श्रमण संघ के हो संत महान।
जीतो सारे कर्मरिपु, पावो सुख महान।।

'रत्नगर्भा वसुन्धरा' भारत भूमि अनेक अनमोल रत्नों की खान है। अनादि अनंत कालचक्र में समय-समय पर अनेकानेक महान् पुरुषों का जन्म इस धरा पर हुआ है। यही कारण है कि भारत की समुज्ज्वल गौरवगाथा संसार में सर्वोपरि है। असमान्य व्यक्तित्व के धनी, इतिहास केसरी, श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री, जिन शासन के गौरव, परमोपकारी परमपूज्य श्री सुमन मुनि जी महाराज का संयमी जीवन भी ऐसी ही महान आत्माओं की श्रेणी में रख दें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

बचपन में ही माता-पिता का वियोग हुआ। अनाथ बन गए। किंतु श्री रुकमांजी जी की शरण प्राप्ति से अनाथ से सनाथ बन गए। संसार की असारता, जीवन की क्षण भंगुरता ने आपको आध्यात्मिक जीवन की ओर आकर्षित कर लिया। आत्मोन्नति के प्रशस्त पथ पर आप अग्रसर हो गए। सद्संगति व सद् प्रेरणा से आप 'गिरधर' से सुमन बन गए। स्वर्गीय प्रवर्त्तक पाण्डित रत्न श्री शुक्ल चन्द्र जी म. की 'शुक्ल धारा' व सरलमूर्ति शान्त-मना स्व. श्री महेन्द्र कुमार जी म. की गुण महक से आप का जीवन भी चमक उठा।..... और सुमन-सुमन ही नहीं, सुरभित हो गया।

आपके हृदय की सरलता, मन की निर्मलता एवं कार्य के प्रति जागरुकता ने जन-जन को आकर्षित किया है। आप श्री के सर्वप्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे पुणे (महाराष्ट्र) में प्राप्त हुआ। उस समय श्रमणसंघ का सम्मेलन आयोजित हुआ था, जिसका संचालन करना व शांति बनाए रखना अति कठिन कार्य था। वह कार्य भी आपने शान्तिरक्षक के रूप में सफलता पूर्वक सम्पन्न किया। आप उसके आधार स्तंभ बने रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद व प्रशंसा की आशा रखे बिना अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करने में संलग्न रहते हैं। आप में निर्भीकता है। सदैव न्याय-संगत पक्ष का समर्थन करना आपकी अनूठी विशेषता है। संघर्ष झेलने में तथा समाज को संगठित बनाने में आप विशेष पुरुषार्थ करते हैं। वस्तुतः आपने अपने सद्-गुणों से सभी का हृदय जीत लिया है।

दक्षिण भारत की 'काशी' कोप्पल में आपश्री जी को निकटता से देखा। आपने अल्प समय एवं चन्द शब्दों में हमें सुंदर बोध दिया जिसे श्रवण कर हमारी आत्मा पुलकित हो उठी। आप अपने विचार स्पष्टता से व्यक्त करते हैं जिसे हर व्यक्ति ग्रहण कर लेता है। आपके प्रभावी व्यक्तित्व की छटा भी सम्मोहक है। साहित्य-क्षेत्र में भी आपका विशिष्ट स्थान है। इतिहास में आपको विशेष अभिरुचि है। 'जैन इतिहास' का आपको गहन ज्ञान है। यह भी अत्यंत हर्ष का विषय है कि हम आपश्री के प्रव्रज्या/दीक्षा दिवस की स्वर्णिम वेला एवं अभिनन्दन के रूप में मना रहे हैं। आप यशस्वी-दीर्घायु हों, यही अन्तर्मानस की कामना।

❑ सौ. शकुन्तला मेहता
बैंगलोर

मेरे विचार

जयइ जगजीवजोणी, वियाणओ जगगुरु जगाणंदो।
जगणाहो जग बन्धु, जयइ जगप्पियामहो भयवं।।

गुरुवर श्री सुमनमुनि जी म. के व्यक्तित्व पर लिखना मुश्किल हो रहा है क्योंकि सच्चे भावों को दर्शाने के लिए उपलब्ध शब्दकोष अपर्याप्त लग रहा है। मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिए उनके व्यक्तित्व का अंकन करना आसान नहीं है। औपचारिकता हेतु कुछ शब्द लिखना अलग बात है। किसी महान् व्यक्तित्व को शब्दों में ढालना एक अलग बात है। लाख प्रयत्नों के बावजूद भी अनेक तथ्य अछूते ही रह जाते हैं। ऐसे में संक्षिप्तता का बहना काम आ ही जाता है।

मेरा आपश्री से सम्पर्क इतना अल्प है कि निवन्ध लिखने की हिम्मत कैसे हुई ? यह भी एक आश्चर्य है। सर्वप्रथम गुरुदेव के दर्शन दोड्डबालापुर के चातुर्मास में किए उसी दिन आपश्री का प्रवचन भी सुना। आपने एक विषय लिया, उसकी विस्तृत व्याख्या भी की। प्रवचन में एक भी शब्द ऐसा नहीं था जिससे श्रोता के ध्यान की डोर टूटे। आगम के गूढ़ रहस्य को जिस सरलता से आप समझा रहे थे, मुझे लगा कि ज्ञान की गंगा सरलता से प्रवाहित होकर मन्द-मन्द रूप से मस्तिष्क में आसानी से प्रविष्ट हो रही है। ऐसे अलौकिक क्षणों का शब्दों से वर्णन करना संभव प्रतीत नहीं होता।

आप श्री के व्यवहार में विपरीतता का अनुभव तब होता है जब एक तरफ भोले भाले श्रावकों को समझाते हैं तो लगता है कि वात्सल्य एवं ममत्व की बाढ़ सी आ गई है और दूसरी तरफ धूर्त और चापलूसों को ऐसा अनुभव होता है, जैसे किसी चट्टान से टकरा गए हों। आप श्री ने चापलूसों को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। कपटी और धूर्त को जैसे आप दूर से ही भांप लेते है। आप श्री में नैतिकता, निष्पक्षता, निडरता, निर्मोहता, निष्कपटता आदि अनेक स्वभावों का संमिश्रित भण्डार विद्यमान है।

जहा दुम्मस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं।।
एमे समणा मुत्ता जे लोए संति साहूणो।
विहंगमा व पुप्फेसु दाणभत्तेसणे रया।।

आपश्री का विचार है कि आगमों की कोरी तोता रट मात्र ही काफी नहीं है। आचरण आवश्यक है और समझे बिना भी आचरण अंध विश्वास की तरह है। अतः ज्ञान की महती आवश्यकता है। आपश्री ने नैतिकता का हनन और अन्याय को कभी नहीं सहा। अनुचितता चाहे बड़े से बड़े श्रमण से हुइ हो चाहे प्रभावशाली श्रावक से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपने नैतिकता के नाते उसका डट कर मुकाबला किया है। सच्चाई की राह पर चाहे अकेला ही चलना पड़ा हो। आप अकेले ही चले हैं। अतः सच्चाई की जीत हुई है। नैतिक मूल्यों के पक्ष में आप कुछ हद तक हठवादी हैं। आपकी इस हठधर्मिता के कारण आपश्री को कड़े कष्ट भी झेलने पड़े किन्तु सत्पक्ष से आप डिगे नहीं।

❑ **तेजराज सिंघवी**
अशोक रोड, मैसूर

नई पीढ़ी के मार्गदर्शक

विश्व के किसी भी कोने में जब कोई समस्या उत्पन्न होती है तो वह पूरे विश्व को प्रभावित करती है। व्यक्ति, समाज या राष्ट्र की समस्या का इतना व्यापक प्रभाव होता है तो इसके समाधान का भी तो व्यापक प्रभाव होगा। समस्या की तरह समाधान भी देश और काल की सीमाओं में आबद्ध नहीं रहता किंतु वर्तमान काल की स्थिति कुछ विचित्र है। इस समय ऐसे व्यक्ति कम दिखाई देते हैं, जो समस्याओं से आहत होने के बजाए उनका समाधान खोजते हैं और युग के प्रवाह को बदल देते हैं। अर्थात् ऐसे कुछ ही गुरु होते हैं जो समयानुसार नई पीढ़ी को सही दिशा प्रदान कर सही राह पर प्रतिष्ठित करने में सक्षम होते हैं। ऐसे युगपुरुषों में श्री सुमनमुनि जी का भी स्थान है। सुषुप्त चेतना को जो प्रज्ञाबल से सक्रिय बनाने हेतु जिन शब्दों का प्रयोग होता है वे शब्द हमारे अध्यवसाय एवं भावना जगत को छुए बिना नहीं रहते और वहीं से संवेदन परिवर्तन का क्रम चालू हो जाता है।

विचारों को संप्रेषण का सर्वाधिक शक्तिशाली और व्यापक माध्यम है – शब्द। सही अर्थ में प्रयुक्त शब्द क्रांति को जन्म देता है। गलत अर्थ में प्रयुक्त शब्द भ्रान्ति को जन्म देता है, किन्तु मुनिजी का शब्दों पर इतना व्यापक नियन्त्रण है कि एक-एक शब्द को अनेक अर्थों में और भिन्न-भिन्न भाषाओं के माध्यम से उसे विश्लेषण करते हैं।

मेरी मुनिश्री जी से काफी निकटता है। के.जी.एफ. चातुर्मास के दौरान 'आत्म सिद्धि' का पारायण चलता था और मैसूर चातुर्मास के परिप्रेक्ष्य में आत्मसिद्धि के कुछ पदों का पुनरावर्त्तन करने का मौका मिला। बहुत दिनों की जो आत्म तत्त्व के बारे में भ्रान्ति थी, वह मिट् गई। अब मन और बुद्धि उस आत्मतत्त्व के अस्तित्व को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण कार्य संचालक के स्वामी के रूप में आत्मा को मानने में कोई शंका नहीं करता। कुछ ही ऐसे साधु होते हैं जिनकी साधना और ज्ञानबल से प्राणी मात्र पर अटूट प्रभाव पड़ता है। परिणाम स्वरूप चेतना उर्ध्वगमन में सक्षम बनती है।

बड़ी विडम्बना की बात है कि समाज ऐसे व्यक्ति का पूरा लाभ नहीं उठा पा रहा है। इसे मैं पुरुषार्थ हीनता कहूं या अन्तराय कर्म का उदय कहूं किन्तु मैं आशावादी हूँ। ऐसे क्षण आएंगे कि इनके व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन होगा ही। साहित्य जगत् में पूज्य मुनि जी का व्यापक योगदान रहा है।

ऐसे स्वनाम धन्य परम पूज्य श्री सुमनकुमार जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को समय-समय पर उत्कृष्ट चेतना से प्रभावित करता रहेगा। और उनका कृत्य हमेशा जयवन्त रहेगा। इसी सद्कामना के साथ ।

❑ **महावीरचंद जैन दरला**
मैसूर

करुणाशील निर्ग्रन्थ

पूर्व संस्कारों की उर्वरक भूमि की यह संजीवनी आज जैन जगत को अपनी शुद्ध आत्मनिष्ठा से एक सुदृढ़ मार्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्त कर रही है जिसे हेय उपादेय की भेद रेखा को बड़ी ही पैनी दृष्टि से समझा है। जो मन से शान्त पर वाणी से स्पष्ट एवं दृढ़, सत्य को निर्भयता, सटीक एवं निशंकता से प्रकट करनेवाला करुणाशील श्रमणसंघ का एक सच्चा निर्ग्रन्थ है।

एक सुपुरुषार्थ का ज्वलन्त उदाहरण जिसने अल्पवय में साधना के मार्ग को अपना कर अपने आपको गुरुजनों के चरणों में समर्पित कर दिया। समर्पण बलिदान, कुर्बानी एवं त्याग मांगता है। इसे पाने के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी देनी पड़ती है। तन-मन का मोह छोड़ना पड़ता है। स्वर्ण ताप से शुद्धता को पाता है। हीरा कट-कट कर बहुमूल्य बनता है। स्वर्ण ताप से शुद्धता को पाता है। नवनीत मन्थन होने पर निकलता है। आत्म कल्याण के मार्ग पर चलने वाले इस महाश्रमण ने गुरुवर्य पण्डित रत्न श्री शुक्लचन्द जी म.सा. के सुशिष्य पण्डितरत्न शान्त स्वभावी श्री महेन्द्रकुमार जी म.सा. के शुभ चरणों का पावन सान्निध्य प्राप्त किया था। आपने समकालीन बुजुर्ग आचार्यों एवं त्यागी-तपस्वी-विद्वान सन्तों का मार्ग दर्शन पाया। अनेक संत सम्मेलनों, पद-पदवियों एवं जिम्मेदारी पूर्ण कृत्यों ने आपको अनुभवशील बनाया। जिसके जीवन का सारा समय ज्ञान-ध्यान में ही निकलता है, पढना-पढ़ाना जिसको भाता है, स्वाध्याय से जिसकी आत्मा प्रमुदित होती है, जिसको प्रमाद आलस ने छुआ नहीं है, जो हर समय सजग है और हर मुमुक्षु आत्मार्थी को प्रोत्साहित करता है, समाज की किसी भी इकाई का ह्रास जिसके मन को ग्लानित करता है, जो स्वाध्याय मार्गी है, स्वाध्याय मार्गी बनने का आह्वान करता है, ऐसा व्यक्तित्व जिसको समय ने बनाया है, आज हमारे बीच है। यह हमारा अहोभाग्य है।

इस आत्मार्थी अणगार के जीवन का ध्येय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हर कार्य लक्ष्य प्राप्ति की ओर गतिशील है। ऊँचा, पूर्ण और निर्विकारता से परिपूर्ण है तो वह अवश्य ही सफलता को प्राप्त करता है।

साधना की भूमि पर भौतिक सुखों से मुंह मोड़ गत ४९ वर्षों से अपनी मंजिल को प्राप्त करते समग्र भारत की पद यात्रा कर रहा है। जिन शासन की जाहोजलाली करता हुआ यह मोक्षमार्गी, स्वाध्यायमार्गी स्वाध्यायरत है। भगवान महावीर के बताए राजमार्ग पर चलनेवाले इस साधक ने संयम जीवन को पूर्णरूपेण समझा है। यह **'जयं चरे'** का हिमायती है।

तो फिर उठो। मेरे श्रावक-श्राविकाओं, बालक-बालिकाओं, नवयुवक-युवतियों उठो, वेला सोने की नहीं जागने की आई है। ऐसे महापुरुष जिनके सान्निध्य से हम अपने कर्त्तव्यों को जानने एवं इस संघ व्यवस्था को/मूल को सुरक्षित रखने तथा पल्लवित करने में सहभागी बनें। महामुनि भगवान महावीर की बगिया को सुन्दर अतिसुन्दर, दृढ़ सुदृढ़ बनाने हेतु हम सभी अनुशासित होवे।

आपके दीक्षा दिवस पर हार्दिक प्रणमांजलि-विनयांजलि।

❑ **उत्तम राजेश जैन**
बैंगलोर

ज्ञानी एवं दार्शनिक महापुरुष

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी महाराज साहब की दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति के अवसर पर उनके सम्मान में वन्दन-अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। मुनिश्री के व्यक्तित्व एवं विचारों का इस ग्रन्थ में समावेश होगा, तथा अन्य गणमान्य विशिष्ट सज्जनों एवं महानुभावों के संस्मरण तथा विचार भी इसमें होगे। अतः यह प्रकाशन निःसन्देह उपयोगी सिद्ध होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मद्रास टी. नगर एवं साहूकार पेट चातुर्मास के दौरान मुझे इनका सामीप्य, प्रवचन-श्रवण का तथा धर्मचर्चा का सुअवसर प्राप्त हुआ जिसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ।

साधु का जीवन-दर्शन उसके प्रवचनों में प्रकट होता है। मुनि श्री अपने प्रवचनों में विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत कर उन का जो विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं, टिप्पणी देते हैं, भावार्थ बतलाते हैं वे अत्यंत प्रभावशाली, मार्मिक एवं बोध प्रद होते हैं। वस्तुतः उन टिप्पणियों में ही उनकी विद्वत्ता, दार्शनिकता, मौलिकता एवं भाव गांभीर्य प्रतिबिम्बित होता है।

मुनिश्री मूलतः ज्ञानी एवं दार्शनिक महापुरुष हैं। इनके प्रवचन श्रवण करते समय ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी चिन्तन दृष्टि अनन्त में समा चुकी है। विश्व के समस्त प्राणी सुख शान्ति एवं स्नेहपूर्वक रहें यही इनकी सदैव मनोकामना रहती है।

बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी मुनिश्री के व्यक्तित्व एवं विचारों को शब्दों की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो केवल तात्कालिक प्रभावित करते हैं और कुछेक व्यक्तित्व का प्रभाव स्थायी होता है। कालान्तर में मुनिश्री के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते समय सन्त कबीर की यह आध्यात्मिक पंक्ति इतिहासकार दोहराएगा –

"ज्यों की त्यों धर दीनि चदरिया"

अर्थात् एक सन्त महापुरुष जीवन रूपी धवल चादर लेकर इस धरती पर अवतरित हुआ, जीवन पर्यन्त उसने मानवता की एकनिष्ठ सेवा की और अन्त में अपनी वह अमानत बेदाग ज्यों की त्यों समर्पित कर गया।

समारोह और उत्सव तो आयोजित होते ही रहते हैं। किंतु मूल्य स्थायी मूल्य होता है। जैन दर्शन विषयक ज्ञान पिपासु व्यक्तियों एवं जिज्ञासुओं, विद्वद्जनों एवं शोधार्थियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त ही लाभप्रद सिद्ध होगा।

आराध्य गुरुदेवश्री के श्रीचरणों में विनत होते हुए मैं उनकी दीर्घायु एवं स्वस्थता की मंगलकामना करता हूँ तथा यही शुभेच्छा करता हूं कि आपका जीवन जन-जन के कल्याण के लिए सदैव संलग्न रहे। पुनः चरणारविन्दों में प्रणति।

शुभेच्छु –

❑ **एस. मदनलाल गुन्देचा** बी.कॉम एफ.सी.ए.
भूतपूर्व चेयरमेन, साउथ इंडिया हायर पर्चेज एसोसियेशन,
चेन्नई

जिनवाणी के सफल जादूगर

परमपूज्य श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री गुरुदेव श्री सुमनमुनि जी महाराज के चरणों में वन्दन !

इस महान व्यक्ति के व्यक्तित्व पर लिखना आकाश को छूने की कल्पना करना होगा, भुवन भास्कर को दीपक दिखाना होगा, जल में दिखाई दे रहे चन्द्र के प्रतिबिम्ब को पकड़ना होगा, और उफनती लहरों के मध्य सागर को बाहों से तैरने की इच्छा करना होगा। फिर भी गुरुदेव के व्यक्तित्व का मेरे मन में अटल स्वरूप तथा स्नेह व भक्ति की उद्दाम सरिता का प्रवाह इतना तेज है कि मुझे कुछ लिखना ही होगा।

मेरे प्रगाढ़ पुण्य के संयोग से फूलों की सुरम्य नगरी मैसूर में ऐसे महामनीषि गुरुदेव का सान्निध्य मिला तथा आपके प्रवचन सुने। आपके ओजस्वी व्याख्यान जन-जन को लुभाते हैं। भाषा बहुत ही मधुर एवं सरल होने से जैन-अजैन, शिक्षित अशिक्षित भी आपके प्रवचन सुनकर अपने आप को लाभान्वित मानते हैं। आप निस्पृही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्वदर्शी एवं समन्वय शील है। संघ एवं समाज की एकता के प्रमुख हिमायती रहे हैं। जैनत्व का सन्देश, महावीर की वाणी जन-जन तक पहुँचे इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर भारत के कई प्रान्तों में भ्रमण करके आपने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व की छाप अंकित की है।

पूज्य गुरुदेव क्षमावान हैं, शीलवान हैं, तपवान हैं, ज्ञानवान हैं, वैराग्यवान हैं, सन्तोषवान हैं, भूलों को राह बताने वाले हैं और हमारे हृदय के हार हैं। धन्य है वह रत्नकुक्षी धारिणी माता वीरादे जिन्होंने आप जैसी महान् चरित्रात्मा को जन्म दिया। आप विद्या प्रेमी हैं, शिक्षा एवं संस्कारों के सफल प्रचारक हैं, दुखियों के हितैषी हैं। निखालस एवं गुणग्राही हैं। जैनत्व एवं संस्कारों के प्रति आपकी तड़फ सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। आपसे प्रेरणा लेकर संघ एवं समाज ने जगह-जगह धार्मिक अध्ययन-अध्यापनों हेतु धार्मिक शालाओं एवं शिविरों का आयोजन-संचालन किया है।

हे पूज्य गुरुदेव ! आप निर्भीक, स्पष्टवक्ता हो आपकी वाणी में सत्यवादिता, कर्मण्यता, उदारता, वात्सल्यता एवं करुणा के भाव भरे हैं। आप कुशल प्रवचनकार हो। आपके प्रवचन हृदयस्पर्शी हैं, और यह लिख दूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आप जिनवाणी के सफल जादूगर हैं। संघ एवं समाज का कोई भी विवाद हो, कैसा भी कठोर दिलवाला व्यक्ति क्यों न हो आप उसे अपने अकाट्य तर्कों एवं समन्वयता के सिद्धान्त से उसे सरलता से सुलझा देते हैं। यह आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की तेजस्विता ही है। गुरुदेव आप धन्य हो-धन्य हो।

इस भौतिक युग में धर्म पर से लोगों की आस्था दिनों दिन घटती जा रही है। मानव, मानव धर्म से हटकर अन्याय एवं अधर्म को निःशंक अपना रहा है वहाँ आपने महावीर के सिद्धान्तों को हू-ब-हू अपने जीवन में उतारने के साथ-साथ हर मानव को मानवता के पथपर अग्रसर एवं 'आत्म अनुभूति' कराने में आपने मिशाल कायम की है।

हर मायने में आप अनुभवी तथा दीर्घ संयमी सन्त रत्न हो। श्रमण संघ की महान विभूति हो। हे गुरुदेव ! आपने भव्य आत्माओं को पार लगाने हेतु आध्यात्मिक मल्लाह के रूप में बेजोड़ कार्य किया है। कुल मिलाकर आप जिनवाणी के सफल संवाहक हैं। आपका व्यक्तित्व एवं कृतित्व महान् है। प्रभु से यही मंगल प्रार्थना करता हूं कि आप चिरायु हो और ज्ञानपिपासुओं को सदैव अमृत का रसपान कराते रहें।

❑ **पारसमल दक,**
हुनसूर, कर्नाटक

सरस्वती पुत्र
मुनि श्री सुमन कुमार जी

विद्या जीवन का आभूषण है संस्कृति की प्राण है। विद्या मानव का तृतीय नेत्र है। यह नेत्र मानव को जन प्रिय बना देता है। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है। **'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'**। हमारे विद्यार्थियों पर अमीदृष्टि का वर्षण करने वाले एवं उन्हें विद्या का दान प्रदान करने वाले सरस्वती पुत्र श्रीसुमनमुनि जी म.सा. अपने संयमी जीवन के ५०वें यशस्वी वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। प्रत्येक क्षण आपकी सुमन की तरह कोमल दृष्टि सभी को मंत्रमुग्ध करती है तो सुमन के पराग की तरह आकर्षित भी करती हैं। हमारे साढ़ौरा श्रीसंघ पर पूज्य महाराज साहब की सदैव अमीदृष्टि रही है। इसी के फलस्वरूप हमारे यहाँ एस.डी. आदर्श जैन कन्या महाविद्यालय विगत बहुत समय से शिक्षा-सेवा का कार्य चला रहा है। यह संस्था आपके ही प्रताप से पल्लवित-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्पित है। आपके संयम से प्रभावित होकर हमारे संघ ने निर्णय लिया है कि स्कूल में निर्माणाधीन सभागृह का नाम 'मुनि सुमन सभागृह' रखा जाए। हम सभी विद्यार्थी, अध्यापिका गण एवं सकल ट्रस्टी सदस्य, यही भावों की भेंट अर्पित करते हैं एवं शासनदेव से आपके उत्तम स्वास्थ्य एवं संयम के लिए शुभ-मंगल कामना करते हैं। सदैव आपका कृपाभिलाषी।

❑ **रमेश चन्द्र जैन**
प्रधानः एस.डी. आदर्श जैन कन्या महाविद्यालय
साढ़ौरा, जिला यमुना नगर (हरियाणा)

श्रमण संघ का अद्वितीय सुमन

जीवन में अनेक व्यक्तियों से मिलने का अवसर प्राप्त होता है। उनमें कितने ही व्यक्तियों की स्मृति मानस पटल पर स्थायी नहीं होती, पर कुछ विशिष्ट व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनके दर्शन से तन-मन पवित्र और निर्मल हो जाते हैं। प्रथम क्षण में ही मन को माधुर्य से लबालब भर देते हैं। अंतरहृदय में गहरे, इतने गहरे उतर जाते हैं कि उनकी स्मृति मिटाये नहीं मिटती।

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री प्रवर पंडित रत्न श्री सुमन कुमारजी म.सा. का व्यक्तित्व और कृतित्व अनुपमेय है। आपके जीवन में न सजावट है न बनावट ! बस धर्म प्रेम की पहचान है।

- आपश्री आदमी की आन, प्रेमियों के प्राण, जैनियों के जान है।
- आपश्री स्वाध्याय, आगम, जप-तप के रसिया हैं।
- हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत, पंजाबी भाषा पर पूर्ण अधिकार है।
- आपका उच्चारण देखते, सुनते ही बनता है।
- आप अनेक दिव्य गुणों की खान हैं, जिनमें भरा आगमों का ज्ञान है।
- समाज के प्रति गहरी टीस है।

बेंगलोर की धरती भी आपके चरणों से पावन हुई है। अनेक महापुरुषों की छत्र छाया में रहते हुए आपने ४६ वर्ष तक संयम के चषक में अनुभवों का अमृत भरा है। संगठन के पक्षपाती श्रमणसंघ की यशोगाथा को सदा गुंजायमान करने में आपने विशेष योगदान दिया है।

आपश्री ने बेंगलोर शहर के अनेक उपनगरों में संघों की उदासीनता को तोड़ा, वैमनस्यता को दूर कर संघ-जागृति का कार्य बखूबी किया है। आप में गहन चिंतन नूतन निर्माण की सहज प्रक्रिया है। आपके जीवन की भाग्य रेखाएँ इनके ललाट पर झूमती हुई धर्म का विजय घोष कर रही हैं इन्होंने अपने जीवन में अनेक संघर्षों से जूझते हुए धीर-वीर-गंभीर बन श्रमणत्व में एक महक पैदा कर दी है। आप में श्रद्धा और भक्ति का स्पन्दन है। प्रेय को श्रेय बनाकर अमृत बिखेरते रहे हैं। आपके व्यक्तित्व का निर्माण दया, करुणा, मैत्री, सत्य और अहिंसा के उपादानों से हुआ है। ज्ञान दर्शन और चारित्र का यह सेतु जिन धर्म का सतर्क प्रहरी है। इस साधक के मानस में धर्म का मंगलमय पुरुषार्थ, अनुभवों की संगीत धारा बन प्रवाहित है। ये तत्त्व चिंतक के कीर्ति कलश हैं। अनूठा व्यक्तित्व धारक यह संत बड़ा भव्य है। इनके मुखमंडल पर हंसती हुई आँखें, थिरकती भुजाएँ, लहराती वाणी और माधुर्य से भरा चारित्र कलश छलक रहा है।

आपश्री की सदा काल जय हो विजय हो। आप स्वस्थ रहें, दीर्घायु प्राप्त करें। आप सदा जिन शासन वाटिका में ज्ञान दर्शन चारित्र और तप के सुमन प्रस्फुटित कर शासन की प्रभावना करते रहे।

इन्ही मंगल मनीषाओं के साथ शत-शत नमन।
सुधी सुधीर सुमन सुमनाक्षर संयम सौरभ योग हृदय हो।
दिव्यात्मा चारित्र तपोनिधि मुनिसुमन गुरुवर्य की जय हो।।

❑ **पारस गोलेच्छा**, बैंगलोर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर - सिद्धान्तों के कुशल संवाहक संत

पूज्य गुरुदेव श्रमण संघीय सलाहकर मुनि श्री सुमनकुमार जी म. के व्यक्तित्व में अद्भुत आकर्षण है। प्रथम साक्षात्कार में ही आप व्यक्ति को अपना बना लेते हैं। आपके व्यवहार से निश्छलता और सरलता ध्वनित होती रहती है तथा वाणी से मधु-सा माधुर्य बरसता रहता है। आज के युग के आप एक सच्चे संत हैं।

मुझे आपके दर्शनों का अवसर सर्वप्रथम १९५९ में प्राप्त हुआ जब आप संगरूर पधारे थे। जैन सभा के अध्यक्ष श्री हिम्मत सिंहजी जैन (जो अवकाश प्राप्त सिविल इंजिनियर थे) के आग्रह पर मैं स्थानक में आया। आपकी आचार निष्ठा और व्यवहार मधुरता ने मुझे बांध लिया। उसी क्षण से मैं विधिवत रूप से जैन सभा से जुड़ गया.....जो आज तक जुड़ा हुआ हूँ। उसी समय गुरुदेव की प्रबल प्रेरणा से जैन स्थानक के पुनर्निर्माण / जीर्णोद्धार की योजनाएं भी बनीं। क्रमशः ये कार्य पूर्ण हुए। मुझ पर व मेरे परिवार पर आपकी व पूज्य गुरुदेव श्री महेन्द्रकुमार जी म. की महत् कृपा रही है।

आप महावीर के सत्य-अहिंसादि सिद्धान्तों के कुशल संवाहक संत हैं। सिद्धान्तों से समझौता आपको सदा अस्वीकार रहा है। इसके लिये एक संस्मरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

एक बार संगरूर में महावीर जयन्ती का आयोजन हो रहा था। समारोह की अध्यक्षता तथा ध्वजारोहण के लिए डिप्टी कमीशनर श्री कुंवर महेन्द्र सिंह जी बेदी को आमंत्रित किया गया था। इस सम्बन्ध में आमंत्रण पत्रिका भी छप गई थी। उस समय हम गुरुदेव श्री सुमन मुनिजी म. के पास समारोह में पधारने की विनती करने के लिए गए। आयोजन की पूरी पृष्ठभूमि जानने के बाद आपने कहा-हम समारोह में आ सकते हैं पर इसके लिए यह शर्त है कि उस समारोह की अध्यक्षता किसी अहिंसक, शुद्धाचारी एवं शुद्धाहारी व्यक्ति के हाथों होनी चाहिए।

उस समय गुरुदेव की आचार निष्ठा और सिद्धान्त दृढ़ता देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी। अन्त में तोषाम के श्री गुलाबराय जैन (जो बिजली बोर्ड में पदाधिकारी थे) तथा श्री रूपचन्द जैन एस.डी.ओ. से क्रमशः ध्वजारोहण एवं अध्यक्षता करवायी।

गुरुदेव समय-समय पर हमारे क्षेत्र में पधारते रहे। सन् १९९२ का वर्षावास गुरुदेव ने हमारे क्षेत्र में ही किया था। मैं भी समय-समय पर आपके दर्शन लाभ लेता रहा हूँ।

माम्बलम्-चेन्नई श्री संघ गुरुदेव की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती मना रहा है। यह संघ के सौभाग्य का क्षण है। इस अवसर पर मैं भी अपने वन्दन्-अभिनन्दन गुरुदेव के चरणों में प्रेषित कर रहा हूँ।

❑ **कैलाशचन्द जैन एडवोकेट**
प्रधान, एस.एस. जैन संघ, संगरूर (पंजाब)

गुरु शुक्ल के सच्चे उत्तराधिकारी

पूज्य गुरुदेव इतिहास केसरी श्रमण संघीय सलाहकार श्री सुमन कुमार जी महाराज जैन जगत के प्रतिष्ठित और मान्य सन्तरत्न हैं। आप जैन-जैनेतर दर्शनों के पारगामी पण्डित तथा ओजस्वी प्रवचनकार हैं। आपके प्रवचन आगम प्रधान होते हुए भी अत्यन्त सरल और मधुर होते हैं। पूज्य गुरुदेव प्रवर्तक पण्डित रत्न श्री शुक्लचन्द जी म. के आप सच्चे उत्तराधिकारी मुनिराज हैं।

पूज्य गुरुदेव प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द जी म., पूज्य गुरुदेव श्री महेन्द्र कुमार जी म. एवं आपकी कृपा मुझ पर व मेरे परिवार पर सदा बनी रही है। आपने अनेक बार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे क्षेत्र को अपनी चरणरज से पावन किया है। यह हमारा परम सौभाग्य है।

आप अपने संयमी जीवन के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस सुअवसर पर मैं अपनी ओर से. अपने परिवार की ओर से तथा बुढ़लाडा श्री संघ की ओर से आपका शत-शत अभिनन्दन करता हूँ।

❑ **बनारसी दास जैन**

अध्यक्ष- एस.एस. जैन सभा, पुरानी मण्डी बुढ़लाडा, (पंजाब)

"अविस्मरणीय हैं और रहेंगे"

परम पूज्य श्रमणसंघ सलाहकार मन्त्री, मुनि श्री सुमन कुमार जी "श्रमण" उत्तरभारत को अपने मधुर कण्ठ द्वारा, धर्म अमृत से सिंचने के पश्चात दक्षिण की ओर रुख बनाया। विचरण करते हुए १६८६ में ऐतिहासिक नगरी हैदराबाद पहुँचे। हैदराबाद जो कुली कुतुबशाही तहजीब की शान एवं निज़ाम सल्तनत की राजधानी रही है। इतिहास में हैदराबाद इन्द्रधनुषी सतरंगी संस्कृति एवं सभ्यता के कारण आकर्षण का केन्द्र रहा है। इस हैदराबाद नगरी में भी वहां का पुराना शहर अपने आप में महत्व रखता है। उसी पुराने शहर के बीचों बीच डबीरपुरा में मुनिश्री जी का चातुर्मास भी अपने आप में अविस्मरणीय है। कई वर्षों के अन्तराल के पश्चात् मुनिश्री जी के चातुर्मास से स्थानक की शोभा में चार चांद लग गए। चारों ओर से श्रावकों के आगमन से वीरान बस्ती में चहल-पहल आ गई।

इतिहास की हर घटना वर्तमान से अतीत में जा कर विस्मृति के गहन अन्धकार में विलुप्त हो जाती है। परन्तु यह भी सत्य है कि इतिहास की प्रत्येक घटना मानव के सजग मन एवं मस्तिष्क पर एक बोध-पाठ अवश्य अंकित कर जाती है जिसे मनुष्य जीवन में कभी नहीं भूल सकता। इसी क्रम में श्री सुमनमुनि जी का डबीरपुरा का चातुर्मास मेरे लिए अविस्मरणीय है और रहेगा। मुनिश्री जी के व्याख्यान देने की विशेष शैली, कर्ण प्रिय मधुर कण्ठ, स्पष्टवादिता को लिए हुए उनके व्याख्यान सहज ही सभी को अपनी ओर आकर्षित करते थे। दूर-दूर से श्रावक-श्राविकाएँ आपका प्रवचन सुनने के लिए आते थे। विशाल जन समुदाय से प्रभावित होकर चातुर्मास समिति ने हर रविवार को गौतम-प्रसादी का आयोजन करवाया। मुनिश्री ने प्रेरणा देकर स्थानक को नया स्वरूप दिया। एक घटना को मैं भूल नहीं सकता। श्री संपतराज जी कीमती का धर्मनिष्ठ परिवार धर्म और समाज से कटता जा रहा था। लोग उन्हें भूलने लगे थे, मुनिश्री जी ने उन्हें पुनः धर्म एवं समाज की ओर आकृष्ट किया। उनके पुत्रों के मन में धर्म एवं सेवा की ऐसी लगन लगाई कि श्री राजेन्द्र कीमती हैदराबाद श्री संघ के मंत्री बने। काचीगुडा में नया स्थानक बनवाने में पूर्ण सहयोग दिया। आज उसके संरक्षक भी हैं। इस प्रकार समाज के सभी नवयुवकों को धर्म की ओर आकृष्ट किया। सरलता एवं मधुरता से उन्हें व्यसनों से दूर रहने की प्रेरणा दी।

मुझे मेरे मंत्रीकाल में कई संकटों एवं विवादों का समाना करना पड़ा, ऐसे में श्री सुमनमुनिजी का श्रावक-वात्सल्य, एवं मार्गदर्शन एवं सहयोग को मैं कभी भूल नहीं सकता। मुनि श्री जी की दृष्टि में उच्चवर्गीय श्रावक, मध्यम वर्गीय श्रावक एवं निम्न वर्गीय श्रावक में कोई भेदभाव नहीं था। वे हर एक से हर समय मिलने के लिए उपलब्ध रहते थे। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी जो उन्हें अन्यों से अलग रखती थी। श्री सुमनमुनि जी, निर्भीक, दृढ़संकल्प, सिद्धान्तवादी एवं समन्वयवादी विचारों के धनी हैं। श्री सुमनमुनि जी का जीवन-चरित्र अपने नाम एवं साधुत्व को सार्थक करता हुआ एक निर्लिप्त सुगन्धित पुष्प की तरह सदा धर्म एवं ज्ञान की खुशबू बिखेरता रहेगा।

मोतीलाल जैन बुरड

मंत्री-हैदराबाद श्री संघ (१६८८-१६८६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमनाः सुमनाः

गुणवज्जनसंसर्गात् याति स्वल्पोऽपि गौरवम्।
पुष्पमालानुषङ्गेण सूत्रं शिरसि धार्यते।।

महामुनिवरस्य परिचयमहिम्ना जनस्यास्यापि आत्मानं कृतार्थयितुं अवसरः प्राप्तः। प्राप्तेऽवसरे गुरूणां वैशिष्ट्यं यथामति गृह्णामि। यतः सन्तस्तावत् अवर्ण्यमहिमानः। वचसां वा अन्तं प्राप्नुयात् न महिम्नः। उच्यते च, "**गङ्गा पापं हन्ति शशी तापं हन्ति, दैन्यं कल्पतरुस्तथा हन्ति।**" परन्तु **पापं तापं च दैन्यं च** एकदैव **साधु समागमः हन्ति** इति। तदा तदा मुनिवरसदृशाः पुण्यपुरुषाः उद्भवन्ति जगदुद्धरणाय। जगदिदं अधर्मात् रक्षितुं यदा यदा अधर्मस्य अभ्युत्थानं धर्मस्य ग्लानिश्च भवति, तदा मुनिवरसदृशाः पुण्यपुरुषाः उद्भवन्ति।

जगत् सुपथा नेतुं अवतीर्णानां एतेषां जीवनं समग्रं जगद्धिताय भवेत् इति मन्वानः ईश्वरः शैशव एव वैराग्योत्पादकान् घटनान् यथा एते अनुभवेयुः तथा सङ्कल्पयामास। आम्। यतः

पुत्रमित्रकलत्रेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः।
सरः पङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव।।

यद्यपि,

मितमायु – र्वयोऽनित्यं, नैति यातं कदाचन।

तथापि,

परामृशन्ति तदपि न भवं भोगलोलुपाः ।।

अतएवोच्यते विद्वद्भिः

को देशः कानि मित्राणि कः कालः को व्ययागमौ।
कश्चाहं का च मे शक्ति रिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः।। इति।

प्रियस्य पितुः वियोगः अनुभूतरः। सतीं एव महालक्ष्मी विदान्तिजनाः। यतः उच्यते

यस्य भार्या शुचिर्दक्षा भर्तारमनुगामिनी।
नित्यं मधुरवक्त्री च सा रमा न रमा रमा।। इति।

पत्युर्वियोगात् षण्मासाभ्यन्तरमेव

पतिर्हि देवो नारीणां पति र्बन्धुः पतिर्गतिः।
पत्युर्गतिसमा नास्ति दैवतं वा यथा पतिः।।

इति महतां वचनं अनुरुन्धाना पतिलोकं ययौ। सहैवगतः श्रीमतां कनिष्ठो भ्राता शैशव एव दिष्टं गतः।

एवं अतिबाल्य एव पालनपोषणादि श्रद्धया प्रेम्णा च कुर्वतोः पित्रोः वियोगात् किङ्कर्तव्यतामूढास्सञ्जाताः श्रीमन्तः परन्तु सर्वं ईश्वरकृत्यं भाविशुभायैव खलु? किमेतत् नावधारितं महद्भिः?

निःस्नेहो याति निर्वाणं स्नेहोऽनर्थस्य कारणम्।
निःस्नेहेन प्रदीपेन यदेतत्प्रकटीकृतम्।। इति।

बाल्य एव वैराग्यसम्पन्नाः सञ्जाताः श्रीमन्तः। मातापित्रोः वात्सल्येन यद्यपि रिक्तीकृताः तथापि बृहद् नागौरी लोकागच्छीयायाः उपासिकायाः श्रीमत्याः रुक्मा नाम्न्याः वयोवृद्धायाः गुरुवर्यायाः प्रेमपात्रं अभवन् गुरुवराः। लौकिकी अपि शिक्षा प्राप्ता श्रीमद्भिः.

सत्सङ्गतिः कथय किंन करोति पुंसाम् ?

छात्रावस्थायां एवं अनेके महान्तः एतेषां सुपरिचिताः अभूवन्। एतेषां मनसि किशोरावस्थायां उद्भूतः वैराग्यः सुदृढस्सञ्जायत। नाथसंप्रदायीयैः अमरनाथ-मङ्गलनाथ-जमनानाथ महाभागैः आर्यसमाजीयैः श्रीदेशराजादिमहाभागैः च संपर्कः सञ्जातः।

तेषां संपर्केण आध्यात्मिकप्रवृत्तिः वैराग्यशीलता नित्यानित्यवस्तुविवेचनशीलता च वर्धिष्णुरासीत्। तथापि मनः पूर्णतया न तत्र संल्लग्नमासीत्। अतः तत्र शिष्यवृत्तिं अस्वीकुर्वन्त एव कपूर्थलाख्य नगरे स्थितानां श्रीमतां पण्डितरत्नानां शुक्लचन्द्रमहाराजानां सरलमनसां श्रीमतां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महेन्द्रकुमार महाराजानां च समीपं सत्सङ्गलाभार्थं प्राप्ताः। तेषां प्रवचनं श्रोतुं धर्मसभां च प्रविष्टाः। एवं दिवसेषु चलत्सु साधुभ्य; वचनातिशयविशिष्टजिनानांवाणीः श्रावं श्रावं अत्यन्तं आनन्दं अभजन्त। स्वपन्नाला जागृतः। एते एव स्वस्य आत्मोद्धारकाः आत्मान्धकारनिवर्तकाः गुरवःइति निश्चिन्वन्तः तान् आचार्यान् वविरे।

दुर्लभं त्रयमेवैतत् दैवानुग्रहकारकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः।।

किल ? यदा एते गुरुवराणां समीपं गन्तुमना आसन् तदा ते सुल्तानपुर नामकं नगरं गतवन्तः। यदा सुल्तानपुर नगरं प्राप्ताः तदा ते शाहकोट नगरे आसन्। तान् अन्विष्यन् गच्छतां श्रीमतां मध्येमार्गं अध्यात्मं प्रवर्तमानैः दार्शनिकैः सह संपर्को जातः। एतादृशैः संपर्कैः साधुवृत्तौ एतेषां अनुरागः उपचीयमान एवासीत्। अन्ततः शाहकोट नगरे गुरुवरैः कटाक्षिता एते। तदात्वे श्रीमतः महेन्द्रकुमार-महाराजान् स्वाध्यायमग्नान् विज्ञान् श्रीमतां युवाचार्यः शुक्लचन्द्र महाराजानां सविधे आत्मानं विज्ञापितवन्तः। यद्यपि शिष्यस्य भावः मनोरथश्च ज्ञातुंशक्यते तथापि सुपरीक्ष्यैव किल अध्यात्मवृत्तौ शिष्यः स्वीकार्यः। श्रीमतां आचार्यः आत्मारामहाराजानांअन्येषां च साधूनां विज्ञापिताः श्रीमन्तः। तैः बहुधा परीक्षिता अपि स्वनिश्चयात् न च्युताः।

एवं श्रीमतां वैराग्यानुष्ठानस्य पल्लवः निश्चयस्य पूर्तिश्च क्रैस्तवीये १९५० तमे संवत्सरे दशमे मासि त्रयोदशे दिने सञ्जाता।

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ ? भीतं मुञ्चति किं यमः?
अजातं नैव गृह्णाति कुरुयत्नमजन्मनि।।

अपि च

आशायाः येः दासास्ते दासा जीवलोकस्य।
आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः।।

इति अजन्मनि यत्नं कर्तुं, आशां च दासीं विधातुं स्वीकृतसाधु-धर्माणः एते महान्तः। सुमनसां गन्ध इव सर्वत्र सर्वदा **अध्यात्मसुमनोगन्धः** एभिः प्रसारणीय इति कृत्वा **सुमनकुमार** इति दत्तदीक्षानामानः। वैराग्यसंपन्नानां तु कुतश्चित् भयं न भवति किल ?

अशीमहि वयं भिक्षां आशावासो वसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः?

आं श्रीमन्तः अपि अन्यैः साधुभिः श्रावकैश्च **निर्भीकवक्ता** इति न वृथा स्तुताः। विरागिणां यः निर्भयत्वस्वभावः तदेतेषां स्वरूपभूतो वर्तते। एतेषां वैराग्यस्य फलं न केवलं स्वान्तःसुखाय परं जगद्धिताय च वर्तते। स्वीयैःप्रवचनैः सर्वान् अपि आकर्षयन्तः निस्त्रैगुण्ये पथि प्रवर्तयन्तः एते, "इतिहासकेसरी, प्रवचनदिवाकर, शान्तिरक्षक," इत्यादि अन्वर्थैः बिरुदैः भूषिताः विराजन्ते। साहित्यविषयेऽपि एतेषां परिश्रमः योगदानं च अन्यादृशं दृश्यते। श्रीमद्राय-चन्द्राणां आत्मसिद्धिशास्त्राख्यग्रन्थस्य सहस्रपृष्ठात्मक प्रवचनं एकं केवलं एतेषां पाण्डित्यं प्रवचनातिशयं जनाकर्षकत्वं इति सर्वान् अपि विशिष्टान् गुणान् प्रकटीकर्तुं अलम्। यद्यपि एते अन्येषां शुक्लज्योति शुक्लस्मृत्यादीनां अनेकानां ग्रन्थानां रचयितारः।

एतेषां चातुर्मास्यानां पञ्चाशत्तमं भविता इति ज्ञात्वा मोमुद्यते मे मनः। दीक्षासमारोहस्य स्वर्णजयन्त्युत्सवसमितेः शताभिषेकोत्सवारचनभाग्यमपि भूयात् इति आशासे। आचार्याणां अनुग्रहश्च सर्वेषामपि आस्तिकजनानां एवमेव प्राप्नुयात् इति प्रार्थये।

कृ. श्रीनिवासः
संस्कृतविभागाध्यापकः, विवेकानन्दकलाशाला, चेन्नई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वतोमुखी व्यक्तित्व के धारक
श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमारजी म.

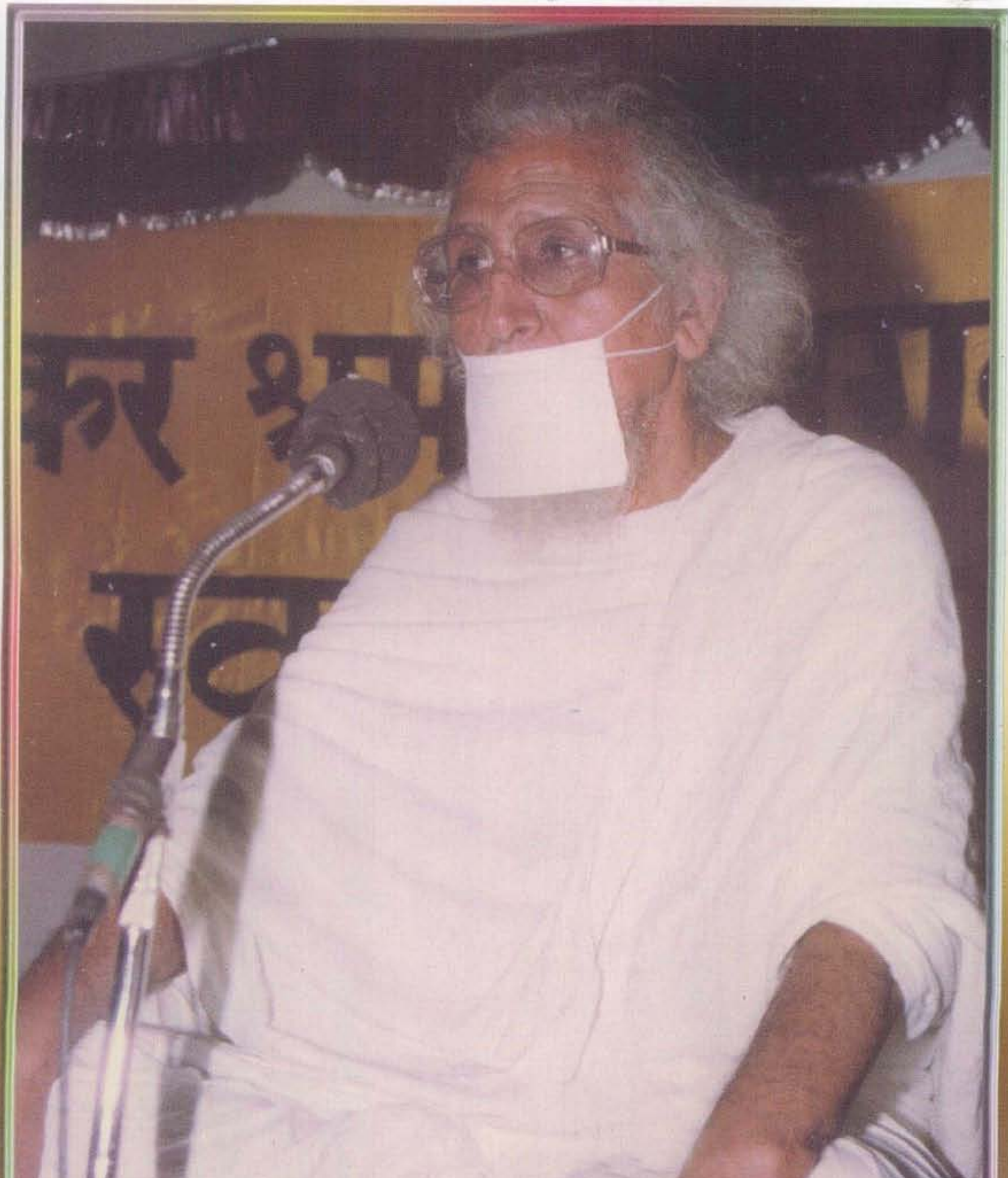

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमस्कार मुद्रा में परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री.

चउवीसंपि जिणवरा...
सिद्धासिद्धि मम दिसंतु.

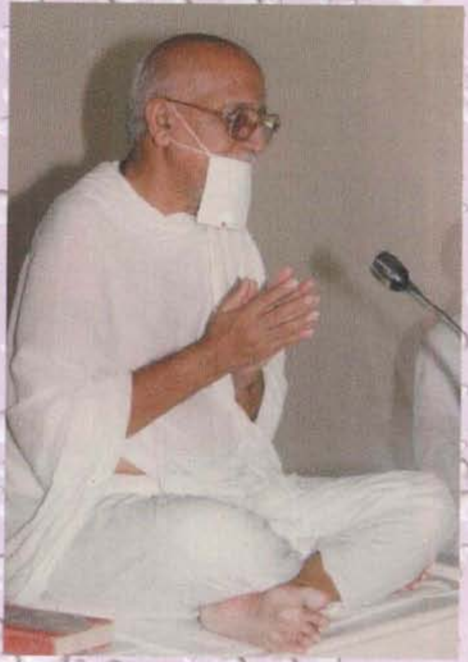

त्रिभुवन पीड़ा हरणहार हो
तुमको मेरा नमस्कार.

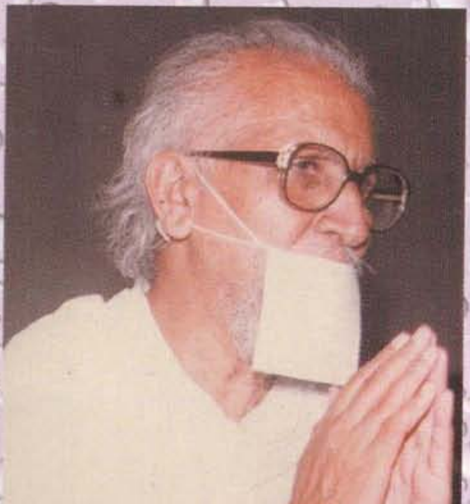

णमो जिणाणं जियभयाणं.

अरिहन्ते.......शरणं पवज्जामि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान के प्रदाता णमो उवज्झायाणं !

गुरुजी प्यारे, सभी के सहारे, विराज रहे पाट पे.

करुणा की दृष्टि से बहती धर्म की धारा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं हूँ आत्म गवेषक,
सत्यान्वेषक राही हूँ।
कोरे कागद पर
लिखने वाली
इतिहास की स्याही हूँ।।

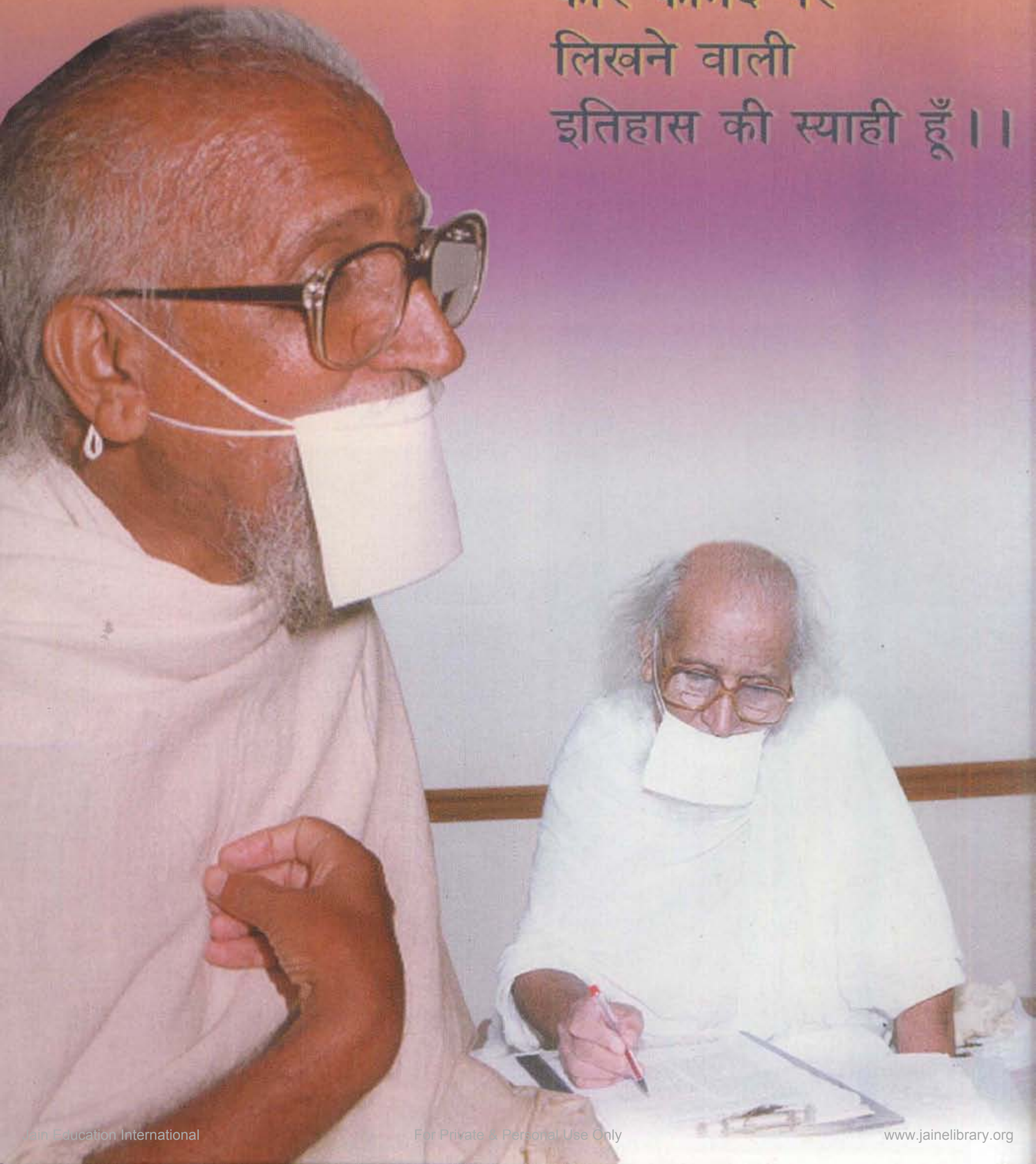

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमन - सौरभ

पूज्य गुरुदेव श्रमण संघीय सलाहकार श्री सुमनमुनि जी महाराज के मंगलमय दर्शनों का सौभाग्य मैं प्राप्त करता ही रहता हूँ। मैंने यह अनुभव किया है कि आप में यथानाम - तथागुण वाली उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ हुई है। आप वस्तुतः सुमन हैं। सुमन की सौरभ से आपका सुमन व्याप्त है। आपका आचार, व्यवहार, प्रचार-सब कुछ सुमनीय सौरभ बांटता है।

गुरुदेव सुमन ! आपके पचासवें दीक्षा वर्ष – प्रवेश के मंगल अवसर पर मैं अपनी ओर से तथा अपने सकल श्रीसंघ की ओर से हार्दिक वन्दन करता हूँ। अभिनन्दन करता हूँ और मंगलकामना करता हूँ कि –

आप जीओ हजारों साल।
साल के दिन हों पचास हजार।।

❑ सज्जनराज तालेड़ा
मंत्री एस.एस. जैनसंघ धोबी पेठ, चेन्नई

सरलता साधुता के प्रतीक

पंजाब परम्परा के ज्येष्ठ संत, श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री पूज्य गुरुदेव श्री सुमनकुमार जी महाराज वर्तमान युग के एक सच्चे संत हैं। आपके जीवन में सरलता-साधुता समग्र भाव से जीवंत हुई है। प्रदर्शन, तड़क-भड़क और आडम्बर आपको सख्त नापसन्द हैं।

आपकी प्रवचन शैली भी अत्यन्त सरस, प्रभावोत्पादक और श्रोताओं के हृदयों को अभिभूत कर देने वाली है। हमारे क्षेत्र वानियमवाड़ी पर आपकी महान् कृपा रही है। आप श्री ने वर्ष १९९२ में हमारे क्षेत्र में वर्षावास किया था। सात वर्ष के बाद भी आपका प्रभाव यहां व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय में अनुभव किया जा सकता है।

यह गौरव का विषय है कि आप अपनी संयम यात्रा के पचासवें पड़ाव पर पदन्यास कर रहे हैं। इस गौरवमयी वेला पर मैं अपनी ओर से तथा अपने सकल श्री संघ की ओर से आपके संयम को नमन करता हूँ और कामना करता हूँ कि आप शतायु हों। दीर्घायु हों।

❑ हीराचन्द गोलेच्छा
मंत्री एस.एस. जैनसंघ, वानियमवाड़ी

संयम का अभिनन्दन

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि श्रद्धेय श्रमणसंघीय मंत्री मुनि श्री सुमन कुमार जी महाराज की दीक्षा स्वर्ण जयंति पर एक अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। मैं सोचता हूं कि जगत् में संयम ही सर्वोच्च अभिनन्दनीय है। संयम का अभिनन्दन होना ही चाहिए। ऐसे उपक्रमों से समाज और देश में संयम के प्रति सम्मान और श्रद्धा बलवती बनती है।

पूज्य गुरुदेव ने वर्ष १९९० के वर्षावास का वरदान देकर हमारे श्रीसंघ को उपकृत किया था। निरन्तर चारमाह तक हमारा क्षेत्र तीर्थ क्षेत्र बना रहा था। अभूतपूर्व धर्मजागरण हुई थी।

पूज्य गुरुदेव के पचासवें दीक्षा वर्ष – प्रवेश के पावन प्रसंग पर मैं अपने संघ की ओर से अनन्त-अनन्त आस्थाओं के साथ उनका अभिनन्दन करता हूँ।

❑ चम्पालाल मकाणा
मंत्री एस.एस. जैन संघ दौड़बालापुर, (कर्नाटक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधना सम्पन्न महान्‌योगी

भारत-भूमि ऋषि प्रधान भूमि से गौरवान्वित रही है। समय-समय पर जन-जन के कल्याण तथा धर्म रथ को ग्राम-ग्राम में पहुँचाने का पुनीत कार्य सन्त-समाज, मुनि वृन्द करते आ रहे हैं। ऐसी दिव्य महान्‌ विभूतियों में तेजस्वी पुंज ज्ञान-सम्पन्न आचार्य श्री कांशीराम जी म.सा.के. अंतेवासी पंजाब प्रवर्त्तक पंडित प्रवर पूज्य श्री शुक्लचन्द्र जी म. के प्रशिष्य योगीराज पूज्य श्री महेन्द्रमुनि जी म. के शिष्यरत्न श्री सुमनमुनिजी म. का नाम पढ़ते हैं।

साहित्य में आपकी अत्यन्त अभिरुचि है। अनेक स्थानों पर ग्रन्थों को सुव्यवस्थित करने, करवाने तथा नवीन साहित्य के निर्माण में आप अधिकांश समय दे रहे हैं। वर्तमान में 'शुक्ल प्रवचन' के रूप में आपने ४ भागों में जन-मानस को प्रेरक साहित्य प्रदान किया है। पूर्व में भी २५ बोल, नवतत्त्व, वीरमती जगदेव आदि पुस्तकों का आपने सम्पादन किया है।

संघ-निर्माण - संघ के निर्माण में आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आप श्रमण संघीय सलाहकार पद से अलंकृत है। समय-समय पर बिखरते संघ के संरक्षण में आपने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

पारमार्थिक सेवाएँ : सेवा का कार्य बहुत मुश्किल है मगर पूज्य गुरुवरों की सेवा में आप कभी पीछे नहीं रहे। स्थान-स्थान पर जाकर आपने हॉस्पीटल, स्थानक, तथा निःशुल्क डिस्पेन्सरी इत्यादि के निर्माण कार्य शुरु करवाए जनमानस को सहयोग बाँटने के लिए आप सदैव सजग रहते हैं। कोई भी अभाव ग्रस्त अन्यथा अशुभ के प्रभाव से प्रभावित व्यक्ति का भी अभाव दूर करने का प्रयास करते हैं।

सहनशीलता : कोयम्बत्तूर चातुर्मास के दौरान किसी तपस्वी को मंगलपाठ सुनाने जा रहे थे। श्री व्हीलरवाले का सन्तुलन बिगड़ा और महाराज श्री से आकर टकरा गया। टक्कर से स्वाभाविक है – गिरना, चोट भी लगी। खून भी बहने लगा। इसी बीच श्री व्हीलर वाले को लोगों ने पकड़ लिया। मारपीट पर उतारू हो गए। मगर महाराज श्री ने कहा-'छोड़ दो इसे'। अगर इसको अपशब्द भी कहोगे तो समझो मेरे जख्म को छेड़ने के बराबर होगा। लौटकर स्थानक आए मगर मुंह से दर्द का कोई शब्द नहीं। डॉ. ने पट्टी कर दी और कह गए एक सप्ताह आराम करना है। मात्र दो घंटे के पश्चात्‌ पुनः ध्यान, स्वाध्याय-साधना में निमग्न हो गए। धन्य है, आपके सहनशील रूप को !

ऐसे महामहिम श्रमण संघीय सलाहकार पूज्य श्री सुमन मुनि जी म. की दीक्षास्वर्ण-जयन्ति की मंगल वेला में मैं चाहूँगा कि महाराज श्री का नेतृत्व हमें मिलता रहे। आप शतायु हों। स्वास्थ्य लाभ से आप लाभान्वित होते रहें। ऐसी मंगल भावना है।

❑ युवा मनीषी सुभाष मुनि
१८ डी, चन्डीगढ़ (पंजाब)

लोक में आलोक के प्रतीक

दिव्य-भव्य व्यक्तित्व के स्वामी, इतिहास केसरी पूज्य गुरुदेव श्री सुमनमुनि जी महाराज के महिमामण्डित जीवन से जैन जगत्‌ में आज कौन परिचित नहीं है। लोक में आलोक के प्रतीक पुरुष पूज्य गुरुदेव ने अपने संयमीय आलोक से दिग्दिगन्तों को आलोकित किया है। हम परम पुण्य शाली हैं कि हमें आप जैसे महापुरुष का १९९४ का मंगलमय वर्षावास प्राप्त हुआ और निरन्तर चार माह हमें आपके मंगल उपदेश सुनने का सुअवसर मिला। हम कामना करते हैं कि यह अवसर हमें भविष्य में भी प्राप्त हो।

आपकी दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ती पर हम आपका मंगलमय अभिनन्दन करते हैं।

❑ घीसूलाल हिंगड़ जैन
मंत्री, एस.एस. जैन संघ, कोयम्बत्तूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश - पुरुष गुरुदेव

गुरुदेव परम श्रद्धेय इतिहास केसरी श्री सुमन मुनिजी महाराज का जीवन एक प्रज्वलित दीप के समान है। आपने अपने प्रकाशपूर्ण जीवन से जैन जगत् को आलोकित किया है। आपने अपने तेजस्वी आचार और ओजस्वी विचारों से समाज को नई दिशा प्रदान की है।

हमारे क्षेत्र साहूकारपेठ पर आपकी असीम कृपा रही है। आपके वर्ष १६६८ के वर्षावास का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपका यह वर्षावास ऐतिहासिक सिद्ध हुआ। हम आशा करते हैं कि हमारे क्षेत्र पर आपकी कृपा दृष्टि निरन्तर बनी रहेगी।

आपके संयमीय जीवन के पचासवें वर्ष पर हम ससंघ आपका अभिनन्दन करते हैं एवं मंगल कामनाएं करते हैं कि आप चिरायु हों। सुदीर्घ काल तक जैन जगत् आपके जीवन के प्रकाश से प्रकाशित बना रहे। इन्हीं सदाकांक्षाओं के साथ वन्दन !

❑ **अध्यक्ष : भंवरलाल गोठी, रिखबचन्द लोढ़ा**
मंत्री : एस.एस. जैन संघ साहूकारपेठ, चेन्नई।

स्व - पर कल्याणरत गुरुदेव

उसी पुरुष का जीवन श्रेष्ठ होता है जो अपने पौरुष को स्वात्म-कल्याण के साथ-साथ समाज, देश और विश्व के कल्याण में नियोजित करता है। परम श्रद्धेय श्रमण श्रेष्ठ श्री सुमनकुमार जी महाराज एक ऐसे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं। वे न केवल आत्मार्थी साधक हैं अपितु अपने उच्चादर्शों और मौलिक विचारों से समाज, देश और विश्व के लिए कल्याण का महापथ प्रशस्त कर रहे हैं। उनके सारगर्भित उद्बोधनों से हजारों-हजार व्यक्तियों को सत्य मार्ग उपलब्ध हुआ है।

वर्तमान में पूज्य गुरुदेव मद्रास प्रवास पर हैं। तमिलनाडु के कई नगरों और गांवों को आपने अपनी चरण रज से पवित्र किया है, अपने व्याख्यानों से उपकृत किया है। मैं अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानक वासी-तमिलनाडु शाखा का मन्त्री होने के नाते सकल तमिलनाडु जैन संघ की ओर से आपकी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती पर आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि आप हमें अपने सान्निध्य का अधिक से अधिक सुअवसर प्रदान करें।

❑ **इन्द्रचन्द मेहता**
मंत्री : अ.भा. श्वे. स्था. तमिलनाडु शाखा

अभिनन्दन एवं मंगल कामना

श्रमणसंघीय सलाहकार पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी महाराज के दर्शनों का सुअवसर मुझे कई बार मिला है। मैंने यह अनुभव किया है कि पूज्य श्री के विचार, व्यवहार और वाणी की त्रिपथगा में एक सरस प्रवाह है। आपके सम्पर्क में जो भी आता है वह प्रेरणा का आलोक लेकर लौटता है। आपके पास व्यापक अनुभव क्षमता है। व्यक्ति से लेकर समाज तक आपकी नेतृत्व क्षमता का कई बार रचनात्मक स्वरूप सामने आता है। सामाजिक क्षेत्र की कोई भी जटिल गुत्थी क्यों न हो आपने अपनी सुलझी मानसिकता से उसे समाधान के द्वार तक पहुंचाया है।

तार्किक एवं तात्विक मानसिकता के धनी श्री सुमनमुनिजी महाराज का साहित्य-सृजन के क्षेत्र में जो अवदान है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तत्त्व दर्शन एवं प्रवचनोपयोगी कृतियां तो उन्होंने अपनी रत्नप्रसू लेखनी से साहित्यिक जगत् को प्रदान की ही हैं, किन्तु पंजाब श्रमणपरम्परा का इतिहास लिखकर अत्यन्त विशिष्ट कार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है। प्रायः देखा जाता है कि इतिहास लेखन करते समय लेखकों द्वारा श्रमणों का जीवन अंकन तो किया जाता है पर श्रमणी-परिवार का परिचय गौण कर दिया जाता है। साधु एवं साध्वी का साधक जीवन समान है, ऐसे में साध्वियों की उपेक्षा करने का अर्थ स्पष्टतः हमारी दृष्टि-प्रतिबद्धता है। इस दृष्टि प्रतिबद्धता के कारण हमने काफी कुछ खोया है।

मुझे यह लिखते हुए गौरव की अनुभूति होती है कि आदरणीय श्री सुमनमुनि जी महाराज ने इतिहास का लेखन करते हुए साध्वी समाज का परिचय देकर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। तथापि मेरा सोचना है कि अभी इस दिशा में काफी कुछ अपेक्षित है। यदि इस अपेक्षा की भविष्य के क्षणों में श्रद्धेय श्री द्वारा पूर्ति हुई तो सचमुच उल्लेखनीय कार्य सिद्ध होगा।

आदरणीय श्री सुमनमुनि जी महाराज वर्तमान में अखिल भारतीय वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के सलाहकार एवं मंत्री पद पर सुशोभित हैं। दुराग्रह के दुष्ट ग्रह से अपनी चेतना के चन्द्रमा को बचाते हुए सच्चे अर्थों में अनेकान्त की उपासना एवं निर्मल संयमी जीवन की आराधना करना इनके जीवन का शुक्लपक्ष रहा है। इनकी वैचारिक दृष्टि में आस्था के नाम पर किसी सम्प्रदाय के खूंटे से बन्धने का अर्थ मानसिक परतन्त्रता है। क्योंकि धर्म मनुष्य को स्वतन्त्रता का आकाश प्रदान करता है।

अन्त में एक बार पुनः मैं आदरणीय श्री सुमन मुनि जी म. की उनपचास वर्षीय निर्मल संयम पर्याय का हृदय से अभिनन्दन करते हुए यह मंगलकामना करती हूँ कि भविष्य के क्षणों में सतत निर्विघ्न संयमी जीवन जीते हुए आपका व्यक्तित्व समग्र मनुष्यता के लिए स्वर्णिम प्रभात सिद्ध हो।

❑ **डॉ. साध्वी सरिता**
दिल्ली

एक बहुआयामी व्यक्तित्व

वर्तमान कालीन महान् संतों की शृंखला में पूज्य गुरुदेव इतिहास मार्तण्ड श्री सुमन मुनि जी महाराज का नाम प्रमुखता से अंकित किया जाता है। आपने अपने उदात्त विचारों और श्रेष्ठ संयमीय जीवन से जैन जगत् में अपनी एक विशेष पहचान बनाई है। आपके तीक्ष्ण और मौलिक विचारों में जहां आगमीय तर्क का धरातल होता है वहीं आपके संयमीय जीवन में स्वविवेक जागृत रहता है।

इस मनस्वी मुनि का अवतरण लगभग तिरेसठ वर्ष पूर्व राजस्थान के प्रसिद्ध नगर बीकानेर के निकटवर्ती ग्राम पांचू में हुआ था। माता वीरांदे और पिता चौधरी भीवंराजजी का मातृत्व-पितृत्व धन्य बना।

आप चौदह वर्ष के हुए तो आप में छिपी संभावनाएं अनावृत होने लगी। हृदय उमंगित बना कुछ करने को। किसी ऐसी यात्रा पर निकलने को जिसे वस्तुतः तीर्थयात्रा कहा जा सके। ... और आप निकल ही पड़े। मानव चले तो राहें स्वतः निर्मित होती चली जाती हैं। मंजिलें ऐसे यात्री के कदमों पर अवनत हो जाती हैं।

आप चले तो पूज्यगुरुदेव प्रवर्तक पण्डितरत्न श्री शुक्लचन्द जी महाराज का सान्निध्य मानो आपकी बाट जोह रहा था। गुरुदेव ने आपकी सच्ची प्यास को देखते हुए आपको मुनि धर्म की दीक्षा प्रदान की। पूज्य प्रवर्तक श्री जी ने आपको अपने शिष्य पण्डित रत्न श्री महेन्द्र मुनि जी म. की निश्राय में अर्पित कर दिया।

आपने आगम साहित्य का पारायण किया। पाश्चात्य और पौर्वात्य दर्शन भी आपकी अध्ययन परिधि में सिमटते गए। एक ही वाक्य में लिख दूं—आप जैन जगत् के मूर्धन्य विद्वानों में परिगणित होने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपका संयम परिधियों में ही सिमटकर नहीं रहा। वर्तमान के सत्य से आप आंख मूंदकर बैठ जाने वाले नहीं हैं। मैंने स्वयं देखा है और सुनता रहा हूँ कि आपने अनेक बार सामाजिक, पारिवारिक कितने ही क्लेशों को शान्त किया है। अन्याय और दुर्बल-दलन आपकी आत्मा को कंपा देता है। आप सदैव न्याय और दुर्बल के पक्षधर रहे हैं। कितनी ही बार आपने अपने जीवन को दांव पर लगाकर भी न्याय की पक्षधरता की। न केवल पक्षधरता की अपितु उसे विजित भी बनाया।

असंख्य गुण सुमनों का गुलदस्ता है आपका जीवन। उसका वर्णन असंभव है।

आपके दीक्षा स्वर्ण-जयन्ति के पावन प्रसंग पर मैं समस्त उत्तर भारत के श्री संघों की ओर से आपके संयम को नमन करता है। आपके बहुआयामी व्यक्तित्व का अभिनन्दन करता हूँ।

❑ **राजेन्द्र पाल जैन**
प्रधान : एस.एस. जैन महासभा पंजाब
लुधियाना (उत्तरी भारत)

मृदु - हृदय मुनिराज

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी महाराज एक सहृदयी मुनिराज हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा और श्रम के बल पर आज संघ और समाज में एक गौरवमयी मुकाम हासिल किया है। वे श्रमण समाज में एक गणमान्य मुनिराज हैं। स्वयं आचार्य भगवन् भी संघ और समाज सम्बन्धी कोई निर्णय लेने से पूर्व आपकी सलाह लेना आवश्यक मानते हैं। इसीलिए आपको श्रमणसंघीय सलाहकार और मंत्री पद पर प्रतिष्ठित किया गया है।

संघ में उच्च पद पर आसीन होते हुए भी आप में बालक की सी सरलता है। अहं का भाव आपको स्पर्श तक नहीं कर पाया है। आपके पास आने वाला व्यक्ति आपके मृदु और आत्मीय व्यवहार से आपका ही बन कर रह जाता है। पिछले कई वर्षों से मैं आपके सम्पर्क में हूँ। प्रथम दर्शन में ही मैं आपके व्यक्तित्व और व्यवहार की कायल बन गयी थी। समय के साथ-साथ मेरी श्रद्धा विस्तृत ही हुई है।

मैं पूर्ण आस्था के साथ यह मानती हूं कि हमारे समाज में आप जैसे कुछ और मुनिराज हों तो हमारे समान का परिदृश्य बदल सकता है।

आपके संयमीय जीवन के पचासवें वसंत में प्रवेश पर मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करती हूँ और कामना करती हूँ कि आपका सान्निध्य मुझे सतत प्राप्त होता रहे।

❑ **श्रीमती दमयन्ती देवी भण्डारी**
(टी.नगर, चेन्नई)

संयम को नमन

परमवंदनीय, परमश्रद्धेय श्रमणसंघीय सलाहकार एवं मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी महाराज श्रमणसंघ के मूर्धन्य मनस्वी संतरत्न हैं। आपका प्रलम्ब संयमीय जीवन परमुज्ज्वल और निष्कलंक रहा है। आपने अपने श्रेष्ठ जीवन से स्वात्म कल्याण का मार्ग तो प्रशस्त किया है साथ ही अपने उच्च संयम से समाज में संयम के मूल्यों को भी प्रतिष्ठित किया है।

आप अपने संयमीय जीवन के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। यह अत्यन्त हर्ष का क्षण है। इस अवसर पर मैं हृदय की अनन्त आस्थाओं के साथ आपके संयम को नमन करता हूँ।

❑ **डूंगरचन्द शान्तिलाल रांका**
कलाकुरची

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य गुरुदेव का चमत्कारी व्यक्तित्व

प्रबुद्ध चिंतक, स्वतंत्र विचारक, निर्भीक वक्ता, गुण ग्राहकता के धनी, तत्वज्ञानी, सरल शैली के व्याख्याता इन सभी प्रवृत्तियों का समावेश परम पूज्य श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी 'श्रमण' के आचार विचार व व्यवहार में देखने को मिलता है। विचार तो सभी के पास एक से बढ़कर एक, या सुन्दर से सुन्दरतर होते हैं, परन्तु आचार और व्यवहार में जमीन-आसमान का अन्तर पाया जाता है। मैंने अनुभव किया है कि कथनी और करनी की एकता को मूर्ती रूप देने में मुनि श्री जी नितान्त समर्थ एवं तत्पर हैं। जैनधर्म अथवा दर्शन व्यक्ति का नहीं गुणों का समर्थक है। ठीक उसी प्रकार जिस व्यक्ति में मुनि श्री जी को गुण या हुनर नजर आता है, उसे संघ के पदाधिकारियों से ज्यादा मान-सम्मान देते हैं और भरी सभा में उसका उल्लेख भी करते हैं। कलाकार को प्रेरणा देकर उसका उत्साह बढ़ाते हैं।

मुनि श्री जी ने १९८८ में एक चातुर्मास बोलारम तथा १९८९ में डबीरपुरा (हैदराबाद) में किया। मुझे लगातार दो वर्षों तक मुनि श्री जी के सान्निध्य एवं सेवा का लाभ मिला। इन दो चातुर्मासों के दौरान घटित दो अविस्मरणीय घटनाओं का उल्लेख मैं निम्न पंक्तियों में कर रहा हूँ –

(१) सिकन्दराबाद निवासी सुश्रावक श्री शान्तिलाल जी अपने जीवन में लगभग निष्क्रिय होकर टूट चुके थे। मानसिक रूप से विक्षिप्त होकर वे कुछ दुर्व्यसनों में पड़ गए। चारों ओर से निराश होकर वे मुनि श्री जी के चरणों में पहुंचे। मुनि श्री जी ने उन्हें ऐसा आत्मबोध कराया कि वे जीवन में फिर सक्रिय हो उठे। उनके दुर्व्यसन छूट गए और वे एक आदर्श श्रावक की भांति जीवन यापन करने लगे।

(२) इसी तरह हैदराबाद का कीमती परिवार जो एक समय बड़ा ही धर्मानुरागी रहा था कालान्तर में वह धर्म व समाज से विमुख हो गया। मुनि श्री जी ने उन्हें उद्बोधन दिया व उनके पूर्वजों द्वारा समाज व धर्म के प्रति समर्पित अविस्मरणीय सेवाओं की याद दिलवाई। प्रेरणा पाकर कीमती परिवार के सदस्य धीरे-धीरे धर्म व सामाजिक क्षेत्र में सक्रियता पूर्वक अपनी भूमिका निभाने लगे। विशेष रूप से श्री राजेन्द्र कुमार जी कीमती व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पा देवी कीमती।

उपर्युक्त दो प्रसंगों से सम्बन्धित महानुभावों को हम जब भी देखते हैं या मिलते हैं तो हमें, उन्हें व वहां पर एकत्रित समूह को मुनि श्री जी की याद आना स्वाभाविक बात होती है। प्रसंगवश कभी-कभी मुनि श्री जी की बातों का जिक्र करते हुए उन लोगों के नेत्र सजल हो उठते हैं। मेरी दृष्टि में संत की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वह किसी भटके व्यक्ति को सन्मार्ग पर लगा देवे। मेरी नजर में यही चमत्कार है।

ऐसे क्रान्तिकारी, चमत्कारी एवं प्रबुद्ध चिन्तक मुनि को उनकी दीक्षा की स्वर्ण-जयंति पर शत-शत वन्दन एवं अभिनन्दन।

❑ मदनलाल मरलेचा जैन
कवि एवं संघ-संचालक, (सिकन्दराबाद)

सामाजिक चेतना के संवाहक

श्रमणसंघीय सलाहकार, मंत्री पूज्य गुरुदेव श्री सुमनमुनि जी म. 'श्रमण' सामाजिक चेतना के संवाहक मुनिराज हैं। आपकी ओजस्वी वाणी से श्रोताओं में स्फूर्ति और कुछ करने का उत्साह जाग उठता है। आपकी मंगलमयी प्रेरणा से तमिलनाडु में कई स्थानों पर जनकल्याणकारी संस्थाएं बनी हैं। अनेक क्षेत्रों में स्थानकों का निर्माण हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। हमारे क्षेत्र में भी आपकी ही प्रेरणा से स्थानक भवन का शिलान्यास हुआ। हमारे संघ पर आपकी विशेष कृपा दृष्टि है। यह कृपा दृष्टि सदैव बनी रहेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

आपकी दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति पर हमारा समस्त श्री संघ में/परिवार आपका हार्दिक अभिनन्दन करता है।

❑ **मांगीलाल कोठारी**,
अध्यक्ष, एस.एस. जैन श्री संघ , आलन्दुर, चेन्नई

शत - शत अभिनन्दन

पूज्यवर्य श्रमणसंघ के वरिष्ठ मुनिराज मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी महाराज का वर्ष १६६६ का वर्षावास हमारे क्षेत्र में हुआ। यह चातुर्मास अभूतपूर्व सफलता-सहित सम्पन्न हुआ।

गुरुदेव की प्रेरणा से वर्षावास में **"प्राकृत भाषा जैन विद्वद् सम्मेलन"** आयोजित किया गया। इसमें अनेक गण्यमान्य विद्वानों ने भाग लिया। यह एक विशेष उपलब्धि वाला कार्यक्रम रहा। श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज की ओर से कर्नाटक में यह प्रथम आयोजन था। एतदर्थ मैसूर श्री संघ की ओर से सब व्यवस्था हुई।

गुरुदेव के वर्षावास की एक अन्य उपलब्धि रही- **"भगवान महावीर प्राकृत भाषा जैन विद्यापीठ"** की संस्थापना। आज भी यह विद्यापीठ सुचारु रूप से चल रही है। इसकी कक्षाएं निरन्तर चलती हैं।

मैसूर श्री संघ आपके इन उपकारों का हृदय से आभारी है और आपकी दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति पर आपका शत-शत अभिनन्दन करता है।

❑ **देवराज बम्ब**
मंत्री. एस.एस. जैन श्री संघ मैसूर (कर्नाटका)

वीतराग वाणी के महान् व्याख्याता

वीतराग वाणी की अनुपम व्याख्या के द्वारा मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करने वाले महान संत पूज्यवर श्री सुमनमुनि श्री म. के दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति-अभिनन्दन समारोह पर मैं उनके प्रति अपने हृदय की श्रद्धा-भावना व्यक्त करता हूँ। आप का मंगलमय जीवन हम सबके लिए प्रेरणादायी है। मैंने महाराज श्री के दर्शन १५ वर्ष पूर्ण पूणे के साधना सदन में किये थे। मैंने सोचा था कि अ.भा. जैन श्रमणसंघ के मंत्री होने के नाते उनसे मिलना व वार्ता करना कठिन होगा। लेकिन वे मुझे बड़ी सहजता से मिले, मुझे धैर्य पूर्वक सुना और उन्होंने मेरे श्रमणसंघ विषयक किये गए सुझावों को पसंद किया। उसके बाद कई बार उनके दर्शनों का सौभाग्य मुझे मिला और उनके गम्भीर ज्ञान व सुलझे हुए विचारों से मैं हमेशा प्रभावित हुआ। भगवान् महावीर की देशना का वे बड़ी ही सरल किन्तु प्रभावोत्पादक शैली में विवेचन करते हैं।

आप श्रेष्ठ अध्यात्मोन्मुख उज्ज्वल चरित्र के धारक हैं तथा अनुशासन प्रिय हैं। उनके हृदय में सरलता, सौम्यता व करुणा प्रवाहित है। आप दृढ़ धर्मी हैं तथा समाज के कमजोर वर्ग को ऊंचा उठाने पर जोर देते हैं। आप की धीरता, गम्भीरता, निडरता तथा परिश्रमशीलता सब को आकर्षित करती है। आप एक महान् लेखक एवं चिंतक हैं। 'आत्म-सिद्धि शास्त्र' की 'शुक्ल प्रवचन' के चार भागों में व्याख्या करके आपने अध्यात्म जगत् में महान् कार्य किया है।

मैंने आपसे सीखा है कि जब तक शरीर में चेतना, बल, वीर्य मौजूद है तब तक धर्म कार्यों में पुरुषार्थ पूर्वक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्यमशील रहना चाहिए। आपकी एक विशेषता है कि जब भी कोई कार्य हाथ में लेते हैं तो पूरी श्रद्धा से उसमें जुट जाते हैं तथा अपने लक्ष्य को प्राप्त करके ही विश्राम लेते हैं। आपकी बुद्धि स्वच्छ और निर्मल है। ऐसे परम उपकारी सारस्वाराधना में रत महापुरुष के सान्निध्य में आने का, उनके दर्शन व प्रवचन-श्रवण तथा उनके साथ तत्व-चर्चा का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, इसे मैं अपने जीवन का वरदान मानता हूँ। आपके उपदेशों के द्वारा हमारे समाज में नवीन जागृति आये, वीतराग-वाणी पर हमारी श्रद्धा दृढ़ हो तथा हम श्रेष्ठ आचार का पालन कर सकें, इसकी आज नितान्त आवश्यकता है।

❑ **सुरेन्द्र एम. मेहता**
मेनेजिंग डाइरेक्टर,
अहिंसा अनुसंधान प्रतिष्ठान, चेन्नई
(भूतपूर्व अध्यक्ष : विश्व शाकाहारी संगठन, यू.के.)

अभिनन्दन एवं मंगलकामना

परमादरणीय श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री, उप प्रवर्तक मुनि श्री सुमन कुमार जी महाराज की ५०वें दीक्षा प्रसंग पर मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और वीर प्रभु से यही कामना करता हूँ कि आप स्वस्थ रहें, दीर्घायु हों, जिनशासन की सेवा करते हुए श्रमण संघ को सुदृढ़ बनाने का मार्गदर्शन करते रहें। इसी मंगल भावना के साथ...

किशन लाल बेताला
चेन्नई

यशस्वी मुनिपुङ्गव

भारतीय संस्कृति सन्त प्रधान संस्कृति हैं। इस संस्कृति की सन्त जीवन के प्रति अटूट आस्था रही है। समय-समय पर सभी धर्मों में एक से एक महान् धर्मगुरुओं का जन्म हुआ है। सभी सन्तों ने अपने संयम के पराग से जन-जन को सम्यक्, सुबोध जीवन जीने की राह दी है। पंजाब प्रान्त सदैव से धर्मनिष्ठ, संस्कारी वीरत्व युक्त रहा है। श्रमण संस्कृति के अमूल्य रत्न श्रमणसंघ के ज्येष्ठ मुनि प्रवर्तक पूज्य श्री शुक्लचन्द्र जी म.सा. के प्रशिष्य एवं पण्डित श्री महेन्द्र मुनि जी म.सा. के सुशिष्य रत्न श्रमणसंघीय मन्त्री श्रमण-कुल-तिलक श्री सुमनमुनि जी म.सा. से कौन परिचित न होगा? जो अपनी संयम साधना के ५० वें यशस्वी वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं और संयम-साधना में निरंतर गतिशील है। उनकी दीक्षा भूमि होनेका सौभाग्य हमारे लघु श्रीसंघ को प्राप्त हुआ। आज हम गौरवान्वित है कि श्री सुमन मुनि जी म.सा. ने अपनी कीर्ति के पराग के समान ही हमारे छोटे से कस्बे को भी जन-जन में प्रिय बना दिया है। हमें यह लिखते हुए स्वाभिमान होता है कि बालमुनि श्री सुमन कुमार जी ने बाल्यकाल से लेकर वृद्धकाल पर्यन्त निष्कंलक जीवन संयम साधना में व्यतीत किया। सुमन की तरह कोमल जिनकी मानस स्थली है, संयम में वज्र के समान कठोर जिनका हृदय है वे संयम के सफल सेनानायक के रूप में श्रमण संघ में उभरे हैं। ऐसे यशस्वी मुनिपुङ्गव का हमारा श्री संघ हृदय से अभिनन्दन करता है। सदैव इस लघु श्री संघ पर आपका वरदहस्त बना रहे। इन्हीं शुभेच्छाओं के साथ –

❑ **राजकुमार जैन**
मन्त्री, एस.ए.एस. जैन सभा
साढौरा (यमुनानगर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

SRI SUMAN MUNIJI : A SAINT OF GREAT WISDOM

Nawrathan K. Kothari,
Mysore - 570 010

Gurudev was born in 1936 and named as *"Girdhaari"*. Probably, destiny had foretold his parents that he will be one of the greatest of Saints. Gurudev can be aptly called as the *Apostle of Knowledge*, Wisdom and Tranquility, a worthy personality rarely found.

I have been extremely fortunate to listen to a few thought-provoking discourses of *Gurudev. Gurudev's* deep knowledge of religion and mankind is simply incomparable. *Gurudev* is truly one of the *Greatest Pearl of Wisdom*

Gurudev's teachings in a crux are :

"Human life is a sublime river,
Virtue is it's divine bathing place,
Sathya & Ahmisa are it's water,
Moral convictions are it's banks, Courage & Forgiveness are it's waves,
In such a *Pure River*, I bathe
every moment of my life."

Well, *Gurudev's* knowledge on life, wisdom & destiny, is a *Mighty Ocean*, where none like us can ever hope to swim. *Gurudev* has a dominant influence & impression, in the fortunes of our *Jain* Religion. Gurudev & his preachings will live in listner's minds, for as long as the listner is alive and will always be remembered.

A poet describes aptly

"Even if the sun should rise in the west,
Even if the lotus blooms on the mountain-top,
Even if the fire should feel cold,
The words of the wise will never fail."

So are the words ***of Our Gurudev.*** *Gurudev's* knowledge is like a river, Tree, Cloud and always has been for the benefit of society.

So says an old adage of our country :

"Rivers do not drink their own water,
trees do not eat their own fruit,
clouds do not swallow their own rain,
what great ones have is always for the
Benefit of Society"

It is an ever-lasting memory - thus spake Gurudev on PURUSHAARTH :

"Virtue & fortune rests on your
tongue-tip;
friends & relatives rest on your
fingure-tip;
sufferings & imprisonment rest on
your mind-tip;
life & death itself rest on your,
yes! on your own tongue-tip"

The beauty of *Gurudev's* vision of life & death is a challenge to men, to adopt death

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

as your Best Friend, and your best freind will obey you, challenge your destiny and you are the master of your destiny.

A poet describes life & destiny :

"None dies before his time, though
pierced by thousands of arrows ;

He whose time has run out, lives not
struct only by a blade of grass"

I pray honestly

"Oh *Thirthankar Bhagwan*, please give us the strength, to accept this challenge from *Gurudev"*.

In my humble & innocent knowledge :

Gurudev's knowledge is like a dynamo,
And when he brushes at us,
The challenge of destiny,
springs around there, all over.

Gurudev was the Chief Organiser of *"Shraman Mahasammelan"* held at Poona in 1987.

Gurudev's aptitude in conducting the *Shraman Mahasammelan,* speaks volumes of his Organisational mastery, utmost fairness, Incomparable knowledge. Participants fondly recall *Gurudev's* convincing logic, sense of truth and justice, complete integration with principles of *Akhila Bharatiya. Shraman Mahasammelan.*

Gurudev is one of the greatest embodiments of calm, confidence, sublime politeness, and inspiring fearlessness.

Gurudev's total faith in fearlessness, complete fairness and absolute humanness, is his greatest philosophy of life & destiny.

Gurudev's discourses are "*Oceans* of Ecastacy of Realities of *Life & Destiny*"

Gurudev has authored many religious masterpieces of learnings which are invaluable artefacts in *Jain* literature.

Thus says : Scripture XVI : 1,2,3 in Bhagavad Githa -

"Fearlessness, *purity of thought, stead fastness in the yoga of Knowledge, charity,*

Self-control, *sacrifice, study of VEDAS austerity, uprightness, non-injury, truthfulness,*

Absence of anger, *self sacrifice, tranquility, freedom from slander, kindness to all beings, non-covetousness,*

gentleness, *forgiveness, fortitude, purity,*

Absence of hatred, absence of conceit .... these belong to one born for Divine Wealth O, descendent of *Bharata*",

Gurudev so very rightly says :

"Those who have neither wisdom, nor devotion, neither charity, nor spirituality, neither good conduct, nor maturity, neither religious faith, nor pious habits-are mere useless burdens to Mother Earth, wandering over the world, like deer in the human form."

Gurudev has never believed in any groupism, nor any "flatering" culture

Gurudev's Philosophy in a nutshell - Think, Thank and Smile.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदन - अभिनंदन
पद्य विभाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

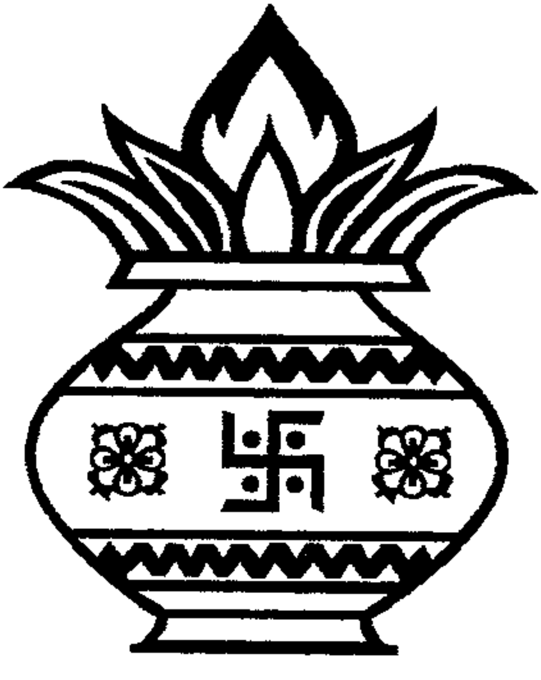

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोगानम्

जगत्सु सन्तो बहवो महान्तः
परन्तु सन्तं महतां महान्तम्।
शान्तं नितान्तं विदुषां विशिष्टम्
स्तवीमि पूज्यं सुमनाभिधानम्।।१।।

पदे-पदे सत्यकथं सुतथ्यम्
निरन्तरं यस्य मुनेश्चरित्रम्।
समीक्ष्य सन्तोऽपि पुनर्नमन्ति
मुनिं तमाराध्यमहं ब्रवीमि।।२।।

तीर्थ-स्वरूपं मनसापि मन्ये,
प्रयागराजस्य सुसङ्गमं वः।
यतो हि रत्नत्रितयस्य सङ्गात्
समन्वितं रूपमतो विभाति।।३।।

यदा मुनीनां विदुषां कथायाः
प्रसङ्ग आयाति तदा ममाग्रे।
तदाह मेवं कथयामि भक्त्या
न कोऽपि किं पूज्य वरं न वेत्ति।।४।।

सुनिश्चितं मे मतमेवदेवम्
जिनप्रभो शासन मन्दिरेऽस्मिन्।
ज्वलत्प्रभापूर्ण विकासिदीपः
प्रकाशमायाति मुनीश एषः।।५।।

उपाध्युपाध्याय धरस्य तस्य
मुनेरयं शिष्यक एव वर्णी
रमेश नामा गुरुपुष्करस्य
यशस्विनः स्तौति यशःप्रसङ्गम्।।६।।

❑ **रमेश मुनि "शास्त्री"**
(उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म.सा. के सुशिष्य)

मेरे मन को 'सुमन' बना दो

श्रमण संघ के सलाहकार मंत्री को वंदन।
शुभ प्रसंग पर गुरुवर लो मेरा अभिनंदन।।

आगम की वाणी के हो तुम महाप्रचारक।
आत्म-ज्ञान के महा प्रणेता, महान्, साधक।।

आत्म-सिद्धि की व्याख्या तुमने की है उत्तम।
प्रभु-वाणी के प्रवचन देते हो सर्वोत्तम।।

तेरा जीवन मेधाशाली, महाप्रभावक।
दर्शन-ज्ञान चारित्र गुणों से गुञ्जित, भावक।।

तुम हो महामनस्वी, हो तत्त्वों के ज्ञाता।
मेरे मन को 'सुमन' बना दो, ज्ञान प्रदाता।।

श्रद्धा, ज्ञान, कर्म से पूरित हो यह जीवन।
सदाचरण का भाव रहे मुझ में आजीवन।।

अर्द्ध-सदी से तुमने धर्म की धार बहाई।
आगम की यह पावन धारा सब मन भाई।।

करते हैं हम तव चरणों में शत-शत वंदन।
धर्म-भावना कर दे सब को हर्षित, पावन।।

❑ **दुलीचन्द जैन** 'साहित्यरत्न'
सचिव, जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान
चेन्नई

जिनशासन - सिणगार

महावीर रो मारग धार्‌यो, शासन खूब दीपायो।
सुमनमुनि री वाणी सुण' र, मन घणो हरखायो।।

वृद्धावस्था पिण धर्म री चर्चा, बांचे सूत्तर पाठ।
श्रावक - श्राविका दौड़्यां आवे लोग गेहरो ठाठ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकट मोचक, महाप्रभावी, तुम पण्डित भारी।
शान्त सुधा रस दाता चाहूँ, सेवा नित-नित थारी।।

मंगल मूरत, ज्ञानी-ध्यानी, जिनशासन-सिणगार।
भक्तजनां रा लाडला, महिमा रो नहीं पार।।

दीक्षा दिन पर खूब बधाई, जीओ साल हजार।
"शान्तिलाल" श्रद्धा भाव सूं वन्दे बारम्बार।।

❑ शांतिलाल खाबिया
मैलापुर, चेन्नै-४

सुमन - गौरव - गाथा

उनचास वर्ष तक संयम पथ पर, चलकर दीप जलाये हैं।
हिमगिरि से सागर तक जो गुरू, जन-जन के मन भाये हैं।।
उच्च कोटि के ज्ञानी है, कई भाषा के जानन हार।
इतिहास-केसरी, गिरा-दिवाकर, निडर प्रवक्ता, उच्च विचार।।
लेखक-अनुवादक-सम्पादक, की अद्‌भुत क्षमता को देख।
नत मस्तक हो जाते ज्ञानी, पढ़-पढ़ करके जिनके लेख।।
स्पष्ट गिरा सिद्धान्तवादिता, मिलन सारिता सरल मना।
सम्प्रदाय का भेद नहि जहाँ, जो भी आया भक्त बना।।
जन-हित का रख ध्यान सदा जो, चहुँ दिश धर्म प्रचार करे।
जिसके प्रतिफल जगह-जगह, कई संस्थायें शुभ कार्य करे।।
इन ही दिव्य गुणों को लखकर, पूना श्रमण सम्मेलन में।
'शांतिरक्षक' पद दिया, पर अहंकार नहीं मन में।।
ऐसे महान् गुणों के सागर, सुमन गुरू की यशगाथा।
गाने को उद्यत हुआ हूँ, गुरु चरणों में रख माथा।।
भरत देश ही सब देशों का, धर्म गुरू कहा जाता है।
राम-कृष्ण-महावीर-बुद्ध से महापुरुषों का दाता है।।
जिसने अपने दिव्य शौर्य से, जन-जन का उद्धार किया।
मिथ्या तम को दूर भगा कर, ज्योति का संचार किया।।
इसी धरा की पावन भूमि, 'मरुधरा' है कही जाती।
वर्षा जहाँ पर कम होती है, फसलें भी नहीं उग पाती।।
दूर-दूर तक ग्राम बसे हैं, लम्बा-चौड़ा रेगिस्तान।
उस धरती पर सुमन खिले क्या, पर जिसके हो भाग्य महान्।।
कष्ट अनेकों आने पर भी, दृढ़ रख अपना आतम बल।
महकाये फिर उस सौरभ से, महक रहा है विश्व सकल।।
धन्य-धन्य उन महापुरुषों को, जिनके कृत उपकारों को।
भूला सकेगा विश्व कभी नहिं, उनके उच्च विचारों को।।
दुर्गादास से राज भक्त ने, मरुधरा की शान रखी।
रामदेव हडबू-पाबू की, नहीं वीरता जाय लिखी।।
अमरसिंह राठौड़ जिन्हीं की, शूर वीरता लखकर के।
दिल्ली पति भी पहन चूड़ियाँ, झुका चरण में जाकर के।।
कृष्ण भक्ति में मीरा हुइ थी, यहीं बावरी दीवानी।
जहर हलाहल अमृत बन गया, नाग हार मय बन जानी।।
जैन जगत को भी इस भू ने, रत्न दिये थे दिव्य अनेक।
अमरसिंह आचार्य प्रवर की, महिमा का क्या करूँ उल्लेख।।
भूधर रघुपति जयमल मिश्री, चौथ हस्ती रावत मधुकर।
जिनके उपदेशों पर चलकर, मानव बन सकता ईश्वर।।
मणि माला के मोती हैं सब, उसी माल में 'सुमन' गुरू।
जुड़े शौर्य से फौजें आकर, वो अब लिखना शुरू करूँ।।
इसी मरू में छोटा कस्बा, पाँचू एक सुहाता है।
बीकानेर शहर से सीधा, मारग वहाँ पर जाता है।।
सीधा सादा वेष जहाँ का, लाज मर्यादा है गहना।
एक-एक की मदद करे सब, प्रेम भाव का क्या कहना।।
भींवराज जी जाट बसे वहाँ, मान-प्रतिष्ठा जन-जन में।
न्याय नीति में भी थे नामी, क्षीर-नीर करते क्षण में।।
वीरादेवी नाम सुहाती, धर्मवान पद अनुगामी।
गायें भैंसे भेड़ बकरियाँ, अन-धन की थी नहीं खामी।।
ऐसे सुखमय जीवन में, फिर पुण्य योग से गोद भरी।
ईसर पुत्र भया छाई खुशियाँ, पाल रहे मन मोद धरी।।
कुछ वर्षों के बाद और फिर वीरां के आधान हुआ।
सुकृत करती गर्भ प्रभावे, नौ महिनों से पुत्र वहाँ।।
शुभ महिना सुध माघ पंचमी, वर्ष बराणुं आया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्य पुत्र को जन्म दिया था, घर-घर मंगल छाया था।।
नाम रखा था गिरधर उसका, देख-देख हरषाते थे।
दो-दो बेटे पाकर दम्पति, फूले नहीं समाते थे।
दोनों सुत स्नेह भाव से, साथ साथ खेला करते।
राग द्वेष के भाव कभी नहीं, बच्चों के मन आया करते।।
इन ही खुशियों के सागर में फिर से प्रगटा मुन्ना एक।
अपना भाग्य सराहते दम्पति, तीन पुत्र आँगन में देख।।
जन-जन भी मुख बोल रहा था, भींवराज के पुण्य प्रबल।
पर क्या खुशियाँ हरदम रहती, आज दिखता वो नहीं कल।।
सुख-दुख तो है धूप छाँव सम, आता-जाता रहता है।
लेकिन मोह-माया में फँसकर, हमें होश नहीं रहता है।।
सुख में फूले नहीं समाते, दुख में हम मुरझा जाते।
दुख-सुख कर्माधीन सदा से, सोच समझ हम नहीं पाते।।
देखो कैसी हरी भरी थी, भींवराज की फुलवारी।
हाय! आय दुर्दैव काल ने, उस पर प्रहार किया भारी।।
उठा ले गया भींवराज को, वीरां रोई मुरझाई।
घुल-घुल करके पति विरह में, वो भी जग से विरलाई।।
छोटा मुन्ना बिना मातु के बिलख-बिलख कर स्वर्ग गया।
ईसर गिरधर भये बावरे, वज्रपात नहि जाय सया[1]।।
अनाथ भये, नहि रहा सहारा, बिलख रहे लख दोनों बाल।
रिश्ते के चौथू दादा ने, कीनी इनकी सार सम्भाल।।
पर गिरधर को चैन न पड़ता, सदा सोचता रहता था।
कहाँ गये तज मात-पिता, जहाँ प्रेम सुधा रस बहता था।।
घर में आते हमें न पाते, जब आवाज लगाते थे।
दौड़े-दौड़े आते दोनों, साथ बैठकर खाते थे।।
नहीं आँखों से दूर किया अब भूल गये कहाँ सारा प्यार।
समझ न आता उसे जगत् का, मोह-माया का अद्भुत जार।।
चिन्ता में दिन निकल रहे थे, भाग्य योग से बात बनी।
पास उपासरा था यतियों का, रुकमा आर्या ज्ञान धनी।।
रहती थी, लख उसको जांचा, भाग्यवान् यह दिखता बाल।
उसने मिल चौथू दादा से, पूछा उसका सारा हाल।।
सुनकर बोली, इस बालक को, हमें सौंप दो, डरो नहीं।
प्रबल पुण्य इसके है, परखा, चमकेगा यह सकल मही।।
आर्या की सुन बात चौथ ने, मन में सोच-विचार किया।
सभी जनों की राय जानकर, उसे उन्हें फिर सौंप दिया।।
ममता मयी रुक्मां आर्या ने, लाड़-प्यार कर ज्ञान दिया।
मिली शान्ति कुछ गिरधर की, पा आर्या की दया मया।।
फिर कुछ माह के बाद उसे ले, बीकानेर सिधाई थी।
भैंरुदान महाविद्यालय में, शिक्षा उच्च दिलाई थी।।
धन्य दिया रुक्मा आर्या ने, धर्म बोध व्यवहारिक ज्ञान।
सुरक्षित को सींचा तब ही तो, सुमन महक रहा है चहुँ कान[2]।।
बच्चे तो कोमल कलियाँ है, जिधर मोड़ दो मुड़ जाये।
संगत जैसी मिल जाती है, उस पथ पर वो बढ़ जाये।।
गिरधर भी तो कई वर्षों तक, आर्या जी के साथ रहे।
तब सोचो उनके संग रहकर, वो फिर कैसी राह गहे।।
भाव जगे थे उर में ऊँचे, यह जग झूठी मोह माया।
फँसा इसी में जो भी प्राणी, सुखी कभी नहीं बन पाया।।
सोच लिया इस झूठे जग में, रहना है अब ठीक नहीं।
संयम का पथ अपनाना है, सच्चे सुख की राह यही।।
फिर सद्गुरु को पाने हित थी, उसकी आँखें घूम रही।
इसी दौड़ में नाथ संत से, भेंट हुई थी यहीं कहीं।।
उनके सगं में चलकर गिरधर, शहर भटिन्डा आया था।
नाथ गुरू के आश्रम में रह, सारा परिचय पाया था।।
नाथ गुरू भी पा गिरधर को, फूले नहीं समाते थे।
देख योग्यता उसे यहीं पर, दीक्षा देना चाहते थे।।
कपूरथला में इन नाथों का आश्रम मुख्य बताते हैं।
इसीलिये दीक्षा देने हित, गिरधर को वहाँ पे लाते है।।
पर गिरधर का मन नहिं माना, क्षण में वहाँ से विदा हुआ।
आर्य समाजी देशराज से, फिर उसका सम्पर्क हुआ।।
उनके निजी चिकित्सालय में कई दिनों तक कार्य किया।
वहीं वेद उपनिषद गीता पढ़कर अद्भुत ज्ञान लिया।।
गिरधर की लख दिव्य योग्यता, देशराज ने किया विचार।
दीक्षित हो गर आर्य संग में चमके निश्चय विश्व मझार।।

१. सहा २. चारों ओर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर यह गिरधर कब कहाँ महके, रहस्य गर्भ था किसे पता।
उन्हीं दिनों में युवाचार्य गुरु, शुक्लचन्द विचरण करता।।
शिष्यों को ले साथ पधारे, कपूरथला के भाग्य जगे।
अमृत वाणी रोज वरसती, पीने हित जहाँ भीड़ लगे।।
गिरधर भी आ ठीक समय पर, सदा प्रवचन सुनता था।
सुन-सुन करके ज्ञान सुधा से, अपने मन को रंगता था।।
रंग लगा तो लगा किरमची, फिर तो उसने ठान लिया।
इन्हीं गुरू के चरणों मे गर, मिल जाये मुझ छत्र छियाँ।।[1]
धन्य-धन्य मम जीवन होगा, सिद्ध मनोरथ हो सकते।
पर साधू तो रमते योगी, गंग प्रवाह जिम है बहते।।
कुछ दिन ही रुक, विचरण कीना गिरधर ने जब कान सुनी।
दुखी हुआ मन, इत-उत पूछा, किधर गये वो महा मुनी।।
चला खोजते, कई दिनों तक, चलते-चलते थका मगर।
खान-पान भी भूल गया था, बस दर्शन की लगी जिगर।।
आखिर आश फली थी उसकी, शाहकोट में आकर के।
विराज रहे थे यहीं गुरूवर, दर्श किया था जाकर के।।
चरणा में नम प्रगट किये थे, अपने मन के भाव सभी।
सुनकर ज्ञानी गुरुदेव ने, जाँच परख क्षण कहा तभी।।
रहो यहाँ पर शिक्षा पावो, भाव तुम्हारे जान लिये।
उचित समय लख दीक्षा देंगें, सुनकर गिरधर हर्ष हिये।।
लगा सीखने ज्ञान यहाँ फिर, शुभ संवत् शुभ माह दिन आय।
वर्ष सात सुद क्वार त्रयोदशी, भू साढ़ोरा, पावन माँय।।
दीक्षा व्रत को लेकर गिरधर, महेन्द्र मुनि के शिष्य बने।।
आशीर्वाद महागुरु का पाकर, गिरधर से वो 'सुमन' बने।।
सान्निध्य मिला अब महागुरू का, फिर थी उर में बड़ी लगन।
गुजराती, पंजाबी, अंग्रेजी, प्राकृत संस्कृत अरु व्याकरण।।
अध्ययन कर, फिर हिन्दी का भी, प्राप्त किया था ऊँचा ज्ञान।
जैनागम का गहन ज्ञान कर, अपर ग्रंथ कइ लिये जान।।
उच्च कोटि के ज्ञानी बनकर, जन मन मन्दिर छाय गये।
शुक्ल पूज्य भी देख प्रतिभा, फूले नहीं समाय रये[2]।।
सदा रहे थे साथ पूज्य के, विनय भाव रख ऊँचा मन।

१. छत्रछाया २. रहे ३. संस्थाओं

श्रमण सम्मेलन शहर सादड़ी, सोजत को भी निरख नयन।।
अनुभव प्राप्त किया था नामी, निखर हुये फिर संत बड़े।
लेखक अनुवादक, सम्पादक, बन कर ग्रंथ अनेक गढ़े।।
तत्व चिंतामणी, श्रावक कर्तव्य, ग्रंथ अनुपम लेखन कर।
शुक्ल प्रवचन, चार भाग में, रचे आपने अति सुन्दर।।
श्रमणावश्यक सूत्र आपने, जन-जन को देने हित बोध।
अतिचारों का सरल अर्थ कर, लिखी टिप्पणियाँ कर-कर शोध।।
देवाधिदेवरचना, पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद किया।
अर्थ सहित रच बृहदालोयणा, जन-जन पर उपकार किया।।
आचार्य अमर एवं गेंडेराय की, जीवन गाथा आदि कई।
वैराग्य इक्कीसी छोट मोटे, लेखों का है पार नहीं।।
महा प्रभाविक वाणी अद्भुत, जादू जैसा काम करे।
एक वार जो सुनले प्राणी, पुनः-पुनः मन आश करे।।
देश समाज जन हित को रखकर, सदा गिरा बरसाते है।
दीन-हीन-असहाय जनों को, पहले गले लगाते हैं।।
स्कूल औषधालय छात्रालय, पुस्तकालय कई जगह चले।
दीन-हीन हित अनुदान का, कार्यक्रम भी सदा चले।।
बन्द पड़ी थी जीर्ण-शीर्ण कइ, जगह-जगह पर संस्थायें।
पुनः आपके उपदेशों से, नये प्राण उनमें आये।।
देख दिव्यता अलंकार कई, दे संघों ने कीना मान।
लेकिन मन में रती मात्र भी, नहीं दिखाता है अभिमान।।
अब ढलते दिन भी आये पर, देखो मन में कितना जोश।
लूटा रहे हैं घूम धर्म हित, उदार भाव से अपना कोष।।
कहाँ तक गुण गाऊँ गुरु तेरे, गाते-गाते कलम थकी।
सेवाओं का पूरा लेखा, अब मुझ से नहीं जाय लिखी।।
धन्य-धन्य उनपचास वर्ष लग, उत्तर से दक्षिण तक घूम।
वीर प्रभू का ध्वज लहरा कर, चहूँ ओर मचाई धूम।।
चातुर्मास गुणचास किये फिर, शेखे काले विचर-विचर।
जैन धर्म की शान बढ़ाई, गर्व संघ को है तुझ पर।।
पचासवाँ चौमासा धन्य यह, टी.नगरी ने पाया है।
आस पास के उप नगरों को, कितना लाभ दिलाया है।।
धर्म ध्यान का ठाट लगा नित, लोग हजारों उमड़ रहे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवा हित संघ खड़ा पैर पर, पलक पावड़े बिछा रहे।।
सब जन इनको साथ दे रहे, कितना पुण्य कमाया है।
फिर लख अर्ध शती दीक्षा की, आज यह ठाट लगाया है।
गुरू-गुरुणी सा आस-पास थे, उनको विनती कर लाये।
जन सागर भी उमड पड़ा है, समोशरण सा दिखलाये।।
आज गुरुवर का हम सारे, हर्षित हो बहुमान करे।
आभार प्रगट कर सेवाओं का, श्रद्धा से गुणगान करे।।
देश-विदेशों में भी सुन यह, दीक्षा दिन की अर्ध शती।
सन्त सती कई विद्वद् जनों के, श्रद्धा मन में जगी अती।।

❑ **हस्तीमल समदड़िया**
वलसरवाक्कम, चेन्नई

श्रमण रत्न श्री सुमन मुनि

महामहिम, महितल निधि, कोविद-कुलशृंगार।
श्रमण रत्न श्रीसुमन मुनि, स्पष्ट प्रवचनकार।।

आगमज्ञ-आत्मज्ञ है, जिनाकाश भास्वान।
न्याय निष्ठ निर्ग्रन्थवर, गण वल्लभ धीमान।।

निष्कारण, तारण-तरण, निर्भय-निरहंकार।
सदा रहे जयवन्त जग, विशदाचार विचार।।

सुखपृच्छा अभिवन्दना, सादर हो स्वीकार।
दूरस्थित भी देह से, करता बारम्बार।।

प्रतिपल आत्मिक साधना, अधिकाधिक आनंद।
प्रभो ! शुभाशीर्वाद से, हर्षित मन अरविंद।।

अहो-अहो! नाम-श्रवण, जरा नहीं पहचान।
फिर भी मंगल भावना, करूँ पत्र प्रस्थान।

सुखद साहित्य-साधना, नित्य निरन्तर नाज।
श्रमणाश्रित उर-लेखनी, सेवा संघ-समाज।।

परोक्ष परिचय आपसे, अविचल अंतर हर्ष।
दीपक जब सौभाग्य हो, प्रत्यक्ष सद्गुरु दर्श।

पुनः-पुनः गुरो ! वन्दना, आप करो स्वीकार।
प्रेषित करता पत्रशुभ, 'दीपक' कलम पुकार।।

❑ **दीपक भाई**
मु. रूंदिया, (भोपालगढ़), राजस्थान

श्रमण संघ की ढाल, हृदय से विशाल

श्रमणसंघ के सलाहकार,
निर्ग्रन्थ सन्त,
कविरत्न,
कलम के धनी,
प्रभावशाली व्यक्तित्व
श्री सुमनमुनिजी म.सा. के
चरण कमलों में
सविनय श्रद्धार्पण के साथ
वन्दन !

दीक्षा-स्वर्ण जयंति पर अभिनंदन।
श्रमणसंघ की ढ़ाल,
हृदय से विशाल,
जैन समाज के प्राण
संतों में संत महान्।
श्रमणसंघ की माला के मोती,
आपकी अनुपम वाणी-ज्योति।
पुनः-पुनः
वन्दन - अभिनंदन !

❑ **के. मोतीलाल रांका**
अध्यक्ष : श्री व.स्थ. जैन श्रावक संघ,
चिकपेट, बेंगलोर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितने सच्चे, कितने अच्छे मेरे गुरुवर!

(मैंने हमेशा गुरुदेव श्री की महिमा के ही गीत गाये है। पं. रत्न श्री सुमनमुनि जी म. के पावन चरणों में शत-शत नमन, अभिनन्दन करते हुए मेरे मन के भाव अर्पित कर रहा हूँ)

सुमन हमारा, मुनि महेन्द्र ने संवारा, जी करे देखता रहूं,
ओ प्राणों से प्यारा, तूं है नयन सितारा, जी करे देखता रहूं।

तू है ज्ञानी, तूं है ध्यानी, तूं है अंतरयामी..
सबसे प्यारा गुरु हमारा, सुमन मुनि महाज्ञानी...।।

पांचू गाँव में जन्में हैं, वीरांदे जी के नन्दन,
तुम्हें पाकर हर्षित है, भींवराज कुल चन्दन,

सुहाना दर्शन है, चन्दा के जैसा,
होगा ना दुनियाँ में और कोई ऐसा-२

कितने पावन, कितने सच्चे, मेरे गुरुवर कितने अच्छे,
मुझको तो मीठी लगती है तेरी अमृतवाणी...।।

समता की प्यासी है, तेरी ये बोली,
गंध हस्ती जैसी है तेरी ये चाली,...२

चरणों में जाऊं तो, दिल मेरा हर्षाये,
गाँव-गाँव गुरुवर मेरे 'सुमन' सरसाये...२

मैं दिवाना होकर गाऊँ, तेरी कृपा-किरण पा जाऊँ
चाँद-सितारे "जांगड़ा" गाये, बोले जय हर प्राणी..।।

(लय : कितना प्यारा तुझे रब ने बनाया...)

जन्म सभी का होता है पर
दीक्षा-जयंति विरलों की मनायी जाती हैं।
माताएँ धन्य उन्हीं की होती हैं,
जिनकी संतान इतिहास बनाया करती हैं।।

❑ **मांगीलाल जागड़ा,** बैंगलोर

सुमन की सौरभ

नाम सुमन सब काम सुमन से श्रमणसंघ के प्रहरी सै
दीक्षा स्वर्णजयंति पर या दुनिया जय-जय कहरी सै।

नाप दिया सब भारत को इन पैरों से पैदल चलकर
जैन जगत् के हर घर में इस सुमन की सौरभ बहरी सै।।
मरुधरा में तो जन्म लिया बीकानेर नगरी प्यारी
बसन्त पंचमी का शुभ दिन था या सारी दुनियाँ कह री सै
दीक्षा स्वर्ण-जयंति पर या दुनिया जय-जय कह री सै।।

वंश चौधरी गोत्र गोदारा पिता "भींवराज" प्यारे
भरी जवानी दीक्षा धारी गुरूवर महेन्द्र थे प्यारे
"शुक्ल" गुरू से लिया ज्ञान और आगम स्तोक पढ़े सारे।
जीओ और जीने दो सबको यह आगम वाणी कहरी सै
दीक्षा-स्वर्ण जयंति पर या दुनिया जय-जय कहरी सै।।

गये सादड़ी सम्मेलन में सोजतसिटी भी आए
लेखक, चिंतक, निर्भिक वक्ता, इतिहास केसरी कहलाए।
किया संचालन शान्तिरक्षक बन पूना के सम्मेलन का
करूं कहां तक वर्णन आपके भाषण का और लेखन का
बार-बार या मेरी लेखनी इसे बात न कहरी सै
दीक्षा-स्वर्ण-जयंति पर या दुनिया जय-जय कह री सै।।

मंत्री पद की शान बढ़ाई सलाहकार की पदवी पाई
सारे देश में घूम-घूम के अनेकों धर्मसंस्था बनवाई।
जिनवाणी की सच्ची धारा थारे मुख से बह री सै
दीक्षा स्वर्ण-जयंति पर या दुनिया जय-जय कह री सै।।

जीओ हजारों साल आप और खूब धर्मप्रचार करो
महावीर की वाणी से इस दुनिया का उद्धार करो।
विनय सहित वन्दन मेरा अब बारम्बार स्वीकार करो
'राजेन्द्र' पानीपत वाले की यह भव्य भावना कह री सै।।
दीक्षा-स्वर्ण जयंति पर या दुनिया जय-जय कह री सै।।

❑ **राजेन्द्र जैन,** पानीपत
मंत्री : श्री अ.भा.श्वे.स्था. जैन कान्फ्रेंस
शाखा – हरियाणा प्रदेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब ही देते... बधाई

श्रीसुमन मुनि के गुण गाना,
श्री पण्डित मुनि के गुण गाना।
सुमन मुनि जी संत निराला,
ज्ञानी-ध्यानी निर्भीक आला।
है इतिहास - खजाना,
श्री सुमन मुनि के गुण गाना।।

पञ्जाब, हरियाणा, दिल्ली पधारे,
आन्ध्र, कर्नाटक के भाग्य संवारे।
तमिलनाडु में धर्म फैलाना,
श्री सुमन मुनि के गुण गाना।।

दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति आई,
सब ही देते गुरु को बधाई।
जीवन भर सरसाना,
श्री सुमन मुनि के गुण गाना।।

गुरुवर मैं हूँ छोटा बच्चा,
फिर भी हूँ मैं दिल का सच्चा,
भावाञ्जलि स्वीकार कराना,
श्री सुमन मुनि के गुण गाना।।

'दीपक' गुरुजी ! तव गुण गाए,
चरणों में नित शीष झुकाए
मम जीवन सफल बनाना,
श्री सुमनमुनि के गुण गाना"

❑ **वैरागी दीपक जैन**
नई शक्ति नगर, दिल्ली

जय जय सुमन मुनि गुणवान

आसोज सुदी तेरस दिन आया, दीक्षा-दिवस महान्,
जय-जय सुमन मुनि गुणवान्।
सूरज सम इस जग में चमके, जैन-जगत्-पुण्यवान्,
जय-जय सुमन मुनि गुणवान्।। ध्रुव।।

भींवराजजी पिता तिहारे,
उत्तम जाति-कुल को धारे।
वीरांदे माँ के सुत प्यारे,
जिनकी कुक्षि में आप पधारे।।
बीकानेर के पांचू ग्राम में,
जन्मे आप सुजान....जय-जय....

बचपन में गिरधारी कहाया,
पूर्वकर्म जब उदय में आया।
पिता-माताजी स्वर्ग सिधाया,
बचपन में था बहु दुःख पाया।।
चौदह वर्ष की अल्पायु में,
बने विरागी महान्....जय-जय....

शुक्ल गुरु का दर्शन पाया,
जीवन का आधार बनाया।
आसोजसुदि तेरस दिन आया,
भगवती दीक्षा पाठ पढ़ाया।।
पन्द्रह वर्ष की लघुवय में ही,
बन गये मुनि महान्....जय-जय....

हरियाणा यू.पी. के नगर में,
राजस्थान की डगर-डगर में।।
पंजाब प्रान्त के ग्राम-नगर में,
मद्रास शहर की डगर-डगर में।।
तेज गति से विचरण करके,
फैलाया धर्म अरु ध्यान....जय-जय....

सादड़ी सोजत भीनासर में,
अजमेरशहर के सम्मेलन में।
पंजाब प्रतिनिधि मंडल में,
आपश्री जी पहुंचे सब में।।
पूना सम्मेलन में पाया
पद मन्त्री का सम्मान....जय-जय....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमन्त भद्र गुणभद्र गुणीश्वर,
प्रवीण मुनि प्रशिष्य मुनीश्वर।
इनको संयम मार्ग बताकर,
तप-आराधन-ज्योति जलाकर।।
ज्ञान-ध्यान, दर्शन-धन जिनको,
दिल से किया प्रदान....जय-जय....

वाणी आपकी जन हितकारी,
सुनते हैं सब नर और नारी
आप बड़े ही पर उपकारी,
पार लगादो नाव हमारी।।
सच्चा पथ दिखलाया हमको,
देकर संयम-दान....जय-जय

लय : देख तेरे संसार की हालत

❑ मुनि सुमन्तभद्र 'साधक'

युग-युग जिओ गुरुवर

गुरुवर हो गुरुवर, तूं है महा ज्ञानीवर,
हो....मेरा मोह छुड़ाके, मेरा मान मिटाके,
तुमने दिखलाई मुक्ति डगर...गुरुवर हो...

गुरु सुमनमुनि जी, जग में है सबसे निराले,
सलाहकार मंत्री, श्रमण संघ के प्यारे।
हो....तेरे गुण हम गाए, नित शीष झुकाए।
तेरे चरणों में आए गुरुवर...गुरुवर हो...

भींवराज पिताश्री पांचुं ग्राम निवासी।
श्री वीरांदे माता, चौधरी वंश सुज्ञाती।।
हो...तेरा गौत्र गोदारा, तू कूल उजियारा
मरुभूमि का प्यारा गुरुवर...गुरुवर हो...

बचपन में ही तूने लिया गुरुजी का सहारा,
महेन्द्र गुरु से पावन संयम को धारा।
हो...गुरु शुक्ल थे प्यारे, जीवन नैया को तारे,
जिनको जंपू मैं दिनरात भर...गुरुवर हो...

गुरु चरणों में रहके, ज्ञान-ध्यान है कीना।
आगम श्लोक सभी का गुरु मुख से ज्ञान है लीना।
हो...तूंने धर्म फैलाया, सारे जग को बताया।
अहिंसा को धारो जीवनभर...गुरुवर हो...

संयम की ज्योति जगाकर, अपना जीवन चमकाया।
सम्यक ज्ञान को देकर भगतों का भ्रम है मिटाया।
हो...मेरा पाप छुड़ाके, मुझे धर्म दिखाके
मुझे पार लगाना गुरुवर...गुरुवर हो...

चेन्नई नगर में तेरा दीक्षा दिन है आया।
भक्तों के दिल में सुमनों को तुमने खिलाया।
हो....जन-जन-मन हरसे, मेरा मन भी सरसे
तुम युग-युग जिओ मेरे गुरुवर...गुरुवर हो...

लय : बाजीगर हो बाजीगर

❑ मुनि प्रवीणकुमार

शान्ति का बिगुल बजाते हैं

जय सुमन गुरु की बोले जा,
आनन्द के पट तूं खोले जा।।

ये पञ्च महाव्रत धारी है,
संयम की करणी भारी है,
तू अन्तर कलिमल धोए जा...

ये तीन गुप्ति के धारक है,
और पंच समिति पालक है,
तूं बीज धर्म के बोए जा....

जिनवाणी हमें सुनाते है,
हम सबका भरम मिटाते हैं,
तूं चरणों में शीश नमाए जा...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्ति का बिगुल बजाते है,
सुख आत्मानन्द का पाते है,
तूं भक्ति-भाव में सोए जा....

श्री संघ ने जितना लाभ लिया,
उतना ही इनका हरसे जिया,
तूं धर्मध्यान बढ़ाए जा....

चेन्नै में वर्षावास किया।
त्यागराजनगर को धन्य किया।
तूं सब के दिल में समाए जा....

गुरु चरणों में शीष झुकाते है,
हम धन्य-धन्य बन जाते है,
तूं गीत सदा ही गाए जा....

लय : जय बोलो महावीर स्वामी की...

❑ पारसमल बाफणा
बेंगलोर

सुमन - सौरभ

दीक्षा का शुभ दिन ये, गुरु सुमन का है आया।
जन-जन के मन में अति आनन्द है छाया।।

गुरुदेव दयालु है, गुरुदेव कृपालु हैं।
भक्तों के रखवाले, हम तेरे श्रद्धालु हैं।
सुमन-सी सौरभ को, तुमने है प्रसराया।।

गुरुवर के गुण गाओ, चरणों में झुक जाओ।
अहंभाव को तज करके, आतम ज्ञान को पाओ।
ग्रन्थों की गुत्थियों को, गुरुवर ने सुलझाया।।

गुरुवर ने जन्म लिया, उन्नीस सौ छत्तीस मांही।
वसंत पंचमी के दिन, ग्राम पांचूं के माही।
पिता भींवराज प्यारे, माँ वीरांदे का जाया।।

गुरु शुक्ल के चरणों में, ज्ञानार्जन कीना है।
मोह-ममता तज करके, संयम पद लीना है।
गुरु महेन्द्र मुनि जी का है, ये शिष्य कहलाया।।

आसोज सुदी तेरस को, दीक्षा दिन आया है।
उनपचास वर्षों तक जिन धर्म फैलाया है,
कई ग्रामों, नगरों के भक्तों ने गुण गाया।।

भावों के सुमनों को, श्रद्धा से स्वीकार करो।
मैं जनम-जनम भटका, मेरी भव-बाधा हरो।
गुरु गुण गाए जिसने, आनन्द ही आनन्द पाया।

लय : बचपन की मोहब्बत को....

❑ श्री मांगीलाल जांगड़ा
बेंगलोर

संयम की उज्ज्वल ज्योति

जप-तप-संयम-ज्ञान की धारा यहाँ बह रही है
यह तो बहती रहेगी।
सुमन मुनि की आगम वाणी यहाँ बह रही है
यह तो बहती रहेगी।

सन् छत्तीस में, सुमनमुनि ने जन्म था पाया।
सन् पचास में, संयम पथ को था अपनाया।
संयम की उज्ज्वल ज्योति सदा जलती रहेगी...

आगम के ज्ञाता है, ज्ञान का सागर है।
संयम का तेरे अंदर, लहराता सागर है,
तेरी महिमा अपरम्पार है यह तो सदा ही रहेगी,

माम्बलम् पर तेरी कृपा है गुरुवर भारी।
चरणों में बलिहारी है, जनता यह सारी।
दीक्षा दिवस पर, गुण गा रहे है और गाते रहेंगे...।

लय : सौ साल पहले हमें तुमसे...

❑ श्री भीकमचन्द गादिया, टी. नगर, मद्रास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान प्रकाश फैलायो संघ में

अमृत जैसी वाणी जिनकी सुमन मुनि है नाम।
ज्ञान की ज्योत जलाये जग में जैन धरम की शान।।

पांचूं गाँव में जन्म लियो गुरु, माँ वीरादें का लाल।
पिता गोदारा भींवजी, चौधरी वंश दिपाल।।
बालपणा में सीख लीनो सब जैन धर्म रो ज्ञान।
गुरु शुक्ल के संग में रहकर लीनो संयम धार
ज्ञान की ज्योत जलाये...

दूर-दूर से गाँव-गाँव से, आवे लोक अनेक।
दर्शन करके वाणी सुनके, जन-जन-मन हर्षाये।
ज्ञान-ध्यान से भरा खजाना खुले हाथ लुटाये।
महेन्द्र मुनि का लाडला श्रमण संघ सहकार
ज्ञान की ज्योत जलाये...

चेन्नई में कियो चौमासे संघ में हर्ष अपार।
धर्मध्यान को ठाठ लगायो, तपस्या रो नहीं पार।
गुरुवर रो व्याख्यान सुणन ने आवे भीड़ अपार
ज्ञान-प्रकाश फैलायो संघ में श्रमण संघ सलाहकार।
ज्ञान की ज्योत जलाये...

मेटुपालयम् संघ भक्ति भाव सूं अरजी लायो आज।
शेखेकाल पधारो गुरुवर पगल्यां री अरदास।।
"युवक मंडल" गाय रह्यो है माम्बलम में आज।
स्वीकारो गुरुवर श्रावक संघ का वन्दन बारम्बार
ज्ञान की ज्योत जलाये...

लय : चांदी जैसा रंग है तेरा....

❑ **श्री निहालचन्द बांठिया**
मेटुपालियम्

जय महावीर

शुभ दिन आज है

मेरे मनवा में तुम्हारा एक नाम है,
नित शीष झुकाऊँ तूं ही तारण है।

छवि तेरी प्यारी सुमन तेरा नाम है।
गुण नित गाऊँ, मेरा बेड़ा पार है।।
मेरे मनवा में....

भींवराज पिता तेरे, वीरांदे मात है।
बीकानेर जिला में, पांचूं तेरा गाँव है।।
मेरे मनवा में....

दीनबंधु स्वामी, शुक्ल गुरु नाम है।
झूठी दुनियाँ छोड़ी, पाया संयम-दान है।।
मेरे मनवा में....

सूरत प्यारी-प्यारी, गजब तेरा ज्ञान है।
दीक्षा-दिवस का, शुभ दिन आज है।।
मेरे मनवा में....

चेन्नई में तूंने चौमासा ठाया।
माम्बलम् में, धरम का ठाठ है।।
मेरे मनवा में....

एस.एस. स्थानक में, जयन्ति मनाये।
नर-नारी हरखे, हरखा समाज है।
मेरे मनवा में....

पचासवां आज ये संयम दिन आया।
भक्त सभी तेरे गाते गुणगान है।।
मेरे मनवा में....

लय : मेरे अंगने में तुम्हारा क्या काम है....

❑ **श्री सुरेश खिंवसरा**
टी. नगर, मद्रास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि जीवन की शान

चरण कमल में करूँ वन्दना, गाऊँ तव गुणगान।
सुमन मुनिजी, मुनि जीवन की शान।।
तन पर कान्ति मन में शान्ति वाणी में भगवान।
सुमन मुनिजी, मुनि जीवन की शान।।

भारतभूमि ऋषि-मुनियों की खान है।
धर्मवीर इस धरती की पहचान है।
इसीलिये तो वसुन्धरा यह कहलाती है महान्।
सुमन मुनिजी...

रत्नकुक्षि धारणी हुई हैं माताएं।
मरुदेवी-त्रिशला की गौरव-गाथाएं।।
वीरांदे के गिरधारी भये छह काया प्रतिपाल।
सुमन मुनिजी...

धन्य भींवजी तात के घर तुम प्रगटाये।
शान्तमूर्ति महेन्द्रमुनि से गुरुवर पाये।।
संयम ले अपनी आत्मा का करने चले उद्धार।
सुमन मुनिजी...

तन पर संयम, संयम मन पर यूं धारा।
वाणी पर अद्भुत संयम लगता प्यारा।।
कथनी-करनी एक हो जिसकी, है इनकी पहचान।
सुमन मुनिजी...

आगम ज्ञाता, धर्म-प्रचारक व्याख्यानी।
सरस भाव से फरमाते, प्रभुजी की वाणी।।
जीवन सादा, उच्च विचारक, ज्ञान-ध्यान प्रधान।
सुमन मुनिजी...

दीर्घ तपस्वी जीवन का शत्-शत् वन्दन।
हार्दिक मन से करते संयम का अभिनन्दन।।
'सलाहकार' तेरे संयम पर संघ करता अभिमान।
सुमन मुनिजी...

वीरप्रभु की श्रमण संघ पर मेहर रहे।
जिनशासन में सुमन सरीखी महक बहे।।
मुक्ति पथ के राही तेरा हो पूरा अरमान।
सुमन मुनिजी...

गौरव-गाथा जैन-जगत् तेरी गाएगा।
दीक्षा-तिथि तव को बार-बार मनाएगा।।
भक्ति-सुमन अर्पित करता 'सम्पत' का ये गान।
सुमन मुनिजी...

लय : बार-बार तोहे क्या समझाऊँ..

❑ **श्री सम्पत लोढ़ा**
मेटुपालियम्

श्रमणसंघ की शान

आपश्री श्रमण संघ की शान हैं।
पंजाब प्रांत के संतश्री महान हैं।

भींवराज के कुंवर, चौधरी कुल भूषण।
हे वीरांदे नन्दन, करते हैं तव अभिनंदन।।

स्वीकारो हमारी भक्ति, संग शत-शत वन्दन।
तप-त्याग से बन जाए मम जीवन कुंदन।।

दशों दिशा में फैले तव यश-कीर्ति।
होवे समस्त तव मन की आशापूर्ति।।

युग-युग जियो श्रमण संघ के भाल।
दर्शन कर हम तो हो गए निहाल।।

हम सभी की यही, है मंगल कामना।
सुदीर्घ जीवन की करते सभी प्रार्थना।।

❑ **श्रीमति शकुंतला मेहता,**
वरिष्ठ स्वाध्यायी, बैंगलोर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरागी का - विरागाभिनन्दन!

हे श्रमण संघ सलाहकार मुने!
मंत्रीवर सुमनकुमार मुने!!
शत-शत हैं वन्दन!
संग-संग अभिनन्दन!!

माँ वीरादे के मंझले लाल,
भींवराज चौधरी के कुल भान!
बीकानेर परगना ग्राम है पांचू,
संवत् १९९२ की आई वसन्त पाचूं।।

शुभ योग में तुमने जन्म लिया,
माता-पिता ने 'गिरधर' नाम दिया।
आया जीवन में प्रबल अशुभ योग,
बालवय में हुआ मात-पितु वियोग।।

सद्पुण्यों से हुआ पुनः परिवर्तन
मिली ममतामयी जब सती रूक्मण!
वयोवृद्धा ने जाना तव सुलक्षण,
विद्यालय में दिलवाया सुशिक्षण।।

अध्ययन करते-करते नवयौवन पाया
जीवन को क्षणभंगुर लख विराग आया।
मिल गए मुनि महेन्द्र गुरु शुक्लचन्द्र
चमके जिनशासन में ज्यों सूरज-चन्द्र।।

परिपक्व ज्ञान साढ़ौरा में दिया संयम भार,
गिरधर से बन गए मुनि सुमनकुमार।
गुरु सेवा में रह आगम अभ्यास किया
कई भाषाओं और इतिहास का ज्ञान लिया।।

बाह्याभ्यंतर व्यक्तित्व युत उदारमना,
स्पष्टवक्ता, करुणा का बहता झरना।

उत्तर से जब बढ़े दक्षिण की ओर
कितना लंबा सफर, कहां है इसका छोर ?

संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी-अंग्रेजी का गुरुवर को ज्ञान,
फिर भी मन में देखो, तनिक नहीं अभिमान।
वीर-वाणी का कर रहे ग्राम-नगर प्रचार,
निर्भिक वक्ता हैं नहीं किसी का भय लिगार।

माम्बलम में आपका चातुर्मास सुखकारी,
सुमंतभद्र-प्रवीण मुनि, दो शिष्य साताकारी।
संयमार्ध शतक पर 'पारस' का विधिवत् वंदन,
दीक्षा स्वर्ण जयंति पर, गुरुदेव आपका अभिनंदन।।

❑ जे. पारसमल गादिया 'स्वदर्शी'
माम्बलम् - चेन्नई - ३३.

सुमणत्थुई

जस्स सव्वथ्य भावाईणि समएण सह सया रमइ।
तस्स जिणसासणवड्ढावगस्स धम्मप्पहावगस्स सुमणस्स णमो।।१।।

सद्धा भाव संवड्ढवो नाणप्पहावओ समणसंघस्स चरण चरावओ।
संजम सीलगुणप्पहावगो सावगाण सो महामुणी सुमणो जयउ।।२।।

भावार्थ – जिसका आत्मभाव धर्म में सदा रमण करता रहता है उस जिनशासन की संवर्धना करनेवाले, धर्म प्रभावना करनेवाले सुमन मुनि को नमस्कार है।।१।।

श्रद्धा भाव तथा ज्ञान भाव की प्रभावना करने वाले, साध्वोचित आचरण की स्थापना को उन्नत करते हुए, श्रावकों में संयम, शीलादि गुणों की प्रभावना करने वाले महामुनि सुमन कुमार जी महाराज की जय हो।।२।।

❑ **डॉ. एन. सुरेशकुमार M.A. Ph.d.**
भगवान महावीर प्राकृत भाषा विद्यापीठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाखों लाख बधाई

१. दीक्षा-स्वर्ण जयंती जिनकी
धूमधाम से आई है।
'मंत्री सुमन मुनीश्वरजी को
लाखों-लाख बधाई है।।

२. उन्नीसौ बाणवे विक्रम
जन्म आपने पाया था।
राजस्थानी 'पांचू गांव' वह
फूला नहीं समाया था।।

३. दीक्षा-दिवस वसन्त पंचमी
प्यारा परम हमारा है।
वही वसंत पंचमी शुभ दिन
जन्म आपका प्यारा है।।

४. पिता 'चौधरी भींवराजजी'
'वीरांदेजी' मां प्यारी।
ऊंचे ग्रह गुण युक्त पुत्र पा
हर्ष मनाया था भारी।।

५. गौरवर्ण का चंदा जैसा
लगा सभी को प्यारा बाल।
वंश 'गोदारा' जाति 'जाट' शुभ
नाम दिया 'गिरधारीलाल'।।

६. छोटा और बड़ा यों इनके
दो ही भाई प्यारे थे।
बचपन में ही मात-पिताजी
सहसा स्वर्ग सिधारे थे।।

७. चोट लगी कुछ मन पर ऐसी
जिससे जाग गया वैराग।
दीक्षा ली 'साढौरा' जाकर
तृणवत् दिये जगत्-सुख त्याग

८. आश्विन शुक्ला तेरस विक्रम
दो हजार था सम्वत् सात।
दीक्षा-पाठ पढ़ानेवाले
'हर्षमुनीश्वर' थे विख्यात।।

९. कविवर, वक्ता भी थे भारी
आगम मर्मज्ञ अरु विज्ञ
कोई पंजाबी होगा
उस महामना से अनभिज्ञ।।

१०. प्रवर 'प्रवर्तक शुक्लचंद्र' के
शिष्यरत्न जो न्यारे थे।
'पंडितरत्न महेन्द्र मुनीश्वर'
गुरूवर इनके प्यारे थे।।

११. विद्याध्ययन किया फिर डटकर
मति अति निर्मल पाई थी।
हिंदी, प्राकृत, संस्कृत, इंग्लिश
गुजराती झट आई थी।।

१२. क्या बतलायें कितना अच्छा
जैनागम-अध्ययन किया।
दूर-दूर तक भारी रोशन
धर्म जगत में जैन िया।।

१३. वक्ता, लेखक व सम्पादक
हैं अनुवादक आप बड़े।
महिमा गाते नहीं अघाते
लोग हजारों लिखे-पढ़ें।।

१४. मंत्री और सलाहकार हैं
'श्रमणसंघ' के नामी सन्त।
गहरे है 'इतिहास केसरी'
जपी, तपी, ज्ञानी, गुणवन्त।।

१५. खुद चमकें और जैनधर्म को
दुनियाँ में चमकायें जी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'चन्दन मुनि' पंजाबी ऐसी
भव्य भावना भाये जी।।

१६. 'महामुनीश्वर रूप चन्द जी'
स्वर्गों से देते आशीष।
अच्छे, सच्चे, गण्य मान्य मुनि
बन दिखलाना विश्वाबीस।।

❑ कविरत्न चन्दनमुनि (पंजाबी)

श्रद्धा पुष्प

१. नोखा मण्ड़ी कोले पिंड पाँचूं,
धरती जेहड़ी सोहने राजस्थान दीए।
शूरवीरां महान योध्यां दी,
भामाशाह वरगे दानी इंसान दीए।
देश लई जानां वारियांसी महाराणा प्रताप,
अमर सिंह राठौड़ महान दीए।
लक्ख सिफ्तां एस वीरभूमि दीआं,
लौंकाशाह जैसे संत बलिदान दीए।
राजस्थान दी ऐसी ही धरती उत्ते,
गिरधारी लाल आए जामा धर्म पहने।
धन-धन मुनि सुमनकुमार जी, ओ तेरे क्या कहने।।

२. माता वीरांदे, पिता भींवराज चौधरी दे
घर जन्म सुहाना पाया जो।
बेटे रूप विच पाके तैनूं,
भाग अपने नूं ओन्हां सलाहिया जो।
माघ शुक्ला पंचम सं.१९९२,
दिन वसंत दा शुभ आया जो।
वंडियां गरीबां ताईं खैरातां,
मां पिआं वल्लों सर पाया जो।
मिली वधाई गीत खुशीदे गाए,
रल पिंडदीयां धीआं भैणे जो धन-धन........।

३. छोटी उमरें पई जुदाई,
माता पिता कर गए चढ़ाईयां।
गुरुवर्या वृद्ध रुकमांजी दिआं,
मिलियां आन के धाईयां।
सेठिया जैन हाई स्कूल विच,
शुरु कित्तियां फेर पढ़ाईयां।
तेरहां सालदी उमरे पंजाब आए,
किस्मत ने दित्तिआं आन वधाइयां।
सम्वत २००७ सोमवार शुभ दिहाड़े,
केसरिए बाने पहिने। धन धन......

४. ज्ञान ध्यान सिखदे,
सेवा गुरु दी करदे मन चित्त लाके।
संयम रस नूं खूब ही पीत्ता,
मोह ममता परे हटाके।
मान सम्मान दी भुक्ख ने कोई,
रहंदे समता मई धूनि रमाके।
आगमां दे प्रकाण्ड़ विद्वान आलावक्ता पशखटिया
सम्मेलन जाके।
श्रमणसंघ दे कई पद मिले जो रखदे हन कुछ मायने।
धन धन मुनि सुमनकुमार......

५. प्रधानाचार्य पूज्य सोहनलालजी,
जैन समाज विच मन्ने जाँदे ने।
भारत केसरी महान आचार्य,
पूज्य कांशीरामजी कहाँदे ने।
पं.र. पंजाब प्रवर्तक युवाचार्य
शुक्लचन्द जी प्यारे शिष्य कहान्दे ने
पं. महेन्द्र कुमार जी शिष्य उन्हाँदे,
शहर मालेरकोटले अंतसमाधि पांदे ने
इतिहास केसरी, मंत्री, सलाहकार शिष्य उन्हांदे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणसंघ दे अमूल्ले गहिने।।
धन धन मुनि सुमन कुमारजी, ओ तेरे क्या कहने।।

६. दीक्षास्वर्ण जयंति, अज्ज ओन्हांदी,
नवियां खुशियां लैके आई होई है।
वन्दन है, अभिनंदन है,
लक्ख मुबारिकां देन लोकी आई है।
ग्रन्थ छापने दी जैन श्रावकसंघ, मद्रास दे मन
समाई होई है।
उमर दराज होवे मेरे गुरु जी दी दीक्षा जिन्हातौं
'मेजर' ने पाई होई है।
मुनि सुमन्तभद्र, मेजर प्रवीण, लाभचंद,
गुरुवृक्ष दे सब्ब टहने।
धन - धन.......

❑ गुण भद्रमुनि (मेजर मुनि)
(गुरुदेव श्री जी के द्वितीय शिष्य)

मंजुल व्यक्तित्व विशाल

गंगा की निर्मल धारा सम पावन आपका जीवन,
मानवता की दिव्य विभूति आपको शत-शत नमन।।
मन में आप के सदा लहराता प्रेम-दया का सागर,
बना हुआ है जीवन आपका शांति-सुधारस-गागर।।
जलता है तव मन में सदा करुणा का दीपक हर पल,
व्यवहारों में हँसता है चारित्र चाँद सुनिर्मल।।
हृदय आप का शम-दम पूरित, मधुर गिरा रस धार है
सुंदर शिक्षा स्नेह संगठन की देते जो हर बार हैं।।
दूध मिश्री-सा मेल करने में कुशल कलाकार हैं,
श्रमणसंघ के हित साधक तेरा अमल आचार है।।
साधारण से संत असाधारण तुम बने महान्,
बने बिंदु से सिंधु, बीज से शतशाखी फलवान।।
ज्योतिर्मय हो बनो विजयी वरो विजय वरमाल,
श्री सुमनकुमार मुनिवर का मंजुल है व्यक्तित्व विशाल।।
अभिनंदन है संत! धरा पर जिओ तुम चिरकाल,
स्वीकारो मम चरण वन्दना श्रद्धा भक्ति युक्त त्रिकाल।।

❑ प्रवर्तिनी साध्वी प्रमोदसुधा

ऐसा वरदान दे दो गुरुवर!

चरणों में करती शत-शत नमन इसे स्वीकार करलो गुरुवर!
गुरुचरणों में अर्पण है मन इसे स्वीकार करलो गुरुवर!!
हो स्वर्ण-दीक्षा-दिन, आज आया शुभम्
मुबारक हो तुमको गुरुवर.....

१. मैंने सुना है कि मुश्किल बड़ा है
गुरु-गुण की महिमा को गाना।
देखा है तुमको जिसने अभी तक
भगवान उसने है माना।
सही जो आ गया, राह वह पा गया
नहीं भूला है फिर वह डगर.....

२. भोले भण्डारी, क्षमा के पुजारी
गुरूवर सुमन हैं हमारे।
गुण गाएं सारे, गुरुवर तुम्हारे
हो श्रमण संघ के सितारे।
ज्ञान-अमृत दिया, जग को रोशन किया
कैसा सुन्दर है तेरा ये दर.....

३. इस मन के मंदिर में मेरे गुरुवर
सूरत बसी है तुम्हारी।
इक बार दर्शन दे दो हमें भी
आशा यही बस हमारी।
राह पे तेरी ही, रहे चलते कदम
ऐसा वरदान दे दो गुरुवर....

तर्जः- अजनबी मुझ को इतना बता.....

❑ साध्वी रिद्धिमा
(उपप्रवर्तिनी साध्वी श्री पवनकुमारी जी म. की प्रशिष्या)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्ति के सुमन अर्पण करू मैं....

आओ वन्दन करें उन गुरु चरणों में,
जिनका जीवन बहुत ही प्रभावी रहा।
जिनका जीवन तो गंगा सा निर्मल है,
जिनका जीवन तो वहता हुआ पानी रहा।।

१. ज्ञान-सौरभ फैलाई है संसार में,
नाम रोशन किया तुमने संसार में।
जानकर जग की नश्वरता को गुरूवर,
छोड़ा सब कुछ उठे ऊँचे संसार में।
पंक में भी पद्‌म जैसा जीवन रहा.....

२. जिस तरफ़ बढ़ गए गुरुवर तेरे चरण,
धूल चन्दन बनी छू के तेरे चरण
पापी भी तिरते दर्शन से गुरुवर तेरे,
पूजते आज जन-जन हैं तेरे चरण,
चेहरे का तेज तेरा नूरानी रहा......

३. श्रद्धा की ज्योत लेकर के आई हूँ मैं,
भक्ति के सुमन अर्पण करूँ मैं तुझे
मूर्ख हूं और अज्ञानी भी हूं मगर,
अब तो कर्मों से मुक्त करो तुम मुझे
मेरा जीवन तुम्हारी अमानत रहा.....

तर्ज:- कर चले हम फिदा जान......

❑ **साध्वी हिमानी**
(उप.प्र. साध्वी श्री पवन कुमारी जी म. की शिष्या)

हार्दिक वन्दन - अभिनन्दन

पूज्य गुरुदेव श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री मुनि श्री सुमन कुमार जी महाराज की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती पर मेरे तथा मेरे परिवार की ओर से हार्दिक वन्दन - अभिनन्दन!

❑ **विमल कुमार कोटेचा**
मैसूर (कर्नाटक)

गुरुवर सुमन मुनि जी ओ थांने वन्दना
मांणी मानो थे हाथा जोड़ गुरूवर सुमन मुनि जी ओ...
गुरुवर चौमासे पधारया चेन्नई शहर में,
आतो लागी ओ तपस्या री होड़...गुरुवर सुमन...
गुरुवर थाणा दर्शन सुं सुख निपजे,
आतो कुमति बसे ओ अति दूर...गुरुवर सुमन...
गुरुवर धन्य पिता और थांणी मातने,
ओ तो धन्य रे मरुधर देश...गुरुवर सुमन...
गुरुवर वाणी सुनाई ओ प्रभु वीर री,
आ तो जागी ओ धर्म री ज्योत ... गुरुवर समुन...
गुरुवर थाणी वाणी सू तप होरयो
ओ तो तेला ने अठायां रो जोर...गुरुवर सुमन...
गुरुवर ११-१६ निरा हो रया,
अब तो मासखमण रा लागा ठाठ-गुरुवर सुमन...
गुरुवर “बम्ब देव” गुण थारां गा रयो,
थे तो दिजो चरण में इन्हें ठोर...गुरुवर सुमन...
लय : मोर्या आछो बोल्यो रे ढ़लती रात

❑ **देवराज बम्ब**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वाद

सुमन मुने ! तुम जगत में, चमको सूर्य-समान।
यही कामना कर रहा, तन मन से मुनि ज्ञान।।

सुमन-मुने ! तुम सुमन हो, सदा महकते आप,
जो भी आया शरण में, दूर किया सन्ताप।।

तप-संयम की साधना, सचमुच है अभिराम।
मन वाणी में मधुरता, जीवन है निष्काम।।

श्रमण संघ को नाज है, करते सब सम्मान।
पदवी धर सब संघ के, करते हैं गुणगान।।

मान बढ़ा पंजाब का, करते हैं सब याद।
यशमय जीवन चल रहा, होता है आह्लाद।।

दीक्षा के हैं हो गए, पावन वर्ष पंचास।
दुविधाओं से ना डरे, दृढ़तम है विश्वास।।

गुरुसेवा भी खूब की, नहीं जरा अभिमान।
छोटे से भी सन्त का, करते हैं सम्मान।।

आजाओ पंजाब में, तन मन रहा पुकार।
देर बहुत है हो गई, कुछ तो करो विचार।।

क्यों रूठे पंजाब से, रोष जोश दो छोड़।
सांझ खून का – दूध का, इसे दिया क्यों तोड़।।

दीक्षा हो शत वर्ष की, जीवन उच्च महान।
यश गाए जन-जन सदा, कहता है मुनि ज्ञान।।

❑ **ज्ञानमुनि, श्रमणसंघीय सलाहकार**
गोविन्दगढ़ (पंजाब)

✤ ✤ ✤

बधाई

ले लो बधाई गुरुदेव ! हम दे रहे हार्दिक भाव से।
आज की सुनहरी घड़ी, हम मना रहे हैं चाव से।।

संयम मेरु चढ़ते चढ़ते, बहुत ऊँचे चढ़ गए हो।
दो चार-दस-बीस नहीं, पचासवें वर्ष पर चढ़ गए हो।।

पावन स्वर्णिम शुभ बेला पर, हम लाख लाख बधाई देते हैं।
हो लम्बी आयु पर्वत जैसी, शासनेश से आप की चाहते हैं।।

मुनि सुमन स्वर्ण दीक्षा जयन्ति, जिस का नूर अनूठा है।
जिस के आगे इस दुनिया का हर पदार्थ झूठा है।।

प्यारे प्यारे भव्य-क्षणों का, हम अभिनन्दन करते हैं।
करबद्ध-सविनय सादर कोटि कोटि अभिनन्दन करते हैं।।

शुभ घड़ी शुभ दिन और शुभ ही आज की प्रभात है।
शुभ इस अवसर पर सब नरनारी फूले नहीं समाते हैं।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमन कहो, फूल कहो, पुष्प कहो, पदम कहो, कमल कहो अथवा पंकज कहो।
अरविंद कहो, सरसिज कहो, सरोज-प्रसन बेशक अम्बुज कहो।
मन चाहे तो कह दो अब्ज बंधुओं! एक ही बात है।
मुनि सुमन स्वर्ण दीक्षा जयंति कर रही सब को मात है।

❀ ❀ ❀

मुनि स्वर्ण दीक्षा जयंति के शुभ समाचार मिले, मन आनन्द सागर में डुबकियां लगाने लगा। रोम रोम प्रफुल्लित हो गया। दिल की कलियां खिल उठी। हृदय-कोष खुशी से भर गया। बधाई-बधाई के स्वरों से हृदय तन्त्री झनझना उठी। अन्ततः मन में यकायक ये ही भाव आये, हमारे से कोसों दूर हैं। न समक्ष वर्धापनोपहार भेंट कर सकते हैं न प्रत्यक्ष दर्शन ही पा सकते हैं और न ही यह मंगलमयी दिव्योत्सव अपने चर्मचक्षुओं से निहार सकते हैं। यह पुण्य-अवसर पुण्यवानों को ही उपलब्ध हो सकते हैं।

हे मुनि पुंगव ! आप का धर्मोद्योत से उद्योतित निर्मल चेहरा, भव्या-तीखी नाक, इकेहरी काया, मधुर-मंजुल गिरा, तीव्रगति, उपपातिया बुद्धि, सैनिकों जैसा उत्साह सदैव नयनों के समक्ष चित्रवत् घूमता रहता है। आप की मधुर रसीली आवाज कर्ण विवरों में गूँजती है।

हे सद्गुरो महर्षे ! सुमनवन खिले रहना आप श्री का काम है। पुष्पवत् समस्त वातावरण को अपनी गुण सुरभि से सुरभित कर देना आप का स्वभाव है। आप श्री पदमवत् निर्लेप हैं। सरसिज कमलवत् आप श्री अलग अलग और अनासक्त तथा निष्परिग्रही हैं। कष्टों और उपसर्गों के आने पर भी पंकजवत् झूमते रहना आपका धर्म है। आप श्री संघ सरोवर के सरोज और प्रसून हैं जो कि संघ की शोभा को चार चान्द लगा रहे हो। आप श्री जन-जन के हृदयों के सिंगार हो ! सरसिज नयनाभिराम हो !

हे स्पष्टवादी महर्षे ! आप का आत्म-पट स्पष्ट है। स्पष्टवादिता आपका प्रथम गुण है। प्रभो ! आप का हृदय शीशेवत् निर्मल और साफ है। भगवान महावीर का उद्घोष – **धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ** – धर्म शुद्ध हृदय में ही ठहरता है – के अनुसार वास्तव में ही आपका हृदय धर्म रंग से रंजित है। आप का हृदय धर्मालय है। धर्मकक्ष है। धर्म स्थान और जिन मन्दिर है।

हे विद्यावागीश ! आप इस विश्व में इतिहास केसरी के नाम से भी प्रख्यात हैं भगवान महावीर से लेकर आज तक की परम्परा के प्रति आप सर्व ज्ञाता हैं। कोई वार्ता आप से छुपी नहीं। आप जैन साहित्य दिग्दर्शन के द्रष्टा हैं। निर्मल चारित्राधिकारी हो। इन निर्मल-स्वच्छ-श्वेत वस्त्रों में आप बेदाग-उज्ज्वल व्यक्तित्त्व के धनी हो। आप श्री आचार्य प्रवर पूज्य श्री काशीराम जी म.सा. के प्रपौत्र और पंजाब प्रवर्तक श्रद्धेय पंडित श्री शुक्लचन्द्र जी म.सा. के पौत्र तथा श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय-सरलात्मा-भद्रात्मा-हंसमुख चेहरा श्री महेन्द्रमुनि जी म.सा. के सुशिष्यरत्न हो आप ! आप प्रवचनकार तथा सलाहकार-परामर्शदाता हो।

हे गुणगणालंकृत गुरुदेव ! आप गुणों के धाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। गुणों से भरपूर हैं। आपका मुंहबोलता व्यक्तित्त्व किसी से छुपा हुआ नहीं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो आप को न जानता हो। जैसे हज़ारों हज़ार पत्तों में छुपा गुलाब अपनी सुरभि के द्वारा प्रकट हो ही जाता है छुपा नहीं रहता ठीक इसी प्रकार आप कहीं भी रहें सन्तमण्डली में आप शीघ्र ही मुनि सत्ता पर उभर ही आते हैं। उंगलियों पर गिनी जाने वाली मुनि मण्डली में आप का नाम प्रथम नम्बर पर आता है। शत-शत वन्दन सह बधाई !

❑ **साध्वी उमेश (शिमला) शास्त्री**
आदर्श नगर, जालंधर, (पंजाब)

मुने ! आन्तरिक आशीर्वाद !

परम स्नेही पं. र. श्रमण संघीय सलाहकार- मंत्री, उप-प्रवर्त्तक मुनि श्री सुमनकुमार जी म. की दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति मनाई जा रही है मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। मैं अपने स्नेही साथी मुनि श्री जी के लिए हार्दिक शुभ कामना और आन्तरिक आशीर्वाद प्रेषित कर रहा हूँ। मुनि जी के सुदीर्घ स्वस्थ संयमी जीवन की मंगल कामना करता हूँ। समाज इनके प्रतिभापूर्ण मार्गदर्शन में अनेक जन-सेवा, समाज-सेवा का कार्य करता रहे।

❑ **उपप्रवर्तक मुनि रामकुमार**
नालागढ़, (हि.प्र.)

भाव भरा अभिनन्दन

मुझे फ़ख्र है तुम पर, कौम को है नाज़ हस्ति पर।
कहो लाखों में कह दूं, सबके सच्चे रहनुमा हो तुम।।

गुरुदेव ! आप श्री अद्वितीय दिव्य विभूति / वात्सल्य की प्रतिमूर्ति / साधना की निर्मल ज्योति / तेजस्वी आभायुत मुखमण्डल / वार्तालाप में सरस शालीनता / संयमी जीवन का विवेक बिम्बित क्रियाशीलता, जागृत मानस की उदारता परिलक्षित होती है।

प्राचीन सन्त परम्परा के गौरव ! वर्तमान के नव निर्माता ! भविष्य के द्रष्टा ! आप श्री का ज्योतिर्मय संयम-साधना के ५०वें पुण्य शरद/दीक्षा स्वर्ण जयन्ति में मंगलमय प्रवेश हो रहा है। हृदय से वर्धापन ! भावपूर्ण अभिनन्दन! स्वीकारिएगा।

श्रमण संस्कृति के उन्नायक ! मेरे अन्तर्भावों की वन्दनाञ्जलि रूप बधाई स्वीकार करो - दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति महोत्सव की मधु वेला पर।

"फूल की हर कलि खुशबू दे तुम्हें।
सूरज की हर किरण रोशनी दे तुम्हें।
हम तो कुछ भी नहीं दे सकते तुम्हें गुरुवर।
देने वाला हमारी उमर भी दे तुम्हें।।"

❑ **साध्वी प्रमिला**
नालागढ़, (हि.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हार्दिक अभिवन्दन

संत समुदाय किसी एक राष्ट्र, एक प्रान्त या एक जाति की सम्पत्ति नहीं। अपितु वह विश्व की अमूल्य सम्पदा होता है। भारत विविध संस्कृतियों की निर्माण भूमि है। जिसमें जैन दर्शन भी आध्यात्मिक जगत में अपनी विशेष गरिमा का प्रतीक है और इस भौतिक युग में जैनत्व की सौरभ महका रहे हैं हमारे धर्मगुरु सन्त मुनिराज।

जैन जगत के यशस्वी संत प्रवर्तक पंडित रत्न श्री शुक्लचन्द्र जी म.सा. के शिष्य रत्न शान्त मुद्रा पंडित रत्न मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी म.सा. के सुशिष्य पंडित प्रवर श्रमणसंघीय मंत्री श्री सुमनकुमार जी म.सा. 'श्रमण' की दीक्षा स्वर्णजयन्ति के उपलक्ष में प्रकाशित अभिनन्दन ग्रंथ के लिए हार्दिक शुभकामनाएं प्रकट करते हुए आदरणीय महाराज साहब के स्वस्थ एवं दीर्घायु की मनोकामना व्यक्त करता हूं।

वास्तव में ऐसे महान व्यक्तित्व और साधुत्व के बहुमान और अभिनन्दन के निमित्त से हम स्वयं उनके आदर्श जीवन और सिद्धान्तों से परिचित एवं लाभान्वित होते हैं। हमें सत्य का साक्षात्कार और सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

परम आराध्य गुरुदेव के १९९३ में मद्रास के उपनगर माम्बलम-टी.नगर के चातुर्मास में भी एस.एस.जैन संघ, माम्बलम के मंत्री पद पर रहकर आपकी सेवा करने का सुअवसर मुझे मिला।

आप का जीवन स्वंय एक दर्शन है जो अपने करीब आने वालों को चेतना का एक दृष्टिकोण प्रदान करता है। मैंने उनका सान्निध्य पाया, उनमें देखा है एक अलौकिक तेजोमय व्यक्तित्व जो उनके भीतर छिपे विराट स्वरूप का प्रतिबिम्ब है, उनके भीतर पैदा हुआ यह विराट स्वरूप रूपान्तरण की प्रक्रिया है, इस विशाल, उत्क्रान्त चेतनामय जीवन का यह वैशिष्ट्य है – उनमें साधुत्व के दर्शन हुए हैं, प्रदर्शन के नहीं।

साधुता के इस दर्शन की जीती जागती साधना को असीम आस्था के साथ आत्म वन्दन/अनन्तवन्दन !

जैन स्थानक
दि. २२-१०-९६
४६, बर्किट रोड, टी. नगर

भीकमचन्द गादिया
चातुर्मास समिति अध्यक्ष
श्री एस.एस.जैन संघ माम्बलम
चेन्नै ६०००१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बधाई, वन्दन : पत्रों के माध्यम से

श्री सुमनमुनि दीक्षा स्वर्ण जयन्ती अभिनन्दन समारोह का निमंत्रण पत्र मिला। अति प्रसन्नता हुई। सन्त-महात्मा समाज को धर्ममार्ग दिखाते हैं जो सदैव कल्याणकारी होता है। अतः उनका अभिनन्दन करके कोई भी समाज अपने पुनीत कर्तव्य का पालन करता है। आप सभी ऐसा ही कर रहे हैं। इसके लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

❑ **डॉ. बी.एन. सिन्हा**
व्याख्याता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ,
आई.टी.आई. रोड,
करौंदी, वाराणसी-५

अभिनंदन

"दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति" कितना मनमोहक, सुन्दर, आकर्षक, चित्ताकर्षक शब्द है। जिसके पढ़ते ही हृदय वीणा के तार झंकृत/पुलकित हो उठे, मन की उपवन भूमि पर मानो आनन्द के अंकुर अंकुरित हो गए, प्रसन्नता के सितारे जगमगाने लग गए, चेहरे पर खुशी के पुष्प पुलकित होने लगे इत्यादि अनेकविध खुशियों के अद्भुत प्रभाव उत्पन्न होने लगे जब यह जानकारी प्राप्त हुई कि जैन सांस्कृतिक गगन के देदीप्यमान नक्षत्र, विनय-विवेक, विद्या की त्रिवेणी के सुस्नात पवित्र जीवन के धनी, प्रतिभा, स्मृति और अनुभूति तीनों के सुन्दर संगम के कर्णधार श्रमण संघीय सलाहकार मन्त्री, उप प्रवर्तक पुज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी महाराज की स्वर्ण दीक्षा जयन्ति २२-१०-९९ को श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ माम्बलम चेन्नई के तत्वावधान में बड़ी धूम-धाम से मनाई जा रही है। जिसके लिए सकल श्री संघ कोटिश-कोटिश बधाई के पात्र हैं।

गुणीजनों का गुणगान होना ही चाहिए। यही हमारी संस्कृति है। न केवल संस्कृति ही है अपितु अपने कर्मों को क्षय करने के लिए एक बहुत बड़ी ढाल है।

पुज्य गुरुवर, बौद्धिक विलक्षणता, अदम्य साहस, निश्चय में दृढ़ता, मधुर व निश्छल व्यवहार एवं प्रवचन शैली सरस, ओजस्वी, अनुपम आगम मर्यादित इत्यादि गुणों से सुसज्जित हैं। आपकी पावन वाणी में इतना जादुई आकर्षण है कि इसका अमृतपान करते ही मन अति प्रफुल्लित एवं आत्म-विभोर हो जाता है।

आपके इस मंगलमय दीक्षा स्वर्ण जयन्ति की पुनीत वेला में आपके महिमा मंडित व्यक्तित्व का शत-शत अभिनन्दन !

❑ **सतीश जैन**
चान्सलर निटवीयर,
लुधियाना (पंजाब)

'सधर्म पुंडरीक'—श्रमण - संस्कृति का आदर्श - प्रतीक

श्रमण-संघ के सलाहकार, मंत्री श्रमणवर्य श्री सुमन मुनि, श्रमण-संस्कृति के संदेशवाहक होने के साथ उन्होंने अपने पूज्य गुरुवर्यों के सान्निध्य में सुधर्म की शिक्षा-दीक्षा-संयम साधना के महायात्री बनकर ५० वर्ष पर्यन्त श्रमण-दीक्षा को निरतिचार पालन करके, अपने आपको **सद्धर्म-पुंडरीक** अर्थात् श्वेत कमल-श्वेत-शुक्ल और कमल सुमन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनकर, जनता-जनार्दन के 'योगक्षेम' साधते हुए समर्थ साहित्यकार, प्रवचन प्रबुद्ध प्रवचनकार एवं आध्यात्मिक सन्त के रूप में उन्होंने श्रमण-संघ की महिमा, गरिमा एवं प्रतिष्ठा को गौरवान्वित बनाया है। श्रमण-दीक्षा-स्वर्ण जयंति के पावन प्रसंग पर वहाँ पधारे हुए सभी सन्त-सतिवर्ग की, चतुर्विध श्री संघों के अभिवादन के साथ अभिवंदना करते हुए, अस्वस्थता के कारण इस समारोह में उपस्थित न रह सका – इसके लिए सभी की क्षमा चाहता हूँ। क्षमापना स्वीकार करें। क्षमाप्रार्थी –

❑ **शान्तिलाल व. शेठ**
जयनगर-बैंगलोर (कर्नाटक)

आप के वहाँ विराजमान् पं. प्रवर श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमन मुनिजी म. आदि ठा. ३ को मेरी वंदना अर्जकर सुखसाता पूछें। तथा यहाँ विराजित उपाध्यायजी श्री मूलमुनि जी म.सा. आदि मुनिराजों की ओर से यथा योग वंदन सुखशांति की पृच्छा मालूम होवे।

आप की तरफ का पत्र प्राप्त हुआ। सलाहकार मंत्री श्री सुमन मुनिजी म. की दीक्षा स्वर्ण जयंती मनाने का आयोजन किया है तो हमारी तरफ से बधाई है।

❑ **पूरण जैन**
श्री वर्द्ध. स्था. जैन श्रावक संघ ट्रस्ट, इन्दौर

बधाई

परम पूज्य परम श्रद्धेय, श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी म.सा. ठाणा-३

मुनिराजों के पावन चरणों में श्रद्धा पूर्वक नत-मस्तक होते हुए सर्वप्रथम, पू. गुरुदेव आप श्री जी के स्वास्थ्य की सुख-साता पूछती हूँ, आपश्री जी एवं सभी साधु मंडल सर्व प्रकार से आनन्द मंगल पूर्वक होंगे।

आशा है कि मेरा यह पत्र पहुँचने तक आप श्री जी "साधना का महायात्री प्रज्ञा महर्षि श्री सुमन मुनि" का लोकार्पण अत्यन्त सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ होगा। मेरी ओर से, परिवार की ओर से इस शुभ अवसर पर आप सभी को बहुत-बहुत बधाई एवं हार्दिक वन्दन स्वीकार हो।

❑ **विनय जैन**
राष्ट्रीय अध्यक्ष, महिला शाखा,
श्वे.स्था.जैन कॉन्फ्रेंस, दिल्ली

• • •

हार्दिक प्रसन्नता

पूज्य गुरुदेव मुनि श्री सुमनकुमार जी 'श्रमण' म.सा. का सर्व प्रथम परिचय दौड्डबालापुर कर्नाटक चातुर्मास में हुआ। तब से अब तक बराबर सान्निध्य बना हुआ है और यह भी ज्ञात हुआ कि हमारे श्रमणसंघ में ऐसी-ऐसी विद्वान् महान् हस्तियाँ मौजूद हैं। हम पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी के दर्शनार्थ जब कभी भी जाते हैं तो मन प्रसन्नता से भर जाता है। यह जान कर भी मन को प्रसन्नता हुई कि पूज्य गुरुदेव श्री जी का ५०वां दीक्षा स्वर्ण जयन्ति महोत्सव टी. नगर मद्रास में मनाया जा रहा है और इस शुभ अवसर पर उनके सम्मानार्थ अभिनन्दन कार्यक्रम हो रहा है। सभी सकलेचा परिवार की ओर से तथा समस्त मल्लेश्वरम श्री संघ की ओर से मंगल कामनाएँ!

❑ **भंवरलाल सकलेचा**
(पूर्व अध्यक्ष, अ.भा.श्वे.स्था. जैन कॉन्फ्रेंस शाखा)
अध्यक्ष, एस.एस. जैन संघ,
मल्लेश्वरम, बैंगलोर, (कर्नाटक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभकामना

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि श्रमणसंघीय मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी म.सा. का दीक्षा स्वर्ण जयंति का आयोजन हो रहा है। पूज्य गुरुदेव का सान्निध्य १९६० दौड्डबालापुर चातुर्मास में हुआ, जो आज तक बना हुआ है। गुरुदेव की स्पर्शना हमारे शूले (अशोक नगर) बाजार में भी हुई। गुरुदेव की प्रवचन शैली मधुर एवं आगम सम्मत है। आप श्री जी एक अनुभवी एवं चिन्तनशील सन्त रहे हैं। जब कभी भी संघ व समाज में कोई विपरीत स्थिति उत्पन्न होती है तो आप श्री जी संघ हित को ही महत्व देते हैं न कि किसी व्यक्ति विशेष को।

आप अपनी बात निडरता एवं पूर्ण विश्वास के साथ समाज के सामने रखते हैं जो कि सर्वमान्य होती है।

आप श्री जी के दीक्षा स्वर्ण दिवस के अवसर पर मेरे समस्त मरलेचा परिवार एवं शूले श्री संघ की हार्दिक शुभ कामना !

❑ **सिरेमल मरलेचा**
अध्यक्ष, श्री अ.भा.श्वे.स्था.जैन कांफ्रेंस,
कर्नाटक शाखा-बैंगलोर

गुणवंत वन्दन भाव

पूज्य गुरुदेव श्री मुनि सुमनमुनि जी म.सा.का ५०वां दीक्षा स्वपर्ण जयन्ति दिवस टी.नगर में मनाया जा रहा है। यह सुनकर मन को प्रसन्नता हुई। इस शुभ अवसर पर हार्दिक वन्दन एवं मंगल कामना प्रस्तुत करता हूँ।

❑ **सम्पतराज मरेलचा**
अशोकनगर (शूले) बैंगलोर

गुरुदेव पूज्य श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमन कुमार जी म.सा; का सर्व प्रथम सान्निध्य वानियमबाड़ी में हुआ। मैं श्रीसंघ सहित पूज्य गुरुदेव के दर्शनार्थ वानियमवाड़ी गया। दर्शन एवं प्रवचन से मन प्रभावित हुआ। पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में नेहरूबाजार मद्रास के चातुर्मास की विनति श्री संघ ने कई वर्षों तक की और हमारे क्षेत्र की स्पर्शना तो हुई लेकिन चातुर्मास का अवसर नहीं मिला, हम तो अपनी पुण्यायी की कमी ही समझते हैं। आप श्री जी की स्वर्ण दीक्षा जयन्ति के अवसर पर मेरे परिवार एवं संघ की ओर से हार्दिक बधाई।

❑ **सम्पतराज बोहरा**
अध्यक्ष, एस.एस. जैन संघ
नेहरू बाजार, चेन्नै

● ● ●

गुरुदेव पूज्य श्री सुमनमुनि जी का सान्निध्य वर्षों से रहा है। मैंने पूज्य गुरुदेव श्री जी के जीवन में जो सहजता, सरलता-निष्कपटता है का दिग्दर्शन अति निकटता से किया। महाराज श्री जी के बारे में जो भी लिखूं कम ही रहेगा। पूज्य सुमन मुनि जी म. के गुरु सरलात्मा पूज्य श्री महेन्द्रमुनि जी म. मालेरकोटला में आठ वर्ष तक स्थिरवास रहे। उनके श्री चरणों में रहकर मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला है। सन् १९८२ में उनके स्वर्गवास के पश्चात् हमारा क्षेत्र सूना-सूना रह गया है।

मैं पंजाब से लगभग प्रतिवर्ष ही पूज्य श्री सुमन मुनि जी के दर्शनार्थ जाता रहता हूँ। अब दो वर्ष से अस्वस्थ रहने के कारण नहीं जा पा रहा हूँ। इच्छा तो रहती है दर्शनों की कब होंगे भाग्य ही जाने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्ण दीक्षा जयन्ति के अवसर पर हार्दिक बधाई।

❑ **ज्ञानचन्द जैन**
मालेरकोटला (पंजाब)

मंगल कामना

श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनकुमार जी म. सा. एक प्रबुद्ध चिन्तनशील सन्त हैं। हैदराबाद चातुर्मास के पश्चात् १९९० में आप श्री का पदार्पण रायचूर में हुआ। होली चातुर्मास एवं महावीर जयंति का लाभ मिला। आप श्री जी के साथ उस समय युवाचार्य डॉ. श्री शिवमुनि जी म.सा. भी थे और उनकी नेश्राय में रह रहे वैरागी श्री अशोक कोठारी की दीक्षा का निर्णय भी आप श्री जी की सूझ बूझ का ही परिणाम था। उसी समय से हमारा श्री संघ आप श्री जी के चातुर्मास की प्रतीक्षा कर रहा है प्रतिवर्ष विनति के लिए आता रहा है और आज यही आशा लगाए बैठा है कभी तो आशा पूर्ण होगी ही। हमने देखा है पूज्य गुरुदेव हृदय से सरल हैं स्पष्ट वक्ता हैं। हमारा श्री संघ आप श्री जी की दीक्षा स्वर्ण जयंति पर मंगल कामना एवं वन्दन प्रस्तुत करता है।

❑ **बाबू लाल छाजेड़**
अध्यक्ष, एस.एस. जैन संघ, रायचूर (कर्नाटक)

● ● ●

इतिहास केसरी पूज्य श्री सुमनमुनिजी म. की दीक्षा स्वर्ण दीक्षा जयन्ति के अवसर पर सपरिवार हार्दिक शुभ कामना अर्पित करता हूँ।

❑ **जवाहरलाल आंचलिया**
रायचूर (कर्नाटक)

सुमन तरह-तरह के, पर खुशबू के कोई-कोई।।
इन्सान हम सभी हैं, पर समझू कोई-कोई।।
इन्सान का असल में, दिल हो सुमन सा कोमल।।
सन्तों में सुमन का दिल है - पर पारखू कोई कोई।।

देवीचन्द धारीवाल
जैन कवि – जालना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

इतिहास की
अमरबेल
के माध्यम से
ले आये हैं-
कतिपय
महापुरुषों
क्रियोद्धारकों की
जीवन-गाथाएं !

जिन्होंने किया-
ग्राम-ग्राम
नगर-नगर
घूम-घूम
धर्म-प्रचार !

रचे-पचे रहे
जिन-संस्कृति के
आलोक में !

श्वेताम्बर
स्थानकवासी
जैन परम्परा का
संक्षिप्ततः
इतिहास !

कतिपय
आचार्यों की
मुनिवरों की
जीवन-रेखाएं
आदरास्पद !
प्रेरणास्पद !!

-भद्रेश जैन

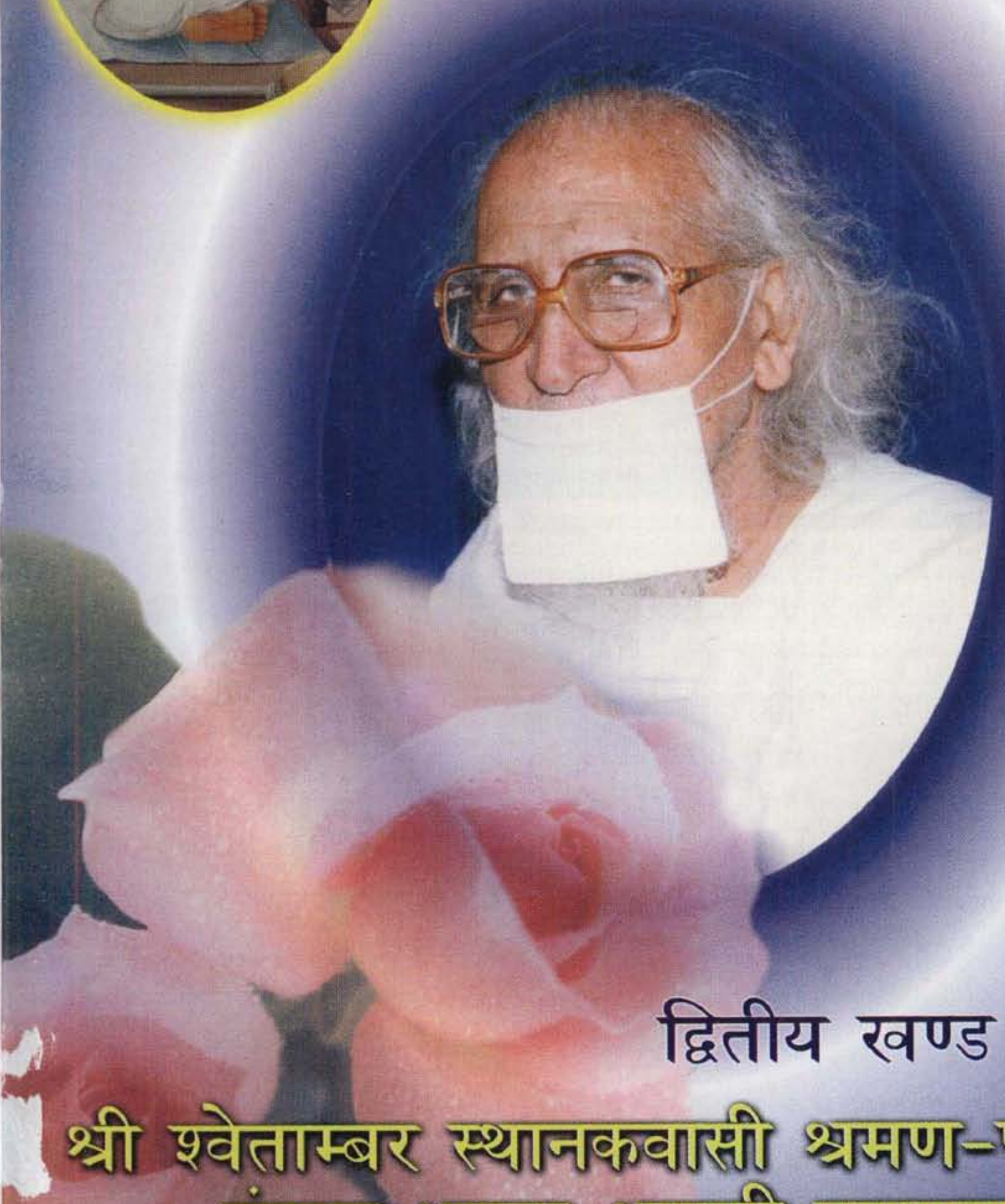

द्वितीय खण्ड

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रमण-परम्परा
पंजाब श्रमण-श्रमणी परम्परा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रमण - परंपरा

❑ भद्रेश कुमार जैन, एम.ए.,पी.एच.डी.

यह शाश्वत एवं निर्विवाद सत्य है कि जैन धर्म अनादिकाल से था, है, और रहेगा। इस सत्य को उद्घाटित करती है – जैन धर्म में हुई अनन्त-अनन्त चौवीसियां। अतः जैन धर्म की शाश्वतता को स्वीकारना ही होगा।

इस अवसर्पिणी काल चक्र के सर्वप्रथम धर्मोन्नायक तीर्थंकर थे – श्री ऋषभदेव अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी थे। तीर्थंकरों की जीवनियां एवं कालक्रम लगभग निर्विवाद हैं। किन्तु भगवान् महावीर के अथवा यों कह दें कि आर्य देवर्द्धि क्षमाश्रमण के पश्चात् अद्यावधि तक हुए आचार्यों के कालक्रम एवं जीवनियों में बहुधा अन्तर पाया जाता है। पट्टावलियों के आधार पर ही इनकी इतिहास सामग्री पायी जाती है। अतः प्रत्येक सम्प्रदाय की पट्टावली पृथक्-पृथक् है।

श्रमण भगवान् महावीर की परम्परा वस्तुतः 'श्रमण' परम्परा है। एवं जिन द्वारा प्ररूपित होने के कारण 'जिनमति' परम्परा भी है। इस आलेख में स्थानकवासी परम्परा को श्रमण एवं जिनमति परम्परा का संवाहक मानते हुए क्रांतिकारी आचार्यों का संक्षिप्त वृत्त एवं पट्टावली भी दी गई है।

इतिहास वेत्ता आदरणीय श्रीयुत गजसिंह जी राठौड़, जयपुर से भी इस आलेख हेतु विचार-विनिमय एवं इतिहास सामग्री प्राप्त हुई है, अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हुआ अपने विषय की ओर अग्रसर हो रहा हूँ।

उस महती, महनीया, विश्वकल्याणकारिणी श्रमण परम्परा में भगवान् महावीर के निर्वाण के अनन्तर प्रभु के प्रथम पट्टधर आचार्य सुधर्मास्वामी हुए। सुधर्मा स्वामी से लेकर २७वें पट्टधर देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक के आचार्यों के नाम नन्दी आदि विभिन्न पट्टावलियों एवं जैन इतिहास ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं।[१]

वीर निर्वाण संवत् १ से ६४ तक केवलीकाल रहा। तदनंतर वीर निर्वाण संवत् १७० तक चतुर्दश पूर्वधर काल अर्थात् श्रुत-केवली काल रहा। तत्पश्चात् वीर नि. संवत् १००० तक क्रमशः १० पूर्वधर तथा नव-अष्ट यावत् एक पूर्वधर काल रहा। अतः उन दिव्य ज्ञानियों के समय में प्रभु महावीर द्वारा प्रतिष्ठापित श्रमण-परम्परा के स्वरूप में किसी भी प्रकार की विकृति का आना सम्भव नहीं था।

शिथिलाचार का प्रादुर्भाव :

देवर्द्धिक्षमाश्रमण के सुरलोक प्रयाणानन्तर नित्य नियतवासी, चैत्यवासियों का जिनशासन पर वर्चस्व अत्यधिक बढ़ जाने के परिणामस्वरूप श्रमण-श्रमणी वर्ग में प्रायः सर्वत्र शिथिलाचार का साम्राज्य छा गया और महावीर कालीन विशुद्ध श्रमणाचार स्वरूपा श्रमण-परम्परा की धारा एक प्रकार से अंतर्प्रवाही - स्रोत के रूप में अवशिष्ट रह गई।

नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव सूरि ने इस संदर्भ में इस श्रमण-परम्परा को देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के आचार्यकाल पर्यन्त विशुद्ध भाव-परम्परा की उपमा से अलंकृत करते हुए कहा है -

१- (अ) नन्दी स्थविरावली
(इ) जैन धर्म का मौलिक इतिहास - आचार्य श्री हस्तीमल जी रचित, सम्पादक श्री गजसिंह राठौड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवड्ढि खमासमण जा, परंपर भावओ वियाणेमि।
सिढ़िलायारे ठविया, दव्वओ परम्परा बहुआ।।[1]

अर्थात् - श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाणोत्तर आर्य सुधर्मा स्वामी से लेकर आर्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक श्रमण भगवान् महावीर की श्रमण-परम्परा शुद्ध एवं भाव परम्परा के रूप में विद्यमान रही। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के स्वर्गारोहण के पश्चात् अनेक द्रव्य परम्पराएं प्रगट हो प्राबल्य में आई। निर्ग्रन्थ श्रमण - श्रमणी वर्ग शिथिलाचारी हो गया।

अभयदेवसूरि द्वारा उपर्युल्लिखित गाथा में प्रगट किये गये उद्‌गारों का यह अर्थ कभी न लगाया जाय कि विशुद्ध मूल श्रमण परम्परा का प्रवाह देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के पश्चात् पूर्णतः अवरुद्ध अथवा तिरोहित ही हो गया।

प्रभु महावीर के २७वें पट्टधर के पश्चात् श्रमण - परम्परा का मूल स्रोत मन्द तो अवश्य हुआ किन्तु इसकी धारा प्रवाहित रही और इस पंचम आरक की समाप्ति के दिन के अपराह्न तक वह धारा प्रवाहित रहेगी।

जब-जब भी शिथिलाचार श्रमण-परम्परा के विशुद्ध आचार पर छाने लगा तब-तब महान् आत्मार्थी ओजस्वी सन्तों ने क्रियोद्धार किया, घोरातिघोर परीषह सहन कर श्रमण-परम्परा के विशुद्ध स्वरूप को तिरोहित होने से बचाया एवं अक्षुण्ण रखा। चैत्यवासी परम्परा का समूलोन्मूलन करने वाले श्रमण - श्रेष्ठों के उत्तराधिकारी भी अन्ततोगत्वा सोना-चांदी-मोती आदि परिग्रह के धनी एवं घोर शिथिलाचारी बन गये और उन्होंने जैन धर्म के आध्यात्मिक स्वरूप को बाह्याडम्बर के घटाटोप से पूर्णतः प्रच्छन्न सा कर दिया। उस समय धर्मवीर लोंकाशाह ने अभिनव धर्मक्रान्ति का सूत्रपात कर श्रमण-परम्परा के साथ साथ धर्म के वास्तविक स्वरूप को आडम्बर के घनान्धकार से निकालकर पुनः आध्यात्मिक आलोक से आलोकित किया।

धर्मोद्धारक लोंकाशाह :

समय-समय पर हुए उन महान् धर्मोद्धारकों का और विशेषतः लोंकाशाह का नाम जैन इतिहास में सदा-सर्वदा-स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता रहेगा। उनके द्वारा श्रमण परम्परा के महावीर कालीन स्वरूप के वास्तविक स्वरूप को चिरस्थायी बनाये रखने के लिये जिस परम्परा का अभिनव रूप से सूत्रपात किया गया, उसी परम्परा की शाखाएं न केवल राजस्थान में ही अपितु भारत के सुदूरस्थ समुद्र के पार्श्ववर्ती प्रान्तों तक में भी फैली हुई हैं।

इस श्रमण-परम्परा की देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के पश्चात् की पट्टावलियां भी अनेक रूपों में उपलब्ध होती हैं। उनमें से सर्वाधिक प्रामाणिक पट्टावलियों का एवं महान् धर्मोद्धारक लोंकाशाह तक के इतिवृत्त का, इतिहास-मार्तण्ड आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज द्वारा रचित, **"जैन धर्म का मौलिक इतिहास"** भाग २,३ और ४ में यथाशक्य विस्तार से उल्लेख उपलब्ध होता है।

समग्रधर्म क्रान्ति का अंकुरण :

धर्मवीर एवं कर्मवीर लोंकाशाह ने जब दशवैकालिक सूत्र में -

महुगार समा बुद्धा जे भवंति अणिस्सिया।
नाणा पिण्डरया दंता तेण वुच्चंति साहुणो।[2]

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया।।[3]

इन गाथाओं को पढ़ा तो उनकी आंखें खुली। सर्वज्ञ-प्रणीत श्रमणाचार के धारकों और तत्कालीन श्रमण-श्रमणी वर्ग में व्याप्त सुसम्पन्न गृहस्थों से भी अत्यधिक परिग्रहपूर्ण ऐश्वर्यपूर्ण, नितान्त भोगपरक एवं बाह्याडम्बर से ओत-प्रोत आचार-विचार को देखकर उनके अन्तर्चक्षु सहसा

---

१. आगम अष्टोत्तरी - अभयदेव सूरि २. दशवैकालिक सूत्र - १/५ ३. दशवैकालिक सूत्र - ३/१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्मीलित हो उठे। उन्होंने गणिपिटक अर्थात् द्वादशांगी के प्रथम अंग आचारांग सूत्र का गहन अध्ययन-अवगाहन-चिन्तन-मनन एवं निदिध्यासन किया। दश-वैकालिक सूत्र के **"छज्जीवणिया"** नामक अध्ययन के एक-एक अक्षर एवं उनके भावों के साथ साथ-

"इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभेज्जा, नेवन्नेहिं दंडं समारंभावेज्जा, दंडं समारंभंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अण्णं न समणुजाणामि। तस्स भंते पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।"[1]

इस पाठ को भी हृदयंगम किया। आचारांग सूत्र का आद्योपान्त पुनर्पुनः अध्ययन अवगाहन और उसमें प्रतिपादित विश्व कल्याणकारी विश्वधर्म जैन धर्म की आधारशिला/नींव/आधारभित्ती स्वरूप सर्वज्ञ वचनों को मन-मस्तिष्क एवं हृदय में अंकित करने के उपरान्त पत्रों पर अंकित किया। **"सत्थ परिण्णा"** अध्ययन के –

"तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया। इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण पूयणाए, जाइमरण मोयणाए, दुक्खपडिग्घाय हेउं, से सयमेव पुढविसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं पुढविसत्थं समारम्भावेइ, अण्णे वा पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहिए।"[2]

इस सूत्र को पढ़ कर तो उनके अन्तर्चक्षु सहसा उन्मीलित हो उठे। श्रमण भगवान् महावीर ने और उनके पूर्व हुई अनन्त चौबीसियों के सभी तीर्थकरों ने सुस्पष्ट रूप में कहा है-

"स्वयं के जीवन निर्वाह, वन्दन, कीर्ति, मान-सम्मान एवं पूजा पाने के लिये, जन्म-जरा-मृत्यु से मुक्ति प्राप्त करने अथवा दुःखों का निवारण करने के लिये न तो स्वयं पृथ्वीकाय का आरम्भ-समारम्भ करें, न दूसरों से करवायें और न इस प्रकार का आरम्भ-समारम्भ करने वाले का अनुमोदन ही करे। और यहां तक कि मुक्ति की प्राप्ति के लिये आठों कर्मों को मूलतः विनष्ट करने के लिये भी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीवों को कष्ट पहुंचाने वाला-मारने वाला आरम्भ-समारम्भ न करे। इस प्रकार का आरम्भ करने वाला, करवाने वाला एवं इस प्रकार के आरम्भ समारम्भ का अनुमोदन करने वाला व्यक्ति अनन्तानन्त काल तक षड्जीव-निकाय में पुर्नपुनः जन्म-मरण ग्रहण करता हुआ दारुण दुःखों की विकराल चक्की में अहर्निश-प्रतिपल अनवरत रूपेण पिसता ही रहता है। वस्तुतः षड्जीव-निकाय के जीवों को कष्ट पहुंचाने वाला, परिताप पहुंचाने वाला, मार डालने वाला प्रत्येक आरम्भ-समारंभ प्रत्येक प्राणी के लिये घोर अहितकर एवं अनिष्टकारक है"।

लोंकाशाह को हृदयद्रावी आश्चर्य हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर ने "अनन्त चौबीसी" के सभी जिनेश्वरों ने पृथ्वी, अप्, तेजस् आदि षड्जीव-निकाय के आरम्भ-समारम्भ को प्रत्येक आत्मा के लिये अनिष्ट कारक अबोधिजनक, अहितकर बताया तो फिर जिन-मंदिरों के निर्माण, जिन प्रतिमाओं की स्नान-विलेपन-दीप-नैवेद्य-निवेदन-माल्यार्पण आदि आरम्भ-समारम्भ का विधान किसने किया? एकादशांगी इस तथ्य की त्रिकाल विश्वसनीय साक्षी है कि न तो श्रमण भगवान् महावीर ने, न आर्यावर्त की प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल की चौबीसी के किसी भी तीर्थंकर ने और न ही अनाद्यनन्त की अनन्तानन्त उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी की चौबीसियों के किसी भी तीर्थकर ने इस प्रकार का न तो कोई आदेश दिया न कोई निर्देश दिया और न इस प्रकार का कथन ही किया। इसके विपरीत उपर्युक्त सूत्र के माध्यम से पांचों स्थावर निकाय और छट्ठे त्रस निकाय के आरम्भ-समारम्भ-हिंसा आदि का

१. दशवैकालिक सूत्र/अ. ४.   २. आचारांग - १/१/२/४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तो और मोक्ष प्राप्ति तक के लिये, जन्म जरा-मृत्यु से पूर्णतः मुक्ति प्राप्त करने के प्रयत्नों तक के लिये भी निषेध के साथ साथ स्पष्ट शब्दों में घोष किया –

"सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे सत्ता न हंतव्वा, न अज्झावेयव्वा न परिघित्तव्वा, न परियावेयव्वा न उद्दवेयव्वा।

एस धम्मे सुद्धे निइए सासए....।" [१]

आचारांग सूत्र के " सत्थ-परिण्णा" अध्ययन में

"अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारम्भेणं पुढविसत्थं समारम्भेमाणा अण्णे अणेग रूवे पाणे विहिंसई।"[२]

इस पाठ से यह स्पष्टतः प्रतिध्वनित होता है कि त्रिकालवर्ती समस्त भावों के हस्तामलकवत् द्रष्टा-ज्ञाता, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रभु महावीर ने प्रवर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल के पूर्वधर कालोत्तरवर्ती नियत निवासी चैत्यवासियों, मठाधीशों, श्रीपूज्यों औषध-भैषज-तन्त्र-मन्त्र-प्रतिमा-प्रतिष्ठानुष्ठान से विपुल अर्थोपार्जन कर छत्र-चामर शिविका आदि प्रचुर परिग्रह के अम्बार संचित कर धर्म के स्वरूप को दूषित एवं कलंकित करने वाले श्रमण-नामधारी शिथिलाचारियों को लक्ष्य करके ही फरमाया होगा कि जो लोग-"हम श्रमण हैं"-यह कहते हुए भी पृथ्वी, अप्, तेजस्, तेजस्, वायु, वनस्पति और त्रसकाय का आरम्भ-समारम्भ करते-करवाते और करने वालों का अनुमोदन करते हैं वे घोर अनिष्ट-अहित एवं अबोधि (अज्ञान-मिथ्यात्व) के पात्र बन अनन्त काल तक षड्जीव निकाय में जन्म मरणादि दारुण दुःखों को भोगते हुए भ्रमण करते रहेंगे।

इन सब तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर निमीलित नेत्रों वाले कदाग्रहियों को छोड़ शेष सभी मुमुक्षु भव्यों को अटूट आस्था के साथ अटल विश्वास हो जाता है कि इस प्रकार षड्जीव-निकाय के आरम्भ-समारम्भ से ओत-प्रोत, दोषपूर्ण और अनन्त काल तक भव-भ्रमण करवाने वाला मंदिर, मूर्ति निर्माण एवं स्नान-धूप-दीप नैवेद्य, माल्यार्पण आदि से जिन प्रतिमा पूजन का विधान न तो चतुर्विध तीर्थ के संस्थापक तीर्थंकर प्रभु ने किया और न केवली काल से लेकर अंतिम पूर्वधर काल के किसी पूर्वधर आचार्य ने ही।

इसके अतिरिक्त यह भी एक शाश्वत सर्वसम्मत एवं निर्विवाद तथ्य है कि चतुर्विध धर्मतीर्थ की स्थापना के माध्यम से धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर ही होते हैं न कि कोई अन्य। चाहे वह बड़े से बड़ा आचार्य अथवा केवली ही क्यों न हो। इस प्रकार की स्पष्ट वस्तुस्थिति में धर्मतीर्थ के संस्थापक तीर्थंकर भगवान् के धर्म तीर्थ में उन त्रिलोकबन्धु तीर्थेश्वर द्वारा प्रतिपादित प्रतिष्ठापित धर्म के प्राणभूत-आधारशिला स्वरूप सिद्धान्तों में, धर्म के मूल स्वरूप में उनके कथन के, उनके उपदेशों के एकान्ततः प्रतिकूल मंदिर-मूर्तिनिर्माण-प्रभु की प्रतिमा के पूजन-अर्चन जैसी सावद्य मान्यताओं को प्रचलित करता है तो वे सावद्य मान्यताएं किसी भी जिनोपासक जैन धर्मावलम्बी के लिये अनाचरणीय एवं एकान्ततः अमान्य ही होंगी। जिन-वचन विरोधी इस प्रकार की सावद्य मान्यताओं वाला धर्म किसी भी दशा में "जैन धर्म" नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का सावद्य धर्म तो आचार्याभास सावद्य आचार्यों के सावद्य धर्म के सम्बोधन से सावद्याचार्यों के धर्म की संज्ञा से ही अभिहित किया जा सकता है।

"षड्जीव-निकाय के प्राणि मात्र को पुत्रवत् प्यार करने वाले त्रिलोक तात-मात तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का षड्जीव-निकाय के जीवों की हिंसा से ओत-प्रोत प्रक्षालन पुष्प-धूप दीपादि से पूजा क्या वस्तुतः एक माता की उसके पुत्र-पुत्रियों के रुधिर से पूजा करने जैसी विडम्बना

१. आचारांग १/४/२/२, श्रु.स्कंध ४, अध्ययन १, उद्देशक गद्य-१   २. आचारांग १/१/२/३, प्र.श्रु.स्कं., अध्ययन २, उद्देशक १, गद्य.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है? धर्मप्राण लोंकाशाह को धर्मोद्धार के लिये आमूलचूल समग्र क्रान्ति का सूत्रपात करने के लिये प्रेरणा प्रदान करने वाले कारणों में सर्वाधिक प्रमुख प्रबल कारण सम्भवतः यही प्रश्न रहा होगा कि जिस प्रकार एक माता किसी के द्वारा उसकी संतति के रूधिर से पूजा करवाने में किसी भी दशा में प्रसन्न नहीं होती प्रत्युत अप्रसन्न हो इस प्रकार के नृशंस नर पिशाच का प्राणान्त करने के लिये कटिबद्ध हो जाती है ठीक उसी प्रकार षड्जीव-निकाय के तात-मात तीर्थंकर प्रभु षड्जीव निकाय की हिंसाजन्य पुष्प-धूपादि पूजा से क्या कभी प्रसन्न हो सकते हैं?"

अभिनव धर्मक्रान्ति का सूत्रपात :

यह लोमहर्षक, हृदय द्रावी प्रश्न धर्मवीर लोंकाशाह के अंतर्मन को कचोटने लगा। उन्होंने सर्वजन बोधगम्य लोक भाषा में "लोंकाशाह के ५८ बोल" आदि सरल साहित्य का निर्माण कर धर्म के मर्म को, शास्त्रों के गहन तथ्यों को जन-जन तक पहुंचा कर एक अभिनव धर्मक्रान्ति का सूत्रपात किया। लोंकाशाह द्वारा अभिसूत्रित इस धर्म क्रान्ति ने समग्र जैन जगत् की आंखें खोल दीं। राजनगर (वर्तमान का अहमदावाद) और अनहिलपुर पत्तन (पाटण) में धर्मप्राण लोंकाशाह द्वारा प्रबलवेग से उद्घोषित यह अश्रुतपूर्व धर्मक्रान्ति का उद्घोष अकल्पनीय, अप्रत्याशित उग्रवेग से आर्यधरा के दिग्दिगन्त में गुंजरित हो उठा। लोंकाशाह द्वारा प्रसारित शास्त्रीय बोल यत्र-तत्र-सर्वत्र जन-जन के समवेत स्वरों में मुखरित हो अमोघ रामबाण की भांति धर्म के ठेकेदार, मठाधीशों, श्री पूज्यों एवं यतिपतियों को हतप्रभ करते हुए उनके कर्णरन्ध्रों को बधिर करने लगे। छत्र चामरधारी मठाधीशों-भट्टारकों-श्री पूज्यों के पैरों के नीचे की धरा रसातल में धसकने लगी। मठों-यतिपतियों के उपाश्रयों की नीवें प्रचण्ड भूकम्प के झोंकों के समान इस धर्मक्रान्ति के आघातों से हिल उठीं। **"खिसियानी बिल्ली खम्भा नोंचे"** इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए यतिपतियों-श्री पूज्यों और मठाधीशों ने लोंकाशाह के विरुद्ध देशव्यापी षड्यन्त्रों का जाल सा बिछा दिया। निष्कम्प-अडोल धैर्य के साथ धर्मोद्धारक लोंकाशाह जूझते रहे – तत्कालीन उन महान् शक्तियों के इन षड्यन्त्रों से।

धर्मक्रान्ति की विजय :

अन्ततोगत्वा प्रबुद्ध-प्रबल जनमत के समक्ष उन महाशक्तियों को मुंह की खानी पड़ी। लोंकाशाह द्वारा "जिनमती" के नाम से प्रतिष्ठापित परम्परा गुजरात, काठियावाड़, मारवाड़, मेवाड़, मालव और उत्तरप्रदेश के प्रमुख नगर आगरा तक एक सुदृढ़ सशक्त, सुसंगठित सद्धर्म संगठन शक्ति के रूप में उभर कर जन-जन के हृदय में प्रतिष्ठापित हो गई। उसकी विजय-वैजयन्ती उत्तरोत्तर आर्यधरा के सुविशाल क्षितिज पर लहर-लहर लहराने और फहर-फहराने लगी।

जिस सशक्त-सफल-समग्र धर्मक्रान्ति का लोंकाशाह द्वारा सूत्रपात किया गया, उसकी सफलता के प्रमाण इतिहास के पन्नों पर अमिट स्वर्णाक्षरों में अंकित होने के साथ-साथ प्रत्येक धर्मनिष्ठ सन्नागरिक को सुस्पष्टतः प्रत्यक्ष भी दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम प्रमाण तो यह कि श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रतिष्ठापित-प्ररूपित धर्म के विशुद्ध स्वरूप में कलंक-कालिमा-कलुषित विकृतियों की जनक चैत्यों में ही नियत निवास करने वाली चैत्यवासी परम्परा धरातल से पूर्णतः तिरोहित हो चुकी है और एक समय अपने तन्त्र-मन्त्रों के बल पर समग्र आर्यक्षेत्र को शताब्दियों तक अपने सर्वस्व से आच्छादित अभिभूत किये रखने वाली यति परम्परा आज अज्ञात कोने में अंतिम श्वासें लेती हुई अपनी जीवन लीला समाप्त करने जा रही है।

लोंकाशाह द्वारा की गई धर्मक्रान्ति की सफलता की दूसरी सशक्त साक्षी यह है कि उस क्रान्ति के प्रबल प्रवेग से प्रभावित हो विपुल समृद्धियों अथवा प्रचुर परिग्रहों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी तत्कालीन शिथिलाचार निमग्न साधु मुख्यों एवं साधुओं ने श्री आनन्दविमल सूरि के नेतृत्व में अपनी स्वर्ण राशियों एवं मोतियों (मुक्ताफलों) को अन्धकूपों में फेंक अत्युग्र कठोर तपश्चरण परायण हो अपनी अपनी परम्पराओं की रक्षार्थ सजग हो अहर्निश अथक परिश्रम किया।[१]

तीसरा प्रत्यक्ष प्रमाण है - लोंकाशाह द्वारा प्रतिष्ठापित परम्परा के उपासकों की प्रचुर संख्या और इस परम्परा की शाखा-प्रशाखाओं के रूप में स्थानकवासी परम्परा का आर्यक्षेत्र के सुविशाल भूभाग में प्रचार-प्रसार।

धर्मवीर-धर्मोद्धारक लोंकाशाह द्वारा पुनरुज्जीवित इसी यशस्विनी विशुद्ध श्रमण परम्परा में अनेक महान् आचार्य हुए।

लोंकाशाह द्वारा की गई एक सशक्त, सफल, समग्र क्रान्ति के परिणाम स्वरूप श्रमण-श्रमणी वर्ग में व्याप्त शिथिलाचार के उन्मूलन के साथ-साथ विशुद्ध शास्त्रीय श्रमणाचार की पोषिका एक अभिनव परम्परा की लोंकाशाह ने विधिवत् प्रतिष्ठापना की और उस अभिनव परम्परा का नाम "जिनमती" रखा गया।[२] जैन वाङ्मय में उपलब्ध कतिपय आलेखों के अनुसार लोंकाशाह द्वारा पुनः प्रतिष्ठापित की गई इस श्रमण-परम्परा का नाम "जिनमती" कतिपय शताब्दियों तक प्रचलित रहा, इस तथ्य का साक्षी है-संवत् १६५३ का विनति पत्र जो लाल-भवन, जयपुर में अवस्थित **"आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार"** में विद्यमान है। लगभग साढ़े पांच फुट के इस विनति पत्र की एतद्विषयक कतिपय पंक्तियां इस प्रकार हैं:-

"सवा रूप श्री सिध सकल गुणधार जगत ना पूजनीक जयनगर "जयपुर" सुभ ठाम वसतीआं बहुगुणी सरब ओपमा अनूप सरावग सब जिनमती श्री देवगुरु धरम लीनक साचला समगती सरब भाईसाह जोग जोधाणा "जोधपुर" सूं लिखी सामी "स्वधर्मी" भायां को प्रणाम,.....। ".....''संवत् १६५३ रा भादरवा सुद १४, रविवार, तारीख २० सितम्बर, १८६६"।

इस प्रकार के आलेखों के उपरान्त भी महान् धर्मोद्धारक धर्मवीर लोंकाशाह अपने अनुयायियों, विरोधियों और जन-जन के मन-मस्तिष्क तथा हृदय पर ऐसे छाये रहे कि वे सब बोल-चाल तथा आलेखों में जिनमती परम्परा को "लोंकागच्छ" के नाम से ही अभिहित करते रहे। यही कारण है कि इने-गिने लोगों के अतिरिक्त कोई नहीं जानता कि लोंकाशाह द्वारा पुनः प्रतिष्ठित की गई इस परम्परा का नाम "जिनमती" था। इस सम्बन्ध में गहन शोध से अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों के प्रकाश में आने की सम्भावना है।

जिनमती "लोंकागच्छ" परम्परा में, श्रमण भगवान् महावीर के पट्टधर आचार्यों के अनुक्रम में धर्मतीर्थ की स्थापना के समय से देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के आचार्य काल के पश्चात् शताब्दियों तक प्रचलन में रही आचार्य-परंपरा में विशुद्ध श्रमण चर्या का पालन करने कराने वाले निम्नलिखित ८ आचार्य हुए-

१. आचार्य श्री भाणजी ऋषि
२. आचार्य श्री भद्दा ऋषि
३. आचार्य श्री नूना ऋषि
४. आचार्य श्री भीमा ऋषि
५. आचार्य श्री जगमाल ऋषि
६. आचार्य श्री सखा ऋषि "महान् प्रभावक आचार्य हुए"
७. आचार्य श्री रूपजी ऋषि वि.सं. १५६८ से १५८५

आपने वि.सं. १५६८ में पाटणनगर में २०० घरों के आबालवृद्ध सदस्यों को प्रतिबोधित कर "जिनमती" परम्परा अर्थात् लोंकागच्छ के अनुयायी श्रावक बनाया।

१- जैनधर्म का मौलिक इतिहास – गजसिंह राठौड़ भाग ४, पृष्ठ ५८०-५८१
२- जैन धर्म का मौलिक इतिहास, भाग ४, पृष्ठ ७२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जीवाजी ऋषि

वि.सं. १५८५ से वि.सं. १६११ आपका जन्म सूरत नगर निवासी डोसी श्री तेजपालजी की धर्मशीला भार्या कपूरदेवी की कुक्षि से वि.सं. १५५१ की माघ कृष्णा १२ को हुआ। सं. १५७८ की माघ शुक्ला ५ के दिन आपने सूरत नगर में ऋषि रूपजी से श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की। वि.सं. १६०५ में आपको अहमदाबाद के झवेरीपाडा में आचार्य पद प्रदान किया गया। आपने सूरत नगर में ६०० घरों के सदस्यों को लोंकागच्छ के अनुयायी एवं श्रावक बनाया। वि.सं. १६१३ में आपने ५ दिनों का संथारा सिद्ध होने पर स्वर्गारोहण किया। श्री जीवाजी ऋषि के स्वर्गारोहण के समय लोंकागच्छ में साधुओं की संख्या ११०० तक पहुंच गई थी किन्तु पूज्य जीवाजी ऋषि के स्वर्गस्थ हो जाने पर संघ का विघटन प्रारम्भ हुआ और यह संघ मोटी पक्ष और नान्ही "छोटी" पक्ष इन दो भागों में विभक्त हो गया। इन दोनों पक्षों की पट्टावली यहां विस्तार भय से नहीं दी जा रही है। नान्ही पक्ष में पांचवें आचार्य शिवजी ऋषि (जीवाजी ऋषि के पांचवें पट्टधर) को बादशाह शाहजहां ने वि.सं. १६८३ की विजयादशमी के दिन पालकी सरोपाव से सम्मानित किया और इस सरोपाव के सम्मान ने केवल शिवजी ऋषि को ही नहीं अपितु लोंकागच्छ के यतिमण्डल को भी छत्रधारी, शिथिलाचारी और गादीधारी बना दिया।

धर्मोद्धारक श्री धर्मसिंहजी महाराज :

लोंकागच्छ के श्री पूज्य शिवजी महाराज के समय में श्री धर्मसिंहजी महाराज एक महान् क्रियोद्धारक हुए हैं। आपका जन्म काठियावाड़ के हालार प्रान्त के जामशहर अपर नाम 'नगर' में हुआ। आपके पिता का नाम जिनदास श्रीमाल और माता का नाम शिवाबाई था।

लोंकागच्छ के श्री रत्नसिंहजी के शिष्य देवजी महाराज के व्याख्यानों को सुनते रहने से आपको संसार से विरक्ति हो गई। आपने पिता से दीक्षित होने की आज्ञा मांगी किन्तु आज्ञा न मिलने के कारण आपको पर्याप्त समय तक रुकना पड़ा। अन्ततोगत्वा आपके सुदृढ़ वैराग्य से प्रभावित हो आपके पिता ने भी आपके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली।

शास्त्रों का अध्ययन एवं पारायण करते समय आपको जब विशुद्ध श्रमणाचार का परिज्ञान हुआ तो आपने गुरु से क्रियोद्धार करने की अथवा उन्हें अनुमति देने की प्रार्थना की। गुरु ने कहा - "मैं तो असमर्थ हूं पर यदि तुम्हारी इच्छा क्रियोद्धार करने की है तो आज की रात अहमदाबाद नगर के बाहर दरियाखान पीर की दरगाह में बिताओ। कल मैं तुम्हें क्रियोद्धार करने की स्वीकृति सहर्ष दे दूंगा।"

श्री धर्मसिंहजी महाराज अटूट आत्मबल के प्रसाद से इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और गुरु की अनुमति प्राप्त कर उन्होंने क्रियोद्धार किया। आपने पार्श्वचन्द्राचार्य की भांति बोलचाल की भाषा में २७ सूत्रों पर टब्बों की रचना की। आपने हुंडी, चर्चा, टीप, यन्त्र, समाचारी आदि के अनेक ग्रन्थों की रचनाएं कीं।

पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज का दरियापुरी संघाड़ा आज भी बड़ा प्रसिद्ध समुदाय है।

लवजी ऋषि :

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग में सूरत के ख्यातनामा श्रीमन्त दशाश्रीमाल वीरजी की बाल विधवा पुत्री फूलां बाई के कोई सन्तान नहीं थी अतः श्रेष्ठिवर वीरजी ने लवजी नामक एक बड़े ही होनहार बालक को अपनी पुत्री के दत्तक पुत्र के रूप में गोद लिया। उपाश्रय में पढ़ते समय बालक लवजी को संसार से विरक्ति हो गई। उन्होंने अपनी माता फूलां बाई और नाना वीरजी से अनेक बार प्रार्थना की कि उन्हें वे श्रमणधर्म में दीक्षित होने की आज्ञा-अनुमति प्रदान करें। पहले तो वीरजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लवजी की प्रार्थनाओं को टालते रहे। परन्तु लवजी को वैराग्य के प्रगाढ़ रंग में पूर्णतः रंजित देख उन्होंने अपने दौहित्र लवजी को लोंकागच्छ के यति श्री जगजी के पास दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान की। अन्य कतिपय पट्टावलियों में वज्रांगजी और बजरंगजी के पास दीक्षित होने का उल्लेख है।

यतिधर्म में दीक्षित होने के पश्चात् लवजी ने निष्ठापूर्वक शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया। शास्त्रों में वर्णित विशुद्ध श्रमणाचार को हृदयगंम करने के पश्चात् उन्होंने अपने गुरु को क्रियोद्धार करने की प्रार्थना की गुरुजी ने जब निर्दोष श्रमणचर्या के पालन में अपनी असमर्थता प्रकट की तो लवजी गुरु की अनुमति प्राप्त कर थोमणजी और सखियोजी नामक अपने दो साथी यतियों के साथ लोंका-यति गच्छ से निकल गये और उन्होंने विक्रम संवत् १७१४ में अभिनव रूप से निर्दोष श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने अपने साथी श्रमणों के साथ घोर तपश्चरण-ध्यान-शास्त्राध्ययन एवं वीतराग प्रभु के सद्धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया। बड़ी संख्या में श्रद्धालु लोग उनके सरल-सौम्य एवं मधुर व्यवहार से आकर्षित हो उनके उपदेशों को सुनने आने लगे। एक दिन जब वे एक ढूंढ़े (जीर्ण-शीर्ण-भग्नावशिष्ट घर) में ठहरे हुए थे, श्रद्धालुओं के विशाल झुण्डों को लवजी की ओर उमड़ते देख यतिगच्छीय द्वेषाभिभूत हो उन साधुओं को ढूंढ़िया-ढूंढ़िया कहने लगे। क्षमानिधान, समता के सागर लवजी ने सहर्ष उनके व्यंग भरे कटु सम्बोधन को अपनी मृदुवाणी के मधु से मधुर बनाते हुए कहा – शतप्रतिशत आप लोगों का हमारे लिये यह सम्बोधन सही है। क्योंकि हमने-

ढूंढत ढूंढत ढूंढ लिया सब,
वेद पुरान कुरान में जोई।।.......

अन्ततोगत्वा सद्धर्म को ढूंढ ही लिया है। आपने खूब पहिचाना कि हम ढूंढिये हैं। यह सुन विद्वेषी-विरोधी हतप्रभ एवं अवाक् रह गये।

क्रियोद्धारक लवजी के त्याग-तप और उपदेशों से जैनधर्म का सर्वतोमुखी प्रचार-प्रसार हुआ। कालूपुर निवासी शाह सोमजी ने लवजी के पास श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण की। ऋषि सोमजी के शिष्य परिवार में चार बड़े ही प्रभावक शिष्य हुए। उन चारों के नाम से आचार्य लवजी ऋषि की परम्परा की चार यशस्विनी सम्प्रदायें प्रचलित हुई, जिनके नाम इस प्रकार है-

(१) पूज्य हरिदासजी की सम्प्रदाय (पंजाबी) श्रमण संघ के प्रथम आचार्य श्री आत्मारामजी इसी सम्प्रदाय के श्रमण श्रेष्ठ थे।

(२) पूज्य कानजी ऋषि की सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय के साधुओं का प्रमुख क्षेत्र महाराष्ट्र रहा। स्वनाम धन्य स्व. तिलोकऋषिजी और ३२ आगमों के हिन्दी अनुवादकर्ता स्व. श्री अमोलक ऋषिजी महाराज इसी परम्परा के आचार्य थे। श्रमण संघ के श्रमणोत्तम आचार्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज इसी सम्प्रदाय के थे।

(३) पूज्य तारा ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय। यह खम्भात समुदाय के नाम से गुजरात में प्रसिद्ध है।

(४) पूज्य रामरतनजी महाराज की सम्प्रदाय (मालवा)

क्रियोद्धारक श्री हरजी महाराज :

क्रियोद्धारकों में श्री हरजी महाराज महान् प्रभावक महापुरुष माने गये हैं। आपने कुंवरजी के गच्छ से निकल कर वि.सं. १६८६ के आस पास क्रियोद्धार किया।

पूज्य श्री हरजी म. सा. से प्रारम्भ में कोटा सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा प्रचलित हुई। तीसरे आचार्य श्री परसरामजी तक यह परम्परा एक इकाई के रूप में रही। तदनन्तर यह दो शाखाओं में विभक्त हो गई। पहली शाखा के आचार्य पूज्य लोकमणजी महाराज और दूसरी शाखा के पूज्य श्री खेतसीजी हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम शाखा के छठे आचार्य पूज्य श्री दौलतरामजी के पश्चात् पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज से तीसरी शाखा का प्रादुर्भाव हुआ जो पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुई, जिसके वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी महाराज हैं। पूज्य श्री हरजी ऋषि से बारहवें आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज तक यह सम्प्रदाय एकता के सूत्र में आबद्ध अथवा संगठित रही। तत्पश्चात् श्री हुक्मीचंदजी महाराज की यह सम्प्रदाय दो इकाइयों में विभक्त हो गई। पहली इकाई के आचार्य हुए श्री जवाहरलालजी महाराज और दूसरी इकाई के पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज।

धर्मोद्धारक श्री धर्मदासजी महाराज :

अहमदाबाद नगर के पार्श्ववर्ती सरखेज नगर निवासी भावसार श्री जीवदास कालीदास की धर्मनिष्ठा पत्नी की कुक्षि से वि.सं. १७०१ में श्री धर्मदासजी का जन्म हुआ। बालक आठ वर्ष की अवस्था में जब पोशाल जाने लगा उस समय केशवजी के पक्ष के लोंकागच्छीय यति श्री पूज्य श्री तेजसिंहजी का वहां पधारना हुआ। उनसे धार्मिक शिक्षा प्राप्त करते समय बालक धर्मदास को संसार से विरक्ति हो गई। पूज्य श्री तेजसिंहजी के चले जाने के कुछ समय पश्चात् **कल्याणजी** नामक एक पोतियाबंध श्रावक "एकलपातरी" सरखेज आये। उन्होंने उपदेश दिया कि इस पंचम आरक में निर्दोष श्रमणाचार का पालन हो ही नहीं सकता। अतः एकलपात्री पोतियाबंध श्रावक बन गये। कहीं कहीं यह उल्लेख भी उपलब्ध होता है कि धर्मदासजी आठ वर्षों तक पोतियाबंध श्रावक रहे। भगवती "वियाहपन्नति" सूत्र का वाचन करते समय जब उन्होंने पढ़ा कि भगवान् महावीर का धर्म शासन २१ हजार वर्ष पर्यन्त चलेगा तो उन्होंने विशुद्ध श्रमण जीवन अंगीकार करने का निश्चय किया और सच्चे संयमी की खोज में निरत हो गये। वे सर्वप्रथम लवजी ऋषि से मिले। तदनन्तर अहमदाबाद में धर्मसिंहजी से भी आपकी पर्याप्तरूपेण धर्मचर्चा हुई। कतिपय विषयों में विचार वैभिन्य के कारण उन्होंने किसी अन्य के पास दीक्षित न हो स्वतः ही श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् मुनि धर्मदास महाराज को तेले के पारणार्थ मधुकरी करते समय एक कुम्हार से भिक्षा में राख मिली। उस राख को ही छाछ में घोलकर श्री धर्मदासजी महाराज ने तेले की तपस्या का पारण किया। दूसरे दिन जब आप श्री धर्मसिंहजी महाराज को वन्दना करने गये तो भिक्षा में राख मिलने और उसे मट्ठे में मिला पी लेने की बात उनसे कही। महाराज श्री धर्मसिंहजी ने साश्चर्य धर्मदासजी महाराज की ओर देखते हुए कहा – "महात्मन्। जिस प्रकार फैंकने पर राख सभी दिशा-विदिशाओं में फैल जाती है, ठीक उसी प्रकार आपका शिष्य-परिवार चारों दिशाओं में फैलकर आपके उपदेशों का चारों ओर प्रचार-प्रसार करेगा।"

पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज द्वारा की गई यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। वि.सं. १७२१ की माघ शुक्ला पंचमी के दिन उज्जयिनी के श्रीसंघ ने बड़े समारोह के साथ श्री धर्मदासजी महाराज को आचार्य पद पर अधिष्ठित किया। आपने ९९ शिष्यों को अपने हाथ से श्रमण-धर्म की दीक्षा प्रदान की। उनमें २२ शिष्य बड़े ही प्रभावक एवं पंडित थे। आपके इन शिष्यों का परिवार स्वल्प समय में ही भारत के इस छोर के उस छोर तक चारों दिशाओं में फैल गया।

विक्रम संवत् १७५९ में पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के एक शिष्य ने अपनी आयु का अन्तिम समय समझकर धार नगर में संथारा – "आजीवन चतुर्विध आहार का त्याग" किया। कतिपय दिनों के पश्चात् वह साधु भूख और प्यास को सहन करने में नितान्त अक्षम हो गया और संथारे को तोड़ने के लिये उसका मन व्यग्र रूप से विचलित हो उठा। पूज्य श्री धर्मदासजी, अपने शिष्य के विचलित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने की सूचना मिलते ही उग्र विहार कर धार पहुंचे और उसे संस्तारक से उठा स्वयं ने जीवनपर्यन्त चतुर्विध आहार का परित्याग कर संथारा ग्रहण कर लिया। **जिनेश्वर प्रभु के धर्मसंघ की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये इस प्रकार का महान् त्याग संसार के इतिहास में खोजने पर भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं होगा।** अन्ततोगत्वा संथारा स्वीकार करने के आठवें दिन विक्रम-संवत् १७५६ की आषाढ़ शुक्ला ५ की संध्या के समय अपूर्व त्यागी, महान् धर्मोद्धारक, जिनशासन-प्रभावक आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज ने शान्त-दान्त एवं विशुद्ध परिणामों के साथ एकान्ततः अध्यात्म-चिन्तन में लीन रहते हुए स्वर्गारोहण किया। जिनेश्वर के धर्मशासन की अभूतपूर्व प्रभावना हुई। इस प्रकार पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज जैन इतिहास में यावच्चन्द्र-दिवाकरौ अमर हो गये।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके २२ शिष्यों ने विभिन्न प्रान्तों के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से विचरण कर धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ अपने गुरु पूज्य श्री धर्मदासजी की यशोगाथाओं को दिग्दिगन्त में गुंजरित कर दिया। उन २२ विद्वान् मुनियों का श्रमण-श्रमणी समुदाय चारों दिशाओं में फैल गया। पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के उन २२ विद्वान् सुशिष्यों का श्रमण-श्रमणी-समूह बावीस सम्प्रदाय, बावीस समुदाय एवं बावीस टोला-इन नामों से लोक में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।

बावीस सम्प्रदाय के नायक मुनियों के नाम :

१. पूज्य श्री मूलचन्दजी महाराज
२. पूज्य श्री धन्नाजी महाराज
३. पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज
४. पूज्य श्री मन्नाजी महाराज
५. पूज्य श्री मोटा पृथ्वीचन्दजी महाराज
६. पूज्य श्री छोटा पृथ्वीचन्दजी महाराज
७. पूज्य श्री बालचन्दजी महाराज
८. पूज्य श्री ताराचन्दजी महाराज
६. पूज्य श्री प्रेमचन्दजी महाराज
१०. पूज्य श्री रेंवतसीजी महाराज
११. पूज्य श्री पदार्थ जी महाराज
१२. पूज्य श्री लोकमलजी महाराज
१३. पूज्य श्री भवानीदासजी महाराज
१४. पूज्य श्री मलूकचन्दजी महराज
१५. पूज्य श्री पुरुषोत्तमजी महाराज
१६. पूज्य श्री मुकुटरामजी महाराज
१७. पूज्य श्री मनोहरदासजी महाराज
१८. पूज्य श्री रामचन्द्रजी महाराज
१६. पूज्य श्री गुरु सदा साहब जी महाराज
२०. पूज्य श्री बाघजी महाराज
२१. पूज्य श्री रामरतनजी महाराज
२२. पूज्य श्री मूलचन्दजी महाराज "द्वितीय"

इन २२ मुनिवरों में से वर्तमान काल में केवल प्रथम, द्वितीय, षष्ठम, सत्रहवें और अठारहवें पूज्य मुनिउत्तमों की समुदायें ही विद्यमान हैं। हस्तलिखित कतिपय पट्टावलियों में उपरिलिखित २२ नामों का कुछ भिन्न रूप में भी उल्लेख मिलता है।

पूज्य श्री मूलचन्द्र महाराज की सम्प्रदायें :

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के प्रथम शिष्य पूज्य श्री मूलचन्द्रजी महाराज की समुदाय से अनेक शाखाएं उपशाखाएं निकली उनमें निम्नलिखित ६ विद्यमान हैं-

१. लीमड़ी मोटी पक्ष "आठ कोटि"
२. लीमड़ी न्हानी पक्ष "छः कोटि"
३. गोंडल मोटी पक्ष "आठ कोटि"
४. गोंडल नान्ही पक्ष "छः कोटि"
५. बरवाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. बोटाद
७. सायला
८. कच्छ "८ कोटि" मोटी पक्ष और
९. कच्छ "छः कोटि" नान्ही पक्ष समुदाय।

दृढ़प्रतिज्ञ आचार्य धन्ना जी महाराज :

पूज्य श्री धर्मदासजी के द्वितीय विद्वान् शिष्य श्री धन्नाजी महाराज सांचोर निवासी मूथा बाघशाह के पुत्र थे। आपने पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के पास वि.सं. १७२७ में श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की। श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण करते ही धन्नाजी म. ने प्रतिज्ञा की - "जब तक पूर्ण शास्त्राभ्यास नहीं कर लूंगा, तब तक एक ही पात्र तथा एक ही वस्त्र रखूंगा और एकान्तर उपवास करता रहूँगा।" वे ८ वर्ष तक इस नियम का पालन करते हुए शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं निष्णात विद्वान् बन गये।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् आपश्री ने मारवाड़ में विचरण कर धर्म का बड़ा ही उल्लेखनीय उद्योत एवं प्रचार-प्रसार किया। सोजत निवासी मोहनोत श्री भूधरजी ने विपुल वैभव, स्त्री और पुत्र आदि के मोह का परित्याग कर वि.सं. १७७३ में पूज्य श्री धन्नाजी के पास निर्ग्रन्थ श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की। पूज्य श्री धन्नाजी महाराज ने अपनी आयु का अवसान समीप देख मेड़ता नगर के स्थानक के एक स्तम्भ की ओर इंगित करते हुए अपने शिष्यों से यह कह कर - "ओ थांवो धान खावे तो अवे ओ धन्नो धान खावे" सविधि संथारा ग्रहण कर लिया और आप मेड़ता नगर में स्वर्गारोही हुए।

क्षमामूर्ति आचार्य श्री भूधरजी महाराज :

पूज्य श्री धन्नाजी के स्वर्गगमन के पश्चात् पूज्य श्री भूधरजी महाराज भव्य जीवों का उद्धार करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते रहे। उन्होंने साधु के लिये प्रयुक्त-

"परीसहरिउ दन्ता,.....निग्गंथा उज्जुदंसिणो।"

इस शास्त्र वचन को अक्षरशःचरितार्थ किया।

पूज्य भूधरजी महाराज दीक्षित होने से पूर्व के अपने गार्हस्थ्य जीवन में एक सुसम्पन्न श्रेष्ठिवर होने के साथ साथ बड़े ही शक्तिशाली एवं साहसी शूरमां थे। एक दिन दुर्दान्त डाकुओं से जूंझते समय उनकी ऊंटनी "सांडनी" की गर्दन डाकुओं के शस्त्राघातों से कट कर कंटीले वृक्ष की शाखाओं में उलझ गई। डाकुओं पर सदा विजय दिलाने वाली अपनी उष्ट्री को तड़पते देखकर शूरवीर श्रेष्ठिवर भूधरजी का अन्तःकरण दया से द्रवीभूत हो तड़प उठा। उन्हें संसार से विरक्ति हो गई।

श्रमण-धर्म में दीक्षित होते ही प्रारम्भ में एकान्तर और तत्पश्चात् कठोर तपश्चरण में द्रुतगति से अग्रसर होते होते पचौले "पांच-पांच उपवासों" के अन्तर से पारणा प्रारम्भ कर दिया।

एक बार विचरण करते हुए आप **कालू** नामक ग्राम में पधारे। वहां ग्रीष्मकालीन मध्याह्न समय पांच उपवास की तपस्या के साथ आप सदा नदी की प्रतप्त बालू में लेट कर सूर्य की आतापना लेते थे। विद्वान् एवं महान् तपस्वी भूधरजी की कीर्ति दिग्दिगन्त में प्रसृत हो गई। एक दिन भूधरजी कालू ग्राम के पास की नदी में मध्यान्ह के समय प्रतप्त बालुका में लेटे-लेटे आतापना ले रहे थे, उस समय एक अन्य मतावलम्बी "कथावाचक पंडित नारायणदास" ने नदी की प्रतप्त बालुका में लेटे हुए भूधरजी के सिर पर कसकर लाठी का प्रहार किया और तत्काल भाग कर कहीं अन्यत्र जा छुपा। भूधरजी के सिर से रुधिर की धारा बह चली। कठिनाई से उठकर भूधरजी महाराज ने अपने पात्र के जल से खून को साफ किया और सिर पर पट्टी बांधकर गांव में लौट आये। भूधरजी महाराज के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन में उस मारने वाले के प्रति किंचित्मात्र भी रोष नहीं था और न किसी से उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ कहा भी। किन्तु किसी ने उसे लट्ठ मार कर भागते हुए देख लिया और अधिकारी को सूचित कर दिया। राज्याधिकारियों ने उस दुष्ट दोषी को पकड़ कर दण्ड देना प्रारम्भ कर दिया और लोह के एक भारी कड़ाव "कटाह" के नीचे दबा दिया।

पूज्य भूधरजी महाराज को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने अन्नजल का परित्याग करते हुए अपने भक्तों को कहा - "जब तक उस व्यक्ति को कष्ट-मुक्त नहीं किया जायेगा तब तक में अन्नजल ग्रहण नहीं करूंगा।" परिणामतः श्रावकवर्ग में घबराहट के साथ हलचल उत्पन्न हो गई कि पचौले की तपस्या का यदि महाराज ने पारणा नहीं किया तो पांच उपवास का प्रत्याख्यान और कर लेंगे और इस प्रकार १० दिन की कठिन तपश्चर्या हो जायगी। अतः श्रावकों ने दौड़-धूप की और उस दुष्ट दोषी को मुक्त कर दिया गया। वह दोषी व्यक्ति तत्काल भूधरजी महाराज के पास आकर उनके चरणों में गिर गया। अपनी मूर्खता भरी क्रूरता के लिये उसने बारम्बार क्षमा मांगते हुए भविष्य में इस प्रकार का कोई दुष्कर्म न करने की प्रतिज्ञा ली। पूज्यश्री भूधरजी महाराज के अलौकिक गुणों से प्रभावित हो कथावाचक नारायणदास ने पूज्य भूधरजी महाराज के पास श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली।

श्री भूधरजी महाराज के शिष्य परिवार में श्री नारायण जी महाराज, श्री जयमलजी महाराज और श्री कुशलोजी महाराज बड़े ही प्रभाव शाली एवं विद्वानूशिष्य थे। आपके एक और विद्वान् शिष्य थे, जिनका नाम जैतसी था।

अपने अन्तिम चातुर्मासावास के लिये एक समय आचार्य भूधरजी महाराज अपने शिष्य परिवार के साथ मेड़ता जा रहे थे। विहार काल में आषाढ़ मास की प्रचण्ड गर्मी से उनके बड़े शिष्य श्री नारायण जी को प्राणापहारिणी प्यास का असह्य परीषह सताने लगा और वे एक डग भी चलने में अक्षम हो गये। तत्काल उनके साथी युवक सन्त पानी के लिये मेड़ता की ओर द्रुतगति से प्रस्थित हुए किन्तु पानी लेकर उनके यथाशीघ्र लौटने से पहले ही नारायण मुनि ने समाधिपूर्वक सुरलोक की ओर प्रयाण कर दिया। मार्ग में कुए थे, फिर भी श्रमण धर्म की रक्षा के लिये उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दे दी। किसी समय आतापनालीन महर्षि भूधरजी के सिर पर लाठी का प्रहार कर क्रूरता की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए नारायणदास ने बोधि प्राप्त हो जाने पर साधु मर्यादा की रक्षार्थ प्राणार्पण कर जैन इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया।

आचार्य भूधरजी महाराज की परम्पराएं :

पूज्य श्री भूधरजी महाराज के शिष्यों से निम्नलिखित परम्पराएं प्रचलित हुईं-

(१) **पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज की सम्प्रदाय उपशाखाएं-**

१. पूज्य श्री रघुनाथजी के पट्टधर शिष्य पूज्य श्री टोडरमल के द्वितीय शिष्य इन्द्रमलजी महाराज के पश्चात् पाट से दो उपशाखाएं प्रचलित हुई, जिनमें भानमलजी महाराज और बुधमलजी महाराज हुए। बुधमलजी महाराजके शिष्य मरुधर केशरी श्री मिश्रीमलजी महाराज हुए।

२. पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज के प्रशिष्य पूज्य श्री भैरोंदासजी से पूज्य श्री चौथमलजी महाराज की पृथक् शाखा प्रचलित हुई।

(२) पूज्य श्री जैतसीजी महाराज की परम्परा। इस परम्परा के तपस्वी श्री चतुर्भुज जी महाराज के पश्चात् यह परम्परा आगे नहीं चली।

(३) पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज के एक मेधावी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिष्य भीखमजी को वि.सं. १८१५ में जैन सिद्धान्त की प्रचलित कतिपय अति गूढ मान्यताओं को लेकर शंका उत्पन्न हुई। उनकी शंकाओं के समाधानार्थ पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज ने निरन्तर दो वर्षों तक भीखमजी "भीखणजी म." को विभिन्न प्रकार की युक्तियों-प्रयुक्तियों से समझाने का प्रयास किया कि वस्तुतः पुण्य प्रकृतियां पाप प्रकृतियां दोनों ही स्वर्ण शृंखला और लोह शृंखला के समान प्राणी के लिये संसार में भवभ्रमण कराने वाली हैं और इन दोनों प्रकार की शृंखलाओं को काटकर इनके बंधन से अपने आपको मुक्त करने वाला साधक ही अन्ततोगत्वा केवली समुद्घात की प्रक्रिया के माध्यम से पूर्णतः भवबन्धन मुक्त होता है तथापि पुण्य प्रकृतियां प्रत्येक प्राणी को मुक्ति पथ पर आरूढ करने और उसे मुक्ति की ओर अग्रसर करने में एक प्रकार के सबल सम्बल के रूप में सहायक होती हैं। भयावहा भवाटवी में दिग्विमूढ हो इतस्ततः भटकने वाले प्राणी को संसार की भीषण भवाटवी के उस सन्धिस्थल तक पहुंचाने में पुण्य प्रकृतियां प्रकाश प्रदीपस्तम्भ का कार्य करती हैं अतः कर्मबन्ध के निविड़ बन्ध में निबद्ध मुमुक्षु के लिये इन पुण्य प्रकृतियों को हेय न माना जाय।

वस्तुत : यह एक जटिल समस्या थी, शास्त्रों के मर्मज्ञ श्री भीखणजी की शंकाओं का समाधान नहीं हो सका। अन्ततोगत्वा गुरु और शिष्य को परस्पर एक दूसरे का परित्याग करना पड़ा और **श्री भीखणजी मुनि ने अपने गुरु से पृथक् तेरह पन्थ "तेरापन्थ" नामक एक पृथक् पन्थ का प्रचलन किया।**

पूज्य धर्मदासजी के शिष्य धन्नाजी, धन्नाजी के शिष्य भूधरजी और भूधरजी के शिष्य रघुनाथजी महाराज की सन्त परम्परा के श्री भीखणजी महाराज द्वारा गठित तेरापन्थ न केवल भारत में ही अपितु देश-विदेशों में भी आज विख्यात है। इस संघ के वर्तमान आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी और युवाचार्य महाश्रमण श्री मुदित मुनि हैं।

(३) पूज्य श्री जयमलजी महाराज की सम्प्रदाय :

पूज्य आचार्य श्री जयमलजी महाराज का जीवन वृत्त वस्तुतः तोरण से मुडे हुए महादमीश्वर नेमिनाथ भगवान् और महान् इन्द्रिय-निग्रही दुष्कर-दुष्कर कार्यकारी आर्य स्थूलभद्र की स्मृति दिलाने वाला उत्कट जीवन चरित्र है।

आचार्य श्री जयमलजी महाराज का जन्म संवत् १७६५ भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी को जोधपुर क्षेत्र के मेड़ता परगने में अवस्थित लांबिया ग्राम में हुआ। पिता का नाम मोहनदासजी मेहता-समदड़िया और माता का नाम था महिमादेवी। इनके पिता कामदार थे। २२ वर्ष की अवस्था में आपका विवाह रीयां "वड़ी" निवासी शिवकरणजी मूथा की सुपुत्री लक्ष्मीदेवी के साथ हुआ।

गौने से पूर्व व्यापारार्थ मित्रों के साथ मेड़ता शहर आये। बाजार बन्द देखकर सन्तदर्शन एवं प्रवचन श्रवण के अभिप्राय से धर्म स्थानक में गये। वहां स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज की शाखा के आचार्य पूज्यवर श्री भूधरजी महाराज के मुख से सेठ सुदर्शन की कथा श्रवण कर आपकी अन्तर्दृष्टि अनायास ही उद्घाटित हो गई और आपने स्वजन स्नेहियों के बारम्बार मना करने पर भी व्याख्यान में ही आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया। व्याख्यान समापन पर उनका मन वैराग्य रंग से रंजित हो गया। माता-पिता, भाई-बहन, सास-श्वसुर, पत्नि आदि सभी को आर्य जम्बूस्वामी की भांति समझाकर वि.सं. १७८७ की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया के दिन आचार्य भूधरजी महाराज से श्रमण-धर्म की दीक्षा ग्रहण की।

"नव परिणीता पत्नी-लाछां देवी का गौने के समय परित्याग कर श्रमण धर्म में दीक्षित होने वाले श्री जयमलजी महाराज जैसा जीवन वृत्त जम्बू स्वामी के पश्चात् अन्य कोई उपलब्ध नहीं होता।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण-धर्म में दीक्षित होते ही एकान्तर प्रारम्भ कर आपने एक प्रहर में पांच सूत्र कण्ठाग्र कर लिये। पांचों तिथियों का विगय-त्याग कर दिया। ५२ वर्ष "अर्द्धशताब्दि" तक लेटकर निद्रा नहीं ली। वि. संवत् १८०५ में अक्षय तृतीया के शुभ प्रसंग पर जोधपुर में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये। आप ४७ वर्षों तक आचार्य पद पर रहे। आपके ५१ शिष्य थे। अनेक राजा-महाराजाओं को सदुपदेश देकर आपने उन्हें व्यसन मुक्त किया। आपका विचरण-क्षेत्र अति विस्तीर्ण था। बीकानेर, जालोर में यतियों की एवं पीपाड़सिटी में पोतियाबंधियों की परम्पराओं का आपने समूलोन्मूलन किया।

जैन धर्म का चतुर्दिक् प्रचार-प्रसार कर आपने नागौर में वि.सं. १८५३ की वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को एक माह के संथारे के साथ स्वर्गारोहण किया। आपके पट्टधर आचार्य रायचंदजी महाराज हुए। तत्पश्चात् आचार्य श्री आसकरणजी महाराज, आचार्य श्री सवलदासजी महाराज, आचार्य श्री कानमलजी महाराज, आचार्य श्री जीतमलजी महाराज, आचार्य श्री लालचन्द्रजी महाराज ये सभी बड़े ही यशस्वी, विद्वान् पाटानुपाट आचार्य हुए वर्तमान में आचार्य-कल्प श्री शुभचन्द्रजी महाराज इस सम्प्रदाय के आचार्यकल्प विशिष्ट पद पर सुशोभित हो रहे हैं।

(४) पूज्य श्री कुशलोजी महाराज का समुदाय, जो पूज्य श्री रतनचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के नाम से विख्यात है। इस यशस्विनी महती महनीया रत्नवंश परम्परा में इतिहास मार्तण्ड आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज अपर नाम "गजेन्द्राचार्य" हुए। वर्तमान में इस परम्परा के आचार्य श्री हीराचंद जी म. है।

महती महनीया श्रमण परम्परा :

चरम चौवीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर द्वारा विक्रम संवत् के प्रादुर्भाव से ४६६ वर्ष पूर्व तदनुसार आज से २५५५ वर्ष पूर्व जिस विश्व कल्याणकारिणी सन्त परम्परा को प्रकट किया और जिस परम्परा में भगवान् महावीर के प्रथम पट्टधर श्री सुधर्मा स्वामी से लेकर आज तक जिन-शासन प्रभावक आचार्य हुए, जिस परम्परा में महान् धर्मोद्धारक धर्मवीर लोंकाशाह, महान् क्रियोद्धारक एवं सन्त परम्परा की रक्षा हेतु अपने प्राणों तक की आहुति देने वाले पूज्य श्री धर्मदासजी, श्री धर्मसिंह जी, श्री जीवराज जी, श्री हरजीऋषि, श्री लवजी ऋषि जैसे महान् सन्त हुए।

इस महती महनीया श्रमण परम्परा की अद्यावधि पट्टावली यहां अविकल रूप से प्रस्तुत की जा रही है-

केवलिकाल "वीर निर्वाण संवत् १ से ६४"

आचार्यनाम -	आचार्यकाल -
१. आर्य सुधर्मा	वीर निर्वाण संवत् १ से २०
२. आर्य जम्बू	वीर निर्वाण संवत् २० से ६४

श्रुत केवली-काल "वीर निर्वाण संवत् ६४ से १७०"

आचार्यनाम -	आचार्यकाल -
३. आचार्य प्रभवस्वामी	वीर निर्वाण संवत् ६४ से ७५
४. आचार्य सय्यंभव स्वामी	वीर निर्वाण संवत् ७५ से ९८
५. आचार्य यशोभद्र स्वामी	वीर निर्वाण संवत् ९८से १४८
६. आचार्य संभूतविजय स्वामी	वीर निर्वाण संवत् १४८ से १५६
७. आचार्य भद्रबाहु स्वामी	वीर निर्वाण संवत् १५६ से १७०

दशपूर्वधर काल "वीर निर्वाण संवत् १७० से ५८४"

आचार्यनाम -	आचार्यकाल -
८. आचार्य स्थूलभद्र	वीर निर्वाण संवत् १७० से २१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. आचार्य आर्य महागिरी वीर निर्वाण संवत् २१५ से २४५
१०. श्री बलसिंह स्वामी २४५ से ३०३
११. श्री सुवन्न स्वामी ३०३ से ३३२
१२. श्री वीर स्वामी ३३२ से ३७६
१३. श्री स्थंडिल स्वामी ३७६ से ४०९
१४. श्री जीतधर स्वामी ४०९ से ४४५
१५. श्री आर्य समद ४४५ से ५०६
१६. श्री नन्दला स्वामी ५०६ से ५९१
१७. श्री नागहस्ति ५९१ से ६६४
१८. श्री रेवन्त स्वामी ६६४ से ७१६
१९. श्री सिंहगणि स्वामी ७१६ से ७८०
२०. श्री स्थंडिलाचार्य ७८० से ८१४
२१. श्री हेमवन्त स्वामी ८१४ से ८४८
२२. श्री नागजिन स्वामी ८४८ से ८७५
२३. श्री गोविन्द स्वामी ८७५ से ८७७
२४. श्री भूतदिन्न स्वामी ८७७ से ९१४
२५. श्री छोहगणि स्वामी ९१४ से ९४२
२६. श्री दुष्यगणि स्वामी ९४२ से ९६०
२७. श्री देवर्द्धिक्षमा श्रमण ९६० से ९८५
२८. श्री वीरभद्र स्वामी ९८५ से १०६४
२९. श्री शंकरभद्र स्वामी १०६४ से १०९४
३०. श्री जसभद्र स्वामी १०९४ १११६
३१. श्री वीरसेन स्वामी १११६ से ११३२
३२. श्री वीरग्राम सेन स्वामी
३३. श्री जिनसेन स्वामी
३४. श्री हरिषेण स्वामी ११६७ से ११९७
३५. श्री जयसेन स्वामी ११९७ से १२२३
३६. श्री जगमाल स्वामी १२२३ से १२२९
३७. श्री देवर्षिजी स्वामी १२२९ से १२३४
३८. श्री भीम ऋषिजी स्वामी १२३४ से १२६३
३९. श्री कर्मजी स्वामी
४०. श्री रामऋषि जी स्वामी १२८४ से १२९९
४१. श्री देव सेनजी १२९९ से १३२४
४२. श्री शंकरसेन जी १३२४ से १३५४
४३. श्र४ लक्ष्मीलाभ जी स्वामी १३५४ से १३५४
४४. श्री रामरिषजी स्वामी १३७१ से १४०२
४५. श्री पदमसूरिजी स्वामी १४०२ से १४३४
४६. श्री हरिसेन जी स्वामी १४३४ से १४६१
४७. श्री कुशलदत्त जी स्वामी १४६१ से १४७४
४८. श्री जीवन ऋषि जी १४७४ से १४९४
४९. श्री जयसेन जी स्वामी १४९४ से १५२४
५०. श्री विजय ऋषिजी १५२४ से १५८९
५१. श्री देवऋषिजी स्वामी १५८९ से १६४४
५२. श्री सूरसेन स्वामी १६४४ से १७०८
५३. श्री महासूरसेन स्वामी १७०८ से १७३८
५४. श्री महासेन जी स्वामी १७३८ से १७५८
५५. श्री जयराम जी स्वामी १७५८ से १७७९
५६. श्री गजसेन जी स्वामी १७७९ से १८०६
५७. श्री मिश्रसेन जी स्वामी १८०६ से १८४२
५८. श्री विजयसिंह जी स्वामी[1] १८४२ से १९१३
५९. श्री शिवराज ऋषि जी[2] १९१३ से १९५७
६०. श्री लालजी मल स्वामी[3] १९५७ से १९८७
६१. श्री ज्ञानजी ऋषि स्वामी[4] १९८७ से २००७
६२. श्री भानुलूणा जी स्वामी[5]
६३. श्री पुरू रूप जी स्वामी २०३२ से २०५२
६४. श्री जीवराज जी स्वामी २०५२ से २०५७
६५. श्री भाव सिंह जी स्वामी २०५७ से २०६५
६६. श्री लघुवर सिंह जी स्वामी २०६५ से २०७५
६७. श्री यशवन्त सिंहजी २०७५ से २०८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८.	श्री रूप सिंहजी स्वामी	२०८६ से २१०६
६९.	श्री दामोदरजी स्वामी	२१०६ से २१२६
७०.	श्री धनराजजी स्वामी	२१२६ से २१४८
७१.	श्री चिन्तामण जी स्वामी	२१४८ से २१६३
७२.	श्री खेमकरण जी स्वामी	२१६३ से २१६८
७३.	श्री धर्मसिंह जी स्वामी	
७४.	श्री नगराज जी स्वामी	
७५.	श्री जयराज जी स्वामी[६]	
७६.	श्री लवजी ऋषि स्वामी[७]	
७७.	श्री सोमजी ऋषि स्वामी	

सामग्री विस्तारभय से स्थानकवासी परम्परा/श्रमण या जिन मति परम्परा का आर्य सुधर्मा से लेकर स्थानकवासी क्रांतिकारी आचार्यों तक का संक्षिप्त इतिहास क्रम ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सका हूँ। यथासमय शोधपूर्ण अन्य सामग्री प्रस्तुत करने का भी विनम्र प्रयास रहेगा।

समस्त सम्प्रदायों के आचार्य वरों – मुनिराजों एवं विद्वद् जनों से यही विनम्र निवेदन है कि वे अपनी-अपनी आचार्य परम्परा एवं विशिष्ठ मुनिवरों के योगदान विषयक सामग्री मुझे प्रेषित करें ताकि भविष्य में और अधिक शोध-खोज पूर्ण सामग्री सुधि पाठकों के कर कमलों में प्रस्तुत कर सकूं।

---

१ – गहन शोध के पश्चात् आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के उत्तराधिकारी आचार्य वीरभद्र का समय वास्तव में वीर निर्वाण संवत् १००६ से ही प्रारम्भ होना चाहिये। क्योंकि आचार्य देवर्द्धि का स्वर्गारोहण वीर निर्वाण संवत् १००६ में हुआ था। भगवान् महावीर के निर्वाण के अनन्तर १००० वर्ष तक पूर्व का ज्ञान रहेगा, इस शास्त्रीय वचन को ध्यान में रखते हुए उनका स्वर्गवास वीर निर्वाण संवत् १००० मान लिया गया है। इस ओर पट्टावलीकारों ने ध्यान नहीं दिया कि - "संवच्छरेण भिक्खा लद्धा उसहेण लोग नाहेण" तथा - "उसभेणं अरहयाकोसलिएणं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवम कोड़ाकोड़ीहिं विइक्कंतेहिं तित्थे पवत्तिए।" इन आगम वचनों में सूत्र लक्षणानुसारिणी संक्षेपशैली में जिस प्रकार क्रमशः एक मास दश दिन का और एक हजार तीन वर्ष आठ मास तथा पन्द्रह दिन कम एक लाख पूर्व जैसे सुदीर्घ समय को छोड़कर "संवच्छरेण" तथा "णवहिं सागरोवमकोडाकोड़ीहिं" इन शब्दों से केवल बड़ी संख्या ही बताई गई है, ठीक उसी प्रकार भगवती सूत्र में पूर्व ज्ञान का सद्भाव ६ वर्ष की लघु अवधि को छोड़कर वीर निर्वाण एक हजार वर्ष तक का ही बताया गया है। यदि सूत्र लक्षणानुसारिणी इस संक्षेप शैली को काल गणना के समय ध्यान में नहीं रखा जाय तो भ. ऋषभदेव द्वारा तीर्थ स्थापना का समय चतुर्थ आरक के प्रारम्भ हो जाने पर मानना पड़ेगा। वस्तुतः महाराज आदिनाथ ऋषभदेव ने जिस समय तृतीय आरक के समाप्त होने में १००३ वर्ष मास और १५ दिन का समय अवशिष्ट रह गया था, उस समय धर्मतीर्थ की स्थापना की।

इन तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाय तो अंतिम पूर्वधर आर्य देवर्द्धिगणि का स्वर्गारोहण काल और भगवान् महावीर स्वामी के २८वें पट्टधर आचार्य वीरभद्र का आचार्य पदारोहण काल वीर निर्वाण संवत् १००६ ही युक्तिसंगत सिद्ध होता है। सुज्ञेषु किं बहुना।

---

१. वि.सं. १४०१ में हुए।

२. पाटन के कुनवी वि.सं. १४२७ में।

३. मानस के बाफणा रईस १४७२ सं. में हुए।

४. सेरड़ा के, सुराणा जाति वि.सं. १५०१ में हुए।

५. भानुलूणा, भीमाजी, जगमालजी तथा हरसेन से ये चार और इकतालीस पुरुष श्री लोंकाशाह के उपदेश से साधु हुए थे, वि.सं. १५३१ में जब भस्मक ग्रह उतरा और दया धर्म का उदय हुआ।

६. जयराज जी, रिष गिरिधर जी प्रमुख और बजरंग जी जाति का चेला लवजी उन दिनों यतियों की क्रियाहीनी देख के यतियों को छोड़कर शास्त्र क्रिया करके जैराज जी के पाट पर बैठे।

७. वि.सं. १७०६ में जिस वक्त यतियों ने "ढूंढ़िया" नाम अपमान करने के लिए रखा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणसंघ के महामहिम आचार्य

आचार्य सम्राट् श्री आत्मारामजी म.

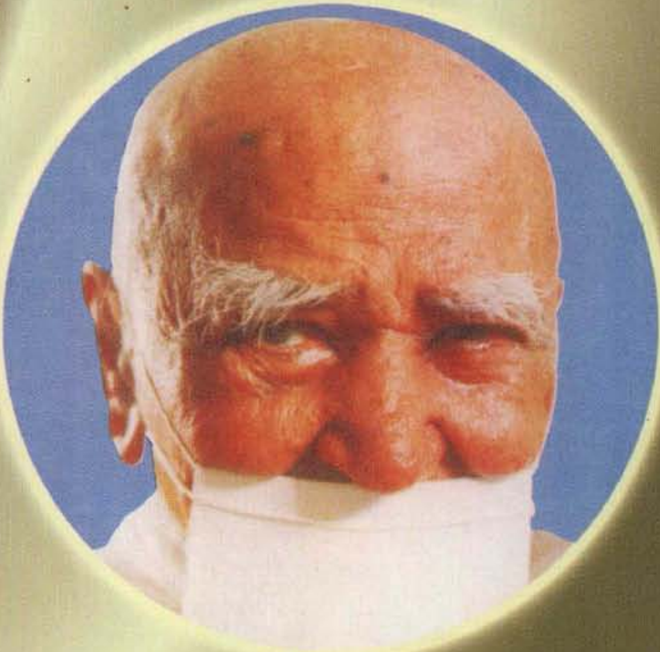

आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म.

आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म.

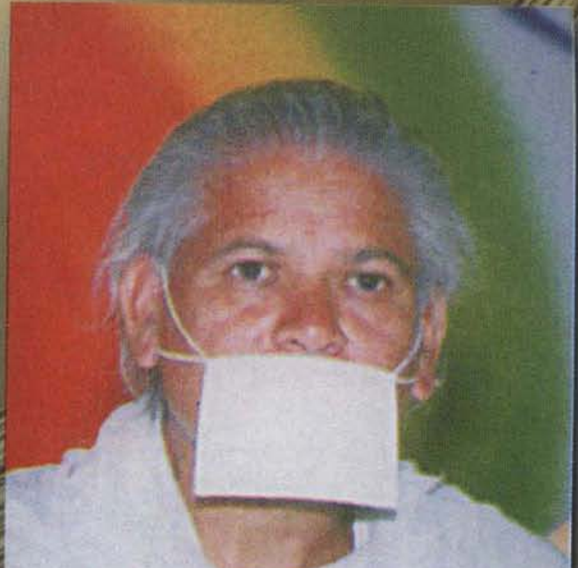

आचार्य श्री शिवमुनिजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

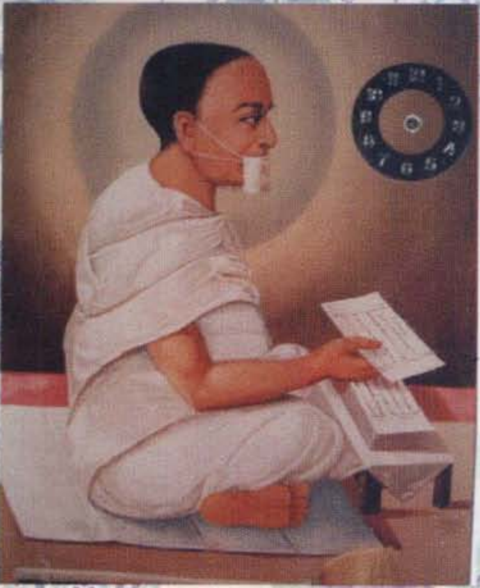

युगपुरुष आचार्य श्री अमर सिंह जी महाराज

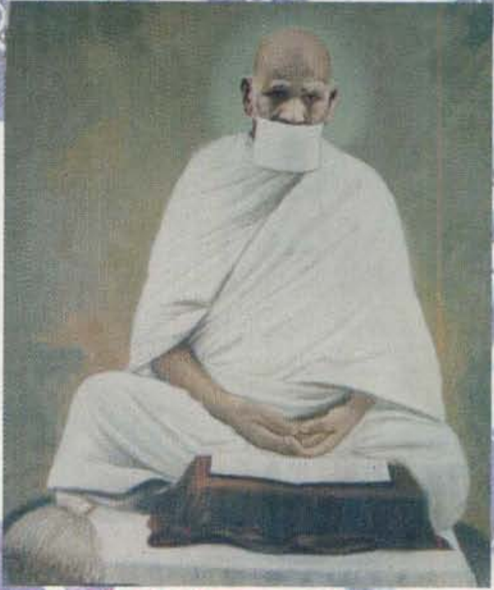

आचार्य श्री सोहनलालजी महाराज

आचार्य श्री कांशीरामजी महाराज

पंजाब प्रवर्तक गुरुदेव
श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज

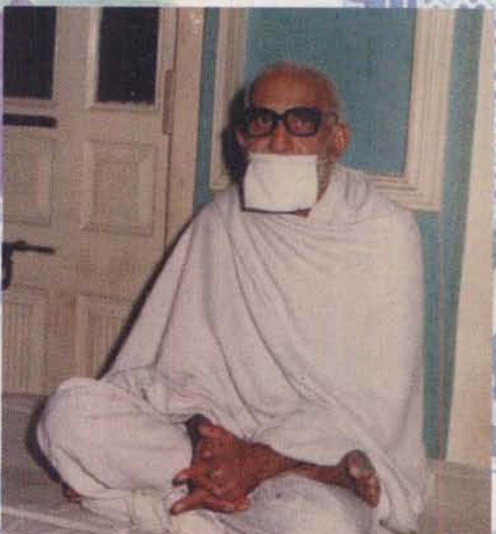

पंडितराज गुरुदेव
श्री महेन्द्रकुमारजी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणसंघीय सलाहकारमंत्री

श्री सुमनमुनिजी महाराज

तपस्वी सेवाभावी

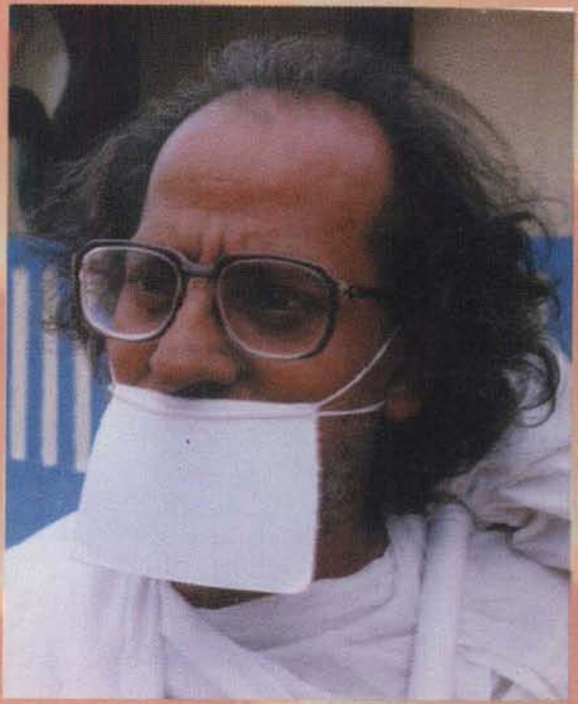

मुनि श्री सुमन्तभद्रजी म. 'साधक'

सेवाभावी सुशिष्य

श्री मेजरमुनि जी म.

उग्रविहारी विद्याभिलाषी

मुनि श्री प्रवीणकुमारजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

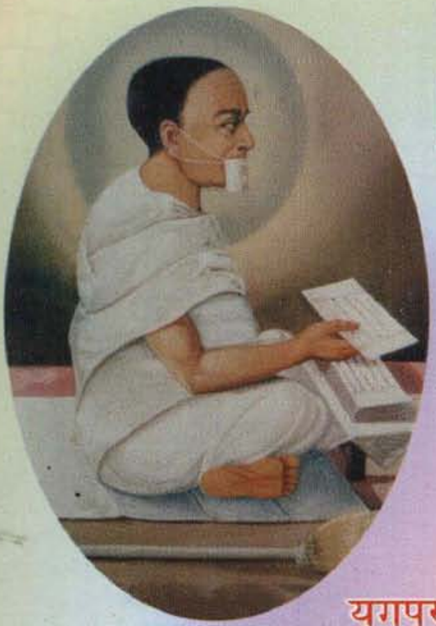

युगपुरुष आचार्य श्री अमरसिंहजी म.

तपस्वी श्री गेंडेरायजी म.

गणि श्री उदयचन्दजी म.

महाघोर तपस्वी श्रीनिहालचन्द्र जी म.

सेवाभावी श्री कपूरचन्दजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

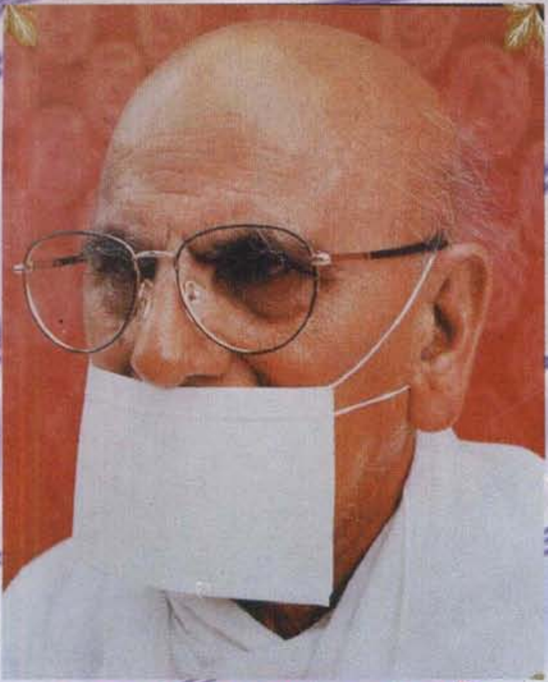

शासन प्रभावक व्याख्यान वाचस्पति
कविरत्न श्री सुरेन्द्रमुनिजी म.सा.

युवा मनीषी श्री सुभाषमुनिजी म.

प्रवचन दिवाकर श्री सुधीरमुनिजी म.

विद्याप्रेमी श्री संजयमुनिजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुश्रुत श्री नरपतरायजी म.

गणी श्री उदयचन्दजी म.

व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म.

उपप्रवर्तक तपस्वी श्री सुदर्शनमुनिजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्डित श्री राजेन्द्रकुमारजी म.

पण्डित श्री ब्रह्मरिषी जी म.के स्वर्गवास की फोटू.

पंजाब श्रमण संघ के रत्न : पूज्य श्री सत्येन्द्रमुनिजी म.
व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म., युवाचार्य श्री शुक्लचंदजी म.,
श्री बलवंतरायजी म., गणावच्छेदक श्री रघुवरदयालजी म..

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवर्तिनी महार्या श्री पार्वतीजी म.

प्रवर्तिनी महासाध्वी श्री राजमतिजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंजाब श्रमणसंघ की आचार्य परम्परा

पंजाब में मुनि परम्परा कब और कैसे प्रारंभ हुई यह एक विस्तृत चिन्तन का विषय है। कुछ विद्वद् मनीषियों मुनियों द्वारा इस दिशा में काफी चिन्तन और अन्वेषण कार्य हुआ है। विशेष रूप से इस दिशा में इतिहास केसरी विद्वद्वर्य पंडित रत्न गुरुदेव श्री सुमन मुनिजी म. ने कार्य किया है। प्राचीन हस्तलिखित पट्टावलियों तथा पाण्डुलिपियों की खोज करके उनके आधारों पर आप इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पंजाब की धरती पर सर्वप्रथम 'जिन धर्म' की सम्यक् रूप से प्ररूपणा करने वाले जो महापुरुष थे उनका नाम आचार्य श्री हरिदास जी महाराज था।*

प्राप्त ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह भी सिद्ध होता है कि आचार्य प्रवर श्री हरिदास जी म. से पूर्व भी पंजाब में जिन धर्म विद्यमान था पर वह यंत्र-तंत्र के विश्वासी यतियों द्वारा संचालित था जिनमें विशुद्ध श्रमणाचार का पक्ष गौण और शिथिलाचार व लोकैषणा का पक्ष प्रमुख था। पंजाब के क्षितिज पर आचार्यवर श्री हरिदास जी म. रूपी सूर्योदय के साथ ही यति परम्पराएं शनैः-शनैः अपना प्रभाव खोने लगीं। विशुद्ध संयम और क्रियावाद को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वह प्रतिष्ठा वर्तमान क्षण तक चिरंजीव है।

आचार्य श्री हरिदास जी महाराज अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में यति परम्परा में दीक्षित हुए थे। परन्तु आगमों के अध्ययन से उनमें क्रिया-रुचि जागृत हुई। यतिकर्म को तिलांजलि देकर वे सद्गुरु की खोज में निकल गए। अहमदाबाद में सद्गुरु के रूप में उन्हें लवजी ऋषि का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उनसे आपने प्रव्रज्या ग्रहण की।

पंजाब परम्परा का संक्षित इतिहास प्रस्तुत करते हुए मैं आचार्य श्री हरिदास जी म. के गुरु श्री लवजी ऋषि जी म. के परिचय से इस परम्परा लेखन का प्रारंभ करना तर्कसंगत समझता हूँ क्योंकि उन्हीं महापुरुष की कृपा से पंजाब में संयम-सौरभ का प्रसार हुआ था। पूज्यवर्य श्री लवजी ऋषि जी म.का यथाप्राप्त परिचय निम्न है-

श्री लवजी ऋषि

आपका जन्म वि.सं. १६७४ में सूरत नगर में श्रीमाल जाति के सामन्त श्री वीर जी वोरा की पुत्री फूलबाई की रत्नकुक्षी से हुआ। बारह वर्ष की अल्पावस्था में वि.सं. १६८६ में आपने यतिराज वज्रांग जी से दीक्षा ग्रहण की। शास्त्र स्वाध्याय और आत्मचिन्तन से आपके आत्मचक्षु खुल गए। आपने अनुभव किया – विशुद्ध संयम की आराधना ही आत्मकल्याण का मूल मंत्र है। यतिकर्म अर्थात् यंत्र-मंत्रादि की साधना का आत्मकल्याण से कोई संबंध नहीं है। दृष्टि मिली तो सृष्टि बदल गई। सं. १६६४ में आपने सर्वविरति साधु दीक्षा धारण कर ली और आत्मसाधना तथा शासन प्रभावना का पुण्य अनुष्ठान करने लगे। आप श्री जयराज जी म. के पट्ट पर विराजमान हुए और आर्यसुधर्मा स्वामी की पट्ट परम्परा के ७६ वें पट्टधर बने।

आपका विचरण क्षेत्र अत्यन्त विशाल रहा। आप अठाइस वर्षों तक आचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे। वि.सं.

* कुछ पट्टावलियों में इनका नाम हरदास व हरजी ऋषि भी उल्लिखित है। परन्तु पंजाब पट्टावलि में 'हरिदास' ही उल्लिखित है। प्रतीत होता है लेखन स्खलना के कारण हरिदास का हरदास बन गया है। 'ऋषि' शब्द यह विशेषण ऋषि सम्प्रदाय का वाचक था और अद्यतन भी नामकरण की यही परम्परा चल रही है। संभवतः इसी कारण 'हरऋषि' ऐसा नामोल्लेख हुआ है। श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा सम्पादित काव्य संग्रह में भी इनका नाम 'हरिदास' संज्ञा से अभिहित हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२२ में अहमदाबाद में विरोधियों की प्रेरणा से किसी महिला ने आप को विषमोदक वहरा दिए जिनके भक्षण से आपका देहावसान हो गया।

एक प्राचीन प्रमाण के आधार पर लवजी ऋषि के छह शिष्य थे, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं- (१) सोमजी ऋषि (२) कानजी, (३) ताराचन्द जी (४) जोगराज जी, (५) बालोजी और (६) हरिदास जी। इनमें से प्रथम और अन्तिम शिष्य क्रम से पूज्य पाट पर विराजित हुए।

सोमजी ऋषिः

आपका जन्म कालूपुरा अहमदाबाद में हुआ। वि. सं. १७१० में आपने अहमदावाद में ही लवजी ऋषि के चरणों में जिनदीक्षा अंगीकार की। दीक्षा के उपरान्त आप स्वाध्याय और साधना में रम गए। अपनी प्रवचन प्रभावना के लिए आप विशेष विख्यात हुए। वि.सं. १७२२ में आप संघ के आचार्य बने। वि.सं. १७३७ में आपका स्वर्गवास हुआ।

(१) पूज्य श्री हरिदास जी म.

आप श्री लवजी ऋषि जी म. के अन्तिम शिष्य और सोमजी ऋषि जी के गुरु भ्राता थे।* सोमजी ऋषि के वाद आप पूज्य पाट पर विराजित हुए। आप मूलतः पंजाब के निवासी थे। पहले आपने यति-दीक्षा अंगीकार की थी। आप लाहौर की लोंकागच्छीय उत्तरार्द्ध शाखा की गद्दी के यति थे। वहीं पर रहते हुए आपने प्राकृत, संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। ज्ञानाराधना से आपमें संयम की रुचि विकसित हुई। परिणामस्वरूप सच्चे गुरु की खोज आपने प्रारंभ की। इसी संदर्भ में आप अहमदाबाद गए। वहां पर लवजी ऋषि और सोमजी ऋषि से भेंट हुई। इस प्रकार श्री हरिदास जी को सद्गुरु की प्राप्ति हुई। आपने श्री लवजी ऋषि का शिष्यत्व अंगीकार कर लिया। क्योंकि आप बहुभाषाविद् थे इसलिए गुर्वाज्ञा से आप धर्मप्रभावना के लिए अनेक प्रान्तों को स्पर्शते हुए पुनः पंजाब प्रान्त में पधारे। आपके पंजाव पदार्पण की यह घटना लगभग वि.सं. १७३० के आस-पास की है। आपने अपने जीवन का शेष भाग पंजाब में ही धर्म प्रभावना करते हुए व्यतीत किया।

आप अपने समय के अत्यन्त प्रभावक मुनिराज थे। कई मुमुक्षु आपके शिष्य बने। सोमजी ऋषि के देवलोक गमन के उपरान्त पंजाव श्री संघ ने एकमत से आपको उनका उत्तराधिकारी घोषित करते हुए अपना आद्य आचार्य मान लिया। इस प्रकार आप पंजाव परम्परा के आद्य आचार्य स्वीकृत हुए।

★ एक मान्यतानुसार आप सोमजी ऋषि के शिष्य माने गए। परन्तु एक प्राचीन प्रमाण से यह सहज सिद्ध होता है कि आप लवजी ऋषि जी के ही शिष्य थे।

प्रमाण : प्रथम साध लवजी भए, दुति सोम गुरु भाय।
जग तारण जग में प्रगट, ता सिष नाम सुणाय।।१।।
क्रिया-दया-संजम सरस, धन उत्तम अणगार।
लवजी के सिष जाणिए, हरिदास अणगार ।।२।।
लव जी सिष सोमजी, कानजी ताराचन्द।
जोगराज वालो जी, हरिदास अमंद ११३।।

उपरोक्त प्रमाण एक प्राचीन पंजाब पट्टावलि जो पद्यात्मक है से उद्धृत है जिसकी एक प्रति पूज्यवर्य श्री सुमन मुनिजी म. तथा एक प्रति पूज्य श्री सहजमुनि जी के पास है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक साक्ष्य के आधार पर आप के सात शिष्य थे। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं - (१) श्री कान्हजी (२) श्री प्रेमचन्द जी (३) श्री वृन्दावनलालजी (४) श्री लालमणजी (५) श्री तपस्वी लाल जी (६) श्री मनसा राम जी और (७) श्री हरसहाय जी। ये सभी शिष्य बुद्धिमान, विद्वान, तपस्वी, संयमी और वर्चस्वी थे।

आचार्य श्री हरिदास जी का स्वर्गवास लाहौर में हुआ। इनके बाद इन्हीं के शिष्य श्री वृन्दावन लाल जी ऋषि पूज्यपाट पर विराजित हुए।

(२) पूज्य श्री वृन्दावनलाल जी ऋषि

आप आचार्य श्री हरिदास जी महाराज के सुयोग्य शिष्य और कुशल संघशास्ता थे। आप कितने वर्षों तक पूज्य पाट पर रहे यह जानकारी अनुपलब्ध है।

(३) पूज्य श्री भवानीदास जी महाराज

आप आचार्य श्री हरिदास जी महाराज के प्रशिष्य और पूज्य श्री वृन्दावन लाल जी ऋषि के बाद संघशास्ता नियुक्त हुए। शेष परिचय अनुपलब्ध है।

(४) पूज्य आचार्य श्री मलूकचन्द्र जी महाराज

आप पूज्य श्री भवानीदास जी महाराज के देवलोक के पश्चात् उनके पाट पर विराजित हुए। आप अपने समय के महान तपस्वी, आगम निष्णात और उच्च क्रियाशील मुनिराज थे। आपकी महानता को संदर्शित करने वाली कुछ घटनाएं वर्तमान में भी सुनी जाती हैं। दो घटनाओं का यहां संक्षिप्त उल्लेख अभीष्ट लग रहा है –

(१) एक बार आप विचरण करते हुए अपनी शिष्य मण्डली के साथ सुनाम नगर में पधारे। उस समय वहां पर यतियों का एकछत्र प्रभाव था। परिणामतः आहार पानी की प्रार्थना तो दूर रही किसी ने ठहरने के लिए विश्राम स्थल भी नहीं दिया। इस स्थिति में भी आपका मुनि मन क्लान्त न बना। आप नगर के बाहर तालाब के किनारे बनी छत्रियों में जाकर ठहर गए। वहीं पर आप निराहारी रहते हुए अपने शिष्यों को शास्त्र स्वाध्याय कराने लगे। आठ दिन बीत गए। यतियों से प्रभावित जैन समुदाय आपकी शान्त साधना देखकर दंग रह गया। कुछ लोग आपके निकट आने लगे। आपकी तपस्विता, तेजस्विता और साधना से प्रभावित लोगों ने आहार पानी की प्रार्थना की। इस पर आपने कहा-"जो व्यक्ति सविधि सामायिक तथा सन्तदर्शन का नियम ग्रहण करेगा उसी के यहां से साधुवृत्ति के अनुरूप आहार-पानी ग्रहण करेंगे।" यह सुनकर अनेक लोगों ने नियम ग्रहण किया और श्रमणोपासक बने। इस प्रकार सुनाम नगर में आपने सम्यक्त्व का प्रदीप प्रज्वलित किया। यह घटना सं. १८१५ के लगभग की है। ★★

(दो) एक बार आप अम्बाला की दिशा में विहार कर रहे थे। मार्ग घने जंगलों से गुजरता था। कुछ चोरों ने आपको घेर लिया। आप पर तलवार से प्रहार किए। पर चोरों की तलवार आपके शरीर पर घाव न कर सकी। आपकी इस अलौकिकता से चोर दंग रह गए और आपके श्री चरणों पर नत हो गए। ★★

आपके शासनकाल में धर्मसंघ का चहुंमुखी विकास हुआ। आपके अनेक शिष्य बने जिनमें श्री महासिंहजी, श्री भोजराजजी एवं श्री मनसाराम जी के नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

पंजाब के अतिरिक्त राजस्थान आदि प्रदेशों में भी आपने विचरण किया। इतर प्रदेशों में आप "पंजाबीपूज" के नाम से विख्यात रहे। आपका मुनिसंघ "मलूकचन्दजी महाराज को टोलो" नाम से उस समय पुकारा जाता था।

आपके समय में संघ में ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुणों की अच्छी वृद्धि हुई। आपके समय में ही अर्थात् वि.सं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८१० वैशाख शुक्ला ५ मंगलवार को पंचेवर ग्राम में चार सम्प्रदायों का सम्मेलन हुआ था। उसमें आपके शिष्य श्री मनसाराम जी, श्री भोजराज जी आदि मुनि तथा महार्या खेमाजी की आज्ञानुवर्ती साध्वियां श्री दया जी, मंगला जी, फूलां जी आदि सम्मिलित हुए थे।

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर आपका शासन काल १८३३ तक रहा।

(५) आचार्य श्री महासिंह जी महाराज

आप आचार्य श्री मलूकचन्द जी महाराज के योग्य शिष्य थे। गुरु के देवलोक गमन के पश्चात् आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आप तपस्वी, मनस्वी और यशस्वी मुनिराज थे। आपकी शिष्य संख्या भी विशाल थी। मुनि श्री गोकुलचन्द जी, श्री कुशलचन्द्र जी, श्री अमोलकचन्द्र जी तथा श्री नागरमल जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

सं. १८६१ में आश्विन सुदि पूर्णिमा के दिन **सुनाम नगर** में आपने संथारा किया और कार्तिक वदी अमावस्या (महावीर निर्वाण दिवस) के दिन आप स्वर्गवासी हुए। श्रद्धालु श्रावकों ने आपकी स्मृति में एक 'स्मृति स्तंभ' का निर्माण कराया जो आज भी विद्यमान है।

(६) श्री कुशलचन्द जी महाराज

आचार्य श्री महासिंह के वाद आप आचार्य पद पर आसीन हुए। आपका कार्यकाल वि.सं. १८६१ से १८६८ तक रहा। आप कुशल संघशास्ता और प्रभावक मुनिराज थे। कई विद्वान और मान्य मुनि आपके आज्ञानुवर्ति थे। आपके देवलोक गमन का समय शोध का विषय है।

(७) श्री छजमल जी ऋषि

आचार्य कुशलचन्द्र जी महाराज के पश्चात् पंजाब मुनि संघ दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। इस विभाग के पीछे क्या कारण रहे यह अज्ञात है। एक सम्प्रदाय के शास्ता श्री छजमल जी ऋषि हुए तथा दूसरे सम्प्रदाय के शास्ता आचार्य श्री नागरमल जी महाराज हुए।

पूज्यवर्य श्री छजमल जी ऋषि का इतिवृत्त अभी तक अनुपलब्ध है। इतना ही ज्ञात हो सका है कि आप जाति के कुम्हार थे और तपस्वी सन्तरत्न थे। आपके शिष्यों की संख्या स्वल्प सी ही प्रतीत होती है। आपके जो शिष्य थे वे आपके जीवन काल में ही दिवंगत हो गए थे। वृद्धावस्था में आप भदौड़ नगर में स्थिरवासी वने, अन्त में वहीं पर आपका स्वर्गवास हो गया। आपके स्वर्गवास के पश्चात् आपकी सम्प्रदाय में साधु तीर्थ का विच्छेद हो गया।

एक जनश्रुति एवं लिखित घटना से ज्ञात होता है कि श्री मूलां जी म. जिनकी दीक्षा वि.सं. १८६७ में तथा देहान्त वि.सं. १६०३ में हुआ के आप संसार पक्ष से मौसा लगते थे। इन्ही साध्वी की दादी गुरुणी श्री ज्ञानां जी ने आपकी निश्राय में शिष्य वना कर मुनि परम्परा को सुरक्षित रखा था।

(८) पूज्य पं. रामलाल जी महाराज

आपका इतिवृत्त अभी तक अनुपलब्ध है। कुछ हस्तलिखित सामग्री तथा श्रुति परम्परा के अनुसार आपका परिचय इस प्रकार है-

पूज्यवर्य श्री छजमल जी महाराज के स्वर्गवास के बाद एक अनुवदन्ति के अनुसार पंजाब में मुनि संघ/साधुतीर्थ का विच्छेद हो गया। उस समय पूज्य श्री छजमल जी महाराज की परम्परा की कुछ साध्वियां जिनकी प्रमुखा ज्ञानां जी थीं पंजाव प्रदेश में विचरण कर रही थीं। आर्या ज्ञानां जी की प्रशिष्या श्री मूलांजी के तपस्वी श्री छजमल जी संसार पक्षीय मौसा थे। साधु तीर्थ के विच्छेद से ज्ञानां जी का हृदय आहत हो उठा। उन्होंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु तीर्थ की पुनर्स्थापना का संकल्प कर लिया। उस समय आर्या ज्ञानांजी सुनाम नगर में विराजित थीं। सुनाम के ही पास के किसी गांव का एक भाई जिसका नाम निहालचन्द था और जो जाति से राजपूत था जैन संतों, साध्वियों के प्रति विशेष श्रद्धाशील था। वह प्रतिदिन साध्वी ज्ञानां जी के दर्शन करने आता। वार्ता से साध्वीजी ने जान लिया कि निहालचन्द का एक सर्वविध योग्य पुत्र है। उन्होंने निहालचन्द से उसके पुत्र की याचना की। पुत्र की स्वेच्छा को केन्द्र मानकर निहालचन्द ने साध्वी जी की बात स्वीकार कर ली।

निहालचन्द राजपूत का पुत्र रामलाल आर्या ज्ञानां जी के सम्पर्क में आया। साध्वी जी के उपदेशों से वह विरक्त हो गया और उसने मुनि बनने का संकल्प कर लिया। प्राथमिक साध्वाचार की शिक्षा से स्नात कर साध्वी जी ने रामलाल को आर्हती दीक्षा प्रदान की और उन्हें तपस्वी श्री छजमल जी महाराज का शिष्य घोषित किया। इस प्रकार श्री रामलाल जी महाराज मूल में "याकिनी महत्तरा सुनू आचार्य-हरिभद्र" की तरह "साध्वी ज्ञाना सुनू" हैं। श्री रामलाल जी म. ने आगम अध्ययन आर्या जी से ही प्राप्त किया। दिन में वे साध्वी जी से वाचना लेते और रात्री में उपाश्रय में रहकर उसका अनुचिन्तन और कण्ठस्थ करते। इस प्रकार थोड़े ही समय में आप अच्छे विद्वान् मुनि बन गए। आपको 'पंडित' उपनाम से पुकारा जाने लगा। वस्तुतः आप थे भी पण्डित। आपके विरोधी भी आपके पाण्डित्य को स्वीकार करते थे। बुद्धि विजय जो पहले बूटेराय नाम का स्थानकवासी मुनि था ने अपनी पुस्तक "मुखपत्ति चर्चा" में आपको पण्डित स्वीकार करते हुए लिखा है – "रामलाल मलूकचन्द के टोले का साधु था, अपने मत में पंडित था, बत्तीस सूत्र का अपने मत की आम्नाय करके जानकार था।"

आपकी बुद्धि अति सूक्ष्म और निर्मल थी। आपने बत्तीसों आगमों को कण्ठस्थ कर लिया था। उस युग के साधु शास्त्र और पुट्ठों को कन्धों पर उठा कर चलते थे और जिस साधु के पास जितने अधिक शास्त्रों का भार होता वह उतना ही बड़ा विद्वान माना जाता था। पर अपनी स्मरण शक्ति के बल पर पंडित श्री रामलाल जी म. ने उस युग की उस मान्यता को मिटा दिया था। वे स्वल्प वस्त्रों और पात्रों के अतिरिक्त अपने पास कुछ नहीं रखते थे।

एक बार आप हरियाणा प्रान्त के गांव रिण्ढाणा में पधारे। दो चार दिन विराजने के बाद विहार करने लगे। श्रावक वृन्द आया और प्रार्थना करने लगा - गुरुदेव! हमारे क्षेत्र में कुछ दिन तो विराजिए।

उत्तर में आपने अति कोमल वचन कहे - "भाइयो! यहाँ हमारे माल का कोई खरीददार दिखाई नहीं दिया, इसीलिए विहार कर दिया। व्यापारी तो वहां दुकान लगाता है जहां उसका माल बिक सके। हम भी तो भगवान् के धर्म के व्यापारी हैं। कोई भाई कथा, जिनवाणी सुनने नहीं आया तो हमने विहार कर दिया।"

इस पर एक श्रावक ने पूछा - महाराज! आपको कथा करनी आती है? आपके पास शास्त्र तो एक भी दिखाई नहीं देता।

आप ने कहा - श्रावक जी! आप कौन सा शास्त्र सुनना चाहते हैं? भगवती जी, ठाणांग जी या पन्नवणा?

आपकी वाणी सुनकर श्रावकवृन्द दंग रह गया। फिर आप वहां कई दिन तक विराजे और श्रावकों को आगमवाणी का अमृतपान कराते रहे।

आपका विहार क्षेत्र भी काफी विशाल रहा। पंजाब के अतिरिक्त आपने दिल्ली, उत्तर प्रदेश, तथा राजस्थान तक की पद यात्राएं कीं। वि. सं. १८६७ का वर्षावास आपने जयपुर में किया। वहीं पर श्री अमरसिंह जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(आचार्य श्री अमरसिंह जी म.) आपके दर्शनार्थ आए तथा आपसे दिल्ली पधारने की तथा आपके श्री चरणों में संयम ग्रहण करने की प्रार्थना तथा इच्छा व्यक्त की थी।

दीक्षा के उपरान्त कुछ वर्षों तक आप एकाकी रहे। बाद में आपके कई शिष्य बने। वृद्ध कथन के अनुसार आपके बारह शिष्य थे। परन्तु सात शिष्यों का ही नामोल्लेख उपलब्ध होता है। उनमें भी तीन के अतिरिक्त शेष शिष्यों का इत्तिवृत्त अनुपलब्ध है। आपके सात शिष्यों की नामावली है-(१) श्री दौलत राम जी (२) श्री लोटन दास जी (३) श्री धनीराम जी (४) श्री देवीचन्द जी (५) श्री अमर सिंहजी (६) श्री रामरत्न जी (७) तपस्वी श्री जयंति दास जी म.। अन्तिम तीन मुनिराजों का इतिवृत्ति ही वर्तमान में उपलब्ध है।

पंडित श्री रामलाल जी म. तपस्वी श्री छजमल जी म. के पश्चात् प्रथम संत पुरुष हुए जिनसे वर्तमान पंजाब सम्प्रदाय का उद्‌भव हुआ। आप का देहावसान दिल्ली चान्दनी चौक के बारहदरी स्थानक में वि.सं. १८६८ में आश्विन मास में हुआ।

आपके बाद आपके पंचम शिष्य श्री अमरसिंह जी म. मुनिसंघ के आचार्य बने जिनका परिचय आगे दिया जा रहा है।

(६) आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज

आप अपने युग के एक ज्योतिष्मान आचार्य थे। अपनी विलक्षण प्रतिभा और उत्कृष्ट संयम साधना से आपने पंजाब स्थानकवासी संघ में नवीन प्राणों का संचार किया। आपकी संयमीय सुगन्ध दिग्दिगन्त तक व्याप्त हो गई थी। संक्षेप में आपका इतिवृत्त यूं है –

आप का जन्म पंजाब प्रान्त के अमृतसर नगर में लाला बुधसिंह तातेड़ की धर्मपत्नी श्रीमती कर्मो देवी की रत्नकुक्षी से वि.सं. १८६२ में वैशाख कृष्णा द्वितीया को हुआ। यह एक सम्भ्रान्त जौहरी कुल था।

कालक्रम से आप सोलह वर्ष के हुए। आपके माता-पिता ने आपका विवाह स्यालकोट निवासी लाला हीरालाल जी की पुत्री सुश्री ज्वालादेवी के साथ सम्पन्न कर दिया। आप पांच सन्तानों के पिता बने जिनमें दो पुत्रियां तथा तीन पुत्र थे। पर पुत्रों का संयोग आपके भाग्य में न था। दो पुत्र तो जन्म के कुछ ही समय बाद दिवंगत हो गए। तृतीय पुत्र जिस पर आपका विशेष अनुराग था वह भी आठ वर्ष की अवस्था में आपकी आंखों से ओझल हो गया। हिमालय सा अचल आपका धैर्य डांवाडोल बन गया। ममत्व का तटबन्ध बिखर गया। कोमल भावनाओं से सृजित राग का वितान बिखर गया। उस क्षण विरासत में मिले संस्कार आपका आधार बने। राग का प्रासाद बिखर जाने से आप बिखरे नहीं। अपितु आपने विराग के अनन्त नभ पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर दी। आपका विश्वास स्थिर हो गया कि प्रत्येक संयोग की अन्तिम परिणति वियोग ही है। आपका मन निर्वेद की साधना के लिए कृतसंकल्प बन गया।

आप जौहरी थे। व्यवसाय के लिए दिल्ली और जयपुर आपका आवागमन रहता था। उसी संदर्भ में एक बार आप जयपुर गए। वहां पर आपको चातुर्मासार्थ विराजित पूज्य श्री रामलाल जी म. के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तपस्वी और त्यागी मुनि के दर्शन कर आपका वैराग्य प्रबलतम बन गया। आपने मुनि श्री से दिल्ली पधारने की प्रार्थना की। साथ ही आपने अपने भीतर उपजे वैराग्य से मुनि श्री को परिचित कराया।

जयपुर से लौटकर आपने अपने सांसारिक दायित्वों को संपूर्ण किया। अपनी दोनों पुत्रियों के विवाह सम्पन्न किए। आपने अपना पूरा कारोबार निकटस्थ परिवार जनों को सौंप दिया। तब तक आपकी धर्म प्राण पत्नी भी दिवंगत हो चुकी थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैराग्य रस से भीगा मन लिए आप अमृतसर से दिल्ली के लिए प्रस्थित हुए। मार्ग में सुनाम नगर में रुके। वहां दो मुमुक्षुओं – श्री रामरत्न जी और श्री जयंतिदास जी से आपकी भेंट हुई। आपके वैराग्य से उक्त दोनों पुण्यात्माएं भी विरक्त बन गईं। इस प्रकार आप तीनों मुमुक्षु दिल्ली में विराजित पंडित श्री रामलाल जी म. के श्री चरणों में पहुंचे। एक साथ तीन मुमुक्षुओं को पा कर पूज्य पंडित जी महाराज अति प्रसन्न हुए। आपके सच्चे वैराग्य को देखते हुए पूज्य श्री ने वि.सं. १८६८ की वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन आप तीनों को दीक्षा-मंत्र प्रदान कर दिया।

अमरसिंह से आप मुनि श्री अमरसिंह जी बन गए। उस समय आपकी आयु ३६ वर्ष थी। उस वर्ष का वर्षावास आपने गुरुचरणों में रहते हुए दिल्ली चांदनी चौक में ही किया। पूज्य पंडित जी महाराज ने स्वल्प समय में ही आपको बत्तीस आगमों के मर्म का अमृतपान कराया।

पूज्यवर्य पंडित श्री रामलाल जी म. का स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। आप गुरु सेवा में निमग्न हो गए। कुछ ही समय बाद पूज्य श्री समाधिमरण को उपलब्ध हो गए। आपके लिए यह एक और अनभ्र वज्रपात था। पर आप विचलित नहीं हुए। अध्ययन और साधना में आप गहरे से गहरे पैठते चले गए। आपकी ज्ञानपिपासा अद्भुत थी। आपने विज्ञ श्रावकों और अन्य सम्प्रदायों के मुनियों से भी ज्ञान प्राप्ति में कभी संकोच नहीं किया। परिणामतः कुछ ही वर्षों में आप लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् मुनिराज बनकर पंजाब मुनि संघ के क्षितिज पर देदिप्यमान सूर्य बनकर प्रगट हुए।

आपने उत्कृष्ट लगन और अटल निष्ठा से पंजाब श्री संघ का चहुंमुखी विकास किया। व्यर्थ विवादों में आपकी रुचि न थी। तत्कालीन मुनियों और गुरु भाइयों को आपने अपने मधुर व्यवहार से एक सूत्र में पिरोया। उसी दौरान श्री मुश्ताकराय जी, श्री गुलाबराय जी, श्री विलासराय जी आदि आपके शिष्य बन चुके थे। आपका प्रभा-क्षेत्र अविराम विस्तृत होता जा रहा था। तत्कालीन मुनि संघ और श्रावक संघ आपको अपना अघोषित नेता मानने लगा था।

वि.सं. १६१३ में आप दिल्ली चान्दनी चौक में पधारे। वहां पर आपका सम्मिलन पंडित मुनिराज स्वामी श्री कन्हीराम जी म. से हुआ। पूज्य पंडित जी म. आपके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने श्रीसंघ के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि श्री अमरसिंह जी महाराज को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाए। इस प्रस्ताव से मुनि संघ तथा श्रावक संघ में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। अन्ततः वि.सं. १६१३ वैशाख कृष्णा द्वितीया की पावन वेला में चतुर्विध श्रीसंघ ने समवेत स्वर से आपको पंजाब मुनि सम्प्रदाय का आचार्य मनोनीत किया। आचार्य पद की प्रतीक चादर पंडित श्री कन्हीराम जी म. ने आपको प्रदान की। तेरह वर्षों के पश्चात् अर्थात् पूज्य पंडित श्री रामलाल जी म. के पश्चात् इस रिक्त स्थान की पूर्ति हुई।

इस समय आपके साधु-साध्वी परिवार की संख्या लगभग छत्तीस थी। आपका पुण्य प्रभाव इस गति से विस्तारित हुआ कि पंजाब सम्प्रदाय का मुनिसंघ आपके नाम से जाना जाने लगा। इससे एक भ्रांति अवश्य (बाद के वर्षों में) बन गई। कई लेखकों ने आपको ही पंजाब मुनि परम्परा का आद्य आचार्य मान लिया। ऐसा आपके दिग्दिगान्त व्यापी धवल यश के कारण तथा लेखकों की अन्वेषण अरुचि के कारण भी हुआ। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि **पंजाब मुनिसंघ के आद्य आचार्य श्री हरिदास जी महाराज थे।**

आप श्री चहुंमुखी प्रतिभा के धनी महामुनि थे। आपका जीवन संयमगुण के साथ तपश्चरण, प्रवचन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखन, ध्यान, योग, ज्योतिष तथा औदार्य वैयावृत्य सेवादि गुणों से परिपूर्ण था। आपके शासनकाल में पंजाब स्थानकवासी संघ का विशेष उत्थान हुआ। साधु और साध्वी समुदाय की विशेष वृद्धि हुई। मुनिवर्ग और श्रावक वर्ग में संयम और क्रिया के प्रति विशेष रुचि जागी और वृद्धिंगत हुई।

आपका विहार क्षेत्र भी काफी प्रलम्ब रहा। पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश तक की आपने यात्राएं की।

आपके बारह शिष्य बने। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं –

१. मुनि श्री मुश्ताकराय जी म.
२. मुनि श्री गुलाबराय जी म.
३. मुनि श्री विलासराय जी म.
४. मुनि श्री रामबक्ष जी म.
५. मुनि श्री सुखदेव राय जी म.
६. मुनि श्री मोतीराम जी म.
७. मुनि श्री मोहनलाल जी म.
८. मुनि श्री रत्नचन्द्र जी म.
९. मुनि श्री खेताराम जी म.
१०.मुनि श्री खूबचन्द्र जी म.
११.मुनि श्री बालक राम जी म.
१२.मुनि श्री राधाकृष्ण जी म.

वर्तमान पंजाब स्थानकवासी श्रमण वर्ग इन्हीं बारह मुनियों का शिष्य-प्रशिष्य परिवार है।

पूज्यपाद शेरे पंजाब श्री अमरसिंह जी म. निरन्तर चालीस वर्षों तक जैन जैनेतर जगत् को अहिंसा, सत्य और प्रेम का अमृतपान कराते रहे। अपने प्रलम्ब संयमीय जीवन में आपने स्व-पर कल्याणार्थ अथक श्रम किया। प्रलम्ब यात्राएं कीं। इसी क्रम में आप की देह जर्जर हो चली थी। अमृतसर श्रीसंघ की प्रार्थना पर आप वहां पधारे और स्थिरवासी बन गए। आपका यह स्थिरवास अधिक लम्बा नहीं चला।

पर्व-तिथियों पर आप नियमित तपाराधना करते थे। वि.सं. १९३८, ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा (पाक्षिक) को आपने उपवास किया। दूसरे दिन पारणा किया। पर पारणा भली प्रकार से न हो सका। शरीर में असमाधि उत्पन्न हो गई। दीर्घद्रष्टा आचार्य श्री ने अनुभव कर लिया कि विदायी की वेला सन्निकट है। इस अनुभूति के साथ ही आपने मृत्यु महापर्व में प्रवेश की पूर्व तैयारी शुरू कर दी। आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा को मध्याह्न तीन बजे आपने चौरासी लाख जीव योनि के प्राणियों से क्षमापना की। तदुपरान्त समग्र जीवन में लगे अतिचारों की आलोचना की और यावज्जीवन के लिए देह-ममत्व से मुक्त होते हुए संथारा ग्रहण कर लिया। आषाढ़ कृष्णा द्वितीया (वि.सं. १९३८) के दिन दोपहर एक बजे इस नश्वर देह का त्याग कर आप देवलोकवासी बन गए।

जैन समाज वज्राहत हो उठा। पर भवितव्यता के समक्ष तो सब विवश हैं। उत्तर भारत के हजारों श्रद्धालू श्रावक अमृतसर में अपने आराध्य देव को विदायगी देने पहुंचे। आपकी अन्तिम शोभा यात्रा विशाल और भव्यतम थी। उसे देखकर लोगों को महाराजा रणजीत सिंह की अन्तिम शोभा यात्रा स्मरण हो आई थी।

आपके देवलोक गमन के पश्चात् आपके ही चतुर्थ शिष्य श्री रामबक्ष जी महाराज आपके उत्तराधिकारी आचार्य बने।

(१०) आचार्य श्री रामबक्ष जी महाराज

आप श्री, आचार्य प्रवर श्री अमरसिंह जी महाराज के बारह शिष्यों में चतुर्थ शिष्य रत्न थे। आपका जन्म राजस्थान प्रान्त के अलवर नगर में एक सम्पन्न लोढ़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवार में वि. सं. १८८३, आश्विन शुक्ल पूर्णिमा के दिन हुआ था। बाल्यकाल से ही आप विरक्त-मानस बालक थे। युवा हुए। पर यौवन की तपिश भी आपके हृदय के वैराग्य की रसधार को सुखा न सकी। परिवार के आग्रह से विवश हो आपको वैवाहिक बन्धन स्वीकार करना पड़ा। विवाहित होकर भी आपका निर्बन्ध मन निर्बन्ध / स्वतंत्र ही बना रहा। इतना ही नहीं आपनेअपनी नवपरिणीता पत्नी के मन में भी वैराग्य का रंग भर दिया। परिणामतः आप दोनों – पति और पत्नी दीक्षित होने के लिए कृतसंकल्प बन गए।

आप अपनी पत्नी को साथ लेकर जयपुर नगर में विराजित शेरे पंजाब आचार्य श्री अमर सिंह जी महाराज के श्री चरणों में पहुंचे। आचार्य श्री ने आप दोनों के मन को पढ़ा और वि.सं. १९०८ को आपको जिन दीक्षा का महामंत्र प्रदान कर दिया।

दीक्षित होने के बाद आप श्री आगम-स्वाध्याय और गुरु सेवा में तल्लीन हो गए। कुछ ही वर्षों में आप एक आगमवेत्ता मुनि के रूप में मुनिसंघ में प्रतिष्ठित हो गए। मुनिसंघ ने आपको 'पंडित' पद से उद्बोधित कर अपनी श्रद्धा आपको अर्पित की।

आचार्य प्रवर श्री अमर सिंह जी म. के देवलोक के पश्चात् चतुर्विध श्री संघ की दृष्टि आप श्री पर केन्द्रित हो गई। फलतः वि.सं. १९३९, ज्येष्ठ कृष्णा तृतीया के दिन मालेरकोटला (पंजाब) नगर में चतुर्विध संघ ने आपको अपना आचार्य मनोनीत किया।

नियति ने अपनी अदृश्यलीला दिखाई। आचार्य पदारोहण के मात्र इक्कीस दिन बाद ही आपका स्वर्गवास हो गया। वि.सं. १९३९, ज्येष्ठ शुक्ला ९ को आपने स्वर्गारोहण किया।

यह सत्य है कि महापुरुषों का महाप्रयाण कभी अकस्मात् नहीं होता है। महापुरुष पूर्ण तैयारी के साथ मृत्यु में प्रवेश करते हैं। इसीलिए महापुरुषों की मृत्यु मातम के स्थान पर महोत्सव का रूप लेती है। पूज्यवर्य आचार्य श्री रामबक्ष जी म. ने भी पूर्ण तैयारी के साथ मृत्यु में प्रवेश किया था। घटनाक्रम यूं है-

आप श्री मालेरकोटला में विराजित थे। आपकी सेवा में श्री गैंडेराय जी म. श्री सोहनलाल जी म. आदि मुनि थे। आपके ज्येष्ठ गुरु भ्राता श्री विलास राय जी म. भी वहीं विराजित थे। साध्वी श्री पार्वती जी म. भी उन दिनों वहां पधारी हुई थीं। दिन के समय आप की सन्निधि में साधु-साध्वी वृन्द शास्त्र अध्ययन करते थे। वि.सं. १९३९, ज्येष्ठ शुक्ला नवमी के दिन शास्त्र स्वाध्याय चल रहा था। आप श्री रुग्णता तथा वृद्धावस्था के कारण पाट पर लेटे हुए ही स्वाध्याय करा रहे थे। सहसा श्री पार्वतीजी म. की दृष्टि आपके पैरों के नाखुनों पर पड़ी नाखुन काले पड़ चुके थे। साध्वी जी ने उस विषय में आपसे चर्चा की।

आप तत्क्षण बैठ गए। आपने अल्प समय में ही अपनी, आवश्यक शारीरिक क्रियाएं कीं और श्री विलासराय जी महाराज से प्रार्थना की कि वे आपको संथारा करवा दें। श्री विलास राय जी म. ने आपको समझाने का यत्न करते हुए कहा कि उचित अवसर पर वे उन्हें संथारा करा देंगे।

ज्येष्ठ गुरु भ्राता के बचन आपको आश्वस्त न कर सके। आपने उसी समय स्वयं संथारा ग्रहण कर लिया। यह दिन के चतुर्थ प्रहर की बात है, और रात्री के चतुर्थ प्रहर में ही आप महाप्रयाण कर गए।

एक संस्मरण :

आप फिरोजपुर शहर में विराजित थे। आपके सान्निध्य में श्री गैंडेराय जी की दीक्षा हुई। श्री गैंडेराय जी जाति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से कुम्हार थे। बड़ी दीक्षा के उपरान्त जब प्रथम बार उनके साथ आहारादि का प्रसंग आया तो आप श्री ने विनोद की भाषा में कहा – अरे! तू जाति से कुम्हार है, हम सब ओसवाल हैं, तूने हमारा जन्म तो भ्रष्ट नहीं कर दिया? यह सुनकर नवदीक्षित मुनि सहित सभी मुनिराज मुस्करा उठे।

लगभग नौ मास पश्चात् मालेरकोटला में जब आप मृत्यु में प्रवेश की तैयारी-स्वरूप आत्म-अवलोकन और आत्म-आलोचना कर रहे थे उस समय आपने भावविह्वल होते हुए मुनि श्री गैंडेराय जी को अपने निकट बुलाया और उन्हें उक्त बात स्मरण कराते हुए कहा-"मुने! मैं तेरे से खिमाऊं! मुझे विनोद में भी वे शब्द नहीं कहने चाहिए थे। उससे तेरा हृदय दुखित हुआ होगा। जिन धर्म जातीय बन्धनों से मुक्त है, वहां तो कर्म प्रधान है।" ऐसा कहकर आपने अपनी अंगुली उक्त मुनि के मुख में डालकर अपने ओठों से छू ली।

आपके हृदय की कोमलता के दर्शन कर मुनि श्री गैंडेराय सहित समस्त मुनिवृन्द गद्‌गद् हो गया।

आप श्री के पांच शिष्य हुए - (१) श्री शिवदयाल जी म. (२) श्री बिशन चन्द म. (३) तपस्वी श्री नीलोपद जी म. (४) श्री दलेल मल जी म. एवं (५) श्री धर्मचन्द जी महाराज।

(११) आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज

आचार्य श्री रामबक्ष जी महाराज के स्वर्गगमन के बाद आप पंजाब मुनिसंघ के आचार्य पाट पर मनोनीत हुए।

आपका जन्म बहलोलपुर जिला लुधियाना में वि. सं. १८७८, आषाढ़ शुक्ला पंचमी को हुआ। लाला मुसद्दी लाल जी आपके पिता थे तथा श्रीमती जसवन्ती देवी आपकी माता थीं। आप जाति से कोहली क्षत्रिय थे।

आपको अपने माता-पिता से धार्मिक संस्कार विरासत में प्राप्त हुए थे। उन्हीं संस्कारों से स्नात हृदय लेकर आप लुधियाना नगर में आए और व्यवसाय करने लगे। पर व्यवसाय में आपका मन नहीं लगा। आपकी दुकान धर्मचर्चा का केन्द्र बन गई। वहां पर आपके तीन युवक मित्र बने जिनके नाम थे - श्री रतन चन्द्रजी, श्री मोहनलाल जी एवं श्री खेताराम जी। आप चारों की मैत्री इतनी प्रगाढ़ बनी कि आप सभी ने मुनि दीक्षा लेने का भीष्म संकल्प कर लिया। परिणामतः आप चारों मित्र दिल्ली में विराजित आचार्य श्री अमरसिंह जी म. के सान्निध्य में पहुंचे और वि. सं. १९०८ आषाढ़ सुदि दसवीं को जिन दीक्षा धारण कर ली।

मुनि दीक्षा के बाद आपने अपना जीवन तप और त्याग में अर्पित कर दिया। सेवा और स्वाध्याय आपके संयमीय जीवन के श्वास-प्रश्वास बन गए थे। श्रीसंघ उन्नति के लिए आप सदैव यत्नशील रहते थे। आचार्य देव श्री रामबक्ष जी म. के स्वर्गवास के पश्चात् श्री संघ ने आपको अपना नेता चुना। आपको वि. सं. १९३९ ज्येष्ठ मास को आचार्य पद की प्रतीक चादर भेंट की गई।

आपके शासन काल में संघ का चहुंमुखी विकास हुआ। लगभग १९ वर्षों तक आप संघशास्ता के पद पर रहे। वि.सं. १९५८, आसोजवदि द्वादशी के दिन लुधियाना नगर में आपने समाधि सहित देह का विसर्जन किया।

आपके पांच शिष्य थे - (१) स्वामी श्री गंगाराम जी म. (२) गणावच्छेदक श्री गणपतराय जी म. (३) श्री श्रीचन्द जी म. (४) तपस्वी श्री हीरालाल जी म. एवं (५) तपस्वी श्री हर्षचन्द्र जी म.

आपके स्वर्गगमन के पश्चात् मुनि श्री सोहनलाल जी म. आचार्य बने।

(१२) युगप्रधान आचार्य श्री सोहनलाल जी म.

आपका जन्म वि. सं. १९०६, माघकृष्णा १ को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बडियाल जिला पसरूर (वर्तमान पाकिस्तान) में श्रीमान मथुरा दास जी ओसवाल की धर्मप्राण पत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी की रत्नकुक्षी से हुआ। बाल्यकाल से ही आप परम विचक्षण और प्रतिभाशाली थे। आपकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी। शिक्षा पूर्ण होने पर आप पसरूर आ गए और वहां जवाहरात का व्यवसाय करने लगे।

जैन धर्म के संस्कार आपके सांस - सांस में रचे-पचे थे। आपने पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से व्यवसाय प्रारंभ किया। कुछ ही समय में आपका व्यवसाय चमक उठा। उन्हीं दिनों में आपके माता-पिता ने एक प्रतिष्ठित परिवार की सुशील कन्या से आपका लग्न तय कर दिया। पर आपका मानस विवाह बन्धन में बन्धने को राजी न था। सांसारिक कार्य करते हुए भी आपका रस उनमें नहीं था। आप अपना अधिकांश समय साधु-साध्वियों के दर्शन, प्रवचन-श्रवण और सामायिक आदि की आराधना में ही व्यतीत करते थे। महासती श्री पार्वती जी महाराज की आप पर विशेष कृपा थी। उनकी प्रेरणा से आपका वैराग्य प्रबल से प्रबलतर बनता चला गया। परन्तु आपके परिवार जन आपको स्वयं से विलग नहीं करना चाहते थे।

उन्नीस वर्ष की अवस्था में आपने आचार्य देव श्री अमरसिंह जी म. की सभा में खड़े होकर श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किए। प्रत्येक मास में आप चार पौषध व्रत करते थे। पौषध मुनिजीवन की तैयारी की पूर्व भूमिका है। साधक के जीवन में पौषधोपवास का स्थैर्य ही तो मुनित्व है। आप उसी तैयारी में संलग्न थे।

वैराग्य को प्रबल बनाने वाली एक घटना

वि.सं. १९२६ की घटना है। आप अपने चार घनिष्ठ मित्रों – शिवदयाल, गणपतराय, दुल्होराय तथा गोविन्दराय के साथ व्यावसायिक कार्यवश पसरूर के निकटस्थ गांव में गए। पसरूर और उस गांव के मध्य एक बरसाती नदी पड़ती थी। जाते हुए नदी में जल अधिक नहीं था। पर संध्या समय जब आप गांव से शहर के लिए चले तो नदी का जलस्तर बढ़ चुका था। नदी का जल किनारों से ऊपर फैलकर बह रहा था। आपके पास काफी स्वर्ण था। पसरूर पहुंचना आवश्यक था। उसके लिए नदी पार करना आवश्यक था। परन्तु आप पांचों मित्रों में से कोई भी तैरना नहीं जानता था। इस पर भी हिम्मत करके आप चारों ने नदी में प्रवेश किया। मध्य धार तक पहुंचते - पहुंचते आप पांचों की ग्रीवा तक पानी आ गया। जलावेग तीव्र से तीव्रतर होता चला जा रहा था। आप सभी साथियों के कदम उखड़ने लगे। मृत्यु की संभावना साक्षात् हो उठी। प्राण गए कि गए। आचार्य श्री अमरसिंह जी म. से सुनी हुई महावीर की वाणी – **'असंखयं जीविय मा पमायए'** आपके कानों में गूंजने लगी। उस क्षण आप पांचों मित्रों ने संकल्प किया – "आज यदि हमारे प्राण बच जाएं तो हम संसार त्याग कर मुनि बन जाएंगे।"

चमत्कार घटित हुआ। सहसा जल का आवेग शान्त होने लगा। आप पांचों मित्र तट पर पहुंच गए। तट पर पहुंचकर आपने अपने मित्रों से कहा - मित्रो! अपने हृदय के संकल्प को खण्डित मत होने देना। अब हम पांचों को परिवार की आज्ञा लेकर शेष जीवन त्याग मार्ग पर अर्पित करना है। मित्रों ने आपकी बात का एक स्वर से समर्थन किया।

घर पहुंचकर आपने अपने हृत्संकल्प से परिवार को परिचित करा दिया। परिवार जनों ने आपकी बात का घोर विरोध किया। चूंकि आप का लग्न हो चुका था, इसलिए आपको दोहरे विरोध का सामना करना पड़ा। परन्तु श्रेष्ठ पुरुष जब संकल्प कर लेते हैं तो उससे पीछे नहीं हटते। लगभग पांच वर्ष के अनवरत संघर्ष के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात् आपका संकल्प पूर्ण हो गया। आपको पारिवारिक अनुमति प्राप्त हो गई। शेष चार मित्रों में से तीन भी पारिवारिक अनुमति प्राप्त करने में सफल हुए। एक मित्र-गोविन्दराय पारिवारिक दबाव नहीं झेल सका और उसे वैवाहिक बन्धन स्वीकार करना पड़ा।

आप अपने तीन मित्रों के साथ आचार्यदेव श्री अमरसिंह जी म. के श्री चरणों में पहुंचे। आपके प्रशस्त भावों को देखते हुए आचार्यश्री ने वि. सं. १६३३, मार्गशीर्ष सुदि ५ को अमृतसर नगर में आप और आपके तीन मित्रों को दीक्षा भगवती का महामंत्र प्रदान किया। आचार्यश्री ने आपको तथा श्री शिवदयाल को श्री धर्मचन्द जी म. का और दुल्होराय व गणपतराय को श्री मोतीराम जी म. का शिष्य घोषित किया।

दीक्षित होने के पश्चात् आप सेवा और स्वाध्याय में समर्पित बन गए। आपने जैन दर्शन का गहन गंभीर अध्ययन किया। प्रवचन पाट पर बैठे तो आपकी प्रवचन शैली ने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध बना दिया। ज्योतिष विद्या के भी आप पारगामी वेत्ता बने।

वि.सं. १६५१ चैत्रवदि एकादशी को आचार्य श्री मोतीराम जी म. ने आपको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। युवाचार्य पद पर आप लगभग सात वर्षों तक प्रतिष्ठित रहे। तदुपरान्त पूज्य आचार्य श्री मोतीराम जी म. के स्वर्गगमन के बाद वि.सं. १६५८ में पटियाला नगर में आप आचार्य पाट पर विराजित हुए। श्रमण परम्परा के सिरमौर पद पर रहते हुए आपने जिन शासन की प्रभूत प्रभावना की। आपका धवल यश पांचाल की प्राचीरों को लांघ कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैल गया। लाखों-लाख सिर आपके पाद-पद्मों पर श्रद्धावनत होते थे।

आपका आगमज्ञान गहन और तर्क शक्ति अद्भुत थी। अनेक बार आपने विपक्षियों से शास्त्रार्थ किया और विजयी बन जिनशासन के गौरव को उन्नत किया।

इस सब के अतिरिक्त आपने संघ-ऐक्य के लिए जो प्रयास किए वे अद्भुत थे। विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त स्थानकवासी मुनियों को आपने एक सूत्र में पिरोने का भगीरथ अभियान चलाया। यह आपके महत्प्रयासों का ही परिणाम था कि तत्कालीन समस्त मूर्धन्य आचार्यों ने आपकी बात स्वीकार की और आपको अपना नेता चुना। कई वर्षों तक आप स्थानकवासी परम्परा के प्रधानाचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे। शताब्दियों के बाद यह प्रथम अवसर था जब समग्र स्थानकवासी मुनि एक झण्डे के नीचे एकत्रित हुए और एक आचार्य के आज्ञानुवर्ती बने।

आपने अपने जीवन काल में कई प्रदेशों की पदयात्राएं की। बाद में दैहिक दशा को देखते हुए आप अमृतसर नगर में वि.सं. १६६२ को स्थानापति हो गए। वि.सं. १६६२ तक आप वहां विराजित रहे। इसी संवत्. में आषाढ़ शुक्ला छठ को प्रातः काल आठ बजे पादोपगमन संथारे सहित आपने देहोत्सर्ग कर दिया।

आपके निधन से जैन समाज की अपूर्णीय क्षति हुई। जैनत्व का दुर्ग ढ़ह गया। भारत वर्ष के कोने-कोने से सहस्रों लोग आपकी देह को अन्तिम विदाई देने अमृतसर नगर में एकत्रित हुए थे।

आप श्री के बारह शिष्य थे। नामावली क्रमशः इस प्रकार है-

१. गणावच्छेदक श्री गैंडेराय जी म.
२. श्री बिहारी लाल जी म. (सरकार)
३. श्री विनय चन्द्र जी म.
४. बहुसूत्री श्री कर्मचन्द्र जी म.
५. आचार्य श्री काशीराम जी म.
६. श्री ताराचन्द जी म.
७. श्री टेकचन्द जी म. (ब्रह्मर्षि)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. श्री लाभचन्द्र जी म.
९. श्री जमीतराय जी म.
१०. श्री चिंतराम जी म.
११. श्री गोविन्दराम जी म.
१२. श्री रूपचन्द जी म.

(१३) आचार्य श्री काशीराम जी महाराज

आप दिव्य-भव्य व्यक्तित्व सम्पन्न संत शिरोमणि थे। युगप्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी म. के आप पञ्चम शिष्यरत्न थे। अपने गुरुदेव के महाप्रयाण के पश्चात् आप पंजाब श्रमण-मुनि परम्परा के आचार्य नियुक्त हुए।

आपका जन्म वि. सं. १९४१, आषाढ़ कृष्णा अमावस्या की मध्यरात्री को पसरूर नगर (वर्तमान पाकिस्तान) में एक सम्पन्न जैन कुल में हुआ। श्रीमान् गोविन्दशाह और श्रीमती राधादेवी आपके जनक और जननी थे।

आप सुसंस्कारों के मध्य पले और बड़े हुए। आपके संस्कारित जीवन को देखकर ही श्री गैंडेराय जी महाराज ने घोषणा की थी कि यह बालक महापुरुष बनेगा।

आप युवा हुए। आचार्य देव श्री सोहनलाल जी महाराज के दर्शनों से आपके हृदय में संसार से विरक्ति और संयम में अनुरक्ति उत्पन्न हो गई। पर एतदर्थ पारिवारिक अनुमति भी अनिवार्य थी। कई वर्षों तक आपने इसके लिए संघर्ष किया। आखिर उन्नीस वर्ष की अवस्था में आपको सफलता प्राप्त हो ही गई। इसी वि.सं. में मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी के दिन कान्धला उत्तर प्रदेश में आपने महामहिम आचार्य देव श्री सोहनलाल जी म. से मुनिवृत अंगीकृत कर लिया।

आप तन-मन-प्रण से संयम को समर्पित हो गए। गुरु सेवा आपका प्रथम आनन्द था। स्वाध्याय, चिन्तन, मनन आपके अहर्निश के अनिवार्य अंग थे। अल्प समय में ही आपने आगमों के गुरु-गम्भीर ज्ञान को हृदयंगम कर लिया था। श्रमण समुदाय में आपकी प्रतिष्ठा निरन्तर वर्धमान होती रही।

आपको सर्वविध सुयोग्य अनुभव करते हुए आचार्य भगवन्त श्री सोहनलाल जी महाराज ने अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हुए आपको युवाचार्य पद प्रदान किया। इस पद पर आप वि.सं. १९६९, फाल्गुन शुक्ला षष्ठी के दिन आरूढ़ हुए।

अपने गुरुदेव के अनुरूप ही आप भी संघैक्य के प्रबल पक्षधर थे। आचार्य सोहन के एकता के इस संदेश के साथ आपने प्रलम्ब यात्राएं कीं। साधु सम्मेलनों में पधारे। आपके कठिन श्रम का ही यह प्रतिफल था कि वि.सं. १९८९ के अजमेर सम्मेलन में समस्त स्थानकवासी श्रमण वृन्द एक हो गए। उसी समय आचार्य सोहनलाल जी म. को प्रधानाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया था।

वि.सं. १९९२ में अपने गुरुदेव के समाधि मरण के पश्चात् आप पंजाब मुनि संघ के आचार्य बने। आर्य सुधर्मा स्वामी के आप नब्बेवें पट्टधर थे। आप एक कठोर अनुशास्ता होते हुए भी नवनीत सम कोमल हृदय रखने वाले महापुरुष थे।

आपका विचरण क्षेत्र अत्यन्त विशाल रहा। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बम्बई तथा गुजरात तक की आपने पद यात्राएं कीं। संभवतः आप पंजाब-परम्परा के पहले मुनि थे जिन्होंने इतनी प्रलम्ब यात्राएं की।

अम्बाला नगर (हरियाणा) में वि. सं. २००२, ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी रविवार के दिन समाधि संथारे सहित आपने महाप्रयाण किया। अनुश्रुति है कि भारत भर से लगभग पचास हजार श्रद्धालू आपके अन्तिम दर्शनों के लिए एकत्रित हुए थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके सात शिष्य थे - (१) तपस्वी श्री ईश्वर दास जी म. (२) कवि श्री हर्षचन्द्र जी म. (३) तपस्वी श्री कल्याण चन्द्र जी म. (४) प्रवर्तक पण्डित रत्न श्री शुक्ल चन्द्र जी म. (५) श्री जौहरी लाल जी म. (६) श्री सुरेन्द्र मुनिजी म. एवं (७) श्री हरिश्चन्द्र जी म (थानेदार)

आचार्य प्रवर श्री काशी राम जी म. के स्वर्गवास के पश्चात् **उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज पंजाब मुनि परम्परा के (१४) आचार्य बने।** एतदर्थ वि.सं. २००३ में आप श्री जी को आचार्य पद की प्रतीक चादर भेंट की गई। (इसी अवसर पर पूज्य पण्डित रत्न श्री शुक्लचन्द जी महाराज को युवाचार्य पद प्रदान किया गया) वि.सं. २००६ तक आप पंजाव मुनि संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे। तदन्तर २००६ में आप अखिल भारतीय वर्धमान स्थानकवासी श्रमणसंघ के आचार्य मनोनीत किए गए। (विशेष परिचय आगे दिया जाएगा)

अस्तु। आचार्य श्री हरिदास जी म. से लेकर आचार्य श्री आत्माराम जी म. के वि.सं. २००६ तक के शासन काल पर्यंत पंजाब मुनि संघ में स्वतंत्र आचार्य परम्परा कायम रही। उसके पश्चात् वि.सं. २००६ में राजस्थान प्रान्त के सादड़ी नगर में संघैक्य के लिए भारत वर्ष की लगभग सभी स्थानकवासी सम्प्रदायों का एक बृहद् सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में विभिन्न सम्प्रदायों के समस्त पदाधिकारी मुनिराजों ने अपने अपने पदों से स्वेच्छा से त्यागपत्र दे दिया और समवेत स्वर से निर्णय किया कि सकल स्थानकवासी मुनि संघ का एक ही आचार्य होगा। उसी अवसर पर आगम दिवाकर श्री आत्मारामजी म. को संयुक्त स्थानकवासी मुनि सम्प्रदाय जिसका नामकरण उस अवसर पर **"अखिल भारतीय वर्धमान स्थानकवासी श्रमणसंघ"** किया गया था का आचार्य मनोनीत किया गया।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया कि वि.सं. २००६ के बाद "पंजाब श्रमणसंघ" का "अखिल भारतीय वर्धमान स्था. जैन श्रमणसंघ" में विलय हो गया। इसलिए पंजाब मुनि संघ ने श्रमणसंघ के आचार्य को ही अपना आचार्य माना।

इस दृष्टि से हम पंजाब मुनि परम्परा के आचार्यों की नामावलि पूज्य प्रवर आचार्य श्री आत्माराम जी म. तक ही दे कर स्थगित कर रहे हैं। आचार्य श्री आत्माराम जी म. के बाद पंजाब परम्परा में कोई स्वतंत्र आचार्य नहीं हुआ। ●●●

छोटी-छोटी बातें भी जीवन में महत्त्वपूर्ण होती है। साक्षी है इतिहास विश्व में विस्फोटक स्थिति पैदा होने के पीछे छोटी-छोटी बातें ही रही हैं। इन छोटी बातों के आधार पर मानव मन के अन्तःकरण में महान् परिवर्तन भी हुए हैं। जीवन को बनाने और बिगाड़ने में छोटी-छोटी बातों में भी आश्चर्यजनक सामर्थ्य/शक्ति है।

✤ ✤ ✤

कभी कभी छोटा सा एक वचन तीर की सी बेधड़कता के साथ सीधा हृदय में प्रवेश कर जाता है और लम्बे चौड़े सैद्धान्तिक विश्लेषणों का कोई असर नहीं होता।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अखिल भारतीय वर्धमान स्थानकवासी श्रमणसंघ के आचार्यों का संक्षिप्त जीवन परिचय

श्रमणसंघ के प्रथम पट्टधर आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज

आप अखिल भारतीय वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रथम पट्टधर आचार्य मनोनीत हुए थे। यह आपके उच्च जीवन और दिव्य साधना का ही परिणाम था कि अखिल भारतीय मुनिसंघ में आप ही सर्वोच्च योग्यता सम्पन्न तथा शास्ता गुण सम्पन्न मुनिराज माने गए और चतुर्विध श्री संघ ने समवेत स्वर से आपको अपना नेता स्वीकार किया। आपके ऊर्जस्वी - यशस्वी जीवन की उज्ज्वल रेखाएं इस प्रकार हैं-

आपका जन्म वि.सं. १९३९, भाद्रपद शुक्ला द्वादशी के दिन राहों नगरी (पंजाब) में श्रीमान् मनसाराम की धर्मपत्नी श्रीमती परमेश्वरी देवी की रत्नकुक्षी से हुआ। यह एक सभ्य, सुसंस्कारी और प्रतिष्ठित क्षत्रिय (चोपड़ा) परिवार था। पुण्यवान पुत्र के अवतरण से सब ओर हर्ष फैल गया।

समय बीतने लगा। बहुत बचपन में ही माता-पिता का साया आपके सिर से उठ गया। दादी ने आपका पालन-पोषण प्रारंभ किया। पर वह भी अधिक दूर तक आपकी सहयात्री न रह सकी। माता-पिता और दादी के क्रमिक विरह ने आपके भीतर संसार की अशाश्वतता का दर्शन भर दिया। यहां-वहां आश्रय पाते आप लुधियाना आ गए। यहीं पर संयोग से आपको वह आश्रय मिला जो कभी अनाश्रय में बदलने वाला नहीं था। पूज्यवर्य आचार्य श्री मोतीराम जी म. की सन्निधि में आपने स्वयं को अर्पित कर दिया। पूज्य आचार्य देव ने आपकी मस्तिष्कीय रेखाओं में पढ़ लिया कि आप कल के जिनशासन के शृंगार होंगे। अध्ययन प्रारंभ हुआ। कुशाग्र बुद्धि से आप ज्ञान को हृदयंगम करने लगे।

वि.सं. १९५१, आषाढ़ शुक्ला पंचमी के दिन छत-बनूड़ (जिला पटियाला) में, बारह वर्ष से भी कम अवस्था में आपने जिन दीक्षा अंगीकार की और श्रद्धेय श्री शालिग्राम जी म.के शिष्य बने। मुनित्व अंगीकार करते ही आपने स्वयं को अध्ययन में डुबो दिया। आपमें प्रबल ज्ञान पिपासा थी। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि भाषाओं का आपने गहन गंभीर ज्ञान अर्जित किया। जैन वाङ्मय का आपने तलस्पर्शी अध्ययन किया। जैनेतर दर्शन भी आपके अध्ययन से अछूते नहीं रहे थे।

तदन्तर आपने जैनागमों पर हिन्दी टीकाएं लिखनी प्रारंभ कीं। आप द्वारा उल्लिखित टीकाएं सहज, सरल और अत्यन्त विस्तृत हैं। ढ़ाई हजार वर्षों में आप पहले मुनि थे जिन्होंने आगमों पर इतनी सरल और बृहद् टीकाएं लिखीं। आपकी लेखनी से सृजित ग्रन्थों को देखकर बड़े बड़े विद्वान् चकित रह जाते हैं। आपकी आगमीय टीकाओं की यह विशेषता है कि उन्हें एक अल्पज्ञ पाठक भी भली भांति समझ लेता है।

आप केवल लिखते ही न थे अपितु मुनियों को पढ़ाते भी थे। मुनियों को आगमीय वाचनाएं देना आपकी दिनचर्या का अहम् अंग था।

वि.सं. १९६९ में आचार्य प्रवर श्री सोहनलाल जी महाराज ने आपको पंजाब श्रमण सम्प्रदाय का उपाध्याय पद प्रदान किया। पंजाब परम्परा में आप पहले श्रमण थे जो इस पद पर प्रतिष्ठित हुए थे।

आचार्य प्रवर पंजाब केसरी श्री काशीराम जी म. के स्वर्गवास के पश्चात् पंजाब के चतुर्विध श्री संघ ने आपको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपना आचार्य चुना। एतदर्थ वि. सं. २००३, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर श्री संघ ने आपको आचार्य पद की प्रतीक चादर भेंट की।

आचार्य प्रवर श्री सोहनलाल जी म. के संघैक्य के प्रयत्नों को पुनः वि.सं. २००९ में अक्षय तृतीया के दिन राजस्थान के सादड़ी नगर में मंजिल मिली। बृहद्साधु सम्मेलन हुआ। सभी पदवीधारी मुनियों ने सहर्ष अपने-अपने पद छोड़ दिए। "अखिल भारतीय वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ" की स्थापना की गई। इसी अवसर पर आप श्री जी को श्रमण संघ का प्रथम पट्टधर आचार्य मनोनीत किया गया।

आपके शासन काल में श्रमणसंघ का चहुंमुखी विकास हुआ। पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक समस्त स्थानकवासी समाज एक हुई। साम्प्रदायिक संकीर्णताएं समाप्त हुईं। इस पद पर आप लगभग नौ वर्षों तक प्रतिष्ठित रहे। वि.सं. १९६२, माघकृष्णा नवमी-दशमी की मध्य रात्री को लुधियाना नगर में पूर्ण समाधि संथारे सहित आपने नश्वर देह का त्याग कर दिया।

आप श्री स्था. श्रमण संघ के प्रथम पट्टधर तथा आर्य सुधर्मा स्वामी की परम्परा के ९१वें पट्टधर आचार्य थे।

(१२) २ आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी महाराज

आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज के स्वर्गगमन के पश्चात् उनके पाट पर आप श्री मनोनीत हुए। अर्थात् वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के आप दूसरे पट्टधर आचार्य बने। आपके जीवन की संक्षिप्त परिचय रेखाएं निम्न हैं-

अहमदनगर के निकटवर्ती चिंचोड़ी ग्राम में वि.सं. १९५७, श्रावण शुक्ला १ तदनुसार २६ जुलाई सन् १९०० के शुभ दिन आपका जन्म हुआ। गुगलिया गौत्रीय श्रीमान देवीचन्द का पितृत्व और श्रीमती हुलासा बाई का मातृत्व धन्य हो उठा।

आपका बचपन सुखद और सरस रहा। जब आप तेरह वर्ष के हुए तो एक दिन अचानक उदरशूल के कारण आपके पिता का देहान्त हो गया। इस अकस्मात् पितृ-विरह ने आपके हृदय को बींध दिया। जीवन की अस्थिरता का चित्र आपने अत्यन्त निकट से देखा। आपका हृदय वैराग्य भाव से पूर्ण हो गया। वैराग्य पूर्ण-हृदय के साथ आप मंगलमूर्त्ति श्री रत्नऋषि जी महाराज के चरणों में पहुंचे। पूज्यवर्य के श्री चरणों में आपने वि.सं. १९७०, मार्गशीर्ष शुक्ल ९ को मिरी ग्राम में जैन भागवती दीक्षा ग्रहण की।

गुरू सेवा और ज्ञानाराधना में आपने स्वयं को अर्पित कर दिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के आप अधिकारी विद्वान् बन गए। आपने जैन-जैनेतर वाङ्मय का पारायण किया। आपने अपने जीवन काल में अनेक ग्रन्थों की रचना भी की। लेखन के साथ-साथ आपकी वक्तृत्व कला भी आकर्षक और प्रभावक थी।

आपके जीवन की यह विशेषता थी कि आप संयम पालन में कठोर और व्यवहार में अत्यन्त मृदु थे। संघ-समाज पर आपकी पकड़ थी। फलतः वि.सं. १९९९, माघकृष्णा ६ को आपको ऋषि सम्प्रदाय का आचार्य चुना गया। वि.सं. २००९ में आप अखिल भारतीय श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। इतना ही नहीं, वि.सं. २०१९, माघ कृष्णा ९, तदनुसार ३० जनवरी १९६३ को आप श्रमणसंघ के द्वितीय पट्टधर आचार्य बने।

आप श्री लगभग तीस वर्षों तक श्रमणसंघ अनुशास्ता रहे। आपका शासन काल सुखद, मंगलमय और जिन शासन के गौरव में अभिवृद्धि करने वाला रहा। आप संगठन के प्रबल समर्थक रहे। कठिन क्षणों में भी आपने अपनी दूरदर्शिता से संघ को एक रखा। सन् १९८७ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूना नगर में आपने अपना उत्तराधिकार श्री देवेन्द्र मुनि जी म. व श्री शिवमुनि जी म. को क्रमशः उपाचार्य और युवाचार्य के रूप में प्रदान किया।

आप श्री ने अपनी ७६ वर्ष की संयमीय साधना काल में भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों की पदयात्रा की और जिनवाणी की गूंज देश के कोने-कोने तक अनुगुञ्जित की।

दिनांक २८ मार्च सन् १९९२ में अहमदनगर में नश्वर देह का त्याग कर आप देवलोक वासी बने। आप श्री के पश्चात् पूज्यश्री देवेन्द्र मुनिजी म. श्रमणसंघ के आचार्य बने।

(३) आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज

आपका जन्म राजस्थान प्रान्त के उदयपुर नगर में दिनांक ७-११-१९३१ शनिवार, कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी (धनतेरस) को सम्पन्न जैन बरड़िया परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम श्रीमान जीवनसिंहजी बरड़िया और माता का नाम श्रीमती तीजाबाई था। इनके जीवन में जैन धर्म के संस्कार कूट-कूट कर भरे हुए थे। परिणामतः जिनत्व के संस्कार आपको बाल्यकाल में ही प्राप्त हो गए थे।

बाल्यावस्था में ही आपको पितृ-साए से वंचित हो जाना पड़ा। आपकी धर्मप्राण माता ने वीरता और दृढ़ता से दुर्भाग्य को दलित करते हुए आपका लालन-पालन किया। नौ वर्ष की अवस्था में आपको उपाध्याय प्रवर श्री पुष्कर मुनि जी म. का सान्निध्य प्राप्त हुआ। एक मार्च १९४१, शनिवार के दिन आपने खण्डप जिला बाडमेर में मात्र नौ वर्ष की अवस्था में जैन आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आपके साथ ही आपकी माता और ज्येष्ठ भगिनी ने भी दीक्षा ली थी।

अल्पायु में ही संयम के कण्टकाकीर्ण राहों पर आप पूर्ण निर्भीकता और निष्ठा से बढ़े। अध्ययन में आपकी विशेष रुचि थी। शीघ्र ही आप हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के मर्मज्ञ बन गए। आपने जैन-जैनेतर दर्शनों का गम्भीर अध्ययन किया। उसके बाद आपने साहित्य साधना के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। कलम कला के महान् कलाकार के रूप में आप जैन जगत् में प्रतिष्ठित अर्चित हुए। अपने जीवन काल में आपने लगभग साढ़े तीन सौ ग्रन्थों की रचना की। 'श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री' के नाम से जगत में विख्यात हुए।

सन् १९८७ में पूना नगर में आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषि जी म. ने बृहद् साधु सम्मेलन आहूत किया। उसी समय आपको उपाचार्य पद प्रदान किया गया। आचार्य देव के स्वर्गगमन के पश्चात् आप श्रमण संघ के तृतीय पट्टधर आचार्य बने। २८ मार्च १९९३ को आपकी जन्मस्थली उदयपुर नगरी में ही आपको आचार्य पद की प्रतीक चादर भेंट की गई। इस पद पर आप लगभग छह वर्षों तक विराजमान रहे। इस बीच आपने उत्तर भारत के समस्त प्रमुख नगरों की पदयात्रा करते हुए अनुमानतः आठ हजार कि.मी. का प्रलम्ब सफर किया।

बम्बई घाटकोपर में २६ अप्रैल १९९९ की सुबह साढ़े आठ बजे आपने अपने संयमीय जीवन की अन्तिम सांस ली। समाधि/संथारे सहित आपका देवलोक गमन हुआ।

(४) आचार्य प्रवर डॉ. श्री शिवमुनि जी महाराज

आपका जन्म पंजाब प्रान्त के जिला फरीदकोट के अन्तर्गत मलौट मण्डी में एक समृद्ध और सुसंस्कारी ओसवाल परिवार में १८ सितम्बर सन् १९४२ में हुआ। श्रीमान चिरंजीलाल जी जैन का पितृत्व तथा श्रीमती विद्या देवी का मातृत्व धन्य बन गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाल्यावस्था से ही आप अन्तर्मुखी रहे हैं। समृद्धि आपकी बुद्धि को कभी भ्रमित नहीं बना पाई। विद्यालय की शिक्षा पूर्ण कर आपने महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। दर्शन शास्त्र से एम.ए. की डिग्री लेकर भी आपकी दृष्टि भौतिकता की चकाचौंध से अस्पर्शित बनी रही। विविध देशों की संस्कृति, उनके आचार-विचार एवं आदर्शों के अध्ययन के लिए आपने जेनेवा, टोरन्टो, कुवैत, अमेरीका आदि कई देशों की यात्राएं कीं। आखिर आप इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जिनमार्ग ही वह मार्ग है जो जीवन को सही दशा और दिशा दे सकता है। इसी विश्वास के साथ तीस वर्ष के भरे-पूरे यौवन में १७ मई १९७२ के दिन अपनी तीन भगिनियों के साथ आपने जिनदीक्षा का महामंत्र ग्रहण किया। पंजाब केसरी श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी म. को आपने जीवन निर्माता गुरु के रूप में चुना।

मुनित्व की चादर ओढ़ने के पश्चात् भी आप शिक्षा से विमुख नहीं हुए।

Doctrine of liberation in Indian religions विषय पर शोध प्रबन्ध लिख कर आपने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

आचार्य देव श्री आनन्दऋषि जी म. की सन्निधि में सन् १९८७ में महाराष्ट्र के पूना नगर में वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ का बृहद् सम्मेलन आयोजित हुआ। सैकड़ों की संख्या में साधु-साध्वी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इसी अवसर पर आचार्य भगवन्त ने आपको युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। एक सुयोग्य और विद्वान मुनिराज को भावी संघशास्ता के रूप में पाकर श्रीसंघ प्रफुल्लित बन गया।

आचार्य देव के महाप्रयाण के पश्चात् उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी महाराज आचार्य बने और फिर आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. के स्वर्गारोहण के पश्चात् आप श्री आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। अहमदनगर में दिनांक ९.७.९९ को श्रीसंघ ने आपको अपना सविधि आचार्य घोषित किया। वर्तमान में आप बृहद् साधु समुदाय वाले श्रमण संघ के अनुशास्ता हैं। आपके कुशल अनुशासन में श्रमण संघ चहुंमुखी विकास के पथ पर अग्रसर है।

आपके जीवन की एक और बड़ी विशेषता है – ध्यानयोग। पिछले कई वर्षों से आप ध्यान पर विशेष बल देते आए हैं। आपकी दिनचर्या का अधिकांश भाग ध्यान समाधि में तथा उस पर चिन्तन मनन लेखन एवं तद्विषयक शोध में व्यतीत होता है। आप नियमित रूप से ध्यान शिविरों का आयोजन करते हैं। हजारों लोग इन शिविरों में सम्मिलित होकर आत्मानुभव करते हैं।

ध्यान के साथ-साथ तप भी आपके जीवन का एक अनिवार्य अंग है। आप वर्षों से एकान्तर तप कर रहे हैं। ●●

❑ वह गुरु हमारे कुल का है, हमारे धर्म का है। ये हमारा ढर्रा है, हमारा सम्प्रदाय है, हमारा लक्ष्य है। ये हमारा-हमारा जो मम भाव है इस ममभाव के रहते अक्सर हम सत्य को झुठला देते हैं। हम अपने ममभाव में, राग भाव में जुड़कर ही अपने धर्म को, सम्प्रदाय को, परम्परा को अच्छा बताते हैं। उसके साथ बराबर जुड़े रहते हैं। लेकिन जब सत्य का दर्शन होता है, उसकी झलक पड़ती है तो विचार करते हैं कि भले ही अपना हो – मगर दूषित है तो अपूर्ण को अपूर्ण कहने में कोई बुराई नहीं है।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु परम्परा
प्रवर्त्तक पं.र. श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज

पंजाब प्रान्त का हरा-भरा अंचल हरियाणा। आज राजनीति का शिकार बनकर पृथक् राज्य बन गया है। उसी का जनपद जिला गुडगांवा। जिले की सबसे बड़ी तहसील रिवाड़ी। इसी धरा के सन्निकट एक ग्राम बसा हुआ है - दड़ौली - फतेहपुरी। हरितिमा का दुकूल जिसके चारों ओर तना हुआ था। ग्राम की मनोहारी छटा थी - नयनाभिराम तथा चित्ताकर्षक। जन-धन आदि सभी प्रकार से समृद्ध।

इसी पुण्य धरा पर कुलीन ब्राह्मण परिवार निवास करता था। गौड़ गौत्रीय स्वनामधन्य पण्डित श्री आनन्दस्वरूपजी इस परिवार के मुखिया थे। सादगी से परिपूर्ण जीवन परंतु उच्चविचारों से समृद्ध। सभी के चहेते। भद्रात्मा किन्तु व्यवहार कुशल व्यक्ति थे, वे। इन्हीं के प्रथम आत्मज थे - श्री बलदेवराज जी। पिता के चरणानुगामी, आज्ञाकारी विनयीपुत्र। आपकी जीवन संगिनी थी – श्री मेहताब कौर। आप धर्मशीला, पतिपरायणा एवं सुशीला धर्मपत्नी थी। श्री मेहताब कौर ने एक पुत्री-रत्न को जन्म दिया। पुत्री चंद्रमा की कला की भाँति निरंतर बढ़ने लगी। समय आया और दस्तक देकर चला गया।

श्री मेहताब कौर पुनः सगर्भा हुई। समयावधि पूर्ण हुई....गर्भावस्था की। मेहताब कौर ने सुन्दर सलौने पुत्र रत्न को जन्म दिया। यह पुनीत दिवस था - विक्रम संवतीय १९५१ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी का। बालक का नामकरण किया गया 'शंकर'। बालक शंकर सभी के नैनों का प्यारा हृदय का दुलारा। हँसी-खुशी, लालन-पालन के साथ शंकर की बाल्यावस्था व्यतीत हो रही थी।

"होनहार विरवान के होत चिकने पात" की उक्ति अनुसार बालक विचक्षण था। अपने पूर्वजों के पदचिन्हों का अनुकरण करता हुआ शंकर आठवर्ष की अल्पायु में मुंडिया, हिन्दी, संस्कृत तथा गुजराती भाषाओं का विद्यार्थी बनकर ज्ञानार्जन करने लगा। निरंतर तथा अहर्निश ज्ञान की लगन के कारण वे क्रमशः विद्यापथ की ओर अग्रसर होते गये। विद्यार्जन की अवधि के साथ-साथ शंकर की किशोरावस्था व्यतीत हो रही थी। उसने पिता का आज्ञाकारी पुत्र बनकर पिता के कार्यों में हाथ बँटाने की प्रक्रिया का श्रीगणेश किया। जिस त्वरित गति से विद्यार्जन किया था उसी गति से वह व्यवसायी व सफल उद्योगी भी बनने लगा।

पंडित बलदेवराज का यकायक निधन हो गया। संयोग-वियोग में परिवर्तित हो गया, खुशियों की जगह विषाद ने ले ली। घर में चारों ओर विरानगी छा गई। अब कारोबार व घर का कार्यभार पण्डित चुन्नीलाल जी के सिरपर आ गया। कर्तव्य के साथ इस भार का वहन करने लगे। तेरह वर्षीय किशोर शंकर को पितृवत् प्यार देने लगे। पंडित चुन्नीलालजी शंकर को अब अत्यधिक व्यस्त देखना चाहते थे। अतः वे व्यापार का कार्यभार उसे ही सौंपे जा रहे थे। शंकर अपने को सुपुर्द गुरुतर भार का सुचारु रूप से वहन करने लगा। युवकोचित कार्य कौशल उसमें समाविष्ट होता जा रहा था।

पुत्री पराया धन है। वह और कितने दिन की मेहमान रहेगी? उसे भी तो बाबुल का घर छोड़ पिया के घर जाना ही पड़ेगा। माता को तो पुत्री के हाथ पीले करने की चिंता थी ही परन्तु पितामह और चाचा भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने कर्तव्य के प्रति सजग थे। कालान्तर में नवयौवना का संबंध गोठड़ा ग्राम के धर्मनिष्ठ ब्राह्मण परिवार के सुदर्शन तथा सुयोग्य गुणवान युवक से पक्का हो गया और शादी की तैयारियाँ प्रारंभ हो गई। एकदिन वह शुभ वेला, शुभ प्रसंग भी उपस्थित हो गया। घर के आँगन में शहनाई गूंजी। बारात आई और पुत्री का पाणिग्रहण समारोह सानन्द सम्पन्न हो गया।

समय नदी की धारा की भाँति निरंतर गतिशील था। माँ मेहताब का मन एक ऋण से उऋण होकर हल्कापन महसूस कर रहा था। अब उनके मन में एक और लालसा अंकुरित हो गई। आप जान सकते हैं, वह लालसा क्या थी? वह थी-पुत्रवधू की। शंकर अब पूर्ण रूपेण युवा हो चुका था। बीस वर्षीय हृष्ट-पुष्ट नौजवान। क्या कमी थी उसमें? सुन्दर रूप सुगठित देहयष्टि, कान्तिमय चेहरा, प्रशान्त मुखमुद्रा, व्यवहार-कुशल वाक्चातुर्य से परिपूर्ण, उद्यमी, कुशल व्यापारी, विनम्र और ज्ञानवान् तथा सद्वृत्ति – सद्गुणों - सदाचार से अलंकृत शंकर का पाणिग्रहण हुडिया ग्राम की अतीव सुंदर सुशील, स्वगोत्रीय-स्वजातीय कन्या से निश्चित कर दिया।

परिणय प्रसंग दिन-रात के समय की धारा को पाटते हुए दिन-प्रतिदिन निकट आता जा रहा था। एक बार शंकर अपने घनिष्ठ-मित्र के यहाँ जा पहुँचा। उसका यह मित्र सन्निकटवर्ती ग्राम नाहड़ में अपने परिजनों के संग रह रहा था। मित्र-मित्र गले मिले। मित्र ने शंकर का यथोचित आदर-सत्कार किया तथा वार्तालाप में व्यस्त हो गए। अनेक प्रकार की बातें होती रही। तभी मित्र की माता ने भी उस कक्ष में प्रवेश किया जहाँ ये दोनों बातचीत करने में मशगूल थे। माता को आते देखकर शंकर उठा और उसने मातृ-चरणों में नमन किया और आशीर्वाद की चाह में उसका सिर झुका ही रहा। क्षण बीते, शंकर ने अपना सिर उपर की ओर उठाया तो आँखे स्वतः ही माता के मुख-मण्डल पर जा टिकी। शंकर ने विनम्रता से पूछा- "माताजी! क्या आज आशीर्वाद नहीं देगी"? मित्र माता को लगा, जैसे सपनों के संसार से वह एकदम धरातल पर उतर आई हो। बोली....बेटा! "जुग जुग जीओ"।.... पर स्वर अवरूद्ध-सा था। शंकर को लगा कि माता कुछ न कुछ जरूर छिपा रही है। पुनः शंकर ने हठ करते हुए कहा - "मातृवर्य। बताइए न, आपको क्या दुःख है? दुःख का स्रोत जैसे और अधिक फूट पडा। अश्रुधारा का प्रवाह बढ़ गया। टप-टप मोती गिरने लगे-नयनों से। कहने लगी - "वत्स। आज तुझे देखकर विगत दिनों की एक दुखद स्मृति मस्तिष्क पटल पर उभर आई"। "क्या स्मृति है वह? "बेटा। आज जो तेरी मंगेतर है वह पहले मेरे बेटे अर्थात् तेरे मित्र की मंगेतर थी। परन्तु समय हमारे अनुकूल नहीं रहा। उन्हीं दिनों इसके पिता की मृत्यु हो गई और उन्होंने मेरे पति की मृत्यु के पश्चात् संबंध विच्छेद कर लिया। यह हमारा दुर्भाग्य था क्योंकि हम अनाथ और असहाय हो गए थे।"

मित्र-माता की बात श्रवण कर शंकर किञ्चित् क्षणों तक अपने आप में खोया रहा तत्पश्चात् शंकर ने उसी स्थान पर एक भीष्म प्रतिज्ञा की। "मात! मैं अब उससे कदापि विवाह नही करूंगा और न ही किसी अन्य कन्या से भी , मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूंगा। आपके चरणों की कसम"। प्रतिज्ञा के साथ ही शंकर उठ खड़ा हुआ उसके चेहरे पर विचित्र तेज की एक आभा झलक रही थी। शंकर ने शंकर की तरह गरल पीकर दूसरों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। धन्य है, युवा शंकर को जिसने ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ग्रहण कर भोगवृत्ति से हमेशा-हमेशा के लिए मुँह मोड़ त्याग वृत्ति की ओर कदम रखा। भगवान् महावीर के वचनों को उसने जीवन में उतार लिये। यथा-ब्राम्हण वही है जो संसार में रहकर भी काम भोगों से निर्लिप्त रहता है जैसे कि जल में कमल रहकर भी उससे लिप्त नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता। ब्रह्मचर्य से भी ब्राह्मण कहलाता है। अब शंकर सच्चा ब्राह्मण बन गया। आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने की प्रतिज्ञा कर शंकर अपने ससुराल (गाँव-हुडिया) की ओर प्रस्थित हुआ। थोडे ही अंतराल के बाद शंकर अपने ससुराल की दहलीज पर आ खड़ा हुआ। अचानक आये देखकर श्वसुरजी कुछ शंकित हुए। उठे, स्वागत किया, मधुर वचनों के माध्यम से।

शंकर ने भी बड़ों को अभिवादन किया। छोटों को प्रेम भरी दृष्टि से निहारा। उसे यथास्थल बिठाया। श्वसुरजी ने विनम्र शब्दों में कहा - "आज आपका इधर पर्दापण कैसे हुआ? समाचार भिजवा देते किसी के साथ। मैं स्वयं ही उपस्थित हो जाता। कहिए क्या कार्य है?" शंकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा-"श्रीमन्त! मैं आपसे ही वार्तालाप करने आया हूँ और.....। "और क्या? जामाता राज"। "और मैं अपना संबंध विच्छेद करने आया हूँ। आप अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कहीं अन्यत्र निश्चित कर लें। मैं आपकी पुत्री से कदापि विवाह नहीं कर पाऊंगा। आज से आप मुझे जामाताराज कहकर भी संबोधित नहीं करें। केवल शंकर ही पुकारा करें"।

"मैंने आज से ही आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ग्रहण करली है। अतः अब मेरा और उसका मार्ग विभिन्न हो गया है"। "आपको कष्ट हुआ होगा, मेरे इस प्रकार के आचरण से क्षमा चाहता हूँ-आप से एवं सभी से"। माता की पुत्रवधु के शीघ्र घर आने की आकांक्षा पर तुषारापात हुआ। नवयौवन के स्वप्न चूर-चूर हो गए। शंकर लगभग दो वर्ष तक पितृपक्ष और ससुराल पक्ष से जुझता रहा। उसे अपने निश्चय से कोई भी डिगा नहीं पाये। पितामह, चाचा, माता, श्वसुर आदि ने विभिन्न तरीकों से समझाना चाहा परंतु शंकर ने स्पष्ट कह दिया सभी को कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहूँगा। वह सन्यासी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करने लगा। संसार में रहते हुए व्यापारिक कार्य करते हुए भी वह विरागी-सा रहने लगा।

पंडित आनंदस्वरूपजी अत्यंत वृद्ध हो चुके थे। काल का निमंत्रण आ चुका था और वे निश्चित समय पर हमेशा-हमेशा के लिए चिर निद्रा में सो गये। शंकर को पितामह की मृत्यु ने झकझोर कर रख दिया। वह प्रतिपल चिंतन करता रहता - क्या यही है जीवन?.... क्षणभंगुर नश्वर! पानी के बुदबुदे की तरह। उसके मन में सच्चा वैराग्य अंकुरित हुआ। मन ही मन निश्चय किया संसार से पूर्णरूपेण विरक्त हो जाने का। मोहमाया के दल-दल से बाहर निकल जाने का। स्वार्थों की वृत्ति से उपर उठ जाने का। तदनुसार ही शंकर अपनी जीवन प्रवृत्तियाँ बदलता जा रहा था। शंकर के जीवन-प्रवाह का तेवीसवां वसंत प्रारंभ हो चुका था।

शंकर के ही निकट के पारिवारिक चाचा एक और थे-पंडित रामजीदास। सात्विक प्रवृत्ति के धनी। संत-समागम के व्यसनी। वे व्यापारार्थ अमृतसर आया करते थे। जैन आचार्यों के प्रति उनके मानस में अटूट निष्ठा थी। शंकर ने एक दिन पण्डित रामजीदास को अपनी मनोगत भावना से अवगत कराया कि मैं अब संसार से पूर्णतः विरक्त होना चाहता हूँ। चाचाजी ने तत्क्षण राह सुझा दी कि आचार्य-प्रवरश्री के चरणों मे मेरे साथ चलना, उनका उपदेश श्रवण करना संभवतः तुम्हारा मन वहीं रम जाए। दोनों यथावसर अमृतसर आये और आचार्यश्री के चरणों में उपस्थित हुए। आचार्यप्रवर ने गौर से शंकर पर दृष्टिपात किया। वे समझ गये कि यह शंकर कोई कंकर नहीं अपितु खदान में से निकला हुआ हीरा है, तराशने भर की देर है। आचार्य प्रवर कुछ समय तक दोनों से वार्तालाप करते रहे। तत्पश्चात् शंकर को गुरुचरणों में ही छोड़कर पंडितजी पुनः ग्राम की ओर प्रस्थित हो गये.....।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंकर गुरुचरणों में रहकर धार्मिक ज्ञानार्जन करने लगा। प्रवचन के समय जिनवाणी श्रवण करता। शंकर की कई भ्रामक धारणाएं दूर हुई। वीरवचनों पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह विलक्षण प्रतिभा का धनी तो था ही, कुछ ही दिनों में सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल कण्ठस्थ कर लिए। आचार्य प्रवर स्वयं अवकाश के क्षणों में जैन धर्म, जैन साधक तथा जैन साधना का मर्म समझाते। आचार्यश्री ने समय की अनुकूलता देखते हुए शीघ्र ही उसे संयम प्रदान करने का संकेत दिया। मुमुक्षु शंकर के चेहरे पर जैसे सूर्य की किरणें पड़ते ही सैंकड़ों कमल खिल गये हों वैसे ही प्रसन्नता खिल गई। संघ भी उत्फुल्ल था कि आचार्य प्रवर दीक्षा-समारोह का शुभावसर हमें ही प्रदान करेंगे। वे भी दीक्षा-दिवस घोषित होने की प्रतीक्षा करने लगे। अंततः वह शुभ दिन, पावन वेला, मंगल घड़ी सुखद क्षण आ ही गये। आचार्यश्री ने मुमुक्षु शंकर को जैन भागवती दीक्षा प्रदान करने का दिवस आषाढ़ शुक्ला १५ विक्रम संवत् १९७३ का सुनिश्चित किया। श्रीसंघ में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। लाला शौरीलालजी जैन के पिताश्री मुमुक्षु शंकर के धर्मपिता बने। परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री सोहनलालजी महाराज ने सर्वप्रथम चतुर्विध संघ की साक्षी से श्री संघ, धर्म-पिता तथा पंडित रामजीदास से दीक्षा विषयक अनुमति चाही। अनुमति के प्राप्त होते ही **चउवीसत्थव** की प्रक्रिया सम्पन्न करवाकर यावज्जीवन सामायिक की विधि करवाई तदनन्तर पुनः चतुर्विध संघ की साक्षी से **करेमिभंते** का पाठ पढाकर उस भव्यात्मा को श्रमण - दीक्षा प्रदान की। नाम घोषित किया-मुनि शुक्लचंद्र महाराज। संयम चदरिया प्रदान करने के बाद नवदीक्षित मुनि शुक्लचन्द्रजी को आचार्य सम्राट ने तपोनिधि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज के शिष्य रूप में सौंप दिया किंतु उनकी हार्दिक भावना थी कि युवाचार्य श्री कांशीराम जी महाराज का अंतेवासी बनाया जाए क्योंकि तपस्वीजी महाराज और युवाचार्य श्री जी में अगाध स्नेह था।

तपस्वीरत्न के स्वर्गवास के पश्चात् आचार्य श्री सोहनलालजी महाराज ने नवदीक्षित मुनि श्री शुक्लचन्द्रजी को युवाचार्य श्री कांशीरामजी महाराज का शिष्य घोषित कर दिया। पण्डित रामजीदास भी संसार से उदासीन रहने लगे। दुनियाँ को बहुत निकट से देखा उन्होंने। वे सोचते थे-"धन्य है, शंकर को। शंकर से शुक्ल में परिवर्तित हो गया"। तदनन्तर विक्रम संवत् १९८३ की पावन वेला में संयम ग्रहण कर अणगार धर्म में प्रवृत्त हो गए। आचार्य श्री कांशीरामजी महाराज के चरणों में सुदीर्घ समयावधि तक रहकर मुनि श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज ने ज्ञानार्जन किया, आगम की वाचनाएं ली, गुरू-मुख परम्परा से ज्ञान ग्रहण किया। अनेक अनुभवों के सुधारस का पान किया। यथा गुरु तथा शिष्य की भाँति आपके जीवन में आचार्य श्री कांशीरामजी महाराज के गुण प्रतिबिम्बित होने लगे। सन् १९४६ अम्बाला में आचार्य श्री कांशीराम जी महाराज ससंघ विराजमान थे। संवत् २००२ की ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी, शनिवार को पूज्य श्री की शारीरिक स्थिति अत्यंत शिथिल हो गई।

ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी रविवार को जब सवितरि मध्याकाश में पहुँच कर प्रचण्ड-ताप विकीर्ण कर रहे थे तभी यह महामना अपनी लौकिक क्रिया समेट कर ठीक बारह बजे महाप्रयाण यात्रा पर प्रस्थित हो गया।

श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज जन्मना ही जाति से ब्राह्मण थे। आपका वार्तालाप सरल किन्तु पाण्डित्यपूर्ण था। व्याख्यान शैली मधुर, सरस एवं सरल होते हुए भी आगम-ज्ञान से परिपूर्ण थी। आपको श्रद्धेय आचार्य श्री सोहनलालजी महाराज ने "पण्डित" कहना आरंभ किया। तदनन्तर समाज ने आपको "पण्डित-रत्न" की उपाधि से सम्मानित किया। तत्व चर्चा आक्षेप निवारण आदि में आप की प्रतिभा पाण्डित्य-सम्पन्न होने से यह पद आपके अनुरूप था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिश्री ने धर्म के प्रचार हेतु लगभग १६-२० वर्ष तक पंजाब (पूर्वी-पश्चिमी देहली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यभारत, दक्षिण गुर्जर) आदि प्रदेशों में विचरण किया। आपने अपने उपदेश, अध्यापन, चर्चा आदि विधाओं के माध्यम से जैनधर्म का ही नहीं अपितु जीवन धर्म का भी प्रचार किया। समय-समय पर समाज और धर्म पर आने वाले आक्षेपों का आगम तथा अकाट्य तर्क शक्ति द्वारा निवारण कर आपने प्रखर बुद्धिमान होने का परिचय दिया। यह काल वि.सं. १९८० से लेकर २००२ तक का है। श्रद्धेय श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज प्रवचन पटु थे। आपका प्रवचन आगमिक, तत्त्वगर्भित तथा जीवन के रहस्यों को उद्‌घाटित करने वाला होता था। श्रोता आपके प्रवचनों में इतने तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें समय का ख्याल भी नहीं रह पाता। सम सामयिक प्रवचन देने की कला में आप अत्यंत माहिर थे। आपके उद्‌बोधन की भाषा सरल होती थी एवं सहजरूप से हृदय में अपना स्थान बना लेती थी। आपके उद्‌बोधनों से प्रभावित होकर अनेकों ने व्रत/प्रत्याख्यान स्वीकारे। कुव्यसनों का परित्याग कर सदाचारी बने। मिथ्यात्व का परित्याग कर सम्यक्त्व को ग्रहण किया। विक्रम संवत् १९९२ में श्रद्धेय श्री कांशीरामजी महाराज के आचार्य-पद-प्रदान के शुभ अवसर पर होशियार पुर पधारे थे तो आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर वहाँ के श्रीसंघ ने तथा होशियारपुर की जनता-जनार्दन ने आपको "प्रसिद्ध-वक्ता" की पदवी से मंडित किया।

प्रसिद्धवक्ता श्री जी में साहित्य एवं शिक्षण संस्थाओं तथा रचनात्मक संस्थानों के प्रति आदर-भाव था। साहित्य हृदय की तमिस्रा को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाता है। साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्य समाज का प्रखर आदित्य है। अतः श्रद्धेय श्री के मानस में साहित्य के प्रति इस प्रकार की धारणा थी – "साहित्य एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति धर्म की ओर आकृष्ट होता है तथा समाज के कर्तव्यों के प्रति सजग रहने की पाठक को प्रेरणा मिलती है।" आपश्री के सद् उद्‌बोधनों से ही शिक्षा निकेतन, साहित्य-प्रकाशन, पुस्तकालय, औषधालय, धर्मस्थल उपाश्रय आदि स्थापित किये। समाज के कर्णधारों ने उदार हृदयी श्रावकों द्वारा संचालित जन सेवा की प्रतीक ये धार्मिक संस्थाएं आज भी पंजाब आदि प्रान्तों में समाज-सेवा कर रही हैं।

पण्डितरत्न पूज्य प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द जी महाराज आजीवन अमृत बांटते रहे, संघ में, समाज में, श्रमणों में श्रमणियों में, आबालवृद्ध में। वे अमृतपुरुष थे। अमृत के अतिरिक्त देने के लिए उनके पास अन्य कुछ न था। विषपात के क्षण आते तो वे स्वयं आगे बढ़कर विषपान करते थे। उनके जीवन में अनेक ऐसे क्षण आए जब उन्होंने हंसते-मुस्कुराते विषमताओं के विष को अमृत मानकर कण्ठ में धारण कर लिया परन्तु संघ और समाज को उसके दुष्प्रभाव से बचाकर रखा। एकता के लिए आप छोटों के सामने भी झुक जाते थे। गृहस्थ जीवन के अपने नाम "शंकर" को मुनि बनकर गुणरूप में जीवन्त किया था।

युवाचार्य पद-प्रदान :

आचार्य श्री काशीराम जी म. के देहावसान के पश्चात् पंजाब श्रमणसंघ में नेतृत्व के लिए उथल पुथल होना स्वाभाविक ही था। संघ के वरिष्ठ एवं प्रमुख संतपुरुषों एवं श्रावकों की समिति बनी। ऐसे भयावह समय में भी पण्डित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज ने अपनी दूरदर्शिता से समाज को विखण्डित होने से बचाया। आपने अपने कार्य कलापों से समाज के हृदय रूपी सिंहासन पर स्थान बना लिया। उसी के फलस्वरूप समाज ने आपको भावी नायक स्वीकार किया तथा ससम्मान युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। युवाचार्य आचार्य के कार्य का संविभागी, परामर्शक एवं भावी आचार्य होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के नेतृत्व में युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित होकर आपने वि.सं. २००३ से लेकर २००६ तक इस पद पर अत्यन्त दीर्घदर्शिता एवं कुशलता के साथ निर्वहन किया।

प्रान्त मन्त्री :

श्री अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के अथक प्रयासों से अखिल भारतीय स्तर पर एक महासम्मेलन सादड़ी (राजस्थान) में आयोजित हुआ। यह समय था वि.सं. २००६ अर्थात् सन् १६५२। युवाचार्य श्री जी भी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। सर्वप्रथम आपने ही युवाचार्य पद का परित्याग कर प्रान्तीय सम्मेलन के निश्चय की घोषणा करते हुए महासंघ में विलीनीकरण का श्री गणेश किया। इसी सम्मेलन में प्रान्तीय आधार पर मंत्रीमण्डल व्यवस्था बनी और आपको पंजाब श्रमण संघ के मंत्री रूप में चुना गया।

द्वितीय सम्मेलन हुआ बीकानेर शहर भीनासर में। पुनः प्रान्तमंत्री का दायित्व आपको ही सौंपा गया। आप श्री ने अपने उदार गंभीर एवं समन्वय स्वभाव एवं नीति के बल पर इस पद का कर्त्तव्य निष्ठा के साथ निर्वहन किया। आप आचार्य श्री द्वारा नियुक्त पंचसदस्यीय संघ संचालक उच्च समिति के भी सदस्य नियुक्त हुए।

प्रवर्तक :

यह एक शास्त्रीय पद है। इसका अर्थ है धर्म-संयम में स्वयं प्रवृत्त रहकर अन्य को, संघ को/श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध श्री संघ को प्रवर्तन कराना। अर्थात् संयम में जोड़े रखने वाला अधिकारी। वि.सं. २०२० में राजस्थान के नगर अजमेर में अखिल भारतवर्षीय वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के शिखर सम्मेलन में मंत्री मण्डल व्यवस्था ने प्रवर्तक व्यवस्था का स्वरूप लिया। उस समय पंजाब के लिए धर्म-चारित्र्य के प्रवर्तन का कार्य आप श्री को सोंपा गया। साथ ही साथ आचार्य श्री जी के परामर्शदातृ मण्डल के सदस्य भी मनोनीत हुए।

अधिशास्ता आचार्य होता है और उसके बाद प्रशासन दृष्टि से दूसरा स्थान प्रवर्तक का होता है। आपने इन दोनों पदों को जीवन पर्यन्त कुशलता पूर्वक निभाया।

सेवा धर्मो परम गहनो .....

श्रमण समाज में पण्डित वर्य श्री शुक्लचन्दजी म. ने तथा उनके संघाड़े के संतों ने सेवाभावी के रूप में विशिष्ट पहचान बनाई थी। सेवा धर्म वस्तुतः सम्यक् धर्म है। रुग्ण, तपस्वी, वयोवृद्ध साधु की सेवा न करना असंयम और प्रमाद का कारण बनता है। आगमों में तो ऐसे असंयमी संतों के लिए प्रायश्चित तक का विधान है। अगर श्रमण आवश्यक से आवश्यक कार्य, अथवा कठिन से कठिन तप में भी संलग्न है तो भी उसका प्रथम कर्त्तव्य सेवा का है। सेवा का मार्ग वस्तुतः कण्टकाकीर्ण है। उपशमभावी, वैयावृत्यी साधक ही इस पथ का अनुसरण कर सकता है।

पूज्य प्रवर्तक श्री ने सेवा धर्म को समग्रभावेन आत्मसात् किया था। इस सेवाव्रत के कारण कभी-कभी उन्हें आलोचना एवं प्रतिक्रिया का भी शिकार होना पड़ता था। परन्तु आप कदापि सेवा संकल्प से पीछे नहीं हटे। अविराम अविश्रान्त इस महामार्ग पर आगे, और आगे बढ़ते रहे। आप कहा करते थे- जिस समाज में वृद्ध और रुग्ण की सेवा नहीं की जाती है वह समाज स्वयं वृद्ध और रुग्ण है। ऐसा समाज जीवित नहीं रह सकता है।"

आपने सेवा धर्म के मर्म को सरल करके दिखाया। आपके मन में किंचित् भी ग्लानि, अहं और कठोरता नहीं थी। अपने जीवन के उत्तरार्ध में अपनी सेवा की परवाह नहीं करके जहां मांग होती वहीं अपने साथी संतों को भेज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

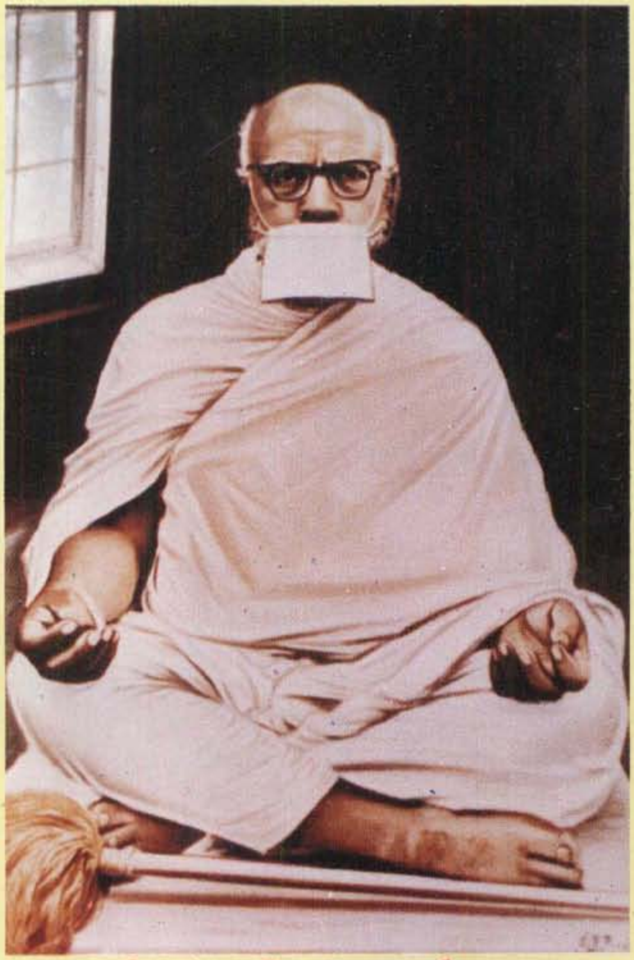

प्रवर्तक पं.र. श्री शुक्लचन्दजीमहाराज

जन्म: १९५१ वि. स्व. १९६८ ई.

शुक्ल मन है शुक्ल तन है, शुक्ल है प्रभु वेष तेरा ।
शुक्ल ही थे कर्म तेरे, शुक्ल ही है धाम तेरा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

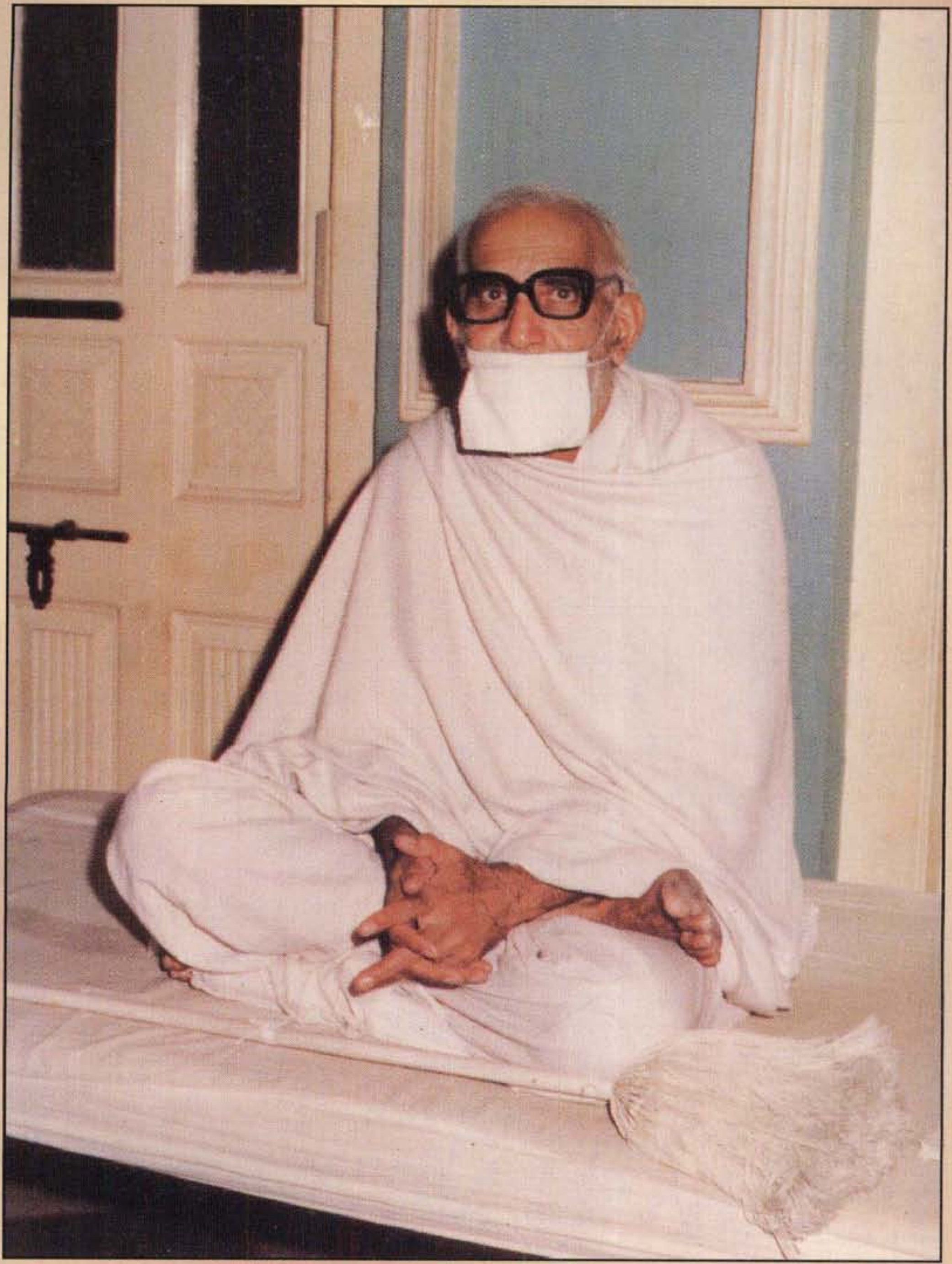

गुरुदेव पंडितरत्न श्री महेन्द्रकुमार जी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

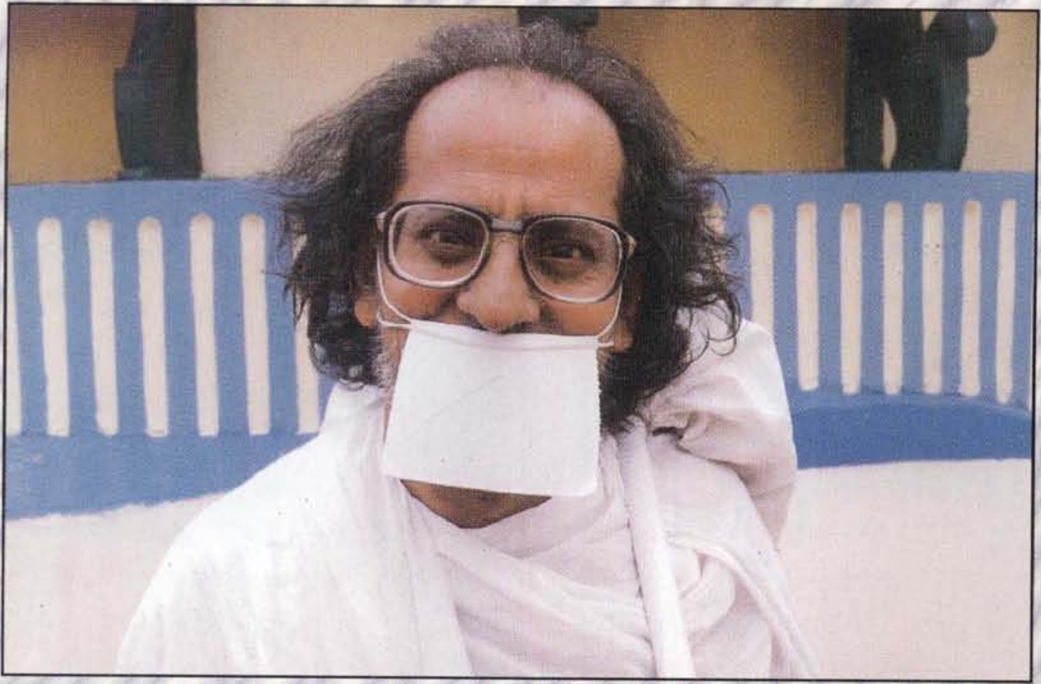

सेवाभावी मुनि श्री सुमंतभद्र जी म. 'साधक'

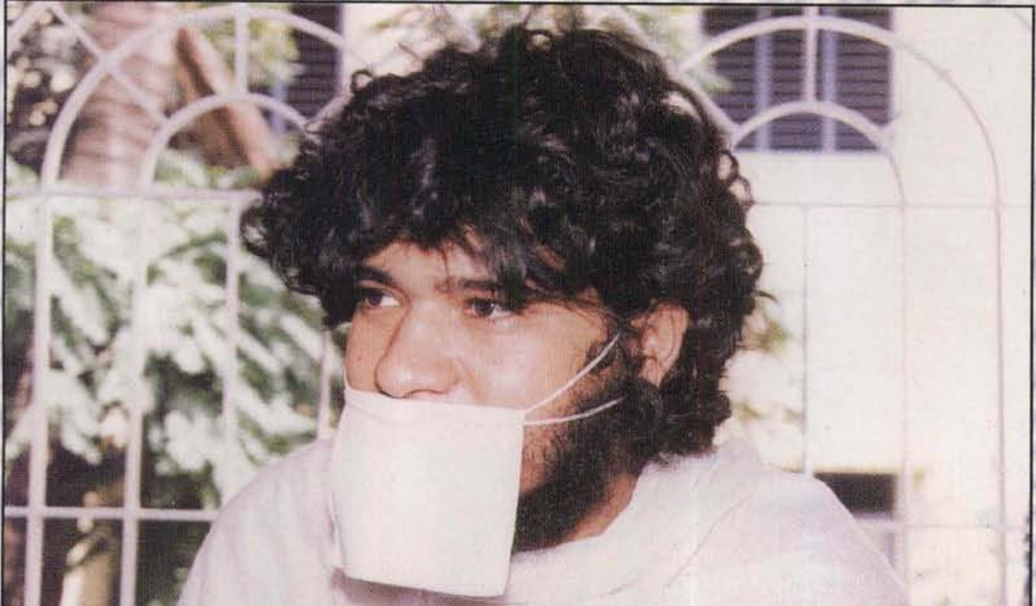

विद्याभिलाषी मुनि श्री प्रवीणकुमार जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुमह गुरु परम्परा के सन्तरत्न

उत्तर भारतीय प्रवर्तक पं. श्री शान्तिस्वरूपजी महाराज

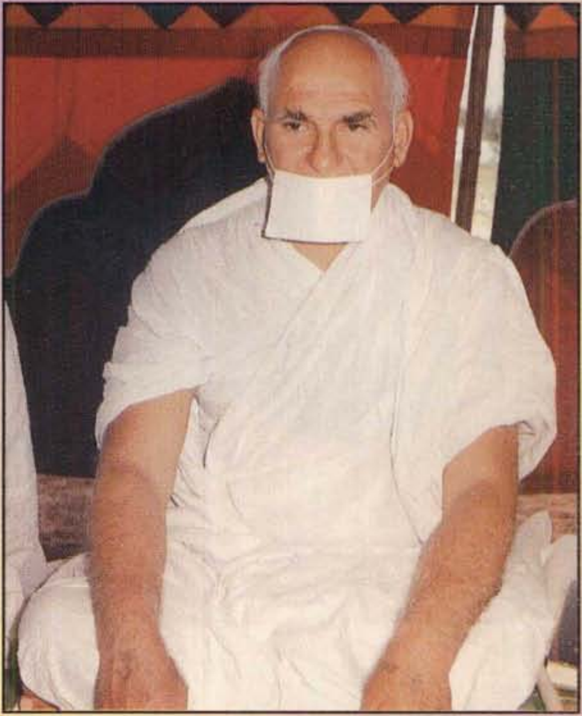

तपस्वी रत्न सलाहकार श्री सुमतिप्रकाशजी म.

उपाध्याय प्रवर डॉ. श्री विशालमुनिजी म.

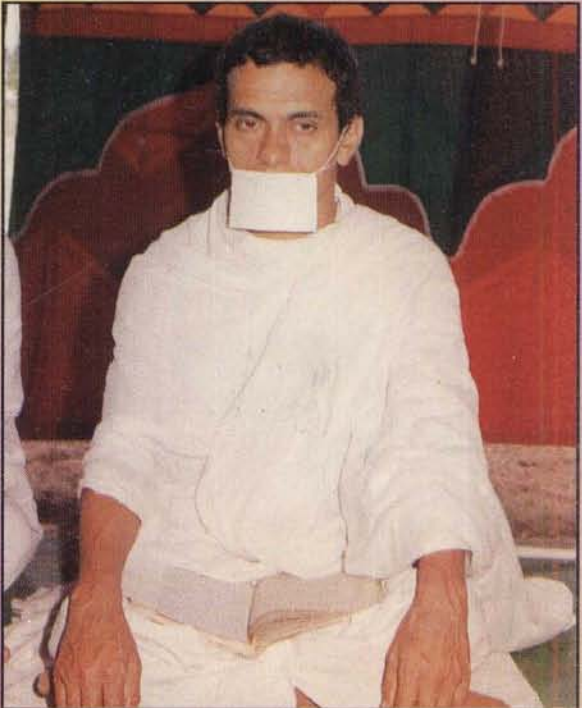

पंडित रत्न श्री आशीषमुनि जी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देते। कोई अकेला या असहाय होता तो उसे सहारा और सान्निध्य प्रदान करते। आपने अपने जीवन का अधिकांश भाग सेवा आराधना में ही अर्पित कर दिया।

आप श्री जी ने प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी म. तपोमूर्त्ति श्री गैण्डेराय जी म., तपस्वी श्री केसरी सिंहजी म. पंजाब केसरी श्री कांशीराम जी म. और तपस्वी श्री निहालचन्द्रजी म. इन महापुरुषों की सेवा का सौभाग्य तो स्वयं अपने हाथों से प्राप्त किया तथा इनके अतिरिक्त वयोवृद्ध श्री बेलीराम जी म. श्रद्धेय श्री भागमलजी म. श्रद्धेय श्री ताराचन्द जी म., श्रीकपूरचन्दजी म. आदि मुनिवरों की सेवा अपने – शिष्यों, प्रशिष्यों से करवाते रहे। सेवा धर्म की आराधना में आपने कभी भी उदासीनता या उपेक्षा का भाव नहीं रखा।

विनम्र समन्वयक :

अपने अनुशासन काल – युवाचार्य, मंत्री और प्रवर्तक जीवन में श्रद्धेय पण्डितजी म. उदार तथा समन्वयवादी बनकर प्रत्येक समस्या का समाधान करते रहे। कोई भी छोटा-बड़ा (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका) उनके सम्मुख आया, उन्होंने सब को समान रूप से करुणा का प्रीतिदान और आदर देकर उनकी मनः स्थिति को शांति प्रदान की। वे कहा करते थे – "समाज में सबको साथ लेकर चलना ही समाज को जीवित रखने का मूलमंत्र है।"

उत्कृष्ट साहित्यकार

श्रद्धेय प्रवर्तक श्री जी म. एक महान् संत होने के साथ-साथ उच्चकोटि के साहित्यकार भी थे। आपका व्यक्तित्व साहित्य साधना में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। गद्य और पद्य – साहित्य की इन दोनों विधाओं को अपनाकर आपने दस-पन्द्रह पुस्तकें लिखीं। इनमें से कुछ प्रकाशित हैं और कुछ अप्रकाशित। जैन रामायण, जम्बूकुमार, वीरमति जगदेव आदि पद्य तथा महाभारत, तत्त्व चिन्तामणि भाग १,२,३, नवतत्त्वादर्श, धर्म-दर्शन आदि आपकी गद्य रचनाएं हैं।

आपके साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि वह सर्वथा सरल और सुबोध है। भाव और भाषा का मणिकांचन योग तथा अत्यन्त रोचक शैली है। आपके लेखन में सरलता, सरसता और सुगमता की त्रिवेणी हिलोरें मारती सी प्रतीत होती है। जटिल से जटिल विषय को अपनी लेखनी के माध्यम से सरल एवं रोचक बना देना यह आपकी अपनी विशेषता है। वि.सं. १९८० से लेकर २००२ तक का समय प्रमुख रूप से आपका साहित्यिक जीवन काल था। जैन रामायण आदि आपके पद्य ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हुए। व्याख्याता लोग अपने प्रवचनों में उसका उपयोग करने लगे।

परार्थी-परमार्थी महासाधक

पूज्यवर्य प्रवर्तक श्री जी म. का समग्र जीवन परार्थ और परमार्थ की साधना में अतीत हुआ था। उन्होंने अपने दैहिक सुख-दुख की कदापि परवाह नहीं की। उनका जीवन अग्रवर्तिका की तरह था जो दूसरों को सुरभित करने के लिए स्वयं को तिल-तिल करके जला देती है। स्वयं मिटकर भी वह अपने परिवेश को सुगन्ध से भर जाती है।

अजमेर में मुनि सम्मेलन होने जा रहा था। पूज्य आचार्य भगवन् श्री आनन्द ऋषि जी म. ने पूज्य प्रवर्तक श्री जी को इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए सादर आमंत्रित किया। पूज्यवर्य उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी म. (कवि जी) ने आपको पत्र लिखा कि – "यदि आप अजमेर सम्मेलन में पधारें तो मैं भी प्रयास करूंगा।"

उस समय आप अम्बाला नगर में विराजमान थे। देह रुग्ण थी। अत्यन्त कृश हो गए थे। डाक्टरों ने लम्बे विश्राम का परामर्श दिया था। इसीलिए आपने अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुयोग्य शिष्य पं. श्री महेन्द्र मुनि जी एवं विद्वद्रत्न श्री सुमन मुनि जी म. को अपना प्रतिनिधि बनाकर सम्मेलन में भेज दिया। पर आपका परमार्थ समर्पित मन इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। पूज्य आचार्य श्री व उपाध्याय श्री का पत्र पाकर आप अपने स्वास्थ्य की परवाह किए बिना और डाक्टरों के परामर्श की अनदेखी करके प्रलम्ब विहार यात्रा पर प्रस्थित हो गए।

मुनि संघ व श्री संघ ने आपसे रुक जाने की प्रार्थना की तो आपने कहा – "संघीय शान्ति व संगठन की सुरक्षा के लिए अजमेर सम्मेलन में उपस्थित रहना मेरा परम कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य की वेदी पर मैं शारीरिक सुख की आहूति दे सकता हूँ किन्तु शारीरिक रक्षा के लिए कर्त्तव्य की नहीं।"

अजमेर मुनि सम्मेलन के पश्चात् आप श्री ने पूज्य आचार्य भगवन् के साथ जयपुर में वर्षावास किया जो ऐतिहासिक रहा। उसके बाद आप आचार्य श्री को लेकर दिल्ली पधारे। आचार्य श्री ने दिल्ली में तथा आपने कान्धला में वर्षावास किया। कान्धला से आप आचार्य श्री के स्वागत के लिए अम्बाला पहुंचे। अम्बाला में आचार्य श्री जी का भव्य स्वागत हुआ।

अथक श्रम तथा प्रलम्ब विहार यात्राओं के कारण आपका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता चला गया। अम्बाला में आप कई बार रक्तचाप तथा हृदयरोग से अस्वस्थ हुए। परन्तु आपका मन अस्वस्थ न था। रोग शान्त होते ही आप पुनः श्रमशील बन जाते थे। सन् १९९६ का वर्षावास आपने अम्बाला में ही किया।

वर्षावासोपरान्त आप अपने शिष्य वृन्द के साथ डेराबसी, प्रभात, खरड़, कुराली, रोपड़, बलाचौर, नवांशहर, बंगा होते हुए होशियारपुर पधारे। वहाँ कुछ समय विराजने के बाद जालंधर के लिए विहार किया।

जालंधर में वर्षावास से पूर्व, वर्षावासावधि तथा उसके पश्चात् आप प्रायः अस्वस्थ ही रहे। वर्षावास से पूर्व जालंधर छावनी में आप पर पक्षाघात का आक्रमण भी हुआ। स्वस्थ्य निरन्तर गिरता गया। डाक्टरों ने आपको पूर्ण विश्राम का परामर्श दिया। दवाएं दीं। लगभग एक माह तक आप रोगाक्रान्त रहे। पर उसके बावजूद आप की संयम निष्ठा कितनी बेमिशाल थी उसका वर्णन आपके ही प्रशिष्य श्री सुमन मुनि जी म. के शब्दों में निम्नोक्त है –

"....बात जालंधर छावनी की है। जून मास। श्रद्धेय पितामह गुरुदेव अचानक ही रक्तचाप और पक्षाघात रोग से पीड़ित हो गए। साथ ही अतिसार और मूत्रकृच्छ रक्त से भी। चिकित्सकों ने उन्हें पथ्य की दृष्टि से नीम्बू का रस और अन्य फलों का रस लेने को बाध्य किया। फलतः संतों ने ही कहीं से रस की गवेषणा कर उन्हें पानी के साथ दिया गया। तीसरे दिन जब उन्हें चेतना आई और पुनः नीम्बू का रस दिया जाने लगा तो तत्काल उन्होंने पूछा - 'यह क्या है? कहाँ से आया है?' और ग्रहण करने से उन्होंने सर्वथा इन्कार कर दिया।

एक बार जब उन्हें और वह भी प्रथम बार मौसम्मी का रस जो कि एक रुग्ण व्यक्ति के यहाँ से अल्प मात्रा में लाया गया था दिया गया तो उन्होंने पीने से सर्वथा इन्कार कर दिया। गुरूदेव का कथन था – "गृहस्थों के घरों में प्रायः ऐसे रस तैयार नहीं मिलते हैं। वे मेरे निमित्त से ही यह सब तैयार करते हैं। मेरे निमित्त से तैयार कोई भी पदार्थ मुझे अस्वीकार है।"

यह था उनका अपने साध्वाचार के नियम, संयम के प्रति दृढ़ विश्वास। उनकी यह धारणा थी कि "अपने मूल नियमों का संरक्षण साधक के लिए अतीव अपेक्षित है।" यही दृढ़ता उनके जीवन को ऊपर उठाने में सहयोगी सिद्ध हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य गुरूदेव चातुर्मासार्थ जालंधर शहर पधारे। वर्षावास में स्वास्थ्य डांवाडोल रहा। देह अबल हो चुकी थी। थोड़ी ही दूर चलने पर सांस फूलने लगता था। इस पर भी आप वर्षावास की समाप्ति पर विहार करने को तत्पर थे।

आचार्य देव से अन्तिम मिलन

जम्मू का वर्षावास पूर्ण करके आचार्य भगवन् पंजाब पधार रहे थे। आप श्री ने प्रसिद्ध वक्ता श्री सुमनकुमार जी महाराज ठाणा दो को आचार्य श्री पास भेजा। पूज्य मुनिवृन्द अमृतसर पहुंचे। आचार्य देव भी अमृतसर पधारे। मुनि द्वय ने आचार्य देव से निवेदन किया कि – "पूज्य पाद प्रवर्तक श्री जी म. हृदय रोग से आक्रान्त हैं, अतः आप जालन्धर पधारकर उन्हें दर्शन लाभ प्रदान करें।"

कृपालुता के सागर आचार्य श्री तो स्वयं अपने आदरास्पद प्रवर्तक श्री से सुखशान्ति पृच्छा के निमित्त मिलना चाहते ही थे। अतः आचार्य देव ससंघ जालंधर पधारे। दो महापुरुषों का भावभीना सम्मिलन हुआ। ऐतिहासिक संगम था वह। तीन-चार दिन तक स्नेह मिलन के पश्चात् प्रवर्तक श्री जी ने आचार्य भगवन् को विदाई दी और वह भी अन्तिम। फरवरी मास के प्रथम दिन मध्याह्न डेढ़ बजे। आचार्य भगवन विहार कर गए।

प्राण जाएं पर....

नौ फरवरी १९६८ को जालन्धर में ही विराजित महासती श्री प्रवेश कुमारी जी म. के सान्निध्य में वैराग्यवती की दीक्षा सम्पन्न होने जा रही थी। प्रवर्तक श्री जी ने दीक्षा महोत्सव में पधारने की स्वीकृति दे दी थी। दीक्षा-स्थल था – जैन स्कूल। उसी रात ४-३० बजे हल्का दिल का दौरा पड़ा। जो एक घण्टे के पश्चात् ठीक हुआ। प्रातः ग्यारह बजे चल पड़े संतों को संग लेकर विजयनगर।

शिष्यों ने अनुनय की – भगवन् ! आपको पीड़ा है, न पधारें। परन्तु प्रवर्तक श्री जी यही कहते रहे – मैं अब ठीक हूँ। मैंने सतियों जी को वचन दे रखा है।... अभी पचास कदम ही गए होंगे कि रक्तचाप और हृदय गति का दौरा पड़ गया। पर आप रुके नहीं। शनैः शनैः चलते हुए विद्यालय में पधार ही गए।

विद्यालय भवन के विज्ञान कक्ष में प्रवर्तक श्री जी को विश्राम करवाया। डा. श्री आनन्द आए। निदान किया। इसी विज्ञान भवन में ही कुमारी राणी को जैन प्रव्रज्या का पाठ पढ़ाया।

रात्री विश्राम पूज्य श्री ने वहीं किया। डा. आनन्द ने रात्री में गुरुदेव के सन्निध्य में बैठकर आत्मा विषयक अनेक प्रश्न पूछे। प्रवर्तक श्री जी के सटीक समाधानों से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। प्रथम मुनि दर्शन में ही वे जैन धर्म के प्रति दृढ़ आस्थाशील बन गए।

अब मैं बहुत न जी सकूंगा

दस फरवरी को प्रभात काल में आप श्री पुनः जैन स्थानक में पदार्पण हेतु डगमगाते कदमों से प्रस्थित हुए। पर शरीर ने साथ नहीं दिया। कुर्सी पर बैठाकर संत आपको उपाश्रय लाए। रात्री में ग्यारह बजे आप पुनः अस्वस्थ हो गए। डा. आनन्द ने मात्र निरीक्षण किया। शनैः शनैः पीड़ा कम हो गई।

१५ फरवरी को आप पुनः भयंकर व्याधिग्रस्त हुए। देह पीड़ा उगलने लगी। उस क्षण आपने अपने मुनिवृन्द से स्पष्ट कह दिया - अब मैं दूर तक तुम्हारा सहयात्री न रह पाऊंगा। प्रतीत होता है कि प्रस्थान का पल, पल-पल सन्निकट आ रहा है।

१६ फरवरी को कुछ स्वास्थ्य लाभ हुआ। लगभग १०-११ दिन सामान्य रहे। २७ फरवरी को पुनः दारुण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदना देह में उत्पन्न हो गई। २८ फरवरी भी ऐसे ही बीत गई।

२६ फरवरी का दिन। उस दिन आप विशेष प्रसन्न थे। श्रावकों और शिष्यवृन्द से आपने वार्ताएं कीं। दर्शक अनुमान नहीं लगा सकता था कि बीते दिनों में आप मारणान्तिक वेदनाएं झेलते रहे हैं। श्रावक वृन्द, मुनिवृन्द को सन्तुष्टि मिली कि प्रवर्तक श्री जी पूर्ण स्वस्थ हैं।

सूर्यास्त होने में अभी डेढ़ घण्टा शेष था। आपके मानस में स्फूर्त प्रेरणा उत्पन्न हुई और स्वेच्छया चारों आहारों का प्रत्याख्यान कर लिया। चरम प्रत्याख्यान था यह आपका। प्रत्याख्यानोपरान्त प्रतिक्रमण भी आपने स्वयं पूर्ण विधि-विधान से किया। उस क्षण तक किसी के मन में यह कल्पना तक नहीं थी कि हमारे प्रवर्तक श्री जी की यही सान्ध्य वेला है। सूर्य अस्ताचल की ओर था।

महाप्रयाण

सांय ठीक सात बज रहे थे। विद्वदवर्य श्री सुमनकुमार जी म. तपस्वी श्रीचन्दजी म. श्री संतोषमुनि जी म., श्री अमरेन्द्र मुनिजी म. आदि सभी मुनिजन प्रवर्तक श्री जी की चरण सन्निधि में बैठे थे। लाला केसरदास जैन भी वहीं उपस्थित थे। श्रद्धेय गुरुदेव प्रवर्तक श्री जी म. पर्य-कासन में बैठे हुए जाप कर रहे थे। मस्तक पर प्रदीप्त तेज था। उसी क्षण आपने डकार ली और आंखें मूंद लीं। दो पल के बाद दो ऊर्ध्ववायु खींच कर नेत्र खोल दिए। सभी को क्षमापना हित कर बन्द्ध किए। खुले नेत्रों से सब को देखते / निहारते समाधिपूर्वक पार्थिव देह का परित्याग कर हमेशा-हमेशा के लिए विदा हो गए। फिर कभी लौट कर नहीं आए। आते भी कैसे और क्यों...? क्योंकि यह उनका प्रयाण नहीं, अपितु महाप्रयाण था।

– श्रावकों ने आपकी पार्थिव देह को अन्तिम दर्शन के लिए नीचे हाल में रख दिया।

– सभी श्री संघों को तार – टैलिफोन आदि से सूचनाएं भेजी गईं। आकाशवाणी और समाचार पत्रों द्वारा यह हृदय विदारक संदेश जन-जन तक प्रेषित किया गया कि उनके श्रद्धेय अब नहीं रहे हैं।

– हजारों - हजार लोग पंजाब, दिल्ली, यू.पी. राजस्थान, एवं कश्मीर से अपने आराध्य देव के अन्तिम दर्शनों के लिए जालन्धर आए।

– प्रमुख श्री संघ अपने साथ बैण्डादि लेकर आए थे।

– नब्बे दुशाले और २० मन चन्दन एकत्रित हुआ था।

– २ मार्च को लगभग २ बजे प्रवर्तक श्री जी की देह को बहुमंजिले विमान पर रखकर अन्तिम प्रस्थान हेतु... विदाई दी गई। शव विमान पर आकाश से वायुयान द्वारा अचित्त पुष्पों की वृष्टि की गई।

– ५ बजे गांधी पार्क में चन्दनचिता पर श्रद्धेयश्री की देह को अधिष्ठित कर जलते हृदयों से चिताग्नि दी गई।

– आंसूओं से भीगे आनन और श्रद्धेय-विरह में खण्डित हृदय लेकर श्रद्धालू अपने घरों को लौट गए।

कवि के शब्द कितने सटीक हैं -

वो गुल था, जिसके जलवे हजार थे।
वो साज था, जिसके नगमें हजार थे।।

(१) पूज्य गुरूदेव प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द जी म. आजीवन शुक्ल साधना में लीन रहे थे। आपका तन और वस्त्र ही श्वेत न थे आपके जीवन का प्रत्येक क्षण शुक्ल था। सांस-सांस से आप शुक्ल थे। पूज्य प्रवर्तक मरूधर केसरी श्री जी म. ने आपके शुक्ल जीवन से प्रभावित होकर लिखा था –

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वेत हृदय तन श्वेत पट, श्वेताचार विचार।
श्वेत सुगुन सित ध्यान शुभ, धन्य शुक्ल अणगार।।

(२) पंजाबी कवि श्री विलायती राम जैन जालंधरी ने अपने हृदयोद्गार यों प्रगट किए थे –

शुक्ल जन्या ते शुक्ल लई दीक्षा,
शुक्ल नाम धारया संसार दे विच।
चमकया दमकया खिड़या ते महकया वी,
पूज्य सोहनलालजी दे भरे परिवार दे विच।।
शीतल लेश्या दी, सुन्दर महक छिड़की,
पंजाब केसरी दे बाग गुलजार दे विच।
शुक्ल पक्ष अन्दर शुक्ल जी अमर होए,
विलायतीराम तड़पदा ए ओहदे प्यार दे विच।।

(३) पूज्य प्रवर कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. पूज्य प्रवर्तक श्री जी के अत्यन्त निकट के मित्र मुनिवरों में से थे। पूज्य उपाध्याय श्री जी ने पूज्य प्रवर्तक श्री जी के महाप्रयाण पर अपने जो हृदयोद्गार प्रगट किए थे वे यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं...

एक विनम्र, सौम्य मूर्ति

एक बार श्रमण भगवान् महावीर ने अपने प्रवचन में मानव-स्वभाव पर विश्लेषण करते हुए कहा – कुछ ही मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य होते हैं, उनका जीवन आदर्शों से अनुप्राणित एक ज्योतिर्मय जीवन होता है। वे जहाँ जन्म लेते हैं वह धरा उनसे कृतार्थ होती है, जिस राष्ट्र और समाज को वे अपना कर्म क्षेत्र बनाते हैं, वे राष्ट्र और समाज उनके गौरवमय कर्तृत्त्व से तथा प्राणवान् व्यक्तित्व से तेजस्वी बन जाते हैं। वे प्रज्वलित ज्योति होते हैं, एक दीपशिखा ! जो जीवन भर अन्धकार से लड़ती रहती है, अपने परिपार्श्व को आलोकित करती रहती है, किंतु कभी अपने कर्तृत्व का पैमाना बनाकर किसी को दिखाने नहीं जाती। भगवान् महावीर के मूल शब्दों में – **अट्ठकरे णामं एगे, णो माणकरे!"** वे अर्थ अर्थात् सेवा आदि महत्वपूर्ण कार्य निरन्तर करते जाते हैं, मौन और शान्त, निस्पृह भाव से किन्तु कभी भी उसके फल की आकांक्षा नहीं करते, अपने कर्तृत्व पर कभी अभिमान नहीं करते।

भगवान् महावीर के इस व्यक्तित्व-विश्लेषण पर मैं सोचता हूँ तो प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज का जीवन-चित्र मेरे समक्ष उभर जाता है। आप लोग आज उनकी स्मृति सभा में उपस्थित हुए हैं। मुझे ऐसा लगता है कि उनकी पुण्य स्मृतियां पुञ्जीभूत होकर हमारे समक्ष आज उनके आदर्शों की जीवनकथा गा रही है।

पंजाब उनका विशेष कर्मक्षेत्र रहा है। और वहाँ की जनता की अगाध श्रद्धा उनके तेजस्वी और कर्मयोगी व्यक्तित्व को प्राप्त हुई थी।

बहुत से व्यक्ति थोड़ी-सी जन-श्रद्धा पाकर गदरा जाते हैं। निन्दा को ज़हर बताया गया है, किन्तु मैं मानता हूँ, निन्दा से भी अधिक उग्र ज़हर है श्रद्धा का। श्रद्धा यों जहर नहीं है, किन्तु उसकी दुष्पाच्यता की दृष्टि से ही मैं आपको बता रहा हूँ कि निन्दा का उग्र विष पचाने वाले भी श्रद्धा को नहीं पचा सकते। वे गदरा जाते हैं, दर्प और जन-श्रद्धा के अभिनिवेश में वे अपने को सातवें आसमान से भी ऊँचा गिनने लग जाते हैं। परन्तु प्रवर्तक श्रीशुक्लचन्द्र जी महाराज को मैंने बहुत निकट से देखा जैसे-जैसे जन-श्रद्धा, लोक-भक्ति और आदर सत्कार उन्हें प्राप्त हुआ, वे वैसे-वैसे विनम्र, सरल एवं सौम्य बनते गए।

उनका वचन मधुर था, मन भी मधुरतर ! उनका दैहिक वर्ण भी काफी साफ – शुक्ल – उजला था और मन तो और भी शुक्ल !

वास्तव में ये श्रमण संघ के एक महाप्राण निष्ठावान संत थे। मधुर प्रवक्ता और मूक सेवाभावी ! उन्होंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज और धर्म की बहुत-बहुत सेवा की है, पर सेवा करके भी वे सदा विनम्र और मधुर बने रहे। सदड़ी सम्मेलन में जब स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के ऐक्य संगठन का दिव्य घोष ध्वनित हुआ, तो उन्होंने निर्मल मन से अपना पूर्व साम्प्रदायिक युवाचार्य पद त्याग दिया। प्रसंगवश मनुष्य किसी बड़ी चीज का त्याग कर देता है, किन्तु अन्दर में कुण्ठा घर कर लेती है। परन्तु स्वर्गीय प्रवर्तक श्री जी को इसके लिए सर्वथा निर्लिप्त देखा गया। वे युवाचार्य जैसा महान् पद, जिसके लिए कितने जोड़-तोड़ लगाए जाते हैं, दौड़ धूप की जाती है, सर्पकंचुकवत् त्यागकर सदा प्रसन्न रहे। कोई भी मलाल मुख तथा वाणी पर कभी नहीं देखा। वे कहा करते थे, संघहित एवं संघ संगठन के लिए मुझसे जो भी अपेक्षा है, वह मैं सहर्ष करने के लिए सदा प्रस्तुत हूँ। ऐसे थे विलक्षण दिव्यजीवन के धनी प्रवर्तकश्री जी यथा नाम तथा गुण। यही 'सत्यं शिवं सुन्दरं' उनके जीवन का आदर्श रूप हमें उनके पश्चात् भी प्रेरणा एवं मार्ग दर्शन करता रहेगा।

स्व. प्रवर्तक श्री जी महाराज के वर्तमान में छह शिष्य जो अपने संयम-नियम के साथ विशिष्टगुण सम्पन्न भी हैं और थे।

१. तपस्वी श्री सुदर्शन मुनि जी महाराज – आप प्रवर्तक श्री जी के सब से बडे शिष्य थे। आचार्य शिरोमणि श्री सोहनलालजी महाराज के कर-कमलों से दीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सेवा और तप आपके विशिष्ट गुण थे। साथ ही शास्त्र-स्वाध्याय भी जीवन का अंग था। स्वभाव से विनम्र और किसी प्रकार की अन्य गतिविधियों से अलग-थलग रह अपनी साधना में लीन रहते थे। ९-३-९७ को अम्बाला नगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

२. पं. श्री राजेन्द्रमुनि जी महाराज – आप महाराज श्री जी के द्वितीय शिष्य थे। सेवा और स्वाध्याय निरत मुनि श्री संस्कृत-प्राकृत भाषा के पंडित थे। स्वभाव से स्पष्टवक्ता थे। महाराष्ट्र, बंगाल, गुर्जर आदि प्रदेशों की यात्रा करते हुए चांदवड़ (महाराष्ट्र) में आप देवलोक वासी हुए।

३. पं श्री महेन्द्रमुनि जी महाराज – पं. श्री राजेन्द्र जी महाराज के लघु गुरू भ्राता एवं सहोदर भी थे। आप की भाँति ये भी संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के पंडित, सेवा-स्वाध्यायलीन, स्वभाव से शांत एवं विनम्र थे। आपका देहान्त मलेरकोटला (पंजाब) में १९९२ ई. में हुआ।

४. तपस्वी श्रीचंद जी महाराज – ये प्रवर्तक श्री जी के पारिवारिक निकट सम्बन्धी हैं। प्रथम बार ग्राम में दर्शन करते ही उनके चरणों में रहकर सेवा करने का संकल्प कर लिया था फलतः दीक्षा ग्रहण करके अपना संकल्प साकार किया। सेवा और तपस्या इन का जीवन धर्म हैं।

५. श्री संतोष मुनि जी – स्वाध्याय और सेवाव्रती वाले संत है, साथ ही प्रवचन के अभ्यासी है।

६. अमरेन्द्र मुनि जी – ये प्रवर्तक श्री जी के लघुतम शिष्य हैं। विद्वान तथा अधुना अर्हत्संघ के सदस्य हैं।★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य गुरुदेव पण्डित रत्न श्री महेन्द्र कुमार जी म. की संक्षिप्त जीवन झांकी

पूज्य गुरुदेव पण्डितरत्न श्री महेन्द्र कुमार जी महाराज पंजाब मुनि परम्परा के एक संयमनिष्ठ, सेवासमर्पित तथा विद्वान् मुनिराज थे। सहजता, सरलता और तपस्विता का संगम तीर्थ उस जीवन धरा पर प्रवाहित हुआ था। बाह्याडम्बरों तथा भौतिक चकाचौंध से वह जीवन ठीक वैसे ही अछूता था जैसे कमल जल में रहकर भी उससे अछूता रहता है। सादगी के अमृत से तृप्त उनका सन्यास चतुर्थ काल के श्रामण्य को साकार करता था।

पूज्य गुरुदेव का इतिवृत्त यों है-

आपका जन्म धरती का स्वर्ग कहे जाने वाले कश्मीर के एक छोटे से ग्राम भलान्द (रामनगर से आगे) में सं. १९८१ में एक सारस्वत गौत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था आपके पिता का नाम पं. श्री श्यामसुन्दर एवं माता का नाम श्रीमती चमेली देवी था। आपके माता - पिता विशुद्ध संस्कारी और वैष्णव थे। आप स्वयं सहित सात भाई थे। भाइयों में आपका तृतीय क्रम था।

दुर्दैववश बाल्यावस्था में ही आपको पितृवात्सल्य से वंचित हो जाना पड़ा। आपकी माता श्रीमती चमेली देवी के लिए वह अत्यन्त पीड़ादायी समय था। अकेली नारी पर सात पुत्रों और दो पुत्रियों के पालन पोषण का बृहद् दायित्व था। यों उसके पास गांव में कृषि योग्य प्रभूत जमीन थी। परन्तु काम करने वाला कोई न था। कश्मीर की प्राकृतिक स्वर्गीय सुषमा और शीतल-सुगन्धित बयारें भी उनके लिए मोहक और सुखद न रह गई थी। किसी अज्ञात निमन्त्रण की डोर में बन्धकर वह अपने सातों नौनिहालों के साथ कश्मीर से चल पड़ी। अजान पथों पर, दुर्लंघ्य वादियों को लांघती हुई वह पंजाब पहुंची। स्थान था – जालन्धर छावनी।

उन दिनों जालंधर छावनी में उग्रतपस्वी श्री निहालचन्दजी म. एवं पूज्य गुरुदेव पंडित रत्न प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी महाराज विराजमान थे। पुण्योदय से माता चमेली देवी पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आई। कहावत है – **संत दर्शन से बड़े-बड़े कष्ट कट जाते हैं।** यह कहावत चमेली देवी के लिए साक्षात् सत्य बन गई। गुरुदेव के दर्शन से उसके जीवन का दुर्दैव ध्वस्त हो गया। उन चरणों पर उसने अपना सर्वस्व अर्पित करते हुए अपने सातों नौ निहाल अर्पित कर दिए। ठीक वैसे ही जैसे माता गुजरी ने अपने चारों लालों को देश की रक्षा के लिए अर्पित किया था।

श्री राजेन्द्र कुमारजी और श्री महेन्द्र कुमार जी ये दो माता चमेली के लाल गुरुदेव के श्री चरणों में रहकर विद्याध्ययन करने लगे। इनके तीन सहोदर – अमरेन्द्र कुमार, शिवकुमार एवं धनेश कुमार ने गुरुकुल पंचकूला में रहकर शिक्षा प्राप्त की। शेष दो भाई रामशरण आदि अपनी माता के साथ वापिस कश्मीर चले गए।

पूज्यवर्य पंडित श्री शुक्लचन्द जी म. ने राजेन्द्रकुमार जी को दीक्षा आचार्य श्री काशीराम जी म. के आचार्य पद की प्रतीक चादर महोत्सव पर होशियारपुर पंजाब में दी। कालान्तर में श्री महेन्द्रकुमारजी की दीक्षा हांसी नगर में वि. सं. १९९४ भाद्रपद शुक्ला पंचमी, सम्वत्सरी के शुभ दिन सम्पन्न हुई।

दीक्षित होकर आपने अपना समग्र जीवन गुरुसेवा और ज्ञानाराधना में अर्पित-समर्पित कर दिया। आपकी प्रबल ज्ञान पिपासा को देखते हुए पूज्य गुरुदेव ने पण्डित दशरथ झा को आपके अध्यापन के लिए नियुक्त कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया। पण्डितजी ने निरन्तर सात वर्षों तक आपके साथ रहकर आपको हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, पाली आदि भाषाओं का गहन अध्ययन कराया।

भाषा ज्ञान के साथ-साथ आपने गुरुदेव की चरण सन्निधि में आगमों का पारायण भी किया। जैन दर्शन के अतिरिक्त जैनेतर दर्शनों का भी आपने अध्ययन और मनन किया। फलतः आप एक विद्वान् मुनि के रूप में संघ में पहचाने गए। 'पंडित' उपनाम से आपको पुकारा जाने लगा।

कालान्तर में आप यथावसर साधु-साध्वियों और श्रावक व श्राविकाओं को शास्त्र स्वाध्याय कराते रहे। आपकी वाचना शैली सुबोध, सरल और अत्यन्त सरस थी। अनेकों मुमुक्षुओं ने आपके चरणों में बैठकर अपनी ज्ञान पिपासा शान्त की।

सेवा समर्पित साधक -

आप श्री ने अपने जीवन काल में अनेक मुनियों की सेवा आराधना की। सेवा का प्रसंग पाकर आपका हृदय प्रफुल्लित हो उठता था। आप आचार्य देव श्री कांशीराम जी महाराज के साथ मेवाड़ प्रवास पर थे। उदयपुर में विहार करते हुए, आपको सूचना मिली कि अमृतसर में तपस्वी श्री ईश्वरदास जी महाराज अस्वस्थ हैं और उन्हें सेवाभावी संत की जरूरत है। उक्त समाचार पाते ही आप पूज्य आचार्य देव की आज्ञा पाकर उग्र विहार करते हुए थोड़े ही दिनों में उदयपुर से अमृतसर पहुंच गए और सेवा का मेवा लूटने लगे।

रायकोट में विराजित श्री बेलीराम जी म. की भी आपने काफी समय तक सेवा की। स्यालकोट में महास्थविर श्री गोकुलचन्द जी म. की आपने दो वर्षों तक सेवा की। इसके अतिरिक्त अपने पूज्य गुरुदेव पं. रत्न पूज्य प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द जी म. की सेवा में भी आप अहर्निश संलग्न रहते थे।

आप श्री का विचरण क्षेत्र भी काफी विस्तृत रहा। यह इस तथ्य से सहज सिद्ध हो जाता है कि आपने सादड़ी, सोजत, भीनासर, बीकानेर तथा अजमेर में हुए सभी मुनि सम्मेलनों में भाग लिया था।

जप-योगी महामुनि

मुनि योगी होता है। वह अपने तीनों योगों (मन-वचन-काय) को वश में करके आत्मलीन हो जाता है। गुरुदेव पूज्य श्री महेन्द्र कुमार जी म. ने जप विधि से अपने तीनों योगों को वश करके योगीराज होने का गौरव पाया था। आप हर समय कर-जप में लीन रहते थे। सुबह, दोपहर, संध्या, रात्री का अधिकांश भाग जप करते हुए व्यतीत होता था। आप एकान्त प्रिय मुनि थे। एकान्त में समाधिस्थ रहते हुए आप जाप किया करते थे। उस अवस्था में / जप अवस्था में आप इतने एकाग्र और तल्लीन हो जाते थे कि बाह्य जगत् में क्या घट रहा है इससे पूर्णतः निरपेक्ष हो जाते थे। आत्मरमण, आत्मचिन्तन और आत्म ध्यान ही आपके जीवन का एकमात्र लक्ष्य शेष रह गया था।

आप सरल संयम के पक्षधर थे। जटिलता और प्रदर्शन आपको कतई पसन्द न थे। सरलता और सत्य आपके संयमीय जीवन के परम आभूषण थे। आप जो एकान्त में थे वही भीड़ के मध्य थे। छिपाने के लिए आपके पास कुछ न था। आप जो कहते थे, वही सोचते और करते भी थे। **"सोही उज्जूयभूयस्स"** का सिद्धान्त आपने सांस-सांस में जीया था।

आप अत्यन्त विनम्र, मृदुभाषी और आत्मार्थी मुनिराज थे। मधु से भी मधुरतम व्यवहार था आपका। आपने अपने जीवन काल में किसी बालक का भी हृदय नहीं दुखाया। ऊंचे स्वर में बोलते हुए आपको कभी किसी ने नहीं देखा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपने अनेक वर्षों तक गुरुदेव के साथ रहकर धर्मप्रचार किया। पं. श्री राजेन्द्र मुनिजी म. एवं व्याख्यान वाचस्पति श्री सुरेन्द्र मुनि जी म. के साथ भी आपने पर्याप्त विचरण किया।

अपने जीवन काल के अन्तिम नौ वर्ष अस्वस्थता के कारण आपने पंजाब के मालेरकोटला शहर में बिताए। ब्लॅड प्रैशर और हार्ट की तकलीफ होते हुए भी आप अत्यन्त समाधि भाव में लीन रहते थे। स्वयं बीमार होते हुए भी यदि किसी श्रावक या श्राविका की बीमारी की सूचना पाते तो तत्काल उसके घर पहुंचकर उसे मंगलपाठ सुना कर आते थे। उपाश्रय में एक बच्चा भी आकर मंगलपाठ सुनाने को कहता तो आप पूरे भाव से उसे मंगलपाठ सुनाते थे।

आप के एक ही सुशिष्य हैं-श्री सुमन मुनि जी म.। श्री सुमन मुनि जी महाराज ने अनेक वर्षों तक आपकी सेवा आराधना की। आपकी इस महत्कृति से वर्तमान में श्रीसंघ लाभान्वित हो रहा है।

महाप्रयाण का पूर्वाभास

अपने महाप्रयाण से कुछ मास पूर्व ही आपको इसका आभास हो गया था। आपने अपने सुशिष्य श्री सुमन मुनि जी म. से स्पष्ट कह दिया था - मुनि! अब तू एक-दो शिष्य बना ले। मेरी विदायी की वेला सन्निकट है।

हुआ भी वही। कुछ ही मास बाद सन् १६८२ के वर्षावास में संवत्सरी के आठ दिन बाद आप समाधि पूर्वक महाप्रयाण कर गए। आपके स्वर्गगमन से जिनशासन एक सच्चे आत्मार्थी मुनि और अध्यात्मयोगी महापुरुष से वंचित हो गया।

आपका शिष्य परिवार निम्नोक्त है –

आपके एक शिष्य हैं – श्रमणसंघीय सलाहकार, मंत्री, उपप्रवर्तक श्री मुनि सुमनकुमार जी महाराज श्रमण।

(इनका जीवन वृत्त सर्वतोमुखी व्यक्तित्व के अन्तर्गत पढ़िए।)

तीन प्रशिष्य हैं – परम सेवाभावी श्री सुमन्तभद्र मुनि जी म., सरलात्मा श्री गुणभद्र मुनि जी महाराज एवं शान्तमूर्ति श्री लाभमुनि जी म.।

एक शिष्यानुशिष्य (पौत्र शिष्य) हैं- स्वाध्याय शील श्री प्रवीण मुनि जी म.।

ये सभी मुनिराज संयमनिष्ठ, स्वाध्यायशील और आत्मार्थी हैं।

पूज्य गुरुदेव श्री महेन्द्र कुमार जी म. के वर्षावासों की तालिका:-

ई.सन्	चातुर्मास स्थल	ई.सन	चातुर्मास स्थल
१६३७	हांसी	१६६०	कपूरथला
१६३८	जीरा	१६६१	नवांशहर
१६३६	उदयपुर	१६६२	संगरूर
१६४०	अमृतसर	१६६३	रायकोट
१६४१	स्यालकोट	१६६४	जयपुर
१६४२	स्यालकोट	१६६५	अलवर
१६४३	रायकोट	१६६६	पटियाला
१६४४	नवांशहर	१६६७	जालंधर
१६४५	लाहौर	१६६८	रायकोट
१६४६	रावल पिंडी	१६६६	अम्बाला
१६४७	रावलपिंडी	१६७०	धुरी
१६४८	रायकोट	१६७१	मालेरकोटला
१६४६	बलाचौर	१६७२	रायकोट
१६५०	बंगा	१६७३	बलाचोर
१६५१	शाहकोट	१६७४	मालेरकोटला
१६५२	सोजतसिटी	१६७५	"
१६५३	दिल्ली	१६७६	"
१६५४	जालंधरशहर	१६७७	"
१६५५	भटिण्डा	१६७८	"
१६५६	जोधपुर	१६७६	"
१६५७	कान्धला	१६८०	"
१६५८	चरखीदादरी	१६८१	"
१६५६	सुनाम	१६८२	"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लैके महक सोहणी

कविवर श्री विलायतीराम जी जैन ने एक सुन्दर पंजाबी कविता के माध्यम से पूज्यवर्य गुरुदेव श्री महेन्द्र मुनि जी म. के संयम-संगीत को उद्गीत किया है-

१. शुक्ल पंचमी उधमपुर जिले अन्दर,
ब्राह्मण कुल नूं एन्हां शृंगारया सी।
श्यामसुन्दर पिता दे घर आके,
सारे परिवार दा कालजा ठारयासी।।
चमेली मां कौलों लैके महक सोहणी,
ओसे महक नूं फेर खिलारया सी।
शुक्ल गुरु दी शरण दे विच आके,
हस-हस हाँसी विच संयम धारया सी।।

२. चौदह बरया दी उम्र सी भावें छोटी,
पर पढ़न लिखन विच मन लगाया एन्हां।
हिन्दी संस्कृत प्राकृत अध्ययन करके
सुत्ता भाग फेर अपना जगाया एन्हां।।
शास्त्र पढ़े ते लित्ता ज्ञान ओत्थों
ज्ञान ध्यान विच दिल टिकाया एन्हां।
शीतल लेश्या दे धारक 'शुक्ल स्वामी'
शुक्ल गुरु कोलों पाया सब कुछ एन्हां।।

३. महेन्द्र मुनि जी ने कित्ती सी बड़ी सेवा
जीवन अपना सफल बनाया एन्हां।
पैंतालीस साल संयम पाल के ते
चौ पासे यश फैलाया अपना।।
'सुमन मुनि' जी ते कित्ती बहुत कृपा
ज्ञान ध्यान दा रंग चढ़ाया एन्हां।
'विलायती राम' कोटले दे विच आखिर
मोक्ष नगरी नूं अपनाया एन्हां।।

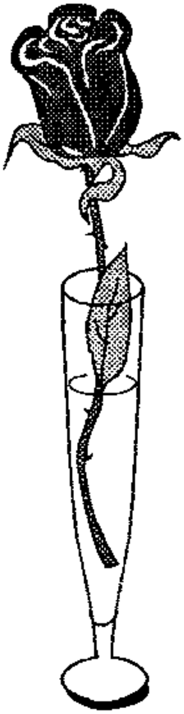

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धेय चरितनायक गुरु देव का शिष्य परिवार

(१) सेवामूर्त्ति श्री सुमन्त भद्र मुनि जी महाराज

आप पूज्य गुरुदेव, श्रमणसंघीय सलाहकार-मन्त्री, उपप्रवर्तक श्री सुमनमुनि जी महाराज के ज्येष्ठ शिष्य हैं। सेवाव्रती एवं तपस्वी मुनिराज हैं। पिछले लगभग सोलह वर्षों से आप अपने गुरुदेव की सेवा में संलग्न हैं। गुरु चरणों में आपका समर्पण और श्रद्धा अद्‌भुत है।

आप एक अच्छे वक्ता भी हैं। आपका वक्तव्य सरल, सरस और सारपूर्ण होता है।

तप में भी आपकी अच्छी रुचि रही है। प्रत्येक वर्षावास में आप उपवास, बेले, तेले, अठाई, एकान्तर आदि करते रहते हैं। सन् १६८८ बोलाराम वर्षावास में आपकी तप रुचि को देखते हुए आपको तपस्वी रत्न की उपाधि दी गई थी।

शब्द चित्र

जन्म	:	२३ जनवरी १६४८, 'देवबन्द जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)
नाम	:	श्रीकृष्ण
माता	:	श्रीमती जावित्री देवी
पिता	:	श्रीमान लाला मामचन्द जी अग्रवाल
दीक्षा	:	८ नवम्बर १६८४ पटियाला (पंजाब)
अध्ययन	:	दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नंदीसूत्र, दशाश्रुतस्कंध, आचाराङ्ग आदि
परीक्षा	:	जैनागम श्रुतरत्न प्रथम श्रेणी (पंजाब) जैन सिद्धान्त विशारद (पाथर्डी)
उपाधि	:	सेवाव्रती, तपस्वी रत्न
विशेषता	:	सेवा, तपस्या, अध्ययनशीलता, सुमधुरभाषी प्रवचनादि।

(२) परम सेवाभावी सन्त रत्न श्री गुणभद्र मुनि जी महाराज

श्री मेजर मुनिजी महाराज के नाम से जैन समाजे में ख्यात पूज्य श्री गुणभद्र मुनि जी महाराज पूज्य गुरुदेव इतिहास केसरी, श्रमणसंघीय मंत्री श्री सुमन मुनिजी महाराज के द्वितीय शिष्य रत्न हैं।

मुनि दीक्षा अंगीकार करते ही आपने स्वयं को वृद्ध और रुग्ण मुनियों की सेवा में अर्पित कर दिया। पूज्य गुरुदेव की आज्ञा लेकर आपने सर्वप्रथम कविरत्न श्रीचन्दनमुनि जी महाराज की गीदड़वाह मण्डी में तीन वर्षों तक सेवा की। उसके बाद मूनक पंजाब में विराजित संयम मूर्ति पण्डित रत्न श्री रणसिंह जी महाराज की सेवा आराधना की। तपस्वीरत्न श्री सुदर्शनमुनि जी महाराज की सेवा में आप अम्बाला में कई वर्षों तक विराजमान रहे। श्री सत्येन्द्र मुनि जी महाराज व श्री गोविन्दमुनि जी म. की सेवा भी आपने की। उपर्युक्त मुनिराजों में से द्वितीय, तृतीय व पंचम मुनिराज को संथारा कराने का सुयोग आप को ही प्राप्त हुआ।

आपकी सेवा में माँ का वात्सल्य, पिता का दायित्व और शिष्य का समर्पण भाव है।

आप सरल, विनीत, संयमनिष्ठ और तपस्वी मुनि हैं। उर्दू मिश्रित पंजाबी भाषा में आपके प्रवचन श्रोताओं के हृदय में सीधे उतर जाते हैं। आप कविताएं भी करते हैं जिनमें भाव और भाषा का सुन्दर सामञ्जस्य रहता है।

जन्म	:	१८ नवम्बर सन १६३५, खेयोवाली (पंजाब)
माता	:	श्रीमती निहाल कौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिता : श्रीमान सरदार काका सिंह
दीक्षा : २५ दिसम्बर १९८५ जैतो (पंजाब)
अध्ययन : जैनागम, जैनेतर साहित्य आदि।
विशेषताएँ : परम सेवाभावी, प्रवचन पटु और आशुकवि

(३) सरल संत श्री लाभमुनिजी महाराज

आप पूज्य गुरुदेव इतिहासकेसरी उप प्रवर्तक श्री सुमनमुनि जी महाराज के तृतीय शिष्यरत्न हैं। संसार पक्ष से आप श्री मेजर मुनि जी महाराज के सहोदर अनुज हैं। आप शान्त-दान्त और गंभीर मुनिराज हैं। आत्म स्वाध्याय और जप में आपकी विशेष रुचि है।

शब्द चित्र

जन्म : खेयोवाली (पंजाब)
माता : श्रीमती निहाल कौर
पिता : श्रीमान सरदार काका सिंह
दीक्षा : बड़ोदा (जींद) हरियाणा, १२ जनवरी '९८ सोमवार
अध्ययन : जैनागम साहित्य
विशेषताएं : प्रौढ़ावस्था में दीक्षित होकर भी पूर्ण अप्रमाद भाव, सरलता, निश्छलता, जपशीलता आदि।

(४) युवा संत, विद्याभिलाषी श्री प्रवीण मुनिजी महाराज

आप श्री पूज्य गुरुदेव श्रमणसंघीय सलाहकार श्री सुमन मुनि जी महाराज के पौत्र शिष्य तथा सरलात्मा श्री मेजर मुनि जी महाराज के शिष्य रत्न हैं।

लगभग उन्नीस वर्ष के भरे पूरे यौवन में संसार की चकाचौंध से आँख मूंदकर आपने संयम की दीक्षा अंगीकार की। अध्ययन और सेवा साधना में अपने को समग्ररूपेण नियोजित बना दिया। **"गुरु इंगियागार संपन्ने"** आगम वाक्य को आत्मसात् करके आप संयम-पथ पर अप्रमत्त यात्रायित हैं। गुर्वाज्ञाओं का पालन करते आपने अपने छोटे से दीक्षाकाल में तीन बार प्रलम्ब यात्राएँ भी की हैं। प्रथम बार आप पंजाब से तमिलनाडु पधारे। लगभग पच्चीस सौ कि.मी. की यह प्रलम्ब विहार यात्रा आपने मात्र चार माह में पूर्ण की। उसके बाद आपने बैंगलोर से अम्बाला तक पदयात्रा की। गतवर्ष पुनः आपने पंजाब से तमिलनाडु तक की यात्रा की। आपकी ये प्रलम्ब विहारयात्राएं आपकी कर्मठता, अप्रमत्तता तथा गुरुनिर्देश के प्रति समर्पणता को स्वयं आख्यायित कर रही हैं।

अध्ययन के प्रति आपकी विशेष रुचि है। आप प्रवचन के अभ्यासी भी हैं। जैन जगत को आपसे अनेक अपेक्षाएँ हैं।

शब्दचित्र

जन्म : १३ मार्च १९७३, मौड़मण्डी (पंजाब)
माता : श्रीमती विमलादेवी
पिता : श्री हरिराम गोयल
दीक्षा : १० जनवरी १९९३, समाना (पंजाब०
दीक्षा गुरु : श्री मेजर मुनि जी म.
अध्ययन : पच्चीस बोल, कर्म प्रकृति, नवतत्त्व, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आचारांगादि।
विशेषताएँ : विद्याविनोदी, उग्रविहारी आदि।
गुरुमठ : श्रमणसंघीय मंत्री श्री सुमनमुनि जी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुदेव श्री शुक्लचन्द्रजी म. के शिष्यरत्न
१) सेवामूर्ति तपस्वीरत्न श्री सुदर्शन मुनि जी महाराज

तपस्वीरत्न, उपप्रवर्तक श्री सुदर्शन मुनि जी महाराज आचार्य देव श्री अमरसिंह जी महाराज की मुनि परम्परा के एक उत्कृष्ट संयमी सन्त रत्न थे। सरलता, सेवा और साधुता उस जीवन में समग्रता से साकार हुई थीं। अपने जीवन का एक-एक पल उन्होंने स्व-पर कल्याण के लिए अर्पित किया था। पूज्यवर्य तपस्वी जी महाराज का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है –

राजस्थान प्रान्त के सीकर जिले में एक छोटा सा गांव है – काँवट गांव। इसी गांव में सन् १६०५ में वसंत पंचमी की प्रभातवेला में श्रीमान् लादूसिंह राजपूत की धर्मप्राण पत्नी श्रीमती विजयाबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। इस बालक का नाम सूरज रखा गया। सूरज की दो अन्य बहिनें थीं जिनके कालक्रम से विवाह कर दिए गए।

सूरज अभी यौवन में कदम न धर पाया था कि उसके माता-पिता चिर विदा हो गए। अत्यन्त कष्टपूर्ण क्षण से गुजर कर सूरज ने गृहदायित्व संभाला। वे अपने पशुओं को चराने जंगल में ले जाते थे। राजपूती साहस और शौर्य उनके अंग-प्रत्यंग से टपकने लगा था। अनुश्रुति है कि जंगल में कई बार उनका सिंह से सामना हुआ। दो अवसरों पर – एक बार अपनी बहन की रक्षा तथा दूसरी बार अपने पशुओं की रक्षा के लिए उन्होंने सिंह को मार डाला।

जंगल में पशु चराते हुए ही उन्हें जीवन में प्रथम बार मुनिदर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सं. १६८६ में पूज्य पंजाब केसरी आचार्य श्रीकाशीरामजी म. अपने शिष्य वृन्द सहित अजमेर मुनिसम्मेलन में भाग लेने जा रहे थे। जिस मार्ग पर विश्राम हेतु आचार्य देव कुछ देर ठहरे थे संयोग से सूरज अपने पशुओं को चराते हुए उधर ही आ गया। आश्चर्य भाव से सूरज ने आचार्य देव को देखा। निकट आया। वार्ता हुई। क्षणिक वार्ता के बाद सूरज के तन-मन-प्राण आचार्य देव के प्रति श्रद्धा और समर्पण से भर गए। उसी क्षण वे अपना सर्वस्व त्याग कर आचार्य देव के साथ चलने को तत्पर हो गए।

कालान्तर में अमृतसर नगर में युगप्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज के करकमलों से सं. १६६१ वसंत पञ्चमी के शुभ दिन सूरज ने मुनिदीक्षा ग्रहण की। उन्हें नवीन नाम दिया गया – श्री सुदर्शन मुनि। पूज्यवर्य पण्डित रत्न श्री सोहनलाल जी म. की प्रभूत सेवाराधना की। आपकी सेवा से आचार्य भगवन् अति प्रसन्न थे। अपने महाप्रयाण से तीन दिन पूर्व ही आचार्य श्री ने एतदर्थ आपको स्पष्ट संकेत दे दिए थे।

तप और सेवा मुनि के आचार के प्राणतत्त्व होते हैं। श्री सुदर्शन मुनिजी म. ने स्वयं को तप और सेवा में समग्रतः समर्पित कर दिया था। आचार्य श्री कांशीरामजी म., पूज्य गुरुदेव पंडितरत्न श्री शुक्लचन्दजी म., वयोवृद्ध श्री भागमल जी म., अर्द्धशतावधानी श्री त्रिलोकचन्द जी म., पूज्य श्री कपूरचन्दजी म., पूज्य बाबा श्री माणकचन्द जी म., पूज्य श्री छज्जूमुनि जी म., पूज्य श्री पूर्णचन्द्र जी म., पूज्य श्री जिनदासजी म. आदि मुनि भगवन्तों की सेवा में आपने अपना पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया था। आपका अग्लान सेवाभाव श्रद्धा का विषय था।

आपका प्रलम्ब संयमीय जीवन अत्यन्त उज्ज्वल रहा। आगम-वर्णित साध्वाचार के प्रति आपकी निष्ठा बेमिसाल थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी संयमीय साधना के अन्तिम पैंतीस वर्ष आपने अम्बाला नगर में व्यतीत किए। इन पैंतीस वर्षों में प्रथम पच्चीस वर्षों तक आप वृद्ध और ग्लान मुनियों की सेवा में लगे रहे। बाद के दस वर्ष स्वयं की दैहिक असमर्थता-वार्द्धक्य के कारण आप अम्बाला में विराजित रहे।

विद्वद्वर्य प्रसिद्ध वक्ता श्री सुमनमुनि जी म. के सेवानिष्ठ शिष्य श्री मेजरमुनि जी महाराज एवं श्री प्रवीण मुनि जी म. ने कई वर्षों तक आपकी सेवाराधना की।

६ मार्च १९९७ अपराह्न सवा दो बजे पूर्ण समाधि भाव तथा संलेखना संथारे सहित देहोत्सर्ग करके आप देवलोक वासी बन गए।

– निरन्तर ३५ वर्षों तक अम्बाला तीर्थ स्थल बना रहा था। आपकी कृपा से यहाँ सदैव शान्ति, सौहार्द और पारस्परिक सामंजस्य बना रहा।

– अनेक लोग आपके आशीष से समृद्ध बने।

– अम्बाला के जैन-अजैन बच्चों में यह दृढ़ आस्था थी कि तपस्वी जी म. का मंगलपाठ सुनकर परीक्षा देने जाएंगे तो अवश्य उत्तीर्ण होंगे। बालभावनाएं शत प्रतिशत पूर्ण भी होती थीं।

२) पं.प्रवर श्री राजेन्द्रमुनि जी महाराज

परमादरणीय पण्डितरत्न पूज्य श्री राजेन्द्र मुनि जी महाराज एक उत्कृष्ट संयमी और श्रमशील मुनिराज थे। आपने अपनी संयमीय साधना-सुगन्ध से जैन जगत् को सुरभित बना दिया था।

जीवनवृत्तः आप पूज्य प्रवर्तक पण्डित रत्न श्री शुक्लचन्द जी महाराज के द्वितीय शिष्य तथा पूज्य श्री महेन्द्र कुमारजी महाराज के संयम पक्ष तथा संसार पक्ष से अग्रज थे। आयु की दृष्टि से आप अपने अनुज से लगभग दस वर्ष बड़े थे।

कश्मीर प्रदेश के उधमपुर जिले में एक छोटे से ग्राम 'भलांद' में एक ब्राह्मण परिवार में आपका जन्म हुआ। पण्डित श्यामसुन्दर जी आपके पिता का तथा श्रीमती चमेली देवी आपकी माता का नाम था। आप स्वयं सहित सात भाई थे।

आपके यौवन में प्रवेश से पूर्व ही आपके पिता का देहान्त हो गया। भवितव्यता अथवा भाग्योदय से आप अपनी माता व भाइयों के साथ पंजाब में आ गए। संयोग से जालन्धर छावनी में आपको पूज्य गुरुदेव प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द जी महाराज के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदर्शन से आपके पूर्वजन्म के सुसंस्कार जागृत हो गए। आपने अपने अनुज श्री महेन्द्र कुमार सहित मुनि बनने का संकल्प कर लिया।

गुरुदेव ने आपको अक्षरज्ञान के साथ-साथ मुनि जीवन का प्रारंभिक ज्ञान-प्रदान किया। वि.सं. १९९२ में भारत केसरी श्री काशीराम जी महाराज को होशियारपुर पंजाब में चतुर्विध संघ द्वारा आचार्य पद की चादर भेंट की गई। उसी अवसर पर आपने श्रमणीदीक्षा अंगीकार करके पूज्य गुरुदेव प्रवर्तक श्री जी का शिष्यत्व स्वीकार किया।

पण्डित दशरथजी झा के अध्यापन में आपने हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का गहन गंभीर ज्ञान अर्जित किया। भाषा ज्ञान के साथ-साथ आपने आगम और आगमेतर साहित्य का भी गंभीर अध्ययन किया।

आगम-अध्ययन आपका प्रमुख प्रिय विषय था। आगमों के अध्ययन, मनन, परिवर्तन में आप सतत संलग्न रहते थे। गुरुदेव सुनाते थे – श्री राजेन्द्र मुनिजी महाराज की आगमरुचि इतनी प्रबल थी कि वे अहर्निश आगमों के पारायण में लगे रहते थे। रात्री शयन भी उनका अत्यल्प था। वे नियम से प्रतिवर्ष बत्तीस आगमों का सार्थ अध्ययन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते थे। उनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण नहीं थी पर निरंतर स्वाध्याय और श्रम के बल पर उन्होंने ज्ञानावरणीय कर्म को काफी शिथिलकर दिया था।

ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान भी आपको काफी अच्छा था। परन्तु उसका उपयोग आपने कभी लोकैषणा के लिए नहीं किया। वस्तुतः लोकैषणा तो आपको कतई पसन्द न थी। आपका श्रमण जीवन तो उस सुवासित फूल के समान था जो एकान्त जंगलों में खिलकर ही आनन्दित होता है और अपनी सुवास से वातावरण को सुवासित करता रहता है।

आप अल्पभाषी मुनिराज थे। उतना ही बोलते थे जितना आनिवार्य होता। उसी के परिणामस्वरूप आपकी वाणी में दिव्य बल उतर आया था।

जप में भी आपकी विशेष रुचि थी। घण्टों-घण्टों तक कायोत्सर्ग में लीन रहकर आप जाप किया करते थे।

आपने अपने जीवन काल में पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र, बंगाल तथा गुजरात आदि प्रदेशों की यात्राएं कीं। सादड़ी आदि सम्मेलनों में भी आप सम्मिलित हुए थे।

श्रमण शब्द के भावपक्ष समता, श्रमशीलता और कर्म-शमनता आपके जीवन साज से मुखरता से ध्वनित हुए थे....उद्‌गीत हुए थे।

'चांदवड़' महाराष्ट्र में नश्वर देह को त्याग कर आप देवलोक वासी बने।

चांदवड़ में श्री राजेन्द्र मुनि जी म. की स्मृति में भव्य स्मारक भवन का निर्माण हुआ है। ●●

आचार्य श्री काशीराम जी म. के शिष्यरत्न

कविरत्न श्री सुरेन्द्र मुनिजी महाराज

परम वंदनीय, परम श्रद्धेय, कविरत्न श्री सुरेन्द्र मुनि जी महाराज जैन जगत् के एक प्रतिष्ठित मुनिराज थे। वे लेखक थे, प्रसिद्ध वक्ता थे, समाज पर उनकी गहरी पकड़ थी, इस सबसे ऊपर वे एक संयम को मनः प्राण से समर्पित मुनिराज थे। उनकी संक्षिप्त जीवन रेखाएं निम्नोक्त हैं –

हरियाणा प्रान्त के कुरूक्षेत्र जिले के अन्तर्गत एक छोटा सा ग्राम है – रादौर। इसी गांव के एक सैनी क्षत्रिय श्रीमान् कुन्दनलाल की अर्द्धांगिनी श्रीमती कृष्णादेवी की रत्नकुक्षी से जन्म लेकर आपने जगतितल पर आंखें खोलीं। नामकरण के प्रसंग पर आपको केदारनाथ नाम दिया गया। बाल्यावस्था में ही आपको मातृवात्सल्य से वंचित हो जाना पड़ा।

पांच वर्ष की अवस्था में आपने विद्यालय में प्रवेश किया। सात कक्षाएं उत्तीर्ण करने के पश्चात् एक घटनाक्रम में अम्बाला में विराजित पूज्य आचार्य श्री कांशीराम जी म. के दर्शनों का आपको सौभाग्य मिला। प्रथम दर्शन में ही आपका हृदय उन चरणों से बंध कर रह गया। आपने आचार्य भगवन् का शिष्य बनने का संकल्प कर लिया।

आचार्य भगवन् ने आपको जांचा-परखा और वैरागी रूप में अपने पास रख लिया। पूज्य आचार्य भगवन् के निर्देश पर पण्डितरत्न श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज ने विजय दशमी के दिन २५ अक्टूबर सन् १९३६ को, उन्नीस वर्ष की भरी जवानी में आपको दीक्षामंत्र का महादान प्रदान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर दिया। उल्लसित-उमंगित हृदय से आप संयमशिखर के यात्री बन गए।

आपकी अध्ययन रूचि प्रबल थी। हिन्दी, संस्कृत, पंजाबी आदि भाषाओं का समुचित ज्ञान आपने हृदयंगम किया। जैन-जैनेतर दर्शनों के भी आप अच्छे जानकार बने।

आपके प्रवचन अत्यन्त मधुर होते थे। आपकी वक्तृत्व शैली से श्रोता गहरे तक प्रभावित होते थे। स्वनिर्मित कविताओं-गीतों का उपयोग आप अपने प्रवचनों में करते थे। श्रोता झूम-झूम उठते थे।

आपकी मंगल प्रेरणाओं से समाज कल्याण के अनेक कार्य समय-समय पर संपादित होते रहे। कई जगह आपकी प्रेरणा से विद्यालयों महाविद्यालयों और डिस्पैंसरियों की स्थापना हुई। आंखों के कैंप भी लगते रहे। निर्धन छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्तियां आप दिलाते रहे।

आपका पूरा जीवन लोक कल्याण हित श्रम साधना करते हुए ही व्यतीत हुआ। पर इस सब के बावजूद आपका संयमीय दृष्टिकोण सदैव अखण्ड रहा। संयम की शर्त पर आपने कभी समझौता नहीं किया।

१४ फरवरी १९९४ को आपने बराड़ा (हरियाणा) में पूर्ण समाधि भाव के साथ देह का त्याग किया। विद्वद्वर्य श्रमण संघीय सलाहकार, मंत्री एवं उप.प्र. श्री सुमन मुनि जी म. की दीक्षा के लिए आप श्री ने ही श्रम किया था। इस दृष्टि से आप पूज्य श्री के दीक्षा प्रदान करनेवाले गुरु थे। श्री सुमन मुनि जी म. को दीक्षित करवाके आपने उन्हें श्री महेन्द्र मुनि जी महाराज का शिष्यत्व प्रदान किया था।

वर्तमान में आप श्री के तीन शिष्यरत्न आपके जनकल्याण के महाभियान को आगे बढ़ा रहे हैं। आपके तीन शिष्य हैं – (१) युवामनीषी श्री सुभाष मुनि जी महाराज (२) श्री सुधीरमुनि जी महाराज एवं (३) श्री संजय मुनि जी महाराज।

कविरत्न श्री सुरेन्द्र मुनि जी म. के शिष्य (१) युवामनीषी श्री सुभाष मुनि जी महाराज

आप व्याख्यान वाचस्पति, कविरत्न श्री सुरेन्द्र मुनि जी महाराज के ज्येष्ठ शिष्यरत्न हैं। बाल्यावस्था में ही वीतराग धर्म संघ में प्रव्रजित होकर आपने अपने दिव्य-भव्य जीवन तथा श्रेष्ठ साधुता से जिनशासन की प्रभूत प्रभावना की है।

मेरठ नगर में १९ जनवरी १९५९ को आपका जन्म एक समृद्ध ओसवाल परिवार में हुआ। लाला कस्तूरीलाल बांठिया तथा श्रीमती महिमावती जैन को आपके पितृत्व-मातृत्व का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

स्वतंत्रता से पूर्व आपका परिवार रावलपिंडी में रहता था। गुरुदेव श्री सुरेन्द्र मुनि जी महाराज ने रावलपिंडी में वर्षावास किया था। उस समय आपकी माता श्रीमती महिमावती जैन दीक्षा लेने की इच्छुक बनी। गुरुदेव पण्डित रत्न श्री शुक्लचन्दजी म. के सम्पर्क में आईं। गुरुदेव ने कहा – "बहन ! परिस्थितियाँ आपको दीक्षित नहीं होने देंगी। अपनी संयम रुचि को आप अपनी संतानों में साकार करना।"

श्रीमती महिमावती जैन ने गुरुदेव के वचनों को पूर्णतः साकार किया। अपनी चार सन्तानें उन्होंने वीतराग के मार्ग पर अर्पित कर जिनशासन की महान सेवा की। मुनिधर्म में दीक्षित होनेवाली आपकी चार सन्तानों के नाम हैं – (१) श्री सुभाष मुनिजी म. (२) श्री सुधीर मुनिजी म. (३) डॉ. श्री अर्चना जी म. एवं (४) श्री मनीषा जी म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुभाष मुनि जी महाराज ऐसी वीरांगना मां के पुत्र हैं। ९ मई १९७५ को नाभा (पंजाब) में दीक्षित होकर आप संयम पथ पर बढ़े। जैन जैनेतर दर्शनों का अध्ययन किया। प्रवचन प्रवीणता हस्तगत की। आप अपने संयमीय जीवन के पच्चीस वर्ष पूर्ण कर चुके हैं। सामाजिक बुराइयों के उच्छेदन और जनकल्याण के महान् कार्यों में आप अहर्निश संलग्न रहते हैं।

(२) श्री सुधीर मुनिजी महाराज

आप पूज्यवर्य व्याख्यान वाचस्पति श्री सुरेन्द्र मुनि जी महाराज के द्वितीय शिष्य रत्न हैं। आपका जन्म दिनांक २०-४-६६ को मेरठ, उत्तरप्रदेश में हुआ। श्री सुभाष मुनि जी महाराज के आप संसार पक्ष तथा मुनि पक्ष – दोनों पक्षों से अनुज हैं।

आप मधुर गायक, प्रवचन पटु और विद्याविनोदी मुनिराज हैं। आपको अर्बन एस्टेट करनाल के चातुर्मास में 'प्रवचन-दिवाकर' की उपाधि से सम्मानित किया गया। अग्रज के चरण चिह्नों पर चलते हुए स्व-पर कल्याण रत हैं।

(३) श्री संजय मुनि जी महाराज

आप पूज्यवर्य, युवामनीषी श्री सुभाष मुनि जी महाराज के शिष्य तथा व्याख्यान वाचस्पति श्री सुरेन्द्र मुनि जी महाराज के प्रशिष्य हैं।

आप सेवाभावी, अध्ययनशील और संयमनिष्ठ मुनिराज हैं।

जो भोग से योग की ओर, राग से विराग की ओर मन को मोड़ने में समर्थ है तथा आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार का मार्गदर्शन करता हो, वही शास्त्र है।

✤ ✤ ✤

ज्ञान के नेत्र खोलो, ज्ञान के नेत्र खोले बिना तुम्हें कोई चीज मालूम नहीं होगी, केवल वाणी के गुलाम मत बनो, वाणी का अहंकार मत करो।

✤ ✤ ✤

जब-जब संत पुरुषों का सम्पर्क/सत्संग हुआ है व्यक्ति कुटेवों/बुरी आदतों से मुक्त हो गया।

✤ ✤ ✤

हर व्यक्ति मन से तो चिंतन करता ही रहता है किन्तु जाग्रत अवस्था का चिन्तन/सोच सम्यक् होता है। सुप्तावस्था-प्रमादवश होने से चिन्तन भी सम्यक् नहीं होता।

✤ ✤ ✤

ऊँचे आसन पर बैठने से गौरव प्राप्त नहीं होता। गुण से ही गौरव की प्राप्ति होती है। महल के शिखर पर बैठने से कौआ गरुड़ नहीं बन जाता।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंजाब श्रमणी परम्परा

जिनशासन में पुरुष और स्त्री को एक समान अधिकार प्रदान किए गए हैं। "पुरुष उत्तम है और नारी अधम है" यह भाव पुरुष के अहं का परिपोषक है। अतीत के हजारों वर्षों के जैनेतर इतिहास का जब हम पारायण करते हैं तो पाते हैं कि नारी को अनावश्यक रूप से पुरुष की तुलना में दीन-हीन अंकित किया गया है और उसे पांव की जूती तक कहकर अपमानित किया गया है। आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व जब भगवान् महावीर का जन्म हुआ तब भी नारी दुर्दशा और दुरावस्था में जीवन यापन कर रही थी। उस समय भगवान् महावीर ने घोषणा की कि नर और नारी एक समान हैं। दोनों ही समान रूप से मोक्ष के अधिकारी हैं। उस समय जब नारी को संहिताएं तथा धर्मशास्त्र सुनने तक के लिए अपात्र घोषित कर दिया था तब महावीर ने न केवल नारी को धर्म श्रवण का अधिकारी माना अपितु उसे पुरुष के समान ही अपने धर्मसंघ में ससम्मान सम्मिलित भी किया।

प्रागैतिहासिक काल पर दृष्टिपात करें तो आदिभगवान् ऋषभदेव की दो पुत्रियां – ब्राह्मी और सुन्दरी हमारे दृष्टि पथ पर आती हैं। इन दोनों नारियों ने न केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में अपितु लौकिक क्षेत्र में भी जगत् का मार्गदर्शन किया था।

भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक, और भगवान् महावीर से लेकर वर्तमान काल तक जिनशासन में नारी नर के तुल्य ही समान अधिकार की पात्र रही है। उसने इस लम्बे कालखण्ड में न केवल पुरुष की समानता की है अपितु अनेक अवसरों पर उसका मार्गदर्शन भी किया है। उसे पतित होने से भी बचाया है। वह कभी ब्राह्मी और सुन्दरी का रूप धर कर बाहुबली के लिए कैवल्य का द्वार बनी है तो कभी राजुल के रूप में उसने रथनेमि को पतित होने से बचाया है। मल्ली के रूप में उसने अपने छह मित्रों तथा जगत् के लिए मोक्ष का पथ प्रशस्त किया है तो मृगावती के रूप में उसने बड़ी कुशलता से चण्डप्रद्योत जैसे खल से अपने शील की रक्षा भी की है। द्रौपदी, सीता, प्रभावती, पद्मावती, चन्दना, याकिनी महत्तरा कितने उज्ज्वलतम रूप हैं नारी के !

पिछले पृष्ठों पर हमने पंजाब श्रमण परम्परा का इतिहास प्रस्तुत किया है। हम समझते हैं कि साध्वी परम्परा के इतिहास के बिना यह अध्याय अपूर्ण रह जाएगा। जैसे आर्य सुधर्मा स्वामी से लेकर वर्तमान तक मुनि परम्परा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित रही है वैसे ही आर्या चन्दनबाला से लेकर वर्तमान तक श्रमणी परम्परा भी अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है।

"पंजाब श्रमणी परम्परा" हमारा प्रतिपाद्य है। श्रमण परम्परा के इतिहास की तरह ही श्रमणी परम्परा का इतिहास भी पूर्ण प्रामाणिक रूप से उपलब्ध नहीं है। तथापि १७५० वि.स. के पूर्व से लेकर आज तक की परम्परा का यथाशक्य जो रूप है वही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) साध्वी खेता जी

पंजाब के श्रमणी परम्परा के इतिहास में अब तक साध्वी खेताजी का नाम सबसे प्राचीन है। आपका इतिवृत्त अज्ञात है। अनुलेखों के आधार पर इतना स्पष्ट है कि आप वि.सं. १७५० में विद्यमान थीं। इसी संवत् में आपके पास दीक्षा हुई थी ऐसा अनुलेख प्राप्त होता है। पंजाब स्थानकवासी श्रमण परम्परा के आद्य पुरुष श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिदास जी महाराज की आप समकालीन थीं। क्योंकि श्री हरिदास जी महाराज अनुमानतः १७३० में अहमदाबाद से पुनः पंजाब में पधारे थे।

आपकी एक शिष्या का नाम प्राप्त होता है – श्री वगताजी। आपकी समकालीन कुछ अन्य साध्वियों – श्री मीना जी, श्री ककोजी के नाम भी प्राप्त होते हैं।

(२) श्री वगता जी आर्या

आपका जन्म स्थान अज्ञात है। वैसे आपकी माता का नाम श्रीमती वेगा और पिता का नाम श्रीमान रत्नसिंह था। जाति से आप संभवतः राजपूत किसान थीं। पंजाब में आपका अच्छा प्रभाव प्रतीत होता है क्योंकि धनी, मानी परिवारों की कई पुत्रियां और पुत्रवधुएं आपके चरणों में दीक्षित हुई थीं।

आपकी कई साध्वियां थीं – मीना जी, ककोजी दया जी, फूलो जी आदि। किन्तु शिष्या के रूप में श्री सीताजी का ही नाम प्राप्त होता है। आपके संघ में सुजानी नाम की एक आर्या हुई हैं जो कुशल लिपिक थीं। उनका लिखा हुआ ४३ पृष्ठों का "निशीथ सूत्र टब्बार्थ" जो १७६५ में लिखा गया था, प्राप्त होता है।

आर्या वगता जी का देहावसान १७८० वि.सं. में हुआ।

(३) धर्म प्रचारिका सीता जी आर्या

आप अमृतसर के जौहरी परिवार की पुत्री थीं। आपकी माता अमृता देवी धर्म प्राण सन्नारी थीं। उन्हीं की प्रेरणा से वि.सं. १७५५ में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। आप बालब्रह्मचारिणी साध्वी थीं तथा ओजस्विनी वक्त्री थीं। आपके उपदेशों से सहस्रों लोगों ने मद्य मांस का त्याग किया। आपका देहावसान काल अज्ञात है।

(४) अनुशास्ता साध्वी श्री खेमाजी

आप रोड़ का मुहाना (रोहतक-हरियाणा) गांव की थीं। आपकी माता का नाम जीवा देवी था। भरे-पूरे गार्हस्थ्य को छोड़कर वि.स. १८०० में आपने आर्या सीता जी से दीक्षा ली। आप अपने समयकी संयमी, अनुशासिका और कुशल प्रचारिका साध्वी थी। अनेक साध्वियों की आप प्रमुखा थीं। संघ में आपका विशेष गौरव था।

दया जी, मंगला जी, फूलांजी-पूलांजी, सदाकुंवरजी आदि आपकी साध्वियां थीं। आपकी दो शिष्याएं हुईं - श्री वेनती जी और श्री सजना जी।

साध्वी खेमाजी ने अपने जीवन में नैतिक धर्म का खूब प्रचार किया। आपने ढ़ाई सौ जोड़ों को ब्रह्मचर्य का नियम दिलाया था। आप प्रभाविका साध्वी थीं।

आर्या फूलां जी –

आपके लिए 'पूलांजी' नाम भी लिखा हुआ मिलता है। आप साध्वी दया जी की शिष्या थीं। साध्वी वषतांजी आपकी शिष्या थी। पंचेवर ग्राम में सोमजी ऋषि की चार सम्प्रदायों का सम्मेलन १८१० में हुआ था। उक्त सम्मेलन में आप आचार्य हरिदास जी महाराज के साध्वी संघ की प्रमुखा आर्या खेमा जी की प्रतिनिधि के रूप में कई साध्वियों के साथ सम्मिलित हुई थीं। आप अपने समय की महान् धर्म प्रभाविका साध्वी थी। संभवतः आप १८७७ तक विद्यमान थीं। शेष इतिवृत्त अनुपलब्ध है।

(५) आर्या सजना जी –

आप खेमाजी की शिष्या थीं। आप देहली की रहने वाली थीं तथा जाति से राजपूत थीं। वि.सं. १८६५ में आपकी दीक्षा हुई थीं। आपकी दो शिष्याएं थीं – श्री ज्ञानाजी और श्री शेरांजी। ये दोनों ही सुयोग्य साध्वियां थीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) महार्या ज्ञाना जी –

आपको पंजाब में श्रमण परम्परा की जन्मदात्री और संस्थापिका कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। आचार्य श्री छजमल जी महाराज के पश्चात् पंजाब में कोई मुनि शेष नहीं रहा था। उस समय आपने रामलाल नामक युवक को दीक्षित करके श्री छजमल जी म. का शिष्य घोषित किया और पंजाब में आज जो मुनिसंघ विद्यमान है वह श्री रामलाल जी म. का ही है।★

ज्ञानाजी की दीक्षा वि. सं. १८७० में हुई। आप जाति से ओसवाल थीं। आप स्वभाव से शान्त, सरल और विनम्र थीं। संयम-तप की प्रतिमूर्ति थीं। आगम ज्ञान के साथ-साथ ज्योतिष और सामुद्रिक विद्याओं में भी निपुण थीं।

आप कई वर्षों तक सुनाम नगर में स्थिरवासी रहीं। देहावसान काल अभी तक अज्ञात है। इतना प्रमाणित है कि १८६५ तक आप जीवित थीं। आपकी दो शिष्याएं थीं – श्री खूबांजी और श्री जीवनी देवी जी। सदाकंवर जी नामक साध्वी आपकी समकालीन थीं। इन द्वारा लिपिकृत १८६८ का "नेमनाथ जी ब्याला" उपलब्ध होता है।

साध्वी श्री खूबांजी

आप जाति से राजपूत थीं। दिल्ली विवाहित हुईं और वैधव्य के बाद वि.सं. १८८१ में दीक्षित हुईं। आपने अनेक वर्षों तक सुनाम में स्थिरवासी अपनी गुरूणी ज्ञानां जी की सेवा की थी। आपने कई प्रदेशों में विचरण किया। पंजाब की विश्रुत नाम महार्या श्री पार्वती जी को आपने ही अपनी अन्तेवासिनी बनाया था।

आपकी तीन शिष्याएं थीं – (१) श्री हीरांजी (२) दीपो जी (३) मूलां जी। आपकी दो अन्य शिष्याओं के नाम भी प्राप्त होते हैं – (१) आशादेवी जी म. एवं श्री निहालदेवी जी म.। इनमें से हीरांजी जाति से माली थीं और १८८२ में दीक्षित हुई थीं। श्री दीपो जी जाति से क्षत्रिय थीं और १८८३ में दीक्षित हुई थीं। आर्या खूबांजी की गुरु बहन जीवन देवी जी की दीक्षा वि.सं. १८६५ में सुनाम में हुई थीं और ये जाति से ओसवाल थीं।

श्री खूबांजी का देहावसान वि.सं. १६३१ में टांडा नगर में (पंजाब) चातुर्मास में हुआ था।

(८) साध्वी श्री मूलांजी

तपस्वी श्री छजमल जी म. आपके गृहस्थ पक्ष में मौसा थे। आप जाति से कुम्हार थीं। वि.सं.१८६७ में खूबां जी के पास दीक्षित हुई थीं। आपकी तीन शिष्याएं बनीं (१) श्री वथो जी (१८६८) (२) श्री तावोजी (१६००) (३) श्री मेलो जी (१६०१)।

आपका देहावसान पंजाब के रमीद्दी गांव में ३१ दिन के संथारे सहित वि.सं. १६०३ में हुआ। आपकी गुरुणी और शिष्याएं आपके देहावसान से २० दिन पूर्व ही आपके पास पहुंच गई थीं। उसी दौरान उसी गांव की एक महिला जयदेवी जी ने साध्वी ताबोजी से दीक्षा ली थी।

(६) तपस्विनी श्री मेलोजी

आपकी परम्परा पंजाब श्रमणी वर्ग की बृहद एवं सशक्त परम्परा है। इसका मूल कारण है– अन्य दो परम्पराओं का इस परम्परा में विलीनीकरण। इनमें से एक उत्तरप्रदेश की परम्परा की साध्वी श्री हीरादेवी जी शिष्या महार्या श्री पार्वती जी तथा दूसरी बेनती जी आर्या की संतानिका साध्वी रत्न श्री चन्दा जी की है। (साथ ही

★ विस्तृत विवरण श्री रामलाल जी म. के परिचय (आचार्य परम्परा) में देखिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिल्ली स्थित श्री हुक्मीदेवी जी और आर्या राजकली जी का भी विलय इसी परम्परा में) अतः प्रथम इसी परम्परा का उल्लेख उचित है।

श्री मेलोजी जाति से ओसवाल थी। आपका जन्म गुजरांवाला में वि.सं. १८८० में हुआ। आपके पिता का नाम श्री पन्नालाल जी था। २१ वर्ष की आयु में वि.सं. १९०१ में श्री मूलांजी की नेश्राय में कान्धला में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। आप बालब्रह्मचारिणी थीं।

स्वाध्याय, सेवा और तपस्या में आपकी विशेष रुचि थी। पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान आदि प्रदेशों में आपने विचरण किया। ८४ वर्ष की दीर्घ आयु और ६३ वर्ष की दीक्षा पर्याय पालकर वि.सं. १९६४ में रायकोट में समाधि सहित आपने देहोत्सर्ग किया।

आपकी दो शिष्याएं थीं – (१) श्री चम्पा जी (वि.सं. १९२८) (२) महार्या श्री पार्वती जी

(१०) प्रवर्तिनी महार्या श्री पार्वती जी महाराज

आपका जन्म आगरा के निकटवर्ती ग्राम भोड़पुरी में वि.सं. १९११ में श्रीमान बलदेव सिंह चौहान (राजपूत) की धर्मपत्नी श्रीमती धनवन्ती की रत्नकुक्षी से हुआ। मात्र तेरह वर्ष की अवस्था में आपने वि.सं. १९२४ चैत्र सुदी १ को श्री हीरादेवी जी म. से कान्धला के निकट एलम गांव में दीक्षा ली। आप आगमों की अध्येता बनीं। आगरा में श्री कंवरसैनजी महाराज ने आपको आगम अध्ययन कराया।

कालान्तर में वि.सं. १९२६ अथवा १९३० में आपने अपना सम्बन्ध पंजाब परम्परा की साध्वियाँ श्री खूबांजी, श्री मेलो आदि से जोड़ लिया। आप श्री मेलोजी की शिष्या के रूप में विख्यात हुईं।

पंजाब में आपकी विद्वत्ता और प्रवचनकला की अच्छी धाक थी। आप कवयित्री, लेखिका और तपस्विनी भी थीं। आपने राजस्थान प्रदेश की भी यात्रा की। आपके प्रभावक व्यक्तित्व को देखते हुए आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज ने लुधियाना नगर में ४१ संतों, २५ सतियों तथा ७५ नगरों के श्रीसंघों के समक्ष आपको **प्रवर्तिनी पद** प्रदान किया।

आपकी चार शिष्याएं हुईं – (१) श्री जीवोजी (वि.सं. १९३६) (२) श्री कर्मो जी (वि.सं. १९३८) (३) श्री भगवान देवी जी (वि.सं. १९४३) (४) श्री राजमती जी (वि.सं. १९४६)।

वि.सं. १९६६ माघ कृष्णा ६ को जालंधर में आपका स्वर्गवास हुआ। आपकी प्रथम दो शिष्याओं की वर्तमान में शिष्य परम्परा नहीं है।

श्री भगवान देवी जी की चार शिष्याएं हुईं – (१) श्री मथुरोजी (२) श्री पूर्ण देवी जी (३) प्रतिभासम्पन्न श्री द्रौपदांजी (४) श्री लक्ष्मीजी।

श्री द्रौपदांजी की चार शिष्याएं हुईं– (१) श्री धन्न देवी जी (२) श्री मोहनदेवी जी (३) श्री धर्मवती जी (४) श्री हंसा देवी जी।

श्री धन्न देवी जी की चार शिष्याएं हुईं – (१) श्री शीतलमति जी (२) श्री मनोहर मति जी (३) श्री धर्मवती जी (४) श्री लोचनमति जी।

श्री शीतल मति जी की एक शिष्या हुई - उप.प्र. श्री कैलाशवती जी म.। इनकी पांच शिष्याएं हुईं– (१) चन्द्रप्रभाजी (२) कुसुमप्रभाजी (३) श्री शशी प्रभा जी (४) श्री ओमप्रभा जी (५) श्री पद्मप्रभाजी। वर्तमान में इन साध्वियों की शिष्या-संख्या १८ के लगभग है।

श्री मनोहरमति जी की तीन शिष्याएं हुईं – (१) श्री सुदर्शनामति जी (२) श्री तिलका सुन्दरीजी (३) श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगदीश मतिजी। इनमें से प्रथम की एक शिष्या श्री फूलमति थी। द्वितीय की शिष्या श्री प्रकाशवती जी है। तृतीय आर्या की चार शिष्याएं हैं – (१) श्री कृष्णा जी (इनकी एक शिष्या है श्री सुनीता जी) (२) श्री रमेश कुमारीजी (इन्द्राजी) (३) श्री कमल श्री जी (४) श्री सन्तोष जी। इन साध्वियों की कई-कई शिष्याएं हैं।

श्री द्रौपदांजी महार्या की द्वितीय शिष्या श्री मोहनदेवी जी की चार शिष्याएं हुईं – (१) श्री विमलमति जी (२) श्री रोशनमतिजी (३) रुक्मणी जी (४) श्री राजेश्वरी जी। इनमें से प्रथम की एक शिष्या थी श्री गोपी जी (जम्मू में थी) द्वितीय की दो शिष्याएं हुईं – (१) श्री हुक्म देवी जी (२) श्री केसरा देवी जी। श्री हुक्मदेवी जी की तीन शिष्याएं हुई – (१) श्री स्वर्ण प्रभा जी 'वीरमती' (२) प्रवीण कुमारी जी (३) निर्मल कुमारी जी।

श्री केसरा देवी जी म. की दो शिष्याएं हैं – श्री कौशल्याजी म. एवं श्री नीति श्री जी म.। श्री कौशल्याजी म. की चार शिष्याएं तथा तेरह प्रशिष्याएं हैं।

श्री राजेश्वरी जी म. की तीन शिष्याएँ हैं – (१) श्री शकुन्तला जी (२) श्री प्रमोद कुमारी जी (३) श्री तृप्ताजी। (शेष विवरण इतिहास में पढ़िए)

प्रवर्तिनी श्री राजमती जी महाराज

आपका जन्म स्यालकोट के सम्पन्न जैन कुल में हुआ। आपने प्रवर्तिनी श्री पार्वती जी म. से वि.सं. १९४८ वैशाख सुदी १३ को अमृतसर में दीक्षा अंगीकार की। अपनी गुरूणी जी की सेवा में आप कई वर्षों तक जालंधर में रहीं। गुरूणीजी के देहावसान के पश्चात् आप प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित हुईं। वि.सं. २०१० में आपका स्वर्गवास जालंधर में ही हुआ। स्वाध्याय, ध्यान, जप, मौन आदि में आपकी विशेष रूचि थी। आपकी सात शिष्याएं हुईं – (१) श्री हीरादेवी जी (२) श्री पन्नादेवी जी (३) श्री चन्दा जी (४) श्री माणक देवी जी (५) श्री रत्न देवी (६) श्री ईश्वरा देवी जी (७) श्री राधादेवी जी।

(क) श्री हीरादेवी जी की शिष्या विद्यावती जी म. तथा उनकी शिष्या श्री प्रेमाजी म. हुई।

(ख) महार्या श्री पन्नादेवी जी म. की तीन शिष्याएं हुईं – (१) श्री जयंतिजी (२) श्री राजकली जी (३) श्री हर्षावती जी। इनमें से प्रथम साध्वी की दो शिष्याएं हुईं – (१) श्री प्रज्ञावती जी म. एवं श्री विजेन्द्र जी। श्री प्रज्ञावती जी की तीन शिष्याएँ हुईं – (१) श्री माया देवीजी (२) श्री प्रमोद कान्ता जी आदि...

श्री राजकली जी की दो शिष्याएं हैं – (१) श्री सरलाजी (२) श्री शीलाजी। श्री सरलाजी की दो शिष्याएं हैं) (१) श्री कुसुम जी (२) डॉ. श्री अर्चना जी। श्री कुसुम जी की तीन शिष्याएं हैं – (१) श्री साधना जी, (२) श्री करुणा जी (३) श्री सुभाषा जी। श्री अर्चना जी की दो शिष्याएँ हैं – (१) श्री मनीषाजी (२) उपमा जी तथा वन्दना जी अन्तेवासिनी है। शेष यथा स्थान।

श्री हर्षावती जी की एक शिष्या हुई – श्री अशरफी जी और इनकी श्री स्नेहलता जी (मुन्नी) शिष्या हैं।

(ग) महासती श्री चन्दाजी म. की तीन शिष्याएँ हुई – (१) श्री देवकी जी (२) श्रीमती जी (३) श्री धनदेवीजी। प्रथम की शिष्यावली नहीं है।

श्रीमती जी म. की दो शिष्याएं हुईं – (१) श्री हाकम देवीजी लाहौरवाली (२) महार्या श्री लज्ञावती जी म.। श्री लज्ञावती जी म. की चार शिष्याएं हुईं – (१) श्री दयावती जी म. (२) श्री अभय कुमारी जी म. (३) श्री चम्पाजी म. (४) श्री दीपमाला जी म.।

श्री अभय कुमारी जी म. की तीन शिष्याएं हैं – (१) शांता जी (२) श्री पदमा जी (३) श्री मीना जी। इनकी चार प्रशिष्याएँ भी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री धनदेवी जी म. की दो शिष्याएं हैं – (१) श्री गुणमालाजी (फरीदकोटी) (२) श्री सौभाग्यवती महाराज। श्री सौभाग्यवती जी म. की दो शिष्याएं हैं – (१) श्री सीताजी म. एवं श्री कौशल्या जी म.।

श्री सीता जी की शिष्या श्री सावित्री जी एवं श्री महेन्द्रीजी हैं। श्री सावित्री जी म. की दो शिष्याएं हैं – (१) श्री शिमला जी (२) श्री शिक्षा कुमारी जी (वीनाजी म.)

श्री महेन्द्री जी की एक शिष्या हैं – श्री जनक कुमारी जी म.। अन्य यथा स्थान देखें।

श्री कौशल्या जी म. की तीन शिष्याएं हैं – (१) श्री विमला कुमारी जी (२) श्री प्रमिला कुमारी जी (३) श्री निर्मला जी म.। इनकी सात प्रशिष्याएं भी हैं।

(घ) तपस्विनी श्री माणकदेवी जी म. की शिष्या जयवंति जी म. थी। उनकी शिष्या श्री प्रकाशवती जी तथा उनकी श्री वल्लभवती जी म. थीं।

(ङ) स्थविरा साध्वी रत्न श्री रत्नदेवी जी म. की एक शिष्या थीं – श्री विनयवंती जी म.। इनकी दो शिष्याएं थीं – (१) श्री सत्यवती जी म. (२) श्री अमरावती जी म.। श्री सत्यवती जी म. की तीन शिष्याएं हुईं – (१) श्री रमादेवी जी (२) श्री राम प्यारी जी (३) श्री सुभापवती जी। इनमें से द्वितीया साध्वी की दुर्गा देवी जी थी। श्री सुभाषवती जी म. की शिष्या थीं – विश्रुत साध्वी श्री प्रवेश कुमारी जी म.। इनकी पांच शिष्याएं हुईं – (१) तपाचार्य श्री मोहनमाला जी म. (२) श्री शांति जी (३) श्री पवित्र ज्योति जी म. (४) श्री मंजु ज्योति जी म. (५) मधुर कण्ठ, तुपस्विनी श्री पूजा जी म.। इनकी एक दर्जन से अधिक प्रशिष्याएं हैं। श्री अमरावती जी की दो शिष्याएं हैं – श्री सुदेश कुमार जी एवं श्री प्रवीण कुमारी जी।

(च) श्री ईश्वरा दीवी जी म. की चार शिष्याएं हुईं – (१) श्री पार्श्ववती जी (२) श्री जिनेश्वरी देवी जी (३) श्री प्रभावती जी (४) श्री आशा देवी जी।

श्री पार्श्वती जी की दो शिष्याएं हुईं – (१) स्थविरा श्री प्रियावती जी म. (२) विदुषी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज! श्री स्वर्णकान्ताजी का विशाल शिष्या-प्रशिष्या परिवार है। (देखें उनका अभिनन्दन ग्रन्थ)

(छ) साध्वी श्री राधादेवी जी म. परम्परा नहीं है।

साध्वी श्री तावोजी

आप श्री जी मूलांजी की शिष्या तथा तपस्विनी मेलो जी की गुरु बहन थीं। निम्न पंक्तियों में आपका परिचय तथा परम्परा प्रस्तुत की जा रही है।

आपका जन्म जालन्धर नगर में एक किसान परिवार में हुआ था। आपकी दीक्षा १६०० में हुई। आप अपने समय की अच्छी प्रतिभावान साध्वी थीं। उन्नीस दिन के संथारे के साथ रोहतक में आपने देहोत्सर्ग किया। आपकी तीन शिष्याएं हुईं – (१) जीवनी जी★ (२) सुषमा जी ❀ (३) श्री जयदेवी जी।

श्री जयदेवी जी महाराज की श्री गंगी देवी जी महाराज एक सुयोग्य शिष्या हुईं। ये अपने समय की प्रभावशाली साध्वी थीं। उग्रतपस्विनी थीं। इनकी दो शिष्याओं का प्रमाण प्राप्त होता है जिनके नाम हैं – (१) श्री नन्दकौर जी म. एवं (२) श्री मथुरा देवी जी म.।

श्री मथुरादेवी जी म. की चार शिष्याएं हुईं – (१) श्री सत्यावती जी (२) श्री मगनश्री जी (३) श्री राजमति जी (४) श्री सुन्दरीजी। इनमें से प्रथम की शिष्या परम्परा नहीं है।

श्री मगनश्री जी की तीन शिष्याएं हैं – (१) श्री शकुन्तला जी (२) श्री वीरमति जी (३) श्री मीनेश जी। इन तीन आर्याओं का लगभग सोलह साध्वियों का शिष्या-प्रशिष्या परिवार है।

★❀ इनका विशेष परिचय गुरुदेव श्री सुमनमुनि जी म. द्वारा लिखित पुस्तक "पंजाब श्रमणसंघ गौरव आचार्य श्री अमरसिंह जी म." में पृष्ठ १६७ पर देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री राजमति जी की शिष्या आज्ञावती जी हैं।

श्री सुन्दरी देवी जी म. की छह शिष्याएं हैं – (१) श्री शान्तिजी (२) श्री भागवन्ती जी (३) श्री सुशील जी (४) श्री सुषमाजी (५) श्री सुधाजी (६) श्री संगीता जी। आपके प्रशिष्या परिवार की साध्वियों की संख्या २५ से अधिक है।

महार्या श्री शेरांजी महाराज

आप महार्या श्री सजना जी महाराज की शिष्या और श्रीज्ञानां जी महाराज की गुरुबहन थीं। आपका जन्म अमृतसर नगर में हुआ। लाला खुशहाल सिंह जौहरी आपके पिता थे। आप संसार पक्ष में आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज की बूआ थीं। आपकी दीक्षा वि.सं. १८७५ में स्यालकोट नगर में इक्यावन वर्ष की दीर्घायु में आर्या सजना जी के चरणों में हुई।

आप आगमज्ञ साध्वी थीं, विदुषी एवं प्रवचनकार भी थीं। त्याग, संयम आदि में आपने कभी शैथिल्य को प्रश्रय नहीं दिया। आप अपने नाम के अनुरूप ही शेरनी की भांति ही साहसी व पराक्रमी थीं। आपने अपने वर्चस्व एवं व्यक्तित्व से पंजाब प्रदेश की परम्परा को दो साधुरत्न एवं संघ शिरोमणि आचार्य प्रदान किए। पढ़िए दो **संस्मरण** –

(१) आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज जब गृहस्थ में थे, तो उनके पुत्रों का देहान्त हो गया था, फलतः वे बड़े उदास, शोक मग्न रहने लगे। विशेषतः अन्तिम पुत्र के लिए जो लगभग नौ वर्ष का होकर विलग हो गया। उस समय श्रीशेरांजी महार्या ने उन्हे संसार तथा पुद्गल वैचित्र्य का ज्ञान करवाते हुए आर्त्त-ध्यान एवं मोह को कर्म बन्ध तथा आत्म-पतन का कारण बताते हुए संयम-त्याग मार्ग अपनाने की प्रेरणा दी थी। फलतः वे पं. श्री रामलाल जी म. के चरणों में वि.सं. १८६८ वर्ष में दीक्षित हो गए।

(२) एक बार आप पसरूर (स्यालकोट) नगर में पधारीं। आपकी धर्मकथा में श्री सोहनलाल भी आया करते। तब उनकी उम्र सात वर्ष थी। एक दिन अनायास ही आप की दृष्टि श्री सोहनलाल जी के पांव पर पड़ी। आपने भविष्यवाणी की कि – यह बालक एक महान् संत और धर्म प्रभावक होगा। आखिर आपकी यह भविष्य वाणी सत्य सिद्ध हुई।

आपकी दो शिष्याएं हुई – (१) श्री पूर्ण देवीजी (२) श्री गंगी जी। आगे चलकर इस परम्परा में कई तेजस्विनी और संयमी साध्वियां हुई।卐

उपसंहार –

प्रस्तुत श्रमणी परम्परा में समयाभाव व स्थानाभाव के कारण हम पंजाब श्रमणी परम्परा का उपलब्ध सांगोपांग इतिहास प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं। जो परम्पराएं हमने प्रस्तुत की हैं वे भी अल्प परिचय और अत्यन्त संक्षेप में उद्धृत हुई हैं। हम समझते हैं कि **"पंजाब श्रमणी परम्परा"** का सांगोपांग इतिहास एक स्वतंत्र ग्रन्थ की अपेक्षा रखता है। इतिहास केसरी श्री सुमनमुनि जी महाराज ने इस दिशा में एक स्तुत्य कार्य किया है। उनकी लिखी हुई पुस्तक **"पंजाब श्रमण संघ गौरव आचार्य श्री अमरसिंह जी म."** में साध्वी परम्परा के इतिहास का संक्षेप में उल्लेख हुआ है। विद्वान् व इतिहासज्ञ मुनियों व साध्वियों को इस दिशा में ध्यान देना चाहिए।

उक्त अध्याय का आधार ग्रन्थ "पंजाब श्रमण संघ गौरव..." है। 'पंजाब श्रमणी परम्परा' के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु उक्त ग्रन्थ का अवलोक करें।

卐 विशेष जानकारी के लिए देखिए श्री सुमन मुनि जी म. द्वारा लिखित पुस्तक "पंजाब श्रमणसंघ गौरव..." का पृष्ठ १६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंजाब श्रमण परम्परा : तालिका दर्पण में

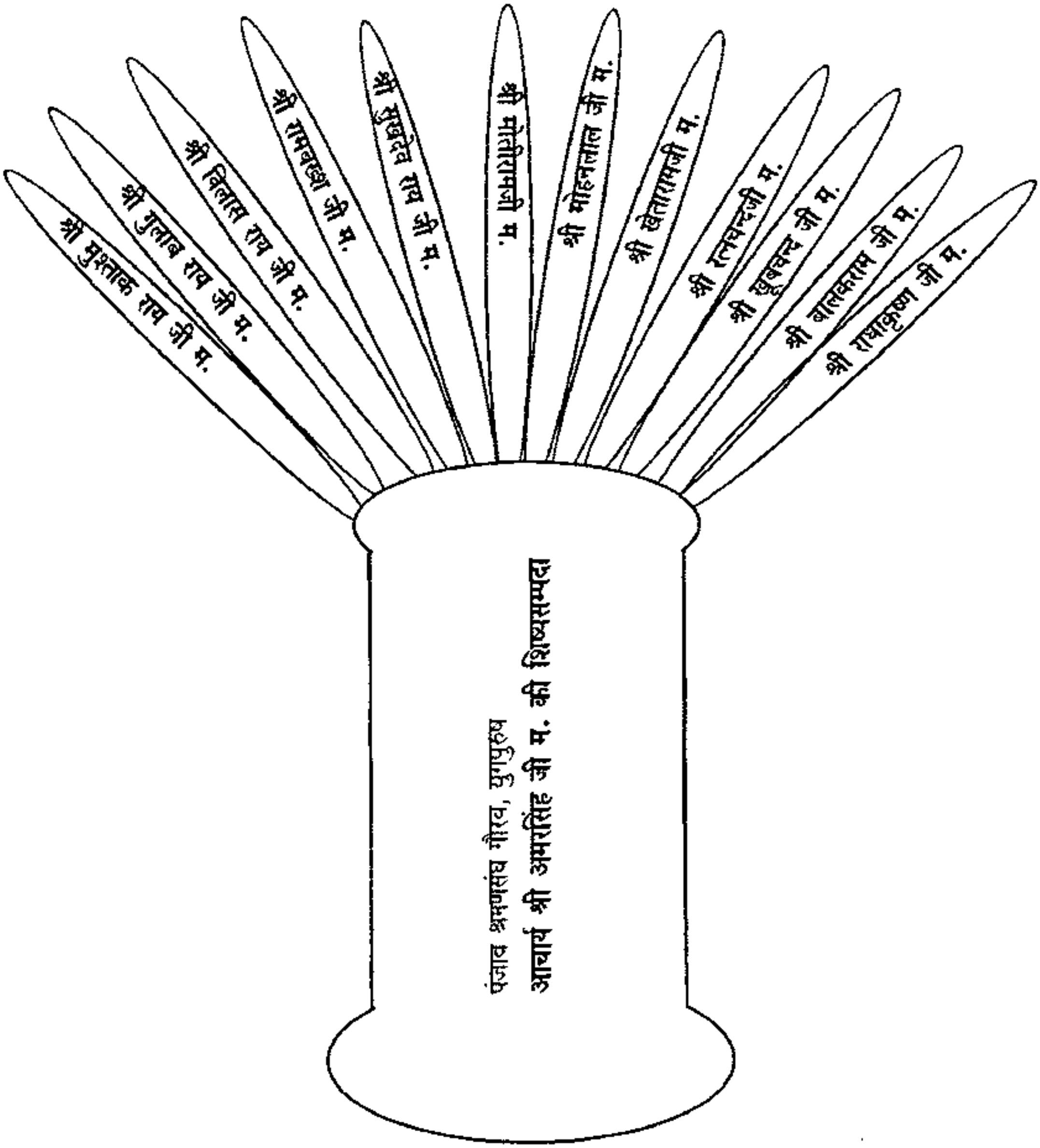

नोट : वर्तमान पंजाब श्रमण वर्ग आचार्य प्रवर श्री अमरसिंह जी महाराज के बारह शिष्यों का शिष्य-प्रशिष्य परिवार है। आचार्य श्री की परम्परा में हुए आज तक के मुनियों की नामावलि तालिकाओं में प्रस्तुत की गई है। कुछ नवदीक्षित मुनियों के नाम संभव है रह गए हैं। एतदर्थ हम क्षमाप्रार्थी हैं।

संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) श्री मुश्ताकराय जी म. की शिष्य परम्परा

- श्री हीरालाल जी महाराज
  - तपस्वी श्री करणीदान जी म.
  - श्री रत्नारामजी म.
    - श्री दौलतराम जी म.
      - सेवाव्रती श्री खजानचन्द जी म.
  - तपस्वी श्री गोविंदराम जी म.
    - श्री नारायणदास जी म.
      - श्री कुन्दनलाल जी म. भण्डारी

(२) श्री गुलाबराय जी म. की शिष्य परम्परा नहीं है।

(३) श्री विलास राय जी महाराज

- तपस्वी श्री माणकचन्द जी म.
  - श्री ऋषिराम जी म.
    - श्री मेहरचन्द जी
- गोपालचन्द जी म.
- श्री गुलाबराय जी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) आचार्य श्री रामबक्ष जी महाराज

- वृद्ध श्री शिवदयाल जी म.
  - अन्तेवासी शिष्य श्री राजमलजी म.
    - तप. माणकचंद (गुजरानवाला)
- श्री विशनचन्द जी म.
  - तपस्वी श्री रामचन्द्रजी म.
    - श्री फतेहचन्दजी म.
- तपस्वी श्री नीलोपत जी म.
  - श्री हरनाम दास जी म.
    - I श्री मयारामजी म.
    - II श्री जवाहरलाल जी म.
    - श्री शंभूनाथ जी म.
- श्री दलेलमल जी म.
- पं. श्री धर्मचन्द जी म.
  - बहुश्रुत श्री शिवदयालजी म.
    - III श्री धनीराम जी म.
      - IV पं. श्री कृष्णचन्दजी म.
  - V आचार्य श्री सोहनलाल जी म.

I, II की शिष्य परम्परा का चार्ट विस्तृत होने से अलग पृष्ठ पर दिया गया है।

III, IV ये गुरु और शिष्य कालान्तर में 'जैनेन्द्र गुरुकुल' पंचकूला की स्थापना के लिए यति बन गए थे।

V इनकी शिष्य परम्परा विशाल होने से पृथक् चार्ट में दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज की शिष्य परम्परा

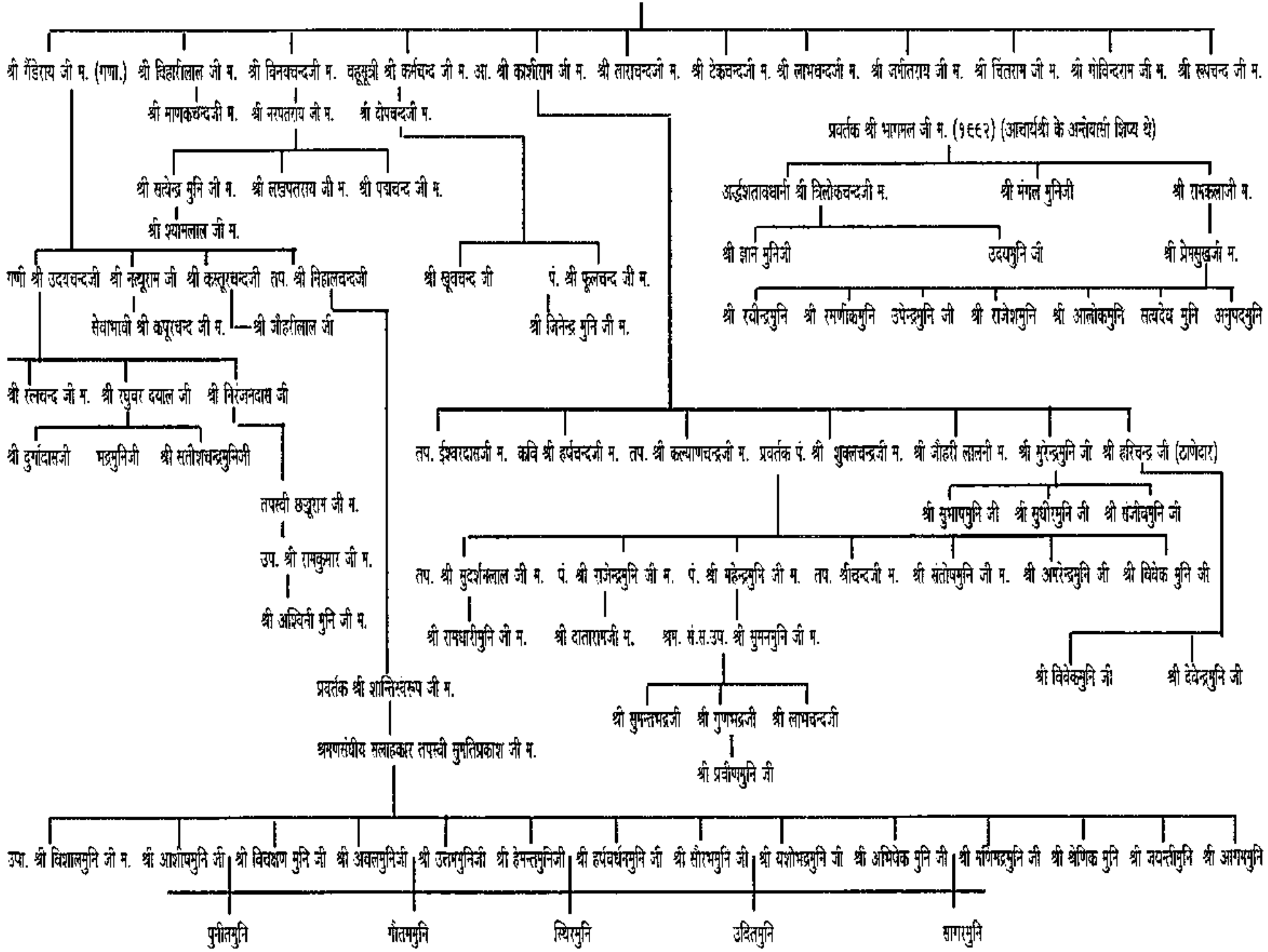

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

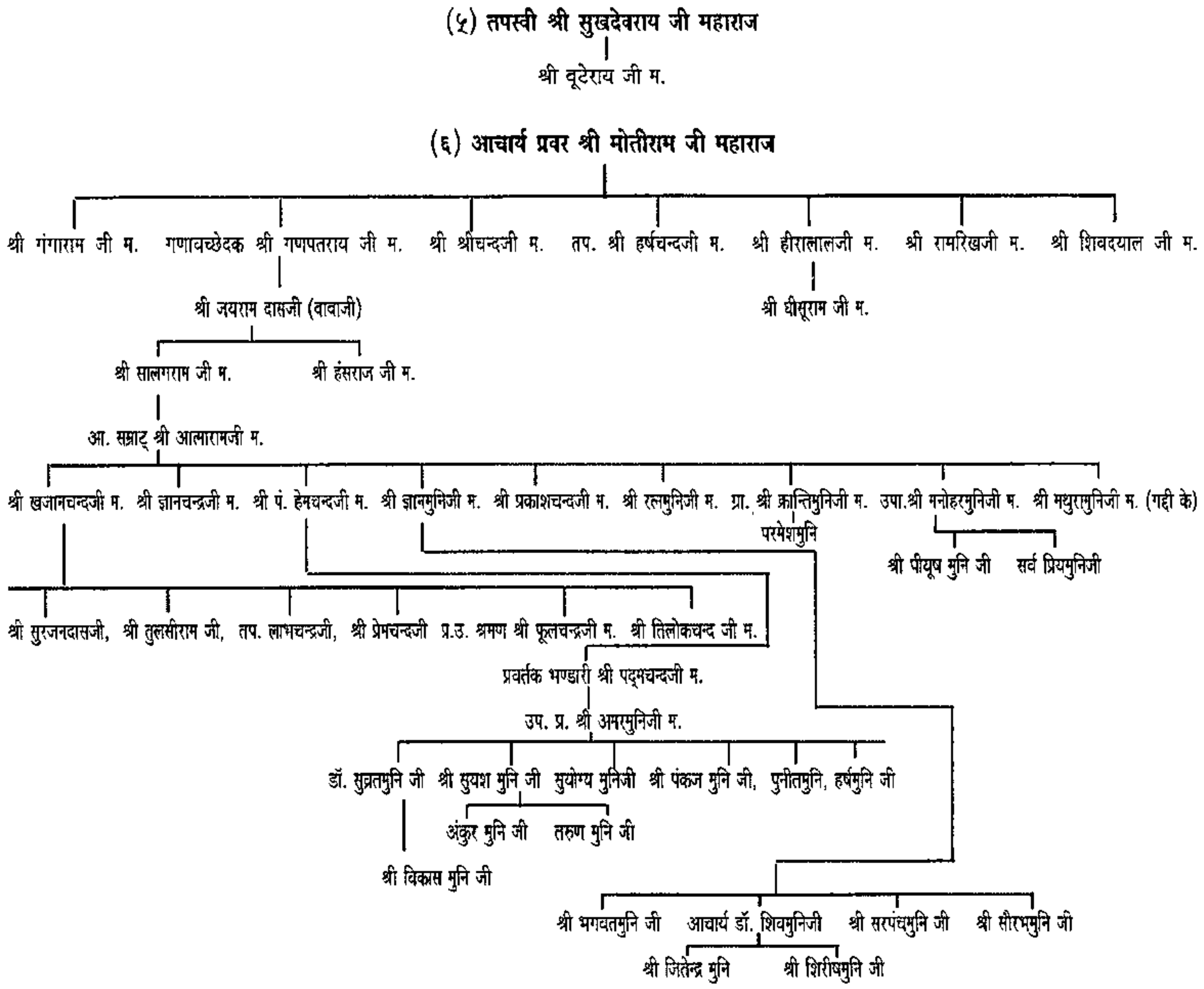

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७) श्री मोहनलाल जी म. की शिष्य परम्परा नहीं है।

(८) श्री खेताराम जी महाराज

|

श्री दौलत राम जी म.

(९) श्री रत्नचन्द जी महाराज

|

श्री देवीचन्द जी म.

(१०) सेवाव्रती श्री खूबचन्द्रजी महाराज

श्री बधावाराम जी म.

तपस्वी श्री केसरी सिंहजी म.

|

श्री रामनाथ जी म.

|

श्री जसराम जी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) मान्यसंत श्री बालकराम जी महाराज

- सिद्धपुरुष श्री लालचन्द्र जी म.
  - श्री पूर्णचन्द जी म.
  - गणा. श्री गोकुलचन्दजी म.
    - श्री सूरतराम जी म.
    - श्री उग्रसेन जी म.
    - श्री जगदीशचन्द्र जी म.
      - वि.कें. श्री विमल मुनि जी, दर्शन मुनि जी, श्री जीतेन्द्र मुनि जी
        - श्री मणिभद्रजी
        - श्री रामनाथ जी
        - तप. श्री रमणमुनि
  - श्री रामस्वरूप जी म.
    - कविरत्न श्री अमरमुनि जी म. (पंजाबी)
      - श्री ज्ञानमुनि जी म. भण्डारी
      - श्री धर्मवीर जी म.
  - श्री आलारामजी म.
  - श्री खड़गचन्दजी म.
    - श्री जीवारामजी म.
      - श्री वेलीराम जी म.
- कवि श्री प्रेमसुख जी म.
  - श्री शादीलाल जी म.
    - श्री हरीचन्दजी
      - श्री खुशालचन्द जी, श्री नरसिंह दास जी म.
    - श्री प्यारेलाल जी
      - स्वामी श्री नेकचन्द जी म.
- श्री चंचलमल जी म.
  - श्री लक्ष्मीचन्द जी म.

(१२) श्री राधाकृष्ण जी म.

- श्री दत्तामल जी म.
- श्री हुक्मीचन्द जी म.
  - घोर तपस्वी श्री सेवगराम जी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री अमरसिंहजी म. के (४) शिष्य रामबख्श जी म.

इनके तीसरे शिष्य

तप. श्री नीलोपत जी

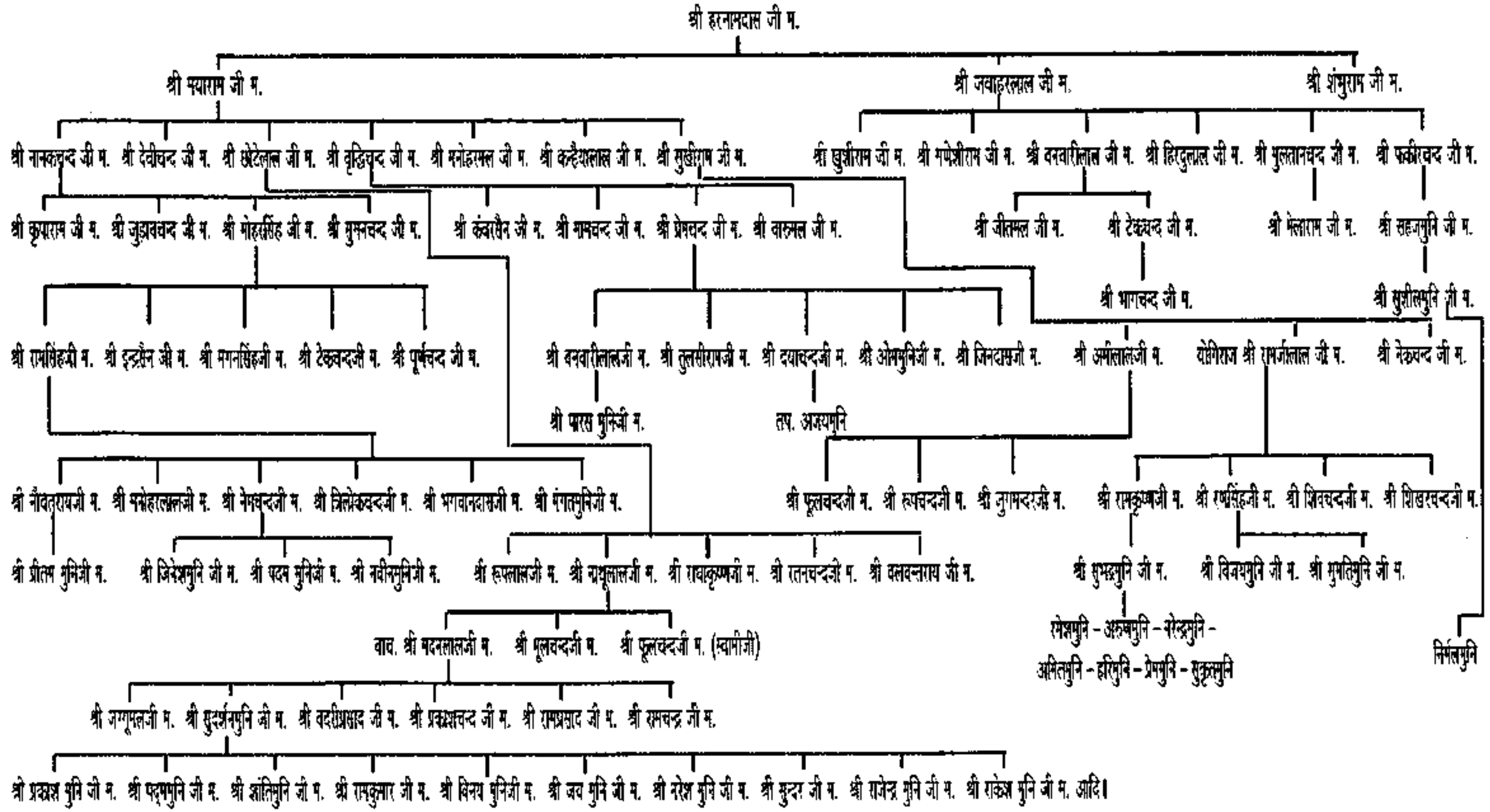

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

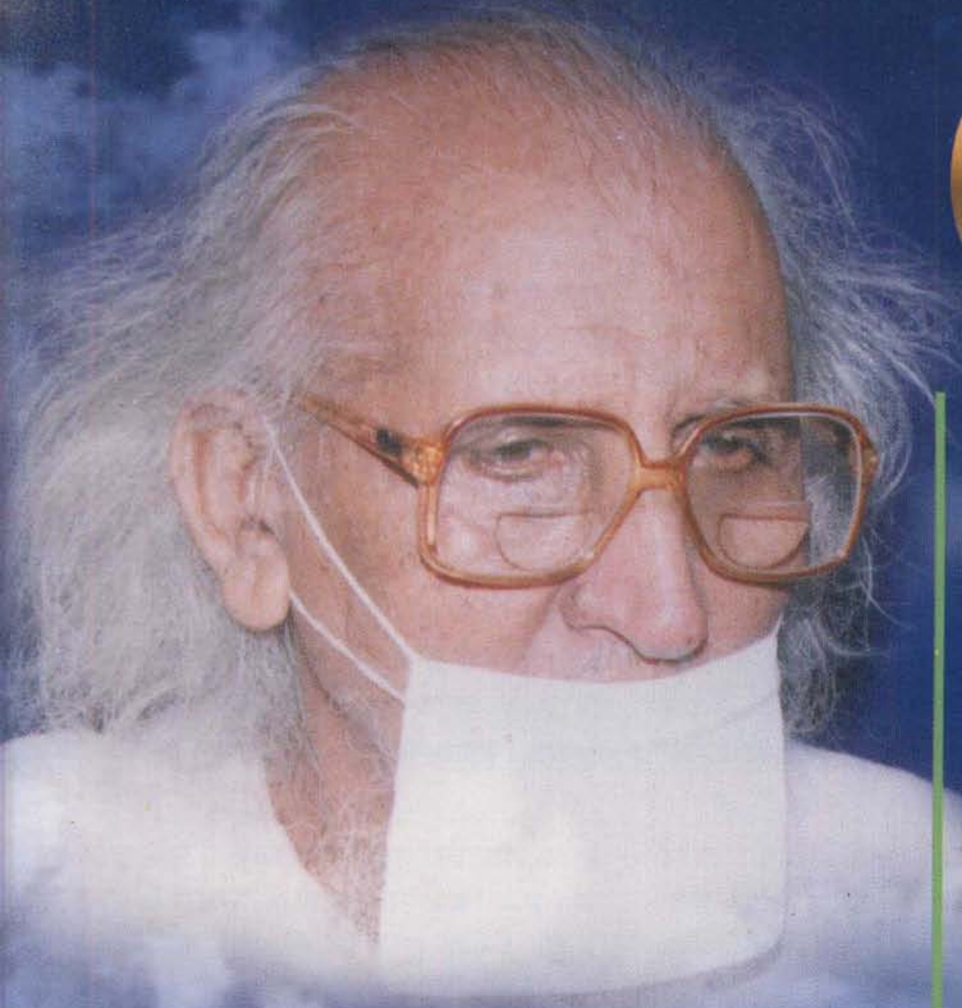

३

सर्वतोमुखी
व्यक्तित्व की
जीवन रेखाएं !
जिनमें उतार-चढ़ाव
धूप-छाँव
भ्रमण नगर-नगर
गाँव-गाँव !
साधना की ज्योति से
तिरोहित हुआ
अज्ञानान्धकार !
ज्ञान-ज्योति से
हुई विकसित
'स्व' को
निहारने की प्रक्रिया !
जीवन गाथा के
ये पृष्ठ बाध्य करेंगे
मुनिप्रवर के
जीवन में
झांकने को
व्यक्तित्व के
आंकने को !
शेष जीवन तो
बस जीवन है
किन्तु गौरवमय
यह जीवन
महाजीवन है !
-भद्रेश जैन

तृतीय खण्ड

सर्वतोमुखी व्यक्तित्व

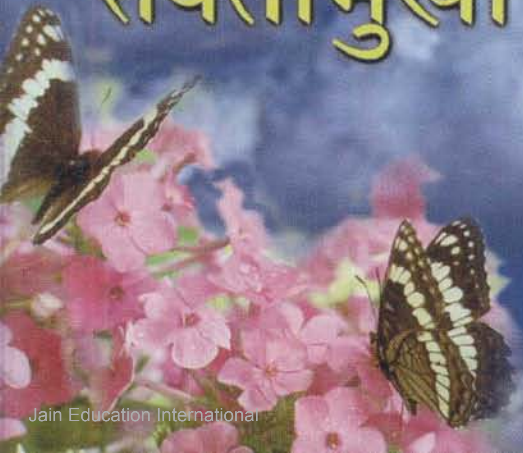

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथातो जीवन - जिज्ञासा

-भद्रेशकुमार जैन

कुछ लिखना है मुझे....

माम्बलम के भव्यातिभव्य अति विशाल श्री जैन स्थानक भवन की सर्वोपरि मंजिल पर मैं परिभ्रमण करता हुआ भवन के आस-पास खड़े उच्च एवं विशाल वृक्षों की रमणीय छटा/शोभा निहारता ही रहता हूँ यदा-कदा। कभी-कभी तो प्रकृति प्रदत्त इस छवि से दृष्टि हटाने का मन भी नहीं होता। अपलक दृष्टि से मनमोहक छटा निहारता ही रहता हूं। वृक्षों में फूलों के स्तवक/गुच्छे मुझे अति आनन्दित करते हैं। चंपा वृक्ष के फूल, गुलमोहर के पुष्प तथा विशालकाय खड़े नीम चम्पा वृक्षों के पुष्प गुल्म! घूमता हुआ नीचे मटमेली धरती पर नजर डालता हूँ तो इन्हीं वृक्षों के नीचे फूलों से लदा आंगन देखकर मन मायूस हो जाता है। झर गए सब, कुम्हला गए ! खत्म हो गया – जीवन !

परंतु भवन के प्रथम मंजिल के भीतरी प्रथम कक्ष में एक सुमन को निहारता हूँ तो बार-बार विचार कौंध जाता है, मन मस्तिष्क में; कुछ लिखना है इस सुमन के बारे में, झांकना है – इस सुमन के जीवन में।

सर्वत्र सुमन ही सुमन....!

सुमन ! सुमन !! सर्वत्र सुमन ही सुमन !!! भँवरें आ रहे हैं स्वतः ही आकर्षित होकर, पराग पान के लिए। अद्‌भुत प्रकार के, अनेक प्रकार के सुमन ! कितनी ही जातियाँ-प्रजातियाँ। सभी को आकर्षित करते हैं सुमन ! मनभावन हैं ये सुमन ! सुमन की घ्राणरन्ध्रों में खुशबू प्रविष्ट होते ही मैं अलौकिक आनन्द का अनुभव करता हूँ। दुनिया से दूर ! झंझटों से दूर....! प्राकृतिक दुनियाँ में व्यामोहित हो गया हूँ मैं। रंग विरंगे फूलों की कोमलाङ्गी पंखुरियाँ को निहारता हूँ मुझे अद्‌भुत छवि , खिलखिलाहट दृष्टिगोचर होती हैं उनमें। कहाँ से वर्ण आया इनमें, कहाँ से गंध, कहाँ से कोमलता ? काश ! मानव भी इनसे कुछ सीख पाता। उद्दाम यौवन, खिलखिलाती, मुस्कुराती पुष्पों की छटा को मैं अपलक, निर्मिमेष निहारता रहता हूँ....। इस छवि को कई लोग केमरों की दृष्टि में कैद करते जा रहे हैं – स्थायित्व देने के लिए। शायद इन कलियों का यौवन, जीवन वहीं ठहर जाए...।

अंतर सुमन सुमन में

दूसरे ही पल सोचता हूँ क्या इनका जीवन स्थायी है? अंतर्मन ने कहा-"नहीं"। कलियाँ खिली, कोई हाथ बढ़ा और तोड़कर ले गया या अपना जीवन पूर्ण कर वे ही फूल धूल में स्वतः ही मिल जाते हैं। प्रकृति ने इनकी सुरक्षा के लिए काँटे भी दिए परंतु व्यक्ति चुरा ही लेता हैं इन्हें, अपना हाथ बचाकर ! मैंने कितने ही सुमनों की छटा देखी होगी, सुमनों की सौरभ पाई होगी परंतु....

एक सुमन ऐसा भी है जो चल रहा है, बोल रहा है, जिसकी छटा ही निराली है। उसका मानस फूल से भी अति कोमल है। उसकी सौरभ कभी भी समाप्त नहीं होती। उसका जीवन धूल में नहीं मिलेगा, पूजनीय बन जाएगा। हो गए न, आश्चर्य चकित। कौन है वह सुमन? धैर्य रखिए। उसका परिचय। उसका जीवन बताने के लिए ही तो कलम उठाई है।

सुरभित करता सुमन....

हाँ, तो वह सुमन है, श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमन कुमार जी महाराज ! जो जैन-समाज में अपनी सुरभि बिखेरता, फैलाता, अनवरत यात्रा करता, अपनी खुशबू (गुण) से दूसरों को भी सुरभित करता अपने लक्ष्य की ओर संलग्न है। इस यात्रा को पचासवां वसन्त प्रारंभ होने जा रहा है – आसोज शुक्ला त्रयोदशी को ! इस सुमन की प्रव्रज्या, दीक्षा की बात करने से पूर्व आईये आपको ले चलूँ एक पावन पुण्यशालिनी धरा की ओर....।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वतोमुखी व्यक्तित्व

धरती धोरां री

राजस्थान का मरुधर प्रान्त !
जहाँ आत्मीयता, उदारता और वीरता की
पावन धारा बहती है सदा
अविरल रूप में !
आन-बान और शान का प्रतीक !
'धरती धोरां री' !!

महक माटीरी

माटी में महक
कण-कण में सुवास !
लोगों में उपजाता विश्वास !
नेहभरी बदली की
एक-एक सिकता
मरूभूमि के कण-कण को है नहलाती !

अपनापन

छलकता-ढ़रकता नेह !
आतिथ्य का कोई ओर न छोर !
कितना अपनापन !
कितनी आत्मीयता !!
और है – कितना स्वाभिमान !
पा आतिथ्य हो जाता
आनन्दित, मन-मयूर!

समाधिस्थ टीलें

भोर की पहली किरण
जब निहारती है
माटी के टीलों को तो
चमकने लगते हैं,
स्वर्ण-रजत सदृश !
घिर आती है रात,
छिटकने लगती है चाँदनी
छा जाती है नीरवता,
लगते हैं जैसे टीले योगी-से
समाधिस्थ है स्व में !
सांय-सांय की आवाज,
झुंगुरों की रुनझुन,
और रात की गुन-गुन ही उस
नीरवता को भले भंग करें !

पर्याय : कठोरता एवं मृदुता का

अरावली की चट्टानें
जिसकी रक्षा में सन्नद्ध !
मरुधरा एक ऐसा प्रांत
जहाँ कठोरता भी है
और मृदुता भी है
कठोरता है -
अपनी मर्यादा, वचन
एवं टेक निभाने में !
मृदुता है- व्यवहार में, वाणी में
एवं आचरण में।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्यारो है मरुधर देश

आन-बान और शान की महक मरुधर के जन-जन में ही अपितु, इस पावन भूमि के कण-कण में भी विद्यमान है। मरुधर प्रांत वीरों, कवियों, ऋषियों की जन्मस्थली है, 'आवभगत' के लिए प्रसिद्ध इस भूमि की जनता आज भी अतिथियों को 'अतिथि देवो भव' पद का स्मरण कराती है। हृदयतंत्री गाती है, आमंत्रित करती - "आवों नीं, पधारो नीं म्हारे देश। करमांबाई का 'खिचडला' वाला देश। मीरां बाई जैसी जोगिन का प्रदेश ! चंदवरदाई, पन्नाधाय, गोरांधाय, पृथ्वीराज चौहान, अमरसिंह राठोड़, जोधांजी, नैणसी मोहणोत आदि न जाने कितने ही ऐतिहासिक व्यक्तियों, कवियों, वीरों की (क्रमशः सूची बनाई जाए तो एक अलग इतिहास की ही पुस्तक का निर्माण हो जाता है) भी यही धरा है। टॉड को यहीं की भूमि रास आई। यहीं का इतिहास उसके मन को भाया। तैस्सीतोरी ने यहीं की भाषा में अपनत्व की झलक पाई।

जन्मस्थली : महापुरुषों की.....

क्षमामूर्ति आचार्य श्री भूधरजी महाराज, आचार्य श्री रघुनाथजी महाराज, आचार्य श्री जयमलजी महाराज, आचार्य श्री कुशलोजी महाराज, श्री जेतसीजी महाराज आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज, जैसे क्रियावान् 'नामी-गिरामी' महापुरुषों की जन्मस्थली भी तो यही है। यहाँ की प्रत्येक जाति के लोगों ने जैन धर्म में अनुप्राणित होकर भागवती दीक्षा ग्रहण कर अपना जीवन तो धन्य बनाया ही था किन्तु साथ ही साथ अनेकानेक भव्यात्माओं के जीवन को भी सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

परिक्रमा पांचु ग्राम की

आज के राजस्थान राज्य में, पूर्व में मरुधर देश का बीकानेर राज्य (थली प्रदेश) का नोखामंडी परगना ! उसी के समीप छोटा सा रमणीक ग्राम पांचु। आज जैसी तारकोल की काली सड़कें ग्राम में उस समय नहीं जाती थी। 'ऊँटगाड़ी-बैलगाड़ी' के पहियों की पंक्तियां या पगडंडियां ही आपको उस ग्राम तक ले जाती थी। विद्युत रोशनी की बजाय घरों में दीपों की टिमटिमाहट होती रहती थी। जनरव नहीं था वहाँ, आज की भाँति। सांझ गिरते ही लोग अपने-अपने घरों के आंगन में होते। घरों की चिमनियाँ धुएं को बाहर उगलती रहती। चौपाल पर बैठे लोग 'हथाई' करते रहते।

पांचु ग्राम की ऐतिहासिकता

पांचु ग्राम छोटा-सा भले ही हैं किंतु उसकी ऐतिहासिकता प्राचीन है, यहाँ नागौरी लौंकागच्छीय यति श्री केसरीचंद जी का उपाश्रय है, साथ ही साथ विद्यमान है – एक भव्य जैन मंदिर भी। यह जैन मंदिर पांचु ग्राम की एक शताब्दि के इतिहास का गवाह है, इसकी ध्वजापताका इसकी विमल-गौरव-गाथा को फैलाती-सी प्रतीत होती है। पूजा-आरती के स्वर पूरे ग्राम में गुंजरित होते रहते है। वर्तमान में यहाँ श्वेतांबर मूर्तिपूजक, स्थानक वासी एवं तेरापंथी आम्नाय के कतिपय घर है, जिनमें भेद भाव की तनिक भी मात्रा नहीं है। सहयोग एवं सौजन्यता की प्रतिमूर्ति है वहाँ के श्रावकगण ! श्री युत जेठमलजी, कालूरामजी बैद, चेतनजी बरड़िया आदि इस ग्राम के अग्रगण्य सज्जन हैं। इसका रेल्वे स्टेशन एवं पुलिस थाना नोखामंडी है। महायतिनी गुरुवर्याश्री रुकमांकंवर जी की यह कर्म-धर्म स्थली रही है।

धूल में खिला सुमन

यहाँ दूर से ही मेरा मन 'पांचु' ग्राम की भूमि में द्रुत गति से पलक झपकते ही पहुँच गया। माटी के टीले ग्राम के इर्द-गिर्द ऐसे प्रतीत होते है रात्रि की शारदीय छटा में जैसे चाँदी के छोटे-छोटे पहाड़ हों। दिन में ऐसे दिखाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देते हैं जैसे मृगतृष्णा लावा उगल रही हो। सुबह-शाम के वातावरण में ऐसे प्रतिभासित हो रहे हैं जैसे इन टीलों पर किसी कुशल चित्रकार ने रेखाएं खींच दी हो। मन कितना प्रसन्न हो उठता है, इन टीलों पर बैठकर। पदचाप सुनाई नहीं देती इन टीलों पर से गुजरते परंतु पदचिन्ह अवश्य छूट जाते हैं वहाँ, मखमल सी कोमल, मुलायम धूल पर। ऐसी मखमली धूल को न जाने मैंने कितनी बार सहलाया था, अपने हाथों से होले-होले जैसे फूल से कोमल बच्चे के कपोलों को कोई धीरे-धीरे सहला रहा हो। मुझे वह छटा मनमोहक लगती है। क्यों? मैं प्रकृति में इतना खो जाता हूँ? खैर, आईये अब मैं आपको इसी ग्राम के एक संभ्रान्त परिवार का कुछ दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। पूर्व यह भी बता देना चाहता हूँ कि वह फूल इसी धरा के दल-दल में खिला था। नहीं हुआ न विश्वास आपको? कभी धूल में भी फूल/सुमन खिले हैं? अरे! यही तो आश्चर्य की बात है! रत्नगर्भा है – यह वसुंधरा तो ! फूल, शूल और त्रिशूल सभी इसी धरती पर ही तो है। कभी किसी वस्तु की नास्ति नहीं होती।

सुखिया/संभ्रांत परिवार

हाँ, तो इसी ग्राम में भद्र प्रकृति के दम्पति निवास कर रहे थे। संतोष ही जिनका धन था। सरलता ही जिनका विशिष्ठ गुण था। आत्मीयता ही जिनका व्यवहार था। दम्पति थे-श्री भींवराजजी चौधरी, श्रीमती वीरांदे। ज्ञाति जाट, वंश गोदारा। गवाड़ी में छोटा सा मकान। दोनों तरफ झोपड़ें, बीच में रिक्त स्थान। जाट के ठाठ की कमी नहीं थी। बॉट जोहता उसकी हर कोई, अपने चौपाल पर बिछाकर खाट। 'माट' की ऊँची भूमि पर खड़ा होता कभी-कभी तो लगता कि गाँव का यही है मुखिया। हाँ तो उसका परिवार था-बहुत सुखिया।

तीन पुत्रों की माता विरादे

कालान्तर में श्री वीरांदे को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। नाम रखा गया – 'ईसर'। कुछ वर्षोंपरांत फिर एक पुण्यात्मा ने पावन कुक्षि से जन्म लिया। दिवस था विक्रम संवतीय १६६२ माघ माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथी (वसंत-पंचमी) ई. सन् १६३६। नामकरण किया गया 'गिरधारी'। कुछेक वर्षों के पश्चात् गिरधारी के एक और लघु भ्राता हुआ। तीन-तीन पुत्रों की माँ वीराँदे। निहाल हो गई, भींवराजजी जैसा पति पाकर एवं ईसर, गिरधारी, पून्ना जैसे सुकुमार पुत्रों को जन्म देकर।

सानंद-निवसित श्री भींवराजजी

अपने परिवार के साथ श्री भींवराजजी सानन्द निवसित थे। सभी प्रकार का सौख्य उनके घर में अठखेलियाँ कर रहा था। न कोई चिन्ता, न कोई विषाद, पूर्ण सन्तुष्टि थी, उन्हें अपने जीवन से, पत्नि से, बच्चों से। पर ईर्ष्या हो रही थी उनके परिवार की आत्मिक शान्ति से, किसी शक्ति को। इसी ईर्ष्या की आग में कौन-कौन जले? और कौन था वह शिकारी, जो अपना शिकार खोजता उस घर तक पहुँच ही गया... एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन शिकार...!

चलो! बुलावा आया है...!

आज श्री भींवराजजी कार्यसम्पन्न कर बैलगाड़ी पर बैठकर घर की ओर लौट रहे थे। तन श्रान्त था मन क्लान्त ! शरीर जैसे शक्ति विहीन हो गया हो। दोनों बैल कदमों से कदम मिलाते अपनी गति से चल रहे थे। बैलगाड़ी के पहिए राह पर एक लम्बी सी पट्टी का निशान धूली पर छोड़ते हुए गुड़कते जा रहे थे। थोड़े ही समय में बैलगाड़ी 'गवाड़ी' में खड़ी थी। बैलों के कंधों से जुआ उतारा। 'छकड़े' को एक तरफ किया तथा बैलों को 'चारे' के स्थान 'ठाण' पर बांध दिया। बैल आहार करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में लग गये। तत्पश्चात् भींवराजजी आकर बैठ गए, गृहांगन में। आज चेहरे पर खुशी नहीं थी और मन था-मायूस ! शून्य में उनकी नजरें अपलक कुछ निहारती रही, लगा उन्हें जैसे शरीर की शक्ति ही समाप्त होती जा रही थी।

नहीं! पतिदेव नहीं!

श्री वीरांदे गृहकार्य में व्यस्त थी अब तक। कार्य से निवृत्ति पाकर वह भी गृहांगन में आई। गई पति के सन्निकट और पूछ ही लिया-"आज मन मायूस कैसे?"

उत्तर मिला – "कुछ भी तो नहीं हुआ, ऐसे ही।

प्रतिप्रश्न किया – तो फिर इस प्रकार अन्यमनस्क क्यों बैठे हैं आप! मैं पानी ले आती हूँ, हाँथ-पाँव धो लीजिये, फिर खाना लगा देती हूँ।"

श्री वीरांदे 'परिन्डे' की ओर बढ़ी तो उसके पतिदेव ने कहा - "ठहरो वीरा ! इधर आओ, बैठो मेरे पास ! आज मेरा मन नहीं लग रहा है !"

वीरांदे घबराई सी निकट आई, पूछा क्यों क्या हुआ आपको? मन क्यों नहीं लग रहा है? कार्य के कारण अधिक थकावट आ गई होगी ! आप जरा विश्राम कर लीजिए - अन्दर चलकर, उठिए, पा लीजिए विश्रान्ति !"

"विश्रान्ति – वीरां लगता है, आज पूर्ण विश्रान्ति का दिन आया गया है। ऊपर वाले का बू..ला..वा !"

वीरांदे ने झट से अपनी हथेली उनके मुँह पर रख दी, तड़प उठी, कहा – "नहीं आप इसके आगे एक शब्द भी मत कहिए, मेरा जी घबरा रहा है।"

उसके नयनों से मोती सदृश अश्रु उभर आए। हाथ से शरीर को सहलाया तो ठंडा प्रतीत हुआ। पुनः वे बोल उठे - "वीरां ! मेरा अंतर्मन बोल रहा है, मैं अब....।"

"नहीं, पतिदेव! नहीं...!"

"वीरां !"

"हाँ," सुबकती हुई बोली, वह !

"वीरां ! बच्चों की देखभाल अच्छे ढंग से करना वीरां ! मैं तेरे भरोसे ही इन्हें छोड़कर जा रहा हूँ वीरां ! मुझे माफ कर देना कि मैं तेरा जीवन भर साथ निभा नहीं पाया....! मेरे दिल की धड़कने तेज होती जा रही हैं।" भींवराजजी का जीवन दीपक एकदम प्रज्वलित होकर बुझने ही वाला था।

वीरांदे की आंखों से अश्रु छलक पड़े बिलखती बोल पड़ी-"नहीं पतिदेव ! ऐसा मत कहिए कुछ भी नहीं होगा आपको !" ऐसा कहकर उसने पति के शरीर को सहलाया, हवा डाली।

श्री भींवराजजी का शरीर ठंडा होता ही गया और प्राण पंखेरु उड़ गए हमेशा-हमेशा के लिये इस तन रूपी नीड़ को छोड़ कर।

करुण-क्रन्दन

वीरांदे का रुदन फूट पड़ा। कल्पना तक नहीं की थी उसने इस हादसे की, करती भी क्यों? कल तक तो सब कुछ ठीक ही था। कोई बीमारी नहीं थी परन्तु आयुष्य की डोरी टूट जाने के बाद उसे पुनः कौन सांध/जोड़ सकता है? संभवतः विधाता भी नहीं। क्रूर काल की झपट से कौन बच पाया है? कोई भी नहीं। वीरांदे के करुण आर्तनाद से गवाड़ी तथा आस-पास का वातावरण गमगीन हो गया। बड़े बुजुर्ग एकत्रित हुए। शव-यात्रा की तैयारी में जुट गए। सभी मौन थे पर हृदय तो रो-रो कर रहा था - "रे विधाता ! तूने ये क्या क्रूर मजाक किया वीरां के साथ, इन अबोध बच्चों के साथ।" पर विधाता ने कुछ भी जवाब नहीं दिया, इस करुण-क्रन्दन का।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही मंजूर था विधि को.....

ईसरदास, गिरधारी, पून्ना ने प्रथम बार घर में इस प्रकार के रुदन की चीत्कार सुनी थी। "यह सब क्या हुआ" का उनकी मति कोई उत्तर नहीं दे सकी। परन्तु मन व्यथित अवश्य था। पिता जो अचानक 'राम के घर चले गए' बड़े बुजुर्गों से पूछा तो यही जबाब मिला था। ईसरदास भी रो पड़ा। गिरधारी एकटक निष्प्राण पिता की देह तथा माता के रुदन को देखता रहा, संभवतः जीवन-मरण का कोई निष्कर्ष निकाल रहा हो। पून्ना अभी दुध मूँह बच्चा था, वह क्या समझता? माँ की चीत्कार में कभी-कभी उसका भी रुदन सुनाई दे जाता। बड़ा ही कारुणिक दृश्य था। सौभाग्य, अभाग्य में बदल गया। सिंदूर पूंछ गया हमेशा के लिये। खैर, विधि को यही मंजूर था। शवयात्रा में पूरा गाँव उमड़ पड़ा। देखते ही देखते उनकी यादें, स्मृतियाँ शेष रह गई।

पति-अनुगामिनी

पति-वियोग से अत्यन्त व्यथित हो गई थी – वीरांदे। पति-मरणोपरांत के सांसारिक कार्यक्रम सभी सम्पन्न हो गए। परन्तु उसके मन में तो आज भी पतिदेव की पावन स्मृति शेष है। विडोलित-व्यथित-आंदोलित करती रहती है-स्मृतियाँ मानस को। बच्चों की देखभाल करना परम कर्त्तव्य था अब उसका। बच्चों में मन लगा दिया उसने। परन्तु पति के अंत समय की आवाज वीरां! वीरां!! और वह कारुणिक दृश्य अपने मन से कभी भी निकाल नहीं पाई। पति की वह अंतिम पुकार मानों आज भी उसे बुलाने का आह्वान कर रही हो। घर-गृहस्थी, बच्चों की देखरेख का कार्य वह कर्त्तव्य के साथ कर तो रही थी परन्तु भीतर ही भीतर उसके स्वास्थ्य को घुन लग गया जो उसकी देह को दिन-प्रतिदिन जर्जरित करता जा रहा था। संभवतः यह पति अनुगमन की ही प्रक्रिया थी। पति मरण के छह मासोपरांत वीरां का एवं पून्ना का भी देहावसान हो गया। पारिवारिक जनों और ग्राम के लोगों ने वीरांदे के शव को अग्नि के समर्पित किया। शिशु का भी क्रियाकर्म किया।

शेष रह गए... ईसर... गिरधारी...

ईसरदास, गिरधारी ही शेष रह गए थे इस परिवार की अकथ कथा कहने को/सहने को, विधाता ने बालकों को अनाथ बना दिया। पितृ-मातृ सुख से वंचित कर दिया, असहाय हो गए दोनों बालक। ऐन्द्रिक जाल के दृश्यवत् देखते रह गए और पिता-माता हमेशा-हमेशा के लिए इस लोक से चले गए। कौन बंधाता धैर्य उन्हें? कौन देता, लाड-प्यार? जिन बालकों को बचपन में माता-पिता की ममता का लहराता 'समन्दर' मिलना चाहिए था, वहीं अब उनके चेहरे पर उदासी की स्पष्टतः झलक दिखाई दे रही थी। क्रूरकाल शिकारी बनकर आया था। ले गया तीन-तीन प्राणियों को अपना शिकार बनाकर। क्रूरकाल या नियति महापुरुषों के बचपन के साथ इस प्रकार क्यों खिलवाड़ करता आया है? यह रहस्य आज दिन तक छिपा हुआ है। प्रश्न भी अनुत्तरित है।

मिल गई पुनः ममता

मातृ-पितृ वियोग के पश्चात् गिरधारी को पुनः ममताश्रय मिल ही गया। पांचु में ही गुरांसा (यतिजी) का उपाश्रय था, जिसे बृहद् नागौरी लौंकागच्छ के नाम से जाना जाता था। वहाँ वयोवृद्धा गुरुवर्या श्री रुकमांजी निवसित थी। उन्होंने बालक गिरधारी और उसके परिवार की विभिन्न, विच्छिन्न अवस्था को देखा तो उनके मन में करुणा की गंगा प्रवाहित हो उठी। कितना अच्छा सम्पर्क था - भींवराजजी की 'गवाड़ी' से उनका। वीरांदे के साथ भी अथाह धर्मस्नेह था। बालक गिरधारी यदा-कदा उपाश्रय में आता-जाता रहता। गुरुणी श्री को बालक में कुछ शुभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षण नजर आए महाभाग बनने के। उनकी अनुभवी/पारखी आँखों से कुछ भी छुपा नहीं रह सका। पलक झपकते ही भाँप गई थी, पढ़ ली थी जीवन रेखा, जौहरी की भाँति हीरे की चमक। इस बालक में विलक्षण प्रतिभा अन्तर्निहित है। बस, फिर क्या था। सर्व श्री जेठमलजी बैद, चेतनलालजी बरड़िया, कालूरामजी आदि को बुलाकर अपनी मनोगत भावना व्यक्त कर ही दी।

स्वार्थी दुनिया

माता-पिता के निधनोपरांत गिरधारी सिसक-सिसक रोता रहता वियोग में! भला कौन धीर बंधाये। इन दुःखद क्षणों में भी गिरधारी का कोई साथी संगी नहीं था। परिजन तो उसके पिता की सम्पत्ति पर कब्जा करने में लगे हुए थे झूपेनुमा घर, छकड़ा, ऊँट, जमीन-जायदाद एवं घर बिखरी सम्पत्ति पर परिजनों ने अधिकार जमा लिया। जिसके जो चीज हाथ लगी उसका वे उपभोग करने लगे। रही बात 'सामाजिक कारज' की तो चावल और चनें बनाकर मृत्युभोज कर दिया और सभी ने अपनी-अपनी राह ली।

समाज-भय

समाज के लोगों ने तानें कसे, पारिवारिक जनों पर "क्यों भई, इसके पिता के निधन का ही इंतजार था कि वह इस संसार से विदा ले और तुम उसका जमीन-जायदाद-सम्पत्ति हड़प ले।" गिरधारी और ईसर का कौन रूखाल करेगा?" लोगों के कहने पर श्री मूलचन्द जी चौधरी ने गिरधारी ईसर को दस दिवस तक रखा और रुकमां जी के यहाँ रहने से भी गिरधारी को स्पष्टतः मना कर दिया।

गिरधारी ने कहा – माँ भी तो जाती थी उपाश्रय में, कभी दर्शन हेतु कभी दवा हेतु। फिर वहाँ तो कोई बुराई नहीं है, अच्छाई ही अच्छाई सिखाई जाती है।"

"मैंने एक बार कह दिया, वहां नहीं जाना है तुम्हें।'

"पर क्यों?"

"मेरे से बहसबाजी करता है, चुप रह।"

गिरधारी चुप हो गया। उसने फिर-कुछ नहीं कहा तथापि उसका मन विद्रोह कर उठा कि बुरा कार्य हो और उसके लिए मना करे तो उचित है किंतु अच्छा करने पर रोक क्यों?...रुकमांजी तो मुझे बहुत प्यार करती है, स्नेह रखती है मुझ पर, ज्ञान की बातें सिखाती है, हिंसा नहीं करने, झूठ नहीं बोलने की, चोरी नहीं करने की शिक्षाएं देती है।

मना करने के बावजूद भी गिरधारी का क्रम टूटा नहीं, वह उपाश्रय जाता रहा। और रुकमां जी की ममता पाता-रहा। रुकमा जी भी गिरधारी को देखकर सोचती –

विडंबना

"कैसी है भाग्य की विडंबना, असमय में ही माता-पिता का साया एक बालक के सिर से उठ जाना उसके जीवन के लिए कितना भयानक होता है। कौन उसकी देखभाल करें, कौन उसका लालन-पालन करे, कौन उसकी आकांक्षाएं-इच्छाएँ पूरी करे। बाल मन तो आखिर बाल मन ही है व, कभी खाने की, कभी पहनने की, कभी कुछ वस्तु लेने की ललक तो विद्यमान रहती ही है। तथापि यह बालक कितना निर्लोभी एवं निस्पृही है। न कुछ मांगता है, न कुछ चाहता है"...

रुकमांजी गुरुवर्या उसका अत्यधिक ख्याल रखती, खाना खाया या नहीं, जाओ पानी पी लो, आदि दैनंदिनी क्रियाओं के बारे में पूछती रहती एवं निर्देश देती रहती।

चेतावनी

एक दिन पुनः मूलचंदजी चौधरी ने गिरधारी को डांटा कि मेरे इंकार करने के बावजूद भी तूं वहाँ गया।...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ जा-जाकर क्या साधु बनेगा? ज्ञाति-समाज क्या कहेगा- माँ-बाप नहीं रहे, बिचारे के, भटकता रहता है। मैं आखिरी चेतावनी देता हूँ कि तुम अब रुकमाँ जी या यतिजी के पास कभी नहीं जाओगे।

गिरधारी मौन भाव से सुनता रहा, सोचा अभी आवेश में है। आवेश समाप्त होगा तो सब ठीक हो जाएगा। गिरधारी का जाने-आने का क्रम निरंतर बना रहा। मूलचंदजी के आवेश का पार नहीं रहा, उन्होंने गिरधारी को बकरियों को बंद करने की छोटी भखारी/कोठरी में डाल दिया और बन्द कर दिया। चाचा मूलचंदजी बहुत खुश हुए कि अब कैसे जाएगा। गिरधारी उसमें पड़ा रहा – यदा-कदा शोर मचाता रहा। रुदन भी करता रहा। आसपास के बुजुर्ग लोग आये, कहा – छोटे से बच्चे पर क्यों बेरहमी कर रहे हो? मैं आज ही शाम पंचायत (चौधरियों की) बुलाता हूँ। शाम को पंचायत हुई, मूलचंदजी को बुलाया गया। जैन भाई भी इस सभा में आये क्यों कि गुरुवर्या रुकमांजी से उन्हें विदित हो चुका था कि बालक गिरधारी पर अत्याचार हो रहे हैं और उसे सद्कार्य में प्रवृत्त होने से रोका-टोका जा रहा है। जैन भाइयों ने कहा - "चौधरी मूलचंद जी ! आप अगर जैन धर्म या जैन धर्म के नियमों का – पालन नहीं कर सकते हैं तो जो कर रहा है उसे पीड़ा क्यों दे रहे हो?"

उचित निर्णय

चौधरी मूलचन्द जी ने कहा – मैं आप लोगों की भावनाएं समझ रहा हूँ मैं भी मजबूरी के साथ ही ऐसा कर रहा था, समाज या न्याति के भय से नहीं। मैं उसे वहाँ जाने से रोक रहा था। यही समाज बाद में कहता कि विना माँ का बच्चा भटका फिर रहा है और परिजन हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं, ये तो यहीं चाहते होंगे कि जैसे-तैसे घर छोड़कर चला जाय और हम अपने कर्त्तव्यों की इति श्री करलें। समाज या ज्ञाति के लोग खाए-पीए बिना रह सकते हैं, किंतु कहे बिना नहीं, समाज या ज्ञाति के मुँह पर ताला कौन लगा सकता है। अगर गिरधारी उनके पास चाहता है और जैन समाज के लोग उसके परवरीश की जिम्मेदारी लेते हैं तो मुझे कोई अब आपत्ति नहीं! .. मैं पँचायत और जैन भाईयों का आदर करता हूँ, जो भी उचित हो निर्णय ले लें। अंततः पंचायत का निर्णय यही हुवा कि रुकमांजी इसे पुत्रवत् स्नेह देती है अतः उन्हें सुपुर्द कर दिया जाय। वही हुआ भी।

मिलगई छत्र छाया.....

'पुलिस-थाना' और वहाँ की 'पंचायत' के माध्यम से लिखित स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। गिरधारी अब ममतामयी गुरुणीजी के चरणों में रहने लगा। उसका लालन पालन पुत्रवत् होने लगा।

ईसरदास जो कि गिरधारी का बड़ा भ्राता था, उसको निःसंतान दम्पति श्रीमति एवं श्री चौथमलजी चौधरी जो कि स्वर्गीय श्री भींवराजजी चौधरी के चाची-चाचाजी थे ने दत्तक पुत्र के रूप में रख लिया। पुत्रवत् स्नेह-प्यार के वर्षण से ईसरदास का मानस भी आप्लावित होने लगा। दम्पति भी खुश थे, निःसंतान होते हुए भी पुत्र रत्न की सम्प्राप्ति कर।

पर, पथ अलग-अलग..

एक भाई ईसरदास सांसारिक शिक्षा की ओर अग्रसर था और एक भ्राता गिरधारी योगमार्ग की ओर अग्रसित होने की शिक्षा पा रहा था। दोनों के पथ अलग-विलग थे।

जीवन नैया के पतवार

गुरुवर्या श्री रुकमां जी के पुत्र थे – यति श्री लक्ष्मीचंद जी (जो कि वर्तमान में बीकानेर में निवसित हैं, ८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षीय यति जी कुशल नाड़ी वैद्य हैं) थे। जो पांचुं में यदा कदा आते रहते थे। उनके गुरु थे – यति श्री बालचंद जी। श्री बुधमलजी जो कि यतिश्री केसरीचंदजी के शिष्य थे, उन्होंने यति - दीक्षा तो ग्रहण नहीं की थी किन्तु यति-शिष्य थे और उपाश्रय में ही अपना जीवन व्यतीत किया करते थे। गिरधारी की जीवन नैया के ये सज्जन लोग पतवार थे। तूफान में भटकी नैया के यो लोग ही खिवैया थे।

प्रारंभ हुई शिक्षा

गिरधारी की विधिवत् शिक्षा प्रारंभ हुई। नवकार मंत्र सीखा श्री बुधमलजी यति से। सामायिक के पाठ, भक्तामर आदि सीखा था श्री रुकमांजी और श्री लक्ष्मीचंदजी से। गिरधारी की दैनिक चर्या में सुधार आने लगा – वह प्रभात में उठता, नमस्कार मंत्र गिनता, भक्तामर के श्लोक सस्वर उच्चरित करता था। दैनिक कार्यों के बाद नूतन ज्ञानोपार्जन करता।

गिरधारी वैद्य यति श्री लक्ष्मीचंदजी को भी औषधालय में सहयोग प्रदान करता। दवा लाकर देना, दवा घोंटना, पूड़ियें बनाना एवं दवा की शीशियों , बोतलों, पैकेटों को सुव्यवस्थित रखने में सहयोग किया करता था।

यदा-कदा भ्रमण-जागरण

उपाश्रय का मैदान ही उसके लिए क्रीड़ाङ्गण था। गिरधारी को पतंगबाजी एवं गेंद/दड़ी का खेल खेलने में रुचि थी। खेल खेलने देते थे गुरुवर्या एवं यति श्री गिरधारी को, तथापि अनुशासन में रखते थे उसे। गणगोर का मेला, शिववाड़ी का मेला भी यथासमय लगता तो गिरधारी को लोक-मेला देखने के लिए जाने देते। ऐसे मेले मोरखाणा' ग्राम में भी आयोजित होते थे बच्चों का झड़ोला उतारने के लिए भी लोग यहाँ आया करते थे। यदा कदा श्री लक्ष्मीचंदजी यति भी गिरधारी के साथ परिभ्रमण कर आते।

तदनंतर गिरधारी को यति श्री लक्ष्मीचंदजी बीकानेर ले आये। बीकानेर का "नाल" हवाई अड्डा, दादा श्री जिनकुशलसूरीश्वर जी का मेला जो कि दादावाड़ी में आयोजित होता था, उदयरामसर में दादाश्री जिनदत्तसूरीप्रवर जी की दादावाड़ी में भी कार्यक्रम आयोजित होते रहते थे, गिरधारी ने देखे। भ्रमण का मौका गिरधारी को इन्हीं प्रसंगों पर मिलता था। यदा-कदा कोई जागरण होता, तो वहाँ भी जाना हो जाता था।

संस्कारों के अंकुर

गिरधारी में धार्मिक संस्कारों के अंकुर पल्लवित, पुष्पित होने लगे। बालक जैसा वातावरण पाता है उसी के अनुरूप अपने आपको ढालने का प्रयास करता ही है। 'देखत विद्या, खोदत पाणी' यह कहावत यूं ही नहीं गढ़ी हुई है। कोमल लता को जिधर झुकाओगे, झुक जाएगी, वहीं समय पाकर अपना स्थान परिवर्तित नहीं कर पाएगी क्यों कि अब वह कठोर हो गई है।.. हाँ तो गिरधारी भी यतिश्री की क्रियाओं का अनुकरण करता।

अभी से....!

यति का बाना (श्वेत वस्त्र) धारण कर, छोटे-छोटे हाथों में झोली और झोली में पात्र लिए वह आहार हेतु जाता, गिरधारी ऐसे लगता था मानो अभी से साध्वाचार की साधना में संलग्न हो गया हो लोग बहुत प्यार से आहारादि गिरधारी को बहराते।

चातुर्मास काल के पर्युषण पर्व के अष्ट दिवसों में यतिश्री ने गिरधारी को कल्पसूत्र का हिन्दी अनुवाद का पठन करवाया। गिरधारी की अधिकांश अध्ययन यात्रा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाश्रय में ही सम्पन्न हुआ करती थी। रात्रि में भी उपाश्रय[1] में पाठशाला आयोजित होती थी, उसमें व्यवहारिक शिक्षार्जन गिरधारी करता।

प्रारंभिक ज्ञान

कँवलगच्छीय उपाश्रय की कक्षाएँ पास करने के बाद किशोर गिरधारी ने उपाश्रय के सामने "श्री लक्ष्मीनारायण जी शास्त्री" (जो कि हिन्दी - संस्कृत के अध्यापक थे एवं राजकीय पाठशाला में कार्यरत थे) से हिन्दी व्याकरण का ज्ञान पाया तदुपरांत संस्कृत भाषा का प्रारंभिक ज्ञान भी इन्हीं से सीखा।

ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष

ज्ञानार्जन के साथ-साथ गिरधारी ने सेवा कार्य में भी निपुणता हासिल की। ज्ञान और क्रिया का समन्वय बचपन से ही...कितना सुखद योग! गिरधारी प्रातः पानी के घड़े भर कर लाता, छानता एवं परिंडे की सफाई करता, लोटा-ग्लास का प्रक्षालन करता। तदनंतर कपड़े धोता, सायंकाल के पश्चात् यति श्री के पैर दबाकर 'वैयावृत्य' करता। सुबह-शाम विनीत भाव से वंदन-नमस्कार करता। उनकी आज्ञानुसार सेवा कार्य करना गिरधारी के जीवन के अभिन्न अंग बन गये। .. गिरधारी का विनीत भाव एवं सेवा कार्य देखकर बीकानेर की ही निवसित एक सहृदय महिला ने भी ज्ञान-दान देने का संकल्प लिया, कौन थी वह महिला?

स्नेह-प्रेम-वर्षण

वह महिला थीं – श्रीमती केसरबाई। आप राजकीय कन्या महाविद्यालय की अध्यापिका थीं। आप एक विदुषी महिला एवं सद्गृहिणी थी। आपने भी गिरधारी को अध्यापन करवाकर उपकृत किया तथा मातृवत् स्नेह और प्रेम का वर्षण भी किया। आपके पुत्र पार्श्व कुमार जैन, विमलकुमार जैन दोनों वैद्य हैं।

विद्रोह के बीज

इस तरह गिरधारी की अध्ययन के प्रति रुचि बढ़ती ही गई और वह १२ वर्ष की अल्पायु में ही बहुत कुछ ज्ञान ग्रहण कर चुका था। गिरधारी किशोर हुआ।... बीकानेर में अब उसका मन लग नहीं पा रहा था।

किशोर मन दिङ्भ्रमित होता गया। किशोरावस्था ही ऐसी अवस्था है कि विद्रोह के बीज एवं स्वर उत्पन्न करती है। गिरधारी यतिश्री के कार्यों का अवलोकन करता किंतु उनकी साधना आध्यात्मिक दृष्टिगोचर न होकर मात्र आजीविकोपार्जन तक ही सीमित थी।

यति श्री ने उसे अन्यमनस्क देखकर नागौर यति श्री के पास भिजवा दिया।

वातावरण नया, पर.....!

नागौर में यति श्री मुकनचंद जी का उपाश्रय हीरावाड़ी के समक्ष ही था। गिरधारी के लिए यह स्थान नूतन था, वातावरण भी नया। तथापि गिरधारी वहाँ दो माह निवसित रहा किंतु मन को सन्तुष्टि कहाँ? मन तो चाहता था-एकांत और शांत वातावरण। जब-जब भी मन अशांत हुआ वह अनासागर के किनारे पहुँच जाता, जलाशय की लहराती – बलखाती उर्मियों को देखता रहता एवं उनके निकट बनी छत्रियों में बैठकर अपने जीवन के ताने बाने बुनते रहता मन की अशांतता एक दिन वाणी के द्वारा अभिव्यक्त हो ही गई-"यतिवर्य! यहाँ मेरा मन नहीं लग रहा है, मैं आपश्री से जाने की अनुमति चाहता हूँ।" अनमने-से यति

१. कंवलगच्छीय उपाश्रय में संध्या के पश्चात् रात्रि पाठशाला दो घंटे के लिए आयोजित होती थी, जिसमें कक्षा वार ज्ञान दिया जाता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री ने अनुमति दी तो गिरधारी पुनः बीकानेर की ओर प्रस्थित हो गया।

बीकानेर पहुँचा तो गिरधारी ने सोचा – एकांत और शांति कहाँ मिल सकती है? संभवतः निर्जन वन में, गुफा में !

बीकानेर के बाहर गंगाशहर के मार्ग पर एक बगीची थी और बगीची में थी – एक गुफा। गिरधारी वहीं पहुँचा। यह गुफा नाथ-संप्रदाय के संतों की गुफा थी जहाँ संत तपस्या करते थे जिनका नाम था-रामनाथ। बगीची के समीप ही पानी का निर्मल कुण्ड था। उद्यान रमणीय था। गिरधारी ने वहाँ दो दिन व्यतीत किये ही थे कि तीसरे दिन नाथ सम्प्रदाय के एक संत और वहाँ आ पहुँचे। भेंट हुई, वार्तालाप द्वारा परिचय प्राप्त किया एक-दूसरे ने। आगन्तुक महात्मा का नाम था – मंगलनाथ।

मंगलनाथ एक दिन गिरधारी को साथ में लेकर बीकानेर के ही राणी-बाजार गये। एक सिंधी परिवार में सन्यासी आये हुए थे उन्हीं से भेंट-वार्ता करने-कराने के लिये मंगलनाथ वहाँ पहुँचे थे।

ढ़ोंगी और पाखंडी.....

महात्मा, सन्यासी का लिबास उन लोगों ने भले ही धारण कर लिया था किंतु पात्रता/गुण उनमें विद्यमान नहीं थे। रात में शराब का दौर चला, नशे में धुत हुए सभी निद्रालीन हो गये। गिरधारी को नींद कहाँ? वह चिंतन कर रहा था – समयपूर्व की वेला पर! क्या यही महात्मापन है? महात्मा की वेशभूषा की आड़ में यह ढ़ोंग, पाखंड क्यों? आदि-आदि कई प्रश्न गिरधारी के दिमाग में तैरते रहे। गिरधारी के मानस में घृणा के बीज अंकुरित हो गए। ऐसे धर्म, धार्मिकों के प्रति नफरत हो गई।

मंगलनाथ वहाँ से रवाना हुए तो गिरधारी ने रास्ते में पूछा "रात में यह जो सब कुछ क्या हो रहा था? .... क्या यह उचित है?" मंगलनाथ ने संक्षिप्तः जबाब दिया - "सब चलता है।" प्रत्युत्तर सुनकर गिरधारी का मन वितृष्णा से भर गया। मंगलनाथ ने पंजाब परिभ्रमण का वादा करके गिरधारी को अपने सन्निकट ही रखा।

पंजाब की ओर :

..... और एक दिन पंजाब यात्रा आरंभ हुई मंगलनाथ और गिरधारी की! बी.के.एस. ट्रेन के माध्यम से! यह ट्रेन उस जमाने में बीकानेर सरकार चलाती थी। रेल-यात्रा की समाप्ति के साथ ही भटिण्डा (पंजाब) की धरती पर थे; वे दोनों। भटिण्डा के बाहर ही एक उद्यान/अग्रवालों की बगीची में ठहरे, वहाँ अन्य सन्यासी भी थे भोजन के समय सभी सन्यासियों को भक्तजनों द्वारा आमंत्रित किया जाता था। मंगलनाथ, गिरधारी भी उन्हीं के साथ जाकर भोजन ग्रहण कर लेते। प्रसाद पाकर सभी सन्यासी तृप्त हो जाते और भक्तजनों को आशीर्वाद से कृतार्थ कर पुनः बगीची में आ जाते और असाधुता और दुरात्माओं की प्रवृत्ति में लीन हो जाते।

गिरधारी के लिए पंजाब का वातावरण नया था। कड़ाके की सर्दी के कारण वह जुकाम-बुखार से पीड़ित हो गया। शरीर कुछ अशक्त हो गया साथ ही साथ मन भी जरा अस्वस्थ हो गया था। स्वस्थ होने पर मंगलनाथ गिरधारी को लेकर कपूरथला (रियासत) ले आये। रात्रि का नीरव समय जमनानाथ जी के डेरे पर सर्वप्रथम पहुँचे किंतु रात्रि का मध्यभाग होने के कारण डेरे के द्वार नहीं खुले तथा यह प्रत्युत्तर - "रात्रि अधिक हो रही है, डेरे के द्वार अब नहीं खुलेंगे – पाकर मंगलनाथ अमरनाथ जी के मठ/डेरे पर आ गये। यहाँ आसानी से प्रवेश मिल गया। दोनों ने राहत की सांस ली। गिरधारी ने प्रभात में देखा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाथों के डेरे में

प्रकृति के उन्मत्त यौवन के मध्य शैव मन्दिर स्थित थे वहाँ, कतिपय सन्यासियों की समाधियाँ भी अपने अतीत की कहानी अभिव्यक्त करती वहाँ मूक... सहज भाव से स्थित कल-कल करती हुई थीं! निकट ही पानी की बही/नदी बह रही थी। उसके किनारे शालीमार बाग के बाहरी तरफ, ब्रह्मकुण्ड नामका स्थान था यह। भक्त जन पूजा-अर्चना के लिए आते ही रहते थे। मारवाड़ी वेश-भूषा में अपरिचित गिरधारी को देखा तो उनके मन में संशय उत्पन्न हुआ कि इस किशोर को कहीं से ये महात्मन् उठाकर तो नहीं ले आये है? संशय-विषय गर्माने लगा।

इस स्थान में मुद्रावाले महात्मा ही अधिकांशतः रहते थे। वहाँ के प्रमुख संन्यासी थे – अमरनाथ जी!

तदनंतर मंगलनाथ नेमनाथ गिरधारी को लेकर शालीमार बाग एवं ब्रह्मकुण्ड के मध्य में स्थित नाथों का डेरा था (जहाँ विगत रात्रि पहुँचे थे किंतु द्वार नहीं खुले थे) वहाँ आये। यह मठ अत्यधिक विशाल था। पचहत्तर वर्षीय जमनानाथ जी इस मठ के अधिपति थे।

मंगलनाथ नेमनाथ से कुशलवृत्त ज्ञात कर पास ही बैठे गिरधारी के लिए पूछा, उन्होंने - कहाँ से लाए हो इसे और यह कौन है? मंगलनाथ ने गिरधारी का परिचय दिया।

जमनानाथ जी अच्छे सन्यासी थे तथा स्वस्थ तन के धनी एवं परिश्रमी व्यक्ति थे।...कुछ समय के अन्तराल नेमनाथ, गिरधारी पुनः अमरनाथ के डेरे पर आकर रहने लगे।

देखा गिरधारी ने

ब्रह्मकुण्ड में गिरधारी ने देखा कि साधु-सन्यासी आमिष आहार ग्रहण कर रहे हैं और सुरापान में व्यस्त है तो उसने वहाँ भोजन ग्रहण नहीं किया। अत्यधिक भूख लगने पर बाजार से खाद्य सामग्री लेकर अपनी भूख का उपशमन किया। एकदा लाला गुरदत्तामल ने देखकर कहा कि गिरधारी ! तुम इनकी संगत क्यों कर रहे हो, कहीं और जाओ और अच्छा जीवन बनाओ। पंजाब में आते ही गिरधारी के लिए एक जटिल दुविधा उत्पन्न हो गई! वह दुविधा थी – पंजाबी भाषा को समझने की और बोलने की। गिरधारी पंजाबी भाषा से अनभिज्ञ था। प्रथम बार ही तो प्रदेश से बाहर की यात्रा कर रहा था। उम्र भी १३ वर्ष मात्र थी। मंगलनाथ ने ही पंजाब यात्रा के लिए गिरधारी को प्रोत्साहित किया था कि तुम्हें पंजाब में पढ़ायेंगे, विद्वान् बनायेंगे और अच्छे गुरु का शिष्य बना देंगे, तुम्हारा जीवन सुख-शांति और आनंद में व्यतीत होगा। किंतु गिरधारी को ये आश्वासन स्वप्नवत् और मृगतृष्णा की भाँति छलावा देते हुए से प्रतीत होने लगे। वहाँ का वातावरण भी इन आश्वासनों का अट्टहास एवं उपहास करता-सा प्रतीत होने लगा।

एक दिन गिरधारी ने सन्यासी मंगलनाथ से पूछ लिया- "नाथ जी, धर्म स्थानों में यह आमिष आहार और सुरापान क्यों?"

नेमनाथ उत्तर दिया - "हमारे पंथ में यह सब मान्य है।" "धर्म तो अहिंसा में है, हिंसा में नहीं।"

नेमनाथ इसका कोई उत्तर न देकर और किसी सोच में खो गया। गिरधारी के मन में उमड़ रही विद्रोह की भावना को वह स्पष्टतः जान रहा था। विद्रोह की आग कभी भी सुलग सकती थी। फिर भी नेमनाथ सचेत था। वह गिरधारी को कहीं अन्यत्र ले जाने की योजना बनाने में डूब गया।

....पर वातावरण रास नहीं आया.....

एक दिन ब्रह्मकुण्ड कपूरथला से अमरनाथ नेमनाथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरधारी को लेकर दयालपुर होते हुए करतारपुर ले गये। करतारपुर में भी नाथ सन्यासियों का डेरा था। वहाँ दो दिवस रहे। गिरधारी को कहाँ का वातावरण भी रास नहीं आया। वहाँ से दयालपुर आये, डेरे में विश्राम किया।

दयालपुरा में गिरधारी का अमरनाथ-नेमनाथ से यकायक मनमुटाव हो गया। कारण था – आमिष खान-पान का। गिरधारी ने स्पष्टतः उन्हें चेतावनी देते हुए कहा - "देखिये, आप लोगों ने मुझे जबरदस्ती से आमिष भोजन और - सुरापान कराया तो मैं थाने में आप लोगों की शिकायत लिखवा दूंगा कि आप लोग मुझे बेवजह परेशान कर रहे है और राजस्थान से भगा ले आये है।"

सन्यासी अमरनाथ एवं मंगलनाथ नेमनाथ सहम गये। उन्होंने कहा "गिरधारी! अब तुम्हें परेशान नहीं करेंगे और आराम से रखेंगे।

यत्र-तत्र भ्रमण

तदनंतर वे गिरधारी को व्यास लेकर आये। बस के माध्यम से। यहाँ राधास्वामी का विशाल एवं भव्य मठ था। नेमनाथ-अमरनाथ गिरधारी को साथ-साथ लिए यत्र-तत्र घूमे। एक स्थान पर खड़े रहते हुए उन दोनों ने गिरधारी को कहा - "तुम यहाँ बैठे रहना, हम अभी आते हैं।" – ऐसा कहकर वे चलते बने. और गये तो जनाब ऐसे गये कि पुनः लौटे ही नहीं। गिरधारी प्रतीक्षा करता रहा। असहाय सा इधर-उधर देखता रहा। कतिपय पुलिस वालों को शक हुआ तो पूछ ही बैठे- "कौन है तूं, यहाँ कहाँ से आया और क्या कर रहा है? "उसने कहा" मैं नाथ सन्यासियों के साथ कपूरथला डेरे से आया हूँ।"

"झूठ बोल रहा है या सच?"

"सच!"

"हूँ.....!

साथ वाले एक पुलिसमैन ने कहा कि कपूरथला में सन्यासियों का डेरा है, सच ही बोल रहा है!....चलो; आगे चलो.... पुलिस दल आगे चल पड़ा, गिरधारी की सांस लौट आई! वह अज्ञात आंशंका से शंकित हो चला था....।

वह हताश-निराश, बोझिल कदमों से व्यास के पथ पर घूमने लगा।

पेट का गणित

गिरधारी के पैसे भी सन्यासी लेकर चलते बने! उसके पास बची थी मात्र एक छोटी अटैची, जिसमें गिरधारी के मात्र चार वस्त्र थे। दिन का मध्याह्न भाग प्रारंभ हो गया। उसे कड़ाके की भूख लगी किंतु पैसों का अभाव! भूखा व्यक्ति क्या नहीं करता अपनी भूख मिटाने के लिए।.... दुनिया के अधिकांश पाप इस पेट की भूख को ही मिटाने के लिए किये जाते हैं? पेट का सवाल! भूख मिटाने का गणित!! ... अंततः गिरधारी ने असह्य भूख लगने पर अपनी अटैची हलवाई को अल्प मूल्य में ही बेच दी और वहाँ भरपेट भोजन किया। हलवाई से शेष पैसे की मांग गिरधारी ने की तो प्रत्युत्तर में उसने कहा - उतने मूल्य का मैं तुम्हें भोजन करा चुका हूँ, तुम्हारे पैसे अब शेष नहीं है। गिरधारी ने कहा-मुझे यहाँ से कपूरथला जाना है तथा मेरे पास पैसे नहीं है, कुछ पैसे दे दो।" अत्यधिक अनुरोध करने पर उसने अठन्नी मात्र गिरधारी के हाथ में थमा दी वह भी इस भाव के साथ जैसे कि कोइ बहुत बड़ा उपकार का कार्य या कोई दान कर रहा है।

सद्व्यक्ति के संग

अठन्नी ने गिरधारी को बस के माध्यम से कपूरथला की भूमि पर पहुँचा दिया। गिरधारी जमनानाथ जी के मठ में आ पहुँचा। क्यों कि गिरधारी को उनके जीवन ने ही कुछ प्रभावित किया था। सन्यासी जमनानाथ जी वस्तुतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनारस के संस्कृत शास्त्री थे तथा प्रसिद्ध कथावाचक भी। वृद्धावस्था में भी उनकी आवाज सुरीली थी और कोई भक्तिगीत या भजन/पद सुनाते तो वातावरण में संगीत की लहरियाँ तैर जाती। तुलसीकृत रामायण उनको कण्ठस्थ थी। कथा-श्रवण करते समय लोग तन्मय हो जाते थे।

उन्होंने गिरधारी को वहाँ रखा लिया। गिरधारी ने भी पाया कि जमनानाथ जी विद्वान् व्यक्ति/संन्यासी है और हैं पूर्ण शाकाहारी भी। निरामिष भोजन एवं मदिरापान से वे कोसों दूर थे। स्वयं भोजन पकाते थे और रुचि अनुसार ग्रहण कर लेते थे। पूर्ण ब्रह्मचारी तथा नैष्ठिक संन्यासी जमनानाथ से गिरधारी अध्ययन करने लगा। गीता के कतिपय प्रमुख श्लोक एवं रामायण की प्रमुख चौपाइयाँ गिरधारी ने कण्ठाग्र की।

संन्यासी जमनानाथ जी अनुभव समृद्ध थे। समय-समय पर अपने जीवन का अनुभव-अमृत गिरधारी को पान करवाते थे। समय-समय गिरधारी को हितशिक्षाएं भी उनसे प्राप्त होती रही। गिरधारी भी तन-मन से उनकी सेवा-सुश्रूषा करने लगा किंतु उन्होंने कभी भी गिरधारी को झूठे बर्तन, मैले कपडे नहीं धोने दिए। गिरधारी कभी-कभी हठाग्रह करता तो वे कहते – स्वावलंबी जीवन ही श्रेष्ठ जीवन है।... वत्स, तुम तो दत्त-चित्त होकर खूब पढ़ा करो, जीवन में जितनी ज्यादा विद्या का अर्जन करोगे उतना ही सुख और सन्तोष मिलेगा।

वत्स! रंगो मेरे रंग !

गिरधारी उनकी सेवा करता हुआ उनका विश्वासपात्र बन गया। सहसा एक दिन गिरधारी से कहा-"वत्स! तुम मेरे शिष्य बन जाओ,"

गिरधारी ने शांत भाव से कहा-मैं जैन धर्म को मानता हूँ, आपका शिष्य नहीं बन सकता! ऐसे मैंने हिन्दू जाति में जन्म लिया है किन्तु मैं कर्मणा जैन हूँ।

"तभी नास्तिक हो, जैन धर्म नास्तिकवादी है। ईश्वर को कर्ता नहीं मानता है। तुम यह नहीं जानते कि जैन धर्म से प्राचीन नाथ सम्प्रदाय है।" कुछ सोचा, फिर कहना प्रारंभ किया-तीर्थंकरों के नाम जानते हो।"

"चौबीसों नाम याद है।"

"सुनाना तो.....!"

गिरधारी ने सुनाना प्रारंभ किया - ऋषभनाथ जी, अजितनाथजी, संभवनाथ जी....!

जमनानाथ जी मुक्त कण्ठ से हंस पड़े! तदनंतर कहने लगे "कुछ समझे या नहीं भी।"

"नहीं।"

"तुम कितने भोले हो! अबोध हो! देखो इनके नाम के आगे भी नाथ शब्द है। नाथ संप्रदाय ही सबसे पहले सम्प्रदाय है, जैनियों ने तो हमारे नाम चुरा लिये है।"

गिरधारी नास्तिक-आस्तिक, कर्तृत्त्ववाद, अकर्तृत्त्ववाद, आदि का कोई प्रतिकार नहीं कर पाया। वह तो अबोध किशोर था उसे भला गहरा ज्ञान कौन दे पाया था? तथापि जैन धर्म की आलोचना उसे अच्छी नहीं लगी।

मन के उपरान्त भी मजबूरी वश वह किशोर वहीं रहा। नाथ जी समय-समय पर शिष्य बनने की बात छोड़ देते। वे कहते "नाथ सम्प्रदाय में दो प्रकार के शिष्य है - मुद्राधारी और ओघड़। मुद्राधारी कान फड़वाकर शिष्यत्व ग्रहण करते है और ओघड़ शृंगी, रुद्राक्ष आदि गले में धारण कर शिष्य बनते है।"

"तुम मेरे मुद्राधारी शिष्य बन जाओ। कर्ण छेदन का बहुत बड़ा आयोजन तुम्हारे लिए किया जाएगा। अपार जन समूह एकत्रित होगा। भोज भी आयोजित होगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरधारी ने कहा - मैं ऐसे भी आपकी सेवा में संलग्न हूँ ही, फिर शिष्य बनने का क्या तात्पर्य?

"शिष्यत्व ग्रहण किए बिना आत्मा का कल्याण नहीं होता, गुरु ही मोक्ष-कृपा का मूल है।" सन्यासी जी ने कहा।

अन्ततः विवशता के साथ गिरधारी ने कहा-"आप मुझे अपना ओघड़ शिष्य बना दीजिये।"

किन्तु सन्यासी जी कर्ण-मुद्राधारी शिष्य बनाने के लिए उत्सुक थे अतः गिरधारी की बात को स्वीकार न कर अपना आग्रह ही गिरधारी को मनाने में जुटे रहे।

निष्कर्षतः किशोर गिरधारी का मन वहाँ से ऊब गया और संन्यासी के मठ/डेरे का परित्याग कर वह शालीमार बाग में आ गया।

घनीभूत पीड़ा जाने सहृदयी

शालीमार बाग अति विस्तृत भू भाग पर फैला हुआ था। प्रकृति की छटा अत्यन्त रमणीय थी। पक्षियों के कलरव से अधिक वह उद्यान जनरव से व्याप्त था। विशालकाय वृक्षों की पंक्तियाँ आकाश को छूने का (निरर्थक) उद्यम कर रही थी, पुष्पों की सौरभ भ्रमरों, तितलियों को आकर्षित कर रही थी। इसी प्राकृतिक छटा के मध्य गिरधारी बैठा था। प्रकृति का उसके साथ कोई हठाग्रह, दुराग्रह नहीं था, कुल मिला कर वह उस समय स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त था।

बाल सूर्य की आभा उदित होने से पूर्व ही लोग भ्रमणार्थ, हवाखोरी के लिए वहाँ चले आते थे। कतिपय लोग नियमित रूप से गिरधारी को वहाँ बैठा देखते थे। एक दिन पूछ ही बैठे गिरधारी से उसका परिचय। गिरधारी ने आद्योपान्त अपनी जीवन की रेखाएँ उनके समक्ष प्रस्तुत कर दी। इन जीवन रेखाओं में जीवन की कितनी विडंबनाएँ एवं घनीभूत पीड़ा विद्यमान थी यह तो कोई सहृदयी ही जान सकता था। सहृदयी व्यक्ति भी जनसंकुल में ही थे। वे थे - बाबू देशराज जी वकील, वैद्य वासुदेव जी एवं उनके कुछ मित्र। उन्होंने गिरधारी को आर्य समाज मंदिर में भेज दिया। कपूरथला के बस अड्डे के सन्निकट ही था, वह मंदिर।

सत्यप्रकाश या निंदक प्रकाश :

गिरधारी एक सप्ताहांत तक रहा, वहाँ! उसे सत्यार्थ प्रकाश (आर्यसमाजी-ग्रन्थ – स्वामी दयानंद सरस्वती रचित) पठनार्थ दिया गया। गिरधारी ने पढ़ा उसमें सभी धर्मों के प्रति टिप्पणियाँ थी, आलोचना थी। जैन धर्म भी अछूता नहीं रहा आलोचना से। गिरधारी ने सोचा - "नाम सत्यार्थ प्रकाश, विषय आलोचना का। कहाँ है सत्य का प्रकाश इसमें? अंधेरे में दिखाई देने वाली सत्य की किरण का तो यहाँ अभाव है। इसका नाम तो आलोचना या निंदक प्रकाश रख देना चाहिए था।" उसने किताब पुनः लौटा दी। मन भर गया, जैन धर्म की निन्दा विषयक पुस्तक पढ़कर। किसी का हृदय या धर्म परिवर्तन दया-प्रेम-करुणा से किया जाता है न कि आलोचना या निन्दा करके।"

गिरधारी वहाँ से भी चल पड़ा। वह वैद्य वासुदेवजी के सम्मुख पहुँचा और आर्य समाज मंदिर में रहने में अपनी असमर्थता जताई।

वैद्य वासुदेव जी जैन स्थानक के भूमि तल पर एक कक्ष में राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय का संचालन कर रहे थे। एक कम्पाउण्डर भी नियुक्त था कार्य सहयोगी के रूप में गिरधारी को भी वहीं नियुक्त कर दिया।

दुर्भाग्यवश....!

औषधालय में रुग्णों की भीड़ लगी रहती थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किशोर गिरधारी उत्साहपूर्वक औषधालय में दवाइयों को कूटने-छानने उचित मात्रों में पूडिया बनाने का कार्य करने लगा। चूंकि उसने यति जी के पास रहते हुए भी श्री केसरी जैन औषधालय-बीकानेर में कार्य किया था अतः वह औषधियों आदि के नाम, गुण मात्रा आदि भलीभाँति जानता था। दुर्भाग्य ! औषधालय में पैसे एकत्र करने की एक पेटिका थी जिसमें चवन्नी-अठन्नी आदि एकत्र की जाती थी और लगभग अर्द्धमाह में एक ही बार खोलकर पैसे एकत्र करके जमा कर दिये जाते थे। एक दिन सहसा उस मंजूषा का ताला टूटा पाया और पैसे नदारद थे। वैद्य के संदेह की सुई का कांटा गिरधारी की ओर घूम गया। पूछा, डाँटा और चोरी का राज खुलवाने के लिए गिरधारी को पुलिस थाने में बिठा दिया।

मैं बेकसूर हूँ !

पुलिस वालों ने लातें, घूंसे आदि से गिरधारी पर कहर ढाया। बेरहमी दिखाई किंतु गिरधारी ने वह सब कुछ भी सहा। उसने स्पष्टतः कह दिया कि पैसे लेकर मैं कहाँ रखूँगा, किस परिचित को दूँगा, मेरा कोई ठोर नहीं, ठिकाना नहीं, मैं बेकसूर हूँ। मैंने कोई चोरी नहीं की है। गिरधारी सत्य पर डटा रहा। अन्ततः पुलिस-विभाग ने उसे मुक्त कर दिया। गिरधारी ने राहत की सांस ली।

गिरधारी पुलिस के पिंड से छूट तो गया किंतु स्वयं को असहाय महसूस करने लगा, खाने-पीने की फिर से समस्या प्रारंभ हो गई।.... कुछ परिचित सज्जन मिल गये, खान-पान की व्यवस्था सम्पन्न होती रही। किंतु गिरधारी का मन.....?

गिरधारी के मस्तिष्क में बीकानेर प्रस्थान से लेकर पुलिस थाने से छूटने तक की घटनाएँ बार-बार आती-जाती रही सोचता रहा उस पर, विषयों की गहराई में डूबता रहा गिरधारी।

दुनिया क्या है?

पुलिस थाने से निकलकर गिरधारी शालीमार बाग में आया। गिरधारी ने प्रकृति के मध्य बैठकर अपने आप को सन्तुलित किया तथा कतिपय क्षण शून्य में निहारता रहा तदनंतर वह विगत दिन की स्मृतियों में खोया-सा सोचता रहा-दुनिया क्या है.....? निपट स्वार्थी...... खुदगर्जी.....इल्जाम लगाने वाली.....सुख में दुःख की बदली बरसाने वाली....। इस प्रकार दुनियाँ की स्वार्थ परायणता पर गिरधारी न जाने क्या-क्या सोचा करता।

शालीमार बाग जो कि प्राकृतिक छटा से विशालदार छायावाले वृक्षों से युक्त था, वही गिरधारी का घर बन गया। रात सीमेंट की बनी बेंचों पर सो जाता और दिन में किसी ने कुछ आग्रहवश खोने-पीने को दे दिया तो उसी को पाकर सन्तुष्ट हो जाता था। तथापि वह चिन्तित था कि इस प्रकार से जीवन-यापन कब तक होगा?

पूछ बैठे यकायक

इन्ही दिनों में वहीं पर श्री शोरीलालजी जैन सियालकोट वालों से शालीमार बाग में परिभ्रमण करते हुए गिरधारी की भेंट हुई, वैद्यशाला में कार्य करने के कारण नगर के संभ्रान्त नागरिक जन गिरधारी को पहचानने लग गये थे। यकायक श्री शोरीलालजी जैन पूछ बैठे-

"अरे गिरधारी तुम यहाँ? आजकल वैद्यशाला में दिखाई नहीं देते हो?"

"गिरधारी ने दोनों हाथ जोड़कर जैन साहब को नमस्कार किया और व्यावहारिकता निभाने के बाद कहने लगा-

"हाँ, जैन साहब। आजकल शालीमार बाग ही हमारा निवास स्थान बना हुआ है। धरती मेरा घर।...और आकाश मेरी छत।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पर क्यों?"

गिरधारी ने जैन साहब को आद्योपान्त घटना कह सुनाई। पूरा घटना वृत्त जानने के बाद जैन साहब ने कहा –

"अच्छा गिरधारी, पहले यह बताओ तुम्हें क्या-क्या कार्य करने आते हैं?"

"जैन साहब! मुझे हिन्दी पढ़ाने का कार्य भलीभाँति आता है, इसके अतिरिक्त में किसी भी कार्य में निपुण नहीं हूँ।"

"तुम हिन्दी पढ़ा दोगे मेरे बच्चों को; मुझे एक हिन्दी अध्यापक की ही आवश्यकता थी, क्यों कि मेरे बच्चे हिन्दी में अभी कमजोर है।"

जीवन सुख की पटरी पर

गिरधारी ने हिन्दी के अध्यापक-कार्य की स्वीकृति दे दी। श्री शोरीलाल जी जैन गिरधारी को लेकर घर आये और गिरधारी अध्यापन के दायित्व बोध का निर्वहन करने लगा। आवास-निवास एवं भोजन-वस्त्रादि की व्यवस्था जैन साहब ने कर ही दी थी। गिरधारी का जीवन पुनः सुख की पटरी पर चलने लगा।

प्रवचन-श्रवण एवं सत्संग

श्री जैन साहब (लाल जी) गिरधारी को समय-समय पर जैन सभा (स्थानक) भी ले जाते थे, कि सनातन धर्म सभा के सन्निकट था। उस समय वहाँ पंजाब श्रमण संघ के तत्कालीन युवाचार्य श्री शुक्लचंदजी म.सा., तपस्वी श्री सुदर्शन मुनिजी पं.श्री महेन्द्रकुमारजी म. श्री हरीशचन्द्र जी म.सा. के साथ धर्म जागरण करते हुए निवसित थे। गिरधारी प्रवचन-श्रवण करता तथा पुनः लालाजी के साथ लौट आता।

तदनन्तर गिरधारी के जीवन का समय पौष की दुपहरी की भाँति ढ़लने लगा। गिरधारी दत्तचित होकर लालाजी के यहाँ बच्चों को अध्यापन करवाया करता था। बच्चे भी उससे काफी घुलमिल गये थे। कालान्तर में बच्चों की परीक्षाएँ समाप्त हो गई, तदनंतर गिरधारी पुनः अकर्मण्य हो गया। गिरधारी अपने आप को असहाय समझने लगा।

गिरधारी ने संतों के पास जाने का मानस बनाया, उनके बारे में पूछा तो विदित हुआ कि संतगण तो सुलतानपुर लोधी की धरा को पवित्र कर रहे हैं। कपूरथला से सुलतानपुर लोधी १७ माईल था। गिरधारी इतनी लम्बी पद-यात्रा का आदि नहीं था। फिर भी चल पड़ा,

यात्रा करते समय सर्वप्रथम गुरुद्वारा आया। गिरधारी ने गुरुद्वारे के बरामदे में विश्राम किया। हाथ पैर धोये और गुरुद्वारे में जाकर मत्था टेका और लंगर में जाकर प्रसाद प्राप्त किया।

दो दिवस यात्रा के पश्चात् गिरधारी अंततः सुलतानपुर लोधी पहुँच ही गया। बड़ी कठिनाइयों के साथ गिरधारी ने यह यात्रा पूर्ण की थी, एक तो भाषा के ज्ञान का अभाव तथा दूसरी ओर अनजानी राहें। खैर, पहुँचने के बाद ज्ञात हुआ कि सन्तगण तो शाहकोट की धरा पर जैन धर्म का बिगुल बजा रहे है एवं **तिण्णाणं तारयाणं**, पद को सार्थक कर रहे हैं।

गिरधारी सुलतानपुर लोधी में ही रहने लगा। यही उसकी विवशता थी। यत्र-तत्र भ्रमण करने के अतिरिक्त उसके पास और कोई कार्य नहीं था। इसी शहर में धीरों (खत्रियों) के मोहल्ले के समीप ही बाबा स्वरूपनाथ का डेरा/मठ था। गिरधारी ने घूमते हुए उस मठ में प्रवेश किया तो देखा कि उसके मध्यभाग में शिवजी का एक विशाल मंदिर है, तथा सुरम्य वातावरण भी। मठाधीश थे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाबा स्वरूपनाथ जी। गिरधारी को आश्रय प्राप्त हो गया। मठ की देखरेख करना गिरधारी का कार्य बन गया।

बाबा स्वरूपनाथ गिरधारी पर अत्यन्त विश्वास करने लगे। इन्हीं दिनों कुम्भ का मेला आ गया। कुंभ के मेले में स्वरूपनाथ जी भी गये। जाते-जाते मठ का सारा दायित्व गिरधारी के हाथों सुपुर्द कर गये।

गिरधारी मठ की निगरानी रखने लगा और निकटवर्ती मोहल्लों से भिक्षा लाकर जीवन यापन करने लगा। इसी आश्रम में उसके दो और अभिन्न संगी-प्राणी थे – एक गाय और दूसरा श्वान। गाय को गिरधारी चारा-पानी देता और श्वान को भिक्षांश।

प्रलोभन भी झुका नहीं पाया

मठ के समीप ही आर्य समाज का मंदिर था। पण्डित श्री हरीशचंदजी उसके व्यवस्थापक थे। अनायास ही एकदा गिरधारी की उनसे भेंट हो गई। उन्होंने कहा कि – गिरधारी। क्यों बाबा-नाथ लोगों के चक्कर में फंसे हो, ये लोग तो व्यसनी हैं। मदिरापान, मांसाहार में ही आनंद मानते है। इनकी कुसंगति से तुम्हारी भी जिंदगी खराब हो जाएगी।"

गिरधारी ने कहा – मैं आप सभी की सद्भावनाएं समझ रहा हूँ किन्तु मैं विवशता के कारण इन्हीं के साथ रह रहा हूँ क्यों कि मुझे कोई उचित स्थान मिला ही नहीं।

आर्य समाज सभा के अध्यक्ष डॉ. लालचंद अरोड़ा ने भी गिरधारी से कहा – उचित स्थान हमारे यहाँ मिल जाएगा। हम तुम्हें पढ़ा लिखाकर विद्वान् बना देंगे।"

गिरधारी का मानस इनकी निंदा-कथा से पूर्व परिचित था ही अतः वह मूक बना रहा और मठ की ही देखरेख में संलग्न रहने लगा।

चरण-शरण हेतु उत्कण्ठित मन

इसी अन्तराल में जैन समाज के वरिष्ठ सदस्यों लाला दुर्गादासजी, लाला रूपचंद जी, लाला पन्नालालजी, लाला सरदारी लाल जी, लाला नगीन चंदजी, लाला भगवानदास जी, शांतिकुमार जी जैन से गिरधारी का परिचय होता गया और वह परिचय घनिष्ठता में परिवर्तित हो गया। इन महानुभावों ने भी समय-समय पर गिरधारी को सचेत किया था कि गिरधारी ! दुर्व्यसनों के दल-दल से बच निकलो और जैन मुनिराजों की शरण में जाओ। वे अत्यन्त क्रियार्थी होते है, स्वयं भी सद्गुणों से युक्त होते हैं तथा दूसरों को भी सद्गुणों की राह बताते हैं। तुम उन्हीं के चरणों की शरण लो।

गिरधारी ने पूछा-अभी जैन मुनिराज कहाँ विचरण कर रहे हैं?

लाला लोगों का उत्तर था-युवाचार्य श्री शुक्लचंदजी म. अभी अपने शिष्यों के साथ शाहकोट में बिराजमान हैं। गिरधारी का मानस जैन संतों की चरण-शरण को पाने हेतु उत्कंठित हो उठा।

जीवन बन जाएगा महाजीवन !

एक दिन गिरधारी ने सुलतानपुर से विदा ली और "लोइयां" (जंक्शन) ग्राम पहुँचा। वहाँ महात्मा गंगागिरीजी का मठ/डेरा था। दो-तीन दिन वहाँ रहा। मठ में विराजित महात्मा 'भारती जी' से उसकी भेंट वार्ता हुई। गिरधारी ने सविस्तार घटनावृत्त कह दिया और यह भी कह दिया कि वह अब दृढ़ संकल्पित है जैन मुनिवर की सन्निधि पाने को। महात्मा भारती जी ने भी यही सलाह दी कि जैन संत निःस्पृह होते हैं तथा उनमें कोई व्यसनादि के दुर्गुण नहीं होते। वे मात्र स्व-पर के कल्याण में निहित होते हैं, अतः उनकी सन्निधि में तुम्हारा जीवन, जीवन ही नहीं अपितु महाजीवन बन जाएगा।.... तीन दिन के बाद...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गिरधारी' महात्मा भारती जी की अनुमति लेकर शाहकोट हेतु प्रस्थित हो गया।

मुफ़्त की रोटी कहाँ?

गिरधारी को चलते-चलते भूख लगी, किन्तु पथ के लिए पाथेय उसके पास कहाँ था? कुछ समय तक भूख बर्दाश्त की। जब भूख असह्य हो गई तो पंजाबी कृषकों के घर गया और कहा – मैं राहगीर हूँ, मेरे पास के पैसे समाप्त हो गये। आप कृपाकर मुझे रोटी दे दीजिये। (वाह रे भाग्य की विडंबना....। जीवन में धूप और छाँव का खेल देखना है तो इस चरितनायक के जीवन में मिलेगा)

पंजाबी कृषकों का कथन था - भाई, मुफ्त की रोटी कहाँ है? काम करो और रोटी खाओ। तुम्हारे हाथ-पैर तो सही सलामत है? ... अरे, कोई लूला-लंगड़ा होता, अंधा-अपाहिज होता, दीन-हीन होता और इस तरह दरवाजे पर खड़ा होता तो हम स्वतः ही दयावश उसे भोजन दे देते।

गिरधारी के पास और क्या चारा था? अपने पेट की आग को शान्त करने के लिए उसे खेतों में काम करना पड़ा। इस प्रकार गिरधारी काम करता और रोटी खाकर पुनः आगे के लिए चल पड़ता मेहनत करते.....रोटी पाते और चलते-चलते गिरधारी शाहकोट आ ही गया।

जैनियां दे पूज किथेने?

शाहकोट के मार्गों से गिरधारी अनभिज्ञ था, भ्रमण करता हुआ वह मुख्य बाजार में आ पहुँचा। कपड़े के एक व्यापारी से पूछा –

"लाला जी जैन संत किधर ठहरे हुए है?" संयोगवश दुकान के मालिक लाला अमरनाथ जी जैन थे। उन्होंने गिरधारी का परिचय और आने का प्रयोजन पूछा; तदनंतर महावीर भवन ले गये। जैन संत यहीं विद्यमान थे।

नीचे की मंजिल में ठीक सामने स्वाध्याय करते हुए पंडित मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी म. के दर्शनों का सौभाग्य गिरधारी ने पाया तो ऊपरी मंजिल में पं.र. युवाचार्य श्री शुक्लचंदजी म.सा. के दर्शनों को पाकर वह निहाल हो उठा। आज का दिवस गिरधारी के लिए स्वर्णिम था। लाला जी ने गिरधारी का परिचय दिया और आने का प्रयोजन बताया तो पं. श्री शुक्लचंदजी म. की रहस्यमयी दृष्टि गिरधारी के चेहरे पर स्थित हो गई, मानो वह दृष्टि वहाँ कुछ पढ़ रही हो, आगत भविष्य का सुनहरा एक अध्याय पढ़ना था, देखना था, वह दृष्टि ने देख लिया किंतु युवाचार्य श्री का मानस तो शीघ्र ही कहीं और खो गया।....

स्मृति-पंखी

बीकानेर से आगत किशोर को देखकर युवाचार्य श्री का मानस अपने बीकानेर प्रवास की स्मृति में खो गया....। विगत समय का पंछी स्मृतियों के वातायन में अपने डैने फैलाने लगा.... आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. जब रुग्ण थे तब उनकी सुखशांति पृच्छा हेतु श्री शुक्लचंदजी म. भीनासर/बीकानेर पधारे थे.... और उस समय आचार्य श्री कांशीरामजी म. जोधपुर प्रवास में थे तथा अस्वस्थ होने के कारण नहीं पधार सके थे।......

आई, श्रद्धा-बहार :

मासकल्पोपरान्त शाहकोट से विहार करके युवाचार्य श्री निकोदर गये। इस ग्राम में स्थानकवासी समाज का एकाकीगृह था, शेष घर श्वेतांबर मूर्तिपूजकों के थे तथापि साम्प्रदायिक सद्भाव का माहौल था। लाला श्री दौलतरामजी युवाचार्य श्री के अनन्य भक्त थे। गुरुदेव श्री का आगमन क्या हुआ निकोदर में मानो लालाजी के रोम-रोम में श्रद्धा की बहार आ गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्नेह मिला, मन फिरा

निकोदर के ही निवसित लाला श्री मथुरादास जी, कट्टर मूर्तिपूजक थे किंतु साम्प्रदायिक-सद्भावों से परिपूरित थे। वे गिरधारी को भोजनार्थ अपने यहाँ ले जाते और प्यार से भोजनादि करवाते। कतिपय दिन व्यतीत हो गये। गिरधारी उनसे घुलमिल गया। एक दिन लालाजी ने भोजनोपरांत कहा –

"गिरधारी! तुम स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित क्यों हो रहे हो? ये स्थानकवासी मुनि तो मन्दिर में नहीं जाते, मूर्ति को नहीं मानते अतः तुम हमारे संघ में दीक्षित हो जाओ; तुम्हारा जीवन आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरिश्वर जी म.सा. के चरणों में अर्पित कर दो वे तुम्हें तराशकर कोहीनूर हीरे की भाँति चमका देंगे।"

गिरधारी का किशोर मन बदल गया। मन तो मन है, जिधर प्यार मिला, स्नेह मिला, बस, उसी का हो गया।....गिरधारी उनकी बात का प्रतिकार न कर-सका।

"मौनं सम्मति लक्षणम्" लाला जी के सन्निकट गिरधारी रहने लगा।.... मानव मन कितना परिवर्तन क्षेत्र में लाकर खड़ा कर देता है।..... युवाचार्य श्री के संतगण आहार-पानी की गवेषणा करते हुए लालाजी के गृह आते तो गिरधारी को अनायास ही दर्शनों का लाभ प्राप्त हो जाता।.... संतों ने भी गिरधारी को लालाजी के यहाँ रहने से रोका-टोका नहीं। लाला जी सूरीश्वरजी म. के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे ताकि गिरधारी को उनके श्री चरणों में अर्पित कर सके। तभी एक दिन.....।

पाया नेह, फिरी आया मन गेह

लाला श्री अमरनाथ जी अपनी धर्मपत्नी श्री शांतिबाई के साथ शाहकोट से व्यापारार्थ निकोदर आये। निकोदर में रहते हुए उन्होंने गुरुदेवों के भी दर्शनों का लाभ प्राप्त किया। गिरधारी को देखने के लिए उनकी आँखें आतुर थी, परन्तु गिरधारी नहीं दिखा तो उन्होंने सहज ही पूछ लिया-

"गुरुदेव। गिरधारी कहाँ है?"

"गिरधारी है तो यहीं किन्तु तीन-चार दिवस से लाला श्री मथुरादास के घर ही निवास कर रहा है।" - युवाचार्यश्री ने कहा।

"क्यों क्या कारण गुरुदेव!"

"कारण तो क्या है? किशोर सुलभ मन है, प्रेम-प्यार पाकर वहीं रम गया होगा।"

पुनःवंदन-सुखशांति के पश्चात् दम्पति ने गुरुदेव से विदा ली और बाजार में आ गये। सहसा गिरधारी भी लाला अमरनाथ जी को अकस्मात् बाजार में दिखाई दे ही गया। वे द्रुतगति से चलते हुए गिरधारी के पास आये। शांतिबाई भी आयी। देखते ही देखते उसने गिरधारी को अपने अंक में समेट लिया और दुलारते हुए पूछा-

"बेटे कैसे हो?"

"ठीक हूँ।" आप कैसे है? गिरधारी ने उत्तर देते हुए प्रतिप्रश्न किया।

"हम सभी आनंद में है।"

एक-दूसरे का कुशलवृत्त ज्ञात करने के बाद लालाजी मूल बात पर उतर आये, उन्होंने गिरधारी से पूछा-

"गिरधारी, अभी गुरुदेव श्री की सेवा में नहीं रह रहे हो, क्या कारण है?"

उसने बताया – "मुझे लाला मथुरादासजी ने मंदिरमार्गी संतों के पास भेजने का कहा है अतः वही जाऊँगा।"

गिरधारी के मुख से दो टूक बात सुनकर लाला अमरनाथ जी आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने गिरधारी को स्थानकवासी धर्म की महत्ता एवं गरिमा का बखान करके पुनः स्थानकवासी धर्म पालन की प्रबल प्रेरणा दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ ही साथ कहा कि गुरुदेव श्री की सन्निधि में ही रहकर ज्ञान-साधना में निमग्न हो जाओ।

गिरधारी का विचलित मन पुनः गुरुचरणों में संलग्न हो गया यह थी – माँ के ममत्व की और पिता के दायित्व बोध की जीत।.... वस्तुतः लाला अमरनाथ जी एवं शांतिबाई/दम्पत्ति निःसंतान थे। अतः गिरधारी को शाहकोट में मातृवत् एवं पितृवत् स्नेह से आप्लावित किया था।

प्रतिबोध :

गुरुदेव का निकोदर से विहार हो गया और 'श्रीशंकर' होते हुए जालंधर-छावनी पधारे। गिरधारी ने यहाँ गणावच्छेदक स्वामी श्री रघुवरदयालजी म. मुनि श्री निरंजन दास जी, श्री. छज्जूराम जी म., श्री मुनि रामकुमार जी, मुनि अभय कुमार जी ठाणे ५. के दर्शन किए। गुरुदेव श्री की वहाँ कतिपय दिवसों की स्थिरता रही तदनंतर फगवाड़ा[1] पधारे। फगवाड़ा के ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण गिरधारी ने किया। तदनंतर आराध्यदेव, श्रद्धेय युवाचार्य श्री शुक्लचन्दजी म. शिष्य-समुदाय सहित वर्षावास हेतु बंगा (जिला-जालंधर पधारे। वर्षावास धर्मध्यान-तप-त्याग के साथ सम्पन्न होने लगा। बंगा चातुर्मास में रहते हुए लाला हरगोपालजी जैन एवं श्री मदनलालजी (जेजों वाले) नवांशहर से प्रति सप्ताह युवाचार्य श्री गुरुदेव श्री के दर्शनार्थ आया करते थे, साथ में गिरधारी को लेकर गए-जेजों में तपस्वी श्री पन्नालालजी, कवि श्री चंदनमुनिजी, ठाणा-२. एवं नवांशहर में साध्वी श्री जयवंती जी म. ठाणा-४ संत-सतियों के दर्शनार्थ ले गये, वहाँ भी गिरधारी को धर्म का प्रतिबोध वैरागी जीवन एवं साधु जीवन के लिए मिला।

गिरधारी गुरुदेव श्री के चरणों में रत रहते हुए धार्मिक ज्ञानार्जन में संलग्न हो गया। वर्षावास में ही सामायिक सूत्र, प्रतिक्रमण सूत्र, पच्चीस बोल, नवतत्त्व, दशवैकालिक सूत्र के अध्ययन एवं अन्य सुभाषित कण्ठाग्र कर लिये। वैराग्य की भावना परिपक्व होने लगी। आचारण में भी विरक्ति सी आने लगी।

किंचित् करो प्रतीक्षा....।

एकदा गुरु-चरणों में गिरधारी ने सविनय प्रार्थना की कि गुरुदेव मुझे आपश्री के चरणों में दीक्षित कीजिए ताकि मैं आपकी सेवा आदि सहजता से कर सकूं। और-अपना जीवन धन्य बना सकूं। गुरुदेव श्री ने कहा-"मुमुक्षु बन्धु! थोड़ी और प्रतीक्षा करो।" प्रतीक्षा की, समय बीता। गिरधारी समय-समय पर अपनी भावना को पुनः-पुनः शब्द प्रदान करता रहता।...और एक दिन उसकी भावनानुरूप कार्य का श्री गणेश हो गया।

दीक्षा-पूर्व संत-दर्शन-यात्रा

मुमुक्षु गिरधारी की संत-दर्शन यात्रा प्रारंभ हुई – श्रीमती महिमादेवी जैन (रावलपींडि) के संग।[2] सर्वप्रथम वे फगवाड़ा पहुँची, मुमुक्षु गिरधारी को लेकर। वहाँ पण्डितरत्न श्री ज्ञानमुनि जी म. के दर्शन किए तथा प्रवचन श्रवण का लाभ लिया। वहाँ से प्रस्थित होकर वे दोनों खन्ना कवि श्री अमरमुनि जी म. के दर्शनों हेतु गए।

---

१. फगवाड़ा ऐतिहासिक क्षेत्र हैं। उत्तरार्द्ध लौंकागच्छ की यहाँ बड़ी गादी रही है। यहाँ मेघविनोद एवं वर्षप्रबोध जैसे महान् वैद्यिक और ज्योतिष ग्रंथों की रचना यति श्री मेघ ने की। आज भी 'पूजका बाग', पूज की हवेली वहाँ विख्यात हैं।

२. श्रीमती महिमादेवीजैन अत्यन्त धर्मशीला एवं सेवा भावी महिला थी। आज भी उनकी दो सुपुत्रियाँ-वर्तमान में साध्वी डॉ. अर्चना जी म. एवं साध्वी श्री मनीषा जी म. एवं दो सुपुत्र - श्री सुभाष मुनि जी एवं श्री सुधीर मुनिजी म. के नाम से जाने जाते हुए धर्मध्वज / जिनशासन पताका को फहरा रहे हैं। ये श्री सुरेन्द्रमुनि जी म. के शिष्य रत्न हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संति संतः कियन्तः?

कवि श्री अमरमुनि जी म. कविरत्न थे, इन्होंने अपने जीवन में लगभग २५,००० व्यक्तियों को मांसाहारी से शाकाहारी बनाने का पुनीत कार्य किया। उनकी दिनचर्या का यह अभिन्न अंग था कि वे व्याख्यानोपरांत आहारादि करके प्रासुक जल-पात्र लेकर किसी भी ग्राम या नगर के बाहर आम रास्ते पर बैठ जाते और राहगीरों से सम्पर्क साधते और शराब माँस छोड़ने का उपदेश देते। लोग उनकी बात मानते भी। एक दिन की बात है कि पटियाला (घग्घर पुल) के पास से गुजर रहे थे कि एक मिलिट्री/सेना अधिकारी की जीप उधर से निकली, संकेत देकर जीप को रोका-पूछा – "माँसाहार करते हो?" अधिकारी ने कहा-"हाँ, महात्माजी! लेकिन मुझे क्यों रोका, मेरे लिए कोई सेवा कार्य? कविश्री जी म.ने कहा- "आज से माँस और शराब का त्याग कर लो।" अधिकारी ने कुछ पल सोचा और सहर्ष प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली। तदनंतर उस अधिकारी का जीवन शाकाहार से युक्त हो गया।) ... ऐसे महामना के दर्शन कर गिरधारी कृतकृत्य हो गया।

आचार्य देव के श्री चरणों में

वहाँ से विरक्तात्मा गिरधारी के संग महिमादेवी लुधियाना आचार्य आत्मारामजी म. के चरणों में पहुँची। आचार्य श्री ने जब गिरधारी को "आइये वैरागी जी" कहकर संबोधित किया तो गिरधारी का रोम-रोम विरक्तता से नहा उठा और मानस श्रद्धा से परिपूरित। आचार्य श्री ने विरक्तात्मा से कण्ठाग्र ज्ञान के विषय में भी पूछा। गिरधारी ने स्मृतज्ञान से परिचित किया-आचार्य श्री को।

दीक्षानुमति, दीक्षा-तिथि

वै. गिरधारी ने आचार्य श्री के कर-कमलों में युवाचार्य श्री का पत्र विनम्रता के साथ प्रदान किया। आचार्य श्री ने पत्र का अवलोकन किया तथा वि. सं.२००६ आसोजशुक्ला त्रयोदशी - सोमवार सन् १९५० अक्टूबर २३ का दिवस दीक्षा के लिए सुनिश्चित किया। दीक्षा की लिखित अनुमति भी आचार्यवर्य ने साथ ही साथ प्रदान कर दी... वहीं विराजित वयोवृद्धा स्थविरा महासाध्वी श्री सौभाग्यवती जी म.एवं. स्थविरा साध्वी श्री लज्जावती जी म. आदि विदुषी साध्वियां भी थी। ये पंजाब के सुविख्यात साध्वी जी श्री चंदाजी म. की सुशिष्याएं थी।

लुधियाना से अम्बालासिटी आये जहाँ ममतामयी माँ ने एवं प्रव्रज्यार्थी ने उपाध्याय श्री प्रेमचंदजी म. के दर्शनों का एवं प्रवचन श्रवण का सुनहरा अवसर पाया। वहाँ से प्रस्थित हो वैराग्यवान् बराड़ा आये, बराड़ा से साढ़ोरा पहुँचे।

साढ़ोरा में पूज्य प्रवर्तक युवाचार्य श्री के बड़े गुरुभ्राता श्री हर्षचन्द जी म. श्री जौहरीलालजी म. एवं श्री सुरेन्द्र मुनि जी म. आदि ठाणा ४ का वर्षावास सानन्द सम्पन्न हो रहा था। श्रद्धेय मुनिवरों के दर्शन कर गिरधारी कृतकृत्य हो उठा। युवाचार्य श्री का कर-पत्र गुरुवर्य श्री को प्रदान किया तथा आचार्य श्री का दीक्षा-विषयक स्वीकृति-पत्र भी।

विघ्नसंतोषी जीव का कथन

वैरागी जी के आगमन की खबर साढ़ोरा के घर-घर, जन-जन तक पहुँच गई। "दीक्षा साढ़ोरा में ही होनी है" तो और भी उत्फुल्लता जन-मानस में बढ़ गई। साढ़ोरा के जैन बिरादरी / संघ के पदाधिकारी गण की मिटिंग भी समायोजित हुई दीक्षा-विषयक विचार-विमर्श के बाद प्रस्ताव पारित हो गया – गिरधारी की दीक्षा का। दीक्षा की तैयारियाँ होने लगी। तभी एक विघ्नसंतोषी जीव श्री विलायतीराम जी आ गये, वे दिल्ली, केन्द्र-सरकार में नौकरी करते थे। उन्होंने कहा-"किसे दीक्षा दे रहे हो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जान नहीं-पहचान नहीं और आचार्य श्री की अनुमति भी नहीं।" बिरादरी ने कहा- "आप यह किस आधार-पर कह रहे है?"

"आधार! आधार!! आधार!!! मैं अभी कुछ दिनों पूर्व ही आचार्य श्री के दर्शन करके आया हूँ, वहाँ दीक्षा विषयक कोई चर्चा ही नहीं है। अतः आप यह दीक्षा स्थगित कर दीजिये।" श्री विलायतीराम ने कहा।......रंग में भंग कर ही दिया विलायतीरामजी ने, तथापि साढ़ोरा सभा मण्डल के वरिष्ठ सदस्य आचार्य श्री की सेवा में लुधियाना पहुँचे। एवं अपना विनम्र-निवेदन प्रस्तुत किया। आचार्य श्री ने कहा-"दीक्षानुमति एवं तद्विषयक लिखित पत्र मैंने युवाचार्य श्री के पत्र के प्रत्युत्तर के रूप में पूर्व ही में दे दिया था फिर भी मेरी स्वीकृति है। आप दीक्षा की तैयारियाँ करो। साढ़ोरा संघ में नया प्राण फूंक दिया आचार्यवर्य श्री की पीयूषपूर्णा वाक्धारा ने। हर्ष-विभोर हो वे साढ़ोरा की ओर-प्रस्थित हुए।

सन्निकट आया दीक्षा-दिवस

वैरागी के हृदय में अपार हर्ष था। संघ में भी प्रसन्नता की लहर छा गई। मुनिवरों का मानस तो प्रसन्न था ही।

श्रीमती श्री युत मदनलालजी जैन सुपुत्र श्री मक्खनलाल जी जैन दीक्षार्थी के धर्म के माता-पिता बने। (आज भी उनके परिवार में डॉ. अमरचन्द्रजी जैन जो एक ख्याति प्राप्त विद्वान् है तथा मदनलालजी के पुत्र विजयराजजी राजकुमार जी आदि साढ़ोरा में ही रहते हैं) परिवार में खुशियाँ छा गई। धर्म मेला आयोजित होने लगा। संघ ने भी दीक्षा-विषयक समुचित तैयारियाँ प्रारंभ कर दी, आबाल, वृद्धजनों ने दीक्षा महोत्सव को अपूर्व बनाने का ठान लिया। दिन-प्रतिदिन दीक्षा-दिवस निकट आने लगा।

सभा संघ ने अपने ग्राम के निकट ही २० माईल की दूरी पर नाहन रियासत (हिमाचल) से सवारी लवाजमा बुलाया था। अश्वों को शृंगार-विभूषित किया गया। बड़ी बन्दोली एवं अभिनिष्क्रमण महायात्रा धूमधाम से निकाली गई। दीक्षा विषयक गीत व नारों से साढ़ोरा का जनपथ गूंज उठा।

स्थानक/सभा भवन के सामने ही विशाल पंडाल निर्मित किया गया। दीक्षा की पूर्व विधि हिन्दी प्राईमरी स्कूल में सम्पन्न हुई। आज भी वह स्कूल सरस्वती देवी जैन विद्यालय का अभिन्न अंग है।

पावन भागवती प्रव्रज्या

पावन दीक्षा की शुभ वेला आसोज शुक्ला त्रयोदशी के दिन त्रि-चतुः सहस्र जनमेदिनी के बीच मुमुक्षु गिरधारी सांसारिक परिधानों को त्याग कर, सिर से मुंडित तथा मन से भी मुंडित हो श्वेतवस्त्रों से सुसज्जित होकर गुरुचरणों में उपस्थित हो गया। जैन भागवती दीक्षा का पाठ श्रद्धेय श्री हर्षचन्द्रजी महाराज की पावन निश्रा व अन्य संतों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। दीक्षा पाठ प्रदान करने के पश्चात् जय-जयकारों से सभा मंडप गूंज उठा। बड़ी दीक्षा भी चातुर्मास होने के कारण साढ़ोरा में ही सम्पन्न हुई। नवदीक्षित मुनि को विद्वद्वर्य श्री महेन्द्रकुमारजी महाराज का शिष्य घोषित किया गया।

गिरधारी से मुनि श्री सुमन कुमार

नाम रखा नवदीक्षित मुनि का – मुनि श्री सुमनकुमार!

दीक्षोपरान्त मुनि श्री सुमनकुमार जी म. का अध्यापन साढ़ोरा में ही प्रारम्भ हो गया। पण्डित श्री विद्यानन्दजी शास्त्री (राजकीय विद्यालय के शिक्षक) से अध्ययन और लघुसिद्धान्त कौमुदी का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करने लगे।

चातुर्मासोपरान्त वहाँ से विहार हुआ। साढ़ोरा का जन समुदाय मुनिराजों को विदा देने अगले विश्राम स्थल तक आये, सजल नेत्रों से मुनिवरों की मांगलिक श्रवण की और साढ़ोरा की ओर चल पड़े।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिश्रेष्ठ शिष्य सम्पदा सहित मुलाना, मुलाना से खुड्डा, वहाँ से अम्बाला छावनी होते हुए अम्बाला शहर पधारे। अम्बाला में कतिपय दिवसों की स्थिरता के पश्चात् बनूड़, खरड, कुराली, रोपड़ होते हुए बलाचोर पधारे।

बलाचोर में तपस्वी श्री पन्नालालजी म. एवं उनके शिष्य कविरत्न श्री चन्दनमुनि जी म. 'पंजाबी' ठाणा २ तथा व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म. के सुशिष्य स्वामी बद्रीप्रसाद जी म. श्री रामप्रकाश जी म. पं.रत्न श्री रामप्रसादजी म. आदि ठाणा वहाँ विराजमान थे। नवदीक्षित मुनि ने इनके दर्शनों का सुयोग प्राप्त हुआ।

मैं भी बन सकता विद्वान् :

निशाकाल में इन सभी संतों की विचारगोष्ठी एवं काव्य गोष्ठी होती थी। नवदीक्षित मुनि श्री सुमनकुमार जी का मानस इन काव्य-विचार गोष्ठियों को सुनकर अभिभूत हो जाता। गोष्ठियों के समागम का प्रभाव नवदीक्षित मुनि पर इस कदर पड़ा कि वे सोचने लगे-अगर मैं भी एकाग्रता के साथ अध्ययन करूं तो मैं भी इन कविरत्नों/पण्डितरत्नों की भाँति विद्वान् बन सकता हूँ। वस्तुतः जब व्यक्ति के मन में चाह जागृत होती है तो वहीं से राह बननी प्रारंभ हो सकती है। अन्तः स्फुरणा से ही ज्ञान ज्योति के दीवट जगमगाते है और अपने आलोक से स्व को ही नहीं अपितु जन-जन को आलोकित करते हैं।...नवदीक्षित मुनि ने संकल्प किया मन ही मन कि वह अध्ययन और द्रुतगति से करेगा...।

बलाचोर से विहार कर नवाँशहर (दुआबा), बंगा, फगवाड़ा जालंधर छावनी, जालंधर शहर पधारे। जहाँ युवाचार्य श्री जी म. बवासीर की चिकित्सार्थ दो माह से निवसित थे तथा बंगा वर्षावास सम्पन्न कर वहीं पधार गये थे।

शिष्य-घोषणा :

दो गुरुभ्राताओं का सम्मिलन हुआ। युवाचार्य श्री ने गिरधारी को मुनि श्री सुमनकुमार के रूप में देखकर अत्यन्त हर्षानुभव किया। उसे अपने अंक से लगाया और दुलार भरा आशीर्वादात्मक हाथ सिर पर रखते हुए कहा - "वत्स! इस अवस्था में बड़े ही सुन्दर लग रहे हो, जिस मंगलमयी भावना/कामना/लक्ष्य के साथ संयम स्वीकार किया है उसी के अनुरूप अपने को ढ़ालना एवं जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में अपना अमूल्य योगदान प्रदान करना।" तदनन्तर युवाचार्य श्री ने कहा - "नवदीक्षित मुनि को मैं पं. श्री महेन्द्रकुमार जी म. का शिष्य घोषित करता हूँ।" सभी मुनियों में प्रसन्नता की लहर छा गई। योग्य गुरु का योग्य शिष्य। नवदीक्षित मुनि ने भी श्रद्धाभरी दृष्टि से अपने गुरु को निहारा और भावभरा सश्रद्ध वन्दन मन ही मन किया।

कई माहों के बाद मुनिराजों का सम्मिलन हुआ तो कई विषयों पर विचार-विमर्श हुआ, प्रश्न-समाधान हुए, जिज्ञासाएं शान्त हुई-और कड़ी से कड़ी जुड़ी सौहार्दता एवं स्नेह की। संतों के पास आदान प्रदान के लिए और है ही क्या? यही तो है सब कुछ-ज्ञान बांटा, अनुभव बांटा और बांटा स्नेह - और-प्रेम, सहृदयता और सदाशा।

कसौटी में खरे उतरे :

जालंधर से विहार करके कपूरथला पदार्पण हुआ, गुरुदेवों का। यहाँ जैन सभा भवन के ध्वस्त हो जाने के कारण 'राणी के मंदिर' में ठहरे और धर्मोपदेश दिया करते थे - सनातन धर्म सभा के सभागार में। कुछ दिन धर्म की अविरल गंगा बहाकर कपूरथला से रैयामण्डी जण्डियाला गुरु पधारे। यहाँ एक मास कल्प की स्थिरता रही। धर्मध्यान का अपूर्व ठाठ रहा। सन्तों की सेवा भक्ति में जैन ही नहीं अपितु अजैन भी अग्रणी रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवदीक्षित मुनि श्री का प्रथम केशलुञ्चन भी यहीं हुआ। घुंघराले बाल, एक-एक कर चिमटी में आते गये एवं सिर-मुण्डन होता रहा। केशलुञ्चन वस्तुतः संयमी जीवन की सहनशक्ति की पराकाष्ठा है। मुनिश्री इस में खरे उतरे।

तदनंतर गुरुदेव श्री अमृतसर पधारे अमृतसर जो कि आचार्य श्री सोहनलालजी म. के ३२ वर्ष तक स्थिरवास रहने के कारण धर्ममय नगर बन चुका था। वस्तुतः यहाँ भी धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चरमोत्कर्ष पर रही।

यहाँ पर व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म., भंडारी श्री बलवंतरायजी म. श्री मूलचंद जी म. आदि पधारे-हुए थे। लगभग अर्द्ध माह तक अमृतसर धर्मनगरी की भाँति प्रतीत होने लगा। संत समागम, धर्म चर्चा, सामाजिक चर्चा की त्रिवेणी बहती रही।

अमृतसर पहुँचने से पूर्व ४ मील पर दुवुर्जी आये। वहाँ लाला लालूशाह जी की कोठी में ठहरने का सुअवसर मिला। उन्हीं की कोठी के प्रांगण में स्थित है - आचार्य श्री सोहनलालजी म.स. का स्मृति स्तम्भ।

अमृतसर से विहार करके 'तरण-तारण' होते हुए पट्टी पहुँचे गुरुवर्य श्री। पट्टी शहर में श्वेताम्वर मूर्तिपूजक एवं स्थानकवासी समाज की ओर से महावीर-जन्म-जयंति का विशाल आयोजन हुआ। पट्टी से विहार करके सरहाली होते हुए नौका-विहार से सतलुज दरिया को पार कर सुलतानपुर लोधी पधारे। सुलतानपुर लोधी से 'टुरना' शाहकोट होते हुए वर्षावास हेतु पुनः सुलतानपुर पधारे। चातुर्मास सोत्साह सम्पन्न होने लगा। धर्म-रंग जमने लगा। प्रवचन-धारा बहने लगी। वर्षावास स्थल था – लाला भगवानदास जैन खंडेलवाल का तबेला।

भगत कर्मचंद की श्रद्धा :

इनकी देव, गुरु, धर्म पर इतनी दृढ़ श्रद्धा थी कि नवदीक्षित मुनि की श्रद्धा को भी और अधिक द्विगुणित कर दिया। श्रद्धा से ही व्यक्ति भवपार होता है और श्रद्धा के मनोबल के आधार पर भी दरिया तिरा जाता है। घटना इस प्रकार घटित हुई।

सुलतानपुर के भगत कर्मचन्द यूं ही 'भगत' नहीं बन गये थे। वे अरोड़ावंशी थे तथा साधु संगति के कारण उन्होंने सप्तकुव्यसन का परित्याग कर दिया था तथा नमस्कार मंत्र पर अपार आस्था रखते। यथावसर धर्मध्यान व प्रवचन-श्रवण भी किया करते।

एकदा वे व्यापारिक कार्य हेतु बाहर-गये, उनका साथी टट्टू था उनके संग और उस पर लदी थी कपड़े की गांठ। घूम-घूम कर कपड़ा बेचना यही उनका काम था।.. मध्याह्न के बाद घटाएं घिर आई और मूसलाधार वर्षा होने लगी। अत्यधिक वर्षा देखकर वे पुनः सुलतानपुर आ रहे थे कि कालीबेही/नदी के पास आते-आते संध्या भी घिर आई। ऐसे ही घटाएँ घिरी हुई और फिर सांझ का समय-अंधेरा द्विगुणित हो गया। काली बेही-नदी का पानी भी भरपूर यौवन पर था। नदी के किनारे कितने ही लोग सुलतान पुर जाने वालों में से खड़े थे किंतु नदी के रौद्र रूप को देखकर उसे पार करने का साहस न कर सके और एक-एक कर रात में निवास करने अन्य गाँव में चले गये इस आशा के साथ कि कल प्रातः ही कालीबेही को पार कर उधर जाएंगे। किंतु भगत कर्मचन्द ने श्रद्धापूर्वक नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया तथा कपड़े की गांठ सिर पर रखी अंगोछे को अभिमंत्रित कर पानी में इस तरह फैलाया जैसे वही नाव बनकर इनको उस किनारे ले जाने वाला है। टट्टू को 'फ्री' कर दिया वह भी स्वामी का अनुकरण करने लगा। दृढ़ विश्वास और आत्मबल के सहारे ज्यों ही कालीबेही/नदी में कदम रखा त्यों ही कालीबेही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नदी का रौद्ररूप देखने एक गाँव के जमींदार आ गये। उन्होंने भगत कर्मचन्द को रोकना चाहा किंतु वे रुके नहीं। कदम पानी में आगे से आगे बढ़ते गये। स्थिर एवं निश्चल।...भगत कर्मचंद चिंतन करते कालीवेही को पार करते जा रहे थे कि नमस्कार महामंत्र से भवसागर तिरा जा सकता है फिर कालीबेही की क्या बिसात?

जमींदार चीखते-चिल्लाते रहे - भगत लौट जा किंतु भगत तो सघन पानी और सघन निशा के निविड़ अंधकार-में विलीन होता गया। जमींदार का दिल धक्-धक् करने लगा कि कहीं भगत डूब न जाय और कहीं बह न जाये।... जमींदार का सिर चकराने लगा वह सीधा अपने घर चला आया किंतु मन-मस्तिष्क में वही प्रश्न कि भगत का क्या हुआ, घर पहुँचा भी या नहीं।

ज्यों ही प्रभात हुआ, जमींदार सुलतानपुर की ओर प्रस्थित हुआ। भगत के घर आया, पूछा भगत के बारे में तो पता चला कि वह तो धर्मस्थान में है तथा सामायिक करके लौटेंगे। जमींदार भी वहीं आ पहुँचा। भगत को धर्मध्यान में तल्लीन देखकर जमींदार के जीव में जीव आया तथा गुरुदेवों से विगत घटना कही और कहा-महाराज जी, चमत्कार ही इसे बचा ले आया है यहाँ बाकी तो कालीबेही नागिन सी बलखाती बही जा रही थी, कल सायं।

नवदीक्षित मुनि ने उक्त घटना – सुनी तो नमस्कार महामंत्र पर श्रद्धा और बलवती हुई तथा भगत कर्मचंद की आस्था और श्रद्धा को सराहा। भगत कर्मचंद ने भी यही स्वीकारा – गुरुदेव ! यह तो नमस्कार महामंत्र का चमत्कार है एवं सतुरु की कृपा का ही सुफल है। श्रद्धा के विषय में जो कहा है वह सच ही है-

"श्रद्धा ही ते सारधार, श्रद्धा ही ते खेवोपार।
श्रद्धा बिना जीव ख्वार, निश्चय कर मानी है।।"

ऐसा क्यों होता है?

वर्षावास के पश्चात् पुनः विहार-क्रम प्रारंभ हुआ। कपूरथला होते हुए पुनः जालंधर पधारे। उसी समय अमृतसर का वर्षावास व्यतीत करके व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म. भी अपनी शिष्य सम्पदा सहित कपूरथला पधारे। किंतु जालंधर नहीं पधारे।

हुआ यूं कि विगत वर्षावास में स्वामी जी श्री प्रेमचंदजी म.सा. ध्वनिवर्द्धक यंत्र में बोले किंतु व्याख्यान-वाचस्पति श्री मदनलालजी म. ध्वनिवर्द्धक यंत्र के प्रबल विरोधी थे।... पंजाब श्रमणसंघ के सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया था कि ध्वनिवर्द्धक यंत्र का प्रयोग करने वाले सन्तों के साथ सम्भोग/सम्बन्ध नहीं रखा जाय किंतु आचार्य श्री आत्मारामजी म. ने उन्हें चातुर्मास आदि की आज्ञा देकर व्यवहार स्थापित किया, अतः व्या.वा. श्री मदनलालजी म. नाराज थे। युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्र जी म.सा. भी ध्वनिवर्द्धक यंत्र का प्रयोग नहीं करते थे फिर भी युवाचार्य श्री ने भी चातुर्मास की आज्ञा आचार्य श्री से मंगवाई थी अतः श्री मदनलालजी म. ने उनसे भी सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

युवाचार्य श्री जी को जब उपर्युक्त बात का पता चला तो श्री मदनलाल जी म. को मनाने के लिए शिष्य मण्डली सहित कपूरथला पधारे। लेकिन बातचीत का कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका और मामला अनिर्णित ही रहा, फलतः पुनः जालंधर शहर में लौट आये। कतिपय दिनों के बाद श्री मदनलालजी म. भी जालंधर शहर पधारे। यहाँ भी किसी भी प्रकार का व्यवहार स्थापित नहीं किया श्री मदनलालजी म.ने। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए श्री एस.एस. जैन सभा, पंजाब के वरिष्ठ अधिकारियों ने, सदस्यों ने अथक प्रयत्न करके दोनों में समझौता कराया। यह सारा संवाद-विसंवाद, पक्ष-विपक्ष, कल्प-अकल्प नवदीक्षित मुनि ने भी भलिभाँति जाना-समझा। लघु मुनि ने चिंतन किया-"लघु-लघु स्थितियाँ भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महामुनिवरों के मध्य दीवारें क्यों खड़ी कर देती है?"

तदनन्तर आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज ने दोनों महापुरुषों को लुधियाना पहुँचने का निर्देश दिया। उधर स्वामीजी श्री प्रेमचंदजी म. को भी वहीं पहुँचने का आदेश प्रदान किया। नियत समय पर महारथी संतों का लुधियाना में पदार्पण हुआ। लुधियाना में पंजाब प्रान्तीय साधु सम्मेलन रखा गया। वहाँ पर सभी महारथियों की शंकाओं का समाधान हुआ और हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। साथ ही साथ इस प्रान्तीय साधु सम्मेलन में 'सादड़ी बृहद् साधु सम्मेलन' में जाने हेतु विचार-विमर्श किया गया एवं जाने का निर्णय भी हुआ। चार प्रतिनिधियों की नियुक्ति की गई, वे थे-१ व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म. २. युवाचार्य श्री पं. रत्न शुक्लचंद जी म., ३. उपाध्याय श्री प्रेमचंदजी म. और ४. श्री विमलचन्दजी म.। लुधियाना से ही सादड़ी सम्मेलन हेतु सभी महारथी संतों ने प्रस्थान किया।

सादड़ी सम्मेलन की ओर :

लुधियाना से अम्बाला जाते हुए खन्नामण्डी में जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म. के शिष्यरत्न श्री हीरालालजी म., तपस्वी श्री लाभचन्द जी म., तपस्वी बसन्तीलाल जी श्री दीपचंदजी म., श्री मन्नालालजी म. श्रमण श्रेष्ठों का सम्मिलन हुआ। मण्डी में युवाचार्य श्री का सार्वजनिक भाषण हुआ। अम्बाला शहर में युवाचार्य श्री जी के बड़े गुरुभ्राता कवि श्री हर्षचन्द्र जी म., श्री जौहरी लालजी म. ठाणा २ से विराजमान थे।

अम्बाला से अम्बाला छावनी, शाहबाद, कुरुक्षेत्र, करनाल आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए युवाचार्य श्री जी का दिल्ली क्षेत्र में पदार्पण हुआ। दिल्ली की धर्मप्रिय जनता आपके पदार्पण के साथ ही भाव विभोर हो उठी और धर्मध्यान की त्रिपथगा में अपने को आकण्ठ भिगोने लगी।... दिल्ली से नई दिल्ली, चिराग दिल्ली, महरोली क्षेत्र में धर्म का बिगुल बजाते हुए गुड़गावाँ, जी.टी. रोड़, राजमार्ग होते हुए अलवर, जयपुर, अजमेर की जनता को धर्म बोध देते हुए ब्यावर शहर पधारे।

सादड़ी सम्मेलन के लिए जाते हुए उपाध्याय कविरत्न श्री अमरमुनि जी म., दिवाकरीय संत, स्वामी श्री हजारीमल जी म., स्वामी श्री ब्रजलाल जी म., पंडित श्री मधुकर मुनि जी म. आदि "कुन्दन भवन" में एकत्रित हुए। दर्शनों का सौभाग्य मिला। ब्यावर से सेन्दड़ा, बर, रायपुर, झूंठा, पीपलिया होते हुए सादड़ी की ओर द्रुतगति से बढ़ने लगे।

बगड़ी ग्राम में आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. के दर्शनों का अनायास ही लाभ सभी को मिला। आचार्य श्री गणेशीलालजी म.ने पंजाब के इन महारथियों की अगुवाई में संतद्वय को जेठाना तक भेजा था।

पाया; ज्ञान-प्रसाद :

मुनि श्री सुमनकुमारजी म.को नित नवीन संतों की पुरातन चर्चा, सम्प्रदाय-परंपरा के नियम-उपनियम आदि के विषय में, विविध ज्ञान-चर्चा का प्रसाद प्रतिदिन मिलता रहता। अनुभव अमृत से मुनि श्री अपने आपको परिपक्व बनाते जा रहे थे।

नियत तिथि पर सादड़ी में सभी मुनिश्रेष्ठों का प्रवेश हुआ। सादड़ी का स्थानक, अली-गली के रिक्त भवन एवं नोहरों में मुनियों का बसेरा था। अक्षय तृतीया के दिन "लौंकाशाह जैन गुरुकुल" का उद्घाटन सेठ श्री मोहनलालजी चौरड़िया के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। उद्घाटन के पश्चात् उसमें भी मुनिवरों का पदार्पण हुआ। यहीं पर श्री अम्बलालजी म., श्री आनंदऋषिजी म. आदि का भी सम्मिलन हुआ। संतों का आपसी सौहार्द एवं प्रेमभाव दर्शनीय था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम सुअवसर :

मुनि श्री सुमनकुमार जी के लिए यह प्रथम सुअवसर था कि इतना मुनिसमूह एक साथ देखा। बुजुर्ग एवं महारथी संत अपने उम्र के एवं समादरणीय मुनिश्रेष्ठों के साथ विचारणा - मंत्रणा आदि में संलग्न थे। मुनि सुमन कुमार जी भी अपनी उम्र के युवा साथियों के साथ विचार-विमर्श एवं ज्ञान के आदान-प्रदान में संलग्न रहते। साथ ही साथ युवा मुनियों से बनाये – प्रगाढ़तर स्नेह-सम्बन्ध।

सम्मेलन की कार्यवाही में छोटे-मुनियों एवं साध्वियों को अभिभाषण नहीं करने दिया जाता। इससे युवा मुनि एवं साध्वियाँ क्षुब्ध अवश्य थीं।

सादड़ी सम्मेलन सुचारुरूपेण सम्पन्न हुआ। सादड़ी सम्मेलन के पश्चात् नाडौल होते हुए युवाचार्य श्री शुक्लचंद जी म. मरुधरा की हृदय स्थली जोधाणा/जोधपुर-पधारे। आप श्री का वर्षावास सिंहपोल में ही सम्पन्न हुआ।

ज्ञानाभ्यास :

सन् १९५२ के वर्षावास में गुरुदेव श्री की सेवा में निमग्न रहते हुए युवा मुनि श्री सुमनकुमार जी ने आगम का अध्ययन गुरुदेव श्री से प्रारंभ किया। लघुकौमुदी एवं संस्कृत व्याकरण का अध्ययन जोधपुर संस्कृत महाविद्यालय के प्राध्यापक पं श्रीविष्णुदत्त जी शर्मा से आरंभ किया।

ज्ञान का प्रभाव अमिट है :

रत्नवंशीय परम्परा के बाबा मुनि श्री सुजानमल जी म. श्री लक्ष्मीचन्द जी म. (बड़े) श्री माणक मुनि जी का चातुर्मास भी साथ ही था। श्री लक्ष्मीचन्द जी म. (बड़े) से मध्याह्न में श्राविकाएं शास्त्राभ्यास करती थीं। उनकी अध्ययन शैली अत्यन्त रोचक सरल एवं सरस थी। युवा मुनि श्री सुमनकुमार जी म. के मानस में उनके प्रति श्रद्धा जागृत हुई, और मानस पर अमिट प्रभाव पड़ा।

पाली पदार्पण :

चातुर्मास पूर्व, सादड़ी सम्मेलन के पश्चात् नाडोल (लोकमान्य संत प्रवर्तक श्री रूपचन्द्र जी म. 'रजत' की जन्म स्थली) आदि बड़े ग्रामों में विचरण करते हुए पाली पधारे और श्री सिरेहमलजी कांठेड के कपड़ा मार्केट के ऊपर ठहरे। यहाँ श्रद्धेय सहमंत्री श्री हस्तीमलजी म. आदि ठाणा एवं श्री लाभचन्द्रजी म., श्री चौथमलजी म. तथा साध्वी श्री चांदकंवरजी महाराज ठाणा ८, श्री वदनकंवर जी म., श्री मैनासुन्दरी म. आदि का भी पाली पदार्पण हुआ।

✣ ✣ ✣

निर्दयता की पराकाष्ठा :

पाली से महासती श्री चांदकंवर जी म. ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। पाली से लगभग ५ कि. मी. विहार हुआ होगा कि एक साध्वी को ट्रक ने टक्कर मार दी और घायल कर दिया। ट्रक वालों ने घायल साध्वी को पुल के नीचे डाल दिया और भाग खड़े हुए।

साध्वियाँ जो कि थोड़ी पीछे थीं उन्होंने शोर भी मचाया, लोग भागे भी, किंतु तब तक ट्रक को लेकर खलासी एवं ड्राइवर फरार हो चुके थे। पाली संघ को सूचना मिली, साध्वी जी को उपचारार्थ पुनः पाली लाया गया। पाली से सोजतसिटी पधारे।

मंत्री मंडल की बैठक :

यहाँ से विहार कर सोजतसिटी के कोट के स्थानक में लगभग एक मास-कल्प की स्थिरता रही उपर्युक्त संत मण्डल, एवं मरुधर केशरी श्री मिश्रीमलजी म. श्री रूपचन्दजी म. आदि ठाणा के प्रवचनों में जनता उपकृत होती रही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहीं गुरुदेव पंडित रत्न श्री महेन्द्रकुमार जी म. से परमविदुषी साध्वी श्री कुसुमवती जी म. ने प्राकृत कौमुदी का पारायण भी किया।

सभी संत गण तदनन्तर 'गुरुकुल' में पधार गए जहां मंत्रीमंडल की बैठक हुई। इस बैठक में सचित्त-अचित्त, साध्वाचार आदि शास्त्रीय विषयों पर सांगोपांग चर्चा हुई। चर्चा में भाग लेने वाले प्रमुख सन्त गण थे - उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म., बहुश्रुत श्री समर्थ मल जी म. सहमंत्री श्री हस्तीमल जी म. मरुधरकेशरी जी, पंजाब केसरी श्री प्रेमचन्दजी, पंजाब प्रवर्तक श्री शुक्लचंद जी म., प्रभृति।

तदनंतर अभिरुचि जगी :

मंत्रीमण्डल की बैठक में चर्चा का स्तर एवं विषय उच्चस्तरीय एवं गंभीर थे। आगम के उद्धरण सुनने को मिले। बहुश्रुत जी म. के द्वारा उच्चरित शास्त्र पाठ ने, कवि श्री म. द्वारा टीका, चूर्णि, भाष्य आदि के प्रचुरण उद्धरणों ने युवामुनि श्री सुमनकुमार के मन में शास्त्र-स्वाध्याय के प्रति अभिरूचि को और द्विगुणित किया।.. सादड़ी से भी अधिक इस सम्मेलन का प्रभाव मुनि श्री के जीवन पर पड़ा।

अभयी को भय कहाँ?

सोजत से संतगण जोधपुर पधारे। सरदारपुरासे विहार कर श्री विजयराजजी कांकरिया के यहाँ ठहरना हुआ। बाबाजी म. आदि सभी वहाँ पधारे। वहाँ से विहार कर महामंदिर आये और महामंदिर दरवाजे के बाहर धर्मशाला में ठहरे। वहाँ (आचार्य) श्री हस्तीमल जी म. भी पधार गये। धर्मशाला की एक कोठरी को खोला तो देखा कि एक नागराज वहाँ बैठे हैं। पदचाप एवं ध्वनि सुनकर उसने अपना फण फैलाया। उसे पकड़ने का प्रयास किया गया किंतु आचार्य श्री हस्तीमलजी म. ने अपना रजोहरण आगे कर दिया। सर्पराज रजोहरण के गुच्छक भाग से लिपट गया। श्री हस्तीमलजी म. ने अपना रजोहरण वैसे ही थामे रखा और यतनापूर्वक सर्पराज को पहाड की तलहटी में ले गये। रजोहरण धरती पर रखा, साँप ने अपने तन को शिथिल किया और वन-प्रांतर में चला गया। उनकी निर्भिकता देखकर युवामुनि श्री सुमनकुमार जी अत्यधिक प्रभावित हुए।

स्वामी चौथ का आदर्श-समाधि-मरण

इन्हीं दिनों जोधपुर (चाँदी हाल) में विराजित सम्यक् श्रुताचार्य आशुकवि स्वामी श्री चौथमलजी महाराज अपने गुरुभ्राताओं (आपने यावज्जीवन किसी को अपना शिष्य नहीं बनाया) के साथ विराजमान थे। स्वामीजी ने अपने जीवन का अवसान निकट जानकर आसाढ़ वद ६ वि. सं. २००६ को संथारा ग्रहण किया। श्रद्धेय प्रांतमंत्री श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज भी अपने श्रमणों के साथ विहार कर वहाँ पधारे आगमवेत्ता सहमंत्री (आचार्य) श्री हस्तीमलजी म.सा. भी पधारे। सभी महामुनिवरों का संथारा के समय अपूर्व सहयोग रहा। अत्यंत आत्मीय वातावरण बना रहा। आसाढ़ सुद तृतीया को स्वामीजी महाराज का १३ दिवसीय संथारा पूर्ण हुआ। अपार जनमेदिनी थी, महाप्रयाण-यात्रा में। प्रान्तमंत्री श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज प्रभृति श्रमणनिष्ठों के संस्मरण आदि 'आदर्श-समाधि-मरण' में संकलित तथा प्रकाशित हैं।

पंजाब प्रवर्त्तक श्री शुक्लचंद म. ने सत्य ही लिखा है –

"आप (श्रुताचार्य श्री चौथमलजी म.) संघ सम्प्रदाय के नेता होते हुए भी आपने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कोई शिष्य नहीं बनाया। धन्य है-त्यागी एवं ऐसी स्वावलम्बी आत्मा को।[१]

१. आदर्श समाधि मरण - पृष्ठ-१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः विहार :

जोधपुर से विहार करके सोजतरोड़ पदार्पण हुआ। वहाँ प्रायः सभी मूर्धन्य संत पधारे हुए थे। स्वामी भूरालालजी, छोगालालजी, गोकलचन्दजी आदि मेवाड़ी संतो का एवं स्थविर महासन्त श्री ताराचन्दजी म. उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी म., श्री देवेन्द्रमुनि जी म. श्री गणेशमुनि जी म. आदि का समागम हुआ। पीपाड़ आदि ग्रामों में होते हुए पादूकलां पहुँचे। तदनंतर पीही-थांवला, पुष्कर, अजमेर, मदनगंज, किशनगढ़, हरमाड़ा, फूलेरा (जंक्शन) रींगस, श्री माधोपुर, खंडेला, नीम का थाना, डाबला, मांवडा, निजामपुर को पावन करते हुए नारनौल पधारे। यहाँ आप सभी की स्थिरता रही। स्थानक छोटा था अतः व्याख्यान दिगंबर धर्मशाला में होता था।

नारनौल से रेवाड़ी, गुड़गाँव, दिल्ली फरसते हुए नई दिल्ली पधारे।

सेवा ही परम धर्म है :

सन् १९५३ में अम्बाला में विराजमान कविरत्न श्री हर्षचन्दजी म. मुनि श्री जौहरीलाल जी म. जो कि प्रवर्तक श्री जी म. के गुरु भ्राता थे। श्री जौहरीलालजी म. अस्वस्थ थे एवं श्री हुकममुनि जी म. भी वृद्ध संत थे इसलिए प्रवर्तक श्रीजी म. के पास यह सूचना आई कि एक सेवार्थी संत की आवश्यकता है।

गर्मी की प्रचण्डता के कारण कोई भी सन्त सेवा में जाने के लिए तत्पर नहीं हुए तो युवामुनि सुमनकुमार जी म. ने कहा –

"गुरुदेव ! आपकी आज्ञा हो तो मैं संतों की सेवा में जाने के लिए तत्पर हूँ।" गुरुदेव श्री ने प्रसन्नता के साथ स्वीकृति प्रदान कर दी। साथ ही साथ यह भी निर्देश दिया कि जब तक कोई अन्य सन्त सेवा में नहीं आ जाए तब तक वहीं रहना मेरे आदेश की प्रतीक्षा करना।

जय-जय आत्मबली की :

दिल्ली से मुनि श्री सुमन कुमार जी ने प्रस्थान किया - अम्बाला की ओर ! भयंकर ग्रीष्म ऋतु के ताप ने उनके शरीर को स्वेद बिन्दुओं से नहला दिया किंतु मुनि श्री ने आत्मबल नहीं हारा। थकान से चकनाचूर कदम पीछे हटने को उद्यत थे किंतु उनका मनोबल उन्हें आगे बढ़ने को प्रेरित कर रहा था।... और २०० कि.मी. की यात्रा सप्ताहांत तक पूर्ण कर दिल्ली से अम्बाला पहुँच ही गये। वृद्ध स्थाविरों को जब उन्होंने जाकर वन्दन-नमस्कार किया तो उनकी पीठ थपथपाई और कहा – मुनि ! अत्यन्त उग्रविहार करके आये हो, तुम्हारी आत्मशक्ति की भी यह पराकाष्ठा है।

पुनः सन्त सेवा :

मुनि श्री सुमनकुमार जी म. उनकी सेवा में तत्पर हुए। सेवा कार्य अत्यन्त कठिन है तथापि मुनि श्री निष्काम भाव से सेवाधर्म में रमण करने लगे। एक वर्ष सेवा-कार्य में लगे रहे। तदनन्तर श्री हुकममुनि जी म. के साथ लालड़ू, डेरावसी, मणीमाजरा आदि स्थानों का विचरण कर पुनः अंबाला आये और गुरुदेव श्री की आज्ञा प्राप्त होने पर पुनः तपस्वी श्री मोहनमुनि जी म. के संग दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

उस समय मालेर कोटला में तपस्वी श्री मोहनमुनिजी म. (श्री चौथमलजी म. के आज्ञानुयायी) विराजमान थे। चातुर्मासोपरान्त अम्बाला शहर पधारे। उनके साथ भी आप श्री ने विहार किया। अम्बाला छावनी, मुलाना, साढ़ोरा, बराड़ा, उगाला, पानीपत, समालखा, गन्नौर, सोनीपत उद्याखेड़ा, नरेला, आजादपुर होते हुए दिल्ली (सब्जी मण्डी) पधारे।

आचार्य-चादर महोत्सव :

गुरुदेव श्री सेवा में संलग्न रहते हुए आप श्री पुनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंजाब पधारे। आचार्य श्रीआत्माराम जी म. को सादड़ी सम्मेलन में जो चादर समर्पित की गई थी वह युवाचार्य श्री शुक्ल चन्द्रजी म. को प्रदान की गई कि आप जाकर आचार्य श्री को यह चादर समर्पित कर देना किंतु पंजाब प्रवर्तक श्री जी म. को अस्वस्थता के कारण पहला चातुर्मास जोधपुर में ही और दूसरा चातुर्मास सब्जी मण्डी दिल्ली में करना पड़ा। सन् १९५४ का चातुर्मास जालन्धर हुआ। चातुर्मासोपरान्त लुधियाना - पधारें। वहाँ आचार्य श्री का 'चादर-महोत्सव' आयोजित हुआ। इस प्रसंग पर अनेका अनेक संत-सती एकत्रित हुए। दो भागवती दीक्षाएं भी इस अवसर पर सम्पन्न हुई। नवदीक्षित का नाम श्री मथुरा मुनि जी एवं नवदीक्षिता का नाम साध्वी श्री गुणमालाजी रखा गया।

गुरुदेव श्री की सेवा में :

सन् १९५४ का श्री सुमनमुनि जी म. का चातुर्मास संत स्वामी श्री बेलीराम महाराज की सेवा में रायकोट हुआ। वे अकेले एवं वृद्ध संत थे। कालान्तर में पुनः गुरुदेव श्री के चरणों में लुधियाना पहुँचे। लुधियाना से जगरावां, मोगा, फरीदकोट, जेतों, गुनियाना होते हुए १९५५ के वर्षावास हेतु गुरुदेव श्री की सेवा में भटिण्डा पहुँचे। यहाँ स्वामी श्री कस्तूरचंदजी म. श्री अमृतमुनि जी म. श्री ओमीश मुनि म. के दर्शनों का लाभ भी प्राप्त हुआ। एक मास की स्थिरता के पश्चात् गीदड़वाहा मंडी पधारे।

गीदड़वाहा मण्डी में प्रवर्त्तक श्री जी म., बाबा श्री माणकचंदजी म., श्री राजेन्द्रमुनि जी म., और श्री शांतिमुनिजी म. एवं श्री सुमनमुनि जी का चातुर्मास घोषित किया गया था। (तपस्वी श्री सुदर्शन मुनि जी म., पूज्य गुरुदेव श्री महेन्द्रमुनिजी म. का चातुर्मास भटिंडा में तथा स्वामी श्री कस्तूरचंद जी म. एवं श्री छज्जुमुनि जी म. का अबोहर मंडी में सम्पन्न हुआ)

बीकानेर की ओर प्रस्थान :

गीदड़वाहा मंडी में ही भीनासर-बीकानेर सम्मेलन के लिए कॉन्फ्रेन्स का प्रतिनिधि मंडल, श्री संघ का आगमन हुआ, फलतः गुरुदेव श्री भटिण्डा पधारे, तदनंतर बीकानेर की ओर-विहार किया।

युवामुनि श्री सुमनकुमार जी म. परमश्रद्धेय श्री राजेन्द्र मुनि जी म. परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री महेन्द्रमुनि जी म. श्री दाताराम जी म. के साथ भटिंडा से कोटफतेह, माईसर खाना, मोडमण्डी, मानसा मण्डी, बुढ़लाढ़ा मंडी, बरेटा, जाखल, टुहाना, नरवाना होते हुए रोहतक पहुँचे।

रोहतक में विराजिता महास्थविरा श्री धनदेवीजी म. के दर्शनों का सौभाग्य मिला। तदनंतर विहार करते हुए दिल्ली पधारे। दिल्ली के करोल बाग में लिबर्टी सिनेमा हॉल, जो कि हाँसीवाले लाला श्री अमोलकसिंह जी का था – में विराजे। उस समय वह खाली ही था। यहाँ से दरियागंज आदि बाजारों में विचरण करते हुए पुनः रोहतक पधारे।

पूज्य गुरुदेव श्री की ठाणा २ से रोहतक में स्थिरता रही। श्री राजेन्द्रमुनिजी म. एवं. श्री दातारामजी म. ने यू.पी. की ओर विहार किया।... रोहतक से हिसार हिसार से बीकानेर सम्मेलन के लिए राजगढ़ होते हुए शार्दूलशहर पधारे। तदनंतर राजलदेसर पदार्पण हुआ।

ज्ञानकोष हुआ समृद्ध :

यहाँ व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म. आदि ठाणा के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ज्ञान-ध्यान आदि कई प्रकार के अनुभवों से युवा मुनि श्री ने अपने ज्ञान कोष को और अधिक समृद्ध बनाया। इधर विहार-मार्ग जटिल था। रेत, कंकड, कांटे आदि थे, तथापि मुनिवरों की विहार यात्रा सतत आरंभ रही। सड़क का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी अभाव था। रेल की पटड़ी-पटड़ी ही विहार करते हुए सूरतगढ़ पहुँचे। यहाँ मुनि समागम हुआ। मुनिवरों का दल बीकानेर हेतु प्रस्थित हुआ। लूणकरणसर होते हुए सींथल आए। यहाँ बहुश्रुत पं. श्री ज्ञानमुनि जी म. तपस्वी श्री लाभचन्दजी म. ठाणा ४ के दर्शनों का लाभ भी अनायास ही मिल गया। ये भी सम्मेलन दिशा की ओर ही पधार रहे थे। यहाँ सार्वजनिक व्याख्यान हुए। स्मरण रहे हिसार से बीकानेर तक के जितने भी क्षेत्र है सभी तेरापंथी समाज की आम्नाय के स्थल हैं। स्थानकवासी इन ग्रामों में नगण्य हैं तथापि – यहाँ के निवासियों में साम्प्रदायिक सद्भाव विद्यमान है। अंततः सभी सन्त मण्डली का पदार्पण बीकानेर में हो ही गया।

सुन्दर अवसर : बेर-बेर नहीं आवे :

युवामुनि जी को बीकानेर में बड़े-वड़े महापुरुषों के दर्शनों का सौभाग्य मिला। होली चातुर्मास एवं केशलुञ्चन यहीं हुआ। मुनि श्री सुशीलकुमार जी म. के प्रथम दर्शनों का सौभाग्य भी मुनिश्री को यहीं मिला। मुनिश्री सुशीलकुमारजी म. को सुनने का एवं उनसे विचार-विमर्श करने का तथा उनकी सर्वधर्म समभाव-व्याख्यान शैली से परिचित होने का यह सुन्दर अवसर था।

प्रेरणा-पथ के सहारे :

बीकानेर से भीनासर पहुँचे। यहाँ युवामुनि श्री सुमनकुमार जी म. को भी प्रवचन करने का सुनहरा अवसर मिला। इतनी विशाल जनमेदिनी एवं बड़े-बड़े संत महारथियों के मध्य वक्तव्य देने का उनका यह प्रथम अवसर था। बलवती प्रेरणा थी – मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म.सा. की।

समय की मांग : लाउडस्पीकर :

भीनासर में ही पंजाब निवासियों की ओर से ध्वनिवर्द्धक यंत्र के प्रयोग करने हेतु एक जुलूस निकला। आंदोलनकारियों का नारा था- "समय की मांग, लाउडस्पीकर".... । एक बार व्याख्यान मंडप में भी इसी मांग को लेकर पक्ष - विपक्ष के मध्य टकराव हुआ। संत-समाज भी इससे अछूता नहीं रहा। अन्ततोगत्वा इस वातावरण को शान्त करने के लिए मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म. आदि दिग्गज सन्त पधारे तब कहीं जनता शांत हुई।

जन्मस्थली इन्तजार करती रही

युवामुनि श्री सुमनकुमार जी म. के पारिवारिक जन भी बीकानेर पहुँचे तथा पांचू ग्राम फरसने के लिए अत्याग्रह किया किंतु सम्मेलन होने के कारण उधर जाना नहीं हुआ।

बीकानेर सम्मेलन :

सम्मेलन की समस्त कार्यवाही युवामुनि ने भी देखी और अपने अनुभव खजाने में अभिवृद्धि की। यहीं पर आप श्री ने सर्वप्रथम बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. आदि ठाणा के दर्शनों का सुअवसर पाया। सम्मेलन की कार्यवाही से जैन धर्म और साध्वाचार के विषय में सोचने के लिए मुनिश्री को नयी सामग्री प्राप्त हुई।

पधारों नी जोधाणे देस :

पं.रत्न प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्र जी म. के आगामी वर्षावास हेतु जोधपुर श्री संघ ने अत्यधिक आग्रह भरी विनति प्रस्तुत की। फलतः गुरुदेव श्री ने सन् १९५६ के वर्षावास की स्वीकृति जोधपुर संघ को प्रदान कर दी। बीकानेर से प्रस्थानकर उदयरामसर, देशनोक, खजवाना, मुण्डवा, कुचेरा, गोगोलाव आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए नागौर पधारे। कुचेरा में स्वामी श्री हजारीमलजी म. स्वामी श्री बृजलालजी म. एवं पंडितरत्न (युवाचार्य) श्री मिश्रीमलजी म. (मधुकर) के दर्शनों का आपश्री ने लाभ लिया। यहीं पर उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म. श्री अखिलेश मुनिजी म. आदि ठाणा विराजमान थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरधारी बन गया सुमन, नूतन पथ है अपनाया।
त्रिरत्न-पंच महाव्रत धारा, करने सार्थक काया।।

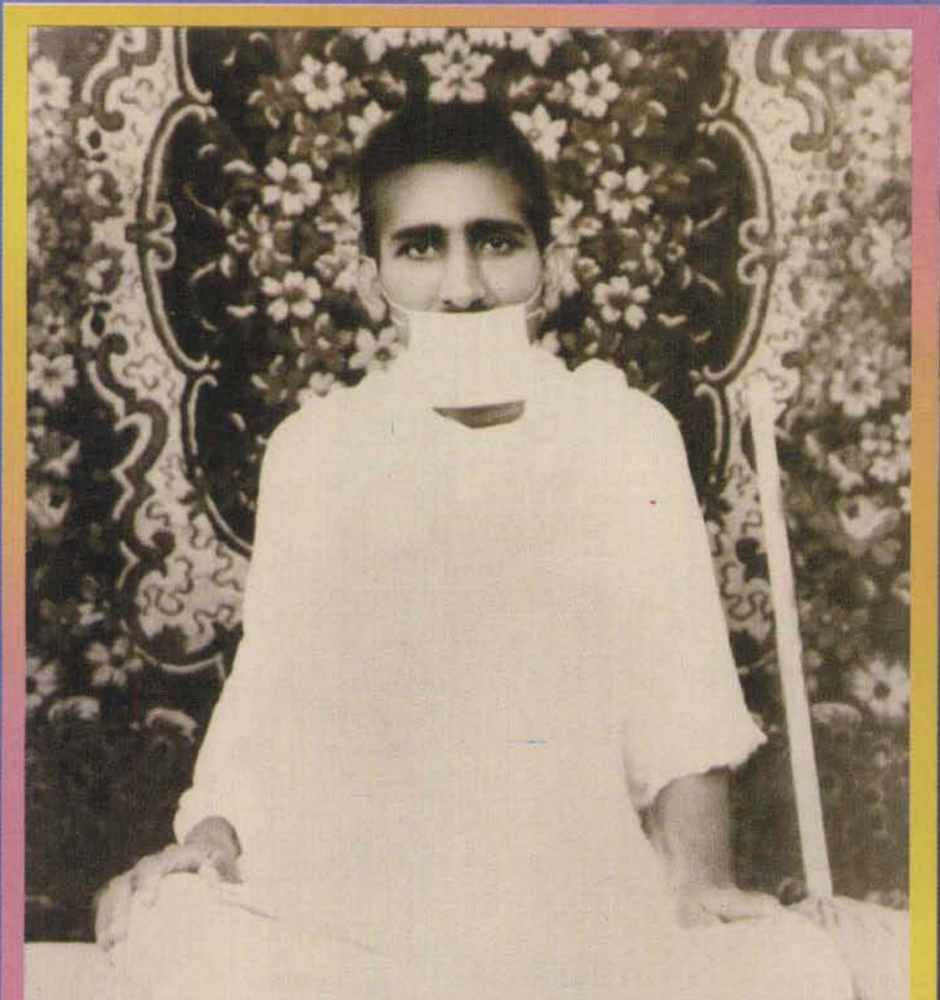

दिनांक: १५-५-१९६२ को संगरूर में लिया गया
गुरुदेव श्री की युवावस्था का एक दुर्लभ चित्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतीत के चलचित्र

युवा श्री सुमनमुनि जी म.

मुनि श्री द्वारा सार्वजनिक प्रवचन

श्री महावीर जैन पुस्तकालय के उद्घाटन-प्रसंग पर

आचार्य प्रवर के संगरूर पदार्पण पर लिया गया चित्र

योगीराज श्री रामजीलालजी म. के साथ मुनि श्री

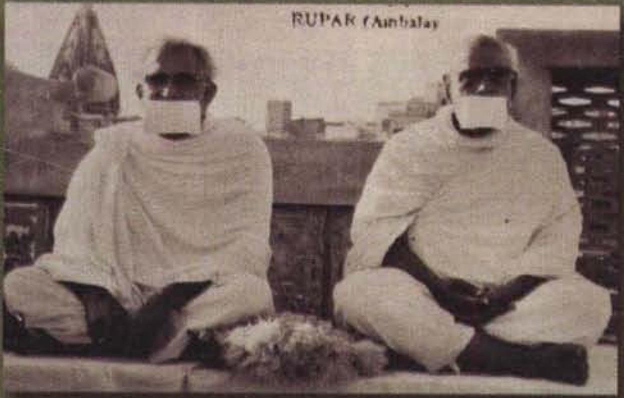

मुनि श्री के गुरुदेव अपने गुरुदेव के साथ

मुनि श्री अपने गुरुदेव के साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दि.६-१०-१९८६ को भटिण्डा में गुरुदेव की कृपा से
श्री भोजराज जैन सभा पब्लिक हाई स्कूल का शिलान्यास करती श्रीमति लाजवन्ती जैन

हैदराबाद चातुर्मास प्रवेश के प्रसंग पर श्री मेयर एवं उस्मानिया विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. चतुर्वेदी गुरुदेव का सम्मान करते हुए,

धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्रजी हेगडे के साथ पूज्य गुरुदेव श्री, बैंगलोर दि. २८-४-९८..

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री की जन्म-जयन्ति(१९९४) पर चंगलपेट के कलेक्टर को चित्र भेंट करते हुए अन्नानगर, चेन्नई के सदस्यगण

आत्म-शुक्ल-जयन्ति १९९३ के प्रसंग पर इन्जिनियर डॉ. श्री उत्तमचंद गोठी को स्मृति-चिन्ह प्रदान करते हुए संघमंत्री श्री भीकमचंदजी गादिया.

गुरुदेव के भटिण्डा चातुर्मास में आचार्य श्री अमरसिंहजी म. का दुर्लभ चित्र
श्री अमर जैन होस्टल, चंडीगढ़ को समर्पित करते हुए श्री टी. आर. जैन.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूना श्रमण सम्मेलन (१९८७) में आचार्य सम्राट् एवं वरिष्ठ मुनिवृन्द के साथ शांतिरक्षक गुरुदेव श्री.

प्रवर्तक श्री रमेशमुनिजी म. के साथ पूज्य गुरुदेव श्री.

युवाचार्य श्री के साथ सलाहकार मंत्रीजी म.

बैंगलोर में दि. २५-४-१९९८ अक्षय तृतीया के प्रसंग पर गुरुदेव श्री मंगलाचरण करते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्कालीन युवाचार्य
(वर्तमान आचार्य)
डॉ. श्री शिवमुनिजी म.
एवं साधुवन्द के साथ
गुरुदेव श्री विराजित.

बैंगलोर में
महावीर-जयन्ति
दि.२८-३-१९९१ को
आचार्य श्री
भुवनभानुसूरीश्वर जी म.
एवं आचार्य श्री
राजयशसूरीश्वरजी म.
के साथ
श्रद्धेय गुरुदेव.

तत्कालीन युवाचार्य
(वर्तमान आचार्य)
डॉ. श्री शिवमुनिजी म.
तपस्वी श्री सुमतिप्रकाश,
जी म.एवं साधुवृन्द
के साथ गुरुदेव
श्री विराजित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकमान्य संत प्रवर्तक श्री रूपचंदजी म. 'रजत'
से विचार-मंत्रणा करते हुए श्रद्धेय गुरुदेव श्री.

आचार्य श्री राजयशसूरीश्वरजी म. से
वार्तालाप करते श्री गुरुदेव.

आचार्य श्री स्थूलभद्र सूरीश्वरजी म. से
विचार-विनिमय करते हुए गुरुदेव श्री.

श्री भंवरलालजी सांखला, मेट्टुपालयम
गुरुदेव श्री से दिशा-निर्देश प्राप्त करते हुए.

श्री भंवरलालजी बेताला, साहूकारपेठ, चेन्नई
गुरुदेव श्री से सामाजिक-चर्चा करते हुए.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहीं आते, कहीं जाते
कहीं कर रहे विहार ।
तन थका तो क्या हुआ
आत्मबल है अपार ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावन सन्निधि : परम श्रद्धेय गुरुदेव की

'शुक्ल' जयन्ति (मिट्टुपालयम) के प्रसंग पर उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं का विहंगम दृश्य.

गुरुदेव श्री के माम्बलम वर्षावास-१९९३ की सुखद स्मृतियाँ

माम्बलम संघ के मंत्री
श्री भीकमचन्दजी गादिया
द्वारा अभिभाषण.

माम्बलम संघ के मंत्री
श्री भीकमचन्द गादिया
गुरुदेव से परामर्श करते हुए

अभिभाषण करते हुए
डॉ. इन्दरराजजी बैद
चेन्नई आकाशवाणी निदेशक.

माम्बलम संघ के पदाधिकारी गण एवं सदस्य.

नवनिर्मित माम्बलम स्थानक का
उद्घाटन करते हुए श्री एस.श्रीपालजी जैन.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ सार्वजनिक प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम हुए। जैन स्थानक के पीछे सेठ मोहन मल जी चौरड़िया के नोहरे में नीम के वृक्ष के नीचे सामूहिकरूप से कल्याणमन्दिर स्तोत्र का सस्वर पाठ तथा श्रावकों द्वारा तत्त्व चर्चा का कार्यक्रम होता था, वह दृश्य आज भी चलचित्र की भाँति मुनि श्री को दृष्टिगत होता है।

नागौर में उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी म. आदि ठाणा एवं स्वामी श्री रावतमलजी म. के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुए। नागौर से हरसोलाव, भोपालगढ़ एवं इन क्षेत्रों के मध्यवर्ती ग्रामों में विचरण करते हुए चातुर्मासार्थ सिंहपोल जोधपुर में पधारे। सिंहपोल में ही स्वामी श्री कस्तूरचंदजी म. एवं श्री उमेशमुनि जी म. भी थे। गुरुदेव श्री ने इस वर्षावास में आचारांग सूत्र का सांगोपांग पारायण करवाया एवं रविवार तथा पर्व-दिवसों में धर्म-व्याख्यान भी प्रदान करते रहे। चातुर्मास में तप-त्याग एवं धर्मध्यान का जमघट लगा रहा।

विहार-यात्रा :

जोधपुर वर्षावास को सानन्द सम्पन्न कर पंजाब प्रवर्तक श्री जी म. सुशिष्यों-प्रशिष्यों सहित विहार करते हुए पुष्कर पधारे तत्पश्चात् अजमेर होते हुए किशनगढ़ - मदनगंज पधारे। मदनगंज में स्वामी श्री फतेहलालजी म. और उपाध्याय श्री कन्हैयालालजी म. 'कमल', श्री मिश्रीलालजी म. आदि सन्त रत्न विराजमान थे।

आकांक्षा पूर्ण हुई

श्री फतेहचन्द जी म. चलने-फिरने/विहार कर सकने में असमर्थ थे किंतु उन्हें हरमाड़ा पधारना था। पंजाब प्रवर्तक श्री से अपनी आकांक्षा प्रकट की तो उन्होंने अपने आज्ञानुवर्ती संतों को तत्काल आज्ञा दे दी और डोली में बिठाकर उन्हें हरमाड़ा पहुँचाया तदनंतर वे हरमाड़ा में ही स्थिरवास रहे। मदनगंज से हरमाड़े तक का मार्ग उस समय कच्चा एवं पथरीला थी। मार्ग में भयंकर वर्षा के कारण पानी आदि जमा हो जाता था। आज तो वहाँ पक्की सड़क निर्मित है। ऐसे पथरीले एवं उबड़-खाबड़ मार्ग से डोली द्वारा स्थविर मुनिवर को हरमाड़ा तक ले जाने का कार्य श्रम साध्य था।

चार दशक बाद जन्मभूमि में :

वहाँ से विहार कर रेलवे लाईन के मार्ग से नारनौल, इटेली, मण्डी होते हुए रेवाड़ी को पावन करते दड़ौली फतेहपुरी प्रवर्तक श्री जी म. सा पधारे। यह गाँव पंजाब प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी म. सा. की जन्मस्थली है। दीक्षा के ४० वर्षोपरान्त यहाँ पदार्पण हुआ। ग्रामवासियों ने भटिण्डा चातुर्मास में खोज निकाली उसी का यह परिणाम था कि १९५६ के वर्षावास के पश्चात् यहाँ पधारे।

दड़ोली फतेहपुरी में प्रवर्तक श्री जी म. के प्रवचन सुनने ग्राम के लोग उमड़ पड़े। प्रवर्तक श्री जी ने उन्हें व्यसन-मुक्त जीवन जीने की प्रबल प्रेरणा दी तथा ग्रामीणों को मदिरा-पान का त्याग कराया। गुरुदेव प्रवर्तक श्री जी म. का जो जन्म स्थान था उसे स्थानक एवं धर्मशाला का रूप प्रदान किया। ब्राह्मण एवं अहीर (यादव परिवार) महामंत्र नमस्कार सूत्र का स्मरण एवं सामायिक व्रत करने लगे। पंडित श्री खेमचंदजी एवं पं. श्री चंद जी, जिन्होंने कालान्तर में अपने दादा की सेवा करने के लिए साधुवृत्ति धारण कर ली।

घुमक्कड़ प्रवृत्ति के संतः

अपनी जन्मस्थली से विहार कर प्रवर्तक श्री जी म. पटोदी, गढ़ी होते हुए गुडगाँव पधारे। यहाँ श्रमणसंघीय वयोवृद्ध संत प्रचार मंत्री श्री फूलचन्दजी म. (पुप्प भिक्खु) और मुनि श्री सुमित्रदेव (सुमित भिक्खु) विराजमान थे। ये संत घुमक्कड़ प्रवृत्ति के धर्म प्रसारक थे। प्राकृत भाषा के अधिकारिकी विद्वान थे। कश्मीर से कन्याकुमारी तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की यात्रा करने वाले ये एक मात्र प्रथम सन्त थे जब कि उन दिनों इतने साधन भी नहीं थे।

मुनिश्रेष्ठ श्री फूलचन्दजी म. 'पुप्फभिक्खु' ने सुत्तागमे भाग-प्रथम एवं द्वितीय सम्पादित किए। अत्थागमे का भी प्रकाशन करवाया। परदेशी की प्यारी बातें भाग-१-२ एवं वीरत्थुई आदि कई कृतियों के लेखक एवं सम्पादक थे।

कांधला-वर्षावास :

यहाँ दिल्ली के विविध बाजारों के संघ आगामी चातुर्मास हेतु अपनी-अपनी विनतियाँ लेकर उपस्थित हुए।... गुडगाँव से महरोली पधारे। वहाँ से चिराग दिल्ली, नई दिल्ली, सदरबाजार आदि क्षेत्रों में धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुए कांधला (उ.प्र.) के संघ की अत्याग्रह युक्त विनति को ध्यान में रखते हुए आगमी चातुर्मास करने की स्वीकृति संघ को प्रदान की।

बड़ौत में भी चातुर्मास :

बड़ौत संघ की भी विनति आग्रह से युक्त थी अतः वहाँ संतद्वय - मुनि श्री सुमनकुमार जी म. एवं श्री नवरतनमुनि जी म. के चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की। युवामुनि श्री सुमनकुमारजी म.सा. का यह प्रथम स्वतंत्र चातुर्मास था।

सन् १६५७ में चातुर्मास पूर्व दिल्ली से एक सन्त श्री रामजीवनजी म. को लेकर मध्यवर्ती क्षेत्रों में विचरण करते हुए बड़ौत में आचार्य श्री कांशीरामजी म. की पुण्य-तिथि मनाने हेतु गए। वहाँ से पुनः दिल्ली की ओर पधारे। दिल्ली चाँदनी चौक में गुरुदेव प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी म., उपाध्याय श्री प्रेमचंदजी म., श्री जग्गुलाल जी म. श्री सुदर्शन मुनि जी म. आदि विराजमान थे।

रंग में भंग :

बड़ौत-चातुर्मास धर्मध्यानादि से युक्त रहा। बड़ौत की एक दुःखद स्मृति भी है। मुनि श्री सुमनकुमार जी म. को मंत्र-स्मरण साधना की वेला में यकायक उदर पीड़ा उत्पन्न हो गई। चिकित्सा करवाने पर भी शान्त नहीं हुई फलतः वहाँ के श्री संघ ने कांधला से गुरुदेव पंडित रत्न श्री महेन्द्रकुमार जी म. को बुलवाया। यह उदरपीड़ा ८ वर्ष तक रही।

हुए संघ में सम्मिलित :

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् प्रवर्त्तक श्री जी म. कांधला पधार गए। भंडारी श्री पदममुनि जी म. श्री अमरमुनि जी म. बड़ौत आ गए। भंडारी जी म. को श्रमण संघ में सम्मिलित करवाने के लिए श्री सुमनकुमारजी म. ने प्रवर्त्तक श्री जी म. से पुरजोर आग्रह किया क्यों कि उन दिनों प्रान्त मंत्रियों को यह अधिकार मिला हुआ था कि वे किसी भी संत को संघ में सम्मिलित कर सकते हैं।... परिणाम स्वरूप यहाँ भंडारी जी म. आदि ठाणा को श्रमणसंघ में सम्मिलित कर दिया गया। बड़ौत से विहार करके टटीरी मण्डी, बागपत, खेकड़ा पधारे।

खेकड़ा से लूनी शाहदरा होते हुए चाँदनी चौक पधारे। वहाँ से सदर बाजार जैन स्थानक पधारे जहाँ स्थविर श्री भागमल जी म. पं. श्री तिलोकचंदजी म. ठाणा ४ से विराजमान थे।

विश्वधर्म सम्मेलन :-

यहीं मुनि श्री सुशीलकुमार जी म. विश्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करने जा रहे थे। कांधला (१६५७) के चातुर्मास में ही प्रवर्तक श्री जी म. को जैन कान्फ्रेन्स के पदाधिकारी गण एवं दिल्ली के वरिष्ठ श्रावकगण विश्व धर्म सम्मेलन में पधारने के लिए विनति कर चुके थे। गुरुदेव प्रवर्तक श्री जी म. साधु-साध्वियों के साथ विश्व धर्म में सम्मिलित होने की स्वीकृति दे ही चुके थे। तथापि कतिपय वरिष्ठ सन्तों एवं श्रावकों का यह आग्रह रहा कि गुरुदेव श्री इसमें सम्मिलित न हों।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्ततः प्रवर्त्तक श्री जी म. जैन धर्म प्रभावना के लिए विश्व धर्म सम्मेलन में सम्मिलित हुए। जैन कान्फ्रेन्स भवन, राष्ट्रपति भवन, रामलीला ग्राउण्ड, लाल किले के सभी आयोजन आशातीत सफल रहे। प्रवर्त्तक श्री जी म. के साथ श्री सुमनमुनि जी म. भी इन सभी गतिविधियों से निरन्तर जुड़े रहे। धार्मिक प्रचार-प्रसार की कार्यशैली का उन्हें व्यापक अनुभव प्राप्त हुआ।

जहाँ नेह हो, वहाँ.....

पूज्य प्रवर्त्तक श्री जी म. दिल्ली से विहार करके मध्य क्षेत्रों में विचरण करते हुए मेरठ पधारे जहाँ पर तपस्वी श्री निहाल चन्दजी म. स्थानापति थे। उनकी आँखों में मोतिया बिन्दु उभर आया था अतः प्रवर्त्तक श्री जी म. को सूचना भिजवाई कि आपके यहाँ आने पर ही ऑपरेशन करवाऊंगा क्योंकि तपस्वी जी म. और प्रवर्त्तक श्री का आपस में अत्यधिक स्नेह था। मेरठ पदार्पण के पश्चात् तपस्वीजी म. की आँखों का ऑपरेशन हुआ।

लेखन कार्य :

प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री मेरठ में स्वयं ज्वर-पीड़ित हो गए। स्वस्थ होने में दो माह का समय व्यतीत हुआ। वहां से विहार कर उत्तरप्रदेश के विविध क्षेत्रों को पावन करते हुए १९५८ का चातुर्मास मेरठ में ही सम्पन्न किया। पं. रत्न श्री महेन्द्रकुमार जी म., एवं श्री सुमनमुनिजी का १९५८ का चातुर्मास चरखी दादरी हुआ। यहाँ पर युवा मुनि श्री की प्रेरणा से **भगवान महावीर जैन पब्लिक लाईब्रेरी** की स्थापना हुई। वर्षावास पूर्णतः सफल रहा। लाईब्रेरी हेतु एक कक्ष का निर्माण भी ट्रस्ट द्वारा किया गया। इसी वर्षावास में **"श्रमण आवश्यक सूत्र"** का सम्पादन - प्रकाशन किया जो मूलपाठ, हिन्दी-अतिचार, टिप्पणी आदि सामग्री से युक्त था।

ज्ञान के दीप जले

चातुर्मास के पश्चात् यहाँ से विहार कर मानहेड़ु होते हुए भिवानी शहर पहुँचे। यह सेठों की भियाणी कहलाती थी। यहाँ तेरापंथ जैन समाज के घर अधिक हैं। स्थानकवासी घर भी हैं। यहाँ कन्या पाठशाला के लिए युवामुनि जी ने प्रेरणा दी और महावीर-जयन्ति की पावन वेला में **भगवान महावीर जैन कन्या पाठशाला** का उद्‌घाटन **श्री रामशरणदास जैन बंसल** के करकमलों द्वारा हुआ। सर्वप्रथम शिक्षिका थी – **श्री सुमित्रा बाई जैन** (पंजाबी)। बालिकाओं की बढ़ोतरी होने पर श्री बीना (अग्रवाल) सहयोगी बनी। तीन साल तक यह पाठशाला प्राईमरी के रूप में चलती रही तदनन्तर मिडिल स्कूल में परिवर्तित होती हुई हाई स्कूल में परिणित हो गई। आज स्कूल का निजिभवन है।

जैन ही नहीं जैनेतर भी आगे :

यहाँ से विहार करके बबानीखेड़ा होते हुए हाँसी पधारे। यहाँ पं. रत्न पूज्य गुरुदेव श्री महेन्द्रमुनि जी म. की दीक्षा सम्पन्न हुई थी। यहाँ भी एस.एस. जैन हाई स्कूल एवं जैन स्थानक हैं। हाँसी से सीसाय, सराणा खेड़ी (जालब खेड़ी) आये। यहाँ कतिपय दिवसों की स्थिरता रही। ग्राम के जैन जैनेत्तरों ने श्रद्धाभक्ति के साथ व्याख्यान - श्रवण सेवा आदि का लाभ लिया। यहाँ जैन स्थानक का अभाव था अतः ग्रामवासियों को स्थानक की भी प्रेरणा दी। यहाँ के दो परिवारों की (लाला शीशराम की दो पुत्रियाँ अनिल और स्नेह प्रभा एवं लाला भगतराम की दो पुत्रियाँ सरिता और अजय है।) चार युवतियों ने जैन भागवती दीक्षा भी ग्रहण की है। आज सरिता उपप्रर्वतिनी डॉ. सरिता जी म. के नाम से सुविख्यात हैं एवं धर्म के व्यापक प्रचार-प्रसार में अग्रणी हैं।

सुनाम में किया सुनाम :

सराणाखेड़ी से बुड्डा खेड़ा, उकलाना, बिठमड़ा, टोहाना, जाखल, लहरा गागां, सुनाम पधारे। यहाँ से सात माईल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की दूरी पर संगरूर (जिला) आए। यहाँ बाजार में दुकानों पर रहे कमरों में स्थानक था, फलतः मुनिश्री ने उसके जीर्णोधार की प्रेरणा दी और विशाल हॉल का निर्माण हुआ। १६५६ का चातुर्मास संघ की आग्रह भरी विनति को दृष्टिगत रखते हुए सुनाम के लिए घोषित हुआ।

निवेदन मानकर.....

१६५६ के वर्षावास में लाला रलाराम जी जैन, भागचन्दजी, लाला ताराचंदजी, हकीम मिलखी राम जी आदि श्रावकों के आग्रहभरे निवेदन को स्वीकार कर मुनि श्री सुमनकुमारजी म. ने सर्वप्रथम शास्त्र श्रवण कराया। आप श्री ने ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र का वाचन किया। इसी वर्षावास से आपश्री की शास्त्रवाचन की रूचि विकसित हुई।

शास्त्र वाचन

सुनाम से विहार करके पुनः संगरूर धुरी, मालेर कोटला, रायकोट, लुधियाना, फगवाड़ा, जालंधर, कपूरथला, सुलतानपुर लोदी, शाहकोट, नकोदर, जालंधर एवं इनके मध्यवर्ती क्षेत्रों में धर्म की जहोजलाली करते हुए १६६० का वर्षावास कपूरथला में किया। चातुर्मास पूर्व मार्च मास में सुलतानपुर लोधी में मैट्रिक अंग्रेजी की परीक्षा पंजाब बोर्ड से उत्तीर्ण की एवं साथ ही 'हिन्दी भूषण' पंजाब विश्वविद्यालय से परीक्षा पास की।

यहाँ पर संघाध्यक्ष थे – श्री पृथ्वीराजजी जैन 'वकील'। उन्होंने उत्तराध्ययन सूत्र श्रवण की इच्छा व्यक्त की। फलतः चातुर्मास में उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन हुआ।

अंग्रेजी भाषा भी जरूरी है

चातुर्मास की समाप्ति के बाद कपूरथला, जालन्धर, फगवाड़ा, बंगा, नवां शहर, बलाचौर, रोपड़, कुराली, खरड़, डेरावसी होते हुए अम्बाला शहर पधारे। यहाँ प्रवर्तक श्री जी म. विराजमान थे। उनकी सेवा में रत रहते हुए तत्त्व-चिंतामणि के प्रथम भाग का लेखन-सम्पादन मुनि श्री जी ने किया।

होशियारपुर, बलाचौर, नवां शहर आदि क्षेत्रों की चातुर्मासार्थ पुरजोर विनतियाँ थी। सभी सन्त-प्रवरों का सन् १६६१ का चातुर्मास नवांशहर के लिए घोषित हुआ।

१६६१ के वर्षावास में मुनि श्री सुमनकुमार जी म. ने इंगलिश में B.A. ऑनर्स का कोर्स किया। शिवानी स्कूल के प्राध्यापक ने अध्ययन करवाया।

धर्म के प्रभाव से

इस वर्षावास के पश्चात् बलाचौर पधारे। वहाँ 'अष्टग्रही' का बड़ा शोर-शराबा था। गुरुदेव श्री ने धर्मध्यान की प्रबल प्रेरणा दी और कहा - "धर्म के प्रभाव से सारे ग्रह निष्फल हो जाते हैं / निष्प्रभावी बन जाते है अतः दत्तचित्त होकर धर्मध्यान करो।"

यहीं पर दुःखद समाचार प्राप्त हुआ कि आचार्य श्री आत्माराम जी म. अस्वस्थ हैं। गुरुदेव श्री तत्काल विहार करके नवांशहर होते हुए फिलौर से लुधियाना पहुँचे। लगभग अर्द्धमास वहाँ स्थिरता रही। श्री रघुवरदयाल जी महा., शेरेपंजाब स्वामी श्री प्रेमचंदजी म., श्री जगदीशमुनि जी म., श्री विमलमुनि जी म. आदि सन्त-प्रमुख एवं प्रमुख साध्वियों के सिंघाडें वहाँ आचार्यदेव के श्री चरणों में सेवार्थ उपस्थित हुए। संत-सतियों की संख्या लगभग १५० रही होगी। व्या.वाच. स्वामी श्री मदनलाल जी म. भी शिष्य-सम्पदा सहित पधारे थे।

हृदय विदारक दृश्यः

उस समय का दृश्य बड़ा ही हृदय विदारक एवं मन भरने वाला था जब आचार्य श्री ने अपनी झोली फैलाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी श्री मदनलालजी म. को पूर्व घटित घटनाओं को अपनी झोली में डाल देने की बात कही किंतु स्वामी जी म. ने इतना ही कहा – "पूज्य जी महाराज ! आप भी मजबूर हैं और मैं भी मजबूर हूँ... समय हाथ से निकल गया...।"

आचार्य देव ने उनसे क्षमायाचना की और संघ में सम्मिलित होने का आग्रह किया.. किंतु आचार्य श्री को निराशा ही हाथ लगी। ३० जनवरी १६६२ को आचार्य श्री का रात्रि में २ बजे संथारा के साथ समाधिमरण हो गया।

धन्य हैं, पुनीत आत्माओं को

सन् १६५२ जोधपुर-संथारा (श्रुताचार्य श्री चौथमलजी म.सा. का) के बाद यह द्वितीय अवसर था। दोनों महापुरुषों का मृत्यु-महोत्सव सन्निकटता से मुनि श्री सुमनकुमारजी म. ने देखा। एक महापुरुष का दस वर्ष पूर्व, द्वितीय महापुरुष का भी ठीक दस वर्ष पश्चात्। दोनों महापुरुषों में अपार आत्मिक शान्ति विद्यमान थी तथा रोग ग्रस्त होते हुए भी परम समाधि भाव में तल्लीन थे। धन्य है, ऐसी पुनीत आत्माओं को, जो मृत्यु से भयभीत न होकर स्वतः ही मृत्यु का आलिङ्गन करते हैं।

१६६२ का चातुर्मास-सम्पन्न

लुधियाना से प्रस्थान करके गुर्जरवाल, रायकोट, जगरांव, मोगा, जीरा, सुल्तानपुर, लोइयाँ, शाहकोट, नकोदर, जालंधर, लुधियाना, अहमदगढ़ मंडी, धुरी होते हुए संगरूर में चातुर्मास किया - सन् १६६२ का। प्रवर्तक श्री जी म. ने १६६२ का वर्षावास अम्बाला शहर में व्यतीत किया।

लेखनी चल पड़ी तो-

संगरूर चातुर्मास सुसम्पन्न करके सुनाम एवं भीखी पधारे। श्री सुमनकुमार जी म. से प्रेरणा प्राप्त कर वहाँ के धर्म-प्रेमियों ने वसन्त पञ्चमी के दिन स्थानक का शिलान्यास किया। भीखी से नाभा, पटियाला, राजपुरा होते हुए आप श्री अम्बाला आये। यहाँ पर **तत्त्व चिन्तामणि भाग-२** लेखन एवं सम्पादन किया तदनन्तर प्रकाशित हुआ।

यहाँ से विहार कर राजपुरा, सरहन्द, बसी, गोबिन्दगढ़ मण्डी, खन्ना, लुधियाना होते हुए जालन्धर पधारे। यहाँ **तत्त्व चिंतामणि भाग-३** का प्रकाशन हुआ। रायकोट हेतु चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान कर देने पर आप भीखी, मानसा, बुड्लाढ़ा, बरनाला होते हुए रायकोट पधारे। १६६३ का चातुर्मास रायकोट में सम्पन्न हुआ। इस चातुर्मास में हस्तलिखित **"श्रावक सज्झाय"** की एक पत्रावलि के आधार पर मुनि श्री सुमनकुमार जी म. ने **'श्रावक कर्त्तव्य'** पुस्तक का आलेखन किया।

रायकोट चातुर्मास के बाद बरनाला, बुढ़लाढा, रतिया, भिवानी, हांसी-हिसार होते हुए नारनौल पहुँचे। नारनौल से निजामपुर रेल्वे लाईन से विहार करते हुए फूलेरा, रिंगस, हरमाड़ा, मदनगंज होते हुए अजमेर पहुँचे।

अजमेर शिखर सम्मेलन

सन् १६६४ में अजमेर में श्रमणसंघीय शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ। पंजाब श्रमण-संघ की ओर से प्रतिनिधित्व श्री प्रवर्तक जी म. को सौंपा गया किन्तु प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द जी म. अस्वस्थ होने के कारण अम्बाला शहर से शीघ्रातिशीघ्र नहीं आ सकते थे। अतः आप श्री को अपना प्रतिनिधित्व सौंपते हुए शीघ्रातिशीघ्र विहार करके अजमेर पहुँचने का निर्देश दिया था। मुनि श्री सुमन कुमार जी म. अब प्रतिनिधि तो थे ही साथ ही साथ मुनि श्री सुशीलकुमारजी म. एवं कवि श्री चन्दनमुनि जी म. की प्रौक्सी भी आपको प्रदान कर दी गई।

दी चुनौति, मिली स्वीकृति

सम्मेलन प्रारंभ होते ही कतिपय मूर्धन्य सन्तों ने प्रतिनिधित्व करने से मुनि श्री सुमनकुमार जी म. को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोकना चाहा। उन सन्तों की यह दलील थी कि आपके गुरुदेव आने वाले हैं इसलिए आपके प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु श्री सुमनमुनिजी ने अपने अधिकार के लिए चुनौति दी और लिखित पत्र प्रस्तुत किया तत्पश्चात् स्वीकृति प्राप्त हुई।

सभी की ओर से प्रतिनिधित्व

५ बैठकों के पश्चात् मन्द गति से विहार करते हुए गुरुदेव श्री पधारे तो फिर से प्रतिनिधित्व का संकट उपस्थित हुआ। उस समय पूरे सम्मेलन के लिए प्रतिनिधित्व का अधिकार पत्र प्रस्तुत किया साथ ही साथ कविरत्न श्री अमरमुनिजी महा. ने भी अपने गुरुदेव मंत्री श्री पृथ्वीचन्द्रजी म. का भी प्रतिनिधित्व मुनि श्री सुमनकुमारजी म. को सौंप दिया। इस प्रकार अजमेर शिखर सम्मेलन में आप श्री ने कुशलता के साथ प्रतिनिधित्व किया।

जयपुर-वर्षावास सुनिश्चित

आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म. उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म., प्रवर्तक पं. रत्न श्री शुक्लचंदजी म. का आगामी वर्षावास जयपुर होना सुनिश्चित हुआ।

अजमेर से मदनगंज पदार्पण हुआ गुरुदेवों का। अजमेर शिखर सम्मेलन में भाग लेने वाले कई मूर्धन्य सन्त-पुरुष यहाँ आये। यथा – उपर्युक्त तीनों महापुरुष एवं स्वामी श्री प्रेमचंदजी म., श्री फूलचन्द्रजी म., श्री कन्हैया लाल जी म., श्री नाथूलालजी म. (बडे - दिवाकरीय) आदि-आदि। मदनगंज कतिपय दिनों के लिए धर्मनगरी के रूप में परिणित हो गई।

आणाए धम्मो

किशनगढ़ संघ ने भी क्षेत्र स्पर्शन की विनति की तो क्षेत्र स्पर्शने एवं व्याख्यान-श्रवण कराने हेतु श्री सुमनमुनि जी म. को वहाँ जाने की आज्ञा दी। वहाँ रात्रि में सार्वजनिक प्रवचन का कार्यक्रम बना। श्री सुमनमुनि जी म. प्रतिदिन सायं आहारादि करके किशनगढ़ पधारते एवं रात्रिव्याख्यान एवं प्रातःकालीन प्रार्थना करवाकर पुनः मदनगंज पधार जाते।

व्यतीत हुआ वर्षावास

मदनगंज से सभी दिग्गज संत विहार करके यथासमय चातुर्मासार्थ आदर्शनगर-जयपुर पधारे। आदर्शनगर से लालभवन (चौड़ा रास्ता) पधारे।

आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म. अस्वस्थ होने के कारण कुछ समय तक अस्पताल में ही रहे। प्रवर्त्तक श्री जी म. ने भी स्वास्थ्य की अनुकूलता को दृष्टिगत रखते हुए आदर्श नगर में ही वर्षावास व्यतीत किया। इसी वर्षावास में **श्रावक कर्तव्य** एवं **देवाधिदेव रचना** का प्रकाशन हुआ। वर्षावास सानंद व्यतीत हुआ। धर्मध्यान भी अत्यधिक हुआ।

अधिकारों की रक्षा के लिए -

परम श्रद्धेय मुनि श्री सुमनकुमार जी म. आचार्य प्रवर की गरिमा एवं अधिकार की रक्षा के लिए सदैव दृढ़ता के साथ तत्पर रहते थे। प्रवर्त्तक श्री जी गुरुदेव एवं आचार्यश्री, श्री पूनमचंद जी बड़ेर के बंगले में विराजमान थे।

श्री सुमनमुनि जी म. लालभवन में प्रवचन देकर पुनः गुरुदेव श्री के चरणों में आ जाते। प्रतिदिन का यही कार्यक्रम था। एक दिन संघ के मंत्री महोदय दो-तीन सज्जनों को साथ लेकर आये और आचार्य-प्रवर श्री को कहने लगे कि "....अमुक संत का पत्र आया था कि हमें अजमेर चातुर्मास के लिए जाना है, आचार्य श्री जी यदि आज्ञा प्रदान करें तो हम जयपुर आकर उनके दर्शन लाभ लेते हुए चले जायें....।" तदनन्तर मंत्री जी बोले – "मैंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर दे दिया है कि आप सीधे अन्य मार्ग से चले जाएं या जयपुर बाई पास से निकल जाएं यहाँ आने की आचार्य देव की आज्ञा नहीं है।"

आचार्य श्री ने आया हुआ पत्र मांगा और कहा – "कुछ भी प्रत्युत्तर देने से पूर्व मुझसे विचार-विमर्श कर-लेना ही उचित था।"

इस पर अत्यन्त लापरवाही से मंत्री महोदय ने कहा- "मैं संघ का मंत्री हूँ, मुझे उत्तर देने का अधिकार है। हम ऐसे-वैसे सन्तों को यहाँ आने ही नहीं देना चाहते।"

आचार्य श्री एवं गुरुदेव श्री के पास ही खड़े थे - मुनि श्री सुमनकुमार जी म.। उन्होंने कहा – मंत्री जी, आचार्य श्री के नाम से आया पत्र रखने का एवं बिना विचार-विमर्श किये प्रत्युत्तर देने का आपको कोई अधिकार नहीं है। यह आचार्य देव को ही अधिकार है कि वे अपने आज्ञानुवर्ती संतों को क्या प्रत्युत्तर दें एवं क्या दिशा-निर्देश प्रदान करें। आपके मानस में उक्त संत के प्रति कोई विद्वेष-भाव था तो आप आचार्य श्री से निवेदन कर सकते थे।"

संघमंत्री जी अपनी बात पर अड़े रहे। परिणामतः संघ की कार्यकारिणी की सभा आयोजित हुई जिसमें यह निर्णय लिया गया कि आचार्य श्री जी को ही आज्ञानुवर्ती संतों के पत्र का प्रत्युत्तर एवं दिशा निर्देश देने का पूर्ण अधिकार है, मंत्री जी को नहीं। हाँ, संघ अधिकारी केवल निवेदन कर सकते है। अंततः मंत्री महोदय को संघ का यह निर्णय मानना ही पड़ा। वे सन्त जयपुर आये और दर्शन लाभ करके फिर अजमेर चातुर्मासार्थ पधारे।

जयपुर चातुर्मास प्रारम्भ हुआ तब वहाँ एक अन्य परम्परा के लिए भी मुनिश्री जी का संघर्ष रहा। घटना यूं थी कि यहाँ जयपुर में पूज्या साध्वी श्री केशरदेवी जी का भी चातुर्मास था, व्याख्यान के समय वे श्राविकाओं के साथ ही नीचे बैठती थीं। मुनिश्री को यह अच्छा नहीं लगा – हम साधु लोग ऊँचे पाट पर बैठे और साध्वियों के लिए छोटा पाट भी नहीं? वहाँ 'लाल भवन' में ठाकर साहब थे मुनिश्री ने उनसे कहकर छोटी चौकियां (जो थोड़ी नीची थी) रखवादी। व्याख्यान से पूर्व मंत्री आए और उन्होंने ठाकर सा. को कहकर उठवादी, मुनिश्री ने पूछा, उत्तर मिला साधुओं के सामने सतियां पाट पर नहीं बैठ सकती? मुनिश्री ने कहा – विनय भाव की दृष्टि से नहीं, अपितु सार्वजनिक व्याख्यानादि में बैठनी ही चाहिए। श्राविका और साध्वी का स्तर एक जैसा कैसे हो सकेगा? उत्तर में कहने लगे – हमारे यहाँ यह रिवाज नहीं है। मुनिश्री ने कहा रिवाज और बात है, व्यवहार और आगम दृष्टि अन्य बात है। सिद्धान्त को आंच नहीं आनी चाहिए। फलतः उनके लिए चौकी पर बैठने का प्रावधान चलता रहा।

अलवर चातुर्मास

जयपुर से ही आगामी वर्षावास हेतु अलवर वालों का अत्यधिक आग्रह रहा। अतः प्रवर्तक श्री जी म. आदि सन्तों ने अलवर दिशा की ओर विहार किया।

अलवर से नारनौल, रेवाड़ी, फतेहपुरी, गुड़गावां, महरोली, चिरागदिल्ली, लोदी कॉलोनी होते हुए नई दिल्ली पधारे। आचार्य श्री का भी दिल्ली में पदार्पण हुआ।

अलवर संघ ने निरंतर आगामी वर्षावास की विनति जारी रखी अंततः सन् १९६५ के वर्षावास की स्वीकृति अलवर संघ को देनी ही पड़ी। पूज्य प्रवर्तक श्री जी म. ने छोटे गुरुदेव के सह ठाणा ४ से अलवर की ओर प्रस्थान किया। दिल्ली से बहादुरगढ़, झज्झर, चरखी दादरी, महेन्द्रगढ़, नारनौल, आए। यहाँ छोटे स्थानक में ठहरना हुआ। बडे स्थानक के लिए योजना तैयार हुई। चातुर्मास सन्निकट होने तथा अलवर नगर दूर, साथ ही स्थानक में पाट के नीचे बायां पैर-अगुष्ठ दबने से तीव्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीड़ा/सूजन तथापि अपने लक्ष्य पर यथाकाल पहुँच गए। पदयात्रा अतीव कठिन भी दृढ़ संकल्प के कारण सरल हो गई। बहरोड़ होते हुए चातुर्मासार्थ अलवर पधारे।

वर्षावास प्रारंभ हुआ। धर्म रंग से रंजित हुए श्रावक-श्राविका गण ! अपार उत्साह एवं उमंग !

आकांक्षी तत्त्व ज्ञान के

इसी वर्षावास में अलवर स्थानक में स्थित हस्तलिखित भंडार का अवलोकन कर ऐतिहासिक सामग्री संकलित की, ग्रंथ-सूचि तैयार की तथा बृहदालोयणा एवं ज्ञान गुटका का मूलार्थ, टिप्पणी सहित संपादित करके प्रकाशन करवाया। मुनि श्री सुमन कुमारजी म. ने साहित्यिक कार्य के साथ तत्त्व ज्ञान भी प्राप्त किया। श्रावक लाला चाँदमलजी पालावत से आपने कर्मग्रन्थ भाग १-२-३ का पारायण किया। श्री पालावत तत्त्वों के मर्मज्ञ एवं ज्ञाता थे। इसी वर्षावास में **पूज्य काशीराम जैन ज्ञान भंडार** की स्थापना अलवर में की।

बहरोड़ पदार्पण

ई. सन् १९६५ का अलवर-वर्षावास सानंद सम्पन्न करके पण्डितरत्न गुरुदेव श्री महेन्द्रमुनि जी म.सा., मुनि श्री सुमनकुमार जी म.सा. एवं श्री संतोषमुनिजी म.सा. बहरोड़ (जो कि चन्द्रास्वामी जी का गाँव है) पधारे। यहाँ से नारनौल आए यहाँ लगभग मास कल्प स्थिरता रही। आपश्री ने अलवर चातुर्मास जाने से पूर्व जैन स्थानक के लिए जो भूखण्ड था, वह छोटा था, एक दुकान एवं एक अन्य भूखंड को उसमें सम्मिलित करवाया। इस प्रकार संघ के पास विशाल भूखण्ड तैयार हो गया, अब यहाँ स्थानक निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ।

आचार्य श्री पंजाब की धरा पर

यहीं पर सूचना प्राप्त हुई कि आचार्य श्री आनंद ऋषिजी म. का अम्बाला शहर में आगमन हो रहा है। अतः चरखी दादरी, भिवानी, हांसी, बरवाला, रतिया, कैथल, अम्बाला होते हुए अम्बाला छावनी पधारे।

मन में थी उत्सुकता/प्रतीक्षा एवं हृदय में था अपार हर्ष। क्यों कि युगपुरुष महामना आचार्य प्रवर श्री आनंद ऋषि जी म. अपनी शिष्य सम्पदा के साथ अम्बाला शहर को पावन करने वाले थे। आचार्य श्री का शिष्य मण्डली सहित निश्चितावधि में पदार्पण हुआ।

भव्य स्वागत

अम्बाला में आचार्य श्री का भव्य स्वागत हुआ। श्रमण संघ के नायक का, पंजाब की धरती पर आगमन से श्रद्धालुओं की हृद्तंत्रियाँ हर्षित हो उठी ! चारों ओर हर्ष का वातावरण था।

पंजाब प्रान्त की तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्रीमती ओम प्रभा जैन और विधान सभा उपाध्यक्षा श्रीमती लेखवती जैन तथा पंजाब, हरियाणा क्षेत्रों के गणमान्य व्यक्ति स्वागत समारोह में समुपस्थित हुए। यहाँ से महावीर जैन भवन में पधारे। यकायक राजनैतिक उथल-पुथल के कारण रंग में भंग पड़ गया !

उग्र आंदोलन

हरियाणा और पञ्जाब के विभाजन के आंदोलन ने उस समय अति उग्ररूप धारण कर लिया था, साथ ही साथ आंदोलन ने तोड़-फोड़ एवं हिंसक रूप भी ले लिया। जगह-जगह आगजनी, पथराव आदि दुर्घटनाएं घटित होने लगी, पुलिस चौकियाँ जगह-जगह स्थापित की जाने लगी ताकि जन-धन की सुरक्षा हो सके।

अंबालाशहर के महावीर जैन भवन के उपरी भाग में उस समय आचार्य श्री एवं अन्य वरिष्ठ मुनिगण अपने शिष्यों सहित विराजमान थे जिनकी संख्या ४० के लगभग होगी। उपर्युक्त सन्त त्रय भी वहीं विद्यमान थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाविद्यालयों के छात्र-छात्राएँ भी राजनीति में कूद पड़े। छात्रों के उग्ररूप को देखकर संवेदनशील स्थानों पर और पुलिस चौकियाँ स्थापित की गई। पुलिस दल ने महावीर जैन भवन में भी एक चौकी स्थापित कर दी, व्याख्यान हॉल के साथ बाहर बरामदे में पुलिस का जमघट लग गया।

कैसा भय..?

ऐसी स्थिति देखकर मुनि श्री सुमनकुमार जी म. ने संघ के अधिकारियों को कहा कि – आचार्य श्री ऊपर विराजमान हैं और पुलिसवाले नीचे डेरा डाले बैठे हैं, पुलिस को देखकर जनता, छात्र और उग्र हो सकते हैं अतः पुलिस-चौकी कहीं अन्यत्र स्थापित करवाई जायें।

पदाधिकारियों ने आपस में कुछ कानाफूसी की और 'हम असमर्थ हैं', कहकर भय के मारे एक-एक चलते बने! तब मुनि श्री ने स्वयं नीचे आकर पुलिस पदाधिकारी से कहा - "हमारे आचार्य श्री अपने मुनिराजों के साथ विराजमान हैं अतः आप लोगों का यहाँ ठहरना उचित नहीं है। ऐसे भी यह धर्म स्थान है और धर्मस्थान की पवित्रता आपके बूटों की पदचाप से भंग होती है तदुपरांत धर्मस्थान में निष्कारण पुलिस-प्रवेश भी अनधिकृत है, आप लोग अन्य स्थान ढूंढ लेवें।"

पुलिस – अधिकारी ने कहा – "हम तो नगर की सुविधा-सुरक्षा हेतु यहाँ सन्नद्ध है, आपको कोई खतरा नहीं होगा।"

मुनि श्री ने कहा - "हम आंदोलनकारी नहीं हैं, पक्ष-विपक्ष में भी नहीं हैं, अतः संतों को आंदोलनकारियों से कोई खतरा नहीं है किन्तु आप लोगों की यहाँ उपस्थिति देखकर छात्र उग्ररूप ले सकते हैं और कुछ भी दुर्घटना घटित हो सकती है, अतः आप लोगों का यहाँ से अन्यत्र प्रस्थान कर लेना ही उचित है।"

संभवामि पले-पले

फिर भी पुलिस अधिकारी ने आनाकानी की तो मुनिजी ने स्पष्टतः कहा – आप मेरे कहे पर सोचिये, छात्रगण आप की उपस्थिति देखकर यही सोचेंगे कि इन्हीं महाराजों ने ही इन्हें शरण दी है तो वे और अधिक उग्र हो जाएंगे और गजब हो जाएगा...। संभवामि पले-पले...। पुलिस अधिकारी ने कुछ पल सोचा ! उसे भी संभावना प्रतीत हुई और कहा - महाराज ! क्षमा कीजिये! हम अभी यह स्थान खाली कर देते हैं और अन्यत्र चले जाते हैं।

मुक्तकण्ठ से प्रशंसा

तदनंतर वह स्थान पुलिस से रिक्त हो गया। आंदोलनकारी आते-जाते रहे, जुलूस पर जुलूस, हुड़दंग पर हुड़दंग होते रहे किंतु यह तो "जैनियों का धर्म स्थान है" सोचकर कोई भी क्षति नहीं पहुँचाई।

लिखने का तात्पर्य यह है मुनि श्री की सूझबूझ से एक दुर्घटना टल गई और जैन समाज एवं संत मण्डली ने संतोष की सांस ली। आचार्य श्री ने मुनि श्री की निडरता निर्भिकता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

एक और वर्षावास सम्पन्न

यहीं पटियाला संघ आगामी चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ।

गुरुदेव श्री का स्वास्थ्य ठीक न होने से अम्बाला में ही विराजित रहे और सन् १९६६ के पटियाला चातुर्मास हेतु मुनि श्री सुमनमुनि जी म. को अन्य संतों के साथ प्रेषित किया। पटियाला चातुर्मास धूमधाम से सम्पन्न कर मुनिवर श्री पुनः गुरु-चरणों में आ गए। समय धर्मसाधना-ज्ञानसाधना के साथ व्यतीत होता जा रहा था।

आचार्य श्री आनंदऋषि जी म. को अम्बाला से विहार करके लुधियाना चातुर्मासार्थ पधारना था। अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे शिष्य सम्पदा सहित विहार करके घन्नौर एवं पटियाला पधारे। आचार्य श्री जी एवं प्रवर्तक श्री जी का सम्मिलन हुआ। श्री सुमनमुनि जी म. को परम श्रद्धेय गुरुदेव प्रवर्तक श्री जी म.सा. ने आचार्य श्री के साथ जाने की आज्ञा दी। अतः मुनिवर्य आचार्य श्री के साथ कुछ समय तक विचरण करते रहे।

अम्बाला शहर से आचार्य श्री ने मुनिवरों के साथ विहार किया एवं घन्नोर को पावन करते हुए पटियाला पहुँचे। मुनिश्री सुमनकुमारजी म. भी गुरुदेव श्री के संग आचार्य श्री की विहार यात्रा में सहभागी थे। पटियाला से विहार कर समाना शहर पहुँचे। आचार्य श्री भी पधारे। सभी जैन मोहल्ले में स्थित जैन स्थानक में ठहरे। जैनों के लगभग १५० घर थे।

यहाँ महाशय राधाकिशन आर्यसमाजी से मुनि श्री सुमनकुमार म. का शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ क्यों, किसलिए हुआ आद्योपान्त विवरण प्रस्तुत है।

आर्य समाजी महाशय

व्याख्यान के पश्चात् एक आर्यसमाजी महाशय राधाकृष्ण जी अपने साथी के साथ आचार्य श्री की सेवा में पहुँचा और कहने लगा – "आचार्य जी! आपसे कुछ विषयों पर चर्चा-वार्ता करनी है, समय प्रदान करें।" आचार्य श्री ने कहा – "मध्याह्न में समय की अनुकूलता है उसी समय आप आइए, आपकी जिज्ञासाओं का समाधान कर दिया जाएगा।"

आचार्य श्री ने सहजता से बात कह दी थी किंतु आगन्तुक व्यक्ति के मन में कुटिलता का जहर था। राधाकृष्ण अपने साथी के साथ स्थानक से निकलने लगा तभी जैन समाज के वरिष्ठ व्यक्तियों ने उन्हें देख लिया। उपहास में एक-दूसरे से कहा - 'महाशय, आ गये' तदनंतर वे वरिष्ठ जन आचार्य श्री के समक्ष पहुँचे विनीत भाव से कहा - गुरुदेव! महाशय आये थे, क्या कहा उन्होंने।

आचार्य श्री ने कहा - कौन महाशय ?

व्यक्तियों ने कहा - वहीं जो आपसे दो मिनिट पहले बात करके गये है !

"हां, उन महाशय ने चर्चा-वार्ता के लिए समय चाहा, मैंने मध्याह्न में आने का कहा है।

वरिष्ठ सज्जनों ने कहा - "आचार्यवर्य! यह अत्यन्त आग्रही ही नहीं दुराग्राही व्यक्ति है, खटपटिया भी! इसने मुनि श्री धनराजजी म. एवं मुनि श्री अमरचंदजी म. आदि कितने ही संतों के साथ वार्तालाप-शास्त्रार्थ करके क्रोड़पत्र (पेम्पलेट) निकाल कर लोगों में जैन धर्म के प्रति अनास्था ही उत्पन्न की है अतः ऐसे व्यक्ति से दूर रहना ही उचित है।"

मैं अनभिज्ञ था

आचार्य प्रवर ने सहजरूपेण कहा - मैं तो अनभिज्ञ था, इस बात से, तथापि आप सज्जनों ने मुझे सावधान कर दिया, यह ठीक ही किया। समय तो उसे दे ही चुका हूं, यथावसर यथास्थिति देखेंगे कि क्या करना है।

लाला कस्तूरी लाल जी जैन, लाला सागरमलजी जैन, (जैन मूर्तिपूजक समाज के मुखी) लाला मोहन लालजी जैन, लाला निरंजनदास जी नसीबचंदजी आदि ने कहा - गुरुदेव ! इससे बचने का कोई उपाय खोजिये।

अब क्या किया जाय?

आचार्य श्री ने पुनः यही कहा - मैंने तो समय दे दिया है - अब क्या किया जाय?

अतंतः निष्कर्ष यही निकाला गया कि चर्चा-वार्ता के दौरान पाँच लोगों को मध्यस्थ चुना जाय। वे सज्जन थे - आर्यसमाज के अध्यक्ष डॉ. साहब, सनातन धर्म सभा के लालाजी, गुरूद्वारा सिंह सभा के अध्यक्ष, जैन सभा के अध्यक्ष, एक प्राध्यापक जी ! पाँचों ने मध्यस्थता करना स्वीकार कर ली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्यसमाजी महाशय – राधाकृष्ण ने भी उक्त पाँचों की मध्यस्थता स्वीकार कर ली।

स्वामी श्री प्रेमचंदजी म., श्री फूलचन्दजी म. 'श्रमण' आदि १५ संत वहीं विराजमान थे। मुनि श्री सुमनकुमार जी भी संतद्वय के साथ वहीं थे।

वादे-वादे जायते तत्त्वबोध :

मुनि श्री सुमनकुमार जी म. की युवकोचित वीरता जोश एवं प्रौढ़ोचित होश एवं तार्किकता को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य श्री एवं मुनिमंडल ने महाशय से चर्चा-वार्ता करने का दायित्व सौंपा। कहा - आप योग्य है, आचार्य श्री एवं विशिष्ट मुनिगणों की सन्निधि में यह चर्चा-वार्ता आप ही को संपादित करनी है।

मुनि श्री ने कहा – आप जैसे महारथियों के रहते मुझे यह दायित्व क्यों सौंप रहे हैं, मेरा विनम्र निवेदन है कि गुरुजन ही इस चर्चावार्ता को सम्पन्न करें।

गुरुजनों ने कहा - महारथी एक और संत को महारथी बनाना चाहते हैं अतः यह दायित्व आपको सौंप रहे हैं।

जोर देकर गुरुजनों ने कहा तो मुनि श्री ने दायित्त्व निर्वहन की बात स्वीकार ली।

महाशयजी निरुत्तरित

चर्चा-वार्ता का समय आ गया। महाशय-राधाकृष्ण के जो प्रश्न थे उनका मुनि श्री सुमनकुमार जी म. ने सटीक उत्तर दिये। ढ़ाई घंटे तक शास्त्रार्थ चला। मुनि श्री ने प्रतिपक्षी को कुछ प्रश्न पूछें, महाशय उत्तर न दे पाये। अंततोगत्वा मध्यस्थों ने निर्णय लिया – राधाकृष्ण जी ने ईश्वरकर्तृत्व, कर्मफल का प्रदाता ईश्वर, ईश्वर की इच्छा-अनिच्छा के बिना कुछ भी संभव नहीं आदि प्रश्नों का मुनि श्री ने युक्तियुक्त उत्तर दिये हैं। मुनिश्री ने जो प्रश्न राधाकृष्ण जी से पूछे हैं उनका उत्तर दें अन्यथा अपनी हार स्वीकार कर लें।..." महाशय जी जड़वत् हो गए, मौन धारण कर लिया।

अंततः महाशय जी उत्तर नहीं दे पाए। मुनि श्री ने जैन सिद्धांतों की विजय पताका फहराकर जैन धर्म की जाहोजलाली की। तदनंतर महाशय ने निंदा-विकथा के क्रोड़पत्र निकलवाने बंद कर दिये किंतु भीतर में प्रतिशोध की ज्वाला जरूर सुलगती रही।

पुनः निराकरण

समाना मण्डी में जब मुनि श्री का पदार्पण हुआ तो लाला भगवानदास जैन (मित्तल) के घर में आश्रय ग्रहण किया था। वहाँ रात्रिकालीन प्रवचन प्रारंभ हुए।... आर्यसमाजी महाशय-राधाकृष्ण ने भी एक आर्यसमाजी विद्वान् को आमंत्रित कर आर्यसमाज में रात्रिकालीन प्रवचन प्रारंभ कर दिए। जैन धर्म का खंडन-मंडन होता रहा। कुछ जैन युवक उनके प्रवचन की बातें सुनकर आते और मुनिश्री सुमनकुमार जी म. को बताते कि जैन धर्म पर ये-ये कटाक्ष किये गये हैं तो मुनि श्री अपने प्रवचन में पुनः निराकरण कर देते।

अंततः मुनि श्री के अकाट्य तर्कों एवं प्रवचनों से आर्यसमाजी विद्वान व महाशय कायल हो गये और प्रवचन करने बंद कर दिए। मुनि श्री के प्रवचनों की धूम मच गई, अजैन जनता भी आपश्री के प्रवचनों से अभिभूत एवं प्रभावित होने लगी।

एक और प्रेरणा

समाना मंडी में उस समय जैन स्थानक नहीं था, मुनि श्री के प्रभावकारी प्रवचनों एवं सदुपदेशों से प्रेरणा पाकर लाला भगवानदासजी ने अपना एक भूखंड जैन समाज को अर्पित कर दिया। तदनन्तर पटियाला के जौहरी परिवार द्वारा प्रदत्त भूखण्ड पर एक और भवन/दुकानें निर्मित हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया। दोनों जैन स्थानक आज भी विद्यमान है एवं उनमें धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न हुआ करती हैं।

विहार-चातुर्मास

मंडी समाना से नाभा, सुनाम, संगरूर, धुरी, मालेरकोटला, बरनाला, भदौड, सैणा, जगराँव, रायकोट, अहमदगढ़ मंडी, गुज्जरवाल क्षेत्रों को फरसते हुए आचार्य श्री जी लुधियाना पधार गये। मुनि श्री सुमनकुमार जी म. ने चातुर्मासार्थ पटियाला की ओर प्रस्थान किया।

चातुर्मासोपरांत पटियाला से अम्बाला आये। तदनंतर प्रवर्तक श्रीजी के साथ राजपुरा, वन्नूड़, खरड़ कुराली, रोपड़ में विहरण किया। यहाँ जालन्धर संघ सन् १९६७ के चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। साधु भाषा में जालंधर श्री संघ को आगामी वर्षावास की स्वीकृति प्रवर्तक श्री जी म. ने प्रदान कर दी।

रोपड़ से बलाचोर, नवांशहर, जेजों, होशियारपुर पधारे। प्रवर्त्तक श्री जी का स्वास्थ्य स्वस्थ न होने के कारण एक मास कल्प की स्थिरता रही। युवामुनि श्री सुमनकुमारजी म. सेवा में ही रहे।

जन सेवा प्रेरक

यहाँ पर आचार्य श्री कांशीराम जी म. को आचार्य पद की चादर अर्पित की गई थी। उनकी स्मृति में श्री सुमनकुमारजी म. ने प्रेरणा देकर **पूज्य कांशीराम स्मारक समिति** का गठन करवाया जिसका एक मात्र उद्देश्य था - मानव सेवा, जन सेवा, स्वाध्याय के लिए पुस्तकालय।

प्रवर्त्तक श्री जी म. कुछ संतों के साथ होशियारपुर से विहार कर जालन्धर छावनी पधारे। पं. रत्न श्री महेन्द्रमुनि श्री म. एवं श्री सुमनमुनि जी म. ठाणा २ से होशियारपुर में ही विराजित रहे।

प्रवर्त्तक श्री को पक्षाघात

प्रवर्त्तक श्री जी म. जब आदमपुर पधारे थे तभी उच्च रक्तचाप से पीड़ित हो गए थे तथापि धीरे-धीरे विहार करते हुए जालंधर छावनी पधार ही गये। पूज्य गुरुदेव श्री महेन्द्र कुमार जी म. एवं मुनि श्री सुमनकुमार जी म. को यह दुःखद सूचना प्राप्त हुई कि प्रवर्त्तक श्री जी म. को पक्षाघात हो गया है और वे अस्वस्थ हैं तो दोनों संत उग्र विहार कर जालंधर प्रातः ८.३० बजे पहुँच गये।

अपशकुन

मार्ग में आप श्री जब द्रुतगति से विहार करते हुए लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे, यकायक काले रंग का कुत्ता खेत में से रोता हुआ संतों की ओर बढ़ा और पुनः चला गया। पं रत्न गुरुदेव श्री महेन्द्रकुमार जी म. इस प्रकार के अपशकुन को देखते ही और अधिक व्यथित होने लगे।

तदनन्तर गुरुदेव श्री २०-२५ कदम आगे बढ़े ही होंगे कि एक व्यक्ति स्कूटर पर सवार होकर आया और उसने सूचना दी – "महाराज श्री जी पक्षाघात एवं बेहोशी में हैं। अतिशीघ्र पधारें।"

गुरुदेव एवं मुनिश्री जी म. उग्र विहार कर गुरू एवं गुरुमह पंजाब प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी म. की सेवा में पधारे। तन-मन से प्रवर्तक श्री की सेवा में लीन हो गए। प्रवर्तक श्री अपने शिष्य एवं प्रशिष्य की सेवा से गद्गद् हो उठे। तथापि वे कुछ चिंतन में खोये रहते हुए थे। कारण था – प्रवर्तक श्री ने जालंधर में ही विराजित महासती श्री प्रवेश कुमारी जी म. के सान्निध्य में एक वैराग्यवती की दीक्षा सम्पन्न होने जा रही थी, के दीक्षा महोत्सव में पधारने की स्वीकृत दे दी थी। दीक्षा स्थल जैन स्कूल था। उसी रात ४.३० बजे हल्का दिल का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दौरा पड़ा जो एक घंटे के पश्चात् ठीक हुआ। प्रातः ११ बजे लगभग चल पड़े संतो को संग में लेकर-विजयनगर।

शिष्यों ने अनुनय-विनय की – "महाराज श्री ! आपको पीड़ा है न पधारें।" किन्तु यही कहते रहे – "मैं अब ठीक हूँ ! मैंने सतियांजी को भी वचन दे रखा है।..." और चल पड़े। दो मंजिल नीचे उतर कर अभी ५० कदम ही चले होंगे कि पुनः रक्तचाप और हृदयगति का दौरा पड़ गया। फिर भी आप निरंतर धीमी गति से चलते विद्यालय पधार ही गए।

विद्यालय-भवन के विज्ञान कक्ष में प्रवर्तक श्री को विश्राम करवाया। डॉ. आनन्द आए। स्वास्थ्य-निदान किया। इसी विज्ञान भवन में ही 'कुमारी राणी' को जैन-प्रव्रज्या का पाठ पढ़ाया। दीक्षा-समारोह सानंद सम्पन्न हुआ। रात्रि-विश्राम श्रद्धेयश्री ने वहीं किया। डॉ. आनन्द ने निशा में आपके सामीप्य का लाभ उठाया। डॉ. आनन्द ने साधु-जीवन-चर्या एवं आत्मा के विषय में अनेकों प्रश्न पूछे और अत्यन्त हर्षित हुए श्रद्धेय गुरूवर से प्रत्युत्तर प्राप्त कर। यहीं से डॉ. आनन्द प्रथम बार जैन साधु/श्रमण के सम्पर्क में आए और अत्यधिक प्रभावित हुआ।

अब मैं बहुत न जी सकूंगा

१० फरवरी को प्रभात काल में आप श्री पुनः जैन स्थानक में पदार्पण करने हेतु डगमगाते कदमों से प्रस्थित हुए परन्तु शरीर ने साथ नहीं निभाया। संतों ने कुर्सी पर बिठाया आपको और जैन-स्थानक में ले आए। डॉक्टर और संघ के पदाधिकारियों ने विचार विमर्श कर नीचे के पुस्तकालय भवन में ही विश्राम कराया। रात्रि को ११ बजे पुनः अस्वस्थ हो गए। डॉ. आनन्द ने आकर स्वास्थ्य निरीक्षण किया। दो-तीन दिन सामान्यरूप से बीते। दि. १४ फरवरी को १०.२० बजे पुनः अस्वस्थ हो गये थे। १५ फरवरी की सायं तो जैसे आपके जीवन की संध्या ही थी। भयंकर रोगग्रस्त हो गए और वे स्वयं ही कह उठे- "अब मैं बहुत न जी सकूँगा।" फिर भी वे १६-२० फरवरी को स्वस्थ हो गए।

असह्य दारुण वेदना

एक सप्ताह कुछ स्वस्थता रही। श्रद्धालु जन प्रसन्न थे। परंतु उन्हें यह मालूम नहीं था कि बुझते दीपक की ज्योति और अधिक प्रज्वलित होती है। २७ फरवरी की प्रभात वेला में १०-३० बजे से लेकर मध्यान्ह १२.३० तक असह्य दारुण-वेदना उत्पन्न हुई। शेष दिन-रात में कुछ साता रही। २८ फरवरी को दिवस भी इसी प्रकार व्यतीत हो गया। २६ फरवरी का दिवस भी प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप करते बीत गया।

परीक्षा की घड़ी

रक्तचाप और हृदय रोग की निस्सीम वेदना भी आपके साहस, सहिष्णुता और आत्म-शांति को नहीं डिगा पाई। जब भी किसी ने पूछा मुस्कराए, हाथ उठाकर "दयापालो" का संकेत किया और मुख से यही वाणी निसृत होती-"ठीक है।" और मंगल पाठ सुनाना आरम्भ कर देते। दिनोदिन रोग भले ही बढ़ता गया फिर भी आपके मानस में शांति आदि गुणों की वृद्धि होती चली गई। ६ फरवरी से २६ फरवरी तक की समयावधि आप श्री के जीवन-काल की परीक्षा घड़ी थी। जिसमें आप उत्तीर्ण हुए।

सान्ध्यवेला

सूर्यास्त होने में अभी डेढ़ घंटा शेष था। आपके मानस में स्फूर्त प्रेरणा उत्पन्न हुई और स्वेच्छया चतुर्विध आहार के प्रत्याख्यान कर लिए। चरम प्रत्याख्यान था यह आपका। प्रत्याख्यानोपरान्त प्रतिक्रमण भी स्वयं ने ही किया। उस समय तक किसी के मन में यह कल्पना तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी न हीं थी कि हमारे प्रवर्तक श्री जी की यही जीवन सान्ध्य वेला है। सूर्य अस्ताचल की ओर था।

समाधिपूर्वक महाप्रयाण

सायं ठीक सात बज रहे थे। विद्वद्वर्य श्री सुमनकुमारजी महाराज, तपस्वी श्रीचंदजी महाराज, श्री संतोषमुनिजी महाराज और श्री अमरेन्द्रमुनिजी महाराज श्रद्धेय प्रवर्तक श्री के सामीप्य ही थे। लाला केसरदास जैन भी वहीं उपस्थित थे। श्रद्धेय गुरुवर्य पर्यंकासन से विराजित थे। पहली डकार ली और आँखे मूंद ली, अभी डॉ. आनन्द आ ही न पाये थे कि दो ऊर्ध्ववायु खींच कर नेत्र खोल दिये। सभी को क्षमापना हित कर बद्ध किये, खुले नेत्रों से सब को देखते/निहारते समाधिपूर्वक पार्थिव देह का परित्याग कर हमेशा-हमेशा के लिए विदा हो गये। फिर कभी लौट कर नहीं आये। आते भी कैसे और क्यों...? क्योंकि यह उनका प्रयाण नहीं अपितु महाप्रयाण था।

मंगल प्रेरणा

श्रद्धेय चरितनायक गुरुदेव श्री सुमनमुनि जी म. चिन्तनशील बने कि गुरुदेव प्रवर्तक श्री जी की स्मृति स्वरूप कोई जनकल्याणकारी संस्था की स्थापना जालंधर शहर में होनी चाहिए। अपने चिन्तन को मूर्त्तरूप देने के लिए आपने विराजित सभी छोटे बडे संतों से इस संदर्भ में विचार-विमर्श किया। सभी संतों ने आपके प्रस्ताव का सहर्ष समर्थन किया। तदन्तर आपने जालंधर श्री संघ के प्रमुख श्रावक श्री दीनानाथ जी जैन तथा लाला श्री टेकचन्द जी जैन (राय साहब) के समक्ष अपने भाव रखे। उक्त श्रावकों ने पूर्ण श्रद्धाभाव से आपकी बात को स्वीकार किया तथा संकल्प व्यक्त किया कि वे शीघ्र ही इस दिशा में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करेंगे।

फलतः महावीर जयंति के पावन प्रसंग पर जिसका भव्य आयोजन श्री पार्वती जैन हाई स्कूल में किया गया था श्री संघ जालंधर ने पूज्य प्रवर्तक श्री जी की स्मृति में एक धर्मार्थ अस्पताल प्रारंभ करने की उद्घोषणा की।

(लगभग तीन वर्ष के बाद जैनस्थानक जालंधर के नीचे के खण्ड में "स्वामी शुक्लचन्द्र जैन हस्पताल" का उद्घाटन हुआ।)

जालंधर शहर को साश्रुनयन अलविदा कह कर आप कपूरथला जंडियालागुरु होते हुए अमृतसर पधारे। कुछ दिन वहां ठहर कर आप पुनः जालंधर पधारे। वहां पर वर्ष १६६८ के वर्षावास की प्रार्थना लेकर रायकोट का श्रीसंघ उपस्थित हुआ। सो आगामी वर्षावास रायकोट के लिए निर्धारित किया गया।

सिद्धान्त निष्ठा

जालंधर से फगवाड़ा, अट्टा, फिल्लौर, लुधियाना आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए आप अहमदगढ़ मंडी पधारे। उधर मालेरकोटला नगर में आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी म. वर्षावास हेतु विराजमान थे। आचार्य श्री ने मालेरकोटला श्री संघ को आपके पास भेजा। वर्षावास से पूर्व आचार्य श्री जी आपसे एक बार मिलना चाहते थे और संघ में उभरे असंतोष पर विचार विमर्श करना चाहते थे।

पूज्य प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्र जी म. के स्वर्गवास के पश्चात् प्रवर्तक पद को लेकर पंजाब मुनिसंघ में विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। आचार्य श्री ने पंजाब के सभी संतों के मत मांगे थे। पूज्य प्रवर श्री सुमन मुनि जी म. ने पूज्य प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्र जी म. के स्वर्गारोहण के पश्चात् आचार्य सोहन परिवार का गठन किया था। आपको अपने परिवार के मुनिराजों से विमर्श करके ही 'प्रवर्तक पद' के लिए अपना मत देना था।

आप श्री जालंधर में विराजमान थे। उस समय आचार्य श्री ने दो मान्य श्रावकों अम्बाला के श्री गोरेलाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जी एवं नवांशहर के लाला श्री वेद प्रकाश जी को आपका अभिमत जानने के लिए आपके पास भेजा। आचार्य श्री ने एक पत्र भी भेजा था जिसमें आपके लिए उपप्रवर्तक पद का प्रस्ताव रखा गया था।

उस समय तक आप मत के विषय में अपने पारिवारिक मुनिराजों से विचार-विर्मश नहीं कर सके थे इसलिए आप अपना मत आचार्य श्री को नहीं भेज सके। साथ ही आपने बड़ी विनम्रता से इस उत्तर के साथ कि मेरे परिवार में अन्य कई ज्येष्ठ मुनिराज मौजूद हैं उपप्रवर्तक पद का प्रस्ताव आचार्य श्री को लौटादिया।

आचार्य श्री ने कुछ दबावों के चलते सभी मुनियों के मतों की प्रतीक्षा न करके बहुमत को दृष्टि विगत कर प्रवर्तक पद की घोषणा कर दी। उसी अवसर पर तपस्वी श्री सुदर्शन मुनि जी म. को उपप्रवर्तक पद पर प्रतिष्ठित किया गया था।

हमारे चरितनायक पूज्य वर्य श्री सुमन मुनि जी म. प्रारंभ से ही एक सिद्धान्तनिष्ठ मुनिराज रहे हैं। उन्होंने उक्त घोषणा को अस्वीकार कर दिया। फलतः संघर्ष की स्थितियां बन गई। उक्त घोषणा पर पूज्य श्री सुमनमुनि जी म. की अस्वीकृति असैद्धान्तिक नहीं थी। आपका स्पष्ट मत था कि आचार्य देव या तो अपने अधिकारों का उपयोग करके प्रवर्तक पद की घोषणा करते जो सभी को मान्य होता। या फिर बहुमत प्राप्त मुनिराज के लिए इस पद की घोषणा करते।

अस्तु ! आचार्य श्री के आमंत्रण को सिरमाथे पर रख कर आप मालेरकोटला पधारे। गहन विचार विमर्श चला। परन्तु शमस्या का समाधान नहीं हो पाया।

रायकोट वर्षावास

मालेरकोटला से रायकोट की दिशा में विहार हुआ। रायकोट पदार्पण हुआ। नगर के आबालवृद्ध में उत्साह और उमंग व्याप्त हो गई। धर्मध्यान और त्याग-तप की प्रभूत प्रभावना हुई। वर्षावास आनन्द सम्पन्न हुआ।

प्रवर्तक-पद-प्रकरण चातुर्मास में भी चलता रहा। वर्षावासोपरान्त जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला में वार्षिक अधिवेशन पर मान्य मुनिराजों सहित आचार्य देव का पदार्पण सुनिश्चित हुआ था। एतदर्थ आपके पास भी पंचकूला पधारने की विनती आई थी। आप रायकोट का वर्षावास पूर्ण करके चमकोर साहब, रोपड़, खाड़, आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए पंचकूला पहुंचे। आचार्य श्री के अतिरिक्त बहुश्रुत श्री ज्ञान मुनि जी म., श्री जगदीश मुनि जी म., श्री विमल मुनि जी म., श्री पूरण चंद जी म. आदि मान्य मुनिराज भी पंचकूला पधारे थे।

पंचकूला में अन्ततः इस विवाद का पटाक्षेप हो गया। पूज्यप्रवर श्रमण श्री फूलचन्द जी महाराज ने प्रवर्तक पर से त्यागपत्र दे दिया।

तीन वर्षों तक पंजाब मुनिसंघ में प्रवर्तक पर रिक्त रहा। बाद में महासभा पंजाब ने पुनः प्रयत्न प्रारंभ किए। महासभा का एक शिष्ट मण्डल रोपड़ में आपके पास आया। शिष्टमण्डल के सकारात्मक चिन्तन को दृष्टिपथ में रखते हुए आपने आचार्य श्री को पत्र लिख दिया कि – "जिसे भी आप प्रवर्तक पद पर अधिष्ठित करेंगे वह मुझे मान्य होगा।"

इस तरह तीन वर्ष के अन्तराल के बाद पूज्य आचार्य देव ने सर्वसम्मति से पूज्य श्री श्रमण फूलचंद जी म. को पुनः प्रवर्तक पद पर अधिष्ठित किया।

अम्बाला की ओर / वर्षावास

जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकुला से विहार करके आप श्री चण्डीगढ़ १८ सेक्टर जैनस्थानक में पधारे। चौ. दिलीपसिंह, भूषण कुमार जैन, बलदेवराज जैन, लाभचन्द जैन आदि अधिकारी एवं सदस्यों ने सेवा का पूरा-पूरा लाभ लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहां से खरड़, कुराली होते हुए रोपड़ आए। वहां से बलाचौर, राहों, बंगा, फगवाड़ा, लुधियाना, समराला, माछीवाडा, चमकौर साहब, मरिंडा, खरड़ आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुए अम्बाला नगर में पधारे। यहां पर पूज्य वर्य श्री कर्पूरचन्द जी म., बाबा श्री माणक मुनि जी म., तपस्वीरत्न उप, प्रवर्तक श्री सुदर्शन मुनि जी म. आदि मुनिवृन्द का दर्शन लाभ लिया।

पूज्यबर्य श्री कपूरचन्द्र जी म. तथा श्रद्धेय श्री शान्तिस्वरूप जी म. (मेरठ) प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्र जी म. के स्वर्गगमन के पश्चात् आचार्य सोहन मुनि परिवार के क्रमशः प्रमुख और उपप्रमुख चुने गए थे।

चण्डीगढ़ का श्रीसंघ आगामी वर्षावास की प्रार्थना लेकर आपके श्री चरणों में अम्बाला पहुंचा। मुनि परिवार प्रमुख श्री कर्पूरचन्द जी म. की आज्ञा से आपने आगामी वर्षावास चण्डीगढ़ श्री संघ को प्रदान कर दिया।

उन दिनों पूज्य प्रवर श्री कर्पूरचन्द जी म. अस्वस्थ चल रहे थे। आपने उनकी सेवा का पूरा लाभ लिया। पूज्य श्री के निरन्तर गिरते स्वास्थ्य को देखकर आप चण्डीगढ़ चातुर्मासार्थ उचित समय पर विहार न कर सके। चातुर्मास से कुछ ही दिन पहले पूज्य श्री का स्वर्गवास हो गया।

चातुर्मास शुरु होने में इतना स्वल्प समय रह गया कि आप चण्डीगढ़ नहीं पहुंच सकते थे। फलतः वर्ष १९६९ का वर्षावास आपको अम्बाला नगर में ही करना पड़ा। इस वर्षावास में अन्य पूज्य मुनिराज थे-बाबा श्री माणकचन्द जी उप प्रवर्तक तपस्वी श्री सुदर्शन मुनि जी म., गुरुदेव श्री महेन्द्र मुनिजी म., श्री छज्जूमुनि जी म. तथा तपस्वी श्री श्रीचंदजी म.।

चरितनायक की सृजन धर्मिता

अम्बाला नगर में सर्राफा बाजार के साथ लगती गली में जैन महिला उपाश्रय था। उपाश्रय का वह भवन लाला श्री लच्छीराम रामलाल जैन सराफ ने जैन समाज को दान रूप में दिया था। कालान्तर में यह भवन जर्जरित हो गया। पुनर्निर्माण के लिए उसकी ऊपर की मंजिल उतार दी गई थी। परन्तु नीचे के तल में दुकानें होने के कारण पुनर्निर्माण कार्य प्रारंभ नहीं हो पा रहा था। दुकान मालिकों और श्रीसंघ के मध्य विश्वास निर्मित नहीं हो पा रहा था।

सृजनधर्मी गुरुदेव पूज्य श्री सुमनमुनि जी म. के समक्ष पूरी स्थिति आई। आप श्री ने दुकान मालिकों और श्री संघ के बीच की अविश्वास की खाई को अपनी वाग्कुशलता से पाट दिया। दुकान मालिकों को आपने विश्वास दिलाया कि भवन निर्माण के पश्चात् उनकी दुकानें उन्हें वापिस लौटा दी जाएंगी। इससे विश्वास निर्मित हो गया और कई वर्षों से रुका हुआ कार्य प्रारंभ हो गया। थोड़े ही समय में भवन बनकर तैयार हो गया। दुकान मालिकों को उनकी दुकानें लौटा दी गई।

इस कार्य में श्री शांतिलाल जी गोटेवाले, श्री पवनकुमार जी रंगवाले कोषाध्यक्ष, श्री मदनलाल जी अध्यक्ष ने पूर्ण निष्ठा और समर्पण का परिचय दिया।

चातुर्मास धर्म-गतिविधियों का केन्द्र बना रहा। चातुर्मास के पश्चात् भी आप श्री का विराजना अम्बाला में हुआ। पार्श्वनाथ जयंति का भव्य आयोजन हुआ।

गुरु-शुक्ल-पुण्य-स्मृति

२८ फरवरी १९७० को पूज्यगुरुदेव प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्र जी म.की पुण्यतिथि तप-त्याग पूर्वक समायोजित की गई। इस अवसर पर आप श्री की प्रेरणा से वहां पर "प्रवर्तक पं. श्री शुक्लचन्द्र जैन आई कैम्प थियेटर" की स्थापना की गई। नेत्र चिकित्सा शिविर लगाया गया। साथ ही यह संकल्प लिया गया कि प्रतिवर्ष ऐसे शिविर लगाए जाएंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धूरी का श्रीसंघ आगामी वर्षावास की विनति लेकर आपके श्री चरणों में उपस्थित हुआ। तपस्वीराज श्री सुदर्शनमुनि जी म.ने चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान कर दी।

१६७० के वर्षावास को लक्ष्य में रखकर आप श्री अम्बाला से राजपुरा, पटियाला, नाभा, सुनाम होते हुए संगरूर पधारे। वहां स्थानक भवन तथा अग्रवाल पंचायती भवन में भी आपके सार्वजनिक प्रवचन होते रहे। अपूर्व धर्म जागृति हुई। यहां पर जैन समाज के घर थोड़े ही हैं। फिर भी श्रद्धा और भक्ति अपार है। अजैन बन्धुओं में भी जैन मुनियों के प्रति पूरी आस्था है। सामाजिक और धार्मिक कार्यों में धर्म और सम्प्रदाय से ऊपर उठकर सभी लोग पूर्ण सहयोग करते हैं।

संत के वचन की करामात

अम्बाला की तरह संगरूर में भी धूरी गेट (छोटे चौक के पास) पर स्थानक पुनर्निर्माण की स्थिति में था। नीचे दुकानें होने से पुनर्निर्माण में बाधा उपस्थित हो गई थी। आप श्री ने अथक श्रम करके दुकान मालिकों को समझाया और उन्हें विश्वस्त किया कि उनकी दुकानें उन्हें पुनः मिल जाएंगी, आपके समक्ष नत हो गए और लम्बे अर्से से रुका हुआ कार्य पूरा हो गया।

संगरूर यह वही भूमि थी जहां संतशिरोमणि प्रसिद्ध वक्ता श्री सुदर्शन लाल जी महाराज की दीक्षा हुई थी।

धूरी में वर्षावास

संगरूर से आप श्री चातुर्मासार्थ धूरी पधारे। अपूर्व तप-त्याग और धर्म प्रभावना के साथ वर्षावास व्यतीत हुआ। जैन-अजैन सभी लोगों ने पूर्ण उत्साह से आपके प्रवचनों में रुचि दिखाई।

गुरुदेव का ऑप्रेशन

वर्षावास समाप्ति के पश्चात् आप श्री पुनः संगरूर पधारे। गुरुदेव पूज्य श्री महेन्द्र मुनि जी म. को हरणिया की शिकायत हो गई। संगरूर में गुरुदेव का हरणिया का ऑप्रेशन कराना पड़ा। सरकारी हस्पताल के डॉ. गोयल ने बड़ी कुशलता से गुरुमहाराज का ऑप्रेशन किया। श्री कैलाश चन्द्र जी एडवोकेट ने (वर्तमान में संघाध्यक्ष) पूरी व्यवस्था की और सेवा का भरपूर लाभ लिया। फलतः मासाधिक तक संगरूर में विराजना रहा।

मालेरकोटला, संगरूर, अहमदगढ़ मण्डी आदि श्रीसंघ भावी वर्षावास के प्रार्थी थे। पर गुरुदेव ने मालेरकोटला श्री संघ को वरियता प्रदान की। १६७१ का वर्षावास मालेरकोटला सुनिश्चित हुआ।

धूरी चातुर्मास में अनेक क्षेत्रों की प्रार्थनाएं निरन्तर आती रही थीं। उन्हें दृष्टिपथ में रखते हुए आप संगरूर से सुनाम, भीखी, बुढ़लाडा होते हुए रतिया पधारे। वहां पर स्वामी श्री ताराचन्द जी म. कई वर्षों से स्थिरवासी थे। श्री विवेक मुनि जी म. निरन्तर ६ वर्षों से सेवालाभ ले रहे थे। मुनि सेवा का प्रसंग समक्ष पाकर आप भी रतिया में रुककर अग्लान चित्त से रुग्ण मुनि की सेवा में समर्पित हो गए।

शनैः शनैः पूज्य स्वामी श्री ताराचन्द जी म. का स्वास्थ्य गिरता गया और एक मास के पश्चात् उनका देहावसान हो गया।

देहावसान के पश्चात् दाह संस्कार के लिए उपयुक्त स्थान की चिन्ता हुई। वैसे रतिया श्रीसंघ ने इस कार्य हेतु २०×३० फुट का भूखण्ड पहले ही ले रखा था। पर उस समय वहां फसल उगी हुई थी। आप श्री के समक्ष स्थिति रखी गई।

प्राणी मात्र के कंपन को आत्मकम्पन अनुभव करने वाले श्रद्धेय चरितनायक ने स्पष्ट निर्देश दिया – एक मुनि के संस्कार के लिए फसल नहीं रोंदी जाए। इसके लिए अन्य विकल्प तलाशा जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"अन्य क्या विकल्प हो सकता है?" श्री संघ ने चिन्तित स्वर में पूछा।

आपने कहा – इस कार्य हेतु अन्य उचित भूमि की तलाश की जाएं। श्रीसंघ प्रमुख ने बताया-महाराज ! पंचायती भूमि तो बहुत हैं पर उस भूमि पर संस्कार क्रिया करने से जमींदार और सरदार नाराज हो जाएंगे।

भाइयों को साथ लेकर आप श्री स्वयं भूमि देखने के लिए गये। आपने रतिया के प्रतिष्ठित, गणमान्य और निडर डॉ. शर्मा से बात की। आपके व्यक्तित्व के समक्ष डा. शर्मा नत हो गए। उन्होंने कहा – महाराज ! कल ही यहां इस इलाके के एम.एल.ए. श्री नेकीराम (ग्राम लाली) आने वाले हैं। उनसे मिलकर मैं उक्त भूखण्ड जैन समाज को दिलवा दूंगा।"

डा. शर्मा ने अपने वचन का पालन किया। दूसरे दिन एम.एल.ए. श्री नेकीराम ने स्वयं उस भूखण्ड पर अपने हाथ से सीमा की ईंट रखी। इतना ही नहीं पटवारी के रजिस्टर में भी उक्त 'भूखण्ड जैन समाधि' के नाम से चढ़वा दिया।

उस समय सरदार अमरीकसिंह रतिया गांव का सरपंच था। दूर-दूर तक सरदार जी का प्रभाव था। सामान्य लोग नाम से ही कांपते थे। श्री संघ के सदस्यों ने आशंका व्यक्त की कि पंचायती भूमि पर संस्कार करने से कहीं सरदार जी रुष्ट हो गए तो ठीक न होगा।

पूज्य प्रवर गुरुदेव ने सस्मित मुस्कान के साथ संघ सदस्यों को आश्वस्त किया। आपने सरदार जी को बुलाया और उक्त संदर्भ में बात की। आपकी वाग्कुशलता और मधुर व्यवहार से सरदार जी गदगद हो गए और बोले महाराज ! पूरा पिण्ड ही आपका है। जितनी जगह चाहिए आप निःसंकोच ग्रहण कर सकते हैं।

सुनकर संघ के सदस्य कृतकृत्य हो गए। पूज्य श्री का दाहकर्म पूर्णभक्ति और श्रद्धा से सम्पन्न हुआ।

रतिया में आज वह स्थान....समाधि स्थल अत्यन्त भव्य उद्यान के रूप में विकसित हो चुका है।

मालेर-कोटला वर्षावास

रतिया से विहार करके श्रद्धेय चरित नायक श्री सुमन कुमार जी महाराज बुढ़लाडा, भीखी, सुनाम, संगरूर तथा धूरी होते हुए मालेरकोटला वर्षावास हेतु पधारे। आपके पदार्पण से नगर धर्म के रंग में रंग गया। उत्तराध्ययन सूत्र तथा आत्मसिद्धि शास्त्र आपकी देशनाओं के आधारग्रन्थ थे। जप-तप और त्याग का त्रिवेणी संगम तट बंध मुक्त होकर चार माह तक बहता रहा। केवल जैन और सनातनी ही नहीं अपितु बड़ी संख्या में मुसलमान भी आपके प्रवचनों में आते थे। विशेष कार्यक्रम कुन्दनलाल धर्मशाला अथवा जैन कन्या महाविद्यालय में होते थे।

मुसलमानों की बहुतायत वाला यह नगर पंजाब में 'जैननगरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी भूमि पर आचार्य प्रवर श्री रामबख्श जी म., श्रद्धेय श्री विलास राय जी म., आचार्य श्री रतिराम जी म. ने अपनी संयम साधना को मंजिल प्रदान की थी।

यहां की बिरादरी समृद्ध तथा श्रद्धानिष्ठ है। इस बिरादरी की यह विशेषता है कि यह विवादास्पद विषयों में भी तटस्थ रहती है। जहां तक बन सके यहां के श्रावक क्लेश को मिटाने का प्रयत्न करते हैं।

यहां पर डिस्पेंसरी, मॉडल स्कूल, हाईस्कूल, कॉलेज आदि अनेक जनकल्याणकारी संस्थाएं सुचारू रूप से चल रही हैं।

ऐतिहासिक वर्षावास को पूर्ण कर आप अहमदगढ़ पधारे। आपकी मंगलमय प्रेरणा से यहां स्थानक का हाल और बालकनी का निर्माण हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रायकोट वर्षावास

आप श्री ने सन् १९७२ का वर्षावास होशियारपुर का स्वीकृत किया था। पर बरनाला, मानसा होते हुए रायकोट पहुंचे तो आप श्री अस्वस्थ हो गए। फलतः यह वर्षावास आपको रायकोट ही करना पड़ा।

वर्षावास काल में श्रद्धेय चरिनायक रक्तचाप (लो ब्लडप्रेशर) से व्याधिग्रस्त रहे। पर इससे धार्मिक गतिविधियां पूरे उत्साह से सम्पन्न होती रही। वर्षावास समाप्ति के बाद भी कुछ काल आपको रायकोट ही ठहरना पड़ा। पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर ही आपने वहां से विहार किया।

बलाचौर वर्षावास

वर्ष १९७३ के वर्षवास लिए बलाचौर श्री संघ ने भावभीनी प्रार्थना आपके श्री चरणों में प्रस्तुत की जिसे द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की मर्यादा अनुरूप आपने स्वीकार किया। जगरावां, मोगा, जीरा, सुलतानपुर, कपूरथला, जालंधर छावनी, फगवाड़ा, नवांशहर आदि क्षेत्रों में जागरण का अलख जगाते हुए आप बलाचौर पधारे। चातुर्मास प्रारंभ हुआ। अपूर्व धर्म प्रभावनाएं हुई। तप जप और त्याग रूपी गंगा, जमना और सरस्वती में गोते लगाकर बलाचौर वासी कृतकृत्य बन गए. आत्म शुक्ल जयंति विशेष आयोजन के साथ सोत्साह मनाई गई।

बलाचौर धर्मक्षेत्र है। बड़े-बड़े संतपुरुषों के वर्षावास यहां होते रहे हैं। यहां के श्रावक सरल, भक्तिसम्पन्न और सेवापरायण हैं।

मालेर-कोटला वर्षावास

बलाचौर से आप श्री होशियारपुर पधारे। यह पंजाब का एक अति प्रसिद्ध क्षेत्र है। बड़े-बड़े मुनिराजों का यहां वर्षावास/विचरण होता रहा है।

इसी नगर में पूज्य पंजाब केसरी श्री काशीराम जी म. को आचार्य पद की प्रतीक चादर प्रदान की गई थी।

यहां पर श्रद्धेय चरितनायक ने मासकल्प किया। इस मध्य श्री ईश्वर मुनि जी म. श्री रंगमुनि जी म. से भी यहां आपका सुमधुर सम्मिलन हुआ।

कड़कड़ाती सर्दी का मौसम था। दोपहर बारह बजे तक आसमान पर धूयर आच्छादित रहती थी। कठिनता से २-३ घण्टे सूर्य देव के दर्शन होते थे। २-३ बजते-बजते पुनः मौसम पर धूयर छा जाती थी। सहज तप का अवसर पाकर आपकी साधुता सुप्रसन्न थी।

इन्हीं दिनों में पूज्य प्रवर स्वामी श्री रघुवरदयालजी म. का जालंधर में स्वर्गारोहण हुआ।

मास कल्प पर्यंत होशियारपुर में विराजने के पश्चात् आप श्री दधियाल, बंगा, फगवाडा, लुधियाना, रायकोट, बरनाला, भीखी, सुनाम होते हुए रतिया पधारे। इस वर्ष (१९७४) का वर्षावास आप पहले ही मालेटकोटला को प्रदान कर चुके थे। सो यहां से भोआ, बुडलाढ़ा, भीखी, सुनाम, संगरूर होते हुए मालेरकोटला वर्षावास हेतु पधारे। वर्षावास प्रवेश से पूर्व श्री राजकुमार जैन की कोठी पर ठहरे। वहां पर श्रद्धेय गुरुदेव श्री महेन्द्रकुमार जी म. को रक्तचाप तथा श्रद्धेयपूज्य प्रवर चरितनायक को ज्वर ने आ घेरा। स्वस्थ होने पर वर्षावास हेतु मंगल प्रवेश हुआ।

वर्षावास की धार्मिक गतिविधियां पूर्ण श्रद्धा और उत्साह से सम्पन्न होने लगीं। महापर्व पर्यूषण के दिनों में विशेष तपाराधनाएं हुई। गुरु महाराज के श्री चरणों में स्वाध्याय का क्रम अनवरत रूप से चलता था।

स्थिरवास की प्रार्थना

श्रद्धेय गुरुदेव श्री महेन्द्र मुनि जी म. रक्तचाप व्याधि से ग्रस्त थे। डाक्टरों ने गुरुदेव को विहार न करने का परामर्श दिया। मालेरकोटला श्री संघ अत्यन्त जागरुक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री संघ है। श्रावक जन पूर्ण सजग थे। सभी पदाधिकारियों और सदस्यों ने मिलकर गुरुदेव से स्थानापति होने की प्रार्थना की। दैहिकदशा तथा श्री संघ की भावनाओं को देखते हुए गुरुदेव ने कहा – मैं द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा को रखते हुए डॉ. के परामर्शानुसार मैं विहार नहीं करूंगा।

गुरुदेव के वचन सुनकर मालेरकोटला के सेवा समर्पित श्रावकों के हृत्कमल खिल उठे।

परिणामतः १९७४ से १९८२ तक श्रद्धेय गुरुदेव पं. रत्न श्री महेन्द्र कुमार जी म. मालेरकोटला नगर में विराजित रहे। श्री संघ ने भरपूर सेवा का लाभ प्राप्त किया।

चरितनायक की सेवाराधना

"सेवा परम मेवा है" यह कहावत जगत में प्रचलित है। पर इस मेवा को खाने वाले जगत में बहुत थोड़े से लोग होते हैं। हमारे चरितनायक श्री सुमनमुनि जी म. ने गुरु सेवा रूप मेवा का आस्वादन जी भर कर ग्रहण किया। सतत गतिशील रहने वाले आपकी संयमी चरण सेवा का अवसर पाकर स्थिर हो गए। तन-मन-प्राण से आप गुरु सेवा में समर्पित बन गए। दिन, महीने, वर्ष अतीत के गर्भ में विलीन होने लगे। ऋतुएं क्रमशः बदलती रहीं पर आप स्थिर रहे अपनी आराधना में.....सेवाराधना में।

सिद्धान्त निष्ठा

सामाजिक और धार्मिक गतिविधियां भी आप साथ-साथ चलाते रहे थे। ७४-७५ में भगवान महावीर निर्वाण शताब्दी का शुभारंभ तथा समापन समारोह सकल जैन श्री संघ की ओर से हुआ। सकल पंजाब श्री संघ की ओर से समापन समारोह मालेटकोटला में एक क्लब में रखा गया। समापन समारोह में पधारने के लिए आप से प्रार्थना की गई। परन्तु इसके लिए आप श्री ने पहले ही अपने विचार प्रस्तुत कर दिए थे कि - "क्लब इस आयोजन के लिए उचित स्थान नहीं है। त्याग और भोग की संस्कृति भिन्न है। स्थान का भी अपना महत्त्व होता है।"

परन्तु निर्धारित कार्यक्रम में फेरबदल नहीं किया गया। फलतः श्रद्धेय चरितनायक समारोह में उपस्थित नहीं हुए।.... हम पहले भी लिख आए हैं कि श्रद्धेय गुरुदेव एक सिद्धान्त प्रिय व्यक्ति हैं। अपने सिद्धान्तों में समझोता उन्हें कदापि और कतई स्वीकार नहीं होता है।

श्रद्धेय चरितनायक गुरुदेव ने सन् ७४-७५-७६-७७-७८ के निरन्तर ५ वर्षावास अपने गुरुदेव की सन्निधि में मालेरकोटला नगर में किए। इस पूरी अवधि में तथा पूज्य गुरुदेव के स्वर्गारोहण तक गुरुपक्ष से आपके चाचागुरु जो दीक्षा में आपसे छोटे थे श्री संतोष मुनि जी म. "दिनकर" मालेरकोटला में ही गुरुदेव की सेवा में रहे थे। १५ मई १९७७ के दिन होशियारपुर में श्रद्धेय प्रवर्तक श्रमण श्री फूलचन्दजी म. के सान्निध्य में भगवान महावीर का केवलज्ञान महोत्सव मनाया गया था। इस प्रसंग पर श्रद्धेय चरितनायक को भी आमंत्रित किया गया था। फलतः श्रद्धेय मुनि श्री सुमनकुमार जी म. मालेरकोटला से होशियारपुर पधारे थे। आपके अतिरिक्त श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी म., विद्वद्रत्न श्री रत्नमुनिजी म., तपस्वी श्री लाभचन्द्र जी म. इस समारोह पर उपस्थित हुए थे।

इस समारोह में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई देसाई विशेष अतिथि थे।

सन् १९७६ में विश्व केसरी श्री विमल मुनि जी म. ने मालेरकोटला में वर्षावास स्वीकार किया।

उसी अवधि में धूरी का श्रीसंघ चातुर्मास की प्रार्थना लेकर गुरुदेव के पास मालेरकोटला पहुंचा। धर्मप्रभावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की दृष्टि से श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनि जी म. ने अपने शिष्य चरितनायक श्री सुमनमुनि जी म. का वर्षावास धूरी श्रीसंघ को प्रदान किया।

श्रद्धेयवर्य पूज्य श्री सुमनमुनिजी म. मालेरकोटला से अनेक क्षेत्रों को स्पर्शते हुए रायकोट पधारे। यहां पर आपकी मंगलमयी प्रेरणा से निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर आयोजित हुआ जिसमें सैकड़ों जरूरतमंदों ने आंखों की चिकित्सा तथा ऑपरेशन कराए।

उक्त शिविर की सफलता से श्रीसंघ उत्साहित बन गया। संघ का उत्साह देखकर आपने "प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द्र जैन मैडिकल रीलीफ सोसायटी" की स्थापना करवा दी। अस्पताल निर्माण के लिए ७५×५० से अधिक का एक पुराना मकान भी खरीदा गया।

धूरी वर्षावास

रायकोट से आप वर्षावास हेतु धूरी पधारे। आपके पदार्पण से धूरी धर्म नगरी बन गई। सामायिक, संवर पौषधादि की निरन्तर आराधनाएं होने लगीं। जैन-अजैन बड़ी संख्या में श्रोता आपके प्रवचनों का पीयूष पान करने लगे। पर्यूषण और सम्वत्सरी पर विशेष धर्माराधना हुई।

धूरी वर्षावास पूर्ण कर आप पुनः पूज्य गुरुदेव श्री के चरणों में मालेरकोटला पधारे। गुरु-शिष्य का सुमधुर सम्मिलन हुआ। शिष्य ने गुरु चरणों पर अपना हृदय वारा। गुरुदेव ने वरदहस्त से शिष्य का सिर सहलाया।

अहमदगढ़ वर्षावास

वर्ष १६८० में कविरत्न श्री सुरेन्द्रमुनि जी म. ने मालेरकोटला वर्षावास की घोषणा की। अहमदगढ़ का श्री संघ वर्षावास की प्रार्थना के साथ श्रद्धेय चरितनायक के चरणों में समुपस्थित हुआ। जन-जन का कल्याण ही जिनका काम था ऐसे श्रद्धाधार पूज्य प्रवर पं. श्री महेन्द्रमुनि जी म. ने अहमदगढ़ श्रीसंघ को अपने शिष्य का वर्षावास प्रदान किया। उल्लसित मन से श्री संघ लौट गया।

नियत समय पर आप श्री वर्षावास हेतु अहमदगढ़ पधारे। आपका यह वर्षावास भी ऐतिहासिक वर्षावास सिद्ध हुआ। जैन अजैन हजारों की संख्या में श्रोता आपकी देशनाओं से लाभान्वित हुए। अपूर्व अर्भ जागरणा हुई।

वर्षावास की पूर्णाहुति पर आप श्री कुपकलां होते हुए श्रद्धेय गुरुदेव के श्री चरणों में पहुंच गए। कुछ दिन गुरुदेव की सेवाराधना में रहने के पश्चात् गुरु-निर्देश का पालन करते हुए पूर्व प्रार्थी क्षेत्रों में धर्मोद्योत के लिए प्रस्थित हुए।

२६ मार्च १६८१ को लुधियाना में प्रवर्तक उपाध्याय श्रमण श्री फूलचन्दजी म. का जन्म जयंति महोत्सव मनाया गया। इस आयोजन पर आप श्री को आमंत्रित किया गया। प्रवर्तक श्री जी के आमंत्रण को स्वीकार कर आप उक्त महोत्सव में सम्मिलित हुए।

उक्त समारोह में आप श्री के अतिरिक्त श्री केवल मुनि जी म. कविरत्न श्री चन्दनमुनि जी म. आदि मुनि भी सम्मिलित हुए थे।

कांफ्रेंस के अध्यक्ष श्री जवाहरलाल मुणोत तथा श्री रामानन्द सागर (प्रसिद्ध फिल्म निर्माता) भी इस समारोह में समुपस्थित हुए थे।

धूरी क्षेत्र में कुछ दिन विराजने के पश्चात् संगरूर पधारे। धूरीगेट पर स्थित स्थानक में विराजे। वहां स्थानक का कार्य अधूरा पड़ा हुआ था। आपकी प्रेरणा से श्रीसंघ में मानों नवीन प्राणों का संचार हो गया। अधूरा कार्य शीघ्र पूरा करने का श्रीसंघ ने संकल्प किया।

संस्मरण

उन्हीं दिनों की एक घटना है। महावीर जयंति का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसंग था। श्री संघ संगरूर पूरे समारोह पूर्वक महावीर जयंति आयोजित कर रहा था। आमंत्रण पत्रिकाएं प्रकाशित कराई गई थीं। श्रद्धेय चरितनायक भी श्रीसंघ की भावभीनी विनति को स्वीकृत करके मुख्य उपाश्रय में पधारे।

आमंत्रण पत्रिका पर ध्वजारोहण के लिए जिलाधीश कुंवर महेन्द्रसिंह वेदी का नाम देखकर आपका अहिंसाराधक मानस उद्वेलित बन गया। आपने संघस्थ अधिकारियों के समक्ष अपना प्रतिवाद प्रस्तुत करते हुए कहा- हमारे अहिंसा ध्वज को आमिष भोजी व्यक्ति स्पर्श करे यह मुझे स्वीकार नहीं है।

संघ के समक्ष कठिन स्थिति उपस्थित हो गई। पदाधिकारियों ने कहा – गुरुदेव! आमंत्रण पत्रिकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। कार्यक्रम को बदल पाना संभव न होगा।

चरितनायक अपने विश्वास पर अटल थे – "तो इस कार्यक्रम में मैं सम्मिलित न हो सकूंगा।"

पर्याप्त उहापोह के बाद अन्ततः श्री संघ द्वारा कुंवर महेन्द्र सिंह को दिया गया ध्वजारोहण आमंत्रण वापिस ले लिया गया तथा श्री गुलाबराय जैन (एक्शियन बिजली विभाग) तथा श्री रूपचन्द जी जैन एस.डी.ओ. से क्रमशः ध्वजारोहण तथा समारोह की अध्यक्षता कराई गई।

साधारणतः बात छोटी लगती है। पर गुरुदेव की सिद्धान्त निष्ठा और संस्कृति-सुरक्षा की भावना इस छोटी सी बात में स्पष्ट उजागर होती है।

महावीर जयन्ति के पश्चात् श्रद्धेय गुरुदेव सुनाम, भीखी, बुढ़लाडा, रतिया, मानसा, बरनाला और रायकोट होते हुए मालेर-कोटला पधारे। वर्ष १६८१ का वर्षावास श्रद्धेय गुरुदेव के श्री चरणों में ही किया।

वर्षावास के बाद आपके श्री चरणों में एक दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

नवांशहर में महासाध्वी श्री रमा जी म. के सान्निध्य में एक दीक्षा होने जा रही थी। वहां का श्री संघ मालेरकोटला में गुरुदेव के पास आया और दीक्षा प्रसंग पर पदार्पण की प्रार्थना की। साध्वी श्री रमा जी चाहती थीं कि उनकी शिष्या को दीक्षा पाठ श्रद्धेय सुमनमुनि जी म. अपने मुख से प्रदान करें। संघ की प्रार्थना तथा साध्वी जी की भावना को देखते हुए गुरुदेव श्री ने स्वीकृति प्रदान कर दी।

प्रवर्तक श्री जी का आमंत्रण

उन्हीं दिनों श्रद्धेय पंजाब प्रवर्तक उपाध्याय 'श्रमण' श्री फूलचन्द जी म. ने एक प्रतिनिधि मण्डल श्रद्धेय चरितनायक के पास मालेरकोटला भेजा। प्रतिनिधि मण्डल आपके लुधियाना पधारने के लिए प्रवर्तक श्री जी का आमंत्रण पत्र लेकर आया था।

आपके गुरुदेव पं. श्री महेन्द्र मुनि जी म. ने अहोभाव से प्रवर्तक श्री जी का आमंत्रण स्वीकार करते हुए प्रतिनिधि मण्डल को वचन दिया कि वे शीघ्र ही श्री सुमनमुनि जी को प्रवर्तकश्री जी के चरणों में भेजेंगे।

प्रवर्तक श्री जी के चरणों में

गुर्वाज्ञा के समक्ष प्रणत होकर श्रद्धेय चरितनायक मालेरकोटला से प्रस्थित हुए। अहमदगढ़ होते हुए लुधियाना पधारे। पूज्य प्रवर्तक श्री जी ने बाहें फैलाकर आपका स्वागत किया। आपने भी अपने हृदय की श्रद्धा का अमृतकलश श्रद्धेय चरणों पर उंडेल दिया।

पं.रत्न श्री हेमचन्द्र जी म., विद्वद्रत्न श्री रत्न मुनिजी म. ग्रामोद्धारक श्री क्रान्ति मुनि जी म. आदि मुनिवृन्द के दर्शनों का लाभ भी प्राप्त हुआ। यह मिलन अत्यन्त मधुर रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ दिन ठहरने के बाद श्रद्धेय चरितनायक ने विहार की अनुमति मांगी। पर प्रवर्तक श्री जी ने अनुमति नहीं दी। कुछ दिन और ठहरने के पश्चात् आज्ञा मिली। प्रवर्तक श्री जी ने कहा – "सुमनमुनि ! इस वर्ष का वर्षावास आपको लुधियाना करना है।"

चरितनायक ने कहा-भंते ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर गुरु महाराज का स्वास्थ्य देखकर ही निवेदन करूंगा।

प्रवर्तक श्री जी ने कहा – मालेरकोटला से स्वीकृति हम मंगा लेंगे।

आपने श्रद्धेय श्री के चरणों पर मस्तक रख दिया।

प्रवर्तक श्री जी का स्वर्गारोहणग

लुधियाना से आप फिल्लौर होते हुए नवांशहर पहुंच गए। दीक्षा समारोह सम्पन्न हुआ। नवांशहर से आप जालंधर छावनी पधारे। जालंधर छावनी से जालंधर शहर जाते हुए मार्ग में लाला दीनानाथ जी, जोगिन्द्रपालजी की कोठी पर कुछ देर विश्राम के लिए रुके। वहां आपने स्वल्पाहार लिया।

उसी समय वहां पर लुधियाना से टेलिफोन आया कि श्रद्धेय श्री प्रवर्तक श्री जी का स्वर्गवास हो गया है। इस सूचना से आपको अवगत कराया गया। सुनकर आप अवाक् रह गए। अभी कुछ ही दिन पहले तो आप प्रवर्तक श्री के सान्निध्य में रह कर आए थे। आप को स्मरण आया..... प्रवर्तक श्री जी आपको विहार से पुनः पुनः रोक रहे थे। वर्षावास के लिए आग्रह कर रहे थे।

भवितव्यता पर चिन्तन कर अपने मन को तसल्ली देकर आप श्री जालंधर से यथाशीघ्र फगवाड़ा, फिल्लौर होते हुए लुधियाना पधारे। श्रद्धांजलि सभा हुई। सभी स्थानीय साधु-साध्वियां एकत्रित हुए।

लुधियाना वर्षावास का अत्याग्रह

लुधियाना से विहार के अवसर पर पं.श्री रत्नमुनि जी म. ने लुधियाना वर्षावास के लिए आपसे अत्याग्रह किया। श्री संघ लुधियाना ने भी साग्रह प्रार्थना की। श्रद्धेय चरितनायक ने अपने गुरुदेव के स्वास्थ्य की बात दोहराई। इस पर लुधियाना श्री संघ गुरुदेव के श्री चरणों में मालेरकोटला जाकर वर्षावास की अनुमति ले आया।

आपने गुरुदेव की अनुमति, श्री रत्न मुनि जी का आग्रह तथा श्री संघ की प्रार्थना को देखते हुए वर्ष १९८२ के वर्षावास की स्वीकृति प्रदान कर दी।

अभी वर्षावास में कुछ दिन शेष थे। आपने श्रद्धेय श्री रत्नमुनि जी म. से कहा – पूज्य श्री ! मैं गुरुदेव के दर्शन कर आऊं। उनके स्वास्थ्य की मंगल पृच्छा कर आऊं।

श्रद्धेय श्री रत्नमुनि जी म. ने कहा – सुमन ! मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।

पूज्य श्री का प्यार देखकर आप गद्‌गद् हो गए। आपने श्रद्धेय श्री से कहा-"गुरुदेव ! आप का स्वास्थ्य विहार की अनुमति नहीं देता है। आप यहीं विराजिए। मैं गुरुदेव के दर्शन करके लुधियाना वर्षावास के लिए आ जाऊंगा।"

गुरु चरणों में

श्रद्धेय चरितनायक श्री सुमन मुनिजी म. गुरुदेव के श्रीचरणों में मालेरकोटला के लिए गुरुदेव से विमर्श किया और प्रार्थना की गुरुदेव ! आपके स्वास्थ्य को देखते हुए मुझे आपसे दूर नहीं जाना चाहिए।

गुरुदेव ने कहा – मेरा स्वास्थ्य तो ऐसा ही चल रहा है। लुधियाना बिरादरी तथा ज्येष्ठ मुनिराजों का आग्रह भी टाला नहीं जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह वार्तालाप चल ही रहा था कि लुधियाना श्रीसंघ पुनः गुरुदेव श्री के चरणों में उपस्थित हुआ। गुरु देव ने श्रीसंघ को आश्वस्त कर दिया कि सुमनमुनि जी का वर्षावास लुधियाना ही होगा। साथ ही एक आगार रख लिया गया कि "यदि उन्हें आवश्यकता अनुभव हुई तो श्री सुमनमुनि जी को लुधियाना से बुला लेंगे।"

उमंगित हृदय लेकर लुधियाना श्री संघ लौट गया।

लुधियाना वर्षावास हेतु प्रस्थान तथा अमंगल शकुन

श्रद्धेय चरितनायक अपने श्रद्धाधार गुरुदेव के चरणों पर मस्तक रख कर लुधियाना वर्षावास के लिए प्रस्थित हुए। एक लघुमुनि आपके साथ थे। मालेरकटला और कुप्प के मध्य एक गांव के बाहर विद्यालय भवन में रात्री विश्राम हेतु रुके।

सूरज अस्ताचल में विलीन होने जा रहा था। श्रद्धेय चरितनायक एक वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर बैठे आत्मचिन्तन कर रहे थे। उसी समय उस वृक्ष पर एक छोटा सा पक्षी (जिसकी आकृति उल्लू से ही मिलती जुलती थी तथा जिसे राजस्थान में 'कोचरी' कहा जाता है) आ बैठा।

गुरुदेव ने देखा। उसी समय वह पक्षी उड़ा और गुरुदेव के सिर को स्पर्श करता हुआ दूर चला गया। कुछ देर बाद वह पक्षी फिर आकर वृक्ष पर बैठ गया। कुछ क्षण बाद उड़ा और गुरुदेव के सिर पर चोंच मारते हुए निकल गया। इसी प्रकार वह तीसरी बार भी आया।

गुरुदेव का मन उक्त घटना को देख / अनुभव करके किसी अनिष्ट की आशंका से भर गया। पुनः पुनः गुरुदेव की तस्वीर आंखों के समक्ष उभरने लगी। मन निर्णय नहीं कर पा रहा था कि लुधियाना वर्षावास हेतु जाएं या न जाएं।

दूसरे दिन प्रातःकाल आप श्री ने लुधियाना के लिए विहार किया। गुर्वाज्ञा का पालन आपके लिए प्राथमिक लक्ष्य था। अहमदगढ़ होते हुए लुधियाना पधारे।

लुधियाना श्री संघ ने पलक पांवड़े बिछाकर आपका स्वागत किया। श्रद्धेय श्री रत्नमुनि जी म. आपको साक्षात् पाकर हर्षाभिभूत बन गए।

प्रतिदिन व्याख्यान होने लगा। धर्म ध्यान, तप-त्याग की बहार आ गई। सम्वत्सरी महापर्व सानन्द सम्पन्न हो गया।

वज्रपात / गुरुदेव का स्वर्गारोहण

६ सितम्बर १६८२ रात्री के ८-३० बज रहे थे। श्रद्धेय चरितनायक प्रतिक्रमणादि से निवृत्त हो आत्मचिन्तन में लीन थे। सहसा मन उदास-उदास हो गया।मुनि-मन रूप विहग ने पंखों से उदासी के कण झाड़ने का यत्न किया। पर उदासी घनीभूत होती चली गई। अकस्मात् गुरुदेव का चित्र आपके मानस-पटल पर उभर आया। गुरुदेव कहीं अस्वस्थ न हों.... गुरुदेव के स्वास्थ्य की सूचना पाने के लिए आपने भाई को मालेरकोटला टेलिफोन करने भेजा।

भाई लौटता....उससे पूर्व ही एक अन्य भाई ने आकर सूचना दी कि मालेरकोटला में श्रद्धेय पंडित श्री महेन्द्र मुनि जी म. दिवंगत हो गए हैं।

इस समाचार को कर्ण सुन नहीं पाए......हृदय दहल गया.... किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर प्रस्तर प्रतिमा बन गए आप....लगा सब समाप्त हो गया है। मन अपराध बोध से भर गया।.....मैं अन्तिम समय में अपने गुरुदेव की आराधना न कर सका।

अस्तु ! कुछ क्षण के बाद आपका मन शान्त हुआ। संसार के शाश्वत नियमों को कौन बदल सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन, जीवन ही बना रहे यह संभव नहीं है। मिटना नियति है। पर इस सत्य को..... जब यह अपने किसी प्रियजन पर घटता है तो हजम कर पाना – विष को कण्ठ में धारण करने से कम कठिन नहीं होता है।

रात्री व्यतीत हुई। १० सितम्बर को प्रातःकाल मालेरकोटला के लिए आपने प्रस्थान किया। प्रलम्ब दूरी को एक ही दिन में आप तय नहीं कर पाए। मालेरकोटला से लगभग १० कि.मी. की दूरी पर रात्री विश्राम किया। ११ ता. को प्रातःकाल आप मालेरकोटला पहुंचे।

कदम थक चुके थे। हृदय भाव शून्य बन चुका था। अब से पहले जब भी आप मालेरकोटला आते थे.....गुरु चरणों पर सिर रखते ही आपकी सारी थकान मिट जाती थी परन्तु अब वे चरण अदृश्य में विलीन हो चुके थे। आंखें बार-बार हाल में कक्षों में कुछ तलाश रही थीं.....जो तलाश रही थीं वह इन्हें दिख न रहा था।

श्री दयाचन्द जी म.व श्री अजय मुनि जी म. जिनका वर्षावास धूरी था भी मालेरकोटला आ गए।

श्रद्धांजलि सभा का आयोजन हुआ। श्रद्धा सब्ज शब्दों से आपने गुरुदेव को श्रद्धांजलि अर्पित की तथा मालेरकोटला श्री संघ का लक्ष-लक्ष धन्यवाद किया।

श्री संतोष मुनि जी म. जो आपकी अनुपस्थिति में गुरुदेव की सेवाराधना करते रहे थे को साथ लेकर आप शेष वर्षावास को पूरा करने के लिए लुधियाना पधार गए।

क्रमश : वर्षावास पूर्ण हो गया।

असातावेदनीय कर्म का उदय

वर्षावास की परिसमाप्ति पर भी श्रद्धेय श्री रत्नमुनि जी म. ने आपको विहार नहीं करने दिया। एक दिन पाटे से ठोकर लगी। पांव की अंगली में भयंकर चोट लगी। असाध्य पीड़ा झेली। .

अंगुली का उपचार कराया गया। पर "ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता गया" की कहावत सत्य बन कर उभर आई। पीड़ा शान्त न हुई। इसी पीड़ा के साथ शिवपुरी सुन्दरनगर आदि क्षेत्रों में पधारे। साथ-साथ इलाज भी चलता रहा।

प्रवर्तक श्री जी के स्वर्गवास के पश्चात् पण्डित प्रवर श्री शान्ति स्वरूप जी म. उत्तरभारत के नए प्रवर्तक घोषित हुए। मेरठ में प्रवर्तक-पद-चादर महोत्सव तथा लघु मुनि सम्मेलन का आयोजन निश्चित हुआ था। मेरठ का श्री संघ आप श्री के पास मेरठ पदार्पण की प्रार्थना के साथ उपस्थित हुआ। साथ ही पंजाब महासभा ने भी आप से आग्रह किया कि उक्त अवसर पर आपका मेरठ पहुंचना आवश्यक है। श्रद्धेय श्री रत्न मुनिजी म. का भी आपके लिए यही परामर्श था।

आखिर आपने मेरठ जाने की स्वीकृति दे दी। अंगुली की पीड़ा यथावत् थी। गंभीरता से चिकित्सा कराई। एक्सरे लिए गए। ज्ञात हुआ कि अंगुली की हड्डी में फ्रेक्चर है। डाक्टर ने पट्टा बान्धने का परामर्श दिया। पर पट्टा बान्धने का अर्थ था विहार में विलम्ब। आखिर साथ वाली अंगुली के साथ ही पीड़ित अंगुली को बान्धकर विहार कर दिया गया।

चादर महोत्सव पर मेरठ में

लुधियाना से मार्ग के क्षेत्रों को स्पर्शते हुए अम्बाला पधारे। श्रद्धेय चरण तपस्वी श्री सुदर्शन मुनि जी म. के दर्शनों का लाभ लिया। वहीं पर श्री दयाचन्द्र जी म. तथा श्री अजयमुनि जी म. विराजित थे। इनको भी मेरठ प्रवर्तक पद महोत्सव पर जाना था। सो यहां से ये मुनि भी आपके साथ ही मेरठ के लिए प्रस्थित हुए।

अम्बाला नगर से छावनी, मुलाना, विलासपुर, जगाधरी, सरसावा, सहारनपुर, देवबन्द, मुजफ्फरनगर, दुराला, मोदिपुरम होते हुए श्रद्धेयचरितनायक मेरठ पहुंचे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चादर महोत्सव का कार्यक्रम बड़े सुचारू रूप से सम्पन्न हुआ। शताधिक श्रमण-श्रमणियां उक्त प्रसंग पर पदार्पित थे। श्रद्धेय प्रवर्तक श्री जी के सान्निध्य में सामुहिक बैठक हुई और साध्वाचार पर चिन्तन-मनन हुआ।

उत्साह और प्रसन्नता की मंगलवेला में प्रवर्तकपद महोत्सव सम्पन्न हो गया।

प्रवर्तक पद चादर महोत्सव पर ही अहमदनगर से आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म. द्वारा प्रेषित "उपाध्याय पद घोषणा पत्र" आया। इस घोषणा पत्र से श्रमण समुदाय में पारस्परिक गतिरोध उत्पन्न हो गया जो आगे चलकर विराट विवाद के रूप में उभरा।

अस्तु! श्रमण-श्रमणी वृन्द मेरठ से विदा होने लगे।

बड़ौत की ओर

मेरठ से विहार करके श्रद्धेय चरण चरिनायक खतौली शामली, मुजफ्फर नगर, कांधला होते हुए बड़ौत पहुंचे। नव उद्घोषित उपाध्याय श्री मनोहर मुनि जी म. कुमुद भी बड़ौत पधारे। एस.एस. जैन श्री संघ बड़ौत की ओर से "उपाध्याय पद प्राप्ति वर्धापन समारोह" आयोजित किया गया।

बड़ौत से आप श्री जी ऐलम, कान्धला, शामली होते हुए गंगोह पधारे। यहं से यमुना पार करके यमुनानगर पधारे। माडल टाऊन उपनगरीय क्षेत्रों को स्पर्शते हुए विलास पुर, सढ़ौरा, मुलाना होते हुए अम्बाला छावनी पधारे। यहां पर उपाध्याय श्री मनोहर मुनि जी से मिलन हुआ। जैन नगर होते हुए अम्बाला शहर उपाश्रय में पधारे।

अम्बाला से उपाध्याय श्री जी के साथ राजपुरा, सरहिन्द, गोविन्दगढ़, खन्ना होते हुए लुधियाना पधारे।

अभूतपूर्व स्वागत समारोह

लुधियाना नगर में महासभा पंजाव तथा एस.एस. जैन संघ लुधियाना की ओर से पूज्य उपाध्याय प्रवर तथा श्रद्धेय चरितनायक का अभूतपूर्व स्वागत समारोह आयोजित किया गया। पूरे नगर को दुल्हन की तरह सजाया गया था। १०८ भव्यतम द्वारों का निर्माण कराया गया था समय थम सा गया था। नगर का आबालवृद्ध आपके आगमन पर चमत्कृत सा अनुभव कर रहा था।

उपाध्याय पद को लेकर श्रमण समुदाय में अभी भी गतिरोध कायम था। लुधियाना श्री संघ तथा वहां विराजित मुनिराजों ने उपाध्याय श्री में अपनी आस्था प्रगट की तथा यहां पर पुनः उपाध्याय पद की घोषणा की।

हजारों की जनसंख्या मौजूद थी। विद्वद्रत्न श्री रत्नमुनि जी म. ने इसी अवसर पर श्रद्धेय चरितनायक को "इतिहास केसरी" पद से विभूषित किया।

लुधियाना का प्रवास अत्यन्त मनमोहक रहा।

बड़ौत वर्षावास

आप पूर्व में ही बड़ौत श्री संघ का वर्षावास मान चुके थे। फलतः लुधियाना से अहमदगढ़ मण्डी, मालेर कोटला, संगरूर, घग्गा, पातड़ां, खन्नोरी, टोहाना, नखाना, कैथल, असंध, पानीपत, गन्नौर, छपरौली होते हुए बड़ौत वर्षावास हेतु पधारे।

नगर निवासियों ने पलक-पांवड़े बिछाकर आपका स्वागत किया। बड़ौत नगर में यह आपका द्वितीय वर्षावास था। इससे पूर्व सन् १९५७ में आपने यहां वर्षावास किया था। बड़ौत व्यापार का केन्द्र तो है ही जैनधर्म का गढ़ भी है। यहां पर १५०० से २००० तक जैन घर हैं। चिकित्सा एवं शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था है। अनेक जैन कॉलेज और विद्यालय हैं।

आत्मसिद्धि शास्त्र तथा कल्याण मंदिर स्तोत्र पर आपके प्रभावक प्रवचन होते रहे। आबालवृद्ध में जागृति आई। तप-जप और धर्मप्रभावना अभूतपूर्व हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय पद का विवाद वर्षावास में भी पूर्वगति से चलता रहा।

आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म. ने कान्फ्रेंस के पांच सदस्यों – श्री हस्तीमल मुणोत, निर्मल जैन आडिटर-रिपोर्टर, मेहता जी (इन्दौर) चांदमल चौपड़ा ब्यावर, एक गुजराती श्रावक का एक डेपुटेशन पंजाब की स्थिति समीक्षा के लिए भेजा। मुख्य मुनिराजों के पास होता हुआ यह डेपुटेशन आप श्री के चरणों में पहुंचा। आपसे विचार विमर्श करके यह डेपुटेशन आचार्य श्री के पास पहुंचा और पंजाब की स्थिति की आधी अधूरी रिपोर्ट आचार्य श्री के समक्ष रखी।

इस रिपोर्ट के बाद आचार्य श्री ने उपाध्याय पद को निरस्त कर दिया। इस सम्बन्ध में अधिसूचना जारी कर दी गई।

श्रद्धेय चरितनायक ने इस निरस्तिकरण का विरोध किया और इस संदर्भ की सूचना द्रुतगति से आचार्य श्री को पहुंचा दी गई।

यहां से उपाध्याय पद का विवाद चरम पर पहुंच गया। फलतः आपने तथा उपाध्याय पद के समर्थक मुनियों तथा साध्वियों ने श्रमण संघ से त्याग पत्र दे दिया तथा "आचार्य अमरसिंह जैन श्रमण संघ" का गठन किया गया। इस संघ के प्रमुख बने श्री रत्नमुनि जी म.। श्री मनोहर मुनि जी को उपाध्याय तथा आपको मंत्री पद पर नियुक्त किया गया।

वर्षावास की समाप्ति पर श्रद्धेय चिरतनायक खेकड़ा, लोनी होते हुए राजधानी दिल्ली में पधारे। शाहदरा होते हुए चान्दनी चौक दिल्ली आये। यहां पर सेवाभावी श्री प्रेमसुख जी म., श्री रवीन्द्र मुनिजी म. आदि मुनिराजों से मंगल मिलन हुआ।

चान्दनीचौक से सदर बाजार, कोल्हापुर रोड़, सब्जीमण्डी, शक्तिनगर आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए वीरनगर पधारे। वहां से कुण्डली, खेवड़ा, पिपली खेड़ा, गन्नौर, समालखा, घरोंडा, करनाल, तरावड़ी, नीलोखेडी, कुरुक्षेत्र, शाहवाद, मारकण्डा होते हुए जमुनानगर पधारे। वहां से आप श्री अम्वाला पधारे।

अम्बाला से बनूड़, खरड़, कुराली, रोपड़ आदि क्षेत्रों में धर्मगंगा प्रवाहित करते हुए बलाचौर पधारे। यहां पर उपाध्याय श्री जी से आपका पुनर्मिलन हुआ। यहां पर यहीं के श्रावक श्री सरदारी लाल जैन की पुत्री महासती श्री मीना जी म. की निश्राय में दीक्षित हो रही थी। सो दीक्षा समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

दीक्षा सम्पन्न कर आप श्री उपाध्याय प्रवर श्री जी के साथ नवांशहर होते हुए होशियारपुर पधारे। यहां पर पूज्य प्रवर पं. रत्न प्रवर्तक श्री शुक्ल चन्दजी म. की पुण्य तिथि त्यागतप और धर्मप्रभावना के साथ मनाई गई।

उपाध्याय पद विवाद अभी यथावत चल रहा था। श्री जे.डी. जैन के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल यहां आपके पास आया। पर कोई निर्णय न हो सका।

होशियारपुर से आप श्री उपाध्याय जी के साथ ही विचरण करते हुए आदमपुर होते हुए जालंधर शहर पधारे। जालंधर से उपाध्याय श्री ने लुधियाना तथा आप श्री ने पटियाला की दिशा में विहार किया।

पटियाला वर्षावास

आप श्री ने वर्ष १९८४ का वर्षावास पटियाला का स्वीकार किया था। सो जालंधर से आप पटियाला पधारे। आपने उपाश्रय में वर्षावास किया।

वर्षावास में पर्याप्त धर्मध्यान हुआ। पर्युषण के पर्व त्याग तथा तपाराधना के साथ मनाए गए।

यहां लाइब्रेरी में प्राचीन हस्तलिखित शास्त्र तथा पन्ने रखे हुए थे जिनको आपने सुव्यवस्थित किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पटियाला जैन धर्म की दृष्टि से एक ऐतिहासिक नगर है। यह वही नगर है जहां वि.सं. १९०५ अर्थात् लगभग १५० वर्ष पहले तपस्वी राज श्री जयन्ती लाल जी म. ने ८७ दिन का प्रलम्ब तप किया था। उस समय यहां जैन धर्म का शंखनाद गूँजा था। आचार्य श्री अमरसिंह जी म. प्रभृति अनेक मुनिराज तपस्वी जी के तप-उपलक्ष में यहां एकत्रित हुए थे। तत्कालीन पटियाला नरेश को भी जैन मुनियों के समक्ष नत होना पड़ा था।

३१ अक्तूबर को प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरागांधी की हत्या के बाद पटियाला में काफी तनाव बढ़ गया था। पूरे शहर को सेना ने अपने अधिकार में ले लिया था। पर श्रद्धेय चरितनायक की कृपा से कुछ भी अमंगल नहीं हुआ।

पटियाला वर्षावास में श्री जे.डी. जैन के नेतृत्व में जैन कांन्फ्रेंस तथा लुधियाना के कुछ सदस्य एक समझौता फार्मूला लेकर आप श्री जी के पास पहुँचे। इसके पीछे उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. की प्रेरणा थी।

फार्मूला था कि आप त्यागपत्र वापिस ले लें तो उपाध्याय पद को पुनः बहाल करा दिया जाएगा। साथ ही ये सदस्य आचार्य श्री जी का एक बन्द पत्र भी लेकर आए थे जिसके लिए शर्त थी कि उसे एक महीने के पश्चात् खोला जाए।

श्रद्धेय चरितनायक ने मुनि संघ तथा श्रावक संघ के अधिकारियों का यह प्रस्ताव भी संघ संगठन के नाते स्वीकार कर लिया। पर बाद में यह योजना भी असफल ही सिद्ध हुई।

इस पर भी विवाद बढ़ता ही चला गया।

अस्तु ! वर्षावास सानन्द सम्पन्न हुआ। वर्षावास समाप्ति के दिन श्रद्धेय चरितनायक श्री सुमनमुनि जी म. के चरणों में वर्षों से साधना रत विरक्त श्री सुमन्तभद्र जी की दीक्षा सम्पन्न हुई। यह कार्तिक सुदि पूर्णिमा का शुभ दिन था।

श्री कृष्णकुमार जी, मुनि सुमन्त भद्र बने। दीक्षा लेते ही आप गुरु सेवाराधना में तल्लीन हो गए। आज भी आप श्रद्धेय गुरुदेव चरितनायक श्री सुमन मुनि जी म. की सेवा में अहर्निश संलग्न रहते हैं।

पटियाला से आप श्री जी रायकोट पूर्ज श्री रूपचन्द जी म. की समाधिस्थल पर पधारे जहां पूज्य श्री की स्मृति में पुण्य दिवस मनाया गया।

वहीं पर फरीदकोट का श्री संघ आगामी वर्ष के वार्षावास की विनती लेकर आपके श्री चरणों में पहुँचा जिसे साधुमर्यादानुसार आपने स्वीकार कर लिया।

रायकोट से विहार करके आप श्री सुधार, मुल्लांपुर होते हुए लुधियाना पधारे। उपनगरों में विचरण किया। अगर नगर नौहरियामल का बाग, रूपा मिस्त्री स्ट्रीट – मुख्य स्थानक में आए। पूज्यवाद श्री रत्नमुनि जी म. के दर्शन किए।

वहां से आप सुन्दरनगर पधारे जहां उपाध्याय श्री मनोहर मुनि जी म. 'कुमुद' के दर्शन किए। सुन्दर नगर में ही "आचार्य अमरसिंह जैन संघ" की आम बैठक हुई। उसमें बाहर के अनेक क्षेत्रों से भी श्रावक गण सम्मिलित हुए थे। श्रावक संघ के लिए सदस्यता फार्म भरवाने का निर्णय लिया गया।

यहां पर उपाध्याय श्री जी, आप श्री जी, डॉ. साध्वी श्री अर्चना जी आदि कई श्रमण-श्रमणियां विराजित थे। अक्षय तृतीया पर्व समायोजित किया गया तथा तपस्विनी साध्वी जी के वर्षीतप का पारणा हुआ।

सुन्दरनगर से पुनः मुख्य उपाश्रय में आपका पदार्पण हुआ। फरीदकोट वर्षावास के लिए विहार का कार्यक्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनाया तो भयंकर गर्मी के प्रकोप के कारण लघुमुनि को ज्वर हो गया। फलतः चातुर्मास प्रारंभ होने से १० दिन रहते लुधियाना से चातुर्मास के लिए प्रस्थान किया।

फरीदकोट वर्षावास

श्रद्धेय चरितनायक, वर्ष १६८५ के मंगलमय वर्षावास के लिए मुल्लांपुर, जगरावां, मोगा, तलवंडी, रोड़े होते हुए फरीदकोट पधारे। आबालवृद्ध स्वागत के लिए उमड़ पड़ा। भव्य स्वागत के साथ वर्षावास हेतु आपका नगर प्रवेश हुआ।

चातुर्मास में तप-त्याग की अभूतपूर्व बहार आई। आपके साथ एक मुनि थे श्री भक्तमुनिजी म. उन्होंने ५१ दिन की तपस्या की। पारणा महोत्सव समायोजित किया गया।

यह वर्षावास ऐतिहासिक सिद्ध हुआ।

फरीदकोट से श्रद्धेय चरितनायक कोटकपूरा पधारे। निर्माणाधीन स्थानक गुरुदेव की मंगलमयी सम्प्रेरणा से पूर्णाहुति की दिशा में अग्रसर हुआ। स्थानक भवन के हाल का "अमरसिंह प्रेयर हॉल" नामकरण हुआ।

चरितनायक के चरणों में मुमुक्षु की दीक्षा

कोटकपूरा से श्रद्धेय श्री सुमन मुनि जी म. जैतों मण्डी पधारे। जैतों जैन समाज का एक समृद्ध भक्ति भावना वाला क्षेत्र है। यहां के अध्यक्ष श्री विजय कुमार जी जैन एक धर्मश्रद्धा सम्पन्न श्रावक हैं।

यहीं पर आपके श्री चरणों में खेयोवाली ग्राम के निवासी मुमुक्षु श्री मेजरसिंह ने जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की। यह २५ दिसम्बर सन् १६८५ का मंगलमय दिवस था। नवदीक्षित मुनि का नाम श्री गुणभद्र मुनि घोषित किया गया।

दीक्षा के बाद भी कुछ समय आप यहां विराजित रहे। भठिण्डा का श्री संघ वर्षावास की प्रार्थना के साथ आपके चरणों में उपस्थित हुआ जिससे द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव की मर्यादा रखते हुए आपने स्वीकार कर लिया।

गीदड़बाह में

जैतों से श्रद्धेय चरितनायक भठिण्डा को स्पर्शते हुए मण्डी गीदड़बाह पधारे। यहां पर कविचक्रचूड़ामणि श्रद्धेय श्रीचन्दन मुनि जी म. के दर्शन हुए। श्रद्धेय कवि जी म. ने आपका गद्‌गद् हृदय से स्वागत किया। श्रद्धेय श्री के वात्सल्य तथा कृपा भाव से आप कृतकृत्य बन गए।

यहीं पर एक वृद्ध संत थे श्री खजानचन्द जी म. जो उन दिनों रुग्ण चल रहे थे। आप सभी ने उनकी पूर्ण सेवा का लाभ लिया। संयोग से आप चारों मुनिराज भी गीदड़बाह में अस्वस्थ हो गए। स्थानक के नीचे ही डा. घई का क्लिनिक है। डा. साहब ने सेवा प्रसंग पर तन-मन-धन से सेवा लाभ लिया।

वर्षावास काल सन्निकट था। आप श्री अनुभव कर रहे थे कि गीदड़बाह में मुनियों को कम से कम एक सेवाभावी मुनि की अति आवश्यकता है। सो आपने अपने नवदीक्षित शिष्य श्री गुणभद्रमुनि जी म. को मुनियों की सेवा में समर्पित कर दिया।

भठिण्डा वर्षावास

गीदड़बाह से श्रद्धेय चरितनायक भठिण्डा के लिए प्रस्थित हुए। श्रावक-श्राविकाओं के विशाल समूह ने आपका वर्षावास प्रवेश पर भव्य स्वागत किया।

वर्षावास काल में अनेक धार्मिक गतिविधियाँ सम्पन्न हुई। आपके पावन सान्निध्य में "श्री लाला भोजराज जैन स्कूल" की स्थापना तथा शिलान्यास उनके ही पुत्र तथा पुत्रवधु द्वारा सम्पन्न किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्म–शुक्ल जयन्ति तप और सामायिक आराधना के द्वारा सम्पन्न हुई। इसी अवसर पर आपने आचार्य श्री अमरसिंह जी म. का ४×३ फीट का एक तैल चित्र बनवाकर पंजाब महासभा के अधिकारियों श्री टी. आर.जैन आदि को "श्री अमर जैन हॉस्टल चण्डीगढ़" में समर्पित करने के लिए प्रदान किया।

आचार्य देव का सम्मेलन हेतु आमंत्रण

वर्षावास सानन्द सम्पन्न कर आप श्री ने तपामण्डी के लिए विहार किया। मार्ग के गांव में सरपंच के घर रात्री विश्राम करके दूसरे दिन आप श्री ने तपा मण्डी के लिए विहार किया।

तपामण्डी होते हुए श्रद्धेय चरितनायक बरनाला पहुंचे। वहां से मालेरकोटला पधारे ! यहां पर उपाध्याय श्री मनोहर मुनि जी म. कविरत्न श्री सुरेन्द्रमुनि जी म. तथा महासती कुसुमलता जी म. विराजित थे। महासती जी के पास वैरागन सुमन जैन दीक्षा अंगीकार कर रही थी। सो आप श्री भी दीक्षा समारोह में सम्मिलित हुए।

पूना की ओर

मालेरकोटला से श्रद्धेय चरितनायक श्री सुमनमुनि जी म. अपने दो शिष्यों के साथ रायकोट श्री नौबतराय जी म. के श्री चरणों में पधारे। महामुनि के दर्शनलाभ से तन-मन-नैन को तृप्त कर बरनाला, बुढ़लाडा, मण्डी, भीखी आदि क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुए आचार्य देव के आमंत्रण-आशीष की डोर में बंधे पूना (महाराष्ट्र) की ओर यात्रायित हुए।

पूना पदार्पण

ई. सन् १९८७, १८ अप्रैल को साधना सदन, नानापेठ में परम श्रद्धेय का पदार्पण हुआ! 'विहार' को भी विश्राम मिला।

इससे पूर्व श्री कांतिलालजी चौरड़िया के मकान पर, श्रद्धेय डॉ. श्री शिवमुनि जी म. एवं श्री प्रवीणऋषिजी म. अन्य मुनिवरों के साथ पधारे, आचार्य श्री ने उन्हें स्वागतार्थ भेजा था।

साधु-साध्वियों की अधिकता के कारण 'धनराज हायर सैकण्डरी स्कूल' में आगत संतों के साथ आचार्य श्री भी वहीं पधारे। वहीं पर प्रवर्तक श्री रूपचन्दजी म., उपाध्याय श्री विशालमुनि जी म., उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. आदि वरिष्ठ सन्त अपनी-अपनी शिष्य-सम्पदा के साथ पधारे। दि. २२ अप्रैल से २८ अप्रैल तक वहीं स्थिरता रही।

वरिष्ठ सलाहकार श्री जीवनमुनि जी म., प्रवर्तक श्री उमेशमुनि जी म. 'अणु' आदि संत भी वहीं पधारे।

साध्वी प्रमुखा श्री केसरदेवी जी म., साध्वी श्री प्रमोदसुधा जी म., साध्वी डॉ. श्री अर्चना जी म. (महाराष्ट्र) साध्वी श्री अर्चना जी म. (पंजाबी), साध्वी श्री पुष्पावतीजी म., साध्वी श्री पुनीत ज्योति जी, साध्वी श्री अक्षयश्री जी, एवं चन्दनाश्री जी आदि साध्वियों का पदार्पण भी हो गया, पूना में।

आगत संत-सतियों की संख्या लगभग ३५० थी।

स्कूल में प्रातः प्रार्थना, प्रवचन होता था, रात्रि में सामूहिक प्रवचन भी! पूना का धर्मप्रेमी अपार जनसमूह इन कार्यक्रमों से लाभान्वित हुआ करता था।

दिनांक २९-४-८७ की पुनीत प्रभातकालीन वेला में वहाँ से विहार करके महाराष्ट्र मण्डल के विशाल स्कूल (मुकुन्द नगर) पधारे। सम्मेलन की समस्त कार्यवाही यहीं सम्पन्न होनी थी। सैकड़ों संतों एवं हजारों आगन्तुकों के भोजनादि की व्यवस्था भी यहीं रखी गई थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका : पूना आगमन की

वस्तुतः महामहिम आचार्य प्रवर श्री आनन्दऋषि जी म.सा. ने श्रद्धेय मुनि श्री सुमनकुमार जी म.सा. को इस सम्मेलन हेतु विशेषरूपेण आमंत्रित किया था। सर्वप्रथम आचार्य श्री ने जो प्रतिनिधि मंडल आपश्री को आमंत्रित करने पंजाब प्रेषित किया था उनमें सर्व श्री संचालालजी बाफणा (अध्यक्ष-श्री अ.भा.श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेन्स, पूना श्रमण संघ सम्मेलन समिति के अध्यक्ष श्री बंकटलालजी कोठारी, सम्मेलन समिति के कोषाध्यक्ष श्री बालचंदजी संचेती आदि तथा पंजाब महासभा के श्री टी.आर. जैन हीरालाल जी जैन, लुधियाना संघ के अध्यक्ष श्री हरवंशलालजी जैन, श्री वेदप्रकाश जी जैन आदि थे। आचार्य श्री का पत्र लेकर ये मुनि श्री को खोजते-खोजते तपामंडी और रामपुरा-फूल के मध्य एक छोटे से ग्राम में पहुँचे थे। वो भी ऐसे समय में जब पंजाब उग्रवाद के कारण बारूद के ढेर पर बैठा हुआ था, साहसी ही थे ये गणमान्य सज्जन !

सुखे-समाधे...

मुनि श्री उस छोटे से ग्राम में विहार जनित थकान मिटा रहे थे एवं विश्रांति पा रहे थे कि उपर्युक्त सज्जनों ने जाकर 'मत्थएण वन्दामि' के माध्यम से महाराज श्री को सचेत किया। सुखशान्ति पृच्छा के पश्चात् शिष्ट मण्डल ने आने का प्रयोजन बताते हुए आचार्य श्री का पत्र आपश्री के कर कमलों में प्रदान किया।

मुनि श्री ने पत्र को पढ़ा। पत्र में श्रमणसंघ के प्रवर्तक पं. रत्न श्री शुक्लचंद जी म. के श्रमण संघ के निर्माण एवं उसके संरक्षण के लिए प्रदान किये गये योगदान की चर्चा का समुल्लेख था तथा पूना श्रमण संघ सम्मेलन के शुभावसर पर आने का भावभीना आग्रह भी। श्रद्धेय मुनिवर का हृदय आस्था और कृतज्ञता से भर उठा तथा कुछ पलों के लिए दादागुरु श्री शुक्लचन्दजी म.सा. की स्मृति मन-मस्तिष्क में उभर आई।

आचार्य श्री की आज्ञा एवं निर्देश को परिप्रेक्ष्य में रखते हुए मुनिवर श्री ने 'सुखे समाधे' स्वीकृति प्रदान कर दी।

पूना की ओर प्रयाण

समय अल्प था तथा लगभग २२०० कि.मी. यात्रा तय करके पद-विहार करते हुए पूना पहुँचना था। स्वीकृति तो दे ही दी थी। पूना सम्मेलन में आने हेतु ऐसे सचिव डॉ. शिवमुनि जी म., प्रवर्तक भंडारी श्री पदमचंदजी म. आदि गणमान्य विशिष्ट मुनिवरों का भी आग्रह रहा था कि आपश्री को पूना सम्मेलन में अवश्यमेव पधारना है।

पंजाब-भटिंडा से चातुर्मास करके मालेर कोटला पधारे। जहाँ उपाध्याय श्री मनोहर मुनिजी म. विराजमान थे और साध्वी श्री कुसुमलताजी म. की पावन निश्रा में वैराग्यवती कुमारी सुमन की प्रव्रज्या के समारोह में सम्मिलित हुए।

विहार दर विहार

वहाँ से रायकोट, बरनाल, भीखी, बुढलाढ़ा, रतियां (हरियाणा) बरवाला, हाँसी, भिवानी, चरखी दादरी, नारनौल, इन क्षेत्रों को पावन करते हुए राजस्थान प्रान्त की ओर बढ़े। नाथों की ढाणी में उपप्रवर्तक श्री फूलचन्दजी म. ठाणा ३ से विराजमान थे, उनकी जन्म भूमि भी यही थी और यही स्थानक का भी निर्माण हुआ था। वहाँ से नीम का थाना, खण्डेला, हरमाड़ा, मदनगंज-किशनगढ़ होते हुए अजमेर पधारे। अजमेर एक सप्ताह की स्थिरता रही। वहाँ पर प्रवर्तक श्री पन्नालालजी म. की पुण्य तिथि-समारोह में सम्मिलित होने का भी शुभावसर मिला। इसी दिन मुनि श्री सुमनकुमार जी म.सा. की जन्म-जयंति का भी सुखद प्रसंग भी अनायास ही उपस्थित हो गया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहसास...!

वहाँ से नसीराबाद छावनी, भीलवाड़ा, चितौड़गढ़ पधारे। चित्तौड़गढ़ का भी अवलोकन किया। म्यूजियम एवं वहाँ के खंडहरों को देखकर इतिहास के माध्यम से पढ़े अतीत में खो गये। संसार की नश्वरता और जीवन की क्षणभंगुरता का मुनिश्री को अहसास हुआ। कुछ पलों के लिए वे चित्तौड़गढ़ का वैभव देखकर उसकी प्राचीनता में खो गये... कहाँ राजाओं के राज थे यहाँ, कहाँ खंडहरों में तबदील हो गये !

राजस्थान से मध्यप्रदेश में

चित्तौड़गढ़ से निम्बाहेड़ा होते हुए मध्यप्रदेश की सीमा में पधारे। नीमच, जावरा, मन्दसौर, रतलाम, इन्दौर पधारे। रतलाम में जैन दिवाकरजी के संत श्री प्यारेलालजी म. ठाणा २ के दर्शन हुए। इन्दौर में तपस्वीरत्न श्री मेघराजजी म., मुनि श्री सुदर्शनलालजी, पं. रत्न श्री उदयमुनिजी म. और श्री रमेशमुनि जी म. के सुशिष्य श्री विजयमुनि जी म. आदि सन्त विद्यमान थे। उनके दर्शन एवं सान्निध्य पाया। ये सभी सन्त गण भी पूना की ओर प्रस्थान करने वाले थे।

स्मृति हो आयी...

इन्दौर में ही आचार्य श्री घासीलाल जी म. के शिष्यरत्न स्थविर श्री कन्हैयालालजी म. का ऑपरेशन हुआ था। दर्शन एवं सुखसातार्थ मुनि श्री सुमनकुमार जी म. अस्पताल पधारे। आपश्री को सर्वप्रथम देखकर मुनि श्री का हृदय गद्‌गद् हो उठा और आचार्य श्री आत्माराम जी म. की स्मृति हो आयी। ऐसा ही कद, ऐसी ही मीठी वाणी और ऐसी ही आगम उक्तियाँ उनके मुख से निर्झरित हो रही थी। उन्होंने अजमेर सम्मेलन के संस्मरण सुनाते हुए आचार्य श्री कांशीराम जी म., पं. रत्न श्री शुक्लचन्द्र जी म. आदि के बारे में भी चर्चा की। संस्मरण सुनाये। श्री कन्हैयालालजी म. मध्याह्न में एक बजे मांगलिक आयोजन करते थे। इस समय महावीर भवन का हॉल खचाखच भर जाता था। ये मुनिश्रेष्ठ शान्त प्रकृति के धनी थे एवं दान्त तपस्वी थे। (कुछ ही माहों के पश्चात् मुनिश्रेष्ठ का विचरण करते हुए सड़क दुर्घटना में स्वर्गवास हो गया।)

महाराष्ट्र में विचरण

मध्यप्रदेश का अंतिम नगर तथा महाराष्ट्र सीमा के निकट 'सेंधवा' मुनि श्री पधारे। वहाँ से धूलिया पधारे। यहाँ पर वरिष्ठ सलाहकार श्री जीवनमुनि जी म., श्री रूपेन्द्रमुनि जी म., प्रवर्तक श्री उमेशमुनि जी म. 'अणु' आदि संत-महात्माओं के दर्शन हुए। मालेगाँव में श्रमणसंघ के सचिव (वर्तमान में महामंत्री) श्री सौभाग्यमुनि जी म. 'कुमुद' का सम्मिलन हुआ। यहाँ सप्ताहांत स्थिरता रही। प्रातःकाल एवं रात्रि को लोढ़ा भवन में सार्वजनिक प्रवचन हुआ। यहीं पर श्री शांतिलालजी दूगड़ आदि नासिक संघ का प्रतिनिधि मंडल आया और परम श्रद्धेय मुनि श्री को नासिक पधारने की पुरजोर विनति की।

मालेगांव से सौदाना, उमराणा, चांदवड़[1] होते हुए नासिक पधारे।

सलाहकार पद

नासिक पहुँचने से पूर्व विहार यात्रा में आदिनाथ सोसायटी, पूना का शिष्ट मण्डल श्री अमरचंद जी गांधी के

१. यहाँ का संघ अत्यन्त ही धर्मप्रिय है। यहाँ पर मुनिवरश्री के तायां गुरु पंडित श्री राजेन्द्रमुनि जी म. एवं श्री दाताराम जी म. ठाणा २ चांदवड़ में चातुर्मासार्थ विराजमान रहे थे। चातुर्मास के पश्चात् ही चाँदवड़ में ही श्री राजेन्द्रमुनि जी म. का – स्वर्गवास हो गया था। उन्हीं की संस्मृति में जैन स्थानक भवन का नाम श्री राजेन्द्र मुनि स्मारक भवन रखा गया है। यहीं पर श्री दाताराम जी म. से मिलन हुआ। (कालांतर में श्री दाताराम जी म. का स्वर्गवास भी यही हुआ) अतः चाँदवड़ दो महापुरुषों की स्मृति-स्थली है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेतृत्व में आचार्य श्री के निर्देशानुसार उपस्थित हुआ और श्रमण संघ के "सलाहकार" पद हेतु आचार्य श्री का पत्र दिया।

संत-सम्मिलन : प्रशंसनीय योगदान

नासिक में उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म. सचिव श्री देवेन्द्रमुनिजी म., उपाध्याय श्री विशालमुनि जी म., पंजाबी श्री विजयमुनि जी म., आदि संतों का सम्मिलन हुआ। एक सप्ताह स्थिरता रही। धर्मध्यान की पावन गंगा बहती रही। साध्वी मंडल भी वहाँ समुपस्थित था। इसी शुभ प्रसंग पर वहाँ के जीर्ण-शीर्ण जैन स्थानक के पुनर्निमाण की योजना का श्री गणेश हुआ। श्री शांतिलालजी दूगड़ का योगदान प्रशंसनीय रहा।

पूना के सन्निकट

नासिक से उपाध्याय श्री पुष्करमुनि म.सा. ने एवं श्री सुमनकुमार जी म.सा. ने अपनी-अपनी शिष्य सम्पदा के साथ, साथ-साथ विहार प्रारंभ किया। महावीर जयंति के पश्चात् द्रुतगामी विहार करते हुए पूना के सन्निकट आलिन्दी पहुँचे। आलिन्दी से कांतिलालजी चौरड़िया के बंगले पर पधारे।

उपर्युक्त थी – पूना आगमन की प्रक्रिया!...

❖ ❖ ❖

शांति-रक्षक पद

महाराष्ट्र मंडल के विद्यालय के प्रांगण में ठहरे मुनिवरों की रात्रि में सम्मेलन के लिए अनौपचारिक विद्यागोष्ठी एवं विचार-विमर्श हुआ करता था।

एकदा सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् आचार्य श्री ने पण्डितरत्न श्रद्धेय श्री सुमनकुमार जी म. को बुलवाया और सम्मेलन संचालन हेतु 'शांति-रक्षक' पद का निर्वहन करने का आग्रह किया।

मुनि श्री ने विनम्रता के साथ निवेदन किया कि आचार्यवर! मेरी प्रकृति एवं प्रवृत्ति से आप परिचित हैं, ही, मेरे में सहिष्णुता भी अल्प है अतः आप यह पद किसी अन्य को समर्पित करें। यही उचित रहेगा।

आचार्य श्री ने प्रेमभरे शब्दों में कहा – "मैंने कुछ सोच-समझ कर ही आपको यह पद देना चाहा है अतः इसे स्वीकृत करें।" आचार्य श्री के अत्याग्रह पर मुनि श्री जी को नतमस्तक होना पड़ा। तदनंतर वरिष्ठ मुनियों की सभा गोष्ठी हुई। जिसमें मुनि श्री जो विधिवत् 'शांति-रक्षक' का पद प्रदान किया गया। मुनिश्री जी ने भी कहा – शांतिरक्षक जो भी नियम बनाये, जो भी संचालन विधि अपनावे वह स्वीकार करनी होगी, अन्यथा मुझे त्याग पत्र देना ही उचित प्रतीत होगा।

शांतिरक्षक पद की घोषणा प्रवर्तक श्री रूपचंदजी म.सा. ने की।

दायित्व निर्वहन

शांतिरक्षक श्री का दायित्व इस प्रकार रहा – सभा में प्रश्न प्रस्तुत करना, सबसे उत्तर एकत्र करना, उन पर निर्णय सुनना। साथ ही साथ दर्शक मण्डल (साधु-साध्वी) द्वारा भेजी गई शंकाओं का निराकरण करना। सभा को हर प्रकार का सहयोग देना एवं लेना, सभा के नियमों की परिपालना करवाना आदि-आदि।

कोई भी सदस्य उच्छृंखलता करे और बिना इजाजत के बोलने का दुस्साहस करे तो उसे रोकना, उसके विरुद्ध निंदा-प्रस्ताव का अधिकार शांतिरक्षक को है।

शांतिरक्षक का सर्वोच्च दायित्व यह होता है कि समन्वय पद्धति से आये हुए सभी प्रस्तावों को शांतिपूर्ण ढंग से पारित करवाना। ..लोकसभा या राज्यसभा में "राज्य-सभा-अध्यक्ष" का जो स्थान एवं उत्तरदायित्व होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है वही दायित्व 'शांतिरक्षक' के भी होते हैं।

पण्डितरत्न श्री सुमनमुनि जी म. ने इन दायित्वों का समग्र रूपेण निर्वहन किया और सम्मेलन में पूर्णतया शांति बनाये रखने के सद्प्रयास भी किये।

१० दिवसीय श्रमण संघ सम्मेलन की प्रक्रिया अन्ततः सानंद सम्पन्न हुई।

प्रशंसनीय योगदान

मुनिश्री द्वारा सुचारू रूप से शांतिरक्षक पद भार संभालने एवं दायित्व निभाने के लिए कितने ही आत्मीय संतों श्रद्धालुओं के संस्तुति पत्र मिले। कतिपय नमूने इस प्रकार है –

"पूना सम्मेलन में शांतिरक्षक" के पद का गौरव प्राप्त कर पंजाब को आपने जो सम्मान दिलवाया है उसकी जितनी भी सराहना की जाए कम है। आप जैसे सुयोग्य पंजाबी श्रमण से ऐसा ही आशा थी। पुनः पुनः लक्षाधिक साधुवाद **– चंदनमुनि 'पंजाबी' (कविरत्न)**

आपने जो पंजाब का नाम उज्ज्वल किया है, वह इतिहास में अमर रहेगा। तीन सौ संत-सतियों में 'शान्तिरक्षक' के पद को आपने जिस कुशलतापूर्वक निभाया है वह स्वयं एक अविस्मरणीय घटना है। आप युग-युग जीएं और ख्याति की ओर कदम बढ़ाते ही जाएं।

– टी.आर. जैन, लुधियाना

महती भूमिका

सम्मेलन की मूल कार्यवाही के पश्चात् युवाचार्य पद की परिचर्चा हेतु विशेष सभा प्रारंभ हुई। युवाचार्य हेतु तीन नामों की चर्चा हुई। दो नाम सर्व सम्मति से दो वर्ष पूर्व ही लिये जा रहे थे। गुप्त पद्धति से चिह्नित करके निर्णय करना भी उचित नहीं था क्योंकि युवाचार्य पद गौरवपूर्ण पद है एवं अनुशास्ता का पद है।

सर्वसम्मति से युवाचार्य की बात सभा पटल पर उभरी तो दो नामों पर खुलकर चर्चा हुई, वे नाम थे – (i) सचिव श्री देवेन्द्रमुनि जी म. एवं सचिव डॉ. शिवमुनि जी म.। इन दोनों में एक का चयन करना अत्यन्त कठिन काम था। इस समाधान के लिए उपाचार्य का नूतन पद सृजित करके एक को उपाचार्य और एक को युवाचार्य घोषित करने का प्रावधान आया।

प्रश्न तो पुनः समुपस्थित था कि किसे युवाचार्य और किसे उपाचार्य बनाया जाए?

उसका समाधान था – "जिसका संयमकाल अधिक है, वह उपाचार्य होगा और जिसकी संयम पर्याय कम है वह युवाचार्य।"

फिर यह प्रश्न भी उभरा कि युवाचार्य का पद ही समाप्त कर दिया जाए। किंतु समय की महत्ता को देखते हुए पद यथावत् रहने दिया। तदनंतर उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी महाराज को एवं युवाचार्य डॉ. शिवमुनि जी महाराज को घोषित किया गया।

इस यक्ष-प्रश्न के समाधान में भी परम श्रद्धेय मुनि श्री की महती भूमिका रही।

प्रस्थान पूना से

पूना श्रमण सम्मेलन की कार्यवाही सुसम्पन्न होने के पश्चात् आचार्य प्रवर सहित सन्तवृन्द का आदिनाथ सोसायटी में पदार्पण हुआ। यहीं से संतप्रवर अपनी-अपनी गन्तव्य-दिशा की ओर प्रस्थित हुए।

आचार्य प्रवर श्री ने अहमदनगर हेतु, उपाध्याय श्री केवलमुनिजी महा. ने सिकन्दराबाद के लिए, उपाध्याय श्री विशालमुनि जी म. ने धूलिया के लिए, सलाहकार सुमतिप्रकाश जी म. ने आलिन्दी के लिए, युवाचार्य श्री शिवमुनि जी ने मुंबई के लिए, उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी म. ने नगर की ओर प्रस्थान किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवर्त्तक श्री रूपचंद जी म. का आगामी वर्षावास साधना सदन पूना में था तथा श्रद्धेय सलाहकार मंत्री जी म.सा. का आगामी वर्षावास आदिनाथ सोसायटी पूना में था अतः वहीं ठहरे।

परम श्रद्धेय मुनि श्री जी द्रुतगति से विहार करने के कारण एवं सम्मेलन की कार्यवाही के कारण अस्वस्थ हो गये थे अतः एक माह की स्थिरता रही। तदनंतर येरवड़ा तक आचार्य श्री के साथ विहार यात्रा कर पुनः आदिनाथ सोसायटी पधार गये।

चतुर्मासार्थ पूना-प्रवेश

सलाहकार मंत्री श्री सुमन मुनि जी महाराज ने अपने शिष्य समुदाय के संग आदिनाथ सोसाइटी पूना में चातुर्मास हेतु दिनांक ६-७-८७ दिन गुरुवार प्रातः ६ बजे मंगल प्रवेश किया। इस शुभ अवसर पर ब्राह्मी बालिका संघ की बालिकाओं ने मंगल कलश द्वारा महाराज श्री जी का भव्य स्वागत किया। तदनंतर जुलूस सभा के रूप में परिणित हो गया।

पूना के माननीय महापौर श्री चन्द्रकान्तजी छाजेड़ एवं डॉ. कान्तिलाल जी संचेती स्वागत समारोह के मुख्य अतिथि थे।

पूना संघ (साधना सदन) के अध्यक्ष श्री कचरदास जी पोरवाल तथा (सादडी संघ के महामंत्री) श्री पोपटलाल जी सोलंकी ने महाराज श्री का परिचय दिया तथा श्रमण सम्मेलन के संचालन में शान्तिरक्षक के गौरवपूर्ण दायित्व को निभाने का श्रेय दिया।

श्रीवीतराग संघ के पदाधिकारी भाई-बहिनों ने भी महाराज श्री जी के भव्य स्वागत में भाग लिया।

महाराज श्री ने अपने स्वागत का उत्तर देते हुए भाषण में कहा कि यह स्वागत मेरा नहीं बल्कि साधुता का है, गुरुदेव का तथा महाराष्ट्र में विराजित पूज्य आचार्य देव का है। इस शरीर का स्वागत क्या हो सकता है? – 'मैं किस योग्य हूँ यह मुझे स्वयं को जानने की भी अभी बहुत जरूरत है।' पूना संघ और सम्मेलन की उपलब्धि का उल्लेख करते हुए बताया कि सम्मेलन ने संगठन को दृढ़ता प्रदान की है जो शायद अर्द्धशताब्दी पर्यन्त शिथिलता नहीं हो सकेगी। यह अन्य उपलब्धियों से सर्वोपरी है।

❊ ❊ ❊

तदनंतर चातुर्मासिक कार्यक्रम सम्पन्न होने लगे। धर्म एवं तप-त्याग की त्रिपथगा शाश्वत बहने लगी। प्रातः प्रवचन "आत्मसिद्धि शास्त्र" पर नियमित होने लगे। मध्याह्न में तत्त्वार्थ सूत्र का पारायण तत्त्व जिज्ञासुओं को विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति से करवाते थे। प्रातः प्रार्थना के सुस्वर भक्ति रस ले वातावरण को पवित्र बना ही रहे थे।

श्रद्धालुओं का, दर्शनार्थियों का आवागमन प्रारंभ रहा।

पूना चातुर्मास

पूना संघ – आदिनाथ सोसायटी के पदाधिकारियों एवं कार्यकारी सदस्यों का आपसी विवाद को निपटाया मुनिश्री ने – परसरामजी चोरडिया – ट्रस्टी थे – सभी ने उनको इस्तीफे दिये और फिर पुनः पुनः कार्यकारीणी गठित हुई एवं पदाधिकारियों के चुनाव हुए। अमरचंदजी गांधी पुनः अध्यक्ष बने।

आचार्य श्रीने १६८६ में पूना चातुर्मास किया वहाँ स्थानक के सन्निकट ही भूमिखंड था – चातुर्मास के दौरान वहाँ पंडाल बनाया – पंडाल उठा दिया – दीवार नहीं तोड़ी गई। दीवार तोड़ने के लिए जब उपक्रम हुआ तो प्रश्न उठा कि यह जगह सोसायटी की है किन्तु स्थानक की भूमि का भाग भी उस में था। फलतः स्थानकवासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंदिरमार्गी के लिए संघर्ष की बात बनी, मुनिश्री ने सच्चाई को व्याख्यान में उजागर कर सुलह करवाई एवं स्थानक की भूमि स्थानक हेतु प्रदान की।

पर्युषण-पर्वाराधना

दि. २२/८ से पर्यूषण पर्व की आराधना विधिवत् आरंभ हुई इसमें प्रातः ६ बजे से ११ बजे तक अन्तकृत दशांग सूत्र और दोपहर २.३० बजे से ४ बजे तक कल्पसूत्रका वाचन महाराज श्री ने बहुत ही सुन्दर विवेचन के साथ किया।

इन दिनों में तपस्या की झड़ी का ठाट भी दर्शनीय था। उपवास, बेले, तेले, अठाई, नौ, तथा १५ उपवास तक की तपस्या तथा ऐकांतर और मासखमण तपस्या गुरु महाराज के आशीर्वाद से पूर्ण सफल हुई।

महापर्व संवत्सरी के दिन तो हॉल से बाहर मंडप में भी बैठने की जगह मुश्किल से मिल पाई। संघ ने अपनी ओर से पूरा प्रबन्ध किया। संवत्सरी का कार्यक्रम प्रातः ६ बजे से सायं ४.३० बजे तक निर्विघ्न रूप से चलता रहा।

इसी बीच में श्री रणजीतसिंह जी रचित आलोचना पाठ में भी लोगों की बहुत रुचि देखने को मिली।

ब्राह्मी बालिका मण्डल ने साँवत्सरिक गीतों से संवत्सरी पर्व का अभिनन्दन किया।

अन्त में श्री संघ ने संवत्सरी के अवसर पर सभी से सांवत्सरिक सम्बन्धी क्षमायाचना की।

विशेष उपलब्धि

श्री आदिनाथ स्थानक में ज्ञानालय की अति आवश्यकता थी। श्री पूनमचन्द जी नेमीचन्दजी सुराणा ने आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म.सा. के चरणों में ज्ञानालय की कमी को दूर करने का संकल्प किया था।

इस वर्ष महाराज श्री जी के चातुर्मास की पुण्य-स्मृति में स्व.पू. सौ. 'सुन्दरबाई पूनमचन्द जी सुराना' ज्ञानालय का उद्घाटन महापर्व पर्यूषण के प्रथम दिन दि. २२/८ शनिवार को प्रातः लगभग ६ बजे किया गया।

आत्म-शुक्ल जयन्ती

पूना चातुर्मासार्थ विराजित परम पू. श्रमण संघीय सलाहकार श्री सुमनमुनि जी म. आदि ठाणा के सान्निध्य में श्री आत्म – शुक्ल जयन्ती समारोह अति हर्षोल्लास सहित संपन्न हुआ।

इस शुभ अवसर पर संघ की विनती को स्वीकार करके 'सादड़ी सदन' पूना से प्रवर्तक श्री रूपचन्दजी महा. 'रजत', उप प्रवर्तक श्री विनयमुनि जी म. 'भीम', साधना सदन पूना से महासती श्री किरणप्रभाजी, श्री ज्ञानप्रभा जी, शिवाजी नगर (डेकन) से श्री केशरकंवरजी म. की सुशिष्या महासती श्री कौशल्याजी एवम् महासती श्री मन्जुश्री जी म. ने पधार कर समारोह की शोभा में वृद्धि की।

नेत्र चिकित्सा शिविर

इस जन्म – जयन्ती के शुभ अवसर पर श्री आदिनाथ स्थानकवासी संघ तथा वीतराग सेवा संघ (साधना सदन) ने निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर का आयोजन किया। इसमें लगभग ३२५ नेत्र रोगियों ने दवाई तथा चश्मों का लाभ लिया। समाज सेवा का यह सुअवसर संघ को प्राप्त हुआ।

श्रद्धांजलि

इस शुभ अवसर पर आचार्य श्री जी की १०५ वीं तथा पंजाब प्रवर्तक पं. श्री शुक्लचन्द जी म. की ६२ वीं जन्म – जयन्ती पर स्वर्गीय प्रवर्तक पं. श्री शुक्लचन्दजी म. के प्रपौत्र शिष्य मुनि श्री सुमन्तभद्र जी 'साधक' ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ. भगवन्त के आध्यात्मिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की तथा पं. श्री शुक्लचन्दजी म. की सरलता एवं कर्त्तव्यनिष्ठा पर प्रकाश डाला।

इसके पश्चात् महासती श्री ज्ञानप्रभा जी म., महासती श्री कौशल्याजी म., महासती श्री मंजू जी म. ने दोनों महापुरुषों के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनकी दिनचर्या, संयमी जीवन एवं कर्त्तव्यपरायणता पर विशेष जानकारी दी।

उप प्रवर्तक श्री विनयकुमार जी म. (भीम) ने एक सच्चे सन्त के रूप में स्व आचार्य भगवन्त एवम् प्रवर्तक श्री जी के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की। सलाहकार उप प्रवर्तक श्री सुकनमल जी म. ने बताया कि भारत भूमि साधु – सन्तों की भूमि रही है। समय-समय पर अनेक महान् आत्माएं आती है; जो संसार में भटके लोगों को भगवान की वाणी के द्वारा सत्पथ दिखाते हैं। उन्होंने आचार्य श्री के स्वाध्यायी-जीवन पर विशेष जानकारी देते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि – हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।'

प्रवर्तक श्री रूपचन्दजी म. (रजत) ने पूना में कई दिनों से चल रहे गणपति दर्शन के बारे में बताते हुए कहा कि – गणपति शिवजी के पुत्र थे और आचार्य श्री आत्माराम जी म. शालिग्रामजी म. के शिष्य थे। शालिग्राम भी शिव का ही एक नाम है। इसलिए उन्होंने बताया कि जैसे विवाह, पुत्र जन्म, गृह प्रवेश आदि मंगल कार्यों में पहले गणपति को मनाते हैं। इसी प्रकार श्रमणसंघ के प्रथम पट्टधर आचार्य के रूप में हम भी आचार्य श्री आत्मारामजी म. को मानते हैं और अब तो उन्हीं के पौत्र शिष्य डॉ. श्री शिवमुनिजी म. भी युवाचार्य पद से अलंकृत हैं। वे महान् थे, गुणवान थे, गुणों की खान थे। उनके प्रतिभाशाली जीवन पर मारवाड़ी भाषा में अपने विचार दिये। जनता सुनते-२ भाव विभोर हो गई। उन्होंने बताया कि शुक्ल ध्यान से आत्मा में आना ही आत्माराम है। आत्मा ही राम हैं। प्रवर्तक श्री जी का सभी सम्मेलनों में कितना योगदान रहा, मरुधर केसरीजी म. से उनका कितना घनिष्ठ सम्बन्ध था इसका विस्तार सहित पूर्ण विवेचन देकर अपने हृदय की सच्ची श्रद्धा भेंट की।

पू. गुरूदेव श्री सुमनमुनि जी म. के विद्वता भरे विचार तो जन मानस के हृदय – पटल पर अंकित हो गये। उनकी सरल भाषा तथा मधुर वाणी से तो लोग पहले ही प्रभावित थे इस अवसर पर म. श्री जी ने दोनों महापुरुषों के जीवन की छोटी-बड़ी अनेकों घटनाओं से लोगों को अवगत कराया। महाराष्ट्र के लोगों को भी पता चला कि पंजाब में भी ऐसे-२ महापुरुष हुए हैं। पंजाब भी महापुरुषों से खाली नहीं है। तप. साध्वी श्री कृष्णा जी, साध्वी श्री भारती जी ने अपनी मधुर श्रद्धा गीत द्वारा, स्मरणाँजलि अर्पित की।

इस अवसर पर धूलिया, नासिक, सूरत, मद्रास तथा और भी आस-पास से सैकड़ों महानुभाव पधारे। सभी का श्री संघ ने माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया।

इस महोत्सव की अध्यक्षता श्री परसरामजी चौरड़िया ने की तथा नेत्र शिविर का उद्घाटन श्री नगराजजी मेहता (सादड़ी वालों) ने किया। उनका भी श्री वीतराग सेवा संघ ने जैन प्रतीक एवम् स्था. जैन संघ आदिनाथ के अध्यक्ष श्री अमरचन्दजी गांधी ने चन्दन माल्यार्पण द्वारा सत्कार किया।

ब्राह्मी बालिका मंडल की बालिकाओं ने भी मंगलाचरण एवं श्रद्धा-गीतों के द्वारा अपनी भावाञ्जलि अर्पित की।

✤ ✤ ✤

पूना से विहार करके परम श्रद्धेय सलाहकार मंत्री श्री सुमनकुमार जी म. शिष्य सम्पदा सहित सुपार्श्वनाथ सोसायटी में पधारे। वहीं पर बंबई से विहार यात्रा करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए एवं मध्यवर्ती क्षेत्रों को फरसते हुए श्री विजयमुनि श्री म. ठाणा ३ का पदार्पण हुआ। तदनंतर मार्केटयार्ड में श्री जीवराजजी मेहता सादड़ी के गृहनिवास को पावन किया। यहीं पर आचार्य श्री एवं उपाचार्य श्री द्वारा प्रवर्तक श्री का एक परिपत्र प्राप्त हुआ जिसमें यह उल्लेख था कि श्रमणसंघ से पृथक् संत को श्रमणसंघ में सम्मिलित किया जाय या नहीं? एतदर्थ परामर्श मांगा गया था।.. मुनिश्री ने पूर्व पृष्ठ भूमि का सांगोपांग वर्णन करते हुए उस पत्र का प्रत्युत्तर भेजा। संत थे – श्री राममुनि जी म. 'निर्भय'।

यहीं आचार्य-प्रवर श्री आनंदऋषिजी म. की दीक्षा जयन्ति पर अहमदनगर पधारने का आग्रहभरा आमंत्रण मिला। उपाचार्य श्री के एवं श्रमणसंघ सम्मेलन के अध्यक्ष वंकटलाल जी कोठारी, सुभाष जैन आदि के आमंत्रण को पूज्य मुनिराज ने नहीं स्वीकारा। इसके पीछे कारण यह रहा –

"पूना श्रमण-सम्मेलन में उपाचार्य एवं युवाचार्य का पद निर्णीत हो जाने के बाद यह सुनिश्चित किया गया था कि श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' श्रमण संघ के महामंत्री होंगे। परम श्रद्धेय श्री सुमनमुनि जी म. एवं श्री कुन्दनऋषिजी म. ये दोनों मंत्री पद पर प्रतिष्ठित रहेंगे किंतु उन्होंने ४-५ महिनों तक इन पदों की आधिकारिक कोई घोषणा नहीं की। घोषणा को यूं ही लम्बित बनाये रखा तथापि मुनि श्री सुमनकुमार जी म. को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी किंतु इनसे आग्रह किया कि आचार्य श्री आनंदऋषिजी म. की दीक्षा-जयन्ति पर अहमदनगर पधारो तो पद की विधिवत् घोषणा कर दी जाएगी।

मुनि श्री तो ठहरे पद से निस्पृही एवं स्पष्टवादी तो उन्होंने स्पष्टतः कहलवा दिया कि मैं पद के लिए कदापि अहमदनगर आने वाला नहीं। आप आचार्य श्री की दीक्षा जयंति सहर्ष मनायें किंतु मैं पद प्राप्ति का इतना इच्छुक नहीं हूँ कि वहाँ आने पर ही आप मुझे पद प्रदान करें एवं आधिकारिक घोषणा करें।.. मुनिश्री की यह निस्पृहता वस्तुतः उनके पद की निरभिमानता दर्शा रही है। तदनंतर ६-७ माहोपरांत आधिकारिक घोषणा हुई भी तो मुनि श्री जी को प्रसन्नता की अनुभूति भी नहीं हुई। वस्तुतः सन्त पद के लिए नहीं जीता किंतु पद संत को पाकर सार्थक हो जाता है।

अहमदनगर में आचार्य श्री जी की दीक्षा-जयंति सम्पन्न हुई। साथ ही साथ मुमुक्षु आत्माओं ने आचार्य श्री के दीक्षापरक जीवन का अनुकरण करते हुए उनके पदचिह्नों पर चलने का दृढ़ संकल्प लेते हुए जैन श्रामणी दीक्षा अंगीकार की। उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म. अहमदनगर से विहार करके औरंगाबाद की दिशा में प्रस्थित हो गए थे। विहार यात्रा में रत रहते हुए उनका संदेश आया कि आप श्री औरंगाबाद पधारे। मैं आपकी प्रतीक्षा में रहूंगा।

आचार्य-दर्शन

परम श्रद्धेय मुनिवर ने पूना से प्रस्थान किया और घोड़नदी पधारे। घोड़नदी से विहार करके आप श्री अहमदनगर आचार्य प्रवर श्री आनंदऋषि जी म. के चरणों में पहुँचे।

आचार्य श्री से श्रमणसंघ विषयक गहन चर्चाएं होती रही। एक बार आचार्य श्री ने मुनिश्री जी से अकस्मात् पूछ ही लिया कि मुनिवर ! आप श्रमण संघ की नीतियों से उदासीन क्यों है? तथा क्या नाराजगी थी कि दीक्षा – जयंति पर आप नहीं पधारे।

मुनि श्री ने कहा – "आचार्यवर ! नाराजगी किसी बात की भी नहीं है किन्तु मैं ठहरा थोड़ा सिद्धान्तवादी, अतः उक्त अवसर पर नहीं आ सका, कारण तो आपको ज्ञात ही है।"

आचार्यश्री ने कहा – "आपका कथन सही है, आधिकारिक घोषणा तो उसी समय हो जानी चाहिए थी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंत्री पदों की फिर भी ऐसा हुआ नहीं तथापि कोई बात नहीं, अब मेरा प्रयास रहेगा कि शीघ्रातिशीघ्र पदों की घोषणा हो।"

आचार्य श्री ने इस प्रसंग पर मुनि श्री को 'बहुश्रुत' की उपाधि से अलंकृत करना चाहा तो मुनि श्री ने कहा –

"आचार्यवर्य ! मैं इस पद के योग्य नहीं हूँ और बिना प्रसंग के कोई पद देना उचित भी नहीं है। प्रबल इच्छा ही है आपकी तो आप अपने जीवन के किसी विशिष्ट प्रसंग पर ही इसकी विधिवत् घोषणा करावें।"

इसके बाद श्रीमान् पुखराज जी लूंकड़ – अध्यक्ष श्री अ.भा.श्वे.स्था. जैन कान्फ्रेन्स अनायास ही वहाँ पधारे और उपाचार्य श्री का पत्र आचार्यश्री को प्रदान किया। तदनंतर आचार्य श्री का पत्र लेकर पुनः उपाचार्य श्री के पास पहुँचे एवं उपाचार्य श्री को मंत्री पद की घोषणा करने की आधिकारिक स्वीकृति प्रदान की, आचार्य श्री की ओर से !

अहमदनगर से विहार

श्रद्धेय मुनि श्री सुमनकुमार जी म. ने आचार्य श्री का वरहस्त एवं आशीर्वाद प्राप्त कर अहमदनगर से विहार किया एवं अन्यान्य छोटे-बड़े क्षेत्रों को फरसते हुए औरंगाबाद पधारे ! मुनि-समागम हुआ। चतुर्विधि संघ को अपार प्रसन्नता हुई। वहीं मंत्री पदों की आधिकारिक घोषणा की उपाचार्य श्री ने अपने मुखारविन्द से। खुशी में और खुशी का आलम छा गया।

औरंगाबाद में श्रद्धेय मुनिवर की एक मासकल्प स्थिरता रही। दैनिक धार्मिक कार्यक्रम सानंद सम्पन्न होते रहे। रात्रि प्रवचन भी हुए।

जालना की ओर

उपाचार्य श्री ने जालना की ओर विहार किया एवं सलाहकार मंत्री मुनिवर वहीं रहे। होली चातुर्मास वहीं सम्पन्न हुआ। इस प्रसंग पर बोलाराम संघ के प्रतिनिधिगण पधारें एवं आगामी वर्षावास की विनति की।

मुनी श्री का आश्वासन पाकर बोलाराम संघ पुनः प्रस्थित हुआ। औरंगाबाद के उपनगर आनंद एपार्टमेंट में उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म. की ४८वीं दीक्षा-जयन्ति सानंद मनाई गई।

वहाँ से परम श्रद्धेय श्री का विहार जालना की ओर हुआ। कर्नाटक गज केसरी श्री गणेशलाल जी म. की महाप्रयाण भूमि "श्री गुरु गणेश गौशाला" में आप पधारे; धर्मध्यान का दैनिक कार्यक्रम सुचारू रूप से सम्पन्न होने लगा। श्री संघ के अत्यधिक आग्रह के कारण सार्वजनिक रात्रि व्याख्यान भी नियमित आयोजित किए गए। महावीर-जयन्ति का कार्यक्रम भी जालना में ही सम्पन हुआ।

इन्हीं दिनों जालंधर शहर के धर्मबंधु आचार्य श्री के दर्शनार्थ पधारे तो अपने पंजाब के संतों की प्रियझलक पाने के लिए वे जालना भी आ पहुँचे।

तदनंतर परभणी होते हुए नान्देड़ पधारे – मुनिवर श्री ! यहाँ बोलाराम संघ पुनः आगामी वर्षावास की विनति लेकर मुनि श्री के चरणों में उपस्थित हुआ। नान्देड़ से निजामाबाद पधारे। मुनिश्री जी का अब आन्ध्रप्रदेश में विचरण होने लगा। महाराष्ट्र की भूमि पर केवल उनके चरण चिह्न ही रह गये।

आन्ध्रप्रदेश में

निजामाबाद से कामारेड्डी पधारे, सिकन्दराबाद का श्री संघ आगामी चातुर्मास की विनति लेकर पुनः उपस्थित हुआ। सिकन्दरावाद संघ युवाचार्य श्री एवं सलाहकार मंत्री जी म. का संयुक्त चातुर्मास कराना चाह रहा था। किंतु मुनिवर ने संयुक्त चातुर्मास की बात को अस्वीकार करते हुए संघ को बताया कि जब दो क्षेत्रों में लाभ मिल सकता है फिर संयुक्त चातुर्मास क्यों ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कामारेड्डी से विहार कर बोलाराम पहुँच गये। बोलाराम संघ ने पुनः अपनी विनति दोहराई। तदनंतर श्रद्धेय मुनिवर का लाल बाजार में पदार्पण हुआ। लालबाजार से सिकन्दराबाद में पधारे।

युवाचार्य श्री का भी सिकन्द्रबाद में प्रवेश हो गया। दिनांक ७-७-८८ को आन्ध्र की भूमि पर इन महान् सन्तों के पदार्पण पर सामूहिक नगर स्वागत का कार्यक्रम अमीरपेट में रखा गया। यह सभी संघों की ओर से समायोजित था।

अमीरपेट से रामकोट पदार्पण हुआ। यहीं पर बोलाराम श्री संघ को आगामी वर्षावास हेतु, स्वीकृति प्रदान की। युवाचार्य श्री को चातुर्मासार्थ सिकन्द्राबाद में प्रवेश करवाकर आप श्री ने बोलाराम हेतु चातुर्मासार्थ विहार किया।

लालबाजार, अलवाल होते हुए बोलाराम नगर पधारे।

✤ ✤ ✤

बोलाराम वर्षावास

बोलाराम श्री संघ मुनिवर के आगमन हेतु पलक पाँवड़े बिछाये हुए था ही। नगर के द्वार पर सैकड़ों श्रावक-श्राविकाओं ने मुनिवर श्री की अगुवानी की।

शोभा यात्रा बोलाराम के राजमार्ग से होती हुई गुलाबचंद फतेहचंद स्मृति भवन में आकर एक विशाल सभा में परिवर्तित हो गई। बोलाराम नगर की ओर से महाराज श्री का अभिनन्दन किया गया। पारस भाई जैन ने इस अवसर पर मुनि श्री की स्पष्टवादिता, स्वतंत्र चिंतक, निर्भीक व्याख्याता आदि विशेषताओं पर प्रकाश डाला तथा चातुर्मास को सफल बनाने का श्रद्धालुओं से पुरजोर आग्रह किया।

उक्त अवसर पर पधारे जिलाधीश श्री चल्लप्पा जी (आई.ए.एस.) ने कहा – "तमिल भाषा के साहित्य पर जैन मुनियों का विशेष प्रभाव रहा है। जैन मुनि साधनाशील होते हैं, साथ ही साथ सेवा कार्य करने की प्रेरणा भी प्रदान करते हैं। यह सब जैन धर्म की करुणा एवं उदारता का द्योतक है।"

श्रद्धेय श्री सुमनमुनि जी म. ने नागरिक अभिनन्दन के प्रत्युत्तर में कहा- "भगवान् के बताये हुए मार्ग का अनुसरण करके ही हम अपना जीवन मंगलमय बना सकते हैं एवं आत्मोथान कर सकते हैं।....हमारी मंजिल तो बैंगलोर थी किंतु श्री हस्तीमलजी मूणोत का प्रेमभरा आग्रह रहा तो इधर के क्षेत्रों में आ गए। बोलाराम चातुर्मास की कल्पना तक नहीं थी किंतु क्षेत्र स्पर्शना यहाँ की थी अतः आवागमन हो ही गया।" ....मंगलवचनों के साथ सभा विसर्जित हुई। चातुर्मास प्रवेश की खबरों को समाचार-पत्रों ने प्रमुखता के साथ प्रकाशित की।

चातुर्मासकालीन कार्यक्रम सानंद सम्पन्न होने लगे। दिन-ब-दिन श्रावक-श्राविकाओं का उत्साह बढ़ने लगा। आबाल वृद्ध ज्ञान एवं क्रिया की सद्शिक्षा में आप्लावित होने लगे। इस चातुर्मास के प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार रहे –

दिनांक १२,१३,१४ अगस्त १९८८ को आचार्य प्रवर श्री आनंद ऋषि जी म. की ८९ वीं जन्म जयंति एवं दीक्षा अमृत-वर्ष पर त्रिदिवसीय महोत्सव के रूप में मनाया गया। यह महोत्सव तप-त्याग एवं नमस्कार मंत्र स्मरण के साथ सोत्साह मनाया गया। अनेक वक्ताओं ने आचार्य श्री के जीवन के विविध आयामों पर प्रकाश डाला।

परम श्रद्धेय श्री सुमनमुनिजी म. ने आचार्य श्री आनंदऋषिजी म. के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा –

"आचार्यदेव श्री का जीवन निःस्पृह एवं सरल है, महाराष्ट्र के लोग उनको भगवान मानते हैं। वस्तुतः जहाँ सरलता है वही परमात्मा का वास है। करुणा की प्रतिमूर्ति हैं। स्नेह की अविच्छिन्न धारा हैं एवं ये संघ के महान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्नायक हैं। सरल हृदयी, निस्पृही, त्यागी एवं कठोर संयमित जीवन जीने वाले महा-पुरुष की वर्तमान युग में हर क्षण, हर कदम आवश्यकता है। जन सामान्य के लिए सन्त अंधेरे में प्रकाश देते हैं। जीवन में आई अशांति से मुक्ति दिलाते हैं। आप श्री ने कहा – आचार्य आनन्द ऋषिजी म. की मंगल मनीषा से उद्‌भुत हुए चिन्तन से स्व. श्रीमती इन्दिरा गांधी भी काफी प्रभावित रही एवं पूर्व प्रधान मंत्री ने इन्हें "राष्ट्र सन्त" के रूप में विभूषित करते हुए शाल भेंट की थी। वे ऐसे सन्त को राष्ट्र की सम्पदा मानती रही। अन्त में परम श्रद्धेय ने आचार्य श्री के दीर्घायु जीवन की मंगल कामना व्यक्त की। मंगल वचनों के साथ सभा का विसर्जन हुआ। हिन्दी समाचार पत्र "हिन्दी मिलाप" ने अपने १७-८-८८ के संस्करण में प्रमुखता के साथ उपर्युक्त जयंति दिवस की खबरें प्रकाशित की।

धर्म की पावन गंगा प्रवाहित हो अविरल बहती रही।

इसी क्रम में परम श्रद्धेय श्रमणसूर्य स्व. मरुधर केशरी, प्रवर्त्तक श्री मिश्री मलजी म.सा. (कड़क मिश्री) की जन्म जयन्ति भी दिनांक २६-८-८८ शुक्रवार को प्रातः वैश्य संगम, लाल बाजार के प्रांगण में मनाई गई। युवाचार्य डा. शिवमुनि जी म. एवं सलाहकार मंत्री परमश्रद्धेय श्री सुमन मुनि जी म. आदि ठाणा के पावन सान्निध्य में यह जयन्ति सम्पन्न हुई – इसके समायोजक थे – श्री भंवरलाल जी, माणकचंद जी, पुखराजजी मकाणा। इस प्रसंग पर तपस्विनी बहनों ने भी तपश्चर्या के प्रत्याख्यान अत्यंत सादगी पूर्वक (गाजे-बाजे एवं आडंबर रहित) ग्रहण कर सोने में सुहागे की कहावत को चरितार्थ किया।

तदनन्तर बोलाराम जेसीज संगठन की ओर से विशेष प्रवचन रखा गया जिसमें गुरुदेव श्री ने समयानुकूल विचार प्रस्तुत किए। इस सभा में मुख्य अतिथि थे लॉयन वी.एस. वाठिया - जेसी श्री हरिन्दर सिंह, जेसी. श्री रमेशलाल के. (भूतपूर्व सहमंत्री, इन्डियन जेसीज)

आयोजक थे – जेसीज के अध्यक्ष श्री अशोक कुमार जैन। कार्यक्रम सराहनीय रहा।

बोलाराम संघ को जिन पावन दिनों की प्रतीक्षा थी। वह पर्व पर्युषण की बेला आ गई। महापर्व पर्युषण की तप जप के साथ हर्षोल्लास पूर्वक आराधना पूर्ण हुई। संवत्सरी के दिन सभी ने अपने-२ प्रतिष्ठान बन्द रखे।

दिनांक २३-२४-२५ सितम्बर ८८ को परम श्रद्धेय श्री के सान्निध्य में तीन महापुरुषों की जन्म जयन्ति मनाने का सौभाग्य बोलाराम श्री संघ को प्राप्त हुआ।

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्री जयमल जी म. का २८१वाँ जन्म दिन, आचार्य सम्राट् पू. श्री आत्माराम जी म. का १०६ वाँ जन्म दिवस, पंजाब प्रवर्त्तक स्व. श्री पं. शुक्ल चन्द जी म. का ६४वाँ जन्म दिवस सोत्साह हर्षोल्लास पूर्वक मनाया गया।

दिनांक २५-६-८८ रविवार को प्रातः नौ बजे श्री गुलाब चंद, फतेहचंद स्मृतिभवन में विशाल आई कैम्प का उद्घाटन, आंध्रप्रदेश की राज्यपाल – "सुश्री कुमुद बेन" जोशी ने किया। स्वागत माल्यार्पण के पश्चात् परम श्रद्धेय श्री ने लोकसेवा पर प्रवचन दिया तथा राज्यपाल महोदया से आग्रह किया कि – "प्रदेश में हो रही हिंसा को रोका जाय। निर्दोषों की हत्या कब तक होती रहेगी? हत्यारे व्यक्तियों एवं यांत्रिक कत्लखानों पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।"

आई कैम्प का समायोजन श्री महावीर जैन युवक संघ के द्वारा हुआ एवं आर्थिक सौजन्य प्रदाता थे – श्री मीठालाल जी मकाणा जिनको राज्यपाल सुश्री कुमुद जोशी ने शाल द्वारा सम्मानित किया। इस कैम्प में ३०० रोगी लाभान्वित हुए। २६० रोगियों को चश्मे एवं औषधि लाभ मिला और २२ ऑप्रेशन किए गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्याह्न में सार्वजनिक सभा आयोजित हुई। इस सभा के मुख्य अतिथि के रूप में श्री चन्दनमलजी 'चाँद' (महामंत्री-भारत जैन महामण्डल एवं "जैन जगत" पत्रिका के सम्पादक) थे। अन्त में परम श्रद्धेय मुनिराज ने उक्त महान पुरुषों के जीवन एवं संस्मरणों से लोगों को परिचित कराया। उन्होंने कहा – "इन महापुरुषों का तप एवं त्याग तथा सहनशीलता पूर्ण जीवन आज भी हमारा मार्गदर्शक है।"

इस अवसर पर रात्रि में कवि गोष्ठी "पूनम की चाँदनी' का आयोजन हुआ। जिसमें हैदराबाद के २० कवियों ने भाग लिया। हर कवि की कविता हास्य, एवं व्यंग तथा धार्मिकता से भरपूर थी जिसे जनता ने बहुत सराहा। यह कार्यक्रम रात्रि २ बजे समाप्त हुआ।

दिनांक १-१०-८८ को स्थानीय युवकों की एक गोष्ठी महाराज श्री के पुनीत सान्निध्य में आयोजित हुई। जिसमें सभी जैन बन्धुओं ने भाग लिया।

बोलाराम संघ (क्षेत्र) का यह अहोभाग्य ही था कि श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमन मुनि जी म. ठाणा ३ का पावन चातुर्मास का लाभ प्राप्त हुआ और दिनांक २३-१०-८८ को पूज्य श्रद्धेय मुनिश्री का ३९ वां दीक्षा दिवस समारोह मनाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। विभिन्न वक्ताओं ने आप श्री के साधनामय जीवन पर प्रकाश डालते हुए आप श्री को दीर्घायु एवं स्वस्थ जीवन की कामना की। मुनि श्री सुमन्तभद्र जी म. ने आप श्री के जीवन के विविध प्रसंगों को अत्यंत सुन्दर ढंग से व्याख्यायित करते हुए कहा – "गुरुदेव का सान्निध्य मुझे दीर्घ काल तक मिलता रहे इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है।"

समारोह के अन्त में मुनि श्री जी ने फरमाया – "मैंने अपने जीवन में कभी भी "जन्म दिवस" या "दीक्षा दिवस" नहीं मनवाया। यहाँ पर लोगों को पता चला गया तो इतना उपक्रम कर लिया। वस्तुतः यह सम्मान-अभिनन्दन-वंदन मेरा नहीं है अपितु गुरुदेव श्री का ही सम्मान है जिनकी कृपा से यह सब कुछ मिला है। मेरे जीवन की सर्वांगीण उन्हीं की देन है।"

तपोभिनन्दन-दिनांक १३-११-८८ को परम श्रद्धेय श्री जी एवं साध्वी श्री जी की सन्निधि में तपोभिनन्दन समारोह रखा गया। जिसमें मुनि श्री सुमन्तभद्र जी को १०६ एकासना करने के उपलक्ष में साध्वी जी द्वारा प्रदत्त शाल समर्पित करके एवं श्रीमति जसवंती देवी के १२० एकान्तर तप (६० उपवास एक दिन छोड़ कर एक दिन) एवं श्रीमती जसोदाबाई के २७ आयंबिल की तपस्या के उपलक्ष्य में शाल एवं माल्यार्पण द्वारा बहुमान किया। इस प्रसंग पर विविध वक्ताओं ने भी तप की महत्ता पर प्रकाश डाला एवं गीतिकाएं प्रस्तुत की।

विदाई की वेला –

और अब सन्निकट आ रहा था परम श्रद्धेय श्री के वर्षावास समापन का एवं विदाई का। चातुर्मास में जप-तप-जन्मजयन्तियाँ-पुण्यतिथियाँ, नेत्र शिविर, युवा गोष्ठी कवि सभा, व्यसन मुक्ति आदि विविध आयोजन हर्ष एवं उमंग के साथ मनाये गए।

दीपावली वीर निर्वाण पर श्री उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन हुआ। चातुर्मास समाप्ति पर संघ की ओर से समापन समारोह का ओयजन किया गया। अतिथि विशेष-श्री चन्द्रस्वामी, संघाध्यक्ष श्री मांगी लाल जी सुराणा, श्री पारस भाई बांठियाँ, तेरा पंथी सभा के अध्यक्ष श्री कानमल जी संचेती, युवासंघ के अध्ययक्ष श्री उगम चन्द जी सुराणा, श्रीमति सुदेश जैन आदि ने अपनी अपनी शैली में प्रसंगोचित प्रकाश डाला एवं परम श्रद्धेय महाराज श्री एवं साध्वी श्री जी का आभार व्यक्त किया।

परम श्रद्धेय मंत्री मुनि श्री ने अन्त में चातुर्मास सफल बनाने के लिए आबाल-वृद्धो को साधुवाद दिया तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फरमाया कि – "भविष्य में आने वाले सभी साधु साध्वी वर्ग की बोलारम निवासी इसी प्रकार सेवा भक्ति करते रहें तथा धर्म में संलग्न रहें। यहाँ के जैनियों में जो आपसी सद्भाव, सेवाभाव एवं प्रेम भाव है वह प्रशंसनीय है। अधिक क्या कहूँ।"

"खूब की सैरे चमन,
फूल चुने और शाद रहे।
लो बागवां हम तो चलते हैं,
यह गुलशन तेरा आबाद रहे।।"

समारोह के पश्चात् श्री मांगीलाल जी सुराणा की ओर से स्वधर्मी वात्सल्य था; जिसका लाभ उपस्थित जनों में लिया।

दिनांक २३-११-८८ को गुरुदेव श्री को धर्म स्नेह से आप्लावित हृदय से भावपूर्ण अश्रुपूरित विदाई दी बोलाराम श्री संघ ने। गुरुदेव श्री जी २४-११-८८ को वहाँ से प्रस्थित हुए अपनी अगली मंज़िलें की ओर। चरैवेति... चरैवेती...चरैवेति...

चातुर्मासिक एक और उपलब्धि यह रही है कि "एस.एस. ओसवाल जैन सेवा समिति" की स्थापना/समय रक्षाबन्धन श्रावण सुदि १५। अनुप्रेरक थे – युवाचार्य डॉ. श्री शिवमुनिजी म. एवं श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमन मुनिजी म.। इन दोनों की प्रेरणा रही और इसका कार्यालय सिकन्दराबाद में स्थापित किया गया। उद्देश्य थे – जैन समाज के असहाय एवं कम आय वाले सज्ञनों को ससम्मान सहायता/अध्ययन, विवाह, बीमारी, आकस्मिक संकट में सहायता प्रदान करेगी। सेवा क्षेत्र-सिकन्द्राबाद, हैदराबाद, बोलाराम लगभग ३० किलोमीटर तक क्षेत्र।

✤ ✤ ✤

वहाँ से लाल बाजार पधारे। वहाँ २०×४० का क्षेत्र भूखण्ड यूं ही स्थानक के पीछे था, महाराज श्री की सद्प्रेरणा से (वह भूखंड जो गन्दगी तथा बदबू युक्त था) उसे अच्छी हालत में तबदील करा दिया। गुरुदेव श्री की यहाँ स्थिरता रही।

अमृत महोत्सव

दिनांक १८-१२-८८ रविवार वि.स. २०४५ मिगसर सुदि ६ को महामहिम परम पूज्य आचार्य देव श्री आनन्द ऋषि जी म. का ७४ वाँ दीक्षा वर्ष अमृतमहोत्सव समापन एवं ७५ वाँ वर्ष शुभारंभ के मंगल आयोजन को सोत्साह मनाया – श्री श्वे. जैन संघ, लाल बाजार सिकन्द्राबाद ने। स्थल था – आर्य वैश्य संघम्, लाल बाजार। ४००-५०० भाई बहिनों ने इस आयोजन में भाग लिया। अनेक वक्ताओं ने आचार्य देव को श्रद्धार्पित की। हैदराबाद श्री संघ की ओर से श्री बन्सीलाल जी धारीवाल ने मंत्री मुनिश्री जी को आगामी चातुर्मास के लिए साग्रह विनति की।

इस प्रसंग पर आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषि जी म. के जीवन को सन्दर्भित करते हुए श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनमुनी जी म. ने लयबद्ध गाया – **"हम तो उन्हीं सन्तों के हैं दास".... जिन्होंने मन मार लिया।** तदनन्तर कहा – "सादड़ी मारवाड़ में महामुनि सम्मेलन के अवसर पर प्रथम बार उनके दर्शन एवं उनसे साक्षात्कार हुआ। उस समय आचार्यश्री जी जैसे थे मुझे पूना साधु सम्मेलन में भी वैसे ही दृष्टिगोचर हुए। यह ठीक है कि देखने वालों की अपनी दृष्टि होती है। तथापि महापुरुष के जीवन के अंकन में परिवर्तन की बात कहना उचित नहीं है। 'बदलाव, तबदीली, परिवर्तन यह सब 'अज्ञ' पुरुषों के लिए होता है। 'सुज्ञ' पुरुषों के लिए नहीं। उत्थान/विकास का प्रगटीकरण शब्दों द्वारा ही "आत्मा से महात्मा"-"महात्मा से परमात्मा" की अवस्था को जैनधर्म दर्शन ने अभिव्यक्त किया है। इसलिए मैंने उनमें विकास देखा पर कभी परिवर्तन नहीं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त में धन्यवाद ज्ञापित किया संघ के पदाधिकारी ने और मंगलवचन के साथ सभा विसर्जित हुई।

✣ ✣ ✣

लाल बाजार में ही सिकन्दराबाद का श्री संघ मंत्री मुनिवर जी के समीप पहुँचा और डॉ. शिवमुनि जी म. सा. के सन्निधी में ज्ञान अर्जित कर रहे वैरागी राकेश कुमार एवं साध्वी अर्चना जी म. की मुमुक्षु बहन अपूर्वा के दीक्षा महोत्सव पर पधारने का पुरजोर आग्रह किया। मंत्री मुनि श्री ने कहा युवाचार्य श्री हमारे ही प्रान्त के हैं और हमें आना ही है किन्तु एक बात का विशेष ध्यान रखना कि वैरागी के लिए प्रयुक्त होने वाले किसी भी उपकरण की बोली नहीं लगे। संघ ने मंत्री मुनिवर को आश्वस्त किया तो मुनि ने भी सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। दीक्षा दिवस था वसंत पंचमी १९८६ दीक्षा स्थल था-सेनाय नर्सिंग होम के सामने मैदान (मार्डपल्ली)।

दीक्षोत्सव की तैयारी होने लगी – मंत्री मुनिवर भी दीक्षा के तीन पूर्व वहाँ पधारे गए। युवाचार्य श्री तो वहीं थे। बसंत पञ्चमी का वह पावन दिवस भी आया कि उन दोनों मुमुक्षु भाई बहनों ने श्रामण्य दीक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को सार्थक बनाया। ●●●

तदनंतर सभी श्रमण श्रमणियों का विहार कुलपाकजी तीर्थ की ओर हुआ। किल्पाक जी तीर्थ पर कुछ दिवस स्थिरता रही।

परम श्रद्धेय सलाहकार मंत्री जी म. का एवं युवाचार्य श्री जी म. एवं अन्य साधु-साध्वीयों का फाल्गुनी (होली) चातुर्मास घोषित हुआ – खैरताबाद के लिए। यथा समय सभी मुनिवरों का वहां समागम हुआ। दिनांक २१-३-८६ मंगलवार परातः ९ बजे उपर्युक्त सभी मुनिवरों का एवं साध्वी मंडल का सामूहिक प्रवचन आयोजन वासवी भवन, मीरा टाकीज के सामने खैरताबाद (हैदराबाद) में रखा गया।

इस कार्य क्रम हेतु वहाँ के संघपति श्री मान् पुखराज जी साहब गाँधी (बूसी वाले) ने जैन श्री संघ खैरताबाद की ओर से हिन्दी मिलाप ता. २१/३/८६ में के विज्ञप्ति भी मुद्रित करवाई ताकि समाज के सभी लोग लाभान्वित हो सकें। और श्रद्धालुगण अपने आराध्य गुरुदेवों के दर्शन एवं प्रवचन श्रवण का पूरा-पूरा लाभ ले सकें।

होली चातुर्मास में वहाँ के जैन श्री संघ के तत्वाधान में श्री महावीर नवयुवक मंडल खैरताबाद, जैन संघ, जैन यूथ कल्ब द्वारा निःशुल्क नेत्र शिविर का समायोजन हुआ। इस शिविर में ४०० व्यक्तियों की नेत्र परीक्षण किया गया। रक्तदान शिविर भी श्री महावीर नवयुवक मंडल खैरताबाद द्वारा आयोजित हुआ था। आशा से अधिक उस दिन भाई-बहनों ने अपना अमूल्य रक्त दान करके मानव सेवा का अनुकरणीय कार्य किया। इस अवसर पर आनन्द आध्यात्मिक पाठशाला के शिक्षार्थियों की परीक्षा सलाहकार मंत्री श्री सुमनमुनि जी म. के द्वारा सम्पन्न हुई।

दिनांक २१-३-८६ को श्रद्धेय मुनिवर ने अपने प्रवचन में कहा कि-"समाज में व्याप्त कुरीतियों को हटाने एवं धार्मिक सहिष्णुता लाने हेतु छोटे-छोटे बालकों में संस्कार निर्माण एवं नैतिक मूल्यों का बीजारोपण होना आवश्यक है। बालक सुसंस्कारित होंगे तो युवापीढ़ी नैतिक एवं संस्कारवान् रहेगी और धर्म एवं समाज की उन्नति में एक प्रमुख योगदान रहेगा।"

पंजाबकेसरी जैनाचार्य पूज्य श्री काशीराम जी.म.सा. का ४४वाँ पुण्यतिथि समारोह

पूज्य आचार्य श्री काशीराम जी.म.सा. का जन्म मृगशिर कृष्णा सप्तमी विक्रम संवत १९४० में दुगड़ कुलीन ओसवाल जैन परिवार में हुआ। पुण्यकुक्षी श्रीमती राधादेवी एवं सरल हृदयी लाला गोविन्द रायजी इनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौभाग्यशाली माता पिता थे। पसरूर जिला स्यालकोट पश्चिमी पंजाब में इनके पिताजी का सरफि का कार्य था तथा तायाजी म्युनिसिपेलटी के कमिश्नर थे, आपने दसवीं क्लास तक उर्दू एवं फारसी माध्यम में शिक्षा प्राप्त की तथा अंग्रेजी भाषा पर भी आपका पूर्ण अधिकार था। प्रबल वैराग्य की स्थिति में आप पूज्य सोहनलालजी म.सा. के पास दीक्षा हेतु आये पर घरवालों की सहमति नहीं मिलने की अवस्था में वापस घर भेज दिये गये घर वालों ने सांसारिक सुखों के कई प्रलोभन दिये, अस्वीकृत करने पर इनके तायाजी ने बहुत प्रताड़ित भी किया। चारपाई के पायों के नीचे हाथ रखवा कर ऊपर बैठ जाते व दीक्षा व वैराग्य से रोकने का प्रयत्न करते अन्ततः प्रबल वैराग्य की जीत हुई तथा सभी घरवालों की सहमति से मिगसर सुदी १० विक्रम संवत १९६० को आपने भागवती दीक्षा ली।

उग्र वैराग्य प्रबल संयम व कठोर साधना के धनी आपश्री दिन में चार घण्टे ध्यान साधना व अध्ययन में बिताते, रात में दो घण्टे ध्यान, प्रवचन, सामयिक प्रश्नोत्तर व धर्मचर्या करते निरन्तर तप साधना एवं उग्र अध्ययन के अभ्यासी आपश्री ने शिक्षा एवं नारी शिक्षा पर बहुत जोर दिया। आपका स्पष्ट विचार था कि जब तक नारी शिक्षित नहीं होगी स्वयं सुसंस्कारित नहीं होगी बच्चों में भी शिक्षा का अभाव रहेगा। आप पंजाब के पहले सन्त थे जिन्होंने लाहौर विश्वविद्यालय के प्रांगण में स्नातकों को शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार व प्रसार करने को उत्प्रेरित किया। सक्रिय रूप से ज्ञान व शिक्षा के प्रचार के लिए आपने अमृतसर, अम्बाला व अलवर में जैन कन्या पाठशाला स्थापित करवाई जो आज कालेजों के रूप में शिक्षा केन्द्र बने हुए हैं। गुजरात राजकोट में जैन सिद्धांतशाला व पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान बनारस भी आपश्री की प्रेरणा से स्थापित हुए। दिल्ली में पहाड़गंज, सदर बाजार, महरौली, सब्जीमण्डी – कमलानगर आदि कई स्थानों पर नित्य धार्मिक उपासना के केन्द्र खुलवाये। भगवान महावीर की वाणी जन-जन में प्रसारित हो इस उद्देश्य से महावीर सार्वजनिक मंच की स्थापना की।

आपश्री ने सर्वप्रथम जैन समाज के दिगम्बर, श्वेताम्बर मूर्ति पूजक, श्वेताम्बर स्थानकवासी, तेरापन्थी चारों मान्यताओं के संघों को महावीर जयन्ती कमेटी के अन्तर्गत एक मंच पर लाये तथा अम्बाला शहर में आज भी यह कमेटी पूर्ण सद्भाव से कार्यरत है। जैन आगमों, सूत्रों, भाष्यों एवं जैनेतर साहित्य का आपने सांगोपांग अध्ययन किया था तथा अपनी ओजस्वी एवं दबंग वाणी में सभी धर्मों के सूत्रों का बड़ा ही तुलनात्मक विवेचन करते थे। तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरोध में प्रबल प्रवक्ता थे बालविवाह, मृत्युभोज तथा शादी विवाह के दुर्व्यसन के रूप में नाच-गाने के लिए नृत्यांगना को बुलाने का आम रिवाज था उसे बन्द करवाने का भरपूर व सफल प्रयन्त किया। धार्मिक प्रवचनों में भी आप राष्ट्रीय एकता की विचार धारा के पोषक रहे थे। देश प्रेम व स्वातंत्र्यता की प्रेरणा की ओजस्वी वाणी नवयुवकों में उत्साह का संचार करती थी। सन १९१७ में रोलेट एक्ट के विरुद्ध जब जलियाँवाला बाग में जनरल डायर ने मार्शल ला लगाकर गोलीबारी करवाई तथा आपने निर्भयता पूर्वक कड़े शब्दों में इस नरसंहार की भर्त्सना की थी। देश प्रेम, राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्य चेतना व अखण्डता के प्रवक्ता के रूप में पूर्वी पंजाब प्रांत में आपकी ख्याति थी तथा पंजाब केसरी के नाम से प्रसिद्ध थे। विक्रम संवत १९९२ में होशियारपुर में आपको जैन समाज ने आचार्य पद पर सुशोभित किये। दीक्षा के आठवें वर्ष में ही आप उग्र अध्ययन एवं जैन आगमों के पाण्डित्य के कारण युवाचार्य पर पर विराजित हो गये थे। आप का उग्र विहार पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात व महाराष्ट्र प्रान्तों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में हुआ। बम्बई घाटकोपर में आपने आचार्य जवाहरलालजी म. सा. के साथ **"वीर संघ योजना"** अखिल भारतीय स्थानकवासी कॉन्फ्रेन्स को दी। वि.सं. २००२ अम्बाला शहर में आपका देहावसान हुआ। आपकी अन्त्येष्टि क्रिया में पचास हजार से अधिक श्रद्धालुओं ने अश्रुपूरित नेत्रों से भावभीनी विदाई दी।

✤ ✤ ✤

इस प्रसंग पर अनेक संघों ने उक्त मुनिवरों एवं साध्वी वृन्द के लिए आगामी चातुर्मास (वर्षावास) हेतु विनति प्रस्तुत की। संघों के पुरजोर आग्रह के कारण सलाहकार मंत्री मुनिजी ने डबीरपुरा-हैदराबाद क्षेत्र में आगामी वर्षावास के भाव व्यक्त किये।

तदनंतर श्री जोधराज जी, भँवरलालजी, खींवसरा फीलखाना ने दिनांक २५-३-८९ से परम श्रद्धेय एवं युवाचार्यश्री की पावन सन्निधि में नमस्कार मंत्र का अखण्ड जाप प्रारंभ किया गया, वहीं दिवसीय प्रवचन भी हुए।

इसी प्रकार अन्य-अन्य स्थलों, बाजारों में प्रवचन होते रहे और तदनन्तर सलाहकार मंत्री श्री सुमनमुनि जी म. के सान्निध्य में पंजाब केशरी जैनाचार्य पूज्य श्री काशीराम जी महाराज की ४४ वीं पुण्य तिथि का समायोजन दिनांक २८ मई ८९ जेठ कृष्णा ८ संवत् २०४६ को हुआ। इस अवसर पर सर्व प्रथम मंगलाचरण सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् मुनि श्री सुमन्तभद्र जी म. ने अपने प्रभावशाली वक्तव्य में आचार्य श्री काशीराम जी के प्रति श्रद्धार्पित की। इस प्रसंग पर अनेक वक्ताओं ने आचार्य श्री काशीराम म. को श्रद्धांजलि अर्पित की। श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनमुनि जी म. ने अपने ओजस्वी वक्तव्य में प्रातःस्मरणीय आचार्य श्री गहरी सूझ बूझ दूर दर्शिता, संगठन तथा संघ की एकता के लिए किए गए प्रयत्नों का अनुकरणीय उदाहरण देते हुए बताया कि आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के साथ घाटकोपर (बम्बई) में ५०-५५ वर्ष पूर्व "वीर संघ योजना' समाज को अर्पित की थी। इस योजना के प्रारूप पर ही पूना सम्मेलन में प्रचार तंत्र को सशक्त बनाने के लिए साधु एवं श्रावक के मध्य का "मध्यम मार्ग" निर्धारित करने का प्रस्ताव रखा गया। जिसे सफल बनाने के लिए सभी से सहयोग करने की अपील की गई।

कार्यक्रम का संचालन स्वयं मंत्री जी म. के ही कुशल निर्देशन में हुआ। अंत में श्री उत्तम चन्द जी लूणावत ने सभी को हार्दिक धन्यवाद प्रदान किया।

इस प्रकार अपनी परम्परा के एक महान आचार्य श्री को भाव अर्पित करने के पश्चात् मुनि श्री ने अपना विचरण महानगर में प्रारंभ रखा। आपके प्रवचनों के गम्भीर विषय होते थे तथा तत्त्वों की चर्चा निहित होती थी।

"सिमरथमलजी आलमचन्द जी एण्ड सन्स ने चरित नायक जी के प्रति एक हिन्दी पत्र में विज्ञप्ति प्रेषित करवाई-जिसमें इस प्रकार का उल्लेख है। –

– मंत्री मुनि जी म....जैन दर्शन एवं तत्त्व ज्ञान कर्म वाद, आत्मा, गुणस्थान, मोक्ष, स्याद्वाद, नय, निक्षेप, आदि पर गवेषणा प्रधान चिन्तन एवं विश्लेषण के अधिकारिक वक्ता हैं। समधुर वक्तव्य के धनी विचार चेतना के अग्रणी युगद्रष्टा प्रबुद्ध मनीषी, प्रज्ञा पुरुष चिन्मय ज्योति दर्शन व अथाह ज्ञान के विशाल मानसरोवर जिनके मधुर प्रवचन में पवित्र जिनवाणी निसृत होती है एवं दर्शन एवं महाकाव्य उद्धृत होते हैं। ज्ञान दर्शन चारित्र्य की अदृष्ट त्रिवेणी सतत् वहती रहती है। आप श्री के दिव्य आध्यात्मिक एवं कठोर साधना के ओजस का प्रभाव व निर्भीक वाणी श्रोताओं में नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन पथ अपनाने के लिए प्रेरित करती है।"

✤ ✤ ✤

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिनांक २५-६-८६ का प्रवचन स्व. से. श्री भैरुलालजी रांका के बंगले पर पैंडरग्रास्टरोड पर हुआ। विनीत थे श्री जिनेन्द्र राज पारस मल जी रांका। दिनांक २-७-८६ का प्रवचन हुआ श्री मांगी लाल जी सुरेश कुमार जी दुग्गड़ के निवास स्थान पर।

सन १९८६ का वर्षावास डबीरपुरा हैदराबाद में होना सुनिश्चित हुआ था। यथा समय आप श्री का मंगलप्रवेश हुआ एवं चातुर्मासिक धार्मिक गति विधियाँ सुचारू रप से सम्पन्न होने लगीं। आबाल वृद्ध जनों में एक नई चेतना एवं जागृति का शंख फूंका-श्रद्धेय मुनिवर ने। प्रार्थना, प्रवचन एवं अन्य कार्य क्रमों में जनसमूह उमड़ने लगा।

पावन सन्निधि में

आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषि जी म. की ६० वीं जन्म जयन्ति को श्री संघ ने त्रिदिवसीय आयोजन के रूप में मनाने का निश्चय किया। दि. ३१ जुलाई १९८६ के दिवस को आयंबिल दिवस' के रूप में मनाया। अनेक तपस्वी भाई बहनों ने इस दिवसोपलक्ष में लूखा-सूखा-नीरस आहार ग्रहण कर अपने जीवन को धन्य बनाया एवं रसनेंद्रिय पर विजय पाई। १ अगस्त १९८६ को एकं धुन-एक ही सुस्वर में सम्पन्न हुए जाप से सामूहिक जाप रखा गया। वहाँ श्रद्धा और भक्ति का आलौकिक वातावरण दृष्टिगोचर हो रहा था। दि. २ अगस्त १९८६ को प्रातः प्रभातफेरी आयोजित हुई। प्रातः ९ बजे सार्वजनिक सभा प्रारंभ हुई। इस सभा के अध्यक्ष प्रसिद्ध उद्योगपति श्री रतनचंद जी रांका थे। प्रमुख वक्ता पं. डॉ. श्री रामनिरंजन पाण्डेय थे। (भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी एवं विभाग उस्मानिया महाविद्यालय)

श्रद्धा गीत के साथ सभा प्रारंभ हुई। अनेक वक्ताओं एवं गायकों ने अपने-अपने विचारों एवं गीतिकाओं के साथ आचार्य देव को श्रद्धा अर्पित की। इस शुभ अवसर पर रामकोट में विराजित साध्वी रमणीक कंवर जी में. अपनी शिष्यमण्डली सहित विशेष रूप से पधारीं।

२७ अगस्त १९८६ को जैन जगत के युग प्रवर्तक श्री अमोलक ऋषिजी म. का ५३वाँ स्मृति दिवस सोल्लास एक तपत्याग पूर्वक मनाया गया। पावन सन्निधि परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री की ही थी। और मुख्य अतिथि थे हैदराबाद समाचार (हिन्दी दैनिक) के सम्पादक श्री मुनीन्द्र जी। मध्याह्न की वेला में सुसम्पन्न हुए इस समारोह की अध्यक्षता कर रहे थे श्री मिश्री मल जी खिंवसरा अध्यक्ष श्री वर्द्धमान स्था. जैन संघ। इसी शुभ अवसर पर भाषण प्रतियोगिता तथा मेहन्दी प्रतियोगिता क्रमशः प्रातः व मध्याह्न में आयोजित हुई। भाषण प्रतियोगिता को दो वर्ग में विभक्त किया गया। विषय थे – १. युवा वर्ग हेतु "समाज निर्माण में सन्तों का योगदान २. विद्यालय में धार्मिक शिक्षण की आवश्यकता।"

बाल वर्ग हेतु :

१. सामाजिक समारोहों में बदले प्रदर्शन
२. आज का युवक धर्म के प्रति उदासीन क्यों !
३. सितम्बर १९८६ को निबंध प्रतियोगिता भी आयोजित हुई। विषय थे –

किशोरवर्ग

१. विश्व शांति में जैन दर्शन का योगदान
२. आधुनिक समाज में नारी का स्थान

युवा वर्ग

१. आज के युग में धर्म का स्थान।
२. जैन धर्म की विशेषता।

दिनांक २ सितंबर ८६ को ही मध्याह्न में भक्तिगीत प्रतियोगिता भी सानंद सम्पन्न हुई। इन प्रतियोगिताओं में जैन युवा मित्र मंडल हैदराबाद का स्तरीय उल्लेख रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतियोगिताओं को पुरस्कृत किया गया दिनांक १७-९-८९ की मध्याह्न वेला में।

इसी प्रकार विविध जयन्तियों, महोत्सवों, तपस्याओं से चातुर्मास ऐतिहासिक रूप ग्रहण करता जा रहा था।

इसी वर्षावास में मानव सेवार्थ आत्म-शुक्ल जयन्ति पर एक विशाल नेत्र शिविर भी समायोजित हुआ। जिसमें अनेक लोग लाभान्वित हुए।

विविध कार्यक्रमों और प्रवचनों की शृंखलाओं ने चातुर्मास को अभूतपूर्व ऐतिहासिक बनाते हुए चातुर्मास समाप्ति को दस्तक दी। विदाई समारोह हुआ।

वर्षावास के पश्चात् पुनः परम श्रद्धेय श्री की विहार यात्रा प्रारम्भ हुई।

❖ ❖ ❖

चातुर्मासिक-विदाई

दिनांक २४-१२-८९ को डॉ. शिवमुनिजी की दक्षिण विहार यात्रा आरम्भ हुई। वर्षावास विदाई समारोह मुनि श्री सुमन कुमार जी म. की पावन सन्निधि में मनाया गया। सभी ने दक्षिण प्रवास हेतु मंगल कामनाएँ अर्पित की।

आनन्द दीक्षोत्सव

१० दिसम्बर १९८९ रविवार को मध्याह्न २ बजे आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी म. का ७७ वाँ दीक्षोत्सव दिवस सानन्द मनाया गया। यह एक साधना पुरुष के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि थी। मुख्य अतिथि थे श्री एम. शेरमल जी वोहरा एवं श्रीमान हस्तीमल जी मुणोत। समारोह स्थल था श्री जोधराज जी खिंवसरा का निवास स्थान 'उगमा'।

पुण्य तिथि : कर्णाटक केसरी की

२६ जनवरी १९९० को तपस्वीराज कर्नाटक गज केसरी खद्दरधारी श्री गणेशीलाल जी म. का २८वीं पुण्यतिथि तातेड़ भवन ईस्ट मारेड़पल्ली सिकन्दराबाद में आयोजित की गई समायोजक था समस्त मारेड़पल्ली जैन समाज। परम श्रद्धेय मुनिवर ने कर्नाटक केसरी के जीवन पर सांगोपांग प्रकाश डाला।

अमोलक दीक्षा दिवसोत्सव

दिनांक १५ फरवरी १९९० गुरुवार को आचार्य अमोलक दीक्षा शताब्दि परमश्रद्धेय मुनिराज की पावन सन्निधि में आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म. का १०३ वाँ दीक्षा दिवस का समायोजन हुआ।

ध्यातव्य है कि आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म. जैन जगत के विशेषतः स्थानकवासी जैन समाज के प्रथम संत प्रवर एवं आचार्य प्रवर थे जिन्होंने आज से लगभग ८४-८५ वर्ष पूर्व जैन धर्म दर्शन के गूढ़-जटिल विषयों को एवं तत्त्वों को समझने के, सरल एवं सरस हिन्दी भाषा में ग्रन्थ/साहित्य लिखकर नये युग का सूत्रपात किया। ८३ वर्ष पूर्व नगर द्वय (हैदराबाद-सिकन्दराबाद) आपकी चरण-रज से पवित्र हुआ था। और ७२ वर्ष पूर्व सिकन्दराबाद नगर में ३ वर्ष स्थिर वास रहकर ३२ आगमों का हिन्दी अनुवाद करके आगम ज्ञान का पठन-पाठन सुगम एवं सुलभ कर दिया। साथ ही सामाजिक एवं धार्मिक जागृति पैदा की। इस युग प्रवर्त्तक महान आचार्य का साहित्य जगत् और समाज को दी गई देन के लिए जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा।

दीक्षा शताब्दि समारोह के प्रमुख अतिथि थे डॉ. चक्रवर्ती। (हिन्दी विभाग के अध्यक्ष-उस्मानिया यूनिवर्सिटी) अध्यक्ष थे श्रीमान अमोलकचन्द जी सिंघवी।

इसी प्रसंग पर साध्वी पानकुवर जी म. भी अपनी शिष्याओं के साथ पधारीं।

परम श्रद्धेय मुनिवर ने आचार्य श्री अमोलक ऋषि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

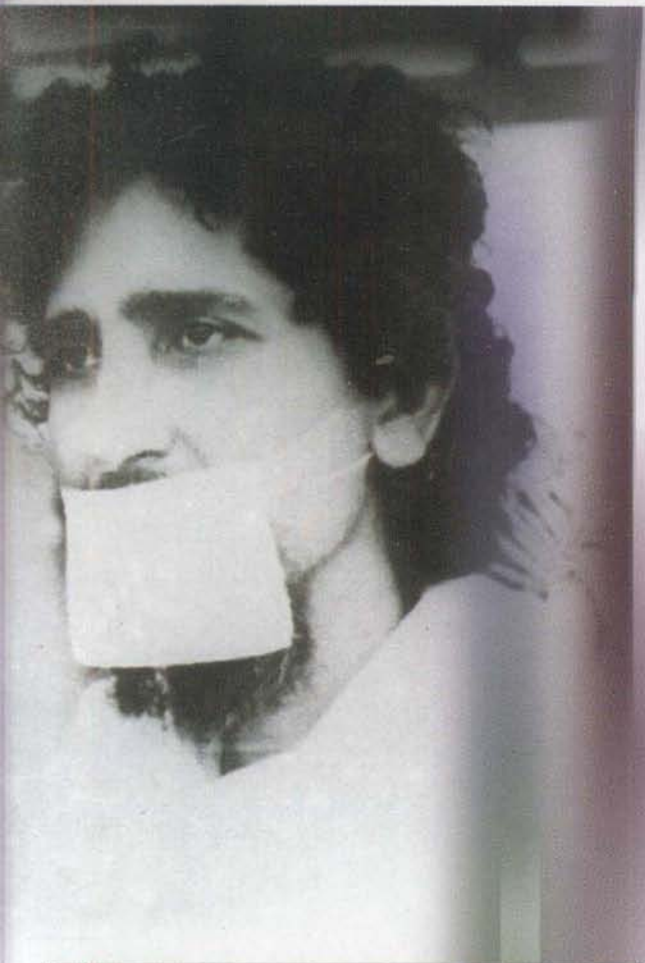

अदम्य साहसी
निर्भीक वक्ता
क्योंकि हो
युवाहृदयी.

अनुभवी
आगम-मर्मज्ञ
सलाहकार मंत्री
इतिहास केसरी
शान्तिरक्षक
हो क्यों कि
महास्थविर हो.

स्पष्टवक्ता
प्रखर-व्याख्याता
दर्शन के ज्ञाता
ध्याता हो आतम के
क्योंकि हो
तिन्नाणं तारयाणं !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

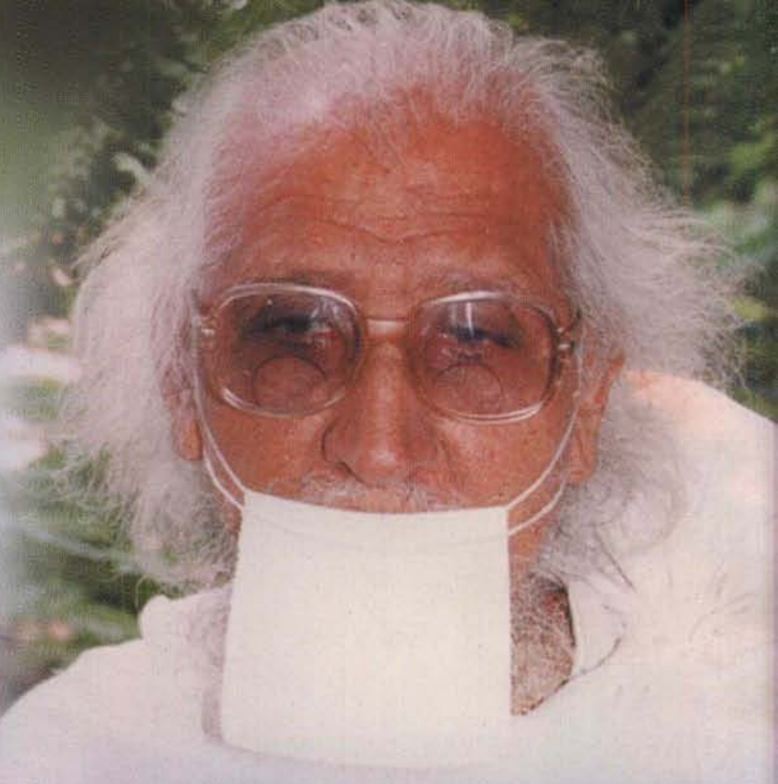

सु-मन से चिन्तन, समाज को दूर दृष्टि।
सत्पथ से निश्चित ही बदल जाती सृष्टि।।

विश्राम तन से,
चिंतन मन से।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैसूर वर्षवास-१९९६ में प्राकृत भाषा एवं जैन विद्वद् सम्मेलन में पूज्य गुरुदेव श्री.

सम्मेलन में विद्वद्वर्य श्री शांतिभाई वनमाली शेठ अपना वक्तव्य देते हुए

सम्मेलन से पूर्व ध्वजारोहण करते हुए श्री शान्तिभाई वनमाली शेठ.

गुरुदेव के साथ मैसूर संघ-पदाधिकारी एवं उत्सुक विद्वत् मण्डली.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विमल जी धारीवाल, बैंगलोर आदि सज्जन मंगलाचरण करते हुए.

सम्मेलन में पीयूषपूर्णी वाणी का रसास्वादन करवाते गुरुदेव श्री.

गुरुदेव के साथ मैसूर संघ-पदाधिकारी एवं उत्सुक विद्वत् मण्डली.

आमंत्रित सन्तजन-साध्वीगण के साथ पूज्य गुरुदेव श्री.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैसूर वर्षावास की मधुर स्मृतियाँ-

सम्मेलन में गुरुदेव के साथ माननीय मुनिवृन्द.

श्री ज्ञानप्रभाजी प्रभृति उपस्थित साध्वी एवं समणीवृन्द.

प्राकृत विद्या पीठ मैसूर के उद्‌घाटक श्रीमान् उदयराजजी दक, हुणसूर.

श्रीयुत उदयराजजी पारसमलजी दक हुणसूर (कर्नाटक) अभिनन्दन स्वीकार करते हुए.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैसूर के राजकुमार श्रीकंठ वाडियार
श्रद्धेय गुरुदेव की दीक्षा-जयंति पर सश्रद्ध वन्दन करते हुए.

वरदहस्त एवं कृपावर्षण !

युवा इंजिनियर डॉ. उत्तमचन्दजी गोठी गुरुदेव श्री से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए.
साथ मे हैं- मुनि श्री सुमन्तभद्रजी एवं मुनि श्री प्रवीणकुमार जी

पूज्य गुरुदेव से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए
श्री कल्याणमलजी मूणोत.

गुरुदेव श्री 'सुमन' का
आशीर्वाद जो पाते हैं,
उन भक्तजनों के हृदय
सुमन-से खिल जाते हैं।

Jain Education International www.jainelibrary.org

साहूकारपेठ के जैन स्थानक में गुरुदेव श्री.

गुरु-चरणों में विनयावनत शिशु
आशु जैन, दिल्ली.

शिष्य-प्रशिष्य के साथ गुरुदेव.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

வட நாட்டு சுவாமிகள் வருகை

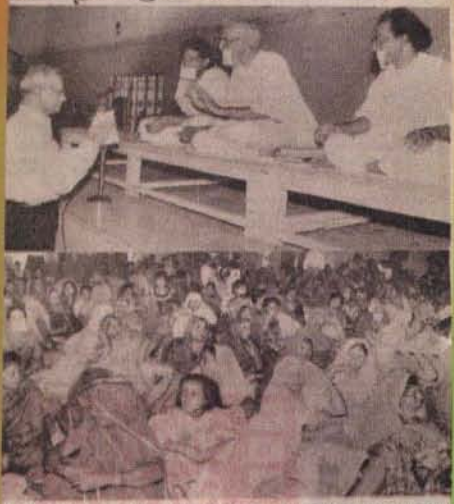

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री के समाचार अखबारों की सुर्खियों में.

6 ★★★

புண்ணிய நாள்

جشن جینتی آنتما شکلہ
فری آئی کیمپ

होली चातुर्मास एवम् आचार्य सम्राट की तृतीय पुण्य तिथी सानन्द सम्पन्न

दिनांक 28/3/95 परम पूज्य सलाहकार मन्त्री मुनि श्री सुमन ... सुमनभद्रजी म.सा. ... महती कृपा की ... स्वीकृति प्रदान ... चातुर्मास तथा ...

ऊटी में धर्म प्रभावना

श्रमण संघीय सलाहकार-मन्त्री सुमनमुनिजी म. सा. सेवाभावी मंत्री म.सा. ...

श्री सुमनमुनि जी म. सा. के सान्निध्य में अलसुर में भव्य आयोजन

अलसुर (बैंगलोर) – दि. ३०/३ फूलों की अलसुर नगर में अलसुर (बैंगलोर के अन्चल में अलसुर नगर में ... सलाहकार मन्त्री मुनि श्री सुमन... यशोभद्र जी म. सा., श्री ... ठाणा ३ के पधारने से जनता को अपार हर्ष हुआ ... प्रेरक व निडर सामयिक ... मन्त्र — मुग्ध हो जाते थे। ... विनती को स्वीकार कर ... में श्री नवपद ओलीजी व ... हेतु स्वीकृति प्रदान कर दी। ... के लिए प्रसन्नता का विषय था। ... व बाहरी जनता ने श्रद्धा व ... आयम्बिल तप की आराधना की। ... व्यवस्था श्री संघ द्वारा की गई ... चरित्र का नित्य वाचन हुआ। ... का सम्मान श्री संघ द्वारा ... किया गया।

महावीर जयन्ती — ... भगवान महावीर जयन्ती पर यहां ... कार्यक्रम रखे गये। दि. २७ को ... जीमें भगवान महावीर की जीवनी ... पूर्ण व्याख्यान दिया। महावीर ... प्रातः अलसुर के राजमार्गों ... प्रभातफेरी का आयोजन रखा ... का व्याख्यान सामूहिक रूप ... में रखा गया था। दि. २९ ... हेतु विशेष कार्यक्रम ... समारोह के मुख्य अतिथि ... श्री के. सी. विजय कुमार ... श्री ने अपना ...

गणेश बाग में तप-जप व धर्म का गुलशन खिला

बैंगलोर (शिवाजीनगर) - यहां पर श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री, स्पष्ट एवं ... श्री सुमनमुनिजी म.सा., सेवाभावी- ... विहारी-विद्याभिलाषि श्री प्रवीण मुनि ... गणेश जैन स्थानक भवन" में ... जमान है। ... हो रही ... का क्रम ... श्राविकाएं ... समाज ... है। ... एवं ... की ... से

गुरु सुमन पधारे सुखकार। गणेशबाग में आई धर्म बहार॥

बैंगलोर--शिवाजीनगर, 25 जुलाई 1995 यहां पंजाब देश पावनकर्ता श्रमण संघीय ... पं. र. श्री ... म. सा. के ... के शिष्य ... मन्त्री ... सुमनभ... निजी ...

दौड्डबालापुर में त्रय जयन्ति महोत्सव

... यहां श्रमण- ... मलजी भद्रावती, विमलजी धारीवाल थे। श्री ज्ञानराजजी मेहता ने तीनों महापुरुषों का विस्तृत परिचय देते हुए ... अभिनन्दन प्रकट ... संघ की ओर से ... अतिथियों का ... द्वारा सम्मान ... पुनीत दिवस के ... की ओर से सदस्यों ... सरकारी अस्पताल दौड्ड- ... के ग्रामीण क्षेत्र के

।।श्री महावीराय नमः।।
होली चातुर्मास आमन्त्रण

युवाचार्य श्री शिवमुनि जी महाराज

श्री जी युवाचार्य डॉ. शिव...
सुमनमुनि ...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जी म. सा. के जीवन पर विशद प्रकाश डालते हुए उनकी आगमिक सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कृतज्ञता के भाव प्रदर्शित किए। अन्य सभी व्यक्तियों ने भी अपने-अपने श्रद्धा भाव अर्पित किये।

प्रस्थित हैदराबाद से

बोलारम तथा हैदराबाद के दो यशस्वी चातुर्मास सम्पन्न करके श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनमुनि जी म. ने १८ फरवरी १९९० को पावन बेला में दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। आप श्री को विदाई देने हेतु डबीरपुरा स्थित जैन स्थानक में बड़ी तादाद में श्रावक-श्राविकाएँ उपस्थित थे।

स्थानीय श्रावकों ने मुनि श्री से अनुरोध किया कि दक्षिण यात्रा से लौटते समय पुनः अपने सत्संग एवं प्रवचनों से इस नगर को उपकृत करें।

मुनिवर ने भी नगर द्वय के श्रावकों के प्रति उनकी समर्पित सेवाओं के लिए हार्दिक आभार प्रकट किया।

इन दो वर्षों में मुनि श्री सुमनकुमार जी म. ने धार्मिक क्रिया कलापों के अतिरिक्त दो सारस्वत उपक्रमों का भी श्री गणेश किया। एक तो उस्मानिया विश्वविद्यालय में 'जैन-पीठ' की स्थापना की प्रेरणा तथा **दूसरे शास्त्रोद्धारक श्री अमोलक ऋषि जी म. की दीक्षा शताब्दी महोत्सव का शुभारम्भ।**

❖ ❖ ❖

रायचूर की ओर

विदाई समारोह के पश्चात् परम श्रद्धेय मुनिवर ने रायचूर की ओर विहार किया। रायचूर श्री संघ में युवाचार्य डॉ. श्री शिवमुनिजी म. तथा पूज्य सुमन मुनि जी ने होली चातुर्मास एवं महावीर महोत्सव मनाया तथा अशोक कोठारी (शीरीष मुनि) की दीक्षा का निर्णय भी यहीं पर हुआ। दीक्षा आज्ञा की उलझन, दीक्षादान कहाँ हो आदि का समाधान मुनि श्री की गहरी सूझ का परिणाम था। श्री संघ में अपार हर्ष रहा। युवाचार्य डॉ. शिवमुनिजी ठाणा ४ का चातुर्मास भी रायचूर ही घोषित हुआ।

७ मई १९९० को यादगिर में श्रीमान् सेठ बाहदरचन्द जी धोका द्वारा तथा श्री एस.एस. जैन संघ, यादगिर के सहयोग से यह दीक्षा सम्पन्न हुई थी। इस अवसर पर चरितनायकजी म., युवाचार्य श्री तथा प्रवर्त्तक श्री रूपचन्दजी 'रजत', सर्व ठाणा विराजमान थे।

दोड्डबालापुर चातुर्मास

सन् १९९० का वर्षावास सुनिश्चित हुआ दोड्डबालापुर में। दिनांक १ जुलाई १९९० रविवार को ११ बजे परम श्रद्धेय मुनिवर ने चातुर्मासार्थ दौड्डबलापुर में प्रवेश किया तो अपार जनसमूह हर्ष एवं उल्लास से आनंदित हो उठा। मंगल प्रवेश के पश्चात् प्रतिदिन धार्मिक कार्यक्रम सुसम्पन्न होने लगे।

२३ जुलाई ९० को आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म. का ९१ वाँ जन्म दिवस तप-त्याग के साथ मनाया गया। आचार्य श्री के जयन्ति महोत्सव पर विधायक श्री आर.एल. जालप्पा, नगरपालिका अध्यक्ष आदि ने भी भाग लिया। अनेक संघ आचार्य देव को भाव श्रद्धा से युक्त पुष्प अर्पित करने यहाँ पहुँचे। श्रद्धेय मुनि श्री ने अपनी मधुर शैली में आचार्य श्री के जीवन का दिग्दर्शन कराया एवं आचार्य श्री के संस्मरण सुनाये। अनेक वक्ताओं ने भी आचार्य श्री के गुणगान गाये एवं श्रद्धा भाव अर्पित किए। इससे पूर्व प्रभात फेरी निकली, स्थानक में "णमोआयरियाणं" का सवा लाख जाप संपन्न हुआ। आंयविल व एकासने भी इस अवसर पर बड़ी संख्या में किए गए। तदनन्तर पर्यूषण पर्व की सानन्द आराधना की गई।

२ सितम्बर १९९० को आचार्य श्री जयमल जी म., आचार्य श्री आत्माराम जी म. प्रवर्त्तक पं. श्री शुक्लचन्द जी म. का जन्म जयन्ति महोत्सव संघ के तत्वाधान में आयोजित हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री चम्पालाल जी डूंगरवाल ने की तथा प्रमुख वक्ता थे – श्री ज्ञानराज जी मेहता बैंगलोर। मुख्य अतिथि थे स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण अधिकारी डॉ. गंगाधर।

इस शुभ प्रसंग पर गरीबों को कम्बल दान दिए गए एवं निकट भविष्य में निःशुल्क नेत्र परीक्षण एवं शल्य चिकित्सा शिविर के आयोजन की भी घोषणा की श्री अजयराज जुगराज जी सिंघवी ने की। इसी चातुर्मास में "आत्मसिद्धिशास्त्र" पर टाईप हुए व्याख्यानों का मुनि श्री ने सम्पादन शुभारंभ किया। उसके प्रकाशन के लिए श्री हुकुमचन्द जी पुगलिया ने भावना प्रकट की।

दि. २ अक्टूबर १६६० को उपर्युक्त चिकित्सा शिविर सानंद सम्पन्न हुआ।

तप-त्याग धार्मिक उल्लास के साथ दोड्डाबालापुर का वर्षावास सानंद सम्पन्नता की ओर अग्रसर होने लगा।

✤ ✤ ✤

भावपूर्ण विदाई

चातुर्मास सुसम्पन्न होने के पश्चात् श्रावक श्राविकाओं ने भावपूर्ण विदाई दी परम श्रद्धेय मुनिवर को । मुनिवर श्री की पुनः धर्मयात्रा प्रारंभ हुई। दि. २६ नवम्बर १६६० सोमवार को श्रद्धेय आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म. की ७८वीं दीक्षाजयंति सोत्साह मनाई गई। स्थान-यहलंका उपनगर, अध्यक्षता श्री फूलचन्द जी लूणिया।

२ जनवरी १६६१ को भारती नगर में स्थित आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म. जैन स्थानक का उद्‌घाटन हुआ आप श्री की निश्रा में। एवं दान दाताओं का अभिनन्दन किया गया। इस प्रसंग पर गौंडल सम्प्रदाय की महासती श्री भारती श्री जी म. भी अपनी शिष्याओं के साथ वहाँ पधारीं।

१५ जनवरी १६६१ को आप श्री का शुभ पदार्पण यशवंत पुर की धरा पर हुआ यहाँ आप श्री की पावन निश्रा में कर्नाटक केशरी श्री गणेशी लाल जी म. की २६वीं पुण्यतिथि तप त्याग के साथ मनाई गई। सहज सुलभ पुण्योत्सव का अवसर प्राप्त कर यशवंतपुरम् का संघ धन्य हो गया। गुरुदेव श्री सहित अनेक वक्ताओं ने कर्नाटक केशरी को भाव भीनी श्रद्धांजलि अर्पित की पुनः विहार यात्रा सानंद सम्पन्न करते हुए आप श्री मार्च के मध्य बैंगलौर पधारे।

फूलों की नगरी में सलाहकार मंत्री जी म. के पावन पदार्पण पर धर्म रसिक जनता को अपार हर्ष हुआ। आप श्री के ओजस्वी प्रेरक एवं निडर समसामयिक प्रवचन सुनकर श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे।

दिनांक २६-१-६१ की पुनीत वेला भी राजाजी नगर वासियों के लिए कि जिस दिन आप श्री के चरणों ने उस धरती को पावन किया इसी शुभ दिन राजाजी नगर संघ के द्वारा भव्य स्थानक-निर्माण की प्रक्रिया का भी शुभारंभ हुआ। इस प्रसंग पर आप श्री के प्रवचन का भी लोगों को लाभ मिला।

राजाजी नगर धर्मोद्योत करके आप श्री शिवाजी नगर के गणेश बाग में पधारे दिनांक २८-२-६१ को आप श्री का फाल्गुनी चातुर्मास वहीं हुआ। प्रवचनों की धूम रही। के.जी.एफ. के चातुर्मास की स्वीकृति दी। तदनन्तर बैंगलोर के उपनगरों में विचरण करने लगे।

अलसूर श्री संघ की विनती स्वीकार कर चैत्री नवपद ओली एवं महावीर जयन्ति हेतु श्रद्धेय मुनि श्री ने स्वीकृति प्रदान की। स्थानीय एवं बाहर के बाजारों की धर्म प्रिय जनता ने श्रद्धा और उत्साह के साथ आंयविल तप की आराधना की। श्रीपाल चरित्र का वाचन हुआ। दि. २७-३-६१ को भगवान् महावीर का पुनीत जन्म कल्याणक महोत्सव मनाया गया। अलसूर के प्रमुख बाजारों में प्रभात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फेरी का आयोजन प्रातःकाल में हुआ। सामूहिक व्याख्यान बैंगलोर सिटी में आयोजित किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि थे बैंगलोर के महापौर श्री के.सी. विजय कुमार। जिन्होंने कन्नड़ भाषा में अपना शोधपूर्ण भाषण दिया। प्रो. प्रताप कुमार टोलिया श्री ज्ञानराज जी मेहता आदि वक्ताओं ने भी सभा को सम्बोधित किया।

अध्यापक श्री शान्तिलाल जी गोलेच्छा के नेतृत्व में सुन्दर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया।

पं. रत्न श्री सुमन मुनि जी म. ने भ. महावीर स्वामी के जीवन एवं तत्त्व दर्शन पर ओजस्वी एवं प्रेरक प्रवचन दिया। साथ ही साथ समाजोत्थान की भी अपील की।

दिनांक २५ मार्च ८६ को श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री श्री नानालाल जी म.सा. की शिष्या मरुधरा सिंहनी श्री नानुकुंवर जी म.सा. आदि टाणा ३७ की पावन सन्निधि में विरक्तात्मा श्रीमती इन्दु बाई की भागवती दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई-गणेश बाग में। इस शुभ प्रसंग पर श्रद्धेय मुनि श्री ने भी विरक्तात्मा के प्रति आशीर्वचन प्रदान किया और मुमुक्षु आत्मा के संयमी जीवन के प्रति मंगलकामनाएँ प्रकट की। मुनिश्री को दीक्षा पर आमंत्रित करना (साधुमार्गी संघ एवं स्वयं साध्वी श्री जी द्वारा यह सामुदायिक सद्भावना का प्रतीक) और मुनि श्री जी के व्यक्तित्व का भी परिचायक था।

के.जी.एफ. चातुर्मास स्वीकृत

तदनंतर अन्य स्थानों में धर्मोपदेश करते हुए मुनि श्री जी की विहार यात्रा आरंभ हुई। सन १९९१ का वर्षावास परम श्रद्धेय श्री ने के.जी.एफ. के लिए स्वीकृत किया के.जी.एफ. का संघ स्वीकृति पाकर गद्-गद् हो गया। चातुर्मास की भव्य तैयारियाँ संघ ने प्रारंभ की।

परम श्रद्धेय सलाहकार मंत्री जी म. का विहार भी चातुर्मास, स्थल की ओर हुआ। शनैः शनैः मंजिल निकट आने लगी। एक दिन वह भी आ ही गया आप श्री ने अपार जनमेदिनी के साथ मंगलमयी पावन बेला में चातुर्मासार्थ के.जी.एफ. में प्रवेश किया।

दैनिक नित्यकर्म धर्म ध्यान में अभिवृद्धि करने लगे। प्रातः कालीन प्रार्थना में भक्ति स्वर, व्याख्यान में वीतराग वाणी के स्वर श्रद्धेय श्री के मुखारविन्द से निसृत हो गुञ्जित होने लगे। जिज्ञासुओं की तत्त्वज्ञान की पिपासा 'तत्व-चर्चा' के माध्यम से आप श्री मिटाने लगे एवं धर्म क्रिया के माध्यम से धर्म प्रेमियों में जागरणा आने लगी।

वर्षावास में आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषि जी म.सा. की जन्म जयन्ति एवं श्रमण सूर्य प्रवर्तक मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म.सा. की जन्म जयन्ति तप त्याग के साथ मनाई तथा उनके महान् जीवन दर्शन का दिग्दर्शन कराते हुए गुणकीर्तन किया। अनेक वक्ताओं ने भी महापुरुषों की जीवन गाथा का गुणगान करके श्रद्धा भाव अर्पित किए।

तीर्थ वन्दना, प्रवर्त्तना, रथयात्रा जो कि भगवान महावीर के सिद्धान्तों का समूचे भारत में प्रचार प्रसार करती हुई दिनांक ३१-८-९१ मध्याह्न ३ बजे के.जी.एफ. में पहुँची थी। जैन स्थानक में सार्वजनिक सभा सम्पन्न हुई। पंडित रत्न श्री सुमनमुनि जी म. ने भी अपने आशीर्वचनों से सभी को कृतार्थ किया।

पर्युषण पर्व

पर्वाधिराज पर्युषण महापर्व की आराधना भी तप जप के साथ सोत्साह सम्पन्न हुई। परम श्रद्धेय मंत्री मुनि श्री जी ने इन आठ दिवसों में अन्तगड दशासूत्र के आधार पर निम्न विषयक प्रवचन प्रदान किया –

१. पर्युषण पर्वाराधना (प्रथम वर्ग) २. आसक्ति-विरक्ति (द्वितीय पक्ष) ३. संयोग वियोग-सहिष्णुता (तृतीय वर्ग) ४. अमरता का रहस्य (चतुर्थ वर्ग) नारी भी भारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(पंचम वर्ग) ६ पापको परखो-बालसंस्कार (षष्ठ वर्ग) ७. माँ का वात्सल्य, अनरव (सप्तम् वर्ग) ८ तपश्चरण, करुणा, मित्रता, क्षमापन, धर्म (अष्टमवर्ग)

पर्युषण के आठ दिवसों में महामंत्र नवकार का अखण्ड जाप हुआ। अनेक व्रत-प्रत्याख्यान हुए। तपश्चरण की बहार आई।

दिनांक ६-६-६१ को स्व. आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी की पुण्य तिथि एवं १६-२० सितम्बर को जय-आत्म-शुक्ल जयंति का सामूहिक आयोजन हुआ। उपर्युक्त पुण्यतिथि एवं जन्म जयन्ति के उपलक्ष में तप-त्याग तो हुआ ही किन्तु जनोपकारी कार्यक्रम भी सम्पन्न हुए।

१०-६-६१ को आत्म शुक्ल जयन्ति के शुभ प्रसंग पर विशाल निःशुल्क केन्सर निदान एवं शिक्षा शिविर संघ की ओर से आयोजित हुआ जिससे अनेक रोगी लाभान्वित हुए इसका उद्घाटन श्री जी.एम. हयाथ (I.P.S) ने किया।

४-१०-६१ को श्रीमति ललिता कुमारी धर्मपत्नि श्री अजितराज जी धारीवाल एवं श्रीमति ललिता धर्म पत्नि श्री सुशील कुमार जी धारीवाल को मास खमण की तपश्चर्या के प्रत्याख्यान गुरुदेव श्री ने कराए।

चौमासी चतुर्दशी वर्षावास समाप्ति के दिन 'शुक्लप्रवचन' भाग प्रथम का जिसमें मुनि श्री के आत्मसिद्धि पर दिए गये प्रवचन थे, श्रीमान् प्रेमचन्द जी फूलफगर औरंगाबाद वालों के कर कमलों से विधिवत् विमोचन हुआ।

विदायगी

इसी के साथ वर्षावास सानंद सम्पन्न हुआ एवं वहाँ से गुरुदेव श्री ने प्रस्थान किया – जन समूह ने भावपूर्ण श्रद्धाविह्वल विदाई दी।

वर्षावास में त्रिशला जैन महिला मंडल एवं श्री एस.एस. जैन युवक संघ का उत्साह सराहनीय रहा।

अण्डरसन पेट में भगवान पार्श्वनाथ का जन्म कल्याणक मनाया गया। वहाँ से विहार कर परम श्रद्धेय श्री जी म. बैंगलोर अलसूर पधारे।

यकायक... सूचना प्राप्त हुई कि आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. तेरह दिवसीय संथारे के साथ निमाज में समाधि मरण के साथ कालधर्म को प्राप्त हो गए हैं। संघ की मीटिंग हुई एवं श्रद्धाञ्जलि सभा का आयोजन हुआ। आचार्य देव के प्रति सभी ने श्रद्धाभाव समर्पित किए, उनके जीवन की चर्चा करते हुए उनके एतिहासिक कार्यों की विस्तृत चर्चा की एवं उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

युवाचार्य श्री से सम्मिलन

अलसूर में धर्म गंगा की धारा को प्रवाहित कर आप श्री गाँधी नगर पधारे। गाँधी नगर में डॉ. युवाचार्य श्री शिवमुनि जी म. एवं आदि ठाणा का सम्मिलन हुआ। युवाचार्य श्री एवं श्रद्धेय चरितनायक जी ने कान्फ्रेन्स की युवा शाखा समिति के आग्रह पर मरुधर केसरी म.सा. का स्मृति दिवस एवं आचार्य श्री हस्तीमल जी म. की जन्म जयन्ति मनाई। स्थल था – जयदेव हॉस्टल। बड़ी संख्या में साध्वी जी म. इस महोत्सव में सम्मिलित हुए। लगभग १२००० से भी अधिक जनमेदिनी उन महापुरुषों के प्रति श्रद्धा अर्पित करने पहुँची।

मल्लेश्वरम् में परम श्रद्धेय शान्ति स्वरूप जी म.सा. की पुण्य तिथि भी सोत्साह मनाई गई। आप श्री ने दौड्डवालापुर श्री संघ को फाल्गुणी चौमासी की स्वीकृति प्रदान की। यथा समय आप दौड्डवालापुर पधारे। श्री संघ में नूतन जागृति आई।

वज्रापाती सूचना

फाल्गुनी चौमासी सम्पन्न हुई। डॉ. युवाचार्य श्री शिव मुनिजी म. भी दौड्डवाला पुर पधारे। यहाँ एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और वज्रपात की सूचना मिली कि श्रमण संघ के अधिनायक आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म. का स्वर्गवास हो गया। (२८ मार्च १६६२ को) २ अप्रैल को उनकी गुणानुवाद सभा आयोजित हुई।

युवाचार्य श्री ने आचार्य भगवन्त के आत्मनिष्ठ संयमनिष्ठ जीवन के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहा – "आचार्य श्री जी यथानाम तथागुण सम्पन्न थे। जिन्होंने दीर्घ काल तक श्रमण संघ का नेतृत्व किया। संघ में आई एक विषम परिस्थिति का सामना किया। आप समाज के शिवशंकर थे। आपने विष पान करके समाज को अमृत प्रदान किया। आपने संघ को एक ऐसी व्यवस्था दी कि जिससे संघ उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हुआ। सरलता, क्षमता, सहिष्णुता, करूणा और अहिंसा आपमें सर्वदा-सर्वथा समाहित थी। युवाचार्य श्री ने आचार्य देव के साथ बीते क्षणों के संस्मरण भी सुनाए और आचार्य देव को श्रद्धार्पित करते हुए कहा कि हमें उनके आदर्शों को जीवन में अपनाकर श्रमण संघ को सुदृढ़ करना है।"

श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमन मुनि जी म.सा. ने पद्य एवं गद्य में आचार्य श्री को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा – "आचार्यों को भावपूर्ण वन्दन करने से अनेक भवों के पापों का नाश होता है। आप श्री ने आचार्य देव के जन्म से लेकर उनके गुणों का विश्लेषण करते हुए सारगर्भित शैली में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये। श्री शैलेष मुनि जी म. एवं श्री शिरीष मुनि जी ने भी आचार्य देव को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

आचार्य देव का स्वर्गवास वस्तुतः जैन समाज के लिए भीषण क्षति थी। जो सन्निकट भविष्य में अपूरणीय थी।

वहाँ से विहार कर श्रद्धेय मुनि श्री युवाचार्य श्री के संग के.जी.एफ. पधारे एवं १५-४-६२ को उमंग और उल्लास के साथ महावीर जन्म कल्याणक महोत्सव मनाया। अनेक निकटवर्ती संघों ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। सभी का उत्साह दृष्टव्य था। अक्षय तृतीया भी यहीं सम्पन्न हुई।

वानियमबाड़ी वर्षावास स्वीकृति

अक्षय तृतीया के पश्चात् के.जी.एफ. से विहार करते हुए आप श्री अँडरसनपेठ पधारे। वहाँ स्व. आचार्य श्री कांशीराम जी म. की पुन्य तिथि मनाई। इस अवसर पर वानियमबाड़ी का श्री संघ चातुर्मास की विनती लेकर उपस्थित हुआ। गुरुदेव श्री ने संघ को आगामी वर्षावास की स्वीकृति प्रदान की।

अण्ड़रसन पेठ से विहार कर कुप्पम वरगुर होते हुए तिरपातूर पहुँचे। मार्ग में भयंकर वर्षा और धूप का सामना करना पड़ा। वरगुर में कृष्णगिरि के भाई विनति के लिए आए। किन्तु गुरुदेव तिरपातूर पहुँचे। तिरपातूर में जैन भवन है, जो कि पूरे जैन समाज का है। मदनलाल जी वाठियाँ के मकान में ठहरे। तिरपातूर में मन्दिर मार्गी-स्थानकवासी दोनों समाजों का एक ही संघ है। सभी मिलकर साधु-साध्वी की सेवा एवं धर्म ध्यान करते हैं। एक जैन मन्दिर है जो नया बना है। यहाँ गुरुदेव श्री ने स्थानक भवन की प्रेरणा दी।

वहाँ से चंगम जहाँ ४-५ घर हैं जिसमें श्री जम्बूकमार जी लालवानी बहुत सेवा भावी है। यहाँ दो दिन ठहरे। यहाँ से तिरुवन्नामल्लै पहुँचे। यहाँ विशाल जैन भवन एवं मन्दिर है। तीनों संघ हैं। स्थानकवासी समाज के २०-२५ घर हैं। जिसमें श्री मोहनलालजी पारस मल जी वोरा, शान्तिलाल जी पटवा आदि अग्रणी हैं। यहाँ गुरुदेव लगभग एक सप्ताह ठहरे। धर्म देशना का क्रम चालू रहा। यहाँ से पोलूर गए वहाँ ७-८ घर हैं अच्छा धर्म प्रेम है। वहाँ से आरणी पहुँचे। वहाँ लगभग २० घर हैं जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानक है। श्री माणकचन्द जी सिंघवी एवं श्री पारस मल जी हुक्मीचन्दजी बम्ब प्रमुख हैं, सेवा भावी हैं। आरणी से पलीगुण्डा होते हुए मादनूर होते हुए आम्बूर आए। यहाँ ८-१० घर हैं, जैन भवन है, स्थानक है अच्छी भक्तिभावना है। आम्बूर से १८ किलोमीटर वानियमबाड़ी चातुर्मास हेतु पहुँचे।

वर्षावास की गतिविधियाँ

६-७-९२ की पावन वेला में श्री एस.एस. जैन संघ वानियमबाड़ी (तमिलनाडु) के लिए कि जिस दिन वर्षावासार्थ परम श्रद्धेय श्री के पावन चरण कमलों ने उस धरती को स्पर्श किया। विधिवत् धर्म क्रियाएँ आरम्भ हुई। इस चातुर्मास के भी विशेष आकर्षण वही रहे जो पिछले चातुर्मासों के थे।

इस चातुर्मास में अनेक युवतियों ने प्रतिक्रमण, स्तोत्रपाठ एवं बच्चों ने सामायिक पाठों का अभ्यास किया। मुनि श्री स्वयं भी तथा शिष्य भी निरन्तर प्रयास रत रहते। साथ भाषण-लेखन-गीत आदि, प्रश्नमंच, परीक्षाओं का आयोजन होता रहा।

आचार्य श्री आनंदऋषिजी म.सा. की जन्म जयन्ति ३० जुलाई गुरूवार १२ अगस्त को बुधवार के दिन मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म. की १०२वी जन्म जयन्ति, जय-आत्म-शुक्ल जयन्ति का त्रय जयन्ति महोत्सव भादों शुक्ला द्वादशी एवं तेरस के दिन तप त्याग पूर्वक मनाया गया।

पर्युषण भी सानन्द सम्पन्न हुए। आप श्री का दीक्षा दिवस भी श्री संघ द्वारा विविध प्रतियोगिताओं एवं धर्माचरण के द्वारा मनाया गया। इसी चातुर्मास में शुक्ल प्रवचन भाग-२ एवं वृहदालोयणा (द्वितीय संस्करण) का प्रकाशन-विमोचन हुआ।

विदायगी

यशस्वी वर्षावास को सानंद सम्पन्न करके परमश्रद्धेय श्री ने विदाई की वेला में वहाँ से विहार किया तो आबाल वृद्ध सभी भारी हृदय के साथ विदा देने पहुँचे। पुनः विचरण प्रारम्भ हुआ।

वानियमबाड़ी से विहार करके तिरपातूर गए वहाँ जैन भवन में ठहरे। दैनिक धार्मिक कार्यक्रम सुचारु रूप से होते रहे तथा स्थानक के लिए प्रेरणा दी। स्थानक की मूल प्रेरणा खंभात सम्प्रदाय के श्री कमलेश मुनि जी म. ने कई वर्षों पूर्व दी थी। मुनि श्री ने उसे फिर से पुनर्जीवित किया। जितनी धनराशि पहले लिखी गई थी उसे दुगुणा कराया। साथ ही उन्होंने स्थानक के लिए अन्य तरीकों से धन एकत्रित करने की योजना बनाई और अंततः स्थानक के लिए जमीन खरीद ली गई।

तिरपातूर से पुनः वानियमवाड़ी आए। वहाँ छ दिसम्बर को बाबरी मस्जिद तोड़ने के कारण भारी हिन्दु-मुस्लिम झगड़ा हुआ। कई दुकानें लूटी गई तथा कईयों को जलाया गया। कारणवश यहाँ कुछ समय ठहरना पड़ा। वातावरण शान्त होने के बाद आम्बूर की ओर विहार किया।

आम्बूर में भगवान पार्श्वनाथ जयन्ति मनायी गई। अनेक निकटवर्ती संघों ने इस महोत्सव में भाग लिया। उस मौके पर अन्य संघों के साथ माम्बलम श्री संघ भी जैन स्थानक के उद्घाटन की विनती के लिए उपस्थित हुआ। महाराज श्री ने गुडियातम पहुंचकर स्वीकृति प्रदान की। गुडियातम में मरुधर केसरी जी म. की पुण्य तिथि मनाई गई। साध्वी श्री भानुबाई जी म. भी उपस्थित हुई। गुडियातम में नेहरू बाजार एवं टी.नगर श्री संघ चातुर्मासार्थ विनती के लिए आए। नेहरू बाजार वालों को कहा गया कि साहूकारपेठ मिन्ट स्ट्रीट में प्रवर्त्तनी साध्वी प्रमोध सुधा जी म. ठाणे १६ का चातुर्मास स्वीकृत है। आपका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाजार वहाँ है एक किलो मीटर भी नहीं है। दो चातुर्मास शोभास्पद नहीं हैं साथ ही वे साध्वी भी श्रमण संघ की ही हैं इसलिए विवशता है। माम्बलम् श्री संघ को स्थानक के उद्घाटन की स्वीकृति दे दी।

गुडियातम के बाद विहार यात्रा पुनः प्रारम्भ हुई। पेरनापेट विरंजीपुरम् के.वी. कुप्पम होते हुए वेलूर पहुँचे। सभी जगह-४-४, ५-५ घर हैं सेवाभावी हैं। वेलूर वालों ने ठहरने का आग्रह किया परन्तु महाराज श्री ने विवशता जाहिर की कि टी.नगर उद्घाटन पर पहुँचता है २८ जनवरी को १४० कि.मी. है। उनको महावीर जयन्ति का आश्वासन देकर विहार किया। वेलूर के वालाजाबाद, बालचेटी छतरम, राजकुलम, चुंगाछतरम्, श्री पेरम्बूदूर गए वहाँ से पुनमली आए यहाँ स्थानक है २० घर हैं। श्रीदलीचन्द जी कवाड़ आदि परम सेवा भावी हैं। वहाँ से पोरूर, विरगमपाकम, वड़पलनी पहुंचे। यहाँ जैन स्थानक एवं जैन भवन है। जैन भवन में तपस्वी श्री गणेशीलाल जी म. सा. की पुण्य तिथि मनाई गई।

स्थानक उद्घाटन के सुवसर पर ही आरकोणम वाले होली चातुर्मास की विनती लेकर आए म. श्री ने स्वीकृति प्रदान की।

माम्बलम मद्रास के नये स्थानक का उद्घाटन, श्रमणसंघीय सलाहकार, मंत्री श्री सुमनमुनि जी का ५८वां जन्म-जयन्ति महोत्सव

दिनांक २६-१-६३ को प्रातः काल ६ बजे माम्बलम, मद्रास के नव निर्मित स्थानक का उद्घाटन मद्रास के डाईरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस श्री श्रीपालजी जैन के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। यह उद्घाटन युवाचार्य प्रवर श्री डॉ. शिवमुनिजी आदि ठाणा ४, श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनमुनि जी म. आदि ठाणा २ महासती श्री आदर्श ज्योतिजी आदि ठाणा ५, महासती श्री कंचन कंवरजी आदि ठाणा ३ के सान्निध्य में हुआ।

इन अवसर पर विशेष अतिथियों के रूप में पारसमल जी चौरड़िया, श्री जसवन्तमल जी सेठिया, श्री किशनचन्द जी चौरड़िया, श्री सुरेन्द्र भाई मेहता, श्री सी.एल. मेहता आदि आदि नगर के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। माम्बलम श्री संघ की ओर से मुख्य अतिथि श्री श्रीपालजी जैन का एक मेमोण्टो एवं अन्य अतिथियों का चन्दन की माला एवं शाल द्वारा सन्मान किया गया।

सर्व प्रथम मंगलाचरण तथा बालिकाओं के मंगल गीत से सभा का शुभारम्भ हुआ।

जैन स्थानक के निर्माण में योगदान देनेवाले सभी सदस्यों, संघ, के अधिकारियों, कॅलेक्शन कमेटी, निर्माण समिति के सदस्यों ट्रस्ट के चेयरमैन, मैनेजिंग ट्रस्टी आदि तथा युवा इन्जीनियर श्री उत्तम चंद जी गोठी जिन्होंने यह स्थानक भवन तैयार करवाया था, सबका अभिनन्दन किया गया।

मुख्य अतिथि एवं विशेष अतिथियों के भाषण हुए। साध्वी श्री आदर्श ज्योतिजी एवं कंचन कंवरजी ने स्थानक की भव्यता का विषद वर्णन किया। मुनि श्री शैलेष जी, मुनि श्री सुमन्तभद्रजी, श्री शिरीषमुनिजी ने संक्षिप्त में स्थानक की उपयोगिता के बारे में बताया।

इसी के साथ श्रमण संघीय सलाहकार-मंत्री श्री सुमनमुनि जी म. सा. की ५८वीं जन्म जयन्ती के उपलब्ध में सभी वक्ताओं ने अपने-अपने विचार एवं मंगल कामनाएं प्रकट करके पूज्य गुरुदेव श्रीजी के दीर्घ आयुष्य की कामना प्रकट की। श्री संघ की ओर से इस वर्ष के चातुर्मास की विनती को पुनः दोहराते हुए प्रार्थना की।

इस जन्म जयन्ती के पुनीत अवसर पर भगवान महावीर जैन स्वाध्याय पीठ की स्थापना हुई। जिसमें मद्रास नगर के एक गुप्त दानी पुरुष ने सर्व प्रथम एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अच्छी धनराशि की घोषणा की तो अनेक दान दाताओं ने अपने धन के सदुपयोग की घोषणा की।

सौभाग्य से बसन्त पंचमी के अवसर पर, शुभ दिन में एक साथ दो मंगल अनुष्ठान सम्पन्न हुए – नये स्थानक भवन का उद्घाटन, मंत्री मुनि श्रीजी की ५८ वीं जन्म जयन्ती।

युवाचार्य प्रवर श्री शिवमुनिजी महाराज ने नये स्थानक के लिए मंगल कामनाएँ एवं स्वाध्याय पीठ के लिए प्रेरणा देते हुए सलाहकार मन्त्री मुनि जी महाराज साहब की ५८वीं जन्म जयन्ति पर शुभ कामनाएँ प्रकट करते हुए उनको अनेक अनेक बधाइयाँ दी। उन्होंने कहा कि आज के इस युग में पूज्य सुमन मुनि जी जैसे कर्मठयोगी, स्पष्ट वक्ता, आगम ज्ञाता सन्तों की बहुत आवश्यकता है।

अन्त में पूज्य श्री सुमन मुनि जी म. सा. का स्थानक-परम्परादि पर ओजस्वी उद्बोधन पाकर जनता गद्‌गद हो उठी।

मंच संचालन का कार्य संघमन्त्री श्री भीखम चन्द्र जी गादिया ने कुशलता पूर्वक किया। धन्यवाद श्री चैनराज जी पीपाड़ा मैनेजिंग ट्रस्टी ने पढ़ा।

श्री संघ ने मद्रास नगर-उपनगरों तथा बाहर में आए हुए सब धर्म बन्धुओं के लिए भोजन की सुन्दर व्यवस्था की।

पूज्य गुरुदेव के मंगलमय मांगलिक से सभा विसर्जित हुई।

स्थानक के उद्घाटन के उपलक्ष में ४८ घंटों का नवकार-महामन्त्र का अखंड जाप हुआ। जिसमें सब भाई बहनों ने बड़े उत्साह से भाग लिया।

टी.नगर स्थानक उद्घाटन के बाद आपकी विहार यात्रा आरकोणम के लिए प्रारंभ हुई। टी.नगर से विहार यात्रा करते हुए अन्ना नगर, पाड़ी अम्बतूर, आवडी, पट्टाभिराम, तिन्नानूर, त्रिवलूर पधारे यहाँ पर प्रवर्त्तक पं. श्री शुक्लचन्द जी म. की पुण्य तिथि श्री प्रेमराज जी लुंकड़ के छतरम में मनाई। यहाँ से विहार करके आरकोणम में होली चातुर्मास के लिए प्रवेश किया। ये सभी क्षेत्र साताकारी हैं यहाँ सभी स्थानों पर स्थानक एवं श्री संघ हैं।

माम्बलम वर्षावास की स्वीकृति

होली चातुर्मास के दिन अनेक संघ समुपस्थित थे। मद्रास का माम्बलम (टी.नगर) संघ दो बसों से, एवं युवामंच एक वेन से वहाँ उपस्थित हुआ। १९९३ के चातुर्मास की पुरजोर विनती की गुरुदेव श्री ने विनती का मान रखते हुए सुखे समाधे सागार आगामी वर्षावास की माम्बलम श्री संघ को स्वीकृति प्रदान कर दी। स्वीकृति पाकर संघ उत्फुल्ल एवं हर्षित हो उठा।

✤ ✤ ✤

आरकोणम से विहार करके तिरतिनी, पुत्तूर, रेनीगुण्टा होते हुए तिरुपति गए वहाँ एक सप्ताह ठहरे धर्म ध्यान आदि का ठाठ रहा। तिरुपति में चित्तूर संघ आचार्य श्री आनंद ऋषि जी म. की पुण्य तिथि की विनती लेकर आया। गुरुदेव ने सुखे समाधि स्वीकृति प्रदान की। तिरुपति में जैन स्थानक है। स्थानकवासी, तेरापन्थी, मन्दिर मार्गी तीनों सम्प्रदाय हैं। सेवा भावी क्षेत्र है। चित्तूर में भी स्थानक है। ४-५ घर है जिनमें श्री सुभाषजी तातेड़, धर्मीचन्दजी छाजेड़ मुख्य हैं। वहाँ से महावीर जयन्ति के लिए काठपाड़ी होते हुए वेलूर पहुँचे। काठपाड़ी भी ७-८ घर हैं। सेवाभावी हैं।

तदन्तर चेतपेट तिरुवन्नामल्लै, तिरुकोईलूर, विल्लीपुरम, पनरुटी, नेलीकुप्पम, कड़लूर, पाँडीचेरी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

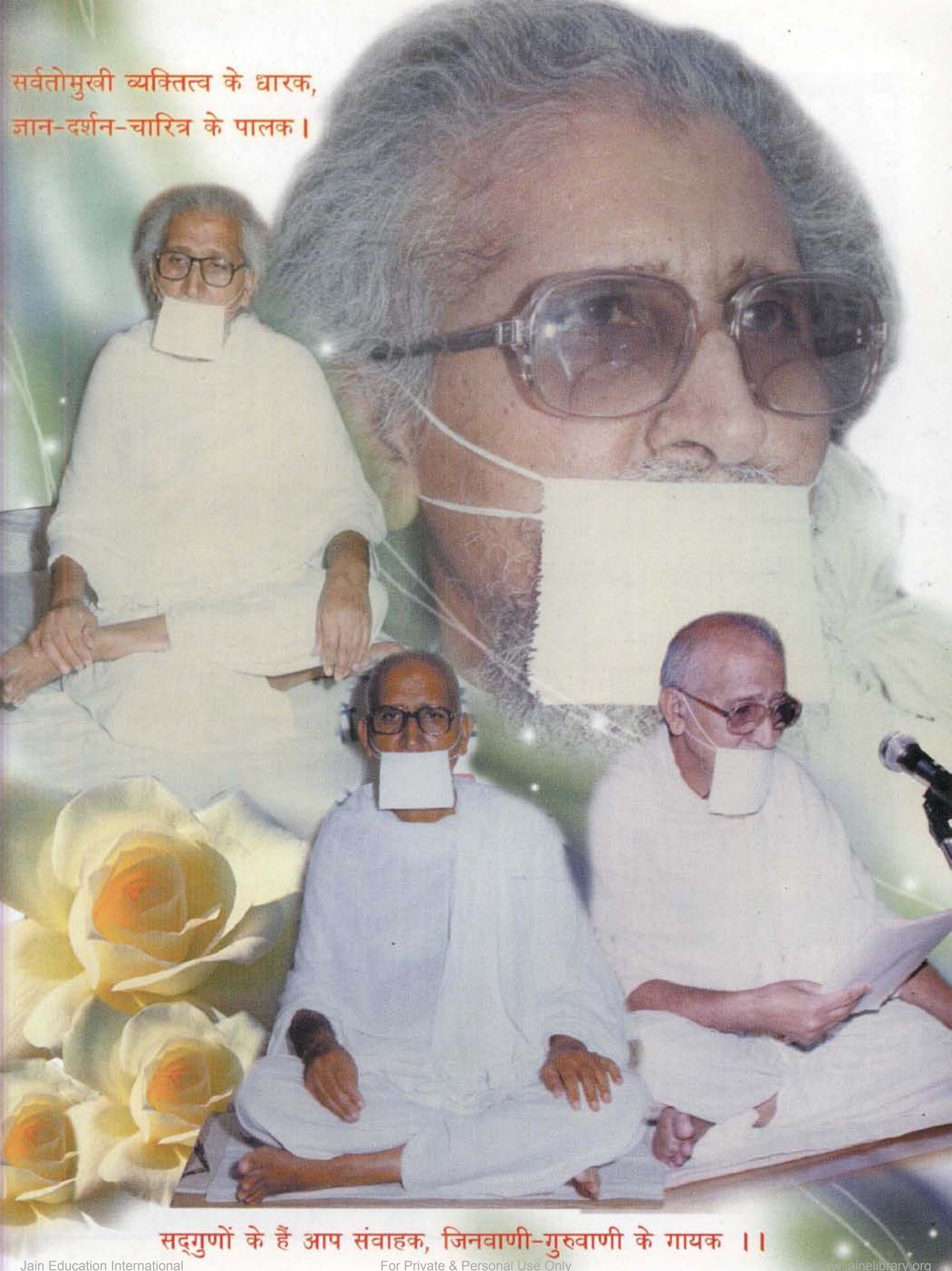

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम के नवनिर्मित स्थानक भवन का चित्र २६-१-६३

स्थानक भवन के उद्घाटन का चित्र

युवा इंजिनियर श्री उत्तमचन्दजी गोठी को मानपत्र भेंट

लातुर भूकम्प पीड़ितों के सहायतार्थ श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम की ओर से राज्यपाल श्री चेन्ना रेड्डी को राशि भेंट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिंडीवनम, अचरापाकम, मन्दुरान्तकम्, चंगलपेट, पेरुमाल कोईल, गुडवान्चेरी, ताम्रम, क्रोमपेट होते हुए पलावरम पधारे वहाँ पर खंभात सम्प्रदाय के श्री कमलेश मुनि जी, श्री प्रकाश मुनि जी म. का सम्मिलन हुआ।

पलावरम् से आलन्दूर सैदापेट होते हुए टी.नगर (माम्बलम) चातुर्मासार्थ पधारे। माम्बलम् वासियों ने अत्यन्त ठाठ से आप श्री का चातुर्मास प्रवेश कराया। धर्म जागरणा होने लगी। यथा समय धार्मिक क्रियाएँ होने लगी।

"आत्मसिद्धि शास्त्र" पर आप श्री के प्रवचनों से लोगों में अपूर्व उत्साह नजर आया।

तत्त्वचर्चा के माध्यम से तत्त्वार्थ सूत्र का आपश्री तत्त्व जिज्ञासुओं को अध्यापन कराते थे।

वर्षावास के पावन क्षणों में शुक्ल प्रवचन भाग ३ का विमोचन डॉ. इन्दरराज जी वैद द्वारा किया गया। आनन्द जयन्ति, मरुधर जयन्ति, जय आत्म शुक्ल जयन्ति आदि तप त्याग पूर्वक मनाई गई। साध्वियां जी श्री कंचनकंवरजी चिन्ताद्रिपेट, एवं श्री अजीत कंवरजी म. अन्ना नगर ने भी तपश्चरण किया। मुनिश्री जी भी वहाँ २ पधारे। साहूकारपेठ में साध्वी श्री विरागदर्शनाजी ने भी तपस्या की।

सप्त दिवसीय धार्मिक शिक्षण शिविर भी समायोजित हुआ। कम्बल वितरण, कृत्रिम पाँव वितरण, हार्ट आप्रेशन/निरीक्षण के जनोपयोगी, मानवसेवी कार्यक्रम भी समायोजित हुए। भूकम्प पीड़ितों हेतु एक लाख ३१ हजार रुपये का चैक गवर्नर को प्रदान किया।

माम्बलम वर्षावास

श्रमण सूर्य मरुधर केसरी श्री मिश्री मल जी म. की जन्म जयन्ति श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमन कुमार जी म. के पावन सान्निध्य में 'नशा निषेध दिवस' तथा 'उपवास आराधना दिवस' के रूप में मनाई गई।

नेत्र चिकित्सा शिविर, कई जरूरत मंद बहनों को सिलाई-मशीनें, पोलियो ग्रस्त बच्चों को जरूरत मंद उपकरण खरीदने में सहायतार्थ राशि प्रदान की गई।

एक स्वधर्मी बंधु के हृदय शल्य चिकित्सा के लिए ५० हजार रुपए की राशि संघ की ओर से प्रदान की गई। एक संगीत प्रतियोगिता का आयोजन भी इस प्रसंग पर हुआ।

परम श्रद्धेय गुरुदेव ने मरुधर केसरी जी महाराज की जयंति पर उनकी जीवनी पर सुन्दर प्रकाश डाला। अपने प्रवचन में मुनि श्री जी ने कहा - सप्तकुव्यसनों के सेवन से जैन समाज पृथक् रहे।

चातुर्मास काल में कोयम्बटूर, बिल्लीपुरम्, नेहरू बाजार आदि मद्रास के श्रावक संघ आगामी चातुर्मास के लिए एवं साहूकार पेठ, वेपेरी, आयनावरम्, सैदापेठ, अन्नानगर आदि अनेक उपनगरों के श्रावक संघ क्षेत्र स्पर्शने की विनति लेकर गुरुदेव श्री के चरणों में उपस्थित हुए। माम्बलम् चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् आप श्री वेपेरी पधारे, वहां आप श्री जी एवं युवाचार्य डॉ. श्री शिवमुनिजी म. की पावन सन्निधि में श्रमण संघीय साधु-साध्वियों की एक संगोष्ठी हुई। इसमें युवाचार्य श्री ठाणे ३, मंत्रीवर्य जी महाराज ठाणे २, श्री प्रमोदसुधा जी म. ठाणे १७ श्री अजितकुंवर जी म. ठाणे ५ ने भाग लिया। विषय था - "-धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए मध्यम मार्ग की आवश्यकता"।

तदनंतर "गेलड़ा गार्डन" में सामूहिक सम्भाषण हुए। विषय थे – **चातुर्मास की सार्थकता** आदि-आदि।

नई पीढ़ी को धार्मिक संस्कार

गेलड़ा गार्डन में ही साहूकार पेठ संघ ने स्व. युवाचार्य श्री मिश्री मल जी म. की नौवीं पुण्यतिथि के लिए विनति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की। ३५ ठाणों से सभी संत-सती जी साहूकार पेठ पधारे एवं पुण्य तिथि मनाई। साहूकार पेठ संघ के उपर्युक्त कार्यक्रम में पुनः नेहरू बाजार वालों ने अपनी आगामी चातुर्मास की विनति दोहराई एवं आनन्द जयंति मनाने की स्वीकृति हेतु गुरुदेव श्री से पुरजोर आग्रह किया।

२२ दिसम्बर १९९३ को उपर्युक्त संत - सति जी म. की पावन सन्निधि में राष्ट्रसंत आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म. सा. का ८१ वां दीक्षा दिवस धर्माराधना के साथ मनाया। दया, एकासना, आयम्बिल आदि के अनेक प्रत्याख्यान हुए। सामूहिक सामायिक व्रत की आराधना भी की गई।

दिनांक २६ दिसम्बर १९९३ को श्री एस.एस. जैन युवक संघ साहूकार पेठ द्वारा प्रकाशित एवं श्री पी.एम. चोरड़िया द्वारा रचित प्रश्न मंच भाग ११ का आप श्री के सान्निध्य में विमोचन समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

तदन्तर आप श्री सी.यू. शाह भवन पधारे। नियमित प्रार्थना प्रवचन के कार्यक्रम होने लगे।

दिनांक १५.२.९४ को परम श्रद्धेय श्रमण संघीय सलाहकार मुनि श्री सुमन कुमार जी म. की ५९वीं जन्म जयंति एवं महासती श्री अजितकंवर जी म. की ५० वीं दीक्षा जयंति मनाई गई। इस प्रसंग पर महासती श्री कंचनकंवर जी म. भी ठाणे ३ से पधारीं। समारोह आयोजक था-श्री जैन संघ अन्नानगर। समारोह की अध्यक्षता श्री दुलीचन्द जी जैन संयोजक "जैन विद्या अनुसंधान परिषद्" ने की। मुख्य अतिथि थे-श्री एस.पी. माथुर I.P.S. !

दिनांक १९ मार्च १९९४ को जैन विधा अनुसंधान प्रतिष्ठान की ओर से प्रकाशित भगवान महावीर के जीवन एवं उपदेशों पर आधारित ग्रन्थ "जिनवाणी के मोती" (लेखक श्री दुलीचन्द जी जैन) का विमोचन आप श्री की पावन सन्निधि में सम्पन्न हुआ। मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायधीश श्री पी.एस. मिश्रा ने ग्रन्थ का विमोचन किया। प्रतिष्ठान के चेयरमैन श्री एस. श्रीपाल I.P.S., D.G.P ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। डा. श्री इन्द्रराज बैद (सहायक निदेशक आकाशवाणी) ने ग्रन्थ पर प्रकाश डाला।

तदन्तर आलन्दूर स्थानक का शिलान्यास भी आप श्री जी की सन्निधि में हुआ। ओटेरी स्थानक का भूमि-पूजन भी सानन्द आप श्री की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् किलपाक, टी. नगर, अन्नानगर पधारे।

आप श्री का इस वर्ष का होली वर्षावास रायपेठा में हुआ। पहाड़ी में महावीर जयंति का आयोजन हुआ। अक्षय तृतीया पूनमली में समायोजित हुई। तदन्तर ताम्बरम, गुडवांचेरी, मदरांतकम्, अचरापाकम्, टिंडीवनम्, विल्लीपुरम्, उलून्दूर पेठ, कलाकुरची, सेलम, इरोड त्रिपुर आदि बड़े-बड़े एवं मध्यवर्ती क्षेत्रों में विचरण करते हुए चातुर्मास हेतु कोयम्बटूर की ओर प्रस्थान किया।

वर्षावास हेतु प्रवेश

कोयम्बटूर वर्षावास हेतु प्रवेश से पूर्व कोयम्बटूर से लगभग ८ कि.मी. की दूरी पर आप श्री के पैर में कील चुभ गई। असह्य पीड़ा हुई। एक दिन के लिए श्री भंवरलाल जी कोठारी के मकान पर ठहरे। तदन्तर विशाल जनमेदिनी के साथ चातुर्मासार्थ प्रवेश हुआ।

उत्तराध्ययन सूत्र पर प्रवचन होने लगे। आप श्री का व्याख्यान सुनकर लोग आनन्दित हो जाते थे। प्रातः तत्त्वार्थ सूत्र का पारायण होता था। मध्याह्न में तत्त्वचर्चा का आयोजन होता था तथा रात्रि में भी।

उचित निर्देश

पर्व पर्युषण आया। यहां ध्वनिवर्धक यंत्र को लेकर विवाद गहराया। कतिपय सज्जन पक्ष में थे तो कतिपय विपक्ष में। आप श्री ने उचित समाधान खोजा और संघ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से कहा कि सूत्रवाचन के समय ७.३० से ८.३० ध्वनिवर्धक यंत्र नहीं लगेगा और प्रवचन के समय ६ से १०.३० तक ध्वनिवर्धक यंत्र यथावत् रहेगा। दोनों गुट प्रसन्न हो गए।

पर्व-पर्युषण सानन्द सम्पन्न हुआ। तप-त्याग एवं प्रवचन रूपी त्रिवेणी संगम में अनेक आत्माओं ने अपने पाप पंक को बहाकर तन-मन को शुद्ध किया।

सम्वत्सरी के बाद दूसरे दिन सामूहिक क्षमापना के लिए १०.३० बजे मुनि श्री पधार रहे थे कि विपरीत दिशा से आ रहा एक आटो रिक्शा एक मारुती से टकराकर आपसे आ टकराया। छोटे संत एवं श्री इन्द्रचन्द्र जी भण्डारी भी साथ थे। आप श्री जी के पैर में भयंकर चोट लगी। दो माह तक पीड़ा रही तथापि आप श्री जी ने समभाव के साथ उस असह्य वेदना को सहा।

वर्षावास में "आनंद-आत्म-शुक्ल-जयमरुधर केसरी" आदि सभी जयंतियां सोत्साह तप-त्याग के साथ मनाई गई। धार्मिक अनुष्ठान के माध्यम से इन महापुरुषों को हार्दिक श्रद्धार्पित की गई।

वर्षावास समाप्ति के पश्चात् आप श्री को भाव पूर्वक विदाई दी अपार श्रावक-श्राविका समुदाय ने। आप सशिष्य आर.एस. पुरम पधारे। तदनन्तर गांधीपुरम में श्री गौतमचन्दजी नाहर एवं शिवान्दा कालोनी में श्री मोहनलाल जी जैन आडिटर के घर स्पर्शते हुए महावीर कॉलोनी पधारे। सिटी में स्थानकवासी शिविर सम्पन्न हुआ। साईं बाबा कालोनी में धर्मोपदेश देते हुए आप श्री ने मेटुपालयम् के लिए विहार किया। २८-२-६५ मंगलवार को आप श्री का पदार्पण ऊटी में हुआ।

ऊटी में

ऊटी ऐतिहासिक पर्यटन स्थल है। भारत के ही नहीं अपितु विदेशी लोग भी यहां की प्रकृति का आनन्द लेने आते हैं।

परम श्रद्धेय चरित नायक जी के पदार्पण से एवं दर्शन कर, प्रवचन श्रवण कर सभी श्रद्धालू आल्हादित हुए।

ऊटी से विहार कर परम श्रद्धेय श्री जी म. ठाणा २ से मेटुपालियम् पधारे। होली चातुर्मास एवं आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी म. का स्मृति दिवस सोत्साह यहीं मनाया गया।

इस प्रसंग पर परम श्रद्धेय म.सा. द्वारा आलेखित एवं श्रावक धर्म को दिग्दर्शित करने वाली पुस्तिका "श्रावक कर्त्तव्य" का भी विमोचन हुआ। विमोचक एवं प्रकाशक थे - श्री जोधराज जी सुराणा।

प्रार्थनाएं तथा स्वीकृतियां

उक्त प्रसंग की मधुरिम बेला में कई संघों ने अपने-अपने क्षेत्र स्पर्शने की, विशिष्ट दिवस अपने-अपने यहां मनाने की तथा आगामी चातुर्मास की पुरजोर विनतियां प्रस्तुत कीं।

बैंगलोर वर्षावास घोषणा

ईरोड़ श्रीसंघ को महावीर जयंति एवं सेलम श्रीसंघ को अक्षय तृतीया दिवस मनाने की गुरुदेव श्री ने स्वीकृति प्रदान की। १९९५ का वर्षावास शिवाजी नगर बैंगलोर को प्रदान किया। तो जय-जय निनादों से वातावरण गूंज उठा।

मेटुपालियम से आप श्री का विहार ईरोड़ की ओर हुआ। १३.४.९५ को ईरोड़ में भगवान महावीर जन्म कल्याणक दिवस मनाया गया। अपार खुशी एवं आनन्द के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

तदन्तर आप मध्यवर्ती क्षेत्रों को अपने चरण रज से पावन करते हुए सेलम पधारे। अक्षय तृतीया के पावन प्रसंग पर सेलम में भव्य संत-त्रिवेणी संगम हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षय तृतीया पर्व सम्पन्न

परमश्रद्धेय सलाहकार मंत्री श्री सुमन मुनि जी म. ठाणा २, गोंडल सम्प्रदाय के श्री गिरीशमुनि जी म. के सुशिष्य श्री जगदीश मुनि जी म. ठाणा २ एवं उपाध्याय श्री केवल मुनि जी म. के शिष्य श्री ठाणा २ से पधारे। जैन संघ सेलम कृतकृत्य हो गया। अनेक ग्रामों नगरों के श्रीसंघ उपस्थित हुए एवं अक्षय तृतीया पर्व सानन्द सम्पन्न हुआ।

दीक्षा-मंत्र-दान

दिनांक १५-७-९५ को परम श्रद्धेय श्री सुमन मुनि जी म. सा., श्री सुमन्त भद्र मुनि जी म. एवं श्री प्रवीण मुनि जी म. (जो कि श्रद्धेय चरितनायक के पौत्र शिष्य हैं तथा पंजाब से कर्नाटक तक २५०० कि.मी. तक की पदयात्रा करके गुरुदेव के चरणों में पहुंचे थे) ठाणा ३ की पावन सन्निधि में चामराज पेट बुलटेम्पलरोड़ स्थित मराठा हॉस्टल के विशाल प्रांगण में कुमारी शकुन्तला नाहर (आत्मजा स्व. श्री बुधमल जी नाहर) (कुचेरा), कुमारी संतोष छल्लाणी (आत्मजा श्री अमर चन्दजी छल्लाणी जसनगर) की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। १०-१५ हजर की विशाल जनमेदिनी के मध्य आप श्री ने दोनों मुमुक्षु आत्माओं को दीक्षा पाठ पढ़ाया एवं महासती श्री वसंत कंवर जी म. की शिष्याएं घोषित की गईं। कुमारी शकुन्तला बनी साध्वी श्री सुलोचना श्रीजी एवं कुमारी संतोष का नामकरण किया गया साध्वी श्री सुलक्षणा श्री जी।

दिनांक ७-७-९५ की शुभ एवं सुरम्य वेला में महावीर भवन (शूलेबाजार) से प्रातः ७ बजे विहार कर मुख्य मार्गों में होते हुए विशाल जनमेदिनी के साथ इन्फेन्ट्री रोड़ स्थित गणेश बाग में प्रवेश किया तो वहां का वातावरण धर्ममय बन गया।

दिनांक ९-७-९५ की मंगलमय बेला में श्री गणेश बाग की स्वर्ण जयंति के उपलक्ष में नवनिर्मित "श्री गुरु गणेश जैन स्थानक" का भव्य उद्घाटन समारोह श्री गणेश बाग के प्रांगण में समायोजित हुआ। इसी दिन आप श्री की सन्निधि में श्री सुनील सांखला जैन के निर्देशन में प्रकाशित एक समारिका का भी विमोचन हुआ।

बैंगलोर वर्षावास

दिनांक ११-७-९५ को चातुर्मास प्रारंभ हुआ। प्रार्थना व्याख्यान तत्त्वचर्चा, नमस्कार मंत्र जाप गणेश बाग के प्राकृतिक सौन्दर्य में धार्मिक सुन्दरता का भी श्री गणेश करने लगे।

> **"गुरु सुमन पधारे सुखकार**
> **गणेशबाग में आई धर्म बहार।"**

गुरुदेव श्री जी जब से बैंगलोर चातुर्मासार्थ पधारे, तभी से धर्मध्यान की सलिला अविरल रूप से प्रवाहित होने लगी थी। जनता उद्बोधन से उपकृत हो रही थी। जब प्रवचन प्रारंभ होता था तो श्रद्धालु उत्कण्ठित होकर आपकी पीयूषपूर्णी वाणी में खो से जाते थे।

सर्वप्रथम श्री सुमन्तभद्र मुनि जी बारह भावना पर प्रवचन देते थे। तदन्तर परम श्रद्धेय गुरुदेव आत्मसिद्धि शास्त्र पर विश्लेषणात्मक, सारगर्भित तथा हृदय को छू लेने वाला प्रेरक व्याख्यान देते थे।

बालक-बालिकाओं को प्रारंभिक धार्मिक शिक्षण, धर्मप्रेमी श्रावक श्राविकाओं को तत्त्व प्रशिक्षण आदि समस्त कार्यक्रम सुचारू रूप से चलने लगे। आप श्री के पदार्पण से क्या बाल, क्या वृद्ध और क्या युवा-युवती, श्रावक-श्राविका सभी ज्यादा से ज्यादा धर्म की ओर अभिमुख होने लगे।

उपाध्याय श्री केवल मुनि जी म. की जन्म जयंति, राष्ट्रसंत आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म. की जन्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयंति, त्रिदिवसीय स्वाध्याय प्रशिक्षण शिविर, रक्तदान शिविर, श्रमण सूर्य मरुधर केशरी श्री मिश्रीमल जी म. की जन्म जयंति, छात्र-छात्राओं को R.Y.A. की ओर से पुस्तकों का वितरण आदि कार्यक्रम सोत्साह विधिवत् सम्पन्न हुए।

सेबी के अध्यक्ष प्राणी मित्र डा. डी.आर. मेहता का भी आगमन गुरुदेव श्री के दर्शनार्थ हुआ। "मोक्ष द्वार ज्ञान पत्रिका" (श्री गौतमचन्द जी ओस्तवाल द्वारा संपादित) का गुरु गणेश एवं चातुर्मास विशेषांक - १९९५ का श्रीमान मोहन लाल जी मूथा द्वारा हजारों की जनमेदिनी में भव्य विमोचन हुआ।

नवकार मंत्र का प्रतिदिन जपानुष्ठान भी होता रहा। पर्यूषण पर्व तप-त्याग, धर्म ध्यान, जपसाधना से मनाया गया। उपवास, बेले, तेले, पंचोले, अठाई आदि की तपस्या के अतिरिक्त कई मासखमण के प्रत्याख्यान किए गए। यह सब आप श्री जी की प्रेरणा से ही हो रहा था। मासखमण वाले तपस्वियों को श्री संघ द्वारा अभिनन्दन पत्र भी समर्पित किए गए। अभिनन्दन पत्र तैयार किए - भद्रेशकुमार जैन एम.ए., साहित्य रत्न, पी.एच.डी. ने। आठ कलात्मक अभिनन्दन पत्र भद्रेश कुमार जी ने तैयार कर गणेश बाग श्री संघ को अर्पित किए थे।

सामूहिक क्षमापना का आयोजन भी सफल रहा। साध्वी श्री चन्द्रप्रभा जी म. ठाणा ३ का इस अवसर पर गणेश बाग में पदार्पण हुआ।

६ सितंबर ९५ से १० सितंबर ९५ तक "जय-आत्म-शुक्ल" दीक्षा-जन्म शताब्दी उत्सव मनाया गया। तप-त्याग की बहार आई। आचार्य श्री जयमल्लजी म. की २८९ वीं, आचार्य श्री आत्माराम जी म. की ११३ वीं तथा प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द जी म. की १००वीं जयंति मनोयोग पूर्वक श्रावक श्राविकाओं ने श्रद्धाभक्ति एवं धार्मिक अनुष्ठान से मनाई।

उक्त शुभ प्रसंग पर वस्त्र वितरण एवं अन्नदान का कार्यक्रम भी समायोजित था। भाषण प्रतियोगिता भी सम्पन्न हुई।

दो पुस्तकों का विमोचन

इसी वर्षावास में "सुमन प्रवज्या" एवं "शुक्ल ज्योति" इन दो पुस्तकों का विमोचन भी हुआ। लेखक-संपादक थे-भद्रेश कुमार जी जैन एम.ए., साहित्यरत्न, पी.एच.डी.। प्रथम कृति गुरुदेव श्री के चरणों में अर्पित की गई। लेखक महोदय का श्री जैन संघ शिवाजी नगर ने शाल एवं माल्यार्पण द्वारा भव्य स्वागत किया।

उक्त पुस्तकों का विमोचन परम श्रद्धेय मुनि श्री सुमन कुमार जी म. की ४५वीं दीक्षा-जयंति के पावन प्रसंग पर हुआ। अनेक वक्ताओं ने भजन-गीत-अभिनन्दन के साथ गुरुदेव श्री की दीक्षामय जीवनी की संस्तुति की।

समस्त शिवाजी नगर श्री संघ चातुर्मास की ऐतिहासिकता के लिए सतत प्रयत्नशील रहा। संघाध्यक्ष श्री पुखराज जी मांडोत, कार्याध्यक्ष श्री पारसमल जी पोरवाल, सहमंत्री श्री भंवर लाल जी पोरवाल, कोषाध्यक्ष श्री संपतराज जी मांडोत, श्री जैन युवक संघ के मंत्री युवाकार्यकर्त्ता श्री सुनील जैन सांखला आदि समस्त कार्यकर्त्ताओं का तथा युवति मंडल का प्रशंसनीय योगदान रहा।

दिनांक २८-२९ अक्टुबर १९९५ को द्विदिवसीय कर्नाटक प्रान्तीय स्थानकवासी जैन युवा सम्मेलन गणेश बाग में आयजित हुआ। आयोजक था – श्री जैन नवयुवक मण्डल (शिवाजी नगर) तथा व्यवस्थापक था - श्री वर्ध. स्था. जैन संघ शिवाजीनगर बैंगलोर। इस सम्मेलन का प्रमुख नारा था -

स्थानकवासी युवाओ!
निज चेतना जगाओ!!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम सान्निध्य और दिशा निर्देशन था - श्रमण संघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमन कुमार जी म.का।

स्थानकवासी युवाओं का विराट् स्तर पर यह प्रथम प्रयास था। प्रचारक दल भी कर्नाटक के ग्रामों और नगरों में भेजें गए। प्रचारक दल ने युवकों में जोश और जागृति की लहर पैदा कर दी।

युवा सम्मेलन में क्या हुआ? यह जानिए आप मेरे युवा साथी श्री सुनील सांखला बैंगलोर द्वारा प्रेषित "तरुण जैन" को प्रेषित एक रिपोर्ट के माध्यम से

कर्नाटक प्रान्तीय स्थानकवासी जैन युवा सम्मेलन

परम श्रद्धेय श्रमण संघीय सलाहकार मन्त्री श्री सुमनकुमारजी महाराज प्रभृति ठाणा ३ के पावन सान्निध्य में तथा श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन संघ (शिवाजीनगर) बैंगलोर के तत्वावधान में श्री जैन नवयुवक मंडल (शिवाजी नगर) द्वारा समायोजित द्वि-दिवसीय प्रथम कर्नाटक प्रांतीय स्थानकवासी जैन युवा सम्मेलन चार सत्रों में अपार उत्साह जोश और कुछ कर दिखाने की ललक के साथ दि. २८-२६ अक्टूबर १६६५ को 'गणेश बाग' के प्रांगण में सानन्द सम्पन्न हुआ।

दि. २८ अक्टूबर की प्रभात कालीन वेला में युवा पंजीकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ। परम श्रद्धेय म.सा. के प्रवचन आर्शीवचन के पश्चात्, सर्वप्रथम युवाहृदयी श्री शांतीलालजी दूगड़ (नासिक निवासी) भूतपूर्व युवा अध्यक्ष अ.भा. श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस - जो कि इस सम्मेलन के मुख्य अतिथि भी थे, अपना उद्‌बोधन प्रारम्भ कर इस सम्मेलन का श्री गणेश किया। आपने फरमाया कि युवा समाज का भविष्य है और स्थानीय मण्डल के कर्मठ कार्यकर्ताओं की प्रशंसा करते हुए कहा कि नई चेतना हेतु सदस्यों ने पूरे कर्नाटक की यात्रा कर युवाओं को यहाँ आमन्त्रित कर, कर्नाटक में स्थानकवासी युवाओं में एक नया जोश आया है इसके पश्चात् स्वागत भाषण दिया – श्री पारसमलजी पोरवाल, कार्याध्यक्ष – श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन संघ (शिवाजीनगर)।

प्रथम सत्र के प्रमुख वक्ता थे – डॉ. नरेन्द्रसिंहजी, ब्यावर। आपने 'सामाजिक संगठन : युवा दायित्व तथा समाज व धर्म का उत्थान कैसे हो?' इस विषय पर अत्यन्त ही मार्मिक भाषण दिया, जिसे श्रवणकर युवावर्ग उत्फुल्ल हो उठा। रोमांचित भी आपने युवाओं को प्रेरणा दी के वे अहिंसा के प्रचार-प्रसार में भी अपना अवश्यमेव योगदान दे। तत्पश्चात विषयानुकूल कतिपय वक्ताओं ने भी अपने हृदयोद्‌गार प्रकट किए तथा विषयानुकुल शंका-समाधानों का सिलसिला चला। इस सत्र की अध्यक्षता की श्रीमान फतहलालजी वरडिया ने। अध्यक्षीय भाषण में आप श्री ने भी युवाओं को उद्‌बोधित किया।

द्वितीय सत्र प्रारम्भ हुआ – भोजनोपरांत। प्रमुख वक्ता थे – श्री शांतीलालजी वनमाली सेठ, बैंगलोर। आपके संभाषण का विषय था – 'युवा वर्ग जैन आदर्शों से कितना दूर, कितना निकट।' आपने जैन आदर्शों से सिक्त होने तथा प्राकृत-अध्ययन आगम-स्वाध्याय करने का युवा वर्ग को आह्वान किया। इस सत्र के अध्यक्ष थे – श्रीमान दुलीचन्दजी जैन 'साहित्य रत्न' मद्रास। उपर्युक्त विषय से सम्बद्ध कतिपय वक्ताओं के विचार से तथा अध्यक्षीय उद्‌बोधन से भी युवा वर्ग लाभान्वित हुआ।

तृतीय सत्र के प्रमुख वक्ता थे – श्री भद्रेशकुमारजी जैन, बैंगलोर। आप श्री ने आज के सन्दर्भ में लोंकाशाह की महत्ता विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। आपने स्थानकवासी युवावर्ग को लोंकाशाह के द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलने तथा सामाजिक कुरीतियाँ, आडम्बर, पाखण्ड आदि को समूल रूपेण नष्ट करने की बलवती प्रेरणा दी। विषयानुकूल कतिपय वक्ताओं के संभाषण के पश्चात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्र अध्यक्ष श्री सोहनलालजी सिसोदिया, बैंगलोर ने भी विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया।

सायं प्रतिक्रमणोपरांत वेला में परम श्रद्धेय म.सा. के सान्निध्य में सामाजिक-धार्मिक विषय पर विचार-विमर्श, शंकासमाधान प्रस्तुत हुए। विचार-विमर्श का मूल्यांकन भी अच्छा था।

श्री चन्दना जैन बालिका मण्डल, अम्बत्तूर मद्रास द्वारा रात्रि में कुव्यसन निषेधात्मक व्यंगपरक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। नाटक का नाम था – 'महाकाल का दरबार'। विभिन्न युवाओं ने जैन गीत-भजन/संवाद भी प्रस्तुत किए।

इसी अवसर पर द्वि-दिवसीय शाकाहार प्रचार-प्रसार हेतु एक प्रदर्शनी भी लगाई गई, जिससे जैन व अजैन जन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। चित्र शैक्षणिक व जानकारी युक्त थे।

दि. २६ अक्टूबर को १० बजे से चतुर्थ सत्र के प्रमुख वक्ता थे – श्री ज्ञानराजजी मेहता, बैंगलोर। आपने अपने मौलिक विचारों से युवाओं की हृद् तन्त्री को झंकृत कर दिया। 'धर्म स्थान का महत्व, धर्म के प्रति श्रद्धा तथा युवा व्यक्तित्व में धर्म साधना' विषय पर अपना उत्कट अभिमत प्रकट किया। इस सत्र के अध्यक्ष श्री जे.एम. कोठारीजी ने भी युवाओं को जागृत होने की प्रेरणा दी।

तत्पश्चात् खुला अधिवेशन में अनेक वक्ताओं ने सम सामयिक विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए। कुछ उत्साही युवा महिलाएँ भी अपने विचारों को व्यक्त करने के लोभ का संवरण नहीं कर सकी। प्रत्येक वक्ता-श्रोता का उमंग उत्साह दर्शनीय था।

मध्यान्ह म.सा. ने प्रवचन में कर्नाटक गज केसरी, तपोपूर्ति, खद्दरदारी, श्वे. स्थानकवासी श्रमण संस्कृति को प्राणवान बनाने वाले, सोई जनता को पुनः जागृत करने वाले स्व. श्री गणेशीलालजी म.सा. के जन्म दिवस पर तपःपूत जीवन पर प्रकाश डालते हुए उस महासन्त के प्रति श्रद्धाभाव अर्पित किए।

युवाओं के कतिपय विचार-बिन्दुओं पर आह्वान करते हुए आपने फरमाया कि आप सभी युवा वर्ग एक शक्ति रूप में संगठित होकर इन कार्यक्रमों को निरन्तर आगे बढाते रहे। उपर्युक्त चारों सत्रों के विषयों को आपने प्रवचन में आत्मसात् करते हुए कहा कि आप सभी स्थानकों की गरिमा व पवित्रता को बनाए रखने में समाज को उल्लेखनीय सहयोग प्रदान करे। आपने 'आहार-व्यवहार और विचारः युवा सन्दर्भ' पर भी विशद प्रकाश डाला।

इस प्रसंग पर बीजापुर, बागलकोट, गजेन्द्र गढ, दावणगिरी, शिमोगा, होसपेठ, बंगारपेठ, दोड्डबाल्लापुर, मालुर, अरसिकेरे, चिकमंगलुर, मण्डया, मैसूर आदि नगरों के उत्साही कर्मठ युवा पदाधिकारी तथा सदस्य एवम् स्थानीय युवाओं का आगमन हुआ। सभी ने अपने-अपने युवा संगठनों के विचारों से युवावर्ग व उपस्थित जन समुदाय को लाभान्वित किया।

इस सम्मेलन की विचारधारा को कार्यान्वित रूप प्रदान करने हेतु जिलास्तरीय प्रतिनिधियों का चयन करने का निर्णय लिया गया तथा कर्नाटक स्थानकवासी जैन समाज एवं स्थानकों की निर्देशिका तैयार करवाने की योजना भी बनाई गई, ताकि स्थानकवासी समाज एक दूसरे से जुड़कर अपने आपको सशक्त बना सके। तथा युवावर्ग को एक नई राह प्रशस्त कर धर्म व समाज के अभ्युत्थान में योगदान दे सके।

स्मृतियों में हमेशा-हमेशा के लिए स्थायी बने रहने वाले इस सफल अद्भुत प्रथम स्थानकवासी युवा सम्मेलन का कुशल संचालन किया – श्री ज्ञानराजजी मेहता व श्री भद्रेशकुमारजी जैन ने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार कर्नाटक प्रान्तीय युवा स्थानकवासी सम्मेलन उमंग एवं उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ।

दीपावली पर उत्तराध्ययन सूत्र का वांचन हुआ। वर्षावास की समाप्ति के दिन सन्निकट आने लगे।

वर्षावास समाप्ति के पश्चात् गणेशबाग स्थानक से श्रावक श्राविकाओं की भावपूर्ण विदाई स्वीकार कर आप श्री अलसूर पधारे। अलसूर से विहार कर आप श्री बैंगलोर के उपनगरों में विचरण करने लगे।

श्री प्रवीण मुनि जी म. जो कि पंजाब से उग्र विहार करके बैंगलोर पधारे थे और गुरुदेव श्री के साथ ही वर्षावास सम्पन्न किया था किन्तु बैंगलोर की जलवायु अनुकूल न होने के कारण गुरु आज्ञा से पुनः विहार पंजाब की ओर कर दिया।

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री का ठाणा २ से विचरण होता रहा। अलसूर से विहार करके भारती नगर (तिमैया रोड़) पधारे। यहां पर अर्द्धमास कल्प तक विराजित रहे। हीराबाग में भगवान पार्श्वनाथ जयंति मनाई गई। युवक श्रीसंघ की ओर से नेत्र शिवीर आयोजित किया गया। वहां से रायचन्द जी छाजेड़ के यहां कोक्सटाऊन में ठहरे। वहां से सेवा नगर, कम्मन हल्ली होते हुए फेजर टाऊन आए। यहां पर स्थानक का अपूर्ण कार्य आपकी प्ररेणा से पूर्ण हुआ। यहीं पर आपके सान्निध्य में कर्नाटक गज केसरी तपस्वी श्री गणेशीलाल जी म. की पुण्यतिथि का समायोजन हुआ।

दिनांक १ मार्च १९९९ को आप श्री के शुभ सान्निध्य में पंजाब देश पावन कर्त्ता प्रवर्तक पं. रत्न स्व. श्री शुक्लचन्द्र जी म. की २८ वीं पुण्य तिथि फ्रोजर टाऊन स्थानक में मनाई गई। तप त्याग, गुण स्मरण से महापुरुष को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। होली चातुर्मास राजा जी नगर के निर्माणाधीन जैन स्थानक में सम्पन्न हुआ। उक्त प्रसंग पर महासती श्री बसंताकंवर जी म. ठाणा १० का भी राजाजी नगर में पदार्पण हुआ। उनके चातुर्मासों की घोषणा क्रमशः भद्रावती तथा तुरखिया भवन, गांधीनगर बैंगलोर में मंत्री मुनि श्री जी ने की।

अक्षय तृतीया का पर्व जैन बोर्डिंग अशोक नगर बैंगलोर में पारणा समिति की ओर से बड़े हर्षोल्लास से समायोजित हुआ। इस प्रसंग पर गुरुदेव श्री तो थे ही, साथ ही साथ तरुण तपस्वी श्री विमल मुनि जी म. ठाणा २, विदुषी महासती श्री प्रमोद सुधा जी म. ठाणा २४, महासती श्री बसंता कंवर जी म. ठाणा १० का भी समागम हुआ।

स्व. उपाध्याय श्री केवल मुनि जी म. सा. की द्वितीय पुण्यतिथि भी आप सभी के सान्निध्य में मनाई गई। आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म. का पंचम स्मृति दिवस भी इसी प्रसंग पर गुणानुवाद एवं तप-त्याग के साथ मनाया गया।

श्री रामपुरम् में महावीर जयंति के पावन प्रसंग पर सन् १९९९ का वर्षावास मैसूर संघ को प्रदान किया गया। संघ में उत्साह एवं उमंग की लहर छा गई।

वहां से विहार करके शिवाजी नगर, अलसूर आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए श्री मिश्रीलाल जी कातरेला के बंगले (कृष्णराजपुरम्) पर ठहरे। वहां बैंगलोर वासियों का आगमन हुआ। व्याख्यान हुआ। आगामी दिवस होसकोटे पधारे। वहां से कोलार ठहरते हुए (जहां धारीवाल परिवार सेवा में अग्रसर है) बंगार पेठ पधारे। वहां से राबर्टसनपेठ (के.जी.एफ.) अंडरसनपेठ, दोड्डबालापुर होते हुए पुनः बैंगलोर पधारे। वहां से मंडया, रामनगर, चन्नपट्टना, श्रीरंगपट्टनम् होते हुए मैसूर चातुर्मासार्थ पधारे।

मैसूर में चातुर्मास प्रवेश :-

दिनांक २८-७-१९९९ रविवार प्रातः श्रमण संघीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सलाहकार मंत्री पूज्य श्री सुमन कुमार जी महाराज, सेवा भावी श्री सुमन्तभद्र जी महाराज ठाणा दो के चातुर्मास प्रवेश पर प्रातः ७-२० बजे नरसिंहराजा विधान सभा क्षेत्र के विधायक श्री ई. मारूतीराव पवार मुनि श्री के आगमन पर पधारे, एवं उन्होंने महाराज श्री का अभिवादन किया। ७.३५ बजे मैसूर नगर के महापौर श्री एम.एम. राजू ने नगर प्रवेश का स्वागत किया। शोभा यात्रा नगर के प्रमुख मार्गों से होकर मुनि श्री का चातुर्मास के लिए मंगल प्रवेश ८.१५ बजे स्थानक भवन में हुआ। जहां पर धर्म सभा हुई। संपूर्ण जैन समाज चतुर्मास प्रवेश की धर्मसभा में हर्षोल्लास से सम्मिलित रहा। मैसूर के महापौर श्री एम.एस. राजू मुख्य अतिथि रहे। आस-पास के क्षेत्रों से भी दर्शनार्थी बंधुगण पधारे। चातुर्मास काल के प्रत्येक शनिवार एवं रविवार को विशेष धार्मिक कार्यक्रम (प्रश्नमंच, प्रतियोगिता आदि) करने की घोषणा की गई।

स्वतन्त्रता दिवसः-

दिनांक १५-८-१९९९ को राष्ट्र के ५० वें स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर प्रातः ८.०० बजे उपाध्यक्ष श्री जी. मोहनलाल जी सेठिया द्वारा जैन भवन पर राष्ट्र ध्वजारोहण संपन्न हुआ। इस दिन पूज्य श्री सुमन मुनि जी के सान्निध्य में श्रमण संघीय द्वितीय पट्टधर आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी महाराज सा. की ९७ वीं जन्म-जयन्ति जप-तप-त्याग एवं गुणानुवाद से मनाई गई।

दिनांक २७-८-१९९९ को मरूधर केसरी श्रमण-सूर्य प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी.म.सा.की १०९ वीं जन्म जयन्ति गुणानुवाद से मनाई गई।

पर्वाधिराज पर्व पर्यूषणः-

पर्वाधिराज पर्व पर्यूषण की आराधना दिनांक १०-९-१९९९ से १७-९-१९९९ तक जप-तप और त्याग से की गई। प्रतिदिन प्रातः- प्रार्थना, प्रवचन में अंतगड दशांग सूत्र वांचन, एवं विभिन्न विषयों पर प्रवचन, दोपहर को धर्म-चर्चा एवं चौपाई संपन्न हुए।

सामूहिक क्षमापना समारोहः-

दिनांक १८-९-१९९९ को सामूहिक क्षमापना समारोह संपन्न हुआ जिसमें समस्त श्वेताम्बर श्री संघ भी उपस्थित रहा। चातुर्मासार्थ विराजित श्रमण संघीय सलाहकार मन्त्री श्री सुमन मुनि जी महाराज एवं श्री सुमन्तभद्र जी महाराज के सान्निध्य में संपन्न इस समारोह में साध्वी श्री चन्द्रयशा श्री जी म.सा., श्री मीनेशाश्री जी म.सा., श्री यशवीरा श्री जी म.सा. ठाणा ३ की उपस्थिति से कार्यक्रम सुशोभित रहा। संघ की ओर से अध्यक्ष श्री ए. केवलचन्द जी सिंघवी, संघ मन्त्री श्री बी.ए. कैलाशचन्द जी जैन ने क्षमापना पर प्रकाश डालते हुए सामुहिक क्षमायाचना की। आस-पास क्षेत्रों से भी श्रद्धालु श्रावक श्राविकाओं की उपस्थिति रही।

अन्नदान कार्यक्रमः-

युवाचार्य डॉ. शिवमुनि जी म.सा. की जन्म-जयन्ति के उपलक्ष में २२-९-१९९९ को अन्नदान कार्यक्रम संपन्न हुआ। एवं दिनांक २४-९-१९९९ को श्रमण संघीय प्रथम पट्टधर आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी म.सा. की ११५वीं और युवाचार्य प्रवर्तक श्री शुक्लचन्द जी म.सा. की १०२ वीं जन्म-जयन्ति जप-तप-त्याग एवं गुणानुवाद से मनाई गई। तत्पश्चात् आचार्य प्रवर श्री जयमल जी म. सा. की २८९वीं जन्म जयन्ति दिनांक २५-९-१९९९ को हर्षोल्लास से संपन्न हुई।

वस्त्र वितरण समारोहः-

दिनांक २९-९-१९९९ को आत्म-शुक्ल-जय जयन्ति के संदर्भ में ग्रामीण सरकारी पाठशालाओं के विद्यार्थियों को वस्त्र वितरण एवं लेखन सामग्री वितरण कार्यक्रम का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयोजन रहा। जिसमें कुल ३५० बालक बालिकाओं को वस्त्र एवं सामग्री वितरित की गई। करीब पचास अध्यापक गण उपस्थित रहे। इस कार्यक्रम में मैसूर शहर के महापौर श्री एम.एस. राजू, उप महापौर श्रीमती शांताकुमारी, कृष्णराजा विधान सभा के विधायक श्री ए. रामदास, चामराजा विधान सभा के विधायकश्री एच.एस. शंकरलिंगे गौडा, नगर पालिका के सदस्य श्री शिवाण्णा, सदस्या श्री मती गायत्री देवी ने मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहकर समारोह की शोभा बढ़ाई।

दीक्षार्थी अभिनन्दन

दिनांक १६-१०-६६ को मंडिया के सुश्रावक श्रीमान मिलापचन्द जी बोहरा का दीक्षार्थी अभिनंदन श्री संघ द्वारा धर्मसभा में संपन्न हुआ।

जैन धार्मिक शिक्षण संस्कार शिविरः-

दिनांक १४-१०-१६६६ से २०-१०-१६६६ तक जैन धार्मिक शिक्षण संस्कार शिविर संपन्न हुआ, जिसमें १७५ शिविरार्थियों ने भाग लिया। इस शिविर में कर्नाटक जैन स्वाध्याय संघ बेंगलोर का पूर्ण सहयोग प्राप्त रहा। कर्नाटक जैन स्वाध्याय संघ के संयोजक एवं अध्यापक श्री शांतिलाल जी बोहरा, श्री नरेन्द्रकुमार जी कटारिया, श्रीमती प्रेमलतावाई चंडालिया वहां से अध्यापन के लिए पधारे, साथ ही अध्यापन कार्य के लिए मैसूर से श्री झेड़, संतोष कुमार जी मुणोत, श्रीमति सुशीला बाई सेठिया, श्रीमती विजय बाई श्री श्रीमाल, श्रीमती प्रेमाबाई कोठारी का सहयोग प्राप्त रहा। इस शिविर का उद्घाटन वयोवृद्ध श्रावक श्रीमान सुवालाल जी दक ने एवं पूर्व अध्यक्ष श्रीमान एस.एम. रिखबचन्द जी छल्लाणी ने समापन संपन्न किया। समापन समारोह में शिविरार्थियों को पुरस्कार एवं प्रमाण-पत्र दिए गए।

धार्मिक गीत प्रतियोगिता के प्रथम चरण में २८ जनों नें भाग लिया। जिसमें से १५ को चयन किया गया, और जैन धार्मिक गीत प्रतियोगिता के सेमी-फाईनल में दिनांक २३-१०-१६६६ को सैकड़ों दर्शकों की उपस्थिति में २१ व्यक्तियों ने भाग लिया।

सुमन-दीक्षा जयन्ति समारोहः-

दिनांक २४-१०-१६६६ को श्रमण संघीय सलाहकार मन्त्री श्री सुमनकुमार जी महाराज की ४७वीं दीक्षा जयन्ति तप-तप-त्याग-गुणानुवाद से मनाई गई। इस समारोह में मुख्य अतिथि मैसूर के युवराज एवं लोक सभा सदस्य श्री श्रीकण्ठ नरसिंहराज वाडयार ने मुनि श्री की दीक्षा जयन्ति पर श्रद्धा पूर्वक हार्दिक बधाईयां दी, उन्होंने अपने भाषण में श्री संघ के विभिन्न जनोपयोगी सेवा कार्यों की प्रशंसा की।

इस दिन आयोजित जैन धार्मिक प्रतियोगिता के फाईनल में १३ स्पर्धियों ने भाग लिया, जिनमें प्रथम पुरस्कार श्री महावीर चन्द जी दरला को, द्वितीय पुरस्कार श्री विमल कुमार जी कोटेचा को एवं तृतीय पुरस्कार कुमारी बी. के कविता जैन को प्राप्त हुआ।

निबन्ध-लेखन प्रतियोगिताः-

"श्री सुमन कुमार जी महाराज-व्यक्तित्व-कृतित्व" विषय पर निबन्ध लेखन प्रतियोगिता में कुल २६ व्यक्तियों ने निबन्ध प्रस्तुत किए। जिसमें प्रथम श्री नौरतन के. कोठारी जी, द्वितीय श्री देवराज जी बम्ब, तृतीय श्री प्रकाश चन्द जी डागा रहे, सभी को पुरस्कार दिए गए।

मानव चिकित्सा सहयोगः-

मुनि श्री के दीक्षा जयन्ति पर मानव चिकित्सा फण्ड में से श्री संघ की तरफ से श्री महादेव, ऑटो ड्राईवर के परिवार को हृदय शल्य चिकित्सा हेतु एक लाख रूपाये का चैक समारोह अतिथि श्री श्रीकंठदत्त नरसिंहराज वाडयार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कर कमलों से भेंट किया गया। समारोह का संचालन संघ मंत्री श्री बी.ए. कैलाश चन्द जैन ने किया।

दिनांक ८-११-१९९९ को दीपावली के नूतन वर्ष पर आयोजित विशेष धर्म सभा में प्रातः सवा छः से सवा सात बजे तक सामुहिक प्रार्थनाएं भजन संपन्न हुए, जिसमें लगभग १००० व्यक्तियों ने हिस्सा लिया। मुनि श्री सुमन कुमार जी महाराज द्वारा बड़ा मंगल पाठ प्रदान किया गया। संघ मंत्री श्री बी.ए. कैलाशचन्द जैन ने श्री संघ की ओर से सभी को नूतन वर्ष की मंगल कामनाएं दी।

प्राकृत भाषा एवं जैन विद्वद् सम्मेलनः-

दिनांक १६-१७ नवम्बर १९९९ को द्विदिवसीय प्राकृत भाषा एवं जैन विद्वद् सम्मेलन श्री स्थानकवासी जैन भवन, महावीर नगर, मैसूर-१ के प्रांगण में मुनि श्री सुमनकुमार जी महाराज सा. के सान्निध्य में संपन्न हुआ। सम्मेलन के अध्यक्ष श्रीमान् डॉ. एम.डी. वसंतराजैय्या जी जैन रहे। सम्मेलन की प्रेरणा एवं रूप रेखा को बनाने में बेंगलोर के स्वाध्याय सन्मति पीठ के संस्थापक एवं व्यवस्थापक श्रीमान शांतिलाल जी वनमाली सेठ श्री सन्मति स्वाध्याय पीठ के अध्यक्ष सुप्रसिद्ध ऑडीटर श्रीमान मोहनलाल जी खारीवाल का प्रारम्भ से समापन तक पूर्ण सहयोग एवं मार्गदर्शन रहा।

उद्‌घाटन समारोहः-

दिनांक १६-११-१९९९ को प्रातः १० बजे श्री शांतिलाल जी वनमाली सेठ ने जैन ध्वजारोहण कर सम्मेलन का शुभारम्भ किया। संघ अध्यक्ष श्री ए. केवल चन्द जी सिंगवी ने सम्मेलन के उद्‌घाटन पर स्वागत भाषण प्रस्तुत किया। मन्त्री श्री बी.ए. कैलाश चन्द जैन ने विद्वान का परिचय, सम्मेलन की रूप रेखा एवं उसकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला। सम्मेलन प्रेरक श्री शांतिलालजी वनमाली सेठ ने प्रास्ताविक भाषण करते हुए प्राकृत भाषा के महत्व एवं उसकी वर्तमान में आवश्यकता पर जोर दिया।

प्राकृत भाषा स्वाध्याय संघ बेंगलोर के विद्यार्थियों ने प्राकृत भाषा में संवाद प्रस्तुत किया। समारोह के मुख्य अतिथि श्री मोहनलाल जी खारीवाल ने श्री संघ को इस आयोजन के लिए बधाई दी। अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस मन्त्री श्री जे. माणक चन्द जी कोठारी एवं रतन हितैषी श्रावक संघ के कर्नाटक एवं आंध्रा प्रदेश अध्यक्ष श्री संपतराज जी मरलेचा ने सम्मेलन के लिए श्री संघ को बधाई एवं शुभकामनाएं दी। श्री सुमन मुनि जी महाराज सा. के ओजस्वी-तेजस्वी मार्ग-दर्शन एवं आशीर्वचन के पश्चात् मंगल पाठ संपन्न हुआ। उद्‌घाटन समारोह का संचालन संघ मन्त्री श्री बी.ए. कैलाशचन्द जैन ने किया।

जैन धर्म में प्राकृत भाषा का महत्त्वः-

प्राचीन काल में भारत वर्ष में संस्कृत भाषा शिष्ट लोगों की भाषा मानी जाती थी। विद्यार्थी अध्ययन हेतु गुरुकुलों में रहकर संस्कृत भाषा का अध्ययन किया करते थे। जन साधारण की बोलचाल की भाषा के लिए प्राचीन काल में प्राकृत को जनता ने मान्यता दी। भगवान महावीर का उपदेश प्राकृत भाषा के अर्ध मागधी में रहा था। गणधरों ने भगवान की वाणी को गूंथा और ग्रन्थ साहित्य आदि की रचना की। अतः जैन समाज के लिए प्राकृत भाषा जानना-सीखना अत्यन्त आवश्यक है।

प्राकृत भाषा संगोष्ठि के मूल प्रणेताः-

श्रमण संघीय सलाहकार मन्त्री मुनि श्री सुमनकुमार जी महाराज की मैसूर महानगर में सन् १९९९ के चातुर्मास काल में प्राकृत भाषा के लिए प्रबल प्रेरणा रही कि धर्म की सही जानकारी सिखनी हो तो हर श्रावक को अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल भाषा प्राकृत अवश्य सीखनी चाहिए। स्वयं प्राकृत के प्रकांड विद्वान मुनि श्री सुमन कुमार जी महाराज ने श्री संघ को इस ओर प्रेरित किया और प्राकृत भाषा के विद्वानों का सम्मेलन आहूत किया जिसे क्रियान्वित रूप शिक्षित युवा वर्ग ने प्रदान किया अनेक विश्वविद्यालयों से संपर्क स्थापित कर, समाज के बुद्धिजीवियों से एवं कर्मठ कार्यकर्त्ताओं से संपर्क बनाकर प्राकृत भाषा पर लेख आमंत्रित किए गए एवं विद्वद् जन बुलाए गए।

प्रथम सत्रः-

प्रथम सत्र दिनांक १६-११-१६६६ को प्रातः ११ बजे से दोपहर एक बजे तक श्री दुलीचन्द जैन (मन्त्री- जैन धर्म-दर्शन शोध संस्थान, चेन्नई) की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस सत्र में "भारतीय संस्कृति और साहित्य में प्राकृत भाषा का योगदान" विषय पर विचार गोष्ठी संपन्न हुई। मुख्य वक्ता डॉ. एस.पी. पाटील, धारवाड़ रहे। गोष्ठी में प्रोफेसर डॉ. के.बी. अर्चक (धारवाड़) डॉ. सरस्वती विजयकुमार (मैसूर) डा. पारसमणी खिंचा (जयपुर) डा.बी.एन. सुमित्राबाई (बेंगलोर) ने भाग लिया। प्रथम सत्र का संचालन श्री महावीर चन्दजी कोठारी ने किया।

द्वितीय सत्रः-

द्वितीय सत्र दोपहर २.३० से ४.३० बजे तक डॉ. श्री ए.एस. धरणेंद्राय्या जी (निवृत अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़) की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस सत्र में "विश्व शान्ति एवं विश्व मैत्री में जैन धर्म दर्शन का योगदान" विषय पर विचार गोष्ठी संपन्न हुई। मुख्य वक्ता डॉ. एम.ए. जयचन्द्रा (बेंगलोर) रहे। चर्चा गोष्ठी में श्री ज्ञानराज जी मेहता (बेंगलोर) डा. एस.पी. पाटील (धारवाड़) श्री किशन चन्द जी चोरड़िया (चेन्नई) डा. एन. वासुपाल जैन (चेन्नई) शामिल हुए। द्वितीय सत्र का संचालन श्री महावीर चन्द जी भंसाली ने किया।

खुला अधिवेशनः-

रात्री साढ़े सात से साढ़े नो बजे तक विद्वानों एवं समाज के बंधुओं का खुला अधिवेशन रहा। जिसमें प्राकृत भाषा एवं जैन दर्शन पर चर्चा हुई। श्रोताओं की जिज्ञासा का विद्वानों द्वारा समाधान हुआ। मुनिश्री जी ने भी जटिल प्रश्नों का सरल ढंग से विवेचन किया।

तृतीय सत्रः-

दिनांक १७-११-१६६६ को सुबह ६ बजे से ११ बजे तक तीसरा सत्र संपन्न हुआ, जिसकी अध्यक्षता श्रीमान शांतिलाल जी वनमाली सेठ (संस्थापक एवं व्यवस्थापक, सन्मति स्वाध्याय पीठ, बेंगलोर) ने की। इस सत्र में "प्राकृत अध्ययन विकास हेतु रचनात्मक कार्यक्रम" विषय पर चर्चा हुई। इस सत्र के मुख्य वक्ता डॉ. पी.बी. बडीगेर जी रहे। चर्चा गोष्ठी में डा. बी.बी. भागरे (सातारा) डॉ. एन. सुरेशकुमार जी जैन (मैसूर) डॉ. एस.बी. वसंतराजैय्या जी (बैंगलोर) श्री विमल चन्दजी धारीवाल (बेंगलोर) ने भाग लिया। इसका संचालन श्री महावीर चन्द जी दरला ने किया।

चतुर्थ सत्रः-

चतुर्थ सत्र ११.३० से १.३० बजे तक संपन्न हुआ, जिसकी अध्यक्षता श्री भागचन्द जी जैन "भास्कर" (अध्यक्ष, प्राकृत पाली विभाग, नागपूर विश्वविद्यालय) ने की। इस सत्र का विषय "जैन-दर्शन-शिक्षण-विकास हेतु रचनात्मक कार्यक्रम" रहा। इस सत्र के मुख्य वक्ता श्री शुभचन्द्रा जी जैन (मैसूर) रहे। चर्चा गोष्ठी में श्री दुलीचन्द जी जैन (चेन्नई) डा. अजय कोठारी (चेन्नई) श्री मती प्रिया जैन (चेन्नई) डा. हुक्मचन्द जी एवं पार्श्वनाथ सांघवे ने भाग लिया। इस सत्र का संचालन श्री एच. प्रकाशचन्दजी डागा ने किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समापन समारोहः-

समापन समारोह दोपहर २.३० से ४.३० बजे तक संपन्न हुआ। सर्वप्रथम मंगलाचरण श्रमण संघीय सलाहकार मन्त्री श्री सुमन कुमार जी महाराज के मुखारविन्द से संपन्न हुआ। मंगलाचरण के पश्चात् समापन समारोह की अध्यक्षता श्री एस. किशनचन्द जी चोरड़िया (महामन्त्री, जैन-धर्म शोध संस्थान चेन्नई ने की। प्राकृत भाषा स्वाध्याय पीठ बेंगलोर के विद्यार्थियों ने संवाद प्रस्तुत किया। सम्मेलन की सफलता और मैसूर श्री संघ की मेहनत की सराहना करते हुए श्रीमान् शान्तिलाल जी वनमाली सेठ ने संतोष प्रकट किया एवं श्री संघ की प्रशंसा करते हुए संघ अध्यक्ष श्री ए. केवलचन्द जी सिंघवी और मानद् मन्त्री श्री वी.ए. कैलाशचन्द जैन का चन्दनहार और शाल द्वारा सन्मान सत्कार किया। सभी विद्वानों को संघ की तरफ से चन्दन हार और शाल ओढाकर एवं स्मृति चिन्ह भेंट कर गौरवान्वित किया गया।

इस तरह मैसूर में प्राकृत भाषा जैन विद्वद् सम्मेलन एक यादगार सम्मेलन हुआ। जिसे मैसूर के इतिहास में दिनांक २६-१-१९९७ को स्वर्णाक्षरित किया जाना निश्चित हुआ। समापन समारोह का संचालन संघ मन्त्री श्री बी.ए. कैलाशचन्द जैन ने किया। मुनि श्री द्वारा मंगलपाठ के साथ समारोह सानन्द संपन्न हुआ।

चातुर्मास समापन समारोहः-

दिनांक २४-११-१९९६ को चातुर्मास समापन समारोह संपन्न हुआ। संघ मन्त्री श्री बी.ए. कैलाशचन्द जैन ने संघ की ओर से चातुर्मास की सफलता, विभिन्न कार्यक्रमों की सफलता, प्राकृत भाषा एवं विद्वद् सम्मेलन के ऐतिहासिक कार्य की संपन्नता पर प्रकाश डाला एवं मुनिवृंद से चातुर्मास काल में श्रीसंघ के किसी भी सदस्य द्वारा हुई किसी भी त्रुटि के लिए क्षमायाचना करते हुए गुरुदेव के लिए मंगल कामना प्रेषित की।

चातुर्मास काल में मासखामण या इससे अधिक तप आराधना करने वाले ३१ उपवास की तपस्वी श्रीमती पी. प्रभादेवी लोढ़ा (धर्म-पत्नी श्री पूरणमल जी लोढा) ३१ उपवास की तपस्वी श्रीमती गुणवंती बाई सकलेचा (धर्म-पत्नी श्रीमान पी. महावीर चन्द जी सकलेचा) ३५ उपवास की तपस्वी श्रीमती शायरदेवी चौहान (धर्म-पत्नी श्री मदनसिंह जी चौहान) को श्री संघ की ओर से तप अभिनन्दन पत्र भेंटकर सम्मानित किया गया।

चातुर्मास काल में परीक्षाओं एवं प्रतियोगिताओं में भाग लेकर सफलता पाने वालों को प्रमाण-पत्र दिए गए। निबन्ध लेखन प्रतियोगिता के निर्णायक, गायन प्रतियोगिता के निर्णायक, प्राकृत-भाषा-जैन विद्वद् सम्मेलन के आयोजक, अन्नदान, वस्त्र-दान, औषधी-दान, हृदय-शल्य-चिकित्सा, रक्त-जांच-शिविर, एक्यूप्रेसर-चिकित्सा, धार्मिक शिक्षण संस्कार शिविर एवं विभिन्न जयन्तियां मनाई गई जिनमें प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग देने वालों का आभार अभिव्यक्त किया गया। समय-समय पर पधारने वाले समस्त लोक-सभा सदस्य, विश्वविद्यालयों के विद्वद्गण, नगर के मान्यगण महापौर आदि एवं पत्रकार आदि सभी को श्री संघ की ओर से धन्यवाद दिया गया।

दिनांक २५-११-१९९६ को लोंकाशाह की जन्म जयन्ति जप-तप-त्याग गुणानुवाद से मनाई गई। एवं बैंगलोर से पधारी विरक्तात्माएं वैराग्यवती श्री सुनीता बांठीया (बेलापुर निवासी) वैराग्यवती वन्दना कर्नावट (मालेगांव निवासी) की दिनांक २०-२-१९९७ को होने वाली जैन भागवती दीक्षा के पूर्व श्री संघ द्वारा खोल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरकर, चन्दनहार एवं शाल्यार्पण करके अभिनन्दन किया गया।

चातुर्मासिक मंगल विहारः-

दिनांक २६-११-१६६६ को मुनिवृंद का चातुर्मासिक मंगलविहार प्रातः ६ बजे स्थानक भवन से हुआ और जलुस के साथ अग्रहार में श्री झेड़ सतीश कुमार जी मुणोत के निवास पर पधारे।

उद्घाटन समारोह
भगवान महावीर प्राकृत भाषा जैन विद्यापीठ, मैसूर

दिनांक २६-१-१६६७ रविवार भारत के गणतन्त्र दिवस पर प्रातः १०.०० बजे श्री स्थानकवासी जैन संघ मैसूर के नवनिर्माणाधीन प्रवचन भवन में "भगवान महावीर प्राकृत भाषा जैन विद्यापीठ, मैसूर" का उद्घाटन समारोह संपन्न हुआ। इस समारोह में विद्यापीठ के प्रेरक श्रमण संघीय सलाहकार मन्त्री श्री सुमन कुमार जी महाराज का शुभ सान्निध्य रहा। बहुश्रुत पण्डित मुनि श्री जसराज जी स्वामी, सेवाभावी श्री देवेन्द्र मुनि जी म. सा., सेवाभावी श्री सुमन्तभद्र मुनिजी म.सा., महासती पूज्य डॉ. ज्ञान प्रभाजी म.सा. श्री सत्यप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा-१२, श्री श्वेताम्बर मू. संघ से महासती जी ठाणा-४ की पावन उपस्थिति रही।

समारोह में मुख्य अतिथि डॉ. एम.डी. वसंतराजैया जी (Prof. & Retd. H.O.D. Dept. of Jainology & Prakrit, University of Mysore) की शोभनीय उपस्थिति रही। इस समारोह में विशेष अतिथिगण डॉ. पी.डी. बडीगेर जी, श्री शुभचन्द्रा जी जैन (Prof & Ex. H.O.D. Dept. of Jainology & Prakrit) डॉ. एन सुरेशकुमार जी जैन (Lecturer Dept. of Jainology & Prakrit) ने उपस्थित रहकर समारोह की शोभा बढाई। श्रीमान उदयराज जी पारसमल जी दक के कर कमलों द्वारा विद्यापीठ का बेनर खोलकर उद्घाटन संपन्न हुआ। जिन्होंने विद्यापीठ के लिए एक लाख रुपाये भेंट देने की घोषणा की। एवं आगामी शनिवार-रविवार से कक्षाओं का प्रारम्भोत्सव की घोषणा की गई।

वर्तमान गतिविधियांः-

विद्यापीठ की स्थापना ने समाज में धार्मिक अध्ययन एवं प्राकृत भाषा के पठन में एक नया अध्ययन प्रारम्भ किया है। शहर के शिक्षित युवा वर्ग उत्साह के साथ विद्यार्जन के लिए समय निकालकर दिनांक १-२-१६६७ से प्रारम्भ हुई प्रति शनिवार रविवार कक्षाओं में निरन्तर भाग ले रहे हैं। मौजुदा २५ विद्यार्थियों को श्रीमान् डॉ. पी.बी. बडीगेरे जी, डॉ. एन. सुरेशकुमार जी जैन एवं श्रीमती ज्वालानाम्मा सुरेश जैन अपनी-अपनी विद्वत्ता से लाभान्वित कर रहे हैं।

कक्षाओं के प्रारम्भ में प्राकृत भाषा का व्याकरण हिन्दी के माध्यम से, दशवैकालिक सूत्र की गाथाओं को भावार्थ एवं शब्दार्थ के माध्यम से सिखाया जा रहा है।

इस अध्ययन से प्राकृत भाषा ज्ञान के साथ-साथ जैन धर्म के गहरे अध्ययन मनन पर काफी सहयोग रहेगा एवं भविष्य में स्वाध्याय की प्रवृति में बढोतरी होगी। स्वाध्यायी बन्धुओं को शास्त्र अध्ययन शास्त्रवांचन एवं धर्म प्रवचन देने मेंआगे बढ़ाने के लिए यह शिक्षण कार्य अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

इस विद्यापीठ को आगे उपर्युक्त विश्वविद्यालय से संबंद्ध कर पाठयक्रम को अपनाते हुए एक सुनिश्चित दिशा में ले जाने का प्रयास रहेगा। समय-समय पर समस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज के लिए विभिन्न धार्मिक विषयों पर गोष्ठियां एवं भाषण का आयोजन रहेगा। समाज के सभी चिन्तन शील बन्धुओं से अपेक्षा की जाती है कि इस शिक्षण कार्य का अवलोकन करते हुए तन-मन धन से योगदान देते रहें।

मैसूर के चातुर्मास के पश्चात् अग्राहर होते हुए हुणसुर पधारे। चातुर्मास काल में श्री उदयलाल जी पारसमल दी दक तथा अन्य श्रावकों का उनके क्षेत्र को स्पर्शने का विशेष आग्रह रहा था। सो उनकी भावना पूर्ण हुई। यह मैसूर से ५० कि.मी. की दूरी पर है। यहां तीनों श्वेताम्बर परम्पराओं के संघों का सुन्दर समन्वय है। यहां अतिस्नेह भाव और भक्ति है। यहां पर आप श्री १५ दिन विराजे। यहीं पर गोंडल सम्प्रदाय के मुनियों श्री जसराज जी स्वामी तथा श्री देवेन्द्र मुनि जी से सुमधुर सम्मिलन भी हुआ।

वहां से आप श्री पुनः मैसूर पधारे। वहां पर साध्वी डा. श्री ज्ञानप्रभा जी के अतिरिक्त श्वेताम्बर मुनियों तथा आर्याओं से सुमधुर भेंट हुई। आप श्री की प्रेरणा से वहां पर भगवान महावीर प्राकृत भाषा जैन विद्या पीठ का विधिवत् उद्घाटन हुआ।

बैंगलोर में महासती श्री प्रमोदसुधा जी म. की दो बैरागनों की दीक्षा सुनिश्चित हुई थी। साध्वी जी के विशेष आग्रह तथा श्री संघ की पुरजोर प्रार्थना को ध्यान में रखते हुए आप मैसूर से बैंगलोर पधारे। आर्ट कालेज के मैदान में दीक्षा का भव्य आयोजन हुआ।

तदनन्तर आप ने बैंगलोर के उपनगरों में विचरण किया। चामराजपेठ होते हुए हनुमंतनगर पधारे। आपकी मंगल प्रेरणा से स्थानक भवन के ऊपर विशाल हाल की योजना पूर्ण हुई जिसका सौजन्य श्री कुन्दनलाल जी भण्डारी ने ग्रहण किया। इसी अवसर पर श्री पन्नालाल चौरड़िया ने जैन भवन निर्माण का दायित्व संघ अपने कन्धों पर लिया और इसे शीघ्र ही मूर्त्त रूप देने का संकल्प ग्रहण किया।

वहां से आप श्री जयनगर पधारे। वहां पर आपकी सद्प्रेरणा से स्थानक भवन के पुनर्निर्माण की योजना बनी। वहीं पर ९ मार्च ९७ को अम्बाला नगर में सुदीर्घ काल तक स्थानापति रहे स्थविर, वयोवृद्ध उपप्रवर्तक तपस्वी श्री सुदर्शन मुनि जी महाराज के देहावसान की सूचना प्राप्त हुई।

शांतिसभा जयनगर में ही रखी गई। आपने अपने हृदयोद्‌गार प्रगट करते हुए तपस्वी जी म. के जीवन पर प्रकाश डाला। आपने कहा – श्रद्धाधार श्री तपस्वी जी म. आचार्य श्री सोहनलाल जी म. के हाथों से दीक्षित हुए अन्तिम मुनिराज थे। उन्होंने बासठ वर्षों तक निष्कलंक संयम पाला और तिरानवें वर्ष की अवस्था पाई। उनकी जन्म तथा दीक्षा तिथि एक ही थी। बसन्त पञ्चमी के शुभ दिन ही उन्होंने संसार में आंखें खोली थीं तथा इसी शुभ दिन उन्होंने संयमी जीवन में प्रवेश किया था। उनका देहावसान भी चैत्रमास में हुआ। वे परमतपस्वी संत सरल मुनिराज थे। बालक हो या वृद्ध धनी हो या निर्धन वे सभी को एक भाव से लोगस्स के पाठ के साथ मंगलपाठ सुनाते थे। वे आलार्थ के सिवाय किसी प्रपंच में नहीं पड़ते थे। यही कारण था कि न केवल अम्बाला निवासी उन्हें अपना भगवान मानते थे अपितु सभी संत-साध्वी भी उन्हें अपना आराध्य देव मानते थे।

पूज्य तपस्वी जी महारज मेरे गुरुदेव श्री के बड़े गुरुभ्राता थे। उनके देवलोक गमन पर मैं उन्हें कोटि-कोटि श्रद्धांजलि....सुमनाञ्जलि समर्पित करता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहां कुछ दिन विराजने के पश्चात् बैंगलोर के कई उपनगरों को स्पर्शते हुए आप श्री शिवाजी नगर....गुरु गणेश बाग में पधारे ! यहीं पर आपने होली चातुर्मास सम्पन्न किया। इस अवसर पर ट्रीपलीकेन, श्रीरामपुर, नेहरू बाजार, साहूकार पेठ मद्रास, मेट्टुपालयम, आदि श्री संघ चातुर्मास की विनितयों के साथ आपके श्रीचरणों में उपस्थित हुए। आप श्री ने मेट्टुपालयम श्री संघ को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखते हुए चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की।

मेट्टुपालयम वर्षावास

महावीर का मुनि यायावर होता है। उसके कदम यात्रायित रहते हैं। गांव-गांव, नगर-नगर जागरण का अलख जगाता हुआ वह निरंतर चलता रहता है।

महावीर के मुनि पूज्य वर्य श्रद्धेय चरितनायक श्री सुमन मुनि जी महाराज गणेश बाग बैंगलोर से यात्रायित हुए। महामुनि फ्रेजर टाउन, शूले (अशोकनगर होते हुए) के.जी.एफ. दोड्डबालापुर, आदि मध्यवर्ती ग्रामों-नगरों को स्पर्शते हुए चिकपेट पधारे जहां पर तपस्वी श्री सहज मुनिजी म. एवं श्री राममुनि जी म. विराजमान थे। तपस्वीराज के तप की साता पृच्छा की। वहां से पुनः मैसूर पधारे।

मैसूर विद्यापीठ आपकी प्रेरणा का प्राणवायु पाकर धन्य हुआ। वहां से निंजनगुड़, गुंडलपेठ होते हुए बंडीपुर-कलहटी घाट को स्पर्श किया। वहां से ऊटी पधारे। ऊटी से कुन्नूर, बरलियार आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए मेट्टुपालियम चातुर्मासार्थ पधारे। मार्ग के क्षेत्रों में अत्यन्त धर्म स्नेह पाया गया। महामुनि जिस क्षेत्र में पधारे वहां के आबालवृद्ध ने पलक पांवड़े बिछाकर उनका स्वागत किया।

१० वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद मेट्टुपालयम नगर में यह वर्षावास हो रहा था। श्री संघ ने पलक पांवड़े बिछाकर आपका स्वागत किया।

चातुर्मास प्रवेश से लगातार दर्शनार्थी बन्धुओं का आगमन जारी रहा। गुरुदेव श्री के शानदार एवं ओजस्वी प्रवचनों के प्रभाव से अनेक रचनात्मक कार्यक्रम होने लगे। निरंतर आयंबिल तप प्रारंभ हुआ। ८, ११, १५, ३१, ३४ की तपश्चर्याएं हुई। श्रीमती मोहनदेवी दुग्गड़ ने ८-८-६७ को मासखमण के प्रत्याख्यान गुरुदेव श्री के मुखारविन्द से ग्रहण किए।

अनेकों वंदनीय महापुरुषों –आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म. उपाध्याय प्रवर श्री केवल मुनिजी म., श्रमण सूर्य, मरुधर केशरी श्री मिश्री मल जी म., आचार्य श्री जयमल्ल जी म., आचार्य श्री आत्माराम जी म., पंजाब प्रवर्तक श्री शुक्लचंद जी म., कर्नाटक केसरी श्री गणेशीलाल जी म., जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म., धर्मप्राण वीर लोंकाशाह आदि की जन्म जयन्तियाँ विशाल जनमेदिनी के मध्य तप-त्याग-दान की उत्कृष्ट भावना के साथ मनाई गई।

चातुर्मास के मध्य "श्रमणसूर्य मरुधर केसरी जैन मानव सेवा ट्रस्ट" की घोषणा श्री भंवरलाल जी नवरतन मल जी सांखला द्वारा की गई जिसमें उन्होंने एक लाख सात हजार रुपए की राशि प्रदान की। साथ ही साथ नेत्र चिकित्सा शिविर भी लगाया गया। स्कूली-ड्रेस, व्हीलचेयर, कृत्रिम पांव, श्रवण यंत्र, सिलाई मशीनें आदि प्रदान कर जरूरतमंदों को आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराकर मानव-सेवा के कार्य भी किए गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक-शिक्षण-शिविर, प्रश्न मंच, निबंध, भाषण, गायन आदि का भी आयोजन किया गया।

धार्मिक पाठशाला ४ माह तक निरंतर गतिशील रही जिसमें लगभग ५०-६० बालक-बालिकाओं ने धार्मिक ज्ञान ग्रहण किया।

वर्षावास काल में पूज्य गुरुदेव श्री के चरणों में अनेक शहरों के संघ दर्शनार्थ पधारे। सन् १९६८ के चातुर्मास की विनती लेकर इरोड़, रायचूर, विलीपुरम्, वानीयम्बाड़ी, साहूकार पेठ, मद्रास, नेहरू बाजार, अयनावरम्, बैंगलोर से चिकपेट, श्री रामपुर, जयनगर आदि के श्री संघ एवं संघाधिपति पधारे। पूज्य गुरुदेव श्री ने सभी संघों को आश्वस्त किया एवं यथासमय चातुर्मास निर्णय की बात कही।

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री जी की ४९वीं दीक्षा जयंती तप-त्याग के साथ मनाई गई। विशाल जन मेदिनी के मध्य श्री हनुमानचंद जी नाहर ने ४८००० रुपए शुभ कार्यों में लगाने की घोषणा की।

विश्राम गृह उद्घाटन

इस वर्षावास में एक और महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ। मेटुपालियम से ऊटी के राजमार्ग पर सन्त-सतियों के ठहरने का अनुकूल स्थान पर'विश्राम-गृह' बनाने की प्रेरणा गुरुदेव प्रवर्तक श्री रूपचंद जी म. ने दी थी। उन्हीं की प्रेरणा से 'बरलियार' में "श्री मरुधर केसरी जैन विश्रामगृह" का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। उसी नवनिर्मित विश्रामगृह का २२-११-६७ को श्रीमान शोभाचंद जी कोठारी ऊटी के कर कमलों द्वारा उद्घाटन हुआ। सान्निध्य प्राप्त था-पूज्य गुरुदेव श्री ठाणा २ का।

दिनांक १५-११-६७ को चातुर्मास विदाई की वेला आ गई। श्रावक-श्रविकाओं के भारी समुदाय ने साश्रु आपको विदाई दी, पुनरागमन के लिए। स्थानीय श्रद्धालुओं ने अश्रुपूरित नेत्रों से विदाई भाषण, विदाई गीत प्रस्तुत किए। उपकारों से उपकृत इन लोगों ने कहा – गुरुदेव ! आपको विदा करने का मानस तो नहीं हो रहा है तथापि साधु-मर्यादा के कारण हम दुराग्रह भी नहीं अपना सकते। गुरुदेव को तो विहार करना ही था।

गुरुदेव ने विदाई के प्रत्युत्तर में कहा – मैंने छोटे-बड़े संघ को महत्त्व न देते हुए ही यहां वर्षावास करने का मानस बनाया। इस परख में यहां का संघ खरा उतरा। जिस प्रेम और भक्ति से आपने हमारी सेवा की वैसी ही आगत साधु-साध्वियों के प्रति भी सेवा भाव का लक्ष्य रखें। प्रतिवर्ष संत-सतियों का वर्षावास सुलभ नहीं है इसलिए आप अपने प्रयत्नानुसार प्रतिदिन सामायिक, प्रार्थना आदि धर्म जागरण करने करवाने का अवश्य ही लक्ष्य रखें। रविवार के दिन सामूहिक प्रार्थना भी करें ताकि युवा एवं बालवर्ग में संस्कार बने रहें।

तदनंतर जयघोषों के गगनभेदी नारों के साथ गुरुदेव श्री ने जनमेदिनी के साथ जैन भवन से प्रस्थान कर दिया।

दिनांक २३-११-६७ को आप श्री के सान्निध्य में स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म. का स्मृति दिवस त्याग और तप के साथ मनाया गया।

मेटुपालियम का यशस्वी चातुर्मास सम्पन्न कर आप श्री कोयम्बतूर पधारे। साईं बाबा कालोनी में श्री मदन लाल जी छाजेड़ के यहां दो दिन ठहरे। तदनंतर वहां से भावना अपार्टमेंट में श्री हेमराज जी सोलंकी के फ्लेट् में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पधारे। सार्वजनिक प्रवचन हुआ। सार्वजनिक प्रवचन में साध्वी श्री अनिला बाई महासती जी भी पधारीं।

उसी दिन शहर में दो सिपाहियों की हत्या हो जाने के कारण हिंदू-मुस्लिम दंगा शुरू हो गया। दुकानें लूट लीं गई तथा आग लगा दी गई। बड़ा ही वीभत्स दृश्य उपस्थित हो गया। सप्ताहांत तक बाजार बन्द रहे।

वहां से प्रस्थित हो आप श्री महावीर कालोनी में श्री इन्द्रकुमार जी कीर्तिकुमार जी गादिया के यहाँ पधारे। एक सप्ताह तक यहां प्रार्थना, प्रवचन आदि नियमित होते रहे। आप श्री जी एवं महासती जी की सन्निधि में दिनांक २४-१२-६७ से १ जनवरी १९६८ तक तेरहवां स्थानीय धार्मिक शिक्षण शिविर भी आयोजित हुआ। अनेक बालक-बालिकाओं ने इस शिविर में ज्ञानार्जन किया।

पुनः बैंगलोर की ओर

यहाँ बैंगलोर महासंघ के वरिष्ठ पदाधिकारी यह विनती लेकर उपस्थित हुए कि तपस्वी श्री सहज मुनि जी महाराज के बृहद् तपश्चरण की संपूर्ति की वेला पर आप श्री जी अवश्य ही बैंगलोर पधारें। वे अपने साथ तपाचार्य श्री जी का पत्र भी लेकर आए थे जो आपके करकमलों में प्रदान किया। इससे पूर्व भी ये पदाधिकारी उपर्युक्त विनती एवं आग्रह लेकर मेट्टुपालियम पधारे थे। विनती स्वीकृत हुई। यथासमय बैंगलोर आने का गुरुदेव श्री ने पदाधिकारियों को आश्वासन दिया।

कोयम्बतूर से पूज्य गुरुदेव श्री का बैंगलोर दिशा की ओर विहार प्रारंभ हुआ। विहार करते हुए त्रिपुर पधारे। त्रिपुर में जैन-स्थानक बनाने की प्रेरणा आप श्री ने ही दी थी और मेट्टुपालियम वर्षावास के दौरान वहां संघ की स्थापना भी आप श्री की प्रेरणा से ही हुई थी। प्रेरणा का बीज पल्लवित और पुष्पित हुआ। भवन बनकर तैयार हुआ। आप श्री ने अवलोकन कर संघ के कार्यों के प्रति संतोष भाव प्रकट किया।

त्रिपुर से विहार कर सेलम पधारे। शंकर नगर के जैन स्थानक में १० दिवस विराजना हुआ। प्रार्थना व्याख्यान का खूब ठाट रहा।

यहाँ साहूकार पेठ संघ (मद्रास) के वरिष्ठ पदाधिकारी गण आगामी वर्षावास की विनती लेकर पुनः आए। होली चातुर्मास पर गुरुदेव श्री ने विधिवत् घोषणा करने की भावना संघ के समक्ष प्रगट की। साथ ही साथ यह संकेत दिया कि फिर आने की आपको आवश्यकता नहीं है। आचार्य श्री की आज्ञा प्राप्त हो ही गई है। अतः उक्त अवसर पर चातुर्मास की विधिवत् घोषणा कर दी जाएगी।

सेलम से विहार कर धर्मपुरी, कृष्ण गिरि होते हुए होसूर पधारे। यहां से बैंगलोर हेतु प्रस्थान किया। बैंगलोर के सन्निकट पदार्पण हुआ तो श्रीयुत जोधराज जी सुराणा के धर्मप्रेमी पुत्र श्री वसंतकुमारजी की फैक्ट्री में आप ठहरे। यहाँ बैंगलोर के धर्मप्रेमियों का भारी तांता लगा रहा। द्वितीय दिन श्री सिरेहमलजी मरलेचा की फैक्ट्री में आहारादि ग्रहण कर कोरमंगला जम्मू वाले जैन साहब के यहाँ मध्याह्न का समय व्यतीत किया। तत्पश्चात् सांय श्री हीरालाल जी जैन (पंजाबी) के यहाँ पधारे। यहाँ श्री राममुनि जी 'निर्भय' आप श्री की अगवानी करने पधारे। यहां से विहार कर आप श्री गणेश बाग-शिवाजी नगर में पधार गए जहां तपाचार्य श्री सहज मुनि जी महाराज तपश्चरण कर रहे थे।

प्रार्थना, व्याख्यान प्रतिदिन होने लगे। लगभग दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माह स्थिरता रही। मध्याह्न में तीन बजे तपाचार्य श्री जी म. का मंगलपाठ होता था। श्रोताओं की भीड़ अत्यधिक होती थी। साध्वी श्री धर्मशीला जी म. ठाणा ५, साध्वी श्री शांताकंवर जी म. ठाणा ६, साध्वी श्री कौशल्याकंवर जी म. ठाणा ५, एवं प्रवर्तक श्री रमेश मुनि जी म. ठाणा ६ का यहां पदार्पण हुआ। धर्म मेला लगने लगा।

महावीर जयंति समारोह

शिवाजी नगर स्टेडियम में जैन युवक संगठन की ओर से महावीर जयंति का सामूहिक आयोजन हुआ। आचार्य श्री स्थूल भद्र सूरीश्वर जी भी अपनी शिष्य-शिष्या सम्पदा के साथ इस आयोजन में पधारे। विशाल जन समूह के मध्य महावीर-जन्म-कल्याणक दिवस मनाया गया।

अक्षय तृतीया के पारणे भी गणेश बाग शिवाजीनगर बैंगलोर में ही सम्पन्न हुए।

तपाचार्य श्री सहज मुनि जी म. का पारणा २ मई १९९८ को सानन्द सम्पन्न हुआ।

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री सुमन कुमार जी म. का मद्रास चातुर्मास हेतु विहार ६ मई १९९८ को हुआ।

...फटे मन सी दिए

बैंगलोर से विहार कर हेबोगुड़ी, होसुर पधारे। होसुर में श्री राजेन्द्र बोरा के घर ठहरे। वहां के जैन बन्धुओं में स्थानक की भूमि को लेकर परस्पर भ्रांति बनी ही थी। मन फटे हुए थे। आपने सभी सामाजिक सदस्यों को एकत्रित किया और बड़ी कुशलता से उनके फटे हुए मनों को सी दिया अर्थात् भूखण्ड की अधिकृत पत्रावली दिखाकर फैली हुई भ्रान्ति को मिटा दिया। आपके उपदेश से सभी का मनोमालिन्य धुल गया। अपूर्ण स्थानक भवन को शीघ्र ही पूरा करने का संकल्प सभी भाइयों ने लिया।

होसुर से आप कृष्णगिरि, वगरूर, वानियमबाड़ी होते हुए तिरपातुर पधारे। यहां कुछ दिन विराजने के पश्चात् आप पुनः वानियमबाड़ी पधारे। वहां से आम्बूर आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए गुडयातम पधारे जहाँ श्री सुरेश मुनि जी म. शास्त्री ठाणे ३ से मधुर सम्मिलन हुआ।

गुडयातम से प्रस्थान करके आप केवीकुप्पम, विरंजीपुरम्, बैलूर, रत्नगिरि, आरकाट, वालाजा, वालचेट्टीछत्रम्, कांजीवरम्, राजकुलम, तथा सुंगाछत्रम् आदि छोटे-छोटे क्षेत्रों में धर्मोद्योत करते हुए राजीव गांधी की शहीद-स्थली श्री पैरम्बदुर में पधारे। वहाँ से तण्डलम् भवन होते हुए आपने तमिलनाडु की राजधानी मद्रास में प्रवेश किया। पुनमल्ली, पोरूर, आलन्दूर होते हुए टी.नगर माम्बलम् में पधारे।

विदेह साधक

टी. नगर में आप अस्वस्थ हो गए। ज्वर ने देह पर अधिकार जमा लिया। शायद यह प्रलम्ब विहार की परिणति रही हो। देह सुविधा चाहती है। विश्रान्ति उसे प्रियकारी होती है। पर श्रेय का साधक मुनि देह की चाह से परिमुक्त होता है। वह देह का उपयोग एक साधन की तरह करता है । वह देह को साध्य नहीं मानता है। ऐसे में देह यदा-कदा बगावत कर देती है। उसी बगावत का फल था यह ज्वर।

ज्वर देह तक रहे तो पीड़ा नहीं देता है। जब वह मस्तिष्क में प्रवेश पा जाता है तो व्यक्ति को अस्थिर बना देता है। चरितनायक पूज्य गुरुदेव ने ज्वर को अनुभव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया। देह को थोड़ा विश्राम दिया तदन्तर पुनः प्रस्थित हुए। रायपेठा होते हुए कुंडीतोप पधारे। यहां पर श्री जवाहरलाल जी बाघमार के मकान पर ठहरे। वहां से भारती नगर आए जहां पवनकुमार जैन (अमृतसर) के मकान पर ठहरे।

भारतीनगर से चिन्ताद्रिपेठ पधारे। यहीं से आपको चातुर्मासार्थ साहूकारपेठ पधारना था। सैकड़ों की संख्या में साहूकारपेठ के श्रावक श्राविका आपके दर्शनों के लिए आए। दूसरे दिन साहूकार पेठ के लिए आपने प्रस्थान किया। विशाल जनसमूह नभ मण्डल को जयकारों से गूञ्जित करता हुआ एक जुलूस के रूप में आपका अनुगमन कर रहा था। जैन भवन पधारे।

साहूकार पेठ स्थानक भवन में पुनः आपका पदार्पण हुआ। धर्मध्यान की बहार आई। आपके उपदेशामृत का पान करने के लिए आशातीत श्रोता प्रतिदिन उपाश्रय आते थे।

साहूकार पेठ वर्षावास : कतिपय उपलब्धियाँ

श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री मुनि श्री सुमन कुमार जी महाराज ठाणा २ के साहुकारपेठ के ऐतिहासिक वर्षावास में निम्नलिखित धार्मिक और सामाजिक गतिविधियाँ हुई –

● दिनांक ४ जुलाई ६८ को महासती श्री कानकंवरजी म. का स्मृति-दिवस तप-त्याग के साथ मनाया गया।

● दि. १६ जुलाई ६८ को एस.एस.जैन युवक संघ द्वारा प्रश्न मंच का १६वां भाग गुरुदेव की पावन सन्निधि में विमोचित किया गया। इसी दिन महिलाओं का धार्मिक शिक्षण शिविर भी प्रारंभ हुआ। इसमें २०० महिलाओं ने भाग लिया।

● दि. २४ जुलाई ६८ को श्रद्धेय उपाध्याय श्री केवल मुनि जी म. की जन्म जयंति तपाराधना पूर्वक समायोजित की गई।

● दि. २४ जुलाई ६८ को आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी म. की जन्म-जयंति पर विविध कार्यक्रम रखे गए। युवक संघ की ओर से सामूहिक सामायिक तथा एकासनों का आयोजन हुआ। जैन संघठन द्वारा भी त्रिदिवसीय कार्यक्रम आयोजित किया गया। विकलांगों को विविध उपकरण प्रदान किए गए।

● २६ सितंबर ६८ को युवक संघ द्वारा 'भगवान महावीर' विषयक प्रश्नमंच का कार्यक्रम संपन्न हुआ। उसी दिन अ.भा.श्वे. जैन कान्फ्रेंस – दक्षिण भारत की शाखा की मीटिंग एवं चुनाव सम्पन्न हुए।

● ३० जुलाई १६६८ को महिला मंडल द्वारा आयोजित शिविर समापन का कार्यक्रम सोत्साह सम्पन्न हुआ।

● इस चातुर्मास की एक विशिष्ट उपलब्धि थी गुरुदेव की सन्निधि में द्विदिवसीय जैन विद्या गोष्ठी का समायोजन।

द्वि दिवसीय जैन विद्या गोष्ठी

परम श्रद्धेय श्रमणसंघीय संतरत्न विद्वद्वर्य श्री सुमनकुमार जी म.सा. की पावन सन्निधि में द्विदिवसीय जैन विद्या गोष्ठी दिनांक १-२ अगस्त १६६८ को जैन भवन चेन्नै-३ के सभागार में सोत्साह सानन्द सम्पन्न हुई। इस कार्यक्रम का सञ्चालन जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान के सचिव श्री दुलीचन्दजी जैन 'साहित्यरत्न' ने किया।

दिनांक एक अगस्त को प्रातः ६.३० बजे सुश्री कविता कोठारी के मंगलाचरण से इस गोष्ठी का प्रारंभ हुआ। आगन्तुक विद्वानों एवं श्रोताओं का स्वागत-भाषण के माध्यम से स्वागत-अभिनन्दन किया संघ के अध्यक्ष श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंवरलालजी गोठी ने। उद्घाटन भाषण दिया - श्री सुरेन्द्र भाई मेहता ने। परम-श्रद्धेय गुरुदेव श्री का प्रवचन अत्यन्त मर्मस्पर्शी था, आप श्री ने **"बहिरात्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा"** विषय पर विश्लेषण किया। डॉ. श्री इन्दरराज जी मेहता ने **"तिरुक्कुरलः आदर्श जीवन की आचार संहिता"** विषय पर शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की।

इसी दिवस का द्वितीय सत्रः स्वाध्यायी अभिभाषण कार्यक्रम सुश्री सुमित्रा ओस्तवाल के मंगलाचरण से प्रारंभ हुआ। श्रीमती कमला मेहता ने **नारी और समाज** विषयक तथा श्रीमती शकुंतला संकलेचा ने **सुखी बनने का राजमार्ग** विषय पर भावपूर्ण विचार प्रस्तुत किये। सुश्री प्रीति नाहर ने **लेश्या स्वरूप** पर तात्त्विक भाषण दिया।

तृतीय सत्र प्रारंभ हुआ-श्रीमती सुनीता सुराणा के मंगल गान से। इस चरण में श्री कृष्णचन्दजी चौरड़िया ने **तमिलनाडु के जैन साहित्य** विषय पर तथा श्री दुलीचन्द जी जैन ने **"जैन शिक्षा का आदर्श"** विषय पर गहन सामग्री प्रस्तुत की।

पंडित रत्न श्री सुमनमुनि जी म. ने सभी वक्ताओं के विषय को विवेचित किया। मंगल वचनों के साथ सायं ५ बजे सभा विसर्जित हुई।

दिनांक दो अगस्त के प्रथम चरण के अन्तर्गत **"श्रावक जीवन का आदर्श** विषयक परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री का विश्लेषणात्मक प्रवचन हुआ। तदनंतर श्री पी.एम. चौरड़िया ने **भावना भव नाशिनी : बारह भावनाएं** - विषय पर सारगर्भित भाषण दिया।

द्वितीय चरण का शुभारंभ किया – श्रीमती किरण जैन ने सुमधुर संगीत प्रस्तुत करके। युवा स्वाध्यायी कार्यक्रम के अंतर्गत **जीवन व्यवहार और आत्मदर्शन** विषय पर लालित्यपूर्ण भाषा में अभिभाषण प्रस्तुत किया-श्रीमती विजया कोटेचा ने। **अहिंसा एवं शाकाहार** विषय पर सुश्री प्रमिला जैन ने तथा **व्यावहारिक जीवन में समता** विषय पर श्री सुमति कुमार जी कांकरिया ने तथा **कर्म सिद्धान्त की वैज्ञानिकता** पर अभिभाषण दिया-श्री दिलीपकुमार जी बया ने। इन सभी वक्ताओं का प्रयास अभिनंदनीय रहा।

तृतीय चरण में श्रीमती प्रिया जैन ने **"भव प्रपंच"** विषय पर शोधपरक विवेचन प्रस्तुत किया। **"जैन धर्म में नारी का उद्‌बोधक रूप"** विषय पर श्री भद्रेशकुमार जी जैन ने सारगर्भित भाषण दिया।

तदनंतर परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री ने सभी वक्ताओं के विषय पर विश्लेषणात्मक विचार प्रस्तुत किये। अंत में मंत्री श्री रिखबचंद जी लोढ़ा ने सभी वक्ताओं एवं कार्यक्रम के संयोजक श्री दुलीचन्दजी जैन को धन्यवाद ज्ञापित किया।

मंगलवचन के साथ गोष्ठी सायं ५.३० बजे समाप्त हुई।

श्री एस.एस. जैन संघ की ओर से सभी वक्ताओं का माल्यार्पण एवं स्मृति-चिह्न के द्वारा - स्वागत - अभिनंदन किया।

● ७ अगस्त ६८ को श्रमणसूर्य मरूधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म. की जन्म जयंति तपाराधना के साथ समायोजित हुई। इस प्रसंग पर अन्नदान, वस्त्रवितरण तथा जीवदया के कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

पर्यूषण में कई मास खमण सहित प्रभूत तपाराधनाएं हुई। महापर्व सम्वत्सरी के प्रसंग पर कबूतरों के अनाज के लिए अपूर्व राशि एकत्रित हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४-६-९८ को आचार्य श्री जयमल जी म., आचार्य श्री आत्माराम जी म. तथा प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी म. की जन्म जयंतियां समायोजित हुईं। इस अवसर पर श्री जयमल जैन सेवा मंडल द्वारा निशुल्क नैत्र चिकित्सा शिविर लगाया गया।

४-१०-९८ को श्रद्धेय चरितनायक श्री सुमन मुनि जी म. की ४९ वीं दीक्षा जयंति तप-त्याग के साथ आयोजित की गई। इस अवसर पर मंत्री श्री रिखबचन्दजी लोढ़ा, संघ उपाध्यक्ष श्री किसनलाल जी बेताला, श्री भंवरलाल जी सांखला, श्री सागरमल जी पींचा, श्री पी.एम. चोरड़िया, श्री हरकचंदजी ओस्तवाल, श्री अखेचंद जी भिड़कचीया, श्री भीकमचन्दजी गादिया, श्री उत्तमचंदजी गोठी, श्री मोहनलाल जी चोरड़िया आदि ने गुरुदेव के गुणानुवाद करते हुए उनके दीर्घायु होने की वीरप्रभु से मंगलकामनाएँ की।

श्री सम्पत राज जी लोढ़ा, श्री दिलीप जी चोरड़िया, श्री गौतम जी डागा, श्री जवाहरलाल जी बाघमार, श्री पारस मल जी नाहर ने गीतों तथा कविताओं के माध्यम से श्रद्धेय श्री के गौरवमय जीवन पर प्रकाश डाला।

इस अवसर पर जरूरतमंद भाई-बहनों को भोजन-वस्त्र वितरण किए गए।

श्रद्धेय चरितनायक की दीक्षा जयंति के उपलक्ष में दो महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए – (१) तमिलनाडु के क्षेत्रों में जहां-जहां स्थानक भवन हों उनके चित्रों तथा सम्पर्कसूत्रों की एक पुस्तिका छपाई जाए (२) साधु-साध्वियों के लिए तमिलनाडु में विचरण की व्यवस्था व मार्ग में समुचित व्यवस्था की जाए।

इस मंगलमय अवसर पर युवक संघ ने 'श्री स्था. जैन युवा सम्मेलन' का आयोजन किया जिसमें चेन्नई महानगर के करीब ३० युवक संघों के प्रतिनिधियों ने "आचार-विचार-व व्यवहार" पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए।

८-१०-९८ को श्रद्धेय चरितनायक के दर्शनों के लिए श्रीमती तारा भंडारी (डिप्टी स्पीकर, राजस्थान विधान सभा) पधारीं।

इस प्रकार अनेकानेक मंगलमय आयोजनों वाला यह वर्षावास संपूर्णता के शिखर पर पहुँचा।

वर्षावास समाप्ति पर वीर लोकाशाह की जन्म-जयंति तथा विदाई समारोह मनाया गया। इस अवसर पर संघाध्यक्ष श्री भंवरलाल जी गोठी ने गुरुदेव का आभार व्यक्त किया तथा वर्षावास को सफल बनाने के लिए सभी श्रावक श्राविकाओं को धन्यवाद प्रदान किया।

मंत्री श्री रीखबचंदजी लोढ़ा ने वर्षावास की पूरी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

श्री किसन लाल जी बेताला, श्री जवरचंदजी बोकड़िया, श्री जवाहर लाल जी कटारिया, श्री पारसमलजी चोरड़िया, श्री सागर मल जी पीचा, श्री छोट मल जी लोढ़ा, श्री चंपालाल जी बोथरा, श्री रीखबचंद जी चोरड़िया तथा श्री सोहनलालजी चोरड़िया आदि प्रतिष्ठित श्रावकों ने गुरुदेव का आभार व्यक्त किया।

श्रद्धेय गुरुदेव के सान्निध्य में श्री राजस्थान जैन, एस.एस.ओसवाल संघ (महिला स्थानक) का उद्घाटन श्रीमती भंवरीकंवर जी चोरड़िया धर्म पत्नी स्व. श्रीमान् खींवराज जी चोरड़िया द्वारा सम्पन्न हुआ।

१०-११-९८ को श्रद्धेय गुरुदेव के सान्निध्य में युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म. का १५वां स्मृति दिवस तप-त्याग पूर्वक समायोजित किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस अवसर पर पूज्य श्री सुरेश मुनि जी म. व साध्वी डा. श्री धर्मशीला जी म. भी उपस्थित हुए।

श्री भंवरलाल जी गोठी अध्यक्ष, श्री रीखब चन्दजी लोढ़ा, 'मंत्री', श्री किसन लाल जी बेताला 'उपाध्यक्ष', श्री जबरचन्दजी बोकड़िया 'उपाध्यक्ष' श्री माणक चन्द जी सुराणा 'कोषाध्यक्ष' इन पदाधिकारियों एवं श्री संघ के समस्त सदस्यों ने साहुकार पेठ वर्षावास एवं उसके बाद माम्बलम वर्षावास तक श्रद्धेय चरितनायक गुरुदेव की तन-मन-धन से जो सेवा-साधना की उसे भुलाया नहीं जा सकता है।

साथ ही डॉ. **श्री बेतालाजी, श्री भंवरलाल जी बेताला, श्री माणकचंदजी सुराणा ने श्रद्धेय चरितनायक की रुग्णावस्था में जो सर्वतोभावेन समर्पण से सेवा की उसे कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता है। ....स्वयं श्रद्धेय चरितनायक ऐसा मानते हैं।**

यहाँ आप श्री पुनः अस्वस्थ हो गए। साथ ही आपके सुशिष्य कर्मठ संत, सेवाभावी श्री सुमन्तभद्र मुनिजी म. भी अस्वस्थ हो गए। कठिन स्थितियाँ निर्मित हुई। इसीलिए वर्षावास की समाप्ति के पश्चात् भी आपको १५ दिन सहूकार पेठ में ही विराजित रहना पड़ा।

स्वास्थ्य कुछ अनुकूल हुआ आप वीरप्पन स्ट्रीट महावीर भवन में पधारे। वहां १५ दिन विराजने के पश्चात् नेहरू बाजार, एम.सी.रोड़ होते हुए पुनः साहूकार पेट पधारे। वहां से चिन्ताद्रिपेठ को स्पर्शते हुए रायपेठा पधारे।

१ जनवरी ६६ को मरुधर केसरी श्री मिश्रीलाल जी म. की पुण्यतिथि तथा आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म. की जन्म जयंति भव्य-आयोजन तथा सामायिक-संवर त्याग-तपाराधना के साथ मनाई। वहीं पर कर्नाटक गजकेसरी तपस्वी श्री गणेशीलाल जी म. की पुण्यतिथि भी सोत्साह मनाई गई जिसका आयोजन हेमराज साहूकार प्रार्थना भवन में हुआ।

असातावेदनीय कर्म के उदय से यहां पर आपके पैर में भयंकर पीड़ा हुई। एक मास तक चिकित्सा चली। स्वास्थ्य लाभ अर्जित कर आप चिन्ताद्रिपेठ पधारे।

स्थानक के लिए प्रेरणा

चिन्ताद्रिपेट से श्रद्धेय चरितनायक श्री सुमन मुनि जी महाराज कुण्डीतोप पधारे। यहां पर श्री मदनलाल जी झाबर के खाली मकान पर रुके। लगभग १७-१८ दिन तक यहां प्रवास रहा। प्रार्थना-प्रवचन प्रतिदिन होने लगे। स्थानीय समाज की श्रद्धा-भक्ति देखकर आपने स्थानक निर्माण की प्रेरणा दी। समाज में उत्साह का संचार हुआ। महावीर जयंति के पावन प्रसंग पर स्थानक भवन के निर्माण के लिए भूमि पूजन किया गया।....अक्षय तृतीया पर्व पर स्थानक का शिलान्यास हुआ और वर्तमान में वहां स्थानक भवन बनकर तैयार हो चुका है।

महावीर जयंति

कुण्डीतोप से श्रद्धेय चरितनायक श्री सुमन मुनि जी म. धोबी पेठ पधारे। यहां पर साध्वी श्री कौशल्या जी म. तथा डॉ. साध्वी श्री धर्मशाला जी म. आदि विराजित थीं। यहीं पर आपके सत्सान्निध्य में महावीर जयंति जप-तप एवं त्यागपूर्वक मनाई गई। यहां से तण्डियारपेठ तथा रायपुरम् आदि क्षेत्रों में विचरण हुआ।

रायपुरम् से आप श्री साहुकारपेठ पधारे। यहां पर महासती श्री कौसल्या जी म. की दो साध्वियों के वर्षी तप के पारणे थे। उक्त अवसर पर अन्य २८-३० वर्षीतप के तपस्वियों का पारणा हुआ। उसी दौरान पूज्य प्रवर के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पौत्र शिष्य श्री प्रवीण मुनि जी म. पंजाब से तमिलनाडु तक का उग्र विहार करके साहुकार पेठ पधारे। इस प्रकार आप श्री ठाणे ३, भारती नगर, पेरम्बूर, अयनावरम् होते हुए श्री सुमति प्रकाश जी 'पंजाबी' के घर न्यू आवड़ी रोड आए। यहां से श्री सुबुद्धि नाथ जैन 'पंजाबी' के घर को स्पर्शते हुए नुंगमबाक्कम हाई रोड पर स्थित श्री प्रकाश मलजी भण्डारी के बंगले पर पधारे।

दो मंत्री मुनियों का सम्मिलन

यहां पर महामंत्री श्री सौभाग्य मुनिजी म. 'कुमुद', श्री सुरेश मुनि जी म. शास्त्री आदि मुनि महाराष्ट्र बैंगलोर से क्रमशः पधारे थे। महामुनियों से सुमधुर सम्मिलन हुआ। पारम्परिक सामाजिक व धार्मिक स्थितियों पर दो *श्रमण संघीय मंत्रियों का विचार विमर्श हुआ।*

यहां से आप सैदापेठ पधारे और चौदह जुलाई को सवा आठ बजे मंगलमय मुहूर्त्त में जैन स्थानक टी.नगर माम्बलम् में वर्षावास हेतु पदार्पण हुआ। भारी जनसमूह के अतिरिक्त श्रमणसंघीय साधु-साध्वियों के कई सिंघाड़े भी आपके स्वागत में यहां पधारे थे।

वर्षावास प्रारंभ हुआ। तब से आज तक चातुर्मास की धार्मिक गतिविधियाँ सुचारू रूप से चल रही हैं।

दिनांक २२-२३ अक्टूबर ९९ को श्री सुमनमुनि दीक्षा-स्वर्ण-जयंति का द्विदिवसीय विशाल समारोह श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम् द्वारा समयोजित है। इसी प्रसंग पर यह विशालकाय ग्रंथ को आपके कर कमलों में अर्पित कर लोकार्पण किया जाएगा।

वंदन-अभिनंदन के साथ लेखनी को विराम !

भद्रेशकुमार जैन

❑ **प्रबुद्ध चिंतक, श्रेष्ठ लेखक, प्रभावशाली वक्ता, साहित्य-साधना के धनी डॉ. भद्रेश कुमार जैन ने एम.ए. एवं साहित्यरत्न की परीक्षाएं उत्तीर्ण करके शोध कार्य किया व पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपके शोध का विषय था – "जयगच्छीय आचार्य कवियों की काव्य-परंपरा"। आपने कई ग्रन्थों का संपादन किया जिनमें मुख्य हैं – 'महासती पन्ना स्मृति ग्रन्थ', 'सुमन-प्रव्रज्या' एवं 'शुक्ल-ज्योति'। आप एक श्रेष्ठ शिक्षक हैं तथा स्वाध्यायियों को प्रशिक्षण देने में अतीव कुशल हैं। आप नियमित प्रवचन भी देते हैं जो बहुत ही बोधपूर्ण व प्रभावोत्पादक होते हैं। आपने सुविख्यात "अमर-भारती" पत्रिका का २० महीनों तक कुशलतापूर्वक संपादन किया। सम्प्रतिः मुद्रक, संपादक व प्रकाशक। अनेक उच्चस्तरीय धार्मिक पाठशालाओं, स्वाध्याय कक्षाओं का सञ्चालन किया। श्री भारतवर्षीय जैन धर्म प्रचार-प्रसार संस्थान, चेन्नई के संस्थापक व निर्देशक।**

सम्पर्क-सूत्र : जैन प्रकाशन केन्द्र, ५३, आदिअप्पा नायकन स्ट्रीट, साहूकार पेठ, चेन्नई-७९.
फोन : ५२२९७३९ / ८५५२७३८ निवास : ४६/८, पच्चिअप्पा स्ट्रीट, एलिस रोड़, चेन्नई-२

✤ ✤ ✤

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्थापित धर्म संस्थाएं

आप श्री द्वारा संस्थापित संस्थाओं की सूची विस्तृत है। संक्षिप्ततः आपकी सद्प्रेरणा से निर्मित कतिपय संस्थाओं का विवरण यहाँ प्रस्तुत है। ये संस्थाएं शिक्षा क्षेत्र में, स्वास्थ्य क्षेत्र में, प्रकाशन, धर्म साधना के क्षेत्र में निरंतर प्रगति की ओर उन्मुख हैं। आपका धर्म साधना के साथ मानव मात्र के कल्याण का उद्देश्य भी रहा है। इन संस्थाओं के निर्माण में आपकी भागीदारी न समझें, अपितु प्रवचन द्वारा प्रबल प्रेरणा से प्रेरित विनिर्मित संस्थाएँ समझें।

१. जैन स्थानक में महावीर जैन पुस्तकालय - रायकोट १९५४
२. पूज्य श्री काशीराम जैन स्मृति ग्रंथमाला - अम्बाला १९५७
३. श्री महावीर जैन लाईब्रेरी – चरखीदादरी १९५८
४. श्री महावीर जैन कन्या पाठशाला भिवानी - हरियाणा १९५८
५. जीरा जैन स्थानक वृद्धि हेतु तीन दुकानों का आप श्री जी की प्रेरणा से विलीनीकरण १९६१
६. श्री जैन स्थानक भीखी का शिलान्यास - १९६२
७. जैन स्थानक हेतु आपकी सद्प्रेरणा से प्रेरित निःशुल्क दो भूमिखण्ड दान दाताओं द्वारा प्रदत्त। समाना मण्डी (पंजाब) - १९६६
८. जैन स्थानक का जीर्णोद्धार/नवीनीकरण रतिया (हरियाणा) - १९७०
९. स्वामी ताराचन्द जैन समाधि मन्दिर रतिया (हरियाणा) - १९७१
१०. स्वामी शुक्लचन्द्र जैन हॉस्पिटल जालन्धर (पंजाब) - १९७३
११. प्रवर्त्तक स्वामी श्री शुक्लचन्द्र जैन मेडीकल रिलीफ सोसायटी की स्थापना एवं बिल्डिंग, रायकोट
१२. आचार्य श्री अमरसिंह जैन शास्त्र भण्डार मालेर-कोटला (पंजाब) - १९८२
१३. श्री भोजराज जैन सभा पब्लिक हाई स्कूल भटिंडा (पंजाब) - १९८६
१४. जैन स्थानक का शिलान्यास राजाजी नगर बैंगलोर कर्नाटक २६ जनवरी - १९९१
१५. राजकीय हस्पताल के.जी.एफ. (कर्नाटक) में भगवान महावीर ब्लॉक का उद्घाटन १९९१
१६. जैन स्थानक टी.नगर माम्बलम मद्रास का आपकी पावन निश्रा में उद्घाटन एवं उस भवन में सर्वप्रथम आप श्री का चातुर्मास - १९९३
१७. भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ की स्थापना माम्बलम - १९९३
१८. श्री गुरु गणेश जैन स्थानक भवन का आपश्री की सन्निधि में उद्घाटन एवं सर्व प्रथम चातुर्मास बैंगलोर (कर्नाटक) १९९५
१९. "श्री पन्नालाल चौरडिया जैन भवन" एवं स्थानक का ऊपरी व्याख्यान हॉल श्री कुंदनमल जी भंडारी द्वारा - १९९६
२०. जयनगर स्थानक की पुनर्निमाण योजना - १९९६
२१. भगवान महावीर जैन पुस्तकालय, मेटुपालियम १९९७
२२. श्री मरुधर केसरी विश्राम गृह वर्लियार (तमिलनाडु) - १९९७
२३. श्री वर्द्ध. स्था. जैन श्रावक संघ ट्रस्ट (रजि.) की स्थापना मद्रास साहूकारपेट चेन्नई - १९९८
२४. एस.एस. जैन संघ कुंडीतोप - चेन्नई में जैन स्थानक निर्माण - १९९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक पद विभूषित महाराजश्री जी

निर्भीक वक्ता — सन् १९६३ में श्री एस.एस. जैन सभा रायकोट द्वारा दिया गया पद।

इतिहास केसरी — आचार्य अमरसिंह जैन श्रमणसंघ के संत प्रमुख श्री रतनमुनिजी महाराज द्वारा सन् १९८३ में उपाध्याय श्री मनोहरमुनिजी के उपाध्याय पद समारोह के शुभावसर पर यह पद प्रदान किया गया।

प्रवचन दिवाकर — इस पद पर आपको श्री एस.एस. जैन सभा फरीदकोट ने सन् १९८५ में सुशोभित किया।

श्रमणसंघीय सलाहकार — पंजाब से पूना सम्मेलन हेतु प्रस्थान के पश्चात् (लगभग पूना के सन्निकट आड़गांव में आदिनाथ सोसायटी पूना के शिष्टमंडल द्वारा आचार्य प्रवर के आदेशानुसार इस उच्च पद पर सन् १९८७ में आपको प्रतिष्ठित किया गया।

शान्तिरक्षक — 'पूना-श्रमण-संघ-सम्मेलन' का सुचारु रूप से संचालन एवं आपकी महती योग्यता के फलस्वरूप १९८७ में दिया गया पद। जिसे 'स्पीकर' भी कहा जाता है।

मंत्री पद — आचार्य श्री के आदेशानुसार उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी महाराज तथा उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी महाराज की सन्निधि में ई. सन् १९८८ में इस पद की घोषणा औरंगाबाद (महा.) में की गई।

उपप्रवर्त्तक पद — अक्षय तृतीया १९९८ बेंगलोर में, उत्तरभारत प्रवर्तक भंडारी श्री पद्मचन्दजी म. द्वारा।

मुनिश्री सुमनकुमार जी 'श्रमण' : शब्द चित्र

जन्म	:	**सन् १९३६ संवत् १९९२ माघसुदि वसंत पंचमी**
जन्मस्थान	:	**बीकानेर - 'पाँचु' गांव (राज.)**
पिता	:	**श्री भींवराजजी चौधरी**
माता	:	**श्रीमती वीरांदे जी**
दीक्षा	:	**ई. १९५० संवत् २००७ आसोज सुदि १३**
दीक्षानगर	:	**साढ़ौरा (तत्कालीन पंजाब) हरियाणा**
गुरुदेव	:	**श्री मुनि महेन्द्रकुमार जी महाराज**
गुरुमहदेव	:	**प्रवर्त्तक पं. श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज**
शिक्षा	:	**संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, अंग्रेजी, आगम, आगमेतर-साहित्य अध्ययन।**
अलंकरण	:	**इतिहास केसरी, प्रवचन दिवाकर, निर्भीक वक्ता, श्रमणसंघीय सलाहकार, मंत्री, उपप्रवर्त्तक।**
विशेषगुण	:	**मिलनसारिता, सरलता, निर्भीकता तथा सिद्धान्तवादिता, स्पष्टवादिता, समन्वयवादी विचारों के धनी, लेखन, सम्पादन, अनुवादन, तथा प्रवचन।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्मास से लाभान्वित क्षेत्र

ई. सन्	चातुर्मास स्थल
१६५०	साढ़ोरा (हरियाणा)
१६५१	सुल्तानपुर लोधी (पंजाब)
१६५२	जोधपुर (राजस्थान)
१६५३	अम्बालाशहर (हरियाणा)
१६५४	रायकोट (पंजाब)
१६५५	गीदड़वाह मंडी (पंजाब)
१६५६	जोधपुर (राजस्थान)
१६५७	बड़ौत (उत्तरप्रदेश)
१६५८	चरखी दादरी (हरियाणा)
१६५६	सुनाम (पंजाब)
१६६०	कपूरथला (पंजाब)
१६६१	नवांशहर दोआवा (पंजाब)
१६६२	संगरूर (पंजाब)
१६६३	रायकोट (पंजाब)
१६६४	जयपुर (राजस्थान)
१६६५	अलवर (राजस्थान)
१६६६	पटियाला (पंजाब)
१६६७	जालंधर (पंजाब)
१६६८	रायकोट (पंजाब)
१६६६	अम्बालाशहर (हरियाणा)
१६७०	धुरी (पंजाब)
१६७१	मालेरकोटला (पंजाब)
१६७२	रायकोट (पंजाब)
१६७३	बलाचौर (पंजाब)
१६७४	मालेर कोटला (पंजाब)
१६७५	मालेरकोटला (पंजाब)
१६७६	मालेरकोटला (पंजाब)
१६७७	मालेरकोटला (पंजाब)
१६७८	मालेरकोटला (पंजाब)
१६७६	धुरी (पंजाब)
१६८०	अहमदगढ़ मंडी (पंजाब)
१६८१	मालेरकोटला (पंजाब)
१६८२	लुधियाना (पंजाब)
१६८३	बड़ौत (उत्तर प्रदेश)
१६८४	पटियाला (पंजाब)
१६८५	फरीदकोट (पंजाब)
१६८६	भटिण्डा (पंजाब)
१६८७	पूना (महाराष्ट्र)
१६८८	बोलाराम-सिकन्द्राबाद (आंध्रप्रदेश)
१६८६	डबीरपुरा हैद्राबाद (आंध्रप्रदेश)
१६६०	दोड्डबालापुर (कर्नाटक)
१६६१	के.जी.एफ. (कर्नाटक)
१६६२	वानियमबाड़ी (तमिलनाडु)
१६६३	माम्बलम, मद्रास (तमिलनाडु)
१६६४	कोयम्बतूर (तमिलनाडु)
१६६५	शिवाजीनगर, बेंगलोर (कर्नाटक)
१६६६	मैसूर (कर्नाटक)
१६६७	मेटुपालियम (तमिलनाडु)
१६६८	साहूकारपेट – चेन्नई (तमिलनाडु)
१६६६	माम्बलम – चेन्नई (तमिलनाडु)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुदेव श्री का हस्तलिखित पत्रांश

पंजाब-परम्परा/हमारी परम्परा/ मुनि सुमन कुमार 'श्रमण'

आचार्य श्री हरिदास जी महाराज : ऐतिहासिक इतिवृत्त (अद्यावधि अप्रकाशित)

[आचार्य श्री हरिदास जी पंजाब प्रदेशीय स्था. परम्परा/हमारी परम्परा के आद्य पुरुष थे। अद्यतन श्रमण-श्रमणी परम्परा स्थानीय है जो वह उक्त संत पुरुष की ही है, शेष रही पंजाब की दो परम्पराएं अन्य प्रदेश से आगत हैं। (1) स्वामी रूपचन्द जी (2) श्री जीवनराम जी की।

पुराण पुरुष श्री हरिदास जी म. का इतिवृत्त उपलब्ध नहीं है पूर्णतया — जन्म, प्रतिदीक्षा श्रमणदीक्षा आदि। पंजाब पट्टावली जो प्रचलित है उसमें उक्त बातों का उल्लेख नहीं मिलता है, तथापि जिज्ञासा अन्वेषण को प्रेरित करती है। अतः साधनों के अभाव में बाह्य साक्ष्य ही प्रमाण होते हैं इस न्याय से यहां उनके इतिवृत्त के कुछ अप्रकाशित अंशों का उल्लेख किया जा रहा है।]

(1) नामकरण : आचार्य श्री हरिदास जी के नाम को विभिन्न रूपों से उल्लेख किया गया है— हरदास जी, हरिदास ऋषि, हरि ऋषि जी। इसके लिए निम्न ग्रन्थ साक्षी हैं—

(1) पंजाब पट्टावली, (2) धनुऋषि द्वारा लिखित पट्टावली (अप्रकाशित) (3) ऋषि सम्प्रदाय की पट्टावली+ (4) ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास।x

निष्कर्ष : पंजाब पट्टावली में 'हरिदास जी' नाम मिलता है, साथ ही साधु सम्प्रदाय पट्टावली (ऐतिहासिक काव्य संग्रह, श्री अगरचंद जी नाहटा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ सातवें-आठवें पद में 'हरिदास' संज्ञा से अभिहित करते हुए उनके शिष्यों तथा स्वर्गगमन का उल्लेख है। यह काव्य रचित है। उक्त प्रमाणों से 'हरिदास' नाम ही प्रतीत होता है। 'हरदास' संज्ञा उच्चारण अथवा लिखने की स्खलना से प्रचलित हुई है, ऐसा लगता है। 'ऋषि' शब्द या विशेषण तो ऋषि सम्प्रदाय का वाचक था और अद्यतन भी यही नामकरण की परम्परा चल रही है।

(2) शिष्य : आचार्य श्री हरिदास जी महाराज किनके शिष्य थे, उनके गुरु का नाम क्या था इस पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि अब तक पट्टावली के आधार पर यही मत स्थिर रहा/मान्यता रही कि आप सोमजी ऋषि के शिष्य थे। ऋषि सम्प्रदाय के इतिहास, और 'हमारा इतिहास' आदि के आधार पर यह प्रचलित रहा है। किन्तु अन्वेषण से पंजाब पट्टावली/स्थविरावली (पद्य-दोहों के रूप में) के आधार कहा जा सकता है कि वे श्री लवजी ऋषि जी शिष्य थे न कि सोमजी ऋषि के, उनके गुरुभ्राता थे। यह पट्टावली/स्थविरावली लेखक के पास और एक सुन्दर हस्तलिखित प्रति तपस्वी सहज मुनि के पास विद्यमान है, मैंने रविन्द्र जैन मालेरकोटला पंजाब में उनके देखी थी।

शिष्यत्व के बारे में उक्त प्रमाण के प्राप्त हो जाने पर दो मत उत्पन्न हो गए — प्रथम प्रचलित परम्परा/पट्टावलि तथा आधारित प्रकाशित ग्रन्थ, दूसरा पंजाब पट्टावली/स्थविरावली तथा साधु सम्प्रदाय पट्टावली के आधार पर।

प्रमाण : "प्रथम साध लवजी भए, इति सोम गुरुभाय।
उग्रतपसी जग में प्रगट, ता शिष नाम सुणाय ॥1॥
क्रिया-दया-संजम सरस, धन उत्तम अणगार,
लवजी के शिष जाणिए, हरिदास अणगार ॥2॥°
लवजी शिष सोमजी, कानजी ताराचन्द।
जोगराज कालोजी, हरिदास आनंद ॥"°°

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दूसरे मत का उल्लेख ही अधिक महत्व रखता है क्योंकि इसमें 'गुरु-शिष्य' सम्बन्ध का स्पष्ट उल्लेख हुआ है साथ

+ प्रतापगढ़ भण्डार पट्टावलि। x प्रकाशित हुआ, ति. र. जैन पाथर्डी बोर्ड लेखक पं. मोतीऋषि जी म., ‡ "हरिदास अणगार" — स्थविरावली 2/1, (2) 'हरिदास आनंद' — साधु. पट्टा. 8 पद।
° स्थविरावली 1-2 पद, °° साधु सम्प्रदाय पट्टावलि, पद सं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४

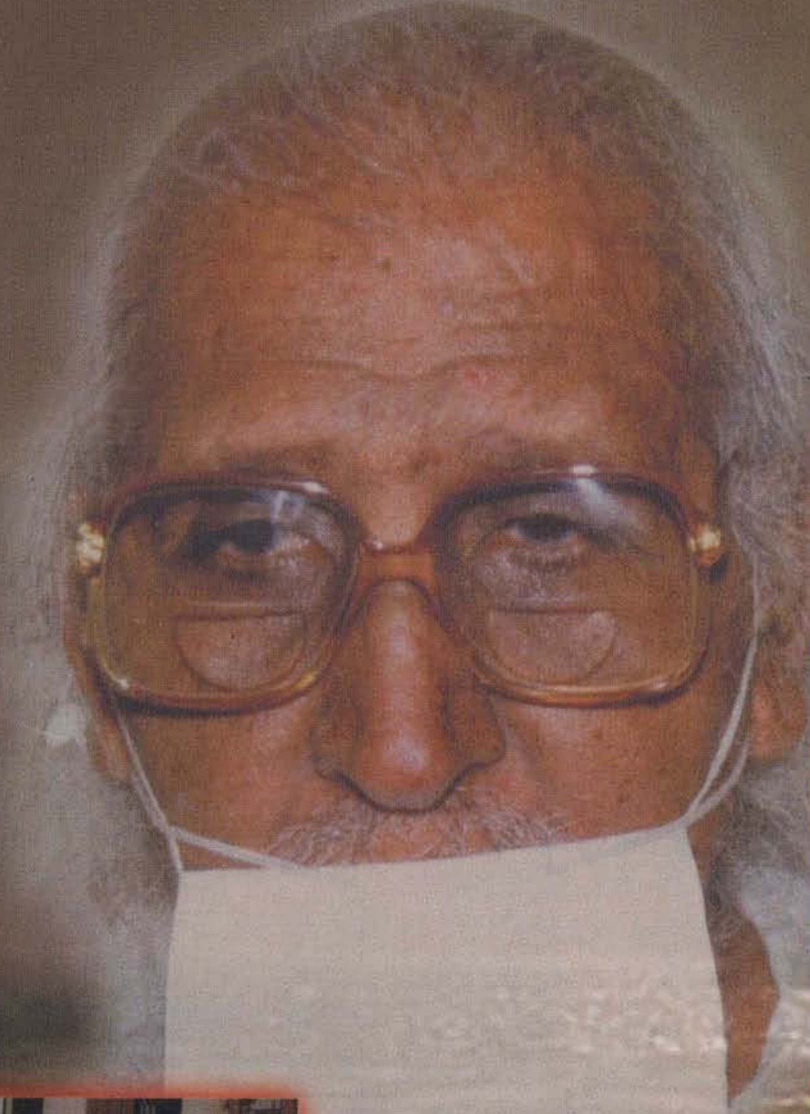

लेखनी से शब्द
शब्द से वाक्य
वाक्य से ग्रन्थ
ग्रन्था से
साहित्य- कोष में
अभिवृद्धि !
उसी साहित्य का
मूल्यांकन है यहाँ !

प्रवचनों की
अमृतमयी धारा !
सु मन से निसृत
सुमन वचनामृत !
प्रवचन पीयूष कण!
संदेश देंगे-
जीवन को उत्थित
बनाने का !
परिवार
समाज
धर्म
राष्ट्र
के हित चिन्तन में
सिक्त यह वाणी
आपको भी
उद्बोधित करेगी !
-भद्रेश जैन

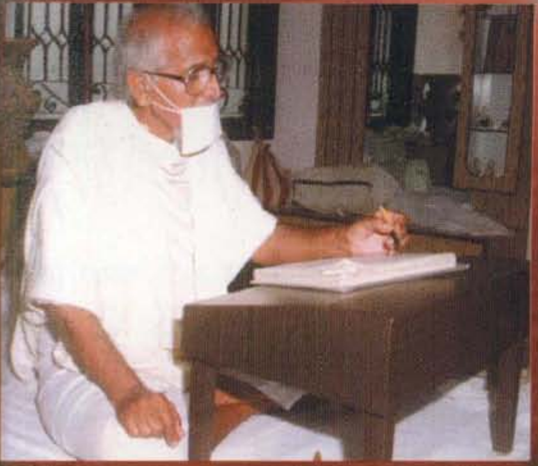

चतुर्थ खण्ड

सुमन साहित्य : एक अवलोकन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री
श्री सुमनमुनिजी की साहित्य साधना

❑ दुलीचन्द जैन "साहित्यरत्न"

सत्साहित्य का महत्व –

समाज को जागृत करने में सत्साहित्य का अत्यधिक योगदान है। साहित्य दो प्रकार का होता है – प्रेयस्कारी और श्रेयस्कारी। प्रेयस्कारी साहित्य मनोरंजन वर्द्धक होता है। श्रेयस्कारी साहित्य जन-जन का कल्याण करने वाला व जीवन में उदात्त भावनाओं को प्रसारित करने वाला होता है। भारतीय संस्कृति में साहित्य के **"सत्यं-शिवं-सुन्दरम्"** रूप की त्रिवेणी को महत्व दिया गया है अर्थात् वह यथार्थ हो, सुन्दर हो और लोक कल्याणकारी हो।

जैन धर्म में ज्ञान को श्रेष्ठ माना गया है। भगवान् महावीर ने जीवन की पूर्णता का जो मार्ग बतलाया उसके तीन अंग हैं – श्रद्धा, ज्ञान और कर्म। इन तीनों की समन्वित अराधना ही मनुष्य के जीवन को उच्चता प्रदान करती है अतः जैन संतों को ज्ञान की निरंतर आराधना करने को कहा गया है। भगवान् महावीर ने कहा – "ज्ञान का प्रकाश ही सच्चा प्रकाश है क्योंकि उसमें कोई प्रतिरोध नहीं है, रुकावट नहीं है। सूर्य थोड़े से क्षेत्र को प्रकाशित करता है किन्तु ज्ञान सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करता है।[1]

जैन परंपरा में सत्साहित्य –

जैन परंपरा में सत्साहित्य का अध्ययन, अध्यापन, स्वाध्याय व प्रचार-प्रसार आदिकाल से ही होता रहा है। आज भी श्रमण-श्रमणियां प्रतिदिन सूत्रों का पाठ करते हैं एवं शास्त्र ग्रन्थों का पारायण करते हैं। अनेक श्रावक व श्राविकाएं भी प्रतिदिन उनके प्रवचन सुनते हैं तथा स्वयं भी धर्मग्रन्थों को पढ़ते हैं। जैन धर्म में इस बात पर जोर दिया गया कि न केवल श्रमण-श्रमणियां किन्तु श्रावक-श्राविकाएं भी सत्साहित्य का ही अध्ययन करें। इस प्रकार का साहित्य जो विषय-वासना को उद्दीप्त करता हो, भोगाकांक्षाओं की वृद्धि करता हो, चित्त को विचलित करता हो व मन की समता को भंग करता हो, वह अध्ययन के योग्य नहीं अपितु अयोग्य माना गया है। इसके विपरीत उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे इस प्रकार के साहित्य का निरंतर स्वाध्याय करें जो मन को विषय वासनाओं से दूर हटाता हो, मन की चंचलता को कम करता हो और जीवन को कल्याणकारी मार्ग की ओर अग्रसर करता हो। भगवान् महावीर ने ज्ञान को परिभाषित्त करते हुए कहा है कि – "जिससे तत्व का बोध होता है, चित्त का निरोध होता है तथा आत्मा विशुद्ध होती है, वही सच्चा ज्ञान है।[2]

जैन साहित्यकारों का अवदान –

जैन समाज के साहित्यकारों ने विपुल मात्रा में लोक कल्याणकारी साहित्य का सृजन किया जिसका अभी तक ठीक प्रकार से मूल्यांकन नहीं हुआ है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़,

१. अर्हत् प्रवचन १६/४७
२. मूलाचार ५८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी आदि-आदि भाषाओं में जैन संतों व श्रावकों ने साहित्य की सभी विधाओं में उत्तम साहित्य का निर्माण किया है। जैन अंग/आगम साहित्य अर्द्धमागधी प्राकृत में उपलब्ध है जिसकी प्रकृति दार्शनिक व आध्यात्मिक है। अपभ्रंश जैन साहित्य ने हिन्दी काव्य को छंद, शैली व कल्पना-प्रवणता प्रदान की। तमिल एवं तेलुगु भाषाओं का प्राचीन साहित्य उच्च कोटि की रचनाओं से समृद्ध है। तमिल भाषा के महान् ग्रन्थ "तिरुक्कुरल" को पाँचवा वेद माना जाता है। बहुत से विद्वानों की मान्यता है कि यह एक जैन कृति है। इसके रचयिता महान् संत तिरुवल्लुवर थे। मध्यकालीन जैन साहित्य अध्यात्म एवं भक्ति प्रधान है, पद-समृद्ध है। इस पर जैन सिद्धांतों का समीचीन प्रभाव पड़ा है। इस सम्बंध में "महावीर वाणी के आलोक में हिन्दी का संत काव्य" शोध ग्रन्थ में डॉ. पवनकुमार जैन का निम्न कथन दृष्टव्य है : – "जब हम हिन्दी के संत साहित्य का अवलोकन करते हैं तब पता चलता है कि उसमें जिन नैतिक व मानवीय मूल्यों को प्रतिपादित किया गया, वे वही है जिन्हें सदियों पूर्व तीर्थंकर महावीर ने तत्कालीन जन-जीवन में प्रचारित किया था यथा – समता, संयम, सम्यक्त्व, निरहंकारिता, अहिंसा, क्षमा, अपरिग्रह एवं अचौर्य आदि।" जैन श्रमणों व श्रावकों ने काव्य-ग्रन्थ, कथा साहित्य, निबंध, नाटक व साहित्य की अन्य सभी विधाओं में श्रेष्ठ रचनाओं का सृजन करके साहित्य के भंडार को समृद्ध किया है। जैन श्रमण और श्रमणियाँ, जो निरंतर ग्रामानुग्राम, नगर-नगर विहार करते हैं, प्रतिदिन प्रवचन देते हैं, उन्होंने अपनी दैनंदिनी, धर्मचर्या में व्यस्त रहने के बावजूद भी अध्यात्म, नीति व सदाचरण से सम्बन्धित समृद्ध प्रवचन साहित्य का निर्माण किया है। अभी तक इस विपुल साहित्य का थोड़ा ही अंश प्रकाशित हुआ है लेकिन जो भी प्रकाश में आया है वह अपूर्वसाहित्य है। आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज, आचार्य श्रीआत्मारामजी महाराज, आचार्यप्रवर श्रीआनन्दऋषिजी महाराज, आचार्य श्रीनानालालजी महाराज, जैन दिवाकर श्रीचौथमलजी महाराज, कविश्रेष्ठ उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी महाराज, आगमज्ञ युवाचार्य श्रीमधुकरमुनिजी महाराज, महान् विद्वान् आचार्य श्रीदेवेन्द्रमुनिजी महाराज के अतिरिक्त सहस्रों श्रमणों व श्रमणियों के प्रभावशाली प्रवचनों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं। यह साहित्य न केवल जैन आचार व तत्वज्ञान का प्रतिपादन करता है परन्तु जन-जन को व्यसन रहित व सदाचार युक्त जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाला भी है।

श्री सुमनमुनिजी महाराज का योगदान –

श्रमण संघीय मंत्री व सलाहकार श्री सुमनमुनिजी महाराज आधुनिक जैन समाज के एक श्रेष्ठ संत, गंभीर चिंतक व आगम-विवेचक हैं। आपकी साहित्य-साधना की भी अभी तक ठीक प्रकार से समीक्षा नहीं हुई। इसका एक ही प्रमुख कारण है-आपकी प्रसिद्धि-परांगमुख वृत्ति। आप अपने स्वयं के बारे में कुछ भी प्रचार नहीं करते तथा निरंतर साधना में निमग्न रहते हैं। आपको जैनागम व अन्य शास्त्रों का तलस्पर्शी ज्ञान है तथा आप उसके श्रेष्ठ व्याख्याता भी है। खेद है कि वर्षों तक आपके प्रवचनों व व्याख्यानों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सका।

श्रमण जीवन अंगीकार करने के बाद आपने अपने जीवन के तीन लक्ष्य निर्धारित किये – १. संयम साधना, २. ज्ञान साधना व ३. गुरु-भक्ति। आपने विभिन्न भाषाओं का अध्ययन किया तथा जैन, बौद्ध व वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थ पढ़ें। आपको प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी आदि विभिन्न भाषाओं का विशद ज्ञान है तथा आप इन सभी भाषाओं में अध्ययन-अध्यापन करते करवाते हैं। आपने जैनागम का विशेष अध्ययन किया तथा आगमों की व्याख्याओं व टीकाओं आदि ग्रन्थों का पारायण किया। श्वेताम्बर साहित्य के अतिरिक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपने दिगम्बर व अन्य मान्यताओं के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया।

भाषा-शास्त्री

आप एक भाषा शास्त्री हैं तथा हिन्दी भाषा पर आपका अधिकार असाधारण है। प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी व्याकरण का सम्यक् ज्ञान होने के कारण आपकी भाषा शुद्ध एवं प्रांजल है तथा विषय का सटीक विवेचन करती है। आप एक शब्द-शिल्पी हैं तथा विषय के अनुकूल शब्दों का संगठन करने में समर्थ हैं। आपकी शैली विश्लेषणात्मक है। आप निरंतर अपने प्रवचनों में सूत्र ग्रन्थों का सरल, सरस व प्रवाहमय विवेचन करते हैं। भगवान् महावीर के जन-कल्याणकारी एवं सर्वजन हितकारी संदेश को सम्यक् प्रकार से अभिव्यक्त करने में आप सिद्धहस्त हैं।

प्रवचन-शैली –

आपकी प्रवचन शैली सरल, सरस, मधुर तथा तात्विक प्रसंगों का सहज विश्लेषण करने वाली है। आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि सूत्रों पर आपके प्रवचन जिन-जिन लोगों ने सुने हैं वे आप से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। सूत्रों की व्याख्या के साथ आप अनेक उदाहरणों व बोध-प्रसंगों द्वारा विषय को रोचक बना देते हैं। प्रभु महावीर की वाणी का सुन्दर एवं हृदयग्राही विवेचन सुनकर श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते हैं।

सूक्तियों का प्रभावशाली प्रयोग –

आप अपने प्रवचनों में स्वतः स्फूर्त सूक्तियों का प्रयोग करते हैं कि विषय सहज व रसपूर्ण बन जाता है। आपके प्रवचनों के इस प्रकार के उद्धरण आपकी भाषा शैली व विचारों की विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। बच्चों को संस्कारित करने के महत्व पर आपने कहा – "हम अपनी संतान को सुविधा दें, विलासिता नहीं, संस्कारों की संस्कृति दें, विलासिता का विष नहीं।"

कुछ ऐसे दुर्गुण हैं जो मनुष्य को पतन की ओर धकेल देते हैं। उनके बारे में आपने कहा - "दर्प "अहंकार" और कंदर्प "वासना" ये दो तत्व हैं जो जीवन को नीचे गिराते हैं। वासना के बारे में आपका निम्न वक्तव्य विषय को सरलता से अभिव्यक्त करने में समर्थ है – "वासना तो हर शरीर में, हर मन में है। आँखों से हम विषय को ग्रहण करते हैं लेकिन जब तक मन उसके साथ नहीं जुड़ता तब तक वे विषय हमारे कर्मबंध के कारण नहीं बनते ।" आज के युग में मनुष्य के विचारों और कर्मों में एक अंतर आ गया है। आपका कथन है कि-"सिद्धांत और जीवन व्यवहार का समन्वय एक कठिन साधना है।" जैन धर्म में कर्म के सिद्धान्त को बहुत महत्व दिया है। आपने इसे निम्न सूक्ति द्वारा बड़ी ही सहजता से व्यक्त किया है – "अगर कर्म किया नहीं हो तो कर्म लगेगा नहीं और अगर कर्म किया है तो उसका फल अवश्य मिलेगा, इसमें संदेह की कोई गुंजाईश नहीं।"

आप अपने प्रवचनों में स्वाध्याय पर बहुत जोर देते हैं। आपका कथन है – "प्रेरक पुस्तकों का स्वाध्याय जीवन को निरंतर ऊर्ध्वगामी बना देता है।" इसी प्रकार आप हमेशा जीवन को साधनामय बनाने की प्रेरणा देते हैं। आपके शब्दों में – "हम अपनी सुविधा व साधनों के लिए बोझ उठाते हैं, साधना के लिए कोई बोझ नहीं उठाना पड़ता। उसमें तो मन को साधना पड़ता है।" साधक की प्रथम आवश्यकता है कि वह अपने मन पर नियंत्रण करे। आपने कहा – "मन के विचार ठीक न हो तो मालाएं फेर फेर कर उसका ढेर लगा दें तो भी साधना सधने वाली नहीं है।" धन के उपार्जन पर आपके विचार है – "धन का उपार्जन करना चाहिए पर उपार्जन वही उत्तम है जो धर्म की सीमा में रहकर किया जाये।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महान् तत्वज्ञ –

आप एक महान् तत्वज्ञानी पंडित हैं। जैन तत्त्वज्ञान पर आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिसमें आपने तत्त्वज्ञान को सरलता से अभिव्यक्त किया है। आप द्वारा रचित ग्रन्थ "तत्व-चिंतामणि" जैन तत्वज्ञान का अत्यन्त रोचक ग्रन्थ है। तीन भागों में प्रकाशित यह एक ज्ञानवर्द्धक रचना है। आपके सभी ग्रन्थों में जैनागम का उद्धरणों सहित विस्तृत विवेचन मिलता है।

स्पष्ट वक्ता –

आप एक निर्भीक वक्ता हैं। समाज में व्याप्त धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों एवं पाखण्डों पर आप खुल कर प्रहार करते हैं। अखिल भारतीय जैन श्रमणसंघ के पदाधिकारी आपके सुस्पष्ट विचारों से अत्यधिक प्रभावित है।

आपका दृष्टिकोण सर्वथा असाम्प्रदायिक है। श्रमणसंघ के सलाहकार, मंत्री एवं उपप्रवर्तक जैसे तीन-तीन वरिष्ठ पदों पर रहते हुए भी आपके मन में अन्य सम्प्रदायों के प्रति समादर की भावना है। आज के युग की भीषण समस्या है – साम्प्रदायिकता की भावना। साम्प्रदायिकता को दूर करने का एक मात्र मार्ग है कि व्यक्ति बिना दुराग्रह के सत्य को समझने का प्रयास करें। जब सही समझ आ जाती है तो साम्प्रदायिकता का भाव तिरोहित हो जाता है। इस संबंध में आपका निम्न कथन द्रष्टव्य है – "यह गुरु हमारे कुल का है, यह हमारे सम्प्रदाय का है, यह ही हमारा रिवाज है, यही हमारा संघ है, यह जो हमारा ममभाव है, इस ममभाव के रहते अक्सर हम सत्य को झूठला देते हैं। इस अपने ममभाव में, रागभाव में पड़कर ही अपने धर्म को, सम्प्रदाय को, परंपरा को अच्छा मानते हैं, उसके साथ बराबर जुड़े रहते हैं। लेकिन जब सत्य का दर्शन होता है, उसकी झलक पड़ती है तो विचार करते हैं कि भले ही अपना हो, मगर दूषित है तो दूषित ही कहना चाहिए, अधूरा है तो अधूरा ही कहना चाहिए, अपूर्ण को अपूर्ण कहने में कोई बुराई नहीं है।"

आप एक निरंहकारी संत हैं, आप प्रतिभा व पाण्डित्य का प्रदर्शन करने में विश्वास नहीं करते। आप अपने आपको लोकेषणा से दूर रखते हैं। आपकी रचनाओं में विश्व-बंधुत्व व विश्व-जागरण का भाव प्रतिबिम्बित है।

विशद अध्ययन

श्रमण दीक्षा ग्रहण करने के बाद आपने पंडितवर्य प्रवर्तक श्रीशुक्लचंदजी महाराज तथा गुरुदेव श्रीमहेन्द्र-कुमारजी महाराज के सान्निध्य में आगम व आगमेतर साहित्य व अनेक भाषाओं का अध्ययन किया। इतिहास आपका अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। आपने जैन धर्म के इतिहास का विशद् अध्ययन किया एवं उसके हार्द तक पहुँचने का प्रयास भी किया।

साहित्य-निर्माण –

विशद अध्ययनोपरांत आपने लेखन व ग्रन्थों के संपादन का कार्य प्रारंभ किया। आपके द्वारा संपादित **"श्रमणावश्यक सूत्र"** सन् १९५८ में मूलपाठ, अनुवाद व टिप्पणि के साथ प्रकाशित हुआ। **"तत्व चिन्तामणि"** भाग १, २ व ३ की रचना सन् १९६१ से १९६३ तक हुई। **"श्रावक-कर्त्तव्य"** का प्रकाशन सन् १९६४ में हुआ। श्रावकाचार पर यह एक उत्तम कृति है। पंजाब के कविहृदय सुश्रावक श्रीहरजसराय की लोकप्रिय कृति **"देवाधिदेव-रचना"** का अनुवाद, संपादन व मुद्रण सन् १९६४ में हुआ। इसी वर्ष सुश्रावक लाला रणजीतसिंह कृत **"बृहदालोयणा"** नामक कृति का अनुवाद व विस्तृत विवेचन प्रकाशित हुआ। महान् संत श्रीगेंडेरायजी महाराज की जीवनी **"अनोखा तपस्वी"** शीर्षक से सन् १९६५ में ही प्रकाशित हुई। सन् १९६८ में परम श्रद्धेय प्रवर्तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीशुक्लचंद्रजी महाराज की यादगार में उनकी जीवनी **"शुक्ल-स्मृति"** के नाम से प्रकाशित हुई। आपका सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ **"पंजाब श्रमण संघ गौरव"** के नाम से सन् १९७० में प्रकाशित हुआ जिसमें आचार्य श्रीअमरसिंहजी महाराज की गौरव गाथा, पंजाब श्रमणसंघ परंपरा का इतिहास व विशिष्ट संतों का परिचय सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त आपने **वैराग्य इक्कीसी** आदि कतिपय लघु पुस्तकों का भी संपादन किया। सन् १९८८ में बोलारम चातुर्मास में महान् तत्वज्ञ श्रावक श्रीमद् रायचंद्र मेहता रचित **"आत्म-सिद्धि शास्त्र"** पर आपके बहुत ही बोधपूर्ण प्रवचन हुए जिन्हें सुनकर श्रोता अत्यधिक प्रभावित हुए। ये प्रवचन **"शुक्ल-प्रवचन"** के नाम से चार भागों में प्रकाशित हुए। इनका प्रथम भाग के.जी.एफ. में सन् १९९१ में, द्वितीय भाग वानियम्बाडी में सन् १९९२ में एवं तृतीय व चतुर्थ भाग चेन्नई टी.नगर में सन् १९९३ में प्रकाशित हुआ। आपने उत्तराध्ययन सूत्र के अति महत्वपूर्ण २९ वें अध्ययन **"सम्यक्त्व-पराक्रम"** पर बहुत ही वृहद् अत्यन्त मार्मिक प्रवचन दिये। इन्हें टेप करके रख लिया था। अब ये लगभग ६०० पृष्ठों में टाइप हो गए हैं तथा ४-५ छोटी-छोटी पुस्तकों में शीघ्र प्रकाश्यमान है।

साहित्य का निःशुल्क प्रचार –

आप द्वारा रचित सम्पूर्ण साहित्य **भगवान् महावीर स्वाध्याय पीठ'** से स्वाध्यायार्थ निःशुल्क प्राप्त किया जा सकता है।

सृजनशील साहित्यकार –

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि पंडित प्रवर श्री सुमनमुनि जी ने अनेक ग्रन्थों की रचनाएं की हैं, जिनमें से कतिपय ग्रन्थों ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की –

१. शुक्ल प्रवचन भाग १ से ४

२. पंजाब श्रमण संघ गौरव (आचार्य अमरसिंहजी महाराज)

३. अनोखा तपस्वी (श्रीगेंडेरायजी महाराज)

४. वृहदालोयणा (विवेचन)

५. देवाधिदेव रचना (विवेचन)

६. तत्व-चिंतामणि भाग १ से ३

७. श्रावक कर्त्तव्य (विवेचन)

८. शुक्ल-ज्योति

९. शुक्ल-स्मृति

१०. सम्यकत्व-पराक्रम (शीघ्र प्रकाश्य)

इसके अतिरिक्त आपने स्वाध्यायी भाई-बहनों के लाभार्थ सामायिक, प्रतिक्रमण, गीत-संग्रह आदि पुस्तकें हिन्दी व अंग्रेजी में प्रकाशित की है। आपकी प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त परिचय आगे के पृष्ठों में दिया जा रहा है।

❖ ❖ ❖

शुक्ल प्रवचन : भाग १ से ४

प्रज्ञाशील संत श्री सुमनमुनि जी महाराज की सर्वोच्च कृति है - "शुक्ल-प्रवचन"। यह महान् तत्त्वज्ञानी श्रावक श्रीमद् रायचन्द्रभाई मेहता प्रणीत "आत्म-सिद्धि-शास्त्र" का विशद् विवेचन है। "आत्मसिद्धि-शास्त्र" १४ पृष्ठों की एक छोटी सी किताब है जिसमें मात्र १४२ दोहे हैं। यह एक गेय ग्रन्थ है तथा जैन विद्या के जिज्ञासुओं का हृदयहार है। छोटा सा ग्रन्थ होते हुए भी यह ज्ञान का अद्भुत खजाना है तथा श्रावक-श्राविकाओं में ही नहीं,

४६, बर्किट रोड, टी.नगर, चेन्नई ६०० ०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण-श्रमणियों में भी अत्यन्त लोकप्रिय है। इसके एक-एक दोहे में आत्म-तत्त्व का ज्ञान एवं सिद्धि प्राप्त करने का गम्भीर भाव भरा हुआ है। महाकवि बिहारी प्रणीत "सतसई" के बारे में जो बात कही गई, वह इस पर भी खरी उतरती है –

"सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर।।"

यह ग्रन्थ भी आकार में अत्यन्त संक्षिप्त है पर आत्म-सिद्धि का मार्ग बतलाने की विलक्षण क्षमता रखता है। इस छोटे से ग्रन्थ पर श्रीसुमनमुनिजी म. ने एक सहस्र से भी अधिक पृष्ठों में वृहद भाष्य लिखा है जो "शुक्ल-प्रवचन" के नाम से चार भागों में प्रकाशित हुआ है। पूज्य श्रीसुमनमुनिजी की कीर्ति-गाथा को गौरव पर पहुंचाने वाला यह महान् ग्रन्थ है।

मूल लेखक का परिचय -

श्रीमद् रायचन्द्रभाई मेहता पेशे से जवाहर का व्यवसाय करते थे पर जैन तत्त्व-ज्ञान के श्रेष्ठ ज्ञाता एवं प्रचारक थे। वे एक आशु कवि भी थे। भारत के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गाँधी ने उनसे अहिंसा-धर्म का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था तथा वे उनसे बहुत प्रभावित थे। महात्मा गाँधी ने स्वयं अपनी "आत्म-कथा" में लिखा है - "श्रीरायचन्द्रभाई से जब मेरा संपर्क हुआ तब वे मात्र २५ वर्ष के थे लेकिन पहली बार मिलने पर ही मुझे विश्वास हो गया कि वे ज्ञान के धनी और उच्च चरित्रशील व्यक्ति हैं। वे एक श्रेष्ठ कवि व शतावधानी थे और मैंने उनकी अद्भुत स्मरण शक्ति के अनेक चमत्कार देखे, लेकिन उनके काफी संपर्क में आने के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि उनका शास्त्रों का ज्ञान भी बहुत विपुल एवं विलक्षण था और उनमें आत्म-ज्ञान को प्राप्त करने की अदभुत लगन थी। मैं उस समय बैरिस्टर बनकर लौटा था लेकिन जब भी मैं उनसे मिलता वे मुझे धर्म की गहन चर्चा में निमग्न कर देते। मैं अनेक धर्मों के महापुरुषों के संपर्क में आया लेकिन मैं स्पष्ट कह सकता हूं कि मैं किसी से भी उतना प्रभावित नहीं हुआ जितना रायचन्द्रभाई से हुआ हूं। उनके शब्द सीधे मेरे हृदय को छूते थे। वे मेरे मददगार और मार्गदर्शक बने[1]।"

ग्रन्थ रचना का हेतु -

श्रीमद् रायचन्द्रभाई मेहता के ग्रन्थ पर श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने "शुक्ल-प्रवचन" नामक जो वृहद् भाष्य लिखा उसके पीछे एक विशेष कारण था – वर्तमान समाज में व्याप्त एक भ्रान्ति व अज्ञान का निवारण। जिस महापुरुष ने वीतराग धर्म का सुन्दर विवेचन किया, उसी के उपासक उनकी आज्ञाओं के विपरीत आचरण करने लगे। श्रीरायचन्द्र के उपासक उन्हें एक स्वतंत्र धर्मगुरु या धर्म के प्रतिष्ठापक के रूप में मानने लगे। श्रीमद् ने सभी धर्म क्रियाओं का समर्थन किया बशर्ते कि वे शास्त्रानुकूल हो व विवेक से की जाये तथा आत्म-ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो। उन्होंने सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय एवं तप की उपयोगिता को स्वीकार किया था लेकिन उन्हीं के भक्तजनों को आज ये मान्य नहीं हैं। श्रीमद् ने स्वतंत्र रूप से किसी पंथ या गच्छ की स्थापना नहीं की किन्तु आज उनके अनुयायियों ने उनका अलग गच्छ बना दिया है और उसे तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत मत से अलग प्रचारित कर रहे हैं। श्रीमद् के सारे उपदेश वीतराग वाणी पर आधारित थे और उन्होंने सबको जिनसूत्रों को पढ़ने की प्रेरणा दी।

पूज्य श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने श्रीमद् के सभी ग्रन्थों को पढा, सन् १९७४ से १९९१ तक (१७ वर्षों

१. आत्म-कथा या सत्य के साथ मेरे प्रयोग – महात्मा गाँधी, पृष्ठ ७४, ७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक) वे निरन्तर "आत्म-सिद्धि-शास्त्र" पर प्रवचन देते रहे और फिर उन्हें महसूस हुआ कि श्रीमद् के उपदेशों को उनके भक्तजन जिस प्रकार से प्रचारित कर रहे हैं वह उचित नहीं है। श्रीमद् ने स्वयं सर्वप्रथम "प्रतिक्रमण सूत्र" से ही जिनधर्म-विज्ञान को ग्रहण किया था अतः उनके अनुयायियों के भ्रम व अज्ञान का निराकरण अत्यावश्यक समझकर इस ग्रन्थ की रचना की गई। श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने आगम व आगम-बाह्य ग्रंथों के संदर्भ देकर यह स्पष्ट किया कि श्रीमद् के ग्रंथों में जो भी उपदेश प्रतिपादित है वे आगम-सम्मत हैं और आगम ग्रंथ ही उनके ज्ञान का मूल स्रोत हैं। "आत्म-सिद्धि" तो वस्तुतः **"अत्थि जिओ तह निच्चा"** गाथा पर ही आधारित है।[1] इस प्रकार यह ग्रंथ श्री सुमन मुनि जी की वर्षों की साधना, गंभीर अध्ययन व चिंतन का परिणाम है।

ग्रंथ का नामकरण -

पूज्य श्रीसुमनमुनिजी महाराज के दादागुरु थे पंडितरत्न प्रवर्त्तक श्रीशुक्लचन्द्रजी महाराज। जैन संघ के प्रभावक श्रमणों में आपका नाम बड़े आदर से लिया जाता है। नाम और गुणों के अनुसार वे "शुक्ल" थे तथा उनके तपस्वी जीवन से आपने साधना के सूत्र सीखे। उनके प्रति अपनी कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धा भावना व्यक्त करने के लिए आपने इस ग्रंथ का नाम "शुक्ल-प्रवचन" रखा, अन्यथा इस के प्रकाशक इस ग्रंथ का नाम "सुमन-प्रवचन" भी रख सकते थे। यह ग्रंथ लेखक की प्रसिद्धि-पराङ्मुखता व विनम्रता का भी द्योतक है। ये गुण आज के प्रचार-प्रसार के युग में विरल हो रहे हैं।

आवरण पृष्ठ -

पुस्तक के मुखपृष्ठ पर चार रंगों का सुन्दर कवर है, जो पुस्तक की विषय-वस्तु को मूर्त्त रूप प्रदान करता है। मुख-पृष्ठ पर तीन गोले हैं – काला, लाल और सफेद। काला रंग बहिरात्मा का प्रतीक है, जब मनुष्य इन्द्रियों के विषय व कषायों में आसक्त रहता हुआ शरीर को ही सर्वस्व मान लेता है तथा अज्ञानपूर्वक जीवन बिताता है। लाल रंग जीव की शुद्धात्मा का प्रतीक है, जब वह शरीर के प्रति आसक्ति को त्यागकर अन्तर्ज्योति के दर्शन करता है, आत्मज्ञान की अनुभूति करता है और श्वेत रंग जीवन यात्रा में जीव की उत्कृष्ट प्रगति का द्योतक है जब वह सभी आसक्तियों एवं विभावों से परे परमात्मा के दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार करता है। गोलों के ऊपर विकसित कमल का पुष्प है जो दर्शाता है कि व्यक्ति इस संसार में रहकर भी आसक्तियों के दलदल में बिना फंसे जलकमलवत् जीवन व्यतीत कर सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

ग्रन्थ का मूल भाव --

"आत्म-सिद्धि शास्त्र" का मूल दोहा निम्न है-

"आत्मा छे ते नित्य छे, छे कर्त्ता निज कर्म।
छे भोक्ता वली मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुधर्म।।"

अर्थात् आत्मा है वह नित्य है, वह कर्म का कर्त्ता - भोक्ता है, मोक्ष है और उसकी प्राप्ति का मार्ग भी है। इस दोहे का मूल आधार प्रवचनसारोद्धार ग्रंथ की निम्न गाथा ६४१ है:-

"अत्थि जिओ तह निच्चा, कत्ता भोत्ता य पुण्ण पावाणं।
अत्थि धुवं निव्वाणं, तदुवाओ अत्थि छट्ठाणेणं।।"

इसी के आधार पर इस ग्रंथ में बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा के स्वरूप की सुन्दर व्याख्या की गई है। आपने प्रवाहमयी भाषा में इस गंभीर विषय का जो

१. शुक्ल-प्रवचन भाग - २ "मेरी बात" पृष्ठ १ से ३ तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त हृदयग्राही है तथा इस गूढ़ विषय की सभी गुत्थियों को सरलता से सुलझाने वाला है। आत्मा के सही स्वरूप को नहीं समझने के कारण ही जीव इस संसार में भटक रहा है। श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने इस ग्रंथ में आत्मा, परमात्मा, कर्म, कषाय, धर्म इत्यादि सभी विषयों का सांगोपांग विवेचन किया है। यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं कि यह ग्रंथ आत्मज्ञान की एक मार्गदर्शिका (गाइड) बन गया है।

विषय का विश्लेषण -

जैसा कि ऊपर कहा गया, श्रीमद् रचित "आत्म-सिद्धि शास्त्र" में १४२ दोहे हैं। पूज्य श्रीसुमनमुनिजी ने इनका विस्तृत विश्लेषण चार भागों में १०३७ पृष्ठों में किया है अर्थात् एक-एक दोहे की व्याख्या ८-९ पृष्ठों में की है। आपने जैन आगम व व्याख्या ग्रंथों के ही नहीं बल्कि अन्य वैदिक ग्रंथों के भी सारे संदर्भ प्रस्तुत करके विषय को अत्यन्त स्पष्टता से प्रस्तुत किया है। आपने इसमें विश्वविद्यालयीय शोध-पत्रों की तरह सभी संदर्भ दिये हैं अतः शोध कार्य के लिए भी इस ग्रंथ का महत्त्व है। साथ ही सुन्दर बोधकथाएँ, प्रसंग व प्रश्नोत्तर द्वारा विषय को रोचक बना दिया है।

"आत्म-सिद्धि शास्त्र" के विवेचन के द्वारा पूज्य श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने न केवल श्रीमद् के अनुयायियों में व्याप्त भ्रान्ति का सौम्यता से निवारण किया है किन्तु आत्म-प्रधान जैन धर्म के तत्त्वज्ञान का भी इतना सुन्दर विवेचन किया है कि जो एक सामान्य जिज्ञासु के भी सरलता से समझ में आ सकता है। संक्षेप में यह महान् ग्रंथ आत्मा के दिव्य ज्ञान की एक श्रेष्ठ कृति है जिसका पारायण प्रत्येक जिज्ञासु को निरन्तर करना चाहिए, न केवल जैन धर्म किन्तु भारत की आत्म-प्रधान संस्कृति का यह एक सुन्दर गुलदस्ता है।

✤ ✤ ✤

श्रावक कर्त्तव्य

जैनधर्म में श्रावक (गार्हस्थ) के जीवन को बहुत महत्व दिया गया। भगवान् महावीर ने जिस चतुर्विध धर्मतीर्थ की स्थापना की थी उसके चार अंग थे - श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका। प्राचीन काल में जैन श्रावकों का जीवन साधनामय था, उन्हें जैन सिद्धांतों में पूर्ण आस्था थी। उन्होंने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में गरिमामय स्थान प्राप्त किया था। तीर्थंकरों एवं श्रमणों द्वारा प्रचारित नीति और अध्यात्म के सिद्धांतों में उनकी अविचल आस्था थी। इसलिए उनके जीवन में सत्यवादिता, कर्मण्यता, उदारता व दयालुता आदि सद्गुण व्याप्त थे। समाज द्वारा उन्हें सेठ (श्रेष्ठ), महाजन तथा साहुकार के गौरवास्पद संबोधन से पुकारा जाता था तथा वे समाज के हर वर्ग में लोकप्रिय थे। किन्तु आज हम उन जीवनमूल्यों और सिद्धांतों को विस्मरण कर रहे हैं। इस प्रकार के समय में श्री सुमनमुनिजी म. द्वारा रचित **"श्रावक-कर्तव्य"** ग्रंथ का सम-सामयिक महत्व है। आपने इस ग्रंथ में श्रावक जीवन से संबंधित सभी शास्त्रों एवं ग्रंथों को पढ़ कर उनका निचोड़ प्रस्तुत कर दिया है। "श्रावक कर्तव्य" ग्रंथ का प्रथम संस्करण सन् १९६४ में जयपुर से प्रकाशित हुआ। उस समय इस विषय पर बहुत कम सामग्री उपलब्ध थी। इसका द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण चेन्नई से सन् १९९५ में, तृतीय संस्करण पुनः १९९६ सन् में प्रकाशित हुआ। स्वाध्यायियों एवं जिज्ञासुओं के लिए यह अनुपम ग्रंथ है।

ग्रंथ रचना का हेतु -

"श्रावक-कर्तव्य" ग्रंथ की रचना का एक विशिष्ट हेतु है। आज के सामाजिक वातावरण में शिथिलाचार व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्रष्टाचार का नारा लगाकर कई व्यक्ति अपने मन के उन विचारों को पूर्ण करने का अवसर बना लेते हैं जो व्यक्तिगत या दलगत स्वार्थ, वैमनस्य व प्रतिष्ठा की प्राप्ति के रूप है। कई श्रमणों व कई श्रावकों की लेखनी अपनी मर्यादित सीमा को पार कर जाती है। शिथिलाचार किसे कहते हैं? उसकी मूल स्थिति कैसी होती है? इस प्रकार के ज्ञान के अभाव में कभी व्यक्ति एक परंपरा, रीति जो पहले नहीं थी और आज बन गई है और उसमें मूल गुण व साधना को कोई आँच नहीं हैं फिर भी उसे शिथिल आचार की कोटि में रख दिया जाता है। आगम में श्रावक को साधु के लिए जो वृति से च्युत हो रहा है पुनः आरूढ करने की शिक्षा देने का अधिकार तो दिया है पर वह माता-पिता की भाँति है, सौत की तरह नहीं। आज कतिपय श्रावक साधुओं से इस तरह का व्यवहार करते हैं जैसे सौतें अपने विपुत्रों से करती हैं। इसका कारण है कि श्रावक को अपने स्वयं के स्वरूप का व कर्तव्यों का ज्ञान नहीं है अतः श्री सुमनमुनिजी म. ने निश्चय किया कि हिन्दी भाषा में श्रावक जीवन का परिपूर्ण ज्ञान कराने वाली एक पुस्तक प्रकाशित होनी चाहिए। उसी की पूर्ति के हेतु इस ग्रंथ की रचना की गई।

ग्रंथ का मूल आधार -

सन् १९६४ में जिस समय इस ग्रंथ की रचना हुई, श्रावक जीवन से संबंधित सामग्री सहजता से प्राप्त नहीं थी। दैवयोग से रायकोट (लुधियाना) चार्तुमास के समय वहाँ के स्थानक में रखे हुए हस्तलिखित शास्त्र "चउपि-स्तवनादि" के संग्रह में कुछ सामग्री "श्रावक-सज्झाय" के नाम से मिली, जिसमें श्रावक के हेय-ज्ञेय-उपादेय रूप सब सामग्री पद्य रूप में थी। यह सामग्री ही इस ग्रंथ का मूल आधार है।

जैन परंपरा में श्रावक को परिभाषित करते हुए कहा गया कि जो सम्यग्दृष्टि व्यक्ति यतिजनों, श्रमणों से समाचारी "आचार विषयक उपदेश" श्रवण करता है, उसे श्रावक कहते हैं[1]। शास्त्रों में इसके जीवन की महत्ता तथा इसके कर्तव्यों पर व्यापक सामग्री मिलती है।

भारतीय संस्कृति में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया है। हमारे चतुर्विध पुरुषार्थो (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में धर्म का प्रथम स्थान है। श्रावक का जीवन सदैव धर्म से अनुप्रेरित रहना चाहिए। उसकी पारिवारिक, आर्थिक व सामाजिक आदि सभी क्रियाएँ धर्म से नियंत्रित होनी चाहिए। इसलिए यहाँ पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया। वह मात्र काम-वासना की पूर्ति का साधन नहीं है, जीवन को कल्याणमय धर्म की ओर अग्रसर करने में सहायता प्रदान करने वाली है। शास्त्रों में कहा है – "धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को भले ही अन्य कोई परस्पर विरोधी मानते हों किन्तु जिनवाणी के अनुसार यदि वे कुशल अनुष्ठान में अवतीर्ण हो तो परस्पर असपत्न (अविरोधी) है[2]।

श्रावक से अपेक्षा की जाती है कि वह पाँच अणुव्रतों का पालन करें। हिंसा, चोरी, अब्रह्मचर्य (पर-स्त्री संसर्ग) व अपरिमित कामना (परिग्रह) से सापवाद - अपने सामर्थ्य के अनुसार विरत होना अणुव्रत है। इसी प्रकार उससे अपेक्षा की जाती है कि वह निम्न तीन गुण व्रतों का पालन करे –

दिशापरिमाण व्रत – छह दिशाओं में गमन की मर्यादा तथा उपरांत आश्रव का त्याग करना दिशा परिमाण है।

उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत – उपभोग वे पदार्थ हैं जो जीवन में बार-बार काम आते है जैसे – वस्त्र, भवन, शय्या आदि। परिभोग वे पदार्थ हैं – जो एक बार काम

१. सावयपण्णति सूत्र संख्या - २
२. दशवैकालिक निर्युक्त सूत्र संख्या - २६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आते हैं जैसे – भोजनादि पदार्थ। इनकी मर्यादित करना उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत है।

अनर्थदंड विरमण व्रत – अर्थ प्रयोजन के लिए गृहस्थ को हिंसा करनी पड़ती है किन्तु कई व्यक्ति व्यर्थ ही मन, वचन एवं काय योग से हिंसा करते हैं जैसे कि मन में चिंता, दु:संकल्प करते रहना, प्रमाद करना, हिंसाकारी शस्त्रों का बिना प्रयोजन संग्रह करना, अन्य को पाप करने का उपदेश देना आदि। इस प्रकार के पाप कर्मों से विरत रहना अनर्थदंड विरमण व्रत है।

इसी प्रकार एक सुश्रावक को चार शिक्षा व्रतों का भी पालन करना चाहिए। वे निम्न है –

देशावकाशिक व्रत – दिशाओं की ग्रहण की हुई मर्यादा का पालन करना।

पौषधोपवास - आठ प्रहर के लिए आहार एवं सावद्य क्रिया का त्याग कर एकांत में धर्मध्यान में लीन रहना।

अतिथि संविभाग व्रत – साधु व साध्वी को उनकी वृत्यानुसार चौदह प्रकार का दान निष्काम वृत्ति से देना। श्रावक व अनुकम्पा दृष्टि से अन्य को देना भी इसके अंतर्गत आता है।

श्रावक सम्यग्दृष्टि होता है इसलिए वह संवेग, निर्वेद आदि का अभ्यास करता है। वह विषयाभिलाषी नहीं होता। जल में कमल की भांति अनासक्त रहता है। कहा भी है:-

"सम्यक् दृष्टि जीवड़ा करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे ज्यूं धाय खिलावे बाल।।"

मार्गानुसारी के पैंतीस गुण श्रावक के कर्तव्यों का ज्ञान प्रदान करते हैं। मार्गानुसारी का अर्थ है जो तीर्थंकरों द्वारा उद्भाषित मार्ग का अनुकरण करता ह, उन पर आगे बढ़ता है। वे सभी गुण मनुष्य को उत्कर्ष की ओर ले जाने वाले है। उनमें से कुछ गुण निम्न हैः-

१. **न्याय सम्पन्न विभव** – श्रावक को न्यायपूर्वक अपनी आजीविका करनी चाहिए।

२. **मातृ-पितृ सेवा** – माता-पिता एवं वृद्ध जनों की सेवा करनी चाहिए।

३. **आयानुसार व्यय** – गृहस्थ को अपनी आय के अनुसार ही व्यय करना चाहिए।

४. **यथा समय भोजन** – श्रावक अपनी प्रकृति के अनुकूल भोजन उचित समय पर करें।

५. **अबाधित त्रिवर्ग साधना** – धर्म, अर्थ और काम - इन तीनों का मर्यादित उपभोग त्रिवर्ग साधना कहलाती है। गृहस्थ धर्म-क्रिया में प्रमाद नहीं करे, अर्थार्जन भी उसके लिए आवश्यक है अतः अर्थ और काम का सेवन मर्यादापूर्वक, विवेकपूर्वक करें।

६. **अतिथि सत्कार** – घर में आये साधु, दीन-दु:खी तथा सहायता इच्छुक का यथाशक्ति आदर करना चाहिए।

७. **गुणपक्षपात** – श्रावक गुणग्राही हो। वह सज्जनता, उदारता, परोपकार, करुणा, सरलता, मैत्री आदि गुणों को ग्रहण करें।

८. **बलाबल विचार** – श्रावक जो भी कार्य करे अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार करे, नहीं तो कार्य में सफलता नहीं मिलेगी एवं समय का अपव्यय होगा, जीवन में निराशा आयेगी।

९. **पोष्य-पोषक कर्म** – श्रावक जिनका भरण-पोषण, पालन, रक्षा का भार उसके ऊपर है। यथा माता - पिता, स्त्री, संतति, सगे-संबंधी, आश्रित कर्मचारी आदि की सुरक्षा व सुविधा का पूरा सदैव ध्यान रखे तथा उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

१०. **दीर्घ दृष्टि** – गृहस्थ लम्बी सूझ रखें। इससे उसका जीवन उलझन से बच जाता है।

११. **विशेषज्ञ** – गृहस्थ कार्य-अकार्य, करणीय-अकरणीय, स्व-पर आदि की निपुणता रखें।

इस प्रकार के कुल ३५ उत्तम गुणों का वर्णन **धर्म बिन्दु** ग्रंथ मे बतलाया गया है। आज के युग में इन गुणों का पालन करना कितना आवश्यक है यह हम सब समझ सकते हैं।

चार विभाग -

प्रस्तुत पुस्तक में चार विभाग है – श्रावक-स्वरूप, श्रावक द्वारा परिहार्य, श्रावक द्वारा स्वीकार्य व श्रावक द्वारा चिंतनीय, इन चारों विभागों में ३५ परिच्छेद हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में श्रावक शब्द के बारे में सूत्रों के बड़े सुन्दर उद्धरण दिए गये हैं जिससे उसके कर्तव्यों का समुचित ज्ञान होता है। यथा –

१. "जो संयत मनुष्य गृहस्थ में रहता हुआ भी समस्त प्राणियों पर समभाव रखता है, वह सुव्रती देवलोक को प्राप्त करता है।

२. जो व्यक्ति जीव-अजीव के ज्ञाता होते हैं, पुण्य व पाप को समझते हैं, वे तत्वज्ञानी श्रावक देव, असुर, नाग आदि देवगणों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखते तथा इनके द्वारा दबाव डाले जाने पर भी निर्ग्रन्थ प्रवचन का उल्लंघन नहीं करते।

३. किसी के पूछने पर वे श्रावक कहते हैं, "आयुष्मान्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सार्थक है, सत्य है, परमार्थ है, शेष सब अनर्थक है।" (श्रावक-कर्तव्य पृष्ठ १७-१८)

इस ग्रंथ का परिशिष्ट बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसमें **प्राकृत विभाग** में सामायिक, पच्चखाण, दया, पौषध व संवर के सूत्र दिये हैं। हिन्दी के **पद्य विभाग** में श्रावक सज्झाय, स्वरूप चिन्तन, अमूल्य तत्व-विचार, मेरी भावना व बारह भावना दी है तथा गद्य विभाग में छब्बीस बोल, संथारा अतिचार आदि, आठ दर्शनाचार आदि दिया है।

इस प्रकार श्रावक जीवन के बारे में सभी प्रकार की उत्तम सामग्री एक ही ग्रन्थ में मिल जाती है।

विद्वान् लेखक ने इस ग्रन्थ में मार्गानुसारी के ३५ गुण, श्रावक के २१ गुण, श्रावक की विशिष्ट साधना के २१ नियम, अमूल्य तत्व विचार, बारह भावना, चौदह नियम, छब्बीस बोल, श्रावक की दिनचर्या, भाषा - विवेक, १५ कर्मादान, १८ पाप इत्यादि का विस्तृत विवेचन किया है। इसके साथ ही श्रावक जीवन से संबंधित मंगल-सूत्र व सामायिक सूत्र के मूल पाठ तथा उनकी व्याख्याएं भी दी है।

जैन जीवन-दर्शन में व्यसन-मुक्त जीवनाराधना पर बहुत जोर दिया गया है। श्रावक के लिए यह आवश्यक है कि वह सात व्यसनों से दूर रहे। वे सप्त दुर्व्यसन हैं - जुआ, मांस-भक्षण, वेश्यागमन, मद्यपान, शिकार, चोरी और पर-स्त्री गमन। आज अपने समाज में भी ये दुर्व्यसन फैल रहे हैं। इस पुस्तक में इन दुर्व्यसनों से होने वाली हानियों पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

गृहस्थी में रहते हुए भी जैन गृहस्थ का जीवन साधना, ज्ञान तथा आचार से युक्त होना चाहिये। वह अपने जीवन के लक्ष्य को नहीं भूले। नियमों व व्रतों का पालन करते हुए, कषाय व प्रमाद को शनैः शनैः कम करता हुआ वह जीवन को उत्कर्ष की ओर अग्रसर करे, यही श्रावक जीवन का उद्देश्य है। श्रावक सरल स्वभावी हो, गुणज्ञ हो, सिद्धांत-निपुण हो और शील सम्पन्न हो।

"श्रावक-कर्तव्य" ग्रंथ को हम संक्षेप में "श्रावक जीवन की मार्गदर्शिका" कह सकते हैं, जिसमें श्रावक जीवन से संबंधित सम्पूर्ण सामग्री विस्तार से लगभग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०० पृष्ठों में प्रस्तुत की गई है। लेखक की भाषा सरल, सहज, बोधगम्य तथा प्रवाहमय है। यह ग्रन्थ प्रत्येक जिज्ञासु, विद्यार्थी तथा स्वाध्यायी के लिए पठनीय तथा मननीय है।

पंडितरत्न श्री सुमनमुनिजी म. अनेक भाषाओं के असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् हैं तथा इन भाषाओं के व्याकरण का उन्हें पूर्ण ज्ञान है। वे एक महान् शब्द-शिल्पी हैं तथा गंभीरतम विषय का सरलता से विश्लेषण करने की अद्‌भुत सामर्थ्य रखते हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ में जैन तत्वज्ञान के सभी सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन किया है जो एक सामान्य जिज्ञासु को भी सरलता से समझ में आ सकता है।

संक्षेप में यह महान् ग्रन्थ आत्मा के दिव्य ज्ञान की एक श्रेष्ठ कृति है जिसका पारायण प्रत्येक जिज्ञासु को प्रतिदिन करना चाहिए। मैं पूज्य श्री सुमनमुनिजी म. को इस उत्तम श्रमपूर्ण ग्रन्थ की रचना करने के लिए बधाई देता हूँ तथा इस मनीषी श्रमण साहित्यकार की अभ्यर्थना करता हूँ।

❖ ❖ ❖

वृहदालोयणा (ज्ञान गुटका)

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १९६५ में अलवर में प्रकाशित हुआ और द्वितीय संशोधित संस्करण बैंगलोर में सन् १९९२ एवं तृतीय संस्करण सन् १९९६ में मैसूर में प्रकाशित हुआ।

“वृहदालोयणा” ग्रंथ स्थानकवासी जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय है। पंडितरत्न श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने इसी कृति का सुन्दर अनुवाद व विस्तृत विवेचन १६३ पृष्ठों में प्रस्तुत किया है।

मूल रचयिता –

इसकी मूल कृति के रचयिता लाला रणजीतसिंहजी थे जो दिल्ली में रहते थे। वे एक ज्ञानवान् श्रावक थे तथा जवाहरात का व्यापार करते थे। इनको आगम का विस्तृत ज्ञान था। यह कृति पूर्णतः इनकी मौलिक रचना नहीं है क्योंकि इसमें कबीर, तुलसी, रज्जब व नानक आदि के दोहों का भी संग्रह है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि संग्रह का चयन बड़ी सूक्ष्मता व गंभीरता से किया गया है। भौतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन व्यवहार को तोल कर रखा गया है। इसमें जीवन को छूने वाले प्रत्येक स्वीकार्य, परिहार्य, चिन्तनीय व व्यवहार की बातों का सम्यक् विवेचन उपलब्ध है। गंभीर तत्त्व ज्ञान की बातों को इस पुस्तक में सरलता के साथ प्रतिपादित किया गया है। इसकी भाषा सहज व इसका चयन शिक्षाप्रद है। इसी कारण से यह स्वाध्यायियों में अत्यधिक लोकप्रिय है। मूल ग्रंथ की रचना वि.सं. १९३९ में हुई।

आलोचना का महत्त्व –

साधक के लिए प्रतिक्षण जागृत रहना आवश्यक है। उसे अपनी प्रत्येक क्रिया प्रमाद रहित होकर करनी चाहिए तथा निरंतर अपनी भूलों का प्रायश्चित करते रहना चाहिए। आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने का यही मार्ग है। आलोयणा या आलोचना की परंपरा जैन समाज में नियमित रूप से प्रचलित है। हजारों भाई-बहन इस कृति का पूर्ण या आंशिक पाठ करके अपने जीवन से दुर्गुणों को दूर कर सद्‌गुणों का संचार करते हैं। विशेषतः इस रचना का पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं पर्यूषण पर्व के सांवत्सरिक अवसर पर पाठ समस्त संघजनों के समक्ष अवश्य किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना का परिचय –

इस रचना के दो रूप प्राप्त होते हैं – एक पद्य-गद्य रूप एवं दूसरा केवल पद्य रूप। पहले को **"बृहदालोयणा"** और दूसरे को **"ज्ञान-गुटका"** कहते हैं। पद्य विभाग में मंगलाचरण, आत्म-कल्याण भावना, कर्म का स्वरूप, संसार स्वभाव, आत्म-उद्बोधन, पुण्य-पाप, शील आदि विभिन्न विषयों के माध्यम से आत्म-आलोचना की गई है। गद्य विभाग में अठारह प्रकार के पाप की विस्तार पूर्वक तथा शेष अतिचार आदि दोषों की संक्षेप में आलोचना है। पद्य विभाग में सुन्दर दोहे, सवैये, गाथा तथा हरिगीतिका के छंद हैं जो सुमधुर एवं लालित्यपूर्ण हैं।

पूज्य श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने इस श्रेष्ठ कृति का बहुत ही सुन्दर अनुवाद तथा विवेचन किया है। प्रत्येक पाठ का विश्लेषण, आगम के साथ उसकी संगति, संदर्भ आदि दिए हैं। भाषा सहज, सरल एवं प्रभावशाली है। इस ग्रंथ का परिशिष्ट बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें लेखक ने संबंधित तात्त्विक विषयों का यथा – तीस महामोहनीय स्थान, आठ कर्मों के बंध के कारण, पौषध के १८ दोष, २५ मिथ्यात्व, पाप की ८२ प्रकृतियाँ, ध्यान के १९ दोष, सामायिक के ३२ दोष, वंदना के ३२ दोष, शील की ९ बाड़, आठ प्रवचनमाता, पच्चीस क्रिया व छह लेश्या का विशद वृतांत दिया है अतः यह ग्रंथ साधकों, स्वाध्यायियों के लिए अत्यधिक प्रेरक एवं लाभप्रद बन गया है।

❖ ❖ ❖

देवाधिदेव रचना

इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण सन् १९९४ में अम्बाला शहर में प्रकाशित हुआ था। भक्तों की निरंतर मांग पर इसका द्वितीय संस्करण चेन्नई में सन् १९९७ में प्रकाशित हुआ।

"देवाधिदेव रचना" मूल ग्रंथ का निर्माण आज से १९० वर्ष पूर्व पंजाब के श्रेष्ठ हिन्दी लोककवि श्रीहरजसराय ने किया था। पंजाब के स्थानीय जैन समाज में इस पुस्तक को बहुत लोकप्रियता मिली थी तथा अनेक व्यक्ति प्रातःकाल इसका पाठ करते थे। जो प्रसिद्धि गीता, धम्मपद और सुखमणि साहब को प्राप्त थी वैसी ही इसे भी प्राप्त थी। तीर्थंकरों के चरित्र एवं गुणों को दर्शाने वाली यह एक अनुपम कृति थी। इस प्राचीन कृति का सुन्दर अनुवाद व व्याख्या करके श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने पुरातन लोकप्रिय साहित्य को प्रकाश में लाने का अभिनंदनीय एवं स्तुत्य कार्य किया है।

मूल प्रति की खोज –

श्रीसुमनमुनिजी महाराज ने इस ग्रंथ की मूल प्रतियों को खोजना प्रारंभ किया। उन्हें तीन हस्तलिखित व तीन मुद्रित प्रतियाँ प्राप्त हुईं। इन प्रतियों के आधार पर लेखक ने इस ग्रंथ का सरल भाषा में भावानुवाद दिया है। साथ ही प्रत्येक पद की विस्तृत व्याख्या भी दी है एवं जैन धर्म के गंभीर सिद्धांतों को सरल भाषा में अभिव्यक्त किया है। इसके साथ ही उत्थानिका, टिप्पणी, संगति आदि द्वारा विषय को इतना स्पष्ट किया है कि वह सरलता से समझ में आ जाये।

मूल ग्रंथ के रचयिता –

लाला हरजसराय जैन सुश्रावक थे तथा कुशपुर (लाहौर के निकट) के रहने वाले थे। इनको जैन तत्त्वज्ञान का अद्भुत ज्ञान था तथा इन्होंने तीन सुप्रसिद्ध काव्य ग्रंथों की रचना की, जिनके नाम **साधु-गुणमाला,**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव-रचना, व देवाधिदेव रचना है। गेय होने के कारण ये तीनों ग्रंथ बहुत ही लोकप्रिय हुए। ये एक श्रेष्ठ कवि, संगीत के ज्ञाता, कुशल लिपिक व विद्वान् पुरुष थे। कहते हैं कि ये आचार्य श्री नागरमलजी (पंजाब) के श्रावक थे।

सर्वज्ञ, वीतराग व अर्हत् को देवाधिदेव कहा जाता है। **"देवाधिदेव रचना"** एक छोटा सा ग्रंथ है जिसमें मात्र ८५ पद हैं। इसको इतनी प्रसिद्धि मिलने का कारण है कि यह लोक भाषा में लिखी हुई सरल रचना है। यह एक सुमधुर रचना है तथा इसकी भाषा प्रवहमान है। इसमें अनेक दोहे, सवैये व अन्य छंदों तथा अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का उपयोग करके कवि ने इसे बहुत सरस बना दिया है। इसकी वर्णन शैली व भाव भी रोचक है। उनमें रूक्षता नहीं है, सर्वत्र कोमल कांत पदावली का प्रयोग हुआ है। भाषा संस्कृत-प्राकृतनिष्ठ हिन्दी है पर उस पर राजस्थानी व पंजाबी का भी प्रभाव है। उनके काव्य में स्वाभाविकता, कोमलता व मधुरता का नमूना देखें –

"धर्म कथा अति सुन्दर, श्रीजिनराय कही सब ही सुख पाया,
के नर-नार लिए -ऋष चारित, के अणुव्रत लई मग आया।
के समदृष्टि तथा तिरजंच, सुश्रावक के समदिष्ट सुहाया,
देव भये भगता अतिमोदत, सब ही भव्य नमी गुण गाया।।४८।।

इस ग्रंथ को मूलतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है – मंगलाचरण, देवाधिदेव-स्तुति व समवसरण। इसमें तीर्थंकरों के चरित्र की विशेषताओं, उनके चरित्र के गुण, समवसरण रचना, उनके उपदेश, उनकी वाणी का प्रभाव इत्यादि सभी विषयों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इसकी सामग्री कवि ने अंग-उपांग आगमों, आगम-बाह्य ग्रंथों तथा स्थानांग, समवायांग, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, औपपातिक, राजप्रश्नीय, प्रवचनसारोद्धार आदि ग्रंथों से ली है।

पूज्य श्री सुमनमुनि जी ने इस ग्रंथ का विस्तृत व परिपूर्ण विवेचन किया है। संबंधित ग्रंथों के उद्धरण व संदर्भ आदि देने से यह पुस्तक शोधार्थियों के लिए भी लाभप्रद बन गई है। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट बहुत लाभदायक है। इसमें आपने पारिभाषिक शब्द-कोष दिया है जिसमें कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया है। इसके साथ ही शास्त्रों में वर्णित तीर्थंकरों के चौतीस अतिशय तथा उनकी वाणी की पैंतीस विशेषताओं का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त मूलग्रंथ में उद्धृत तेरह महापुरुषों के जीवन के रोचक वृतांत भी प्रस्तुत किये हैं, जो प्रेरणादायक हैं।

आकर्षक मुखपृष्ठ –

ग्रंथ का मुखपृष्ठ भी बहुत सुन्दर है जो ग्रंथ रचना के मूल नाम को प्रदर्शित करता है। चार रंगों के इस आकर्षक मुखपृष्ठ में एक प्रकाश-स्तम्भ को चित्रित किया गया है, जिसमें से निकलकर तेज प्रकाश चारों दिशाओं में फैल रहा है। प्रकाश-स्तम्भ के नीचे समुद्र है, जिसमें से लहरें ऊपर उठ रही हैं, समुद्र में अनेक प्रकार के जीव-जन्तु, स्त्री-पुरुष, नावें, जहाजें आदि हैं, उनमें से कई इस प्रकाश-स्तम्भ की किरणों से आकर्षित होकर समुद्र के किनारे पहुँच जाते हैं। तीर्थंकरों का जीवन उस महा तेजस्वी प्रकाश-स्तम्भ की तरह होता है जिसमें से निरंतर दिव्य प्रकाश की लहरें निकलती रहती हैं तथा चारों दिशाओं में फैलती रहती है। संसार-समुद्र के भीषण आघातों, प्रत्याघातों से टक्कर खाते प्राणी जब तीर्थंकर भगवान् का उपदेश सुनते हैं तो उनका जीवन दिव्य प्रकाश को प्राप्त करता है और वे उन उपदेशों को आचरण में लाकर अपने जीवन को ऊँचा उठाते हैं तथा शुद्ध और मुक्त हो जाते हैं।

"देवाधिदेव-रचना" प्रतिदिन पाठ करने योग्य ग्रंथ है। तीर्थंकरों के प्रति हृदय में श्रद्धा जागृत करने वाली यह एक श्रेष्ठ एवं अनुपम कृति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनोखे तपस्वी

ऐतिहासिक रचना

यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसमें पंजाब प्रांत के तेजस्वी श्रमण-रत्न पूज्यवर श्री गैंडेराय जी महाराज का प्रेरक जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया गया है। ये आचार्य श्री सोहनलालजी महाराज के ज्येष्ठ शिष्य थे। आश्चर्य है कि महान् लेखक पूज्य श्री सुमनमुनि जी महाराज को उनके दर्शन करने का अवसर नहीं मिला परन्तु आपने उनके प्रेरणादायी जीवन के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था और आपके दादा गुरु श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज की इच्छा थी कि उनका जीवन चरित्र प्रकाश में आये तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। उनकी अभिलाषा की पूर्ति का प्रयत्न है – यह ग्रन्थ। इस ग्रन्थ की सामग्री संकलन हेतु अनेक महापुरुषों से श्री सुमनमुनिजी महाराज सा. ने प्रत्यक्षतः वार्तालाप किया। वार्तालाप के आधार पर जो संस्मरण उभरे एवं जो विम्ब - प्रतिविम्ब उनके जीवन के उजागर हुए, उन्हें ही मूल स्रोत बनाया गया है। मुख्य सामग्री इन महापुरुषों के मुख से उजागर हुई है :- पंडित प्रवर शुक्लचन्द्रजी महाराज, श्री कपूरचन्द्रजी म., श्री फूलचन्द्रजी म., श्री ब्रह्मऋषिजी म., अनेक महान् साध्वियां व श्रावक-श्राविकाएं जिन्हें उनके दर्शन, प्रवचन श्रवण करने, उनके साथ तत्त्व चर्चा करने एवं उनके जीवन को निकटता से देखने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ था।

महान् तपस्वी

श्री गैंडेरायजी महाराज में अनेक गुण थे लेकिन एक तपस्वी के रूप में वे अति विख्यात थे, अतः इस ग्रन्थ का नामकरण **'अनोखे तपस्वी'** किया गया है। ऐसे संत कम पाए जाते हैं, जिनमें ज्ञान और तपश्चरण दोनों गुण विद्यमान हो। श्री गैंडेरायजी में ये दोनों गुण प्रचुरता से मौजूद थे। इस ग्रन्थ में उनकी जीवनी को तेरह छोटे-छोटे परिच्छेदों में विभाजित किया गया है:-

शब्द-चित्र, जन्म, विराग, दीक्षा, गुरु-सेवा, तपस्वी, उपकारी संत, गुरुदेव, उदारचेता संत, आदर्श प्रचारक, महाप्रयाण, चातुर्मास-तालिका आदि। आपके सांसारिक भ्राता, जो आपकी प्रेरणा से आपकी दीक्षा के तेरह वर्षों बाद आपके शिष्य बने, श्री जमीतरायजी महाराज का संक्षिप्त परिचय भी इसी ग्रन्थ में दिया गया है। अंत में पूज्य प्रवर के सम्पर्क में आए हुए लोगों के १७ संस्मरण भी दिये गए हैं जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है।

आदर्श जीवन का चित्रांकन

इस पुस्तक के प्रारम्भ में सुयोग्य लेखक ने तपस्वी मुनिजी का बड़ा ही सुंदर शब्द-चित्र खींचा है। उनमें से कुछ पंक्तियां देखें:-

"लम्बा कद (दीर्घ अवगाहना), इकहरा शरीर, गौरवर्ण, अजानुबाहू (घुटनों तक लम्बी भुजाएं), विशाल भाल, प्रकृताञ्जन नेत्र, तूलिका-सी उंगलियां, सीप-सी अंजली, विष्कम्भक वक्षस्थल, गम्भीर नाभि, मत्स्योदर, सीप-सी अंजली, खड़ाओं की भांति पाद-जिसमें बीच का भाग भूमि-स्पर्श नहीं करता था, शुक-नासिका, उदात्त एवं गम्भीर स्वर। बीस वर्ष की पूर्ण यौवनावस्था में संसार के सारे भौतिक सुखों का परित्याग करने वाले एक आदर्श त्यागी, उग्र संयमी और मार्गदर्शक महापुरुष! स्वभाव से स्पष्ट वक्ता, खरापन, सरल ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग, एकांतप्रिय, निर्भीक, तपः संयम में लीन रहने की वृत्ति, स्व-कष्टसहिष्णु, स्व-पर दोष प्रक्षेपण असहिष्णु, गुरुभक्त, क्रियावादी, संयमी पुरुष, परम सेवी।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतने कम शब्दों में श्री सुमनमुनि जी ने तपस्वी महाश्रमण के मानो सम्पूर्ण जीवन का जीवंत चित्रांकन कर दिया है।

विरक्ति का भाव

एक छोटी सी घटना ने आपके हृदय में संसार से विरक्ति उत्पन्न कर दी। बचपन में पतंग उड़ाते समय एक चील उस पतंग की क्षुरधारा-सी डोर की लपेट में आ गई, उसका एक डैना-पंख उसी समय कट गया और वह लहुलुहान होकर गिर पड़ी, उसका जीवन क्षत-विक्षत हो गया। उसकी मृत्यु ने इनके करुणार्द्र हृदय में विरक्ति का भाव उत्पन्न किया और उस भावना ने चरम रूप लिया कलानौर में जब वे अकस्मात् ही पूज्यवर श्री सोहनलालजी महाराज का प्रवचन सुनने पहुंच गये। गुरुदेव की मेघ गर्जन-सी गम्भीर, कोयल-सी मधुर किन्तु योगी-सी ओजपूर्ण वाणी सुन कर वे मंत्र-मुग्ध हो गए और उनके एक प्रवचन ने ही उनके जीवन में क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया। उस समय उनकी उम्र मात्र २० वर्ष थी। उन्होंने वहीं पर दीक्षा का दृढ़ संकल्प ले लिया कि मैं अब घर वापिस नहीं जाऊंगा। जाति के वे थे कुम्हार/कुम्भकार/ प्रजापति पर जैन धर्म में तो जाति का कोई बंधन नहीं है। लोकप्रिय कवि श्री हरजसराय ने जैन धर्म की इस विशेषता को बताते हुए लिखा था –

> **"जाति को काम नहीं जिन मारग,**
> **संयम को प्रभु आदर दीनो।"**

वे पुनः अपने घर पर नहीं गये। गुरुदेव श्री सोहनलालजी महाराज ने ही उन्हें श्रमण-दीक्षा प्रदान की।

गुरु-सेवा की भावना

श्री तपस्वीजी अनेक गुणों से सम्पन्न थे। श्रमण जीवन अंगीकार करने के बाद उन्होंने अपना सारा समय गुरु-सेवा, ज्ञानाराधना, त्याग व तपस्या में विताया। उन्हें वाग्सिद्धि प्राप्त हो गई थी और गुरु के प्रति तो उनमें इतना अधिक भक्ति-भाव था कि सन् १९१९ में जब उन्हें मालूम हुआ कि श्रद्धेय आचार्यश्री महाराज का स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया है तो वे तुरंत गुरुदेव की सेवा हेतु रवाना हो गए। उस समय सारे देश में अंग्रेजों द्वारा लागू रोलट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह चल रहा था तथा सरकार ने सर्वत्र मार्शल लॉ घोषित कर दिया था। उनके सभी साथी श्रमणों व भक्तों ने बहुत मना किया परंतु वे निर्भीक होकर चल पड़े तथा सभी आपदाओं को सहन करते हुए गुरुदेव के समीप पहुंच गये। गुरुदेव भी उन्हें उस परिस्थिति में पहुंचने पर आश्चर्यचकित रह गये।

तपस्वी जीवन

जैसा कि ऊपर इंगित किया जा चुका है कि श्री गैंडेरायजी महान् तपस्वी संत थे। लेखक ने उनके तप का भी बड़ा ही मार्मिक वर्णन इस ग्रन्थ में किया है। उसे संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है –

१. उन्होंने वृतिसंक्षेप, अवमौदर्य, उपधि आदि तप किया। उन्होंने १२ वर्षों तक शरीर पर मात्र एक चादर, एक चुल्लपट (तेड़ का वस्त्र) तथा अपने साथ में मात्र तीन पात्र ही रखे। वे एक ही पात्र में गोचरी में प्राप्त आहार सम्मिलित करके बिना किसी रसास्वादन के ग्रहण करते थे।

२. उनका भोजन सादा, नीरस व परिमित था। वे दूध, दही, घी व मिष्ठान्न पदार्थ नहीं लेते थे किन्तु मात्र पारणे के दिन दूध ले लेते थे।

३. पर्व तिथि में पाद विहार होने पर भी उपवास आदि तथा अनेक बार दो, तीन, चार, पाँच व आठ उपवास करते थे। आपने सर्वाधिक २१ उपवास व १०० आयम्बिल व्रत किये हैं। प्रति वर्ष संवत्सरी के बाद पाँच उपवास (पंचोला) किया करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. आभ्यन्तर तप जैसे ध्यान, स्वाध्याय तथा प्रवचन का आचरण प्रति दिन करते थे।

५. वे कठोर संयमी थे तथा धर्म-क्रिया में बहुत दृढ़ता रखते थे। वे अज्ञात कुल से गोचरी लेने का प्रयत्न करते थे। वे पूर्णतः साधु-मर्यादा के अनुकूल आहार उपलब्ध होने पर ही गोचरी ग्रहण करते थे।

उनके जीवन में बहुत तेजस्विता एवं ओजस्विता थी। उन्होंने हजारों लोगों को व्यसन-मुक्त किया तथा शाकाहारी बनाया। जैन तत्त्वज्ञान में वे निपुण थे तथा उनका प्रवचन इतना हृदयग्राही भाषा में होता था कि श्रोताओं कि सभी शंकाएं निर्मूल हो जाती थी।

ऐसे महान् श्रमण की मार्मिक घटनाओं को बड़ी ही सरल भाषा में इस ग्रन्थ में अभिव्यक्त किया गया है। १२५ पृष्ठों की यह पुस्तक वि संवत २०२६ में प्रकाशित हुई। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह पुस्तक अतीव रोचक एवं हृदयग्राही है।

✤ ✤ ✤

पंजाब श्रमणसंघ गौरव आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज

प्रभावी शब्द चित्रांकन

यह ग्रन्थ भी एक ऐतिहासिक रचना है। इसका प्रथम संस्करण सन् १९७० में एवं द्वितीय संस्करण पाठकों की मांग पर पुनः सन् १९९४ में प्रकाशित हुआ। इसमें पंजाब प्रान्त के गौरवशाली जैनाचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज का जीवन चरित्र है तथा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत है। इसमें २१ परिच्छेदों के माध्यम से उनके बाल्यकाल, वैराग्य, श्रमण-दीक्षा, आचार्यपद, त्याग और तपस्या, सेवाकार्य आदि का लगभग १८० पृष्ठों में वर्णन दिया गया है। ग्रन्थ की भाषा सरल, प्रवाहयुक्त व सरस है। प्रारम्भ में आचार्य प्रवर का शब्द-चित्र के द्वारा मार्मिक वर्णन किया गया है। कुछ अंश दृष्टव्य है –

"अमृतसर जैसी ऐतिहासिक नगरी के जौहरी कुल में उत्पन्न हुआ यह बालक हीरा, मणि, रत्न आदि का परीक्षक ही नहीं अपितु ज्ञान, दर्शन, चारित्र की रत्न-त्रयी का भी आराधक बन करके आत्म-स्वरूप का ज्ञाता, तप-संयम-ध्याता, श्रमण-शिरोमणि संघनायक आचार्य बनकर पंजाब प्रान्त के संत एवं श्रावक समुदाय को धर्म की दृढ़ता प्रदान करेगा तथा समाज को गौरवान्वित करेगा – यह किसे पता था?"

"मंझली/मध्यम अवगाहना, सुडौल भरकम शरीर, गौरवर्ण, विशालभाल, गम्भीर एवं मृदुस्वर, समचतुरस्र संस्थान – पर्यंकासन अर्थात्, चौकड़ी आकृति वाले, भव्य व्यक्तित्व से पूर्ण। स्वभाव से नम्र, शान्त, सरल, चतुर, समाधिवान्, ध्यानयोगी, तप संयम के उत्कट आराधक, स्व-दुख सहिष्णु, संतसेवी पुरुष, सिद्धांत में कर्मठ।"

ग्रन्थ लेखन की कठिनाइयां

इस जीवनचरित को लिखने में बड़ा भारी प्रयास करना पड़ा क्योंकि इसकी रचना के समय आचार्यश्री को दिवंगत हुए ९० वर्ष व्यतीत हो गए थे तथा वे संत पुरुष भी दिवंगत हो गए थे जो उनके निकट सम्पर्क में आए थे। आचार्य श्री आत्मारामजी ने इनका एक जीवन चरित्र लिखा था, उसी को इस ग्रन्थ का आधार बनाया गया है पर अधिकांश सामग्री संतों, साध्वियों, श्रावकों, श्राविकाओं से प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा भी एकत्रित की गई है। इस सम्बंध में अति महत्त्वपूर्ण सामग्री साध्वी श्री स्वर्णाजी से प्राप्त की थी, उन्होंने महार्य्या श्री मेलोजी, श्री खूबांजी व श्री ज्ञानाजी से प्राप्त की थी। श्री स्वर्णाजी ने उन सब परंपरागत पत्रों को सुरक्षित रखा जिसमें आचार्यश्रीजी के लिखित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्मरण तथा साध्वी परंपरा का इतिवृत्त था।

संसार से विरक्ति

इस ग्रन्थ के चरित्र नायक जौहरी अमरसिंह का १६ वर्ष की अल्पायु में ही विवाह हो गया था। उनके तीन पुत्र व दो पुत्रियां थी। दो पुत्रों की मृत्यु अल्पायु में ही हो गई थी तथा तीसरा पुत्र भी आठ वर्ष की उम्र में चल बसा था। इस घटना ने उनके हृदय में संसार से विरक्ति उत्पन्न कर दी और उन्होंने वि.सं. १८६८ में पंडितवर्य श्री रामलालजी महाराज से दीक्षा ग्रहण कर ली। आपने आगमों का गहन अध्ययन किया और उसमें निष्णात बन गये। आप में ज्ञान प्राप्ति की अदम्य लालसा थी। वि. संवत् १६०३ में आपने लाला सौदागरमलजी, जो जैनागमों के वेत्ता सुश्रावक थे, से तीस आगमों का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। आप कुशाग्र बुद्धि के थे अतः बहुत कम समय में आगम-शास्त्र के गम्भीर ज्ञाता बन गए।

समर्थ तार्किक

आपकी तर्क शक्ति बड़ी प्रबल थी। उन समय की परंपरा के अनुसार आपकी अनेक श्रावकों तथा साधुओं के साथ तत्त्व-चर्चा हुई और आपने सभी की शंकाओं का समाधान किया। पूज्य श्री सुमन मुनिजी ने इन सब चर्चाओं का अत्यंत ही मार्मिक एवं सटीक वर्णन इस ग्रन्थ में किया है। आपने वि.सं. १८१३ में आचार्य पद ग्रहण किया। उस समय आपके संत-साध्वी परिवार की संख्या ३६ थी। इस प्रकार आप पंजाब स्थानवासी समुदाय के आचार्य बने।

महान् तपस्वी एवं सेवाव्रती

आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज का जीवन तपः साधना से परिपूर्ण था। आपकी तपस्या वृत्ति का संक्षिप्त वर्णन जो कि लेखक ने दिया है, बड़ा ही प्रेरणास्पद हैः-

१) आपकी दैनिक क्रिया के अंग थे – दस प्रत्याख्यान, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रस-परित्याग आदि।

२) आपने अनेक उपवास व लम्बी तपस्याएं की। प्रत्येक चातुर्मास में आप अठाई तप करते थे। इस प्रकार आपने चालीस अठाई के तप किये।

३) अनेक उपधान-आयंबिल के तप किये।

४) आप प्रतिदिन स्वाध्याय, वैय्यावृत्य-सेवा व शास्त्रादि लेखन कार्य करते थे।

५) आप प्रतिदिन 'नमोऽत्थुणं' पाठ का ध्यान करते थे।

आपके श्रीसंघ में एक मुनि को कुष्ठ रोग फूट निकला। उनका सारा शरीर दुर्गन्धपूर्ण व घृणास्पद हो गया था। कोई भी उनकी सेवा करने उनके निकट नहीं जाना चाहता था। आचार्यश्री को ज्ञात होते ही वे स्वयं ही वहाँ चले गए तथा उन्होंने मुनिजी की बहुत सेवा की। सब ने बहुत मना किया पर आप नहीं माने। आप उन्हें अपने हाथों से आहारादि खिलाते तथा उनके वस्त्र प्रक्षालन आदि करते थे। समुचित चिकित्सा व आपकी सेवा के फलस्वरूप छः महीने में ही मुनिजी की काया कंचनवर्णी हो गई, वे रोगमुक्त हो गए।

आगमवेत्ता तथा ध्यान-योगी

आपने सैकड़ों साधुओं एवं साध्वियों को आगम का ज्ञान प्रदान किया। आपकी अध्ययन शैली बड़ी ही संक्षिप्त, सुस्पष्ट तथा सरल थी जिससे जिज्ञासु को तत्त्वों का ज्ञान सहजता से हो जाता था। अध्यापन का विषय कितना ही कठिन क्यों न हो आप उसे सरलता से समझा देते थे। श्रोता के मन में तर्क/शंका आदि उत्पन्न कर विषय का परिपूर्ण विश्लेषण करना आपकी विशेषता थी। आप मूल पाठ के साथ टब्बा, चूर्णि, अवचूरि आदि तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत की टीका का भी आश्रय लेते थे। यही कारण है कि प्रतिपाद्य विषय चाहे कितना ही जटिल, शुष्क एवं दुरुह क्यों न हो, आपके लिए सुपाठ्य था तथा आप उसे अन्यों को भी समझा सकते थे।

आप एक कुशल लिपिक थे तथा आपके अक्षर बहुत सुंदर थे। आपके हाथ से लिखी हुई दो कृतियां **"दया शतक"** तथा **"बत्तीस अंक बोल"** आज भी उपलब्ध हैं।

आप एक महान् ध्यान योगी थे तथा प्रतिदिन तीन घंटों तक ध्यान किया करते थे। आपने **"नमोऽत्थुणं"** प्रणिपात सूत्र का ध्यान पांच की संख्या से प्रारम्भ करके सात सौ तक बढ़ा कर ध्यान में स्मरण व रमण करने का अभ्यास कर लिया था। आपके समाधि-मरण के समय आपके शिष्य समुदाय की संख्या नब्बे तक अभिवृद्ध हो गई थी। उनमें से कई दीर्घ तपस्वी तथा कठोर व्रतों का पालन करने वाले थे। उनकी अनेक रोमांचकारी एवं त्याग व तपस्या की प्रेरणा देने वाली घटनाएं इस ग्रन्थ में संग्रहीत हैं।

समाज सेवा के कार्य

आपकी प्रेरणा पाकर श्रावकों श्राविकाओं ने अनेक शिक्षालयों, छात्रावासों व ज्ञानालयों का निर्माण किया जिनमें से कुछ निम्न हैं :-

श्री अमरसिंह जैन होस्टल, लाहौर (चण्डीगढ़)

श्री अमरसिंह जैन जीवदया भंडार, अमृतसर

श्री अमरसिंह जैन हाई स्कूल, जम्मू

श्री अमरसिंह जैन ब्लाक, जैन हायर सेकेंडरी स्कूल, फरीदकोट आचार्य श्री अमरसिंह व्याख्यान हाल, जैन स्थानक, कोटकपुरा इत्यादि।

इस पुस्तक का परिशिष्ट बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें आपने आचार्यप्रवर की वंशावली, पंजाब-परंपरा, संत-परंपरा तथा साध्वी परंपरा पर विशद प्रकाश डाला है। श्री सुमन मुनिजी ने इस परंपरा का अत्यंत गहरा अध्ययन करके तथा बहुत ही परिश्रम से जो सामग्री एकत्रित की है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है तथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार पंजाब श्रमणसंघ के गौरवपुरुष आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज एवं उनके शिष्यों के जीवन चरित्र की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करके लेखक ने एक ऐतिहासिक कार्य किया है जो स्तुत्य है। इस ग्रन्थ की रचना के बाद पंजाब के श्रमणों एवं श्रमणियों के अनेक अभिनन्दन ग्रन्थ व चरित्र-ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और उन सब में इस ग्रन्थ की सामग्री को उद्धृत किया है। इससे इस ग्रन्थ का महत्त्व समझा जा सकता है।

✣ ✣ ✣

कर्मठ समाजसेवी एवं प्रबुद्ध लेखक श्री दुलीचन्दजी जैन का जन्म १-११-१६३६ को हुआ। आपने बी.कॉम., एल.एल.बी. एवं साहित्यरत्न की परिक्षाएं उत्तीर्ण की। आप विवेकानन्द एजुकेशनल ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं तथा जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान के सचिव हैं। आपने 'जिनवाणी के मोती' 'जिनवाणी के निर्झर' एवं 'Pearls of Jaina Wisdom' आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों की संरचनाएं की हैं। आप कई पुरस्कारों से सम्मानित – अभिनन्दित।

– सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत अभिमत

शुक्ल - प्रवचन : एक दृष्टि में

"**आत्म-सिद्धि** पर पंडित प्रवर श्रमणसंघीय मंत्री श्रीसुमनमुनिजी म. ने प्रवचन दिये हैं। मुनिश्री जी एक गम्भीर विचारक व जैनदर्शन के गहन अध्येता हैं। इनकी वाणी में ओज है, भाषा सरल, सुलभ एवं प्रवाही है तथा प्रवचन माधुर्य पूर्ण एवं चिन्तन गहरा है।"

— आचार्य प्रवर श्रीआनन्दऋषी जी म.सा.

"शुक्ल-प्रवचन" पुस्तक को मैंने आदि से अन्त तक पढ़ा। पुस्तक अपने आप में अनूठी है। प्रवचनकार श्री सुमनमुनि जी ने "आत्मसिद्धि" पर जो विवेचन और विश्लेषण किया है वह दिल को लुभाने वाला है। प्रवचनकार की सहज प्रतिभा का संदर्शन यत्र-तत्र सहज रूप से किया जा सकता है। ऐसे सुन्दर नयनाभिराम प्रकाशन के लिए साधुवाद !

— आचार्य श्रीदेवेन्द्रमुनिजी म.सा.

श्रीसुमनमुनि जी म. ने श्रीमद् रायचन्द्र के "**आत्मसिद्धि शास्त्र**" पर आधारित विभिन्न आगम एवं अन्य तात्त्विक ग्रंथों के उद्धरण देते हुए पाठकवृन्द को सरस भाषा में आध्यात्मिक रसपान कराने का सुन्दरतम प्रयास किया है। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ को पढ़ने पर अभिनव जागृति का संचार होता है। इन प्रवचनों में आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक एवं लौकिक विषयों पर विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है। स्थान-स्थान पर प्राकृत, पंजाबी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। इससे मुनिश्रीजी की विद्वत्ता दृष्टिगोचर होती है। प्रवचनों की भाषा एवं शैली सुन्दर और प्रवाहमयी है।"

— आचार्य श्री डॉ. शिवमुनिजी म.सा.

"**शुक्ल प्रवचन**" में प्रवचनकार श्रीसुमनमुनिजी म.सा. ने आत्मसिद्धिशास्त्र के गहन विषय को अत्यन्त सरल, सहज, सुबोध भाषा में व्यक्त करने का सरल प्रयोग किया है। गहन, दुरूह विषय को सहज सरल बनाकर प्रस्तुत करना सफल प्रवचनकार की सबसे बड़ी सफलता होती है जिसमें पूज्य श्रीसुमनमुनिजी म.सा. खरे उतरे हैं। उनके प्रवचनों को पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है जैसे सामने बैठकर उनके मुखारविन्द से प्रवचन प्रवाह श्रवण कर रहे हों। यह सुनिश्चित है कि इन सरल, सुबोध एवं साधना सहायक प्रवचन से लाखों लोगों को प्रवचन का अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता रहेगा।"

— उपाध्याय विशालमुनि

"आत्मसिद्धि शास्त्र" एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। आध्यात्मिक एवं तात्त्विक विचारों का एक सुन्दर खजाना है, जिनकी दृष्टि आध्यात्मिकता में सराबोर है वे ही आत्माएं इसे समझ पाती हैं। आपने अपने प्रवचनों में इसको आधार बनाकर जो विचार प्रकट किये हैं वे सुन्दर हैं, सुव्याख्यायित हैं। साथ ही साथ यत्र-तत्र आगमीय स्थल जोड़कर इसे और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है। आज आध्यात्मिक दृष्टि खोलने वाले ग्रंथों की अत्यधिक आवश्यकता है। उसकी पूर्ति में आपका यह योगदान भी श्लाघनीय है। मेरा तो यह भी विचार है – आध्यात्मिक दृष्टि के नहीं खुलने के कारण ही समाज में वैमनस्य, कटुता, साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों को नग्न तांडव करने का अवसर मिलता है। हाँ, एक बात जरूर है, वह आध्यात्मिकता केवल शाब्दिक ही नहीं रहे किन्तु वह आन्तरिक भी हो तभी वह आध्यात्मिकता प्राणवान् होगी।

— विनोदमुनि

"**आत्मसिद्धि-शास्त्र**" अध्यात्म योगी महापुरुष श्रीमद् रायचन्द्रजी की आत्मा के अस्तित्व को लेकर परमात्मा तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की यात्रा कराने वाली एक अनूठी कृति है। उसके एक-एक दोहे में विराट भावों का संस्पर्श है, जो अपनी स्पष्टता के लिए विस्तृत विश्लेषण की अपेक्षा रखता है। यह अत्यंत आह्लाद का विषय है कि शुद्ध आत्मतत्त्व जैसे गहनतम विषय को श्रमणसंघीय सलाहकार, मंत्री पूज्य महामुनिवर श्रीसुमनमुनिजी म. ने अपने प्रवचन का विषय बनाया और प्रत्येक दोहे को अपनी अनुभूति व संभूति के सांचे में ढालकर विस्तृत एवं तलस्पर्शी विवेचन प्रस्तुत किया है।

ग्रंथ को देखने से यह अनुभव होता है कि आप श्री "शब्द सम्राट्" हैं। एक-एक शब्द को सुबोध सरस एवं रुचिपूर्ण बनाने के लिए अनेक समानार्थक शब्दों का उपयोग किया है। यही नहीं, आत्मा, परमात्मा, कर्ता, भोक्ता, मतार्थी, आत्मार्थी, मोह, मोक्ष, सद्गुरु आदि जटिल विषयों को उस प्रकार प्रस्तुत करना कि श्रोता चटखारे ले लेकर सुने और अंत में अगाध तृप्ति का अनुभव करने लगे, यह वस्तुतः आपकी प्रवचन शैली के मनमोहक रूप को उजागर करता है।

समानार्थक दिखाई देने वाले "आकुलता और व्याकुलता" का पृथक्करण करते हुए पृष्ठ १७८ में आप लिखते हैं –

आकुलता – इच्छित, मनचाही वस्तु नहीं मिलती तब तक मन में उठने वाले संकल्प-विकल्प ही "आकुलता" है।

व्याकुलता – प्राप्त, मिली हुई वस्तु के लिए यह मेरे से दूर न हो जाये ऐसी चिंता ही "व्याकुलता" है।"

अथवा यों कहें कि इष्ट, प्रिय संयोग की तीव्र इच्छा आकुलता है तथा उसके वियोग की चिंता व्याकुलता है।

इसी प्रकार ज्ञान-विज्ञान, निर्जरा-व्यवदान, प्रमत्त आदि अनेक समानार्थक शब्दों को अपनी तीक्ष्ण-प्रज्ञा की छेनी से संवार कर निज रूप दिलाने में आपने तो कमाल ही कर दिया है। ऐसी चिन्तन-मनन एवं कल्याणकारिणी, साथ ही अध्यात्मरस के रसिकों को आनन्द-रस में सराबोर करने वाली सुंदर कृति को प्राप्त कर मुमुक्षु आत्माएँ परम तृप्ति का अनुभव करेंगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

— **साध्वी विजयश्री** एम.ए.

महत्वपूर्ण ग्रन्थ

शुक्ल प्रवचन भाग १ से ४ ग्रन्थ सुन्दर ही नहीं अति महत्त्वपूर्ण भी है।

अध्यात्मभाव से भरा यह ग्रन्थ हिन्दी जगत् में निश्चित ही श्रेष्ठता सिद्ध करेगा। भव्यात्माएं आत्मा की गतिविधियों से ज्ञात होंगे तथा जीवन के कई प्रश्नों का समाधान भी प्राप्त करेंगे।

लेखक को वन्दन! अभिनन्दन !!

❑ गिरीशमुनि

मुमुक्षुओं की परम निधि

तत्त्वप्रज्ञ श्रीमद्राजचन्द्रजी की चतुर्दश पृष्ठीय गेय कृति आत्मसिद्धि एक ऐसी परम निधि है, जो मुमुक्षु-जगत् की एक अपरिहार्यता बन गयी है। १४२ दोहों की इस लघु कृति के प्रतिपाद्य को मेधावी संत प्रवचनकार श्री सुमन मुनिजी म. ने 'शुक्ल प्रवचन' शीर्षक चार खण्डों (लगभग १,००० पृष्ठों) में बड़ी सरल-सुबोध भाषाशैली में प्रस्तुत किया है। 'आत्मसिद्धि' में भेद विज्ञान पर अधिक बल देते हुए श्रीमद् ने आत्मा की अनन्त शक्ति का अचूक/सुगम परिचय दिया है।

ग्रन्थ के आवरण का आकार/रंग-संयोजन भी विलक्षण है। ऐसा लगता है कि चित्रकार ने 'आत्मसिद्धि' की तमाम खूबियों को उसमें बड़ी कलात्मकता से समेट लिया है। रंग हैं : श्याम, रक्त, श्वेत/क्रमशः बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के परिचायक। तीन वृत्त हैं, जो क्रमशः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्हीं स्थितियों को अंकित करते हैं। मुखपृष्ठ के शीर्ष पर संयोजित कमल अनासक्ति/निर्लिप्तता का प्रतीक है। कुल मिला कर चारों भाग अध्यात्म के समस्त पहलुओं को सुरुचिपूर्ण/प्रामाणिक भाषा-शैली में प्रस्तुत करने में सफल हैं। ग्रन्थ मननीय/संकलनीय है।

– तीर्थंकर (मासिक) फरवरी '६६

आत्मसिद्धि का शोधपूर्ण भाष्य

श्रीमद् रायचन्द्र जी वर्तमानकाल के सर्वमान्य अध्यात्म पुरुष हुए हैं जिनसे गाँधी जी जैसे विश्व प्रसिद्ध युग-पुरुष भी मार्गदर्शन लेते थे। उन्हें आत्मा की अनन्य अनुभूति प्राप्त थी और वीतराग देव द्वारा प्ररूपित एक-एक सिद्धान्त को उन्होंने अनुभव की कसौटी पर कसा था। अपनी उन सभी अनुभूतियों को रायचन्द्र जी ने मातृ भाषा गुजराती में जन कल्याण के लिए लिपिबद्ध किया है। उनकी अनुभूति परक प्रसिद्ध रचना है- "आत्मसिद्धि"।

इसमें रायचन्द्रजी ने छह विषयों पर आत्मा के अस्तित्व, नित्यत्व, कर्तृत्व भोक्तृत्व, मोक्ष के अस्तित्व और मोक्ष के उपाय पर विशेष प्रकाश डाला है। इन छहों विषयों को विस्तार से दोहा छन्द में बड़े ही गंभीर भावों से प्रस्तुत किया है जो कि अध्यात्म जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। भाषा शैली एवं बदलते भौतिक परिवेश के कारण इस रचना की विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा चिरकाल से विशेषतः हिन्दी भाषी तत्त्व जिज्ञासुओं के लिए थी। इस कार्य को वही कर सकता था जो उसी श्रेणी का विद्वान् साधक हो, जिसने श्री रायचन्द्रजी के भावों को आत्मसात् किया हो। साथ ही गुजराती, हिन्दी भाषाओं एवं जैन दर्शन एवं सैद्धांतिक तत्त्वों का अनुभव हो। यह बड़ा श्रमसाध्य कार्य था।

यह कार्य "शुक्ल प्रवचन" के माध्यम से पूज्यवर विद्वद्वर्य श्रमण संघीय सलाहकार एवं मंत्री श्री सुमनकुमार जी म. ने किया है। पूज्य श्री सुमनमुनि जी म. धीर-गंभीर सन्त, गहन अध्ययनशील, मनस्वी, अद्भुत् शब्द-शिल्पी विद्वान् हैं। इतना ही नहीं वे इतिहास के मर्मज्ञ मनीषी, सिद्ध हस्त लेखक, कुशल सम्पादक और प्रसिद्ध प्रवचनकार भी हैं।

शुक्ल प्रवचन का आधार है श्री रायचन्द्रजी की प्रसिद्ध कृति – "आत्मसिद्धि"। पूज्य श्री सुमन मुनि जी वर्षों तक इसका पारायण करते रहे। उनका चिंतन-मनन और तुलनात्मक अध्ययन इस विषय में अनवरत चलता रहा। विभिन्न नगरों में उन्होंने आत्मसिद्धि पर प्रवचन देकर अध्यात्म जिज्ञासुओं को इसका रस पान कराया। जिससे जिज्ञासु समाज आत्मतोष से सराबोर हुआ और इस अध्यात्म-रस को चिरस्थाई बनाने के लिए प्रकाशन की मांग निरन्तर होती रही जो भारत के दक्षिणांचल में जाकर मूर्त रूप ले सकी। उसी का परिणाम है -**"शुक्ल प्रवचन"**।

पूज्य श्री सुमन मुनिजी म. की कृपा से "शुक्ल प्रवचन" के चार भाग प्राप्त हुए। उन्हें क्रमशः पढ़ना शुरू किया तो ऐसा हुआ कि मन की तन्मयता उसके साथ बढ़ती गई, जैसे-जैसे पढ़ता गया तो मन श्रद्धेय श्री सुमन मुनि जी म. की विद्वत्ता व व्याख्यान शैली के प्रति श्रद्धा से विनत होता गया। अपनी अल्पज्ञता का बोध हुआ। ज्यूं-ज्यूं आगे बढ़ा तो लगा ऐसे प्रवचन क्या यह "आत्मसिद्धि" पर लिखा गया एक भाष्य है। एक-एक शब्द पर, एक-एक पद पर जिस ढंग से विवेचन किया गया, उससे 'सायनाचार्य" द्वारा लिखा गया वेदों का भाष्य स्मरण हो आता है।

जब भाषा-प्रवाहशीलता को देखता हूँ तो मन गद्-गद् हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे महाराज श्री सामने बैठे हैं और धारा प्रवाह प्रवचन कर रहे हैं। विषय को सर्वोपयोगी बनाने के लिए गीतों का प्रयोग किया गया है जिससे साधारण पाठक भी सहज ही विषय को ग्रहण कर लेता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगमों और ग्रन्थों के जो संदर्भ दिए गए हैं उन्हें देख कर लगता है यह तो शोध प्रबन्ध है।

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये चार ग्रन्थ पूज्य श्री सुमन मुनि जी म. के विशाल अनुभूत अध्यात्म, गहन अध्ययन एवं विविध भाषाओं पर उनकी गहरी पैठ का दिग्दर्शन कराते हैं। साथ ही उनकी अनूठी प्रवचन शैली का भी परिचय देते हैं। इनमें न केवल सिद्धांत की अपितु लौकिक जीवन का रहस्य और दार्शनिकता का सहज बोध प्राप्त होता है। इन प्रवचनों में आध्यात्मिकता के साथ सामाजिक और धार्मिकता के साथ लौकिक व्यवहारों एवं कर्त्तव्यों का प्रामाणिक तथा सुलभ विश्लेषण हुआ है। यह ग्रन्थ महाराज श्री की अपूर्व विद्वता का द्योतक है।

आत्मसिद्धि के विषयों की जैनागमों से तुलना करके और अपने युक्तियुक्त तर्कों से विद्वान् प्रवचनकार ने आत्मसिद्धि का आधार आगम वचन है, यह सिद्ध करके एक बहुत बड़ी भ्रांति को दूर करने का प्रशंसनीय कार्य बड़ी निपुणता से किया है, इसके लिए संघ, समाज उनका अतीव आभारी रहेगा।

गहन गूढ़ आध्यात्मिक विषयों को सरलीकरण करके महाराज श्री ने बुद्धीजीवी और सर्व साधारण जिज्ञासुओं पर बड़ा उपकार किया है। विषय का प्रतिपादन, भाव, भाषा, शैली एवं सुन्दर सम्पादन सभी कुछ स्तुत्य बन पड़ा है। इसके लिए महाराज श्री का जितना अभिनन्दन किया जाए उतना कम है।

अन्त में पूज्य महाराजश्री से मेरा यही विनम्र निवेदन है कि वे अपने अन्य प्रवचन भी इसी भाँति प्रकाशित करावे जिससे दूरस्थ धार्मिक लोग भी उनकी ज्ञान गरिमा और वीतराग वाणी का अध्ययन कर आत्मस्वरूप में स्थित हो सकें।

डॉ. सुव्रत मुनि (पंजाब)

✣ ✣ ✣

शुक्ल प्रवचन के चार भाग तथा तत्त्व चिंतामणि के ३ भाग देखकर आत्मविभोर हो उठा। आप श्री की विषय के प्रस्तुतीकरण एवं प्रतिपादन की शैली अद्भुत है। विषय में प्रवेश सरलता से हो जाता है तथा विषय का प्रतिपादन अनुभव कर अति आनन्द होता है तथा प्रेरणा मिलती है।....

...अब तो यही आकांक्षा है कि आप हमारे नगर में चातुर्मास अवश्यमेव करें। आप जैसे महापुरुषों के चातुर्मास से हमारा जीवन भी सार्थक बन जाएगा तथा युवापीढ़ी के जागरण का प्रमुख कारण बनेगा।

आपके साहित्य सृजन में मैं भी यत्किञ्चित् सहयोग योगदान दे पाऊँगा तो अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

कृपादृष्टि बनाये रखें ! पुनः वंदन के साथ –

चमनलाल मूथा,
रायचूर (कर्नाटक)

तत्त्व चिंतामणि : एक दृष्टि में

'तत्त्व चिन्तामणि' के तीनों भाग प्राप्त कर मन गद्-गद् हो उठा ! तत्त्व-विषयक ऐसी ही पुस्तकों की मुझे तलाश थी।

दार्शनिक ज्ञान से ओतप्रोत हैं ये तीनों पुस्तकें। 'आगम ज्ञान की कुञ्जी' भी इन्हें कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

❑ **साध्वी सरिता**
एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट्.

'तत्त्व चिंतामणि' के तीनों भाग स्वाध्यायियों के लिये अति उत्तम एवं ज्ञानवर्द्धक है। सरलभाषा एवं विश्लेषण के कारण विद्यार्थी भी इसे आसानी से समझ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकते हैं। यत्र-तत्र अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करके इस कृति को और निखार दिया है।

वस्तुतः आप जो भी लेखन - सम्पादन का कार्य हाथ में लेते हैं उसे इस तरह सुसम्पन्न करते हैं कि पाठक के हृदय में पूर्णता से रम जायें, उतर जाये !

श्रमसाध्य कार्य के लिए आपको कोटिशः साधुवाद ! मैं आपका सदैव ऋणी हूँ ये पुस्तकें प्राप्त करके। आपकी सत्य-वात्सल्य से युक्त छत्रछाया बनी रहे।

❑ झूमरमल सिंघवी
ताम्बरम, चेन्नई

जैन पारिभाषिक शब्दों का लघुकोष

तत्त्व-चिन्तामणि (तीन भागों में विभक्त) जैन पारिभाषिक शब्दों को समझने का लघु कोष है। जैन पारिभाषिक शब्दों के ज्ञान के अभाव में आगमों को समझना अत्यन्त कठिन है। तत्वों के निरुपण से पारिभाषिक शब्द ज्ञान, विवेचन, विस्तार ज्ञात होकर, आगम समझने में सुलभता हो जाती है। प्रस्तुत कृति में सहज, सरल एवं सुबोध रीति से तत्वों को समझाने का प्रयास किया गया है।

प्रथम भाग में पच्चीस बोल, दूसरे भाग में नवतत्व, एवं तीसरे भाग में छब्बीसद्वार (लघुदण्डक का थोकडा) सम्पादित किये गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक विद्वान् लेखक श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनकुमारजी म.सा. हैं। मुनिश्री जी स्थानकवासी पंजाब परम्परा के लब्ध-प्रतिष्ठित संतरत्न हैं। आप श्री की साहित्यिक एवं आध्यात्मिक विषयों पर लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

समीक्ष्य कृति का सम्पादन विद्यार्थियों के पठन-पाठन को ध्यान में रखकर किया गया है। भाषा की शुद्धता का पूर्णतः ध्यान रखा गया है। (यथा स्थानों पर पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी नाम भी देकर, विद्यार्थियों (कॉनवेन्ट) के लिये उपयोगी बनाया गया है। तत्वों का आगमिक आधार भी साथ में दिया गया है।

पच्चीस बोल का थोकड़ा, नवतत्व, लघुदण्डक को विस्तार से भेद-प्रभेद द्वारा समझाया गया है। परिशिष्ट के माध्यम से पांच समिति को भी समझाया गया है। पुस्तकें विद्यार्थियों की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी होने से "विद्यार्थी संस्करण" कहे तो कोई अनुचित नहीं होगा।

पुस्तक स्वाध्यायी एवं जिज्ञासु बंधुओं के लिये अत्यन्त लाभकारी है।

❑ ज्ञानराज मेहता
मंत्री - श्री वर्द्ध.स्था. जैन श्रावक संघ
बेंगलोर सिटी

वृहदालोयणा

'वृहदालोयणा' अर्थ सहित पुस्तक अत्यन्त पसंद आई। आप श्री की यह अनमोल देन हम जैसे ज्ञान पिपासुओं के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है।

'शुक्ल प्रवचन' भी आप श्री की अनमोल कृति है। ऐसा आत्मपरक साहित्य हमारे ज्ञान-विकास में अवश्य ही उपयोगी है।

❑ श्रीमती सज्जन के. बोथरा
पुणे - ४११ ००६ (महाराष्ट्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य गुरुदेव द्वारा सृजित साहित्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमोचन के शुभ प्रसंग पर पूज्य गुरुदेव.

पूज्य गुरुदेव को 'शुक्ल प्रवचन' की प्रति अर्पित करते हुए, चेन्नै आकाशवाणी के निदेशक डॉ. इन्दरराजजी बैद-१९९३

शुक्ल प्रवचन-भाग-१ का विमोचन एवं गुरुदेव को अर्पण करते हुए, श्री प्रेमचन्दजी फूलफगर-के.जी.एफ.-१९९१.

मेट्टुपालयम में 'वैज्ञानिक रचना' के विमोचन की प्रथम प्रति श्री हनुमानमलजी भाकर द्वारा गुरुदेव को अर्पित.

मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्रीयुत मिश्रा द्वारा 'जिनवाणी के मोती' की प्रति गुरुदेव को समर्पित

मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री युत मिश्रा द्वारा लेखक श्री दुलीचन्दजी जैन का सम्मान-१९९४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न मुद्राएं प्रवचन की-

मा पडिबंधं करेह !

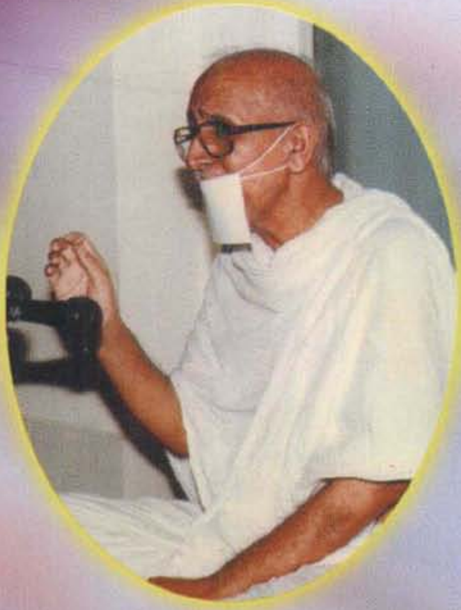

अहो खलु दुखो हु संसारो !

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम 'श्री' है गुरुदेव श्री !

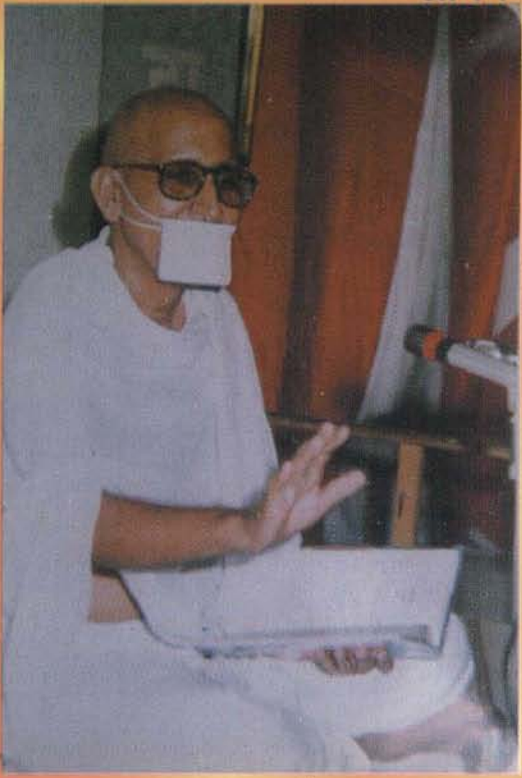

आगम के सरस व्याख्याता

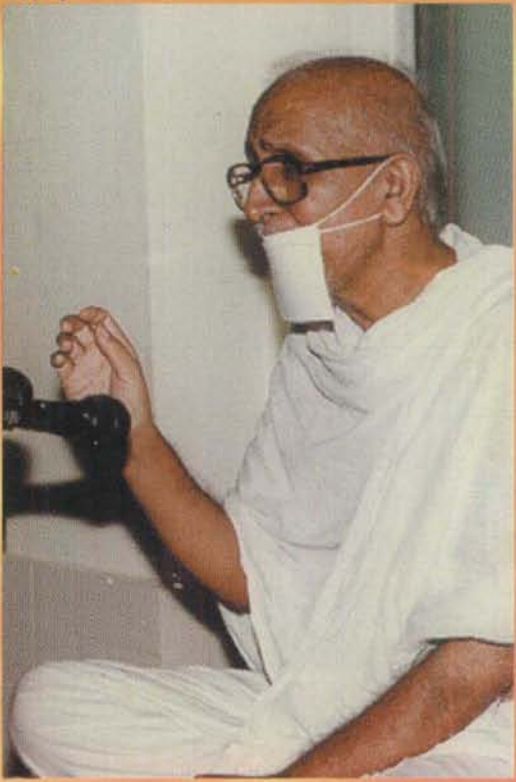

आगम के सूक्ष्म विवेचक !

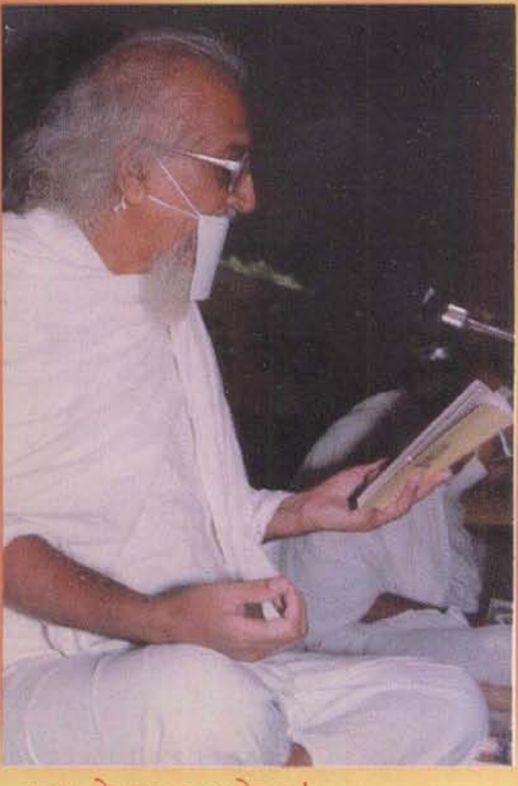

आगम के गहन अध्येता !

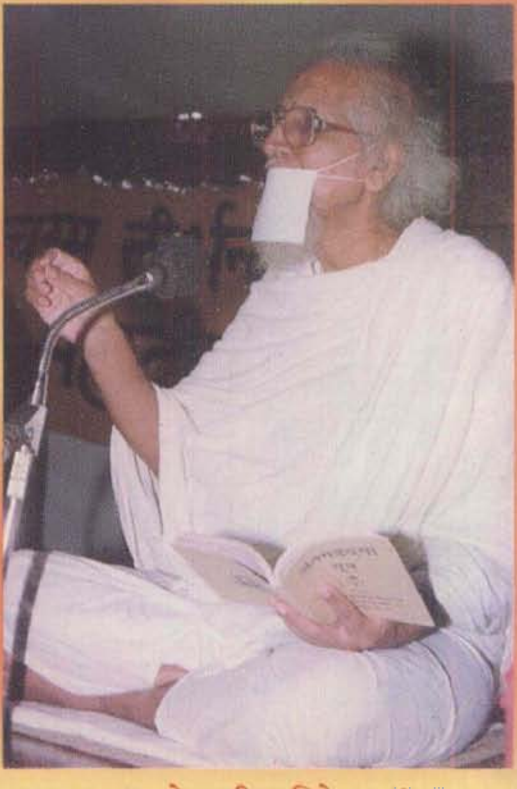

आगम के सटीक विवेचक !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म - मनीषी श्री सुमनमुनि जी का सर्जनात्मक साहित्य

❑ डॉ. इन्दरराज बैद

अध्यात्म भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्व है। विद्याओं में इससे बढ़कर कोई विद्या नहीं। तत्व से साक्षात्कार करानेवाले आध्यात्मिक बोध की उपलब्धि जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि है, जिसे प्राप्त करने के लिए साधक को अपने जीवन का हर पल समर्पित करना होता है। अहर्निश स्वाध्याय-निरत रहकर ज्ञान की उत्कृष्ट उपासना से आत्मा को उज्ज्वल करना ही अध्यात्म के पथ पर चलना है। आभ्यंतर तप के इस श्रेयस्कर मार्ग पर चरणन्यास करने की योग्यता सबमें नहीं होती, श्रद्धावान् संयमी साधक ही स्वाध्याय-तप की पात्रता रखता है। भगवद्गीता में उद्घोष है-"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।" (४/३९) श्रमण-संस्कृति ने भी 'मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः' कहकर साधक की अर्हता को सुनिश्चित कर दिया है। ऐसे साधक-रत्नों में अग्रणी हैं मुनिवर श्री सुमनकुमार जी महाराज जो विगत पचास वर्षों से आध्यत्मिक पथ पर चलते हुए रत्नत्रयाराधना पूर्वक श्रमणत्व की श्रेष्ठता का समुद्घोष करते रहे हैं। आज उनकी दीक्षा की स्वर्ण जयंती की शुभ वेला में जब हम उनके साधनामय जीवन पर दृष्टिपात करते हैं, तो हम श्रद्धा और गौरव की पुनीत भावनाओं से अभिभूत हो उठते हैं। अपने संयम का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए, श्रद्धा-भक्ति के साथ ज्ञानोपासना का जो आदर्श उन्होंने उपस्थित किया है, वह परम स्तुत्य है। चिंतन, मनन और मंथन करके अध्यात्म का जो सारस्वत प्रसाद उन्होंने वितरित किया है, उसे देखकर सिद्ध होता है कि श्री सुमन मुनिजी सच्चे अर्थों में उपदेष्टा हैं, उपाध्याय हैं, वे उच्च कोटि के विद्वान् श्रमण हैं, जिन्होंने धार्मिक साहित्य के उत्तम ग्रंथों से जिन-शासन की अभिनंदनीय सेवा की है।

श्रमण-संघ के सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमार जी महाराज की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं:- श्रमणावश्यक सूत्र, तत्त्व चिंतामणि (संपादन), बृहदालोयणा-ज्ञान गुटका (संपादन) अनोखा तपस्वी श्री गैंडेरायजी महाराज, शुक्ल-स्मृति, शुक्ल ज्योति, पंजाब श्रमण-संघ गौरव आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज और शुक्ल-प्रवचन (चार भाग) इन ग्रंथों के अध्ययन से श्रद्धेय मुनिश्री के तीन रूप उभरकर सामने आते हैं, पहला तत्त्व-शिक्षक का रूप, दूसरा चरितलेखक का रूप और तीसरा साहित्यानुशीलक का रूप। मुनिश्री का वैदुष्य यद्यपि तीनों रूपों में झलकता है, फिर भी उनके तत्त्व-शिक्षक की स्पष्ट छाप उनके साहित्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। जैन दर्शन की सैद्धांतिक कृतियों में ही नहीं, उनके जीवनी-साहित्य और संपादित साहित्य में भी उनका तत्त्ववेत्ता-रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह आवश्यक भी है, क्योंकि उनकी साहित्य-सर्जना हृदय-रंजन की नहीं, आत्म-रमण की प्रक्रिया है। जीवन चरितों में अथवा प्राचीन साहित्य के अनुशीलन में जहाँ कहीं भी उन्हें अवसर मिला है, जैन-दर्शन की बारीकियों को उजागर करने में तत्पर रहे हैं। उनके समग्र साहित्य का अध्ययन करनेवालों को भले ही पुनरुक्ति का आभास होता हो, पर किसी ग्रंथ को स्वतंत्र रूप से पढ़ने वाले पाठक की जिज्ञासा तो ऐसे ही लेखन से शांत हुआ करती है।

'प्रवचन दिवाकर' मुनिश्री सुमन कुमार जी महाराज का आगम-वेत्ता तत्त्व-शिक्षक का रूप प्रमुखतापूर्वक जिन कृतियों में उभरकर आया है, उनमें तत्त्व-चिंतामणि के तीन भाग, गणनीय और पठनीय हैं। जैन धर्म-दर्शन के आधारभूत सिद्धांतों का तात्त्विक विवेचन ही 'तत्त्व-चिंतामणि' का प्रतिपाद्य विषय है, जिसके संबंध में मुनिश्री का मंतव्य है: "आज के विज्ञान-युग में मनुष्य प्रत्येक वस्तुके विषय में अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण और जिज्ञासा रखता है, अस्तु, उन जैन दर्शन के तत्त्वों को सर्वांगीण रूप में जानने और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखने की उसके मन में उत्सुकता का उत्पन्न होना सहज ही है।" (तत्त्व चिंतामणि-१ की भूमिका) स्वाध्यायशील पाठक की इसी जिज्ञासा को शांत करने का सुष्ठु सुनियोजित प्रयास हुआ है तत्त्व चिंतामणि में, जिसके पहले भाग में पच्चीस बोलों की, दूसरे भाग में नव तत्त्वों की और तीसरे भाग में छब्बीस द्वारों की सम्यक् विवेचना प्रस्तुत की गई है। दरअसल, अपने पितामह गुरुवर श्रद्धेय पं. रत्न शुक्लचंद्रजी महाराज के ग्रंथ 'जैन धर्म मुख्य तत्त्व चिंतामणि' से प्रेरित होकर ही मुनिश्री ने जैन दर्शन-तत्त्वों का सरल भाषा-शैली में परिचय प्रस्तुत किया है। परिचय भी पर्याप्त विस्तृत है। केवल 'जीव' तत्त्व का विवेचन ही लगभग तीस पृष्ठों में किया गया है। आत्मा की शरीराबद्ध स्थिति को भारतीय वाङ्मय में जीव माना गया है। यह कर्ता भी है और कर्म फल का भोक्ता भी है। इसके समस्त भेदों पर मुनिश्री ने आगम-प्रमाण देते हुए व्यापक विचार किया है। अंत में, मोक्ष तत्त्व पर प्रकाश डाला है, जिसका जैन दर्शन में अपना वैशिष्ट्य है। निर्बन्ध स्थिति में आत्मा सिद्धत्व प्राप्त करती है। सर्व कर्म-विमुक्त आत्मा ही सिद्ध है, जिसका ज्ञान सद्प्ररूपणा, द्रव्य, क्षेत्र, स्पर्शन आदि द्वारों से किया जाता है। (दे. तत्त्व. चिंतामणि-२, पृ.१६२-१६४) सिद्धात्माओं के पंद्रह भेदों तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध, तीर्थंकर सिद्ध, अतीर्थंकर सिद्ध, स्वयंबुद्ध सिद्ध आदि का स्वरूप भी समझाया गया है। मुनिश्री अपने तात्विक विश्लेषण को आगमिक उद्धरणों की पाद-टिप्पणियों द्वारा प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। संक्षेप में यदि यह कहा जाय कि 'तत्त्व चिंतामणि' जिज्ञासु अध्येताओं के लिए किसी ज्ञान-कोश से कम नहीं, तो अत्युक्ति नहीं होगी।।

'शुक्ल प्रवचन' (चार खंड) भी तात्विक विवेचन से परिपुष्ट है। यद्यपि इन्हें प्रवचन की संज्ञा से अभिहित किया गया है, पर इन्हें सामान्य उपदेश की कोटि में न रखकर गंभीर अनुचिंतन-साहित्य का अंग मानता ही समीचीन प्रतीत होता है। विद्वान् संतश्री ने अध्यात्म-योगी श्रीमद्राजचंद्र के 'आत्मसिद्धिशास्त्र' को आधार बनाकर जो व्याख्यान दिये, उनका सारगर्भित आख्यान है 'शुक्ल प्रवचन'। पंजाब की जैन नगरी मलेर कोटला में अपने गुरुवर श्रद्धेय पं. रत्न श्री महेंद्रकुमारजी महाराज के चरणों में बैठकर सन् १९७४ के चातुर्मास में मंगलवाणी के माध्यम से जिस 'आत्मसिद्धि शास्त्र' का पारायण श्री सुमनमुनि जी महाराज ने आरंभ किया था, वही वर्षों बाद सन् १९८८ ई. में बोलारम (सिकंदराबाद) चातुर्मास में विशिष्ट आध्यात्मिक व्याख्यानों के रूप में परिणत हुआ। श्रद्धा और भक्ति के जलद निरंतर बरसते रहें तो चिंतन की भूमि को तो उर्वरा होना ही है। नैष्ठिक अध्ययन, सम्यक् चिंतन और आत्मिक मंथन से ही ज्ञान का अमृत प्राप्त होता है। केवल आत्म चर्चा करने से ज्ञान नहीं मिलता। कविवर जायसी ने कितना सुंदर कहा है:

'का भा जोग कथनी के कथे।
निकसै जीव न बिना दधि मथे।।"

आध्यात्मिक परिश्रम करनेवाले ही आत्मज्ञान के पथ पर निरंतर बढ़ते रहते हैं।

अस्तु; श्रीमद् राजचंद्र ने अपनी कृति 'आत्मसिद्धि शास्त्र' के ४३वें दोहे में आत्मा-संबंधी जो तथ्य गिनाए हैं, उसका शास्त्रीय आधार स्थापित करतेहुए मनीषी प्रवचनकार ने श्रमण-तत्त्वों का निरूपण किया है। ये समानान्तर छंद हैं:-

आत्मा छे, ते नित्य छे, छे कर्त्ता, निज कर्म।
छे भोक्ता, वली मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुधर्म।।
- (आत्मसिद्धि शास्त्र, ४३)

अत्थि जिओ तह निच्चा, कत्ता-भोत्ता य पुण्ण पावाणं।
अत्थि धुवं निव्वाणं, तदुवाओ अत्थि छट्ठाणेणं।।
- (प्रव. सारोद्धार द्वार १४८ गा.९४१)

'शुक्ल प्रवचन' के चतुर्थ खंड की भूमिका में वे श्रीमद्राजचंद्रजी के जैन-दर्शन से प्रभावित-प्रेरित होने की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं-"प्रवचन में श्रीमद्जी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावों को यथातथ्य रूप में, यथाशक्य प्रतिपादन करने का प्रयास किया है, साथ ही आगम एवं आगमबाह्य ग्रंथों के संदर्भों से उसे पुष्ट करने तथा जिनेन्द्र भगवान एवं जिनवाणी के प्रति श्रीमद् के मन में रही आस्था, उनके आगमों/जैनधर्म/दर्शन के गहन अध्ययन, तदनुरूप बाह्य-आभ्यंतर क्रियानुष्ठान की सूक्ष्म व्याख्या को प्रकट करने का प्रयत्न किया है।" द्वितीय खंड की भूमिका में वे स्पष्ट शब्दों में घोषित करते हैं कि "आत्मसिद्धि तो विशेषतः 'अत्थिजीओ तह निच्चा' गाथा के आधार पर ही आधारित है।" पं. रत्न श्री सुमन मुनि जी निर्भीक वक्ता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। जहाँ भी और जब भी कोई दोष उन्हें सम्यक्त्व की अनुपालना में दृष्टिगत हुआ है, तो उन्होंने जिन शासन के व्यापक हितों का विचार करते हुए श्रावकों को सचेत करने की महनीय भूमिका निभाई है। श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं:

आत्मज्ञान त्याँ मुनिपणुँ, ते साचा गुरु होय।
बाकी कुलगुरु कल्पना, आत्मार्थी नहीं जोय।।

- (आत्मसिद्धिशास्त्र, दो. ३४)

आशय यह है कि सच्चे आत्मार्थी के लिए कुलगुरु का कोई महत्त्व नहीं। मध्यकालीन जातिवाद की संकीर्णता से आधुनिक समाज उबरा नहीं है। यह दुर्भाग्य की बात है कि कुछ वर्ग अब तक भेदनीति पर चलते रहे हैं, जो किसी भी स्थिति में उचित नहीं है, आगम-सम्मत तो है ही नहीं। उपर्युक्त दोहे की व्याख्या करते हुए प्रवचनकार मुनिश्री कहते हैं – "इस पद में श्रीमद् ने.....जातिवाद के दुराग्रह का निराकरण करते हुए आत्मज्ञान-लक्षण की प्रतिपादना से सच्चे गुरु को व्याख्यायित किया है। आत्मज्ञान शून्य मुनि को कुलगुरु मानने की परंपरा मात्र कल्पना है। अमुक-अमुक जाति-कुल वाले को साधु-संघ में दीक्षित नहीं किया जा सकता; अमुक को साधु-दीक्षा तो दी जा सकतीहै, किंतु आचार्य-उपाध्याय आदि वरिष्ठ पद नहीं दिये जा सकते। ये अमुक जाति-विशेष के लिए नियत हैं, आदि। और यह मान्यता तो १९वीं शताब्दी तक भी बड़े गौरव के साथ दोहराई जाती रही है, तथा इससे समुदायों में वर्गीकरण/पृथकता को भी बढ़ावा मिलता रहा है।" (शुक्ल प्रवचन, भाग दो, पृ.५६४) महाराज साहब आगे फ़रमाते हैं - "जिन-धर्म में जाति को कहाँ महत्त्व दिया है? उसने तो समग्र मनुष्यों की एक ही जाति स्वीकार की है: 'मनुष्यजातिरेकैव'। श्रावक हरजसराय ने कहा है-जाति को काम नहीं, जिन मार्ग, संयम को प्रभु आदर दीनो।" (वही, पृ.५६५) इस प्रकार श्रीमद् राजचन्द्रजी ने आत्मसिद्धिशास्त्र में मानवीय समानता और एकता का जो स्वर उभारा है, उसी की पुष्टि सामयिक संदर्भों के साथ श्री सुमन मुनिजी अपनी व्याख्या में करते हैं। केवल श्रमण विचारधारा में ही नहीं, संपूर्ण भारतीय वाङ्मय में मानवीय समानता का समुद्घोष हुआ है। संस्कृत-साहित्य में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का जो आदर्श मुखरित हुआ है, वही तमिल-साहित्य में 'यादुम ऊरे यावरुम केळिर' (सब लोक अपने, सब लोग अपने) के संदेश में देखा जा सकता है। सबको अपना माननेवाली भारतीय संस्कृति में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा; फिर कुल और जाति के नाम पर वर्गीकरण को कैसे उचित माना जा सकता है?

'शुक्ल प्रवचन' में भी जैन विचारों को जहाँ भी संदर्भ बना है, पर्याप्त विस्तार के साथ समझाया गया है। आत्मसिद्धि शास्त्र के १८वें दोहे में मान-विषयक बात कही है। उसका बहुत ही सुंदर विश्लेषण पंडित रत्न सुमन मुनिजी प्रस्तुत करते हैं। आगम-वाणी में, मान-संबंधी जो बारह भेद गिनाये गये हैं, उन पर प्रकाश डाल कर पाठकों को विनय की सीख दी गई है। ये भेद हैं: मान, मद, दर्प, स्तम्भ, गर्व, अत्युतक्रोश पर-परिवाद, उत्कर्ष, अपकर्ष, उन्नत, उन्नाम और दुर्नाम मनुष्य के पतन का मुख्य कारण अहंकार ही है, इसे त्याग कर ही आत्मा को उबारा जा सकता है। जैन संतों ने और विश्व के सभी विद्वानों ने अहंकार को त्याज्य माना है। तमिल संत तिरुवल्लुवर कहते हैं:

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं-मेरा, इस अहं भाव से जो ऊपर उठ जाएगा।
वह देवोपरि उच्च लोक को अनायास पा जाएगा।।

साहित्य-मनीषी सुमन मुनिजी ने दो साहित्यिक कृतियों का सुसंपादन विवेचन पूर्वक किया है। पहली है श्रावक-कवि हरजसराय की मुक्तक-काव्यकृति 'देवाधि देव रचना' और दूसरी है सुश्रावक लाला रणजीतसिंह कृत बृहदालोयणाज्ञान गुटका। दोनों ही प्रसिद्ध लोकप्रिय रचनाएँ हैं। 'देवाधिदेव रचना' में कवि तीर्थंकर प्रभु की स्तुति करता है। ८५ पदों की इस भक्ति-रचना में तीर्थंकर के स्वरूप, उनके स्तवन, समवशरण के विषय में बहुछंदों द्वारा अपनी श्रद्धा की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की गई है। यह एक उत्तम ललित ग्रंथ है, जिसके शब्दार्थ सौंदर्य को बड़ी कलात्मक निपुणता के साथ उभारने का कवि ने प्रयास किया है। इसमें ३० दोहों, २८ मत्तगयंदों (सवैये), २० सिंहावलोकन छंदों, ४ कवित्तों, २ दुर्मिल छंदों और १ हरिगीतिका की रमणीयता देखते ही बनती है। 'रमणीयार्थ प्रिपादकः शब्द काव्यम्' - पंडितराज जगन्नाथ का कथन इसमें पूर्णतः चरितार्थ होता दिखाई पड़ता है। 'मम मंतव्य' नाम से लिखी गई अपनी गवेषणात्मक भूमिका में विद्वान संपादक मुनिश्री ने कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं को उजागर किया है। कवि के जन्म व रचना-काल तथा रचना के शुद्ध पाठ-रूप पर उन्होंने समुचित साक्ष्यों द्वारा विचार किया है। रचनाकाल अंतः साक्ष्य के आधार पर संवत् १८६५ विक्रमी (अर्थ सन् १८०८ ई.) सुनिश्चित कियाहै। रचनाकार के बारे में शोध करके वे लिखते हैं - "देवाधिदेव रचना के रचयिता श्री हरजसराय जी हैं। वे ओसवाल जाति गदैया-वंश (गोत्र) के थे।......इनका जन्मस्थान आज का पाक सीमावर्ती शहर कसूर (कुशपूर) जिला लाहौर था, जो प्रदेश आजकल पाकिस्तान में आ गया है। इनके जैन होने का प्रमाण उनके वंशज हैं, जो आज भी विद्यमान हैं, तथा कपूरथला (पंजाब) में ग्रंथकार के प्रपौत्र जामाता लाला रामरतनजी जैन विद्यमान हैं। ग्रंथ के अंतः साक्ष्य के आधार पर ये विक्रम संवत् १८७० तक जीवित रहे थे। उस वर्ष उन्होंने देव-रचना नामक ग्रंथ का सर्जन किया था। यह उनकी उपलब्ध अंतिम रचना है।" (देवाधिदेव रचना, मम मंतव्य, पृ. ७/VII, १६-१०-६४)

विद्वान् मुनिश्री ने मूल के साथ उत्थानिका, अर्थ, विवेचन, टिप्पणी, संगति, छंद परिचय आदि देकर अपने अनुवाद और टीका को पूर्णता प्रदान की है। एक रमणीय भक्ति-रचना का बृहत्तर पाठक समुदाय से परिचय कराने के लिए मुनिश्री जी का सारस्वत प्रयास सचमुच श्लाघ्य है। देवाधिदेव-रचना के छंदों की रमणीयता, और शब्दों का नाद-सौंदर्य निम्न पद में दृष्टव्य है:-

गंधत वर वर्ण वर्ण वर्णों के, वर्ण योग पट कंत छवी।
लेपन शुभ गंध गंध मुख सुंदर, सुंदर वपु झष केतु दवी।
घुम घुम घुमकंत कंत पग, घुंघरू नेवर छण छणकार करै।
गुंजत अभिमाल मालती मोहत मोहत रस श्रृंगार धरै।।

- (देवाधिदेव रचना, पद ५७)

तीर्थंकर देव की अति रमणीय छवि का पान करने को कौन ऐसा होगा, जिसके नैन नहीं तरसेंगे? "रूप रिझावनहारू वह, ए नैनै रिझवार।" वस्तुतः मुनिश्री का यह उत्कृष्ट सटीक संपादन है, जो भक्ति में डूबे सहृदयों को मुग्ध कर देता है।

स्थानकवासी जैन-समाज में समादृत 'बृहदालोयणा' का सुष्ठु संपादन मुनिश्री जी ने किया है। लाला रणजीतसिंह जी उत्तम स्वाध्यायशील सुकवि श्रावक थे, जिन्होंने पद्य-गध में मौलिक और संकलित दोहों-सोरठों का समाहार करके आलोचना की उदात्त भूमिका निर्मित की है। सवैया, गाथा और हरिगीतिका छंदों को भी भावानुसार स्थान दिया गया है। पंडित-रत्न श्री सुमन मुनिजी ने बृहदालोयणा के साथ प्रचलित ज्ञान-गुटका (पद-संकलन) का भी व्याख्यापूर्वक संपादन प्रस्तुत किया है। संग्रह में कबीर, तुलसी, रज्जब आदि संत कवियों के अतिप्रसिद्ध पद भी समाविष्ट हैं। जीवन की अनित्यता और क्षणभंगुरता के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंध में कवि का एक चिंतनप्रधान पद दृष्टव्य है:-

किण कारण तैं हटकरी, पवन काय ते प्रीति।
आवै के आवै नहीं, इनकी याही रीति।।

(ज्ञान गुटका, पद १७)

व्याख्याता के अनुसार – "रे जीव! किस कारण से तूने पवन/श्वास-उच्छवास पर आधारित पवन रूप शरीर पर दृढ़ स्नेह किया है? यह श्वास आये या नहीं, उनकी यही रीति है। आज से दो हजार वर्ष पूर्व संत तिरुवल्लुवर ने भी साँसों की अनिश्चितता के संबंध में कुछ ऐसे ही भाव व्यक्त किये थे। संत कवयित्री सहजोबाई की वाणी भी इसी सत्य को स्वीकारती है। यथा:

सहजो गुरु प्रताप से ऐसी जान पड़ी।
नहीं भरोसा स्वाँस का आगे मौत खड़ी।।

(सहजोबाई)

साहित्य-स्रष्टा के रूप में मुनिश्री सुमन कुमार जी द्वारा विरचित चरितों को लिया जा सकता है। पंजाब श्रमण-संघ गौरव आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज की जीवनी लिखकर मुनिश्री ने अपने लेखकीय दायित्व का निर्वाह तो किया ही है, अपनी परंपरा के गरिमामय आचार्य के वर्चस्वी व्यक्तित्व को रूपायित करके श्रमण संघीय इतिहास के एक उज्जवल अध्याय को अक्षरांकित किया है। चरित-नायक की जीवनी के माध्यम से पंजाब की श्रमण-संघीय परंपरा के गौरवशाली इतिहास पर प्रकाश डालते हुए आद्याचार्य श्री हरिदासजी महाराज को श्रद्धापूर्वक स्मरण किया गया है, जिनका समय अठारवीं शताब्दी के मध्य तक पड़ता है। इन्हीं संत शिरोमणि की साधु-परंपरा में पूज्य पं. श्री रामलालजी महाराज के शिष्य बने चरित नायक श्री अमर सिंह जी महाराज। बीसवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर आज तक का पंजाब स्थानकवासी श्रमण वर्ग, मुनिश्री के अनुसार, आचार्यश्री द्वारा प्रदान किया गया सुफल ही है। तेजस्वी युग पुरुष के जीवन को पर्याप्त शोधपूर्वक बीस अध्यायों में समेटा गया है। इस जीवन-चरित को पढ़कर प्रतीत होता है कि कैसी विषय परिस्थितियों में अनेक गतिरोधों को झेलकर आचार्य प्रवर ने अपनी परंपरा का रक्षण, संरक्षण और संपोषण करते हुए अपने आचार्यत्व की गरिमा स्थापित की थी। जीवनी में अनेक प्रेरक संस्मरण भी उद्धृत किये गये हैं, जिनमें आचार्य श्री की तर्कणा शक्ति, वाक्पटुता, शास्त्राध्ययन गंभीरता, सरलता, मनस्विता आदि गुणों की उत्कृष्ट झलक दिखाई पड़ती है। जंडियालागुरु (अमृतसर) में हुई शास्त्र-चर्चा के दौरान अपनी सरलता, निर्भीकता और सत्यवादिता से उन्होंने संस्कृत पंडित का हृदय् जीत लिया था। नतमस्तक होकर पंडितजी ने कहा था:" महाराज! आपकी आज्ञा हेतु मैं श्रमार्थी हूँ, आप जैसे सच्चे पुरुषों से शास्त्रार्थ करना बुद्धिमत्ता नहीं है। इस मताग्रह के वातावरण में सत्य बात कहना महापुरुष का ही लक्षण हो सकता है।" (दे. पंजाब श्रमण-संघ गौरव, पृ.३०) ऐसे महान् परंपरा रक्षक धर्माचार्य के जीवन के प्रेरणाप्रद प्रसंगों को अत्यंत श्रद्धा और भव्यता के साथ चित्रित करते हैं मुनिवर श्री सुमन कुमारजी। समीक्ष्य पुस्तक वस्तुतः जैन साधु परंपरा के महिमामय इतिहास का गौरव ग्रंथ ही है।

वास्तव में यह शब्दांकन एक मनीषी संत की भव्य साहित्य-साधना की झलक मात्र है। उनके संपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन पाठक को सारस्वत यात्रा का अलौकिक आनंद प्रदान करता है। पूज्य सुमनमुनिजी स्वाध्याय-मणि हैं, ज्ञान की खनि हैं। अपनी संपूर्ण श्रद्धा, निष्ठा, और सात्विकता के साथ वे विगत पचास वर्षों से वाङ्मय तप करते आ रहे हैं। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान की अमूल्य कृति-मणियाँ प्रदानकर जैन समाज को उपकृत किया है। सत्य, औदार्य, आत्माभिमान के गुण उन्हें अपने गुरुजनों की शानदार विरासत से प्राप्त हुए हैं। ऐसे तेजस्वी संतों की मनस्विता को लक्ष्य करके ही किसी कवि ने कहा होगा:-

"सदाकत के लहू से सींचकर पाले हों जो गुंचे,
खिज़ाँ में भी कभी वो फूल कुम्हलाया नहीं करते।"

पूर्व निदेशक, आकाशवाणी, चेन्नई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुमनमुनिजी म. से एक लघु साक्षात्कार

मेट्टुपालयम में श्री सुमनकुमार मुनिजी का ४७ वां दीक्षा-दिवस मनाया गया। "मंथन" मासिक पत्र कोयम्बत्तूर (तमिलनाडु) के सम्पादक गौतम कोठारी द्वारा उस अवसर पर १-११-६७ को लिये गये साक्षात्कार का एक अंश।

○ **दीक्षा दिवस के इस महान् अवसर पर आपको कैसा लग रहा है?**

मेरे लिये यह दिवस बस एक स्मृति दिवस भर है। इस दिवस पर स्मृतियाँ मानस पटल पर अंकित हो जाती है। जब भी पिछले ४७ वर्षों के दीक्षाकाल पर दृष्टिपात करता हूँ तो जीवन में धर्म के प्रति अनुराग और भी बढ़ जाता है।

○ **साधु बनने की आपको प्रेरणा कैसे हुई?**

पारिवारिक कारणों से, पिता, माता एवं भाई की असामयिक मृत्यु हो गयी। उससे मन उद्विग्न रहने लगा। जाति से जैन न रहते हुए भी जैन संतों के सम्पर्क में आने से वैराग्य भावना जागी। इस प्रकार जैन साधु बन गया।

○ **आपने अब तक संपूर्ण भारत की पद यात्रा की है। विभिन्नता में एकता के प्रतीक भारत की सामान्य जनता के बारे में आपके क्या विचार हैं?**

सामान्य जनता में भाईचारा और सौहार्द की भावना है। मानव के प्रति सहानुभूति की भावना है। पर दुर्भाग्य वश राजनेता वर्ग-भेद की स्थिति पैदा कर देते हैं। इससे जातीय भावना उग्र हो जाती है।

○ **जहाँ आपके अनूठे व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता आपकी स्पष्टवादिता है वहीं आपकी पैनी दृष्टि और आपके सुलझे विचार आपको विशिष्ट बना देते हैं। क्या तथाकथित परम्परागत अनुदारवादियों ने आपके इस रूप को स्वीकार किया?**

हाँ, उन्हें मेरी स्पष्टवादिता रास नहीं आयी। उनकी इस वृत्ति से वैयक्तिक जीवन को भले ही लाभ पहुँचा हो सामाजिक हानि अवश्य हुई। जब कभी किसी कार्य को करने के लिये आगे आये तो हतोत्साहित करने का प्रयास किया गया। पूज्य गुरुदेव का वरदहस्त मुझ पर रहा। उससे मुझे हमेशा सम्बल मिला।

○ **कुछ साधु संतों की एक दीर्घ काल के बाद अपना आश्रम बनाने की चाह रहती है। ये आश्रम उनकी साधना के केन्द्र होते हैं। इस सन्दर्भ में आपकी क्या सम्मति है?**

मेरी समझ में किसी भी साधु को चल अथवा अचल संपति का मोह नहीं रखना चाहिए। साधु का कोई वैयक्तिक जीवन नहीं होता। वह समाज और धर्म से जुड़ा हुआ होता है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है।

○ **मेट्टुपालयम चातुर्मास की क्या उपलब्धि रही?**

उनकी धर्मानुरागिता तथा साधु-संतों की सेवा की भावना से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। मेट्टुपालयम चातुर्मास में मुझे साधना का अवसर मिला, इससे आत्म संतोष हुआ। यहाँ बालकों तथा युवानों का उत्साह देखते ही बनता है।

○ **दक्षिण का जैन समाज आपको कैसा लगा?**

यहाँ मैंने समाज को संगठित रूप में देखा। हाँ यहाँ मैंने रूढ़िवादिता और दिखावा भी देखा। सामाजिक भावना का अभाव भी देखा। फिर भी दक्षिण का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन समाज दूसरे क्षेत्रों के जैनसमाज से अपेक्षा कृत श्रेष्ठ है।

○ **क्या जैन समाज में एकता संभव है?**

जैन समाज में एकता संभव नहीं है। औपचारिकता अधिक है ठोस कार्यों का अभाव है। रचनात्मक कार्यक्रम भी हमारे पास नहीं है। हम औपचारिक अधिक हैं इसलिये एकता संभव नहीं है। वैसे भी जब तक हम दुराग्रहों से मुक्त नहीं होंगे, एकता संभव नहीं होगी। हाँ, यदि वर्तमान वैचारिक स्थिति में यदि कोई बदलाव आता है तो एकता संभव है।

○ **हम भीनमाल प्रकरण पर आपकी प्रतिक्रिया जानना चाहेंगे?**

शांति और अहिंसा प्रिय जैन समाज समय आने पर न्यायोचित मांग के लिये संघर्ष भी कर सकता है। शाँति और अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है। फिर हमारे धर्म स्थानों पर पुलिस को जाने से पूर्व मुखियाओं से अनुमति लेनी थी।

○ **क्या यह सच है कि मुनिवर्य ने आत्म हत्या की थी?**

हाँ, अपमान का गरल पीना कोई सहज नहीं है। आत्मग्लानि से कभी-कभी मानव आत्महत्या जैसा पाप कर लेता है।

○ **हाल ही में एक अंग्रेजी साप्ताहिक "दी वीक" ने जैन धर्म गुरुओं पर बहुत ही घटिया किस्म के आरोप लगाये। यहाँ तक कि कुछेक धर्म-गुरुओं के चरित्र पर भी छींटा कसी की।**

आज पीत पत्रिकायें बढ़ रही है। ऐसी पत्रिकाओं से हम कानूनी लड़ाई तो नहीं लड़ सकते लेकिन सामूहिक तौर पर संगठित होकर ऐसी साजिशों का मुँह तोड़ जबाव दे सकते हैं।

○ **क्या जैनों को अल्पसंख्यकों का दर्जा दिया जाना चाहिए?**

आज जैन धर्म और समाज राजनयिकों की उपेक्षा का शिकार हो रहा है। हम भी भारतीय नागरिक हैं फिर अधिकार माँगने में ये संकोच क्यों? हम जन्म से जैन हैं और जैन भारत में अल्पसंख्यक हैं। ब्राह्मण संस्कृति और श्रमण संस्कृति दोनों एक दूसरे से भिन्न है। जैन धर्म और समाज को तभी सम्मान मिलेगा जब जैनों को विधिवत् अल्पसंख्यक घोषित किया जाय।

(श्री सुमनकुमार मुनि के दो टूक उत्तर से हम बहुत प्रभावित हुए। जब हम मुनिवर्य के दर्शन करते हैं तो किसी 'अल्हड़-फकीर' की याद ताजा हो जाती है। श्री सुमन मुनि जी जैसे महान सन्तों के दिग्दर्शन में जैन धर्म की विकास यात्रा अनवरत रूप से चल रही है।) ●●●

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमन वचनामृत

गुरु

प्रस्तुति : **श्रीमती विजया कोटेचा,** अम्बत्तूर, चेन्नई

★ "गुरु" सदा ही उपदेशक होते हैं। उनके उपदेश की महति आवश्यकता है। उनके उपदेश से ही "जिन" का स्वरूप ज्ञात हो सकता है। यदि उनके उपदेश का हमें निमित्त न मिले तो फिर "उपकार" का क्या अर्थ रह जाएगा? उपदेश से ही "जिन भगवान" का स्वरूप अर्थात् "स्व-पर" का अर्थ-परमार्थ समझा जा सकता है।

★ गुरु शब्द एक व्यापक अर्थ को लिए हुए है। वह उदार है, सार्वभौम है। मार्ग दर्शक के रूप में इस शब्द को सर्वत्र सम्मान दिया गया है। धर्म क्षेत्र के अतिरिक्त विद्या, कला, शिल्प आदि सभी क्षेत्रों में भी गुरु का स्थान सर्वोपरि है।

★ वस्तुस्थिति / स्वरूप को न समझने, ज्ञान नहीं होने के कारण ही व्यक्ति ने अनंत दुःख को प्राप्त किया है। किन्तु जब सद्गुरु-चरण की शरण ली तो उसे वस्तु स्वरूप/स्व-पर को जानने की दृष्टि मिली।

★ गुरू वही होता है जो हमारा मार्ग बदल दे, जो हमारे जीवन में आमूलचल परिवर्तन ला दे।

★ सद्गुरु की चरण उपासना, हमारे लिये बहुत बड़ा आलंबन है, सहारा है, क्योंकि गुरु मार्गदर्शक होते हैं। उनके पथ निर्देशन में हम चलते रहें तो पथ-भ्रष्ट नहीं होते तथा हमें वस्तु स्वरूप का ज्ञान भी प्राप्त होता है।

★ जिस प्रकार सूर्योदय होने / प्रकाश होने पर भी आँख के बिना नहीं देखा जा सकता, इसी प्रकार कोई कितना ही चतुर क्यों न हो, निर्देशक/गुरु के अभाव में तत्त्वदर्शन प्राप्त नहीं कर सकता।

★ सद्गुरु की संगति/उपासना से ही हमें मोक्ष सिद्धि का मार्ग मिल सकता है।

★ सद्गुरु से ही आत्म-परमात्म, स्व-पर, जड़-चेतन का अलौकिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। किन्तु यह तभी प्राप्त होता है जब व्यक्ति/जिज्ञासु साधक अपने पक्ष, विचार मोह, परम्परागत मान्यता, पूर्वाग्रह को छोड़ देता है, अन्यथा नहीं।

★ गुरु द्वारा प्रदत्त दृष्टि ही भगवान् से साक्षात्कार कराने में सक्षम है।

★ जिसमें ज्ञान, चारित्र, सन्तोष, शील, आदि गुण विद्यमान हो, ऐसे गीतार्थ पुरुष को 'सद्गुरु' कहते हैं।

★ हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया सद्गुरु के बिना उपलब्ध नहीं हो सकती।

★ गुरुजन कष्टसहिष्णु होते हैं। उनको कष्ट सहने का अभ्यास होता है, इसलिये वे दूसरों को भी वही शिक्षा देकर उनके परीषह-तप्त मन को प्रशांत करते रहते हैं।

★ हम गुरु उसे ही स्वीकार करें जो हमारे मन को बदल दे, वासना एवं कषाय की ग्रन्थियों को खोल दे, जो हमें एक दिशा दे। जो हमारे जीवन को मोड़ देता है वही सच्चा 'गुरु' होता है।

★ आत्मज्ञान, समदर्शिता, उदयक्रम से विचरण, अपूर्व वाणी, परमश्रुत – ये पांच लक्षण 'सद्गुरु' में होते हैं।

★ गुरु बांटता नहीं, गुरू तोड़ता नहीं, गुरू तो मनों को जोड़ता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

★ असली गुरू तो वही है जो हमें निरंतर मोक्ष-मार्ग की प्रेरणा देते हैं किंतु पंथवाद का/पक्षपात का जहर नहीं उगलते। यदि गुरु ही पक्षपात का जहर उगलने लगेंगे तो फिर अमृत कौन बरसायेगा? जैन धर्म और दर्शन की जो आत्मा है, उसमें टेढ़ापन नहीं है, न उसमें स्थानकवासी का भेद है, न तेरापंथ का है, न उसमें मूर्तिपूजक का भेद है और न ही श्वेताम्बर या दिगम्बर का। इस समाज को तो हमारी संकीर्ण दृष्टियों ने / विचारों ने ही विभाजित किया है।

★ गुरु का अर्थ है – अध्यात्म जीवन के लिये सहारा। गरु और शिष्य की परम्परा तो एक जीवन-परम्परा है। साधना-मार्ग में लड़खड़ाते हुए को सहारा देने वाले सिर्फ गुरु ही होते हैं।

★ मानसिक चंचलता को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय है – "गुरु आज्ञा" गुरु के निर्देश का सजग रह कर पालन करना/इसके लिए अपनी इच्छा को गौण करना अनिवार्य है।

★ सद्गुरुशरण-ग्रहण से व्यक्ति अपनी बुरी आदत, बुरे विचार तथा बुरे कर्म से सहज ही बच जाता है।

★ सत्य की प्राप्ति, जिज्ञासा की पूर्ति गुरु-सम्मुख होने से ही होती है।

★ गुरु ही मानव को दानवी वृत्ति से दूर कर आध्यात्मिक वृत्ति में संलग्न करते हैं ताकि मनुष्य नारकीय/पशुवत तथा दानवी जीवन व्यतीत न करके मानवता के साथ जीए।

★ जो व्यक्ति मत और दर्शन का आग्रह छोड़कर सद्गुरु के कथानुसार आचरण करता है, उसे शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

❀ ❀ ❀

धर्म और जीवन व्यवहार

★ जीवन व्यवहार में कठोर वचन, क्रोध के वचन, अहंकार के वचन काम नहीं देते। अविवेकपूर्ण वचनों से मुसीबतें खड़ी हो जाती हैं, आदमी विषद-ग्रस्त हो जाता हैं। इसके विपरीत जीवन व्यवहार में नम्रता धारण करने से व्यक्ति संकटों से उबर जाता है।

★ जीवन व्यवहार में हमारे खाते अलग-अलग हैं। झूठ बोलने के खाते अलग हैं, सच बोलने के खाते अलग हैं, कम तोलने-मापने के अलग हैं। अमानत में खयानत करने के अलग खाते हैं और धर्म स्थान में बैठ कर धर्म करने के खाते अलग हैं। क्या है यह सब? बहुत बड़ा मजाक है यह, जीवन को विद्रूप बनाने का। जब हम जीवन-व्यवहार में धर्म को नहीं लाते तब व्यवहार में से दुर्गन्ध आती है ; तो दूसरों को भी धर्म के प्रति नफरत हो जाती है कि धर्म ने इन्हें क्या सिखाया? धर्म ने इन पर क्या प्रभाव डाला है?

★ धन और धर्म भिन्न-भिन्न वस्तुऐं है। धन तो देह के सुखोपयोग और जीवनयापन के लिए है लेकिन धर्म आत्मा को शाश्वत शांति देने के लिये होता है।

★ अक्सर कहा – सुना जाता है कि मरने के बाद स्वर्ग-सुख मिलता है, देह त्याग के पश्चात् ही मोक्ष-सुख प्राप्त होता है आदि-आदि। किन्तु तत्त्व दृष्टि से विचार किया जाये तो वर्तमान जीवन जीते हुए यदि सुखानुभूति नहीं है, तो देह छोड़ने के बाद सुख की आशा करना मृगतृष्णा की भाँति दुराशा मात्र है। जो व्यक्ति वर्तमान में अपने क्रिया-कलापों से सन्तुष्ट हो वर्तमान जीवन में सुख-सन्तोष से रहना चाहिये, भविष्य में स्वतः ही आनंद प्राप्त हो जाये।

★ बहुत काल तक शंका का समाधान न मिलने पर तत्त्व के प्रति असन्तोष उत्पन्न हो जाता है। वह असन्तोष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही कालान्तर में अनास्था में बदल जाता है, आस्था के अभाव में जीवन व्यवहार भी श्रद्धाविहीन हो जाता है।

★ जिन्दगी में उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। वस्तुओं का कहीं प्राचुर्य है तो कहीं अभाव। अधिक साधनों वाला बहुत ऊंचा है, और थोड़े साधनों वाला नीचा है यह विचार सही नहीं है। अमीर-गरीब, छोडा-वड़ा आदि समाजिक व्यवस्था का अथबा मानवीय विचार वाला व्यापार है और कुछ नहीं है। वस्तु को, धन को तो विशेषण वना दिया गया है, आदमी की उच्चता के लिये। धन का अभाव या प्रभाव जब हम पर हावी नहीं हो, तभी जागरूक जीवन जीने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

★ जब तक जीवन उच्च स्थिति में नहीं पहुँचता है, तब तक तो जीने के लिये एक-दूसरे का सहयोग, लेना-देना एक धर्म है कर्त्तव्य है। व्यक्ति को सहयोग लेना भी होता है और देना भी होता है। यही सहानुभूति, सहयोग, तथा सहअस्तित्व के बनाये रखने का एक मार्ग है।

★ मनुष्य का भाग्य जब दुर्भाग्य में परिणत होता है, जब बुरे कर्मों का उदय होता है, तब दिन दुर्दिन हो जाते हैं। उस समय सब बातें विपरीत हो जाती हैं, दुश्मन भी प्रसन्न हो जाते हैं, इस दशा को देख कर लोग भी पराये हो जाते हैं और लेनदार कर्ज लौटाने का आग्रह करते है। ऐसी स्थिति में सुख कहाँ? शरीर का ढांचा हिल जाता है, चरमरा जाता है, क्योंकि प्रति समय दुख ही दुख/चिंता ही चिंता सताती है। खुशी शुष्क हो गई, हृदय में दुःख की शूलें बढ़ गई। विपदा ग्रस्त व्यक्ति की लगभग यही दशा होती है। विपत्ति में पड़े व्यक्ति को विपदग्रस्त ही सहानुभूति जताता है कि – "भाई! तू क्या सोच रहा है? मेरी तरफ देख, मैं भी विपद ग्रस्त हूँ।" वह हमदर्दी जतायेगा, उसकी कुछ मदद करने की कोशिश करेगा। लेकिन संपति में रहने वाला व्यक्ति, विपत्ति में रहनेवाले की मनःस्थिति को क्या समझ पाएगा? और उसकी कैसे मदद करेगा?

★ जब तक मतलब निकलता रहे, स्वार्थ पूरा होता रहे सब अपने हैं...! जब मतलब न निकले, स्वार्थ पूरा न हो, उस समय कौन किसका होता है?

★ जीवन में गुणों का महत्त्व है। विना गुण के बस्तु का भी अवमूल्यन हो जाता है, उसी प्रकार जीवन का भी। गुण वस्तु का स्वभाव और धर्म होता है, जो उससे कभी अलग नहीं होता, वल्कि आवृत होता है, प्रयोग से, संसर्ग से। दूध में दुग्धत्व घृत उसका गुण है किन्तु मन्थन से वह दुग्ध सपरेटा होकर विकृत हो जाता है, उसका भी अवमूल्यन हो जाता है। गुण से ही व्यक्ति का गौरव है।

★ किये हुए उपकार को न मानना अकृतज्ञता है। माता-पिता/गुरूदेव, पति, पोषक/मित्र आदि द्वारा किये गए उपकारों को स्वीकार न कर विपरीत प्रतिकार करना "मेरे लिये क्या किया है, इन्होंने?" मन की यह अभिमान वृत्ति है जो सद् गुणों की विनाशक है।

★ कुछ रीतियाँ-नीतियाँ एवं परम्पराएँ सामायिक होती हैं और वे समयानुसार बनती-बिगड़ती रहती हैं। क्योंकि उनके पीछे वक्त का तकाज़ा होता है, सामयिक आवश्यकता, युग की मांग होती है।

★ गृहस्थ और साधु एक ही मुक्ति मार्ग के राही हैं, अन्तर इतना ही है साधु तेज/त्वरा गति से चलता है और गृहस्थ मन्द/मंथर गति से। उसका कारण है कि गृहस्थ पर पारिवारिक, सामाजिक, व्यवहारिक, राष्ट्रीय आदि कार्यों के दायित्व रहते हैं। उनका निर्वाह करते हुए वह धर्म साधना करता है जब कि साधु उन सम्पूर्ण दायित्वों से मुक्त है।

★ इस काल का क्या भरोसा? पिता-पितामह बैठे रहते है, पुत्र, पौत्र की मृत्यु हो जाती है। वे उठकर चले जाते है सदा के लिये। यदि उन बाप/दादों को 'नाथ' कहलाने का अधिकार है तो फिर उनको पुत्र पौत्रों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभाल कर रखना चाहिये था। किसी बाप ने अपने बेटे को रखा है क्या अब तक? या किसी पुत्र ने अपने पिता को दायमी-कायगी रखा है? उत्तर – नहीं। तो फिर नाथ कैसे? यह केवल एक सांयोगिक सम्बन्ध है, पिता और पुत्र का एक जगत का रिश्ता है / नाता है। संयोग मिलता है तो इकट्ठे हो जाते है। जब वियोग आता है तो संबन्ध टूट जाते है। संबंध टूटने के बाद कोई जोड़ने वाला नहीं है।

जब वृक्ष हरा-भरा होता है तो पक्षी गण आ-आकर निवास करते हैं उस पर। लेकिन पत्र ; पुष्प, फल-विहीन वृक्ष खड़ा हो कहीं तो उस पर पक्षी भी आकर नहीं बैठते। क्यों कि छाया की शीतलता, फल आदि वहाँ नहीं मिलते। दुनिया की स्थिति भी ऐसी ही है।

❀ ❀ ❀

नारी

नारी जीवन के मूल्य को, उसके अस्तित्व को समझकर, स्वीकार करके ही भगवान् महावीर ने अपने धर्मसंघ में/ तीर्थ में पुरुष के साथ ही नारी को स्थान दिया था। उन्होंने किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं किया था, जब कि समकालीन तथागत बुद्ध ने अपने संघ में नारी को सम्मिलित करने में संकोच किया था। शिष्य भिक्षु आनन्द के निवेदन को नकार दिया था। अन्ततः उन्हें इस आग्रह को स्वीकार करना ही पड़ा, किन्तु अन्तर में उपेक्षा ही थी।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ पर देवता भी रमण करते हैं। अतएव नारी का जो स्थान है - बना रहना चाहिये। क्योंकि नारी "माँ" है।

कहाँ किस स्थान पर नारी की जैन धर्म ने निंदा की है? लेकिन विकृत जीवन चाहे नारी का हो या पुरुष का, साधु का हो या साध्वी का हो, जहाँ व्यक्ति जीवन मार्ग से च्युत हो गया, मार्ग भ्रष्ट हो गया, उसकी तो भगवान महावीर ने ही नहीं, सभी ने आलोचना की है।

जाति समाज और राष्ट्र में समय-समय पर प्रभाव प्रबुद्ध नारी जीवन का ही रहा है, जिसने स्वयं के साथ व्यक्ति और समाज को नई दिशा दी है, मात्र धर्मक्षेत्र में ही नहीं, अपितु कर्म क्षेत्र में भी वह अग्रणी रही है। नारी जो पतिव्रता है, किसी भी सम्पद-विपद अवस्था में रहे, चाहे अमीरी में हो या गरीबी में हो संयोग में हो या वियोग में, कभी भी अपने पति को नहीं भूलती है।

संघ समाज के दो पक्ष है - एक नारी का, एक पुरुष का। एक साधु का और दूसरा साध्वी का, इसमें अकेला साधु या साध्वी हो और श्रावक-श्राविका न हो तो कैसे बात बन सकती है? नारी या साध्वी के अभवा में सर्वांगीण तीर्थ नहीं बन सकता।

❀ ❀ ❀

अन्तर्जागरण

अन्तर्जागरण के बिना भौतिक आकर्षण और परिणतियों का सम्बन्ध मन से अलग नहीं हो सकता, वह किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ ही रहता है। "मनसि शेते मनुष्यः।" अर्थात् जो चिन्तन मनन में लीन रहता है वह मनुष्य है।

मन, बुद्धि, अहंकार आदि अन्तःकरण की वृत्तियों के जागृत होने का भाव या अवस्था जागरण है। जागरण का भाव असंयम रूप "निद्रा" से जागना है।

आत्मा जब तक बाहरी उपाधि, मन व इन्द्रियों से पराधीन रहती है तब तक वह स्वतन्त्र, स्वाधीन नहीं होती। उसमें दिव्य प्रकाश का जागरण नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जागरह नरा ! निच्चं जागरमाणस्स बड्ढते बुद्धि" – हे मनुष्यों ! सदा जागते रहो। जागृत रहने वालों की बुद्धि बढ़ती है। यह बुद्धि तत्त्व निर्णायक है। कषाय-विषय युक्त मन और बुद्धि विकृत होते हैं। अतः उनके प्रभाव से उचित निर्णय नहीं लिया जा सकता। दुर्योधन रावण आदि इसके ज्वलंत उदाहरण है।

मूर्च्छा में जिस प्रकार होश-हवाश नहीं रहता, उसी प्रकार इस कषायाभिभूत प्राणी को भी जागरण नहीं रहता।

हर व्यक्ति मन से तो चिंतन करता ही रहता है, किन्तु जागृत अवस्था का चिंतन/सोच सम्यक् होता है। सुप्तावस्था में या प्रमाद की अवस्था में चिन्तन सम्यक् नहीं होता।

यदि तू मरना चाहता है, तो मेरे पास आ, मैं तुझे मरने की कला सिखाऊंगा। मैं जिस ढंग से कहूँ तू उसी ढंग से जी और मर तो मर कर के भी अमर हो जायेगा। यह मौत क्या मौत है, जो बार बार मरना और बार बार जीना पड़े। ऐसी मौत आनी चाहिये कि फिर कभी मरना ही न पड़े।

स्वप्न के समान संसार का स्वरूप है। जिस प्रकार सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न में नाना प्रकार के दृश्य देखता है और स्वयं को राजादि के रूपों में देखता है, किन्तु जागृत होते ही वे सब दृश्य लुप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार जगत् भी बनता है, बिगड़ता है, एकावस्था में नहीं रहता।

❀ ❀ ❀

ज्ञान

हम कहते हैं मकान बहुत सुन्दर है, बहुत अच्छा है किन्तु खड़ा किसके आधार पर है? नींव के आधार पर। उस नींव को तो याद ही न करें। केवल ऊपर भवन के निर्माण को देख कर ही कहें तो एक पक्ष होगा, एकाकी दृष्टिकोण होगा। जैनदर्शन ने वस्तु को एकाकी कोण से देखने को 'अपूर्ण' ज्ञान कहा है। उसे अनेक दृष्टियों से देखना चाहिये, क्योंकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है।

❀ ❀ ❀

आत्म - दर्शन

जीवन का चरम लक्ष्य अर्हत् अवस्था प्राप्त करना है, न कि देवत्व को प्राप्त करना। ऐसी परम अवस्था में **"अप्पा सो परमप्पा"** आत्मा ही परमात्मा बन जाता है।

अध्यात्म जीवन का मूल आधार 'आत्मा' है। इसका साक्षात्कार करना ही साधना या धार्मिक अनुष्ठानों का लक्ष्य है। स्वात्मा की उपलब्धि ही सिद्धि है।

आत्मा जब तक शरीर, इन्द्रियों एवं मन से प्रभावित रहता है, उसके आश्रित रहता है, पूर्ण स्वावलंबी नहीं होता।

हमारी आत्मा अनेक बन्धनों/माया, अविद्या, अज्ञान के आवरणों से आच्छादित है। अनन्त शक्तिमान् होते हुए भी उसको इस बात का भान नहीं होता कि मैं अनन्त शक्ति वाला हूँ लेकिन जब ज्ञान प्राप्त होता है, आवरणों के सारे बन्धन टूट जाते हैं।

हम जितना अधिक विभाव इकट्ठा करते हैं, दुखी होते है। यह जीव (आत्मा) एक से दो अर्थात् जीव व पुद्गल दोनों का सम्मिश्रण हो जाता है, तो दुख ही दुख उत्पन्न हो जाते हैं। आत्मा अकेली रहे और जड़, अज्ञान, अविद्या से दूर रहे तो अनन्त सुख का अजस्र स्रोत निरन्तर प्रवाहित होता रहेगा।

जब आंखों के सामने विषम परिस्थिति आये और उस समय हमारे मन में राग द्वेष न आये एवं मन सम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति में रहे तो समझना चाहिये कि मोक्ष के मार्ग में चल रहे है, लेकिन आँख के देखते ही, परिस्थिति के वदलते ही मन में कषाय भाव जागृत हो जाये तो समझो हम जन्म मरण के चक्कर में यू ही भटकते रहेंगे।

कषाय ही जन्म मरण का मूल कारण है। देह धारण करना, देह को छोड़ना, बार-बार जन्म लेना और मरना यही दुख का कारण है।

जो अपने शरीर में आत्मा/जीव का अनुभव करता है वह अन्य शरीरस्थ आत्माओं में भी वैसा ही आत्म-भाव अनुभव करता है।

व्यक्ति अन्य स्थान, व्यवहार क्षेत्रों में पाप, कर्म कर लेता है किन्तु उसके लिये पश्चाताप और प्रायश्चित करके धर्मस्थान में बैठकर उसे छोड़ता है, शुद्धिकरण करता है किन्तु धर्मस्थान में जो व्यक्ति पाप करता है, उसके पाप का मैल वज्र की भांति कठोर हो जाता है, जिसे दूर करना अति कठिन होता है।

जिन्हें जीने की तृष्णा नहीं, मरण का भय नहीं, जिन्होंने लोभ आदि कषायों को जीत लिया, और जिनका मोक्ष के उपाय में प्रवर्तन है, वे आत्म-सिद्धि के मार्ग के उत्कृष्ट पात्र हैं।

परद्रव्य अर्थात् धन, धान्य, परिवार व देहादि में अनुरक्ति होने से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य अर्थात् अपनी आत्मा में लीन होने से सुगति होती है।

यह शरीर अन्य है, मैं अन्य हूँ तथा बन्धु-बांधव आदि भी अन्य है ऐसी अनुभूति जिसे हो गई है, वह आत्मज्ञानी है। आत्मज्ञान वाला व्यक्ति यही अनुभव करता है कि – ज्ञान-दर्शन आदि गुणों से संयुक्त मेरी आत्मा ही शाश्वत है शेष पदार्थ पौद्गलिक हैं, संयोग लक्षण वाले हैं।

जिसने प्रभु को अपने हृदय में बसा लिया है, उसे प्रभु को याद करने की जरूरत नहीं रहती। उसका मन तो निरन्तर अखण्ड रूप से उस प्रभु के स्वरूप में ही तन्मय रहता है, एकाग्र/लीन रहता है। कैसे? जैसे पनिहारी का घट में, नट को अपने संतुलन में, पतिव्रता नारी का पति में, चक्रवाक पक्षिणी का सूर्य में प्रतिक्षण ध्यान रहता है।

शुद्ध उपयोग से की गई क्रिया/धर्मानुष्ठान कर्म निर्जरा का कारण है, इसलिये आत्मा ही चारित्र धर्म है।

जाति तो बाह्य रूप है, जाति, जन्म और शरीर निर्माण माता-पिता आदि के परिचयार्थ हो सकते हैं किन्तु अन्तर्मन/हृदय का परिचय तो उसके ज्ञान/ध्यान/उपदेश, विचार, वाणी से होता है। जिस प्रकार म्यान का मूल्य नहीं होता, इसी प्रकार जाति और देह का भी मूल्य नहीं होता विदेही आत्मा का अनुभव करो, साध्य आत्मा है, देह तो साधन है।

❀ ❀ ❀

स्वच्छन्दता

स्वच्छन्द वृत्ति मूलतः मोह की उपज है।

स्वच्छन्दता/उच्छृंखलता/उदण्डता को दूर करके ही व्यक्ति आत्मभावों को प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार कवचधारी शिक्षित अश्व सुरक्षित रहता है, इसी प्रकार साधक अपनी स्वच्छंदता का निरोध करके ही सर्व प्रकार के बंधनों से मुक्त हो सकता है।

जो अपनी इच्छाओं का निग्रह नहीं करते हैं और स्वच्छन्द गति से विचरण करते हैं, वे आत्माएँ कर्म जाल में बंधकर विविध भवों में भटकती हैं।

व्यक्ति अपनी स्वच्छन्दता को रोकता है, निरोध करता है। तो अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संदेह की बात नहीं है।

साधना काल में भी स्वच्छन्दता को यदि प्रश्रय दिया है; तो वह बंधन का ही कारण है, मुक्ति का नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लौकिक और लोकोत्तर जीवन-साधना में स्वेच्छाचार कैसे हितकर हो सकता है? हम चाहे व्यवहारिक जीवन जीएं, या आध्यात्मिक जीवन गृही जीवन हो या सामाजिक जीवन या राष्ट्रीय जीवन में हों किंतु स्वच्छन्दता को रोकना बहुत आवश्यक है।

जीवन में मोक्ष की बात तो बहुत दूर रही, जहाँ समाज के सदस्यों में स्वच्छन्दता आ जाये तो समाज भी नहीं चलता। देश भी छिन्न-भिन्न हो जाता है। उसकी व्यवस्था सब छिन्न भिन्न हो जाती है। फिर आत्मा मोक्ष को कैसे प्राप्त करेगी? कर्म के बंधन से वही मुक्त हो सकता है जो अपनी स्वच्छन्दता को रोक लेता है।

स्वच्छन्दता आ जाने पर जीवन की हर साधना/क्रिया में विकृति आ जाती है।

स्वच्छन्दता का सम्बन्ध किसी जाति/वर्ग विशेष से नहीं, उम्र या किसी वेष और लिंग से नहीं है। इसका सम्बन्ध हमारे ज्ञान से और शुद्ध चेतना से नहीं है। इसका सीधा सम्बन्ध मनुष्य की मन की वृत्ति से है। यह मोह से उत्पन्न मानसिक वृत्ति है।

❀ ❀ ❀

विनय - विवेक

विनय की जीवन में अत्यन्त आवश्यकता है। व्यक्ति चाहे घर में रहे, चाहे घर से बाहर रहे। हर जगह विनय की अपेक्षा रहती है। विनय धर्म है, वह हर समय हमारे साथ रहना चाहिए। चाहें हम धर्म स्थान में हो, या धर्म स्थान से बाहर कहीं भी हो।

विनय का सामान्य अर्थ है – नम्रता, विनम्रता, कोमलता। विनय का और भी अर्थ है अनुशासन, बड़ों की आज्ञा का पालन करना। विनय का विशेष अर्थ है - आचार जो आचरण के योग्य है, उसको स्वीकार करके चलना 'विनय' है।

जाने या अनजाने में कोई अधर्म, विवेकहीन कार्य हो जाये, तो अपनी आत्मा को उससे तुरन्त हटा लेना चाहिये। फिर दूसरी बार वह कार्य न किया जाये। [यही भगवान् महावीर के प्रवचन का सार है]

विषयासक्ति की मंदता, सरलता, सद्गुरु की आज्ञा का पालन, सुविचार, विवेक, करुणा, कोमलता आदि गुण रखनेवाले जीव परमात्म प्राप्ति की प्रथम भूमिका के योग्य हैं।

आत्मार्थी/विवेकी व्यक्ति जहाँ जहाँ जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखें, अपने ज्ञान के माध्यम से उस वस्तु स्थिति को जान कर वैसा ही आचरण करें।

मन में विनय, वाणी में विनय, काया की हर प्रवृत्ति में विनय, इस प्रकार विनय करते-करते एक समय ऐसी स्थिति आ सकती है जब यह आत्मा 'केवल ज्ञान' को पा लेता है।

धर्म का मूल विनय है। विनय के बिना सब शून्य है, निरर्थक है।

भाषा विवेक की कितनी उपयोगिता है? हम क्या कहते हैं? हर समय मेरा-मेरा करते रहते हैं। यही तो देहाध्यास है, वस्तु अध्यास है, ममत्व है, आत्मा को देह मान लिया, और देह को आत्मा मान लिया। यही हमारे बंधन का मूल कारण है।

❀ ❀ ❀

ज्ञान व सम्यक् दृष्टि

ज्ञान दृष्टि से अपने आप को देखो, विषमताएँ स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी।

जिससे तत्त्व जाना जाय, जिससे चित्त का निरोध हो, जिससे आत्मा की विशुद्धि हो, उसे हीं जिन शासन में ज्ञान कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान के नेत्र खोलो, उसके बिना वस्तुस्थिति की वास्तविकता मालूम नहीं होगी। केवल वाणी के गुलाम मत बनो, वाणी का अहंकार भी मत करो।

किसान बीज बोता है, किन्तु बीज बोने से पहले धरती को उर्वरा बना लेता है, उसे जोतता है, दाना बाद में डालता है। धरती को उर्वरा किये बिना, कितना भी बढ़िया बीज वह इस धरती में डालेगा, नष्ट हो जायेगा। बस यही स्थिति है हमारी भी। सुना, पढ़ा, सीखा गया ज्ञान, गुरु द्वारा दिया गया ज्ञान, तब तक अच्छा नहीं लगता, जब तक उसके लिये हमारे हृदय की भूमिका/मानस भूमि तैयार नहीं होती।

जो ज्ञान महानिर्जरा का हेतु है, वह ज्ञान अनधिकारी व्यक्ति के हाथ में आने पर अहितकारी हो जाता है।

पढ़े हुए, सुने हुए ज्ञान पर चिंतन नहीं हो, विचारों का मंथन न हो तो तत्त्व हृदयंगम नहीं होता।

प्रकाश और अंधकार एक साथ नहीं रह सकते। इसी प्रकार ज्ञान और मोह एक साथ नहीं रह सकते। ज्ञान दशा का सबसे बड़ा लक्षण निर्मोह स्थिति है।

निज ज्ञान के प्रकट होने पर मोहक्षय हो जाता है।

जब तक आत्मा 'मैं' और 'मेरे' में उलझा रहता है। तब तक सच्चाज्ञान नहीं होता। यह 'अहन्ता/ममता' की स्थिति है।

ज्ञानोपदेश देना सरल है, किन्तु जीवन में उसका आचरण अति कठिन है, कहना छोड़कर करना सीख ले, तो व्यक्ति विष को भी अमृत रूप में बदल सकता है। यही सन्त वाणी है।

जहाँ तेरे मेरे का भाव मिट जाता है, आत्मज्ञान प्रकट हो जाता है तो व्यक्ति सन्मार्ग की ओर बढ़ता ही जाता है, वह मार्ग में कभी भटकता नहीं, अपने लक्ष्य/गंतव्य तक पहुँच जाता है।

त्याग और वैराग्य के अभाव में अगर किसी को ज्ञान हो जाये, तो वह ज्ञान मिथ्या रहता है।

सम्यक्‌ज्ञान, विचार दृष्टि के अतिरिक्त कोई कानून, कोई सत्ता इस विषमता की खाई को पाट नहीं सकती, इसलिये बहुत आवश्यक है कि व्यक्ति के पास परमार्थ दृष्टि आनी चाहिये।

आत्मज्ञान के बिना, कितनी भी पुण्य की क्रियाएँ या धर्म या धर्म की क्रियाएं कर ली जाय फलहीन हो जाती है।

समदर्शी का अर्थ है – बराबर देखने वाला। छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब, अपना-पराया, उन्हें देखने के जो भाव हैं अन्तरदृष्टि है, वह उनके प्रति यथार्थ, पक्षपात रहित होनी चाहिये। बस इसी को कहते है - समदर्शिता।

सम्यकदृष्टि वही है जिसका मन प्रतिकूल परिस्थिति में उत्तेजित, अनुकूल परिस्थिति में हर्षित नहीं होता। न हर्ष में राग होता है न उत्तेजना में द्वेष।

समदृष्टि पुरुष परस्पर विरोधी वस्तु को भी जानता/समझता हुआ उस पर राग व द्वेष नहीं करता। जैसे शत्रु और मित्र/अनुकूल और प्रतिकूल/इष्ट और अनिष्ट इन सर्व को जानता है, ज्ञाता है। किन्तु समवृत्ति के कारण रागादि से कर्म-बंध नहीं करता।

समदृष्टि मोही नहीं है, अतः उसे दुख नहीं होता। जिसके तृष्णा नहीं है, उसने मोह को नष्ट कर दिया, अकिंचन है, जिसके लोभ नहीं है उसने तृष्णा का नाश कर दिया, वह अकिंचन है। जिसके पास कुछ नहीं है, उसने लोभ का ही नाश कर दिया है।

सभी जीव जीना चाहते है, मरना नहीं। सबको सुख प्रिय है, दुख अप्रिय। जो उससे निवृत्त होता चला जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, यह अनुकम्पा का परिणाम है और सम्यग दृष्टि का लक्षण है।

असम्यग् दृष्टि में आभास मात्र रहता है और सम्यग् दृष्टि के पास ज्ञान रहता है। यह वृत्ति उसे बराबर प्रेरित करी रहती है।

❀ ❀ ❀

मोह

किसी भी प्रकारके पारिवारिक, सामाजिक, और राष्ट्रीय जीवन में जब विकृति आती है, तो वह मोह कर्म के कारण आती है। कई बार व्यक्ति कह देता है – मुझे कोई मोह नहीं है, वह मोह से दूर है, किन्तु ऐसा वास्तव में नहीं होता। वह किसी न किसी अवस्था में मोह अवश्य रखता है। खानदान की जरासी बात चल पड़े किसी बुजुर्ग के नाम की बात चल पडे तो फिर देखो कैसा तमतमाता है? मोह नहीं है तो छोड़ो इन सब को। फिर क्या फर्क पड़ता है किसी के कुछ कहने से, कहने दो उसको लेकिन नहीं, मोह रहता है। मोह को जीतना बहुत कठिन है।

मोह एक प्रकार का उन्माद है। इसे बड़ी कठिनाई से दूर किया जा सकता है। रावण जैसे विद्वान् पुरुष का उन्माद इसका उदाहरण है, अपना सर्वनाश सामने उपस्थित होते हुए भी उसे दिखाई न दिया। इंग्लैंड (ब्रिटेन) के बादशाह जार्ज पंचम ने एक नारी के मोह में, ग्रेट ब्रिटेन का सिंहासन छोड़ना स्वीकार कर लिया। नेपोलियन, सिकन्दर, हिटलर आदि सभी ने राज्य विस्तार, धन वैभव, अहंता की पुष्टि के लिए, मोह के लिये किया, दर-दर की खाक छानी, भयंकर कष्ट सहे। किसने भटकाया उन्हें? मोह ने।

सब प्रपंच का कारण मोह है। सुख-दुख, आकुलता-व्याकुलता, आदि मानसिक यातनाओं का कारण मोह ही है। मोह आसक्ति रूप है। यह व्यक्ति को पदार्थों में मूर्च्छित कर देता है। मोह के कारण व्यक्ति जीवन के अन्य पक्षों को गौण कर, विवेक शून्य हो, हेय और उपादेय का ज्ञान नहीं रखता।

जिस वृक्ष की जड़ सूख गई हो उसे कितना भी सींचिए वह हरा-भरा नहीं होता, वैसे ही मोह के क्षीण होने पर कर्म भी हरे-भरे नहीं होते।

❀ ❀ ❀

वैराग्य/विराग

वैराग्य उसी का सफल है, जिसको आत्मा का ज्ञान है। आत्मज्ञान के बिना वैराग्य शून्य है। ऊपरी वैराग्य का कोई महत्व नहीं। जिस प्रकार किसी ने भोजन छोड़ा, वस्त्र त्याग दिये और कई प्रकार की उपभोग क्रियाएं त्याग दी, लेकिन उसे आत्मज्ञान नहीं है। आत्मज्ञान के बिना छोड़ा गया एवं किया गया त्याग तो देह का कष्ट हो जायेगा। त्याग ज्ञान पूर्वक करना चाहिये, वही निर्जरा का कारण बनेगा। सकाम निर्जरा होगी कर्म की। अन्यथा वह बालकर्म या अज्ञानकर्म ही कहलायेगा। अतः विराग के साथ सही ज्ञान होना अति आवश्यक है।

जहाँ विराग होगा, वहाँ त्याग सहज ही आ जायेगा क्योंकि इच्छाएँ/वासनाऐं शान्त हो जाने से मन हल्का हो जायेगा। मन का हल्कापन वस्तु को त्यागने में ही रहता है, वस्तु को ग्रहण करने में नहीं।

विराग में आसक्ति भाव का उपशम और त्याग है। विरति/विरमण – इससे आश्रव का निरोध होता है। कर्म निर्जरा के लिये इन्द्रिय संवर, योग संवर आदि से आत्मानुभव प्रकट होता है, इसलिये वैराग्य, त्यागादि और आत्मज्ञान दोनों एक दूसरे के पूरक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैराग्य भावना की आराधना किये बिना कोई भी पुरुष मुक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता।

विराग का अर्थ – विषयों से मन का भर जाना, मन का तृप्त हो जाना है। संसारेच्छा/भौतिक पदार्थों की इच्छा न रह कर चित्त में मोक्षाभिलाषा का उत्पन्न होना, उसी का नाम है - विराग। (वैराग को संवेग के नाम से पुकारा जा सकता है। संवेग यानि **"संवेगो मोक्षाभिलाषा"** आत्मा का मोक्षाभिमुख प्रयत्न संवेग है।

चिरकाल तक भोगों को भोग लेने पर भी जीव की तृप्ति नहीं होती। तृप्ति के बिना, चित्त रिक्त/खाली और उत्कंठित रहता है जैसे – ईंधन से अग्नि। सहस्रों नदियों से समुद्र की तृप्ति नहीं होती, वैसे-ही जीव काम-भोगों, शब्दादि से तृप्त नहीं होता। इसके लिए वैराग्य का शीतल जल ही शांति दे सकता है।

धीर पुरुष और वैराग्य युक्त पुरुष स्वल्प शिक्षावाला, ज्ञान वाला होते हुए भी सिद्ध हो जाता है लेकिन विराग विहीन, सर्वशास्त्रों का ज्ञाता होता हुआ भी सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता।

वैराग्य युक्त पुरुष कर्मों से मुक्त होता है। (विरागस्य भावः वैराग्यम्)

वैराग्य है, तो नियत अच्छी रहती है। जिसकी नियत अच्छी है, उसमें विराग आ जाता है, जिसका मन विषयों से उपरत हो गया – शब्द, गंध, रस, रूप, स्पर्श की आसक्ति छट गई, उसे वैराग्यवान् कहते हैं।

❀ ❀ ❀

क्रिया

किसी भी क्रियानुष्ठान को करने से पहले, उसकी विधि का, उसके स्वरूप का और उसमें लगने वाले जो दोष हैं, उसमें रहने वाली जो त्रुटियाँ हैं, उनकी जानकारी पहले कर लेनी चाहिये।

जिस क्रिया में प्राण रहता है वही क्रिया हमारे जीवन का उद्धार और कल्याण करने में और हमारे मन को, जीवन को मोड़ने में समर्थ रहती है। जब तक हमारी क्रियायें प्राणवान् नहीं रहतीं, विवेक और ज्ञानपूर्ण नहीं रहतीं, तब वे जड़ कहलाती हैं।

जब हम केवलमात्र ज्ञान को प्रमुखता देते हैं। क्रिया को गौण कर देते हैं, तब ज्ञान और विचार पक्ष प्रबल हो जाता है, वहाँ करने-कराने को कुछ नहीं रहता और केवल वचनों की, वाणी की ही मारोमार है।

ज्ञान और क्रिया के समन्वय से मुक्ति होती है और वही मूल मार्ग हमने छोड़ दिया। फिर मुक्तावस्था कैसे आयेगी? कर्म आवरण कैसे दूर होगा? अन्तरज्योति कैसे प्रकट होगी? नहीं होगी। फलतः ऐसे जीव के लिये जो शुष्क ज्ञानी और जड़ क्रियावान् है न तो मोक्ष है और न ही मोक्ष का मार्ग है उसके लिये।

जब अपने पर भरोसा नहीं है तो फिर परमात्मा पर भरोसा कैसे आयेगा? फिर संभ्रांत, दिशा विमूढ़ की भांति इतस्ततः संसार में भटकते रहोगे। इसलिये आत्मा पर विश्वास होना अति आवश्यक है। जहाँ आत्मा का अस्तित्व है, वहाँ पर लोक का अस्तित्व है, लोक है तो वहाँ कर्म का अस्तित्व है, कर्म है वहाँ क्रिया भी है।

❀ ❀ ❀

तप/त्याग

केवल मात्र उपवास करने से इन्द्रियाँ वश में नहीं होती, किन्तु उपयोग हो तो, विचार सहित हो तो वश में होती है, जिस तरह बिना लक्ष्य का बाण निरर्थक जाता है उसी प्रकार बिना उपयोग के तप (उपवास आदि) भी लाभदायक नहीं होता।

तपः क्रिया मान-सम्मान, यशो-कीर्ति आदि ईहलोक और परलोक के लिये नहीं, बल्कि कर्म-निर्जरा, कर्मक्षय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मशुद्धि, मनःशुद्धि के लिये होनी चाहिये।

स्वच्छन्दता से, अहंकार से लोकलाज से, कुल धर्म के रक्षण के लिये तपश्चर्या न करें, आत्मार्थ के लिये करें।

❀ ❀ ❀

राजनेता

आपने कभी ध्यान दिया होगा कि सत्ताधीश लोग जब गद्दी पर बैठे होते हैं तब उनकी दशा और किन्तु जब वे गद्दी से उतर जाते है तब उनकी दशा और हो जाती है। जिस सत्ताधीश में पराय बुद्धि रहती है, वह सदा हीं यश का पात्र होता है, आत्मसन्तुष्ट होता है। जो स्वार्थी होता है वह किसी के भी प्रति उदारता, सहयोग नहीं करता, जनता में अपयश का भागीदार बन कर पतित हो जाता है।

❀ ❀ ❀

साधक

साधक/साधु हमेशा जप, तप, संयम में लीन रहता है, वह न किसी को वरदान देता है न अभिशाप देता है, फलतः वह निपट अध्यात्मवादी होता है। वह अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में मध्यस्थ/तटस्थ भाव से रहता है। अध्यात्म-साधना के लिए राग भाव और द्वेष भाव दोनों "अभिशाप" हैं। अतः साधु की साधना में यह स्खलना ही है। इसलिये साधु "वरदान" और "अभिशाप" दोनों से परे रहता है।

❀ ❀ ❀

मर्यादाएँ

मर्यादाऐं बंधन कब बनती है? जब मन न माने। जब मन ठीक हो तो ये बन्धन नहीं कहलाती। फिर मर्यादा मर्यादा रहती है, लक्ष्मण रेखा की तरह रक्षात्मक बन जाती है। इनके पीछे भाव जुड़ा रहता है मन का कि– "ये जो सीमा रेखाऐं हैं, मुझे/मेरी आत्मा को मेरी जीवन साधना के क्षेत्र में बनाये रखने के लिये है। नहीं तो कभी भी मैं उच्छृंखल/उदण्ड बन सकता हूँ, कभी भी लड़खड़ाकर बाहर गिर सकता हूँ। उसको थामने के लिये ये सीमा रेखाऐं हैं।

मन पता नहीं कितने प्रकार की आशाएँ/इच्छाएँ संजोये बैठा है और उसकी पूर्ति के लिये बराबर प्रयत्न करता रहता है। जब मन में तृष्णा, वांछा, इच्छा, ऐन्द्रिक विषयों की तमन्नाएँ – वासनाएँ हो, फिर वहाँ सद्विचार कैसे आयेगा? जहाँ कुत्सित विचारों का बोलबाला हो वहाँ सुविचारणा कैसे आयेगी?

❀ ❀ ❀

कर्म

कर्म क्या है ? मन, वाणी और शरीर द्वारा शुभ-अशुभ स्पन्दना का होना तथा क्रोधादि संक्लेश भावों से कार्य करना। वस्तुतः आत्मप्रदेशों पर कर्माणुओं का संग्रह होना कर्म है। उसका कालान्तर में जागृत होना कर्मफल का भोग है। किया हुआ कर्म व्यर्थ नहीं जाता, वह फलवान् होता ही है। आदमी के चाहने न चाहने, मानने न मानने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

❀ ❀ ❀

हठधर्मिता

अपने-अपने पक्ष को सत्य सिद्ध करने का आग्रह होने के कारण वैमनस्य उत्पन्न हो गया फलतः एक-दूसरे को घृणा एवं द्वेष की दृष्टि से देखने लगे। सत्य की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तविकता को समझने का प्रयास कम हो गया। और अपनी अपनी मान्यता को थोपने का प्रयत्न अधिक होने लगा। जैसा उपादान वैसा निमित्त। पिता को पुत्र, पुत्र को पिता, भाई को भाई, वहिन को भाई, पति को पत्नी, गुरू को शिष्य तथा शिष्य को गुरु का, शुभ अशुभ निमित्त बन जाते है। यहाँ तक की अपना शरीर भी सुख दुख का कारण बन जाता है।

❀ ❀ ❀

धर्म के टेकेदार

● यह व्यर्थ का ही झगड़ा है। एक धर्मगुरु कहता है, मेरे पास आओ, मैं मोक्ष दिला दूँगा। दूसरा गुरु कहता है – मैं मुक्ति दिलाऊँगा। इस प्रकार कई धर्म और मोक्ष के दावेदार, ठेकेदार, बने हुए है। पहले तो केवल गुरु ही थे, अब तो भगवान् भी बहुत हो गये हैं इस धरती पर और ये भगवान आह्वान करते हैं – मेरे पास आओ, मैं मुक्ति दे दूंगा। यह व्यक्ति के साथ मज़ाक है।

❀ ❀ ❀

बाह्य वेष

● वेष की व्यवस्था साधना/संयम यात्रा के निर्वाह और ज्ञान आदि साधना के लिये तथा लोक में साधक और संसारी के भेद को स्पष्ट करने के लिए है। किन्तु यह व्यवहारिक साधन है, निश्चय में, तत्त्वदृष्टि से मुक्ति के साधन ज्ञान-दर्शन चारित्र ही हैं।

आजकल वेष का महत्त्व और आग्रह बढ़ जाने पर उसका दुरुपयोग भी होने लगा है। पहले निश्चित वेष वाले व्यक्ति धर्मात्मा/साधक होने से उनका जीवन त्याग-प्रधान होता था अतः जनता में विश्वसनीय होता था किन्तु कुछ दुर्बुद्धि लोग अपनी शारीरिक, मानसिक वासना की पूर्ति के लिये साधक का छद्म वेश धारण करने लगे हैं। सिंह के वेष में भेड़िये घूमने लगे है अतः वेष का महत्त्व घट गया। रावण ने साधु का वेष धारण करके ही जनकसुता का अपहरण किया था। इसलिये कहा गया है कि बुद्धिमानों को केवल वेषधारी पर विश्वास नहीं करना चाहिये।

❀ ❀ ❀

ईर्ष्या

● जिस प्रकार अग्नि दग्ध करती है, जलाती है, पदार्थों को तपित करती है इसी प्रकार ईर्ष्या भी हृदय, मस्तिष्क एवं नेत्रों को तप्त करती है, जलाती है। ईर्ष्या मन का असंतुलन है। दूसरे की वस्तु, इज्ज़त, व्यक्त्वि आदि देख कर मन सहन नहीं करता, यही ईर्ष्या है। ईर्ष्यालु परिणामतः अपने धैर्य, शान्ति, सहिष्णुता आदि गुणों का नाश कर लेता है।

❀ ❀ ❀

विविधा

● व्यक्ति की साधना का लक्ष्य परमार्थ है।

● यह वस्तु न मेरी है, न तेरी है। यह पौदगलिक है, भौतिक है और संयोग सम्बन्ध से प्राप्त है। ऐसी दृष्टि वाला व्यक्ति परमार्थी कहलाता है।

● साधना के अभाव में आंतरिक रोग/कषाय/वासनादि दूर नहीं हो सकते।

● आमोद-प्रमोद के साथ अध्यात्म ज्ञान का होना भी जरूरी है, अन्यथा मोह व आसक्ति में वृद्धि होती जायेगी, उससे जीवन की दशा दुखद हो जायेगी।

● जो भोग से योग की ओर, राग से विराग की ओर मन को मोड़ने में समर्थ है तथा आत्मा और परमात्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साक्षात्कार का मार्गदर्शन कराता है वही शास्त्र है।

● जब-जब संत पुरुषों का सत्संग हुआ है – व्यक्ति बुरी आदतों से मुक्त हो गया।

● वाणी को मलिन करने वाला तत्त्व राग और द्वेष है, उसके शांत हो जाने पर वाणी के दूषित होने का कारण ही नहीं रहता।

● सहअस्तित्व बनाये रखने का मार्ग है – सहानुभूति और सहयोग।

● अहंकार को नष्ट कर दे तो आदमी स्वयं ही परमात्मा बन जाता है।

● प्रमादकारी योगों से प्राणी के प्राणों का विनाश करना हिंसा है।

● जीव ने प्रमाद के द्वारा दुख उत्पन्न किया है।

● सज्जन पुरुषों की विद्या ज्ञान के लिये, धन दान के लिये और शक्ति रक्षा के लिये होती है।

● मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है।

● राग-द्वेष की उत्तेजना से रहित, मन की वृत्ति को सम रखते हुए वस्तु के प्रति आसक्ति को छोडना "त्याग" है।

● जिसने 'मेरी' अर्थात् ममत्व बुद्धि को छोड़ दिया, त्याग कर दिया वही परिग्रह को छोड़ता है।

● आत्मा ही हमारे सम्पूर्ण गतिविधियों की साक्षी है, दूसरा कोई नहीं।

● अन्तःकरण का मिथ्याभिनिवेश, हठाग्रह, विपरीत दृष्टि, कषाय, वासना में निमग्न रहना, 'अन्तर भेद' है।

● आस्था और ज्ञान के अभाव ने हमारी क्रियाओं को जड़वत् बना दिया।

● जो साधक दुःख से छूटना चाहता है उसे सदा अपने समान गुणवाले अथवा अपने से अधिक गुणवाले श्रमण के समीप रहना चाहिये।

● नैतिक व धार्मिक आचरण में बाधक, उन्हें मलिन करनेवाली वस्तुओं / वृत्तियों को छोड़ देना 'त्याग' है।

❀ ❀ ❀

मोक्ष

● यदि मन में मोक्ष की तीव्र अभिलाषा जागृत हो जाए तो मार्ग को व्यक्ति स्वयं हीं ढूंढ़ लेगा। लेकिन जहाँ मन में रुचि नहीं है, वहाँ मार्ग का ज्ञान होते हुए भी वह उस पर चल नहीं सकता।

● बन्धुओं ! मोक्ष के मार्ग को बन्द किसने किया? मार्ग तो है बस यात्री की जरूरत है, चलने वाले चाहिये, चलेंगे तो निश्चित ही लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

● व्यक्ति यदि दृढ़ संकल्पवान हो तो अभ्यास द्वारा वह लक्ष्य को अवश्य प्राप्त कर लेगा।

● मुक्ति सस्ती और आसान भी है। कहते हैं – "सिर के साठे हर मिले" परमात्मा की जो उपलब्धि बलिदान के बदले है/अहंकार-त्याग, बलिदान ही परमात्मा का मिलन स्रोत है।

● मन के राग/द्वेष/कषाय और वासना के बन्धन में जो पुनः नहीं बंधता, उसे मुक्त कहा है।

● काम निवृत्त मतिवान साधक संसार से शीध मुक्त होजाता है।

● जड़ क्रिया और शुष्क ज्ञान मुक्ति में बाधक तत्त्व हैं।

● यदि प्रकाश रहेगा, सूझबूझ रहेगी तो हम कभी भी नहीं भटकेंगे।

❀ ❀ ❀

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन - पीयूष - कण

शास्त्र और शस्त्र

अगर हम शास्त्रों को ठीक से समझ लें तो हमारे जीवन की सभी कठिनाइयां मिट सकती हैं। सारे दुख सारे उलझाव सुलझ सकते हैं। शास्त्राध्ययन से, उनको सम्यक् रूप से समझने से हमारे हृदय में सुविचार उत्पन्न होंगे। फिर हम जो बोलेंगे वह भी सम्यक् होगा, जो करेंगे वह सम्यक् अर्थात् सदाचरण होगा।

हमारे उलझाव और कठिनाइयों का कारण हमारा अज्ञान ही तो है। शास्त्र प्रकाश पुंज शब्दों के संग्रह हैं। उनका मात्र पठन पर्याप्त नहीं है। उनको समझ कर पढ़ना आवश्यक है। समझ कर पढ़ा हुआ शास्त्र आपके सारे दुखों - समस्याओं को काट देगा। इसके विपरीत असमझ से पढ़ा गया शास्त्र आपके अहं का ही पोषक होगा। वह आपके हाथ में पड़कर शस्त्र बन जाएगा। शस्त्र भी काटता है पर वह स्थूल अंगोपांगों को काटता है और हिंसा का हेतु बनता है। शास्त्र भी काटता है पर वह कर्म समूह को काटता है, हिंसा, द्वेष और ईर्ष्या को काटता है। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि शास्त्र को शस्त्र मत बनाना। उसे शास्त्र रूप में ही ग्रहण करना। ••

गुरू बिन ज्ञान न होई

आज पुस्तकों का युग है। प्रतिदिन नई-नई पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। प्राचीन धर्मग्रन्थ भी बड़े पैमाने पर प्रतिदिन छप रहे हैं। परन्तु मैं समझता हूँ कि जितनी अधिक मात्रा में पुस्तक छप रही हैं मनुष्य उतना ही अज्ञानी होता जा रहा है। उसके पास बाह्य (संसार की) जानकारियां तो बढ़ रही हैं परन्तु स्वयं की जानकारी के नाम पर वह शून्य होता जा रहा है।

इसका क्या कारण है? इसका कारण है गुरु का अभाव। गुरु के बिना आप विद्वान तो बन सकते हैं पर ज्ञानी नहीं बन पाएंगे। पुस्तकीय ज्ञान को मस्तिष्क में संचित करनेवाला विद्वान होता है, ज्ञानी नहीं। ज्ञानी तो वह होता है जो स्वयं को जान लेता है और वह ज्ञान आप पुस्तकों से या अध्यापकों से नहीं पा सकते हैं। वह तो आप गुरु से ही पा सकते हैं।

गुरु वह है जो अन्धकाराछन्न पथों से पार हो चुका है जो आत्मज्ञान को उपलब्ध हो चुका है। जिसका स्वयं के भीतर का अन्धकार विलीन हो चुका है वही तो आपके भीतर के अन्धकार को दूर सकता है।

आप शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं पर उनसे आप केवल यही सीख पाते हैं कि-साधु को यह करना है, यह नहीं करना है......। शास्त्र पढ़कर आप भी बोझिल हो जाते हैं, जबकि आपको बोझ से उन्मुक्त होना चाहिए।

आप शास्त्र पढ़िए पर गुरु की सन्निधि में बैठकर। गुरु ही आपको आगमों का नवनीत दे पाएंगे। आप स्वयं पढ़ेंगे तो आपको छाछ ही हाथ लगेगी।

कहावत है-

गुरु बिन ज्ञान न होई।

गुरु के बिना आपको ज्ञान नहीं मिल सकता है। यह बात केवल मैं ही नहीं कह रहा हूँ। समस्त ज्ञानी पुरुषों ने यही बात कही है। •••

साहसी बनिए....मनः जेता बनिए

मानसिक दुर्बलता के कारण हम अपने आप भय खड़ा कर लेते हैं। जिन लोगों में मानसिक दुर्बलता नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है वे आगे बढ़ सकते हैं, बढ़ते भी हैं। एक कहावत है-

"हिम्मत-ए मर्द, मर्दे खुदा"

आदमी के पास हिम्मत होनी चाहिए। साहस होना चाहिए। हिम्मत और साहस हों तो कोई भी शक्ति उस पर हावी नहीं हो सकती है। पर हमारे भीतर साहस की बहुत बड़ी कमी है। इसी के कारण हम नुकशान उठा रहे हैं, पिछड़ रहे हैं। वासनाएं हमें अपना गुलाम बना लेती हैं। अहंकार, छल, कपट, लोभ हमें कदम-कदम पर दबाते रहते हैं। इनका निराकरण करना चाहिए। हमें इनसे हारना नहीं है बल्कि इन्हें हराना है। इन्हें हराने के लिए साहस की आवश्यकता है। सम्यक् साहस चाहिए।

वासना, अहंकार आदि सभी में है। उसकी मात्रा न्यूनाधिक हो सकती है। अगर कोई दावा करे कि उसमें ये नहीं है तो वह गलत दावा कर रहा है। जीवन व्यवहार से सबका पता चल जाता है। जीवन व्यवहार मनुष्य के अन्तर्जीवन का दर्पण है। जो उसके भीतर है वह उस व्यवहार में अवश्य ही झलक उठता है।

हमें वासना से मुक्त होना है। क्रोध से, अहंकार और कपट से मुक्त होना है। हमारे कषाय हमें बर्बाद न करें ऐसा उपाय करना है। यहीं रहकर, इसी संसार में रहकर यह उपक्रम करना है। इसका उपाय है – सबसे पहले हम अपने मन पर विजय पाएं। पर दुर्वल व्यक्ति मन को नहीं जीत सकता है। इसलिए मैंने कहा कि जीवन में साहस का होना अनिवार्य है। साहस होगा तो दुर्वलताएं स्वयं विलीन हो जाएगी। मन को हम अपने वश में करने में समर्थ हो जाएंगे। इसी से काम, क्रोध, अहंकार तथा समस्त वासनाएं स्वतः जीत ली जाएंगी।●●●

त्याग : आत्म अहसान है

त्याग की बात आती है तो हम दूर भागते हैं। छोड़ने को तैयार नहीं होते हैं। जरा सोचिए ! किसके लिए छोड़ना है। क्या साधु के लिए? या धर्म के लिए? नहीं, साधु के लिए नहीं छोड़ना है, साध्वी के लिए नहीं छोड़ना है। अपने लिए छोड़ना है। आत्मकल्याण के लिए त्याग करना है। हमारी आत्मा में पदार्थ के प्रति आकर्षण का जो राग पैदा हो गया है उसके परिमार्जन के लिए छोड़ना है।

जो स्वयं के लिए कुछ नहीं कर पाता, आत्मकल्याण के लिए कुछ नहीं कर पाता है वह दूसरों के लिए क्या कर पाएगा?पर यह विडम्बना है कि हम स्वयं पंकासन्न होते हुए दूसरों को पंकमुक्त करने का प्रयत्न करते हैं। स्वयं साश्रु होते हुए दूसरों के आंसू पोंछने का कार्य करना चाहते हैं।

यह संभव नहीं है।

पहले स्वयं अश्रुमुक्त बनिए तब ही किसी के आंसू आप पोंछ पाएंगे।

आप त्याग करते हैं। किसी पर आपका यह अहसान नहीं है। यह आपका अपने आप पर अहसान है। ●●

सुसंस्कार अमूल्य निधि

जिस गति से आज हम बदल रहे हैं, इसको अगर विराम नहीं दिया गया तो वह दिन दूर नहीं है जब हमारी भाषा, हमारा रहन-सहन, हमारी संस्कृति सब कुछ समाप्त हो जाएगा। हम क्या हो गए, स्वयं नहीं पहचान पाएंगे।

अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखिए। संस्कृति सुरक्षित रहेगी तो आपके संस्कार भी सुरक्षित रहेंगे। सुसंस्कार आपकी अमूल्य निधि है। उसे बचा कर रखिए। ●●

सिद्धान्त और यथार्थ में दूरियां क्यों?

आज हम वस्तु के आधार पर जी रहे हैं। जीवन यापन के लिए वस्तु को ग्रहण नहीं कर रहे हैं अपितु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी सुख-सुविधाओं के व्यापकीकरण के लिए वस्तुओं का उपयोग और संचय कर रहे हैं। यहीं पर हमारे आदर्श और यथार्थ में वैभिन्न्य उत्पन्न होता है।

हम जैन हैं, परम्परागत जैन हैं। न जाने कितनी पीढ़ियों से हम जैन धर्म ग्रन्थों को सुनते आए हैं, तीर्थंकर भगवन्तों को मानते आए हैं। उनकी पूजा करते आए हैं। तप, त्याग हमारे घरों में होता रहा है। हमने सदियों से त्याग की महिमा सुनी है। 'त्याग' को हमने जीवन का सर्वोच्च श्रेयस् माना है। पर क्या कारण है कि हमारे जीवन में भोग के प्रति सदैव गहरा आकर्षण बना रहा है? मैं समझता हूँ कि भोगोपभोग के प्रति जितना गहन-तम आकर्षण हमारी समाज में है उतना अन्य समाजों में नहीं है। हम प्रशंसा त्याग की करते हैं पर अहर्निश संचय में संलग्न रहते हैं।

हमारे धर्मग्रन्थों में परिग्रह और महापरिग्रह को नरक का कारण माना गया है। इस वाणी को हम बचपन से सुनते आए हैं। संभव है स्वयं भी ऐसा बोलते होंगे पर फिर भी हम परिग्रह को और विस्तृत करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं।

करनी और कथनी का यह अन्तर क्यों?

मैं समझता हूँ कि इस अन्तर का कारण हमारी अश्रद्धा है। हम मात्र सुनते हैं पर उस पर हमारी श्रद्धा नहीं जमी है। हम जैन वंश में तो पैदा हुए हैं पर जैनत्व हमारे भीतर पैदा नहीं हुआ है। जैनत्व का दीप जब तक हमारे भीतर नहीं जलेगा तब तक हमारी कथनी और करनी की विभिन्नता नहीं रहेगी। हमारे सिद्धान्तों और यथार्थ में पूर्व-पश्चिम की दूरियां विद्यमान रहेंगी। •••

अनुप्रेक्षा

अनुप्रेक्षा.....! अनु+प्रेक्षा = अर्थात् गहराई से चिन्तन करना ! सूक्ष्मता से मनन करना। अनुप्रेक्षा शब्द अतचिन्तन के रूप में अभिहित हुआ है। आपने जो सुना है, गुरु से जो वाचना ली है, जिसे बार-बार दोहराया है उस पर चिन्तन-मनन करना अनुप्रेक्षा है।

कर्म मुक्त होने के लिए अनुप्रेक्षा अपरिहार्य है। शास्त्रों को सुन लेना पर्याप्त नहीं है। उन पर प्रश्नोत्तर करना और सन्तुष्ट हो जाना भी पर्याप्त नहीं है। उन्हें बार बार दोहरा लेना भी पर्याप्त नहीं है। जो सुना, पढ़ा अथवा दोहराया गया है उस पर अपना अनुचिन्तन अपरिहार्य है। आपका स्वयं का मनन प्रथम शर्त है। तब ही आपके कर्मक्षय होंगे। आप परित्त संसारी होंगे।

मुनि और श्रावक

मुनि कौन है? जो हिंसा को भली प्रकार से जानता है और जानने के बाद न स्वयं हिंसा करता है, न दूसरे से हिंसा करवाता है और न हिंसा करते हुए को भला समझता है। वही परिज्ञात कर्मा है, वही मुनि है। मुनि तीन करण और तीन योगों से हिंसा का त्यागी होता है।

मुनि से परे भी एक जीवन है, वह श्रावक का जीवन है। वह सद्गृहस्थ जो श्रद्धावान् है, धर्म श्रवण करता है, देव-गुरु-धर्म के प्रति जो आस्थावान् रहता है वह श्रावक कहलाता है। श्रावक तीन करण और तीन योग से हिंसा से मुक्त नहीं हो पाता है। वह दो करण और तीन योग से हिंसा का त्याग करता है। क्योंकि वह गृहस्थ है। समग्ररूपेण हिंसा का त्याग उससे संभव नहीं है। अनेक दायित्व उसके कन्धों पर हैं। परिवार का दायित्व, समाज का दायित्व, प्रदेश का दायित्व.......वह अनेकानेक दायित्वों का संवहन करता है इसलिए पूर्णहिंसा का वह त्याग नहीं कर पाता है।

सहिष्णुता

आध्यात्मिक जीवन में ही नहीं व्यावहारिक जीवन में भी यह बहुत आवश्यक है कि हम सहिष्णु बनें। अगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक दूसरे में सहिष्णुता का गुण न हो तो पति-पत्नी भी सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। गुरुनानक देव ने कहा था-

एक ने कही, दूसरे ने मानी
कहे नानक वे दोनों ज्ञानी।

एक कहे, दूसरा सुन ले, सह ले तो कलह नहीं होता, झगड़ा नहीं होता। जहां सहिष्णुता नहीं होती वहीं कलह होता है। पहले मानसिक कलह होता है, फिर वाचिक कलह होता है। यह कलह बढ़ते-बढ़ते मार-पीट तक पहुंच जाता है। इतने हिंसक हो जाते हैं कि आदमी हत्या अथवा आत्महत्या तक कर लेता है। असहिष्णुता व्यक्ति को हत्यारा तक बना देती है।

सहिष्णुता अध्यात्म और व्यावहारिक – दोनों जीवनों में आवश्यक है। विचार कीजिए.....साधक साधना करता है, परीषह आते हैं, उपसर्ग आते हैं उन्हें सहने के लिए सहिष्णुता के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। सहिष्णुता से ही साधक परीषहों को जीत सकता है।

व्यावहारिक जीवन में भी सहिष्णुता का होना जरूरी है। उससे आप एक सफल पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन जी सकते हैं। यदि बात-बात पर आप अपना आपा खो देते हैं, तो आप अपनों द्वारा ही नकार दिए जाएंगे।

सहिष्णु बनिए !..... अन्ततः सहिष्णुता ही कैवल्य तक का आधार है। ●●●

वन्दन

अहंकार में आकर नीच गोत्र का बंध न करलें, उच्च गोत्र कर्म का ही वन्ध रहे, यह सुयोग उपलब्ध होता रहे तो हम कर्म की निर्जरा कर सकते हैं। इस संदर्भ में पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, व्यावहारिक जीवन, आध्यात्मिक जीवन – सभी जीवनों के लिए "वंदन क्रिया" बहुत आवश्यक है। घर में भी अकड़ से काम नहीं चलता। पारिवारिक सदस्यों में अहंवृत्ति प्रधान हो जाए तो घर घर न रहकर कुरुक्षेत्र बन जाएगा। यही स्थिति समाज की है। वहां भी जब अहं टकराते हैं तो समाज बिखर जाता है। क्लेश उभर आते हैं। झगड़े होते हैं।

हमें झुकना सीखना चाहिए। झुकना अर्थात् वन्दन करना हमारे छोटेपन की निशानी नहीं है। झुकने से आदमी छोटा नहीं बनता है। बड़ा बनता है। परिवार का, समाज का एक सिस्टम होना चाहिए। सिस्टम बनाए गए थे। महापुरुषों ने मर्यादाएं निर्मित की थीं। पर आज वे मर्यादाएं खो गई हैं। इसीलिए क्लेश उत्पन्न होगए हैं।

'वन्दन' सभ्य जीवन का एक महत्वपूर्ण गुण है। वन्दन संगठन समाज और परिवार में प्रेम और मृदुता को जन्म देता है। पारस्परिक स्नेह वन्दन से सघन और सुदृढ़ होता है।

वन्दन से नीचगोत्र के बन्ध खण्डित हो जाते हैं। नरकों के बन्धन टूट जाते हैं। श्रेणिक राजा का प्रसंग इस संदर्भ में काफी विश्रुत है।

आप भी अपने व्यवहार में वन्दन व्यवहार को प्रमुखता दीजिए। पर ध्यान रहे यह वन्दन चापलूसी के लिए न हो। यह आपके हृदय की विनम्रता का सहज परिणाम हो। इससे आप न केवल एक संस्कारित और सुखी गृहपति बन जाएंगे। अपितु एक मान्य और सम्मान्य सामाजिक भी बन जाएंगे। ●●●

सैनिक-सा-साहस

देश की रक्षा के लिए हमारे सैनिक ऐसे स्थानों पर अटल चट्टान बनकर खड़े हैं जहां हम एक क्षण भी नहीं रुक सकते हैं। कुछ ऐसे स्थान हैं, ऐसी चौकियां हैं जहां भयंकर शीत पड़ती है, हमेशा ही बर्फ गिरती रहती है पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे सैनिक अपने जीवन को दांव पर लगाकर वहां पहरा देते हैं।

वे ऐसा क्यों करते हैं? अपने देश की सीमाओं की रक्षा के लिए वे वहां तैनात रहते हैं। देशभक्ति का जज्बा उनमें अदम्य बल और अखण्ड साहस भर देता है। दुश्मन की गोलियों को वे अपनी छाती पर तो झेल लेते हैं पर दुश्मन के कदम अपने देश की धरती पर नहीं पड़ने देते।

सैनिक जैसा साहस, समर्पण और शौर्य अध्यात्म क्षेत्र में भी अपेक्षित है। अपितु साधक को सैनिक से भी बड़े पराक्रम की आवश्यकता होती है। उसे अपने आत्मक्षेत्र को आत्मशत्रुओं से मुक्त कराने के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ती है। भौतिक आकर्षणों से मुक्त होना पड़ता है और सतत अप्रमादी रहकर तप के द्वारा संचित कर्मकल्मष को मिटाना पड़ता है। •••

मर्यादाएं : अपेक्षित - उपेक्षित

हमारा मन सधा नहीं है अतः हमें परहेज की जरूरत है। मन सध जाए तो परहेज की कोई जरूरत नहीं। मर्यादाएं छद्मस्थों के लिए होती हैं। केवलज्ञानियों और पूर्ण आत्माओं के लिए कोई मर्यादा नहीं। लोक में रहनेवाले देव-मनुष्य और तिर्यञ्च सब अल्पज्ञ हैं। सर्वज्ञ नहीं हैं। सर्वज्ञत्व की साधना के लिए मर्यादाएं किश्ती के समान है। दूसरे तट पर पहुंचकर किश्ती को छोड़ ही देना पड़ता है। वैसे ही मर्यादाएं अल्पज्ञों के लिए अपरिहार्य हैं पर सर्वज्ञों के लिए परिहार्य हो जाती हैं। उन्हें उनकी अपेक्षा नहीं रह जाती है। •••

व्यसन विष हैं

सप्त कुव्यसन का त्याग आज के युग की महति आवश्यकता है। कुव्यसनों के त्याग के विना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सम्भव नहीं है। व्यसन मुक्त जीवन ही धर्मसंयुक्त जीवन बन सकता है। आप रुग्ण हैं तो अमृत भी आपके लिए विष हो जाता है। उचित और स्वच्छ पात्र में ही अमृत अमृत रह सकता है।

व्यसन जीवन रूपी पात्र को अपात्र बना देते हैं। फिर आप उस पात्र में श्रावकत्व का अमृत डालिए अथवा श्रमणत्व का अमृत डालिए, वह अमृत उस पात्र का योग पाकर विष वन जाएगा।

दिगम्बर आचार्यों ने तो यहां तक कहा है कि जिसके जीवन में सप्त कुव्यसन हैं उसे श्रावक नहीं कहना चाहिए। पर हमारे यहां.....हमारे यहां स्थिति विपरीत है। हमारे यहां तो वह अध्यक्ष भी बन सकता है। मंत्री भी बन सकता है। उसके अन्दर जितने कुव्यसन हों उसे उतने ही अधिक टाइटल मिलते हैं।

पतन है यह हमारा। इसे रोकिए। अपनी समाज में उसे ही पदाधिकारी चुनिए जो व्यसन मुक्त हो। जो शेष समाज के लिए आदर्श बन सके।

व्यसन विष हैं। आत्मघातक हैं। इनसे मुक्ति पाइए। •••

अहंकार टूटे

जो व्यक्ति जाति, कुल, बल, ऐश्बर्य, तप और ज्ञान का जितना अहंकार करता है उसके ये गुण उतने ही सिकुड़ जाते हैं। एक छोटे से दायरे में आ जाते हैं। विनम्र व्यक्ति के ये गुण विस्तृत होते चले जाते हैं।

अहंकार संकुचित करता है, विनम्रता विस्तृत करती है। फैलना, विस्तृत होना व्यक्ति की नियति है। उसका स्वभाव है। पर उसका अहं उसके लिए बाधा बन जाता है। उसे बून्द से सागर नहीं होने देता। जन से जिन नहीं होने देता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहं पर चोट करो। किसी को नहीं तोड़ना। अपने अहं को तोड़ो। वह क्षण दूर नहीं जब आप परम को उपलब्ध हो जाएंगे।

आसक्ति टूटे

ये आसक्तियाँ टूटें तब जाकर हम मनुष्यता की श्रेणी में आएंगे। आसक्तियां हमारे भीतर भरी पड़ी हैं। ये हमें मनुष्य नहीं बनने देती हैं। जब तक हम मनुष्य नहीं बन पाएंगे तब तक श्रावक और साधु भी नहीं बन पाएंगे। क्योंकि श्रावकत्व और साधुत्व का विकास मानवता के धरातल पर ही होता है।

जैन धर्म, जिन धर्म अत्युत्तम धर्म है। यह आदमी की आसक्ति को तोड़ता है, उसे जन से जिन और शव से शिव बनाने का मूलमंत्र देता है। ●●●

स्वदर्शन

जब आप अपना स्वभाव नहीं छोड़ते तो दूसरा अपना स्वभाव क्यों छोड़ेगा? हम चाहते हैं दूसरा तो अपना स्वभाव बदल ले लेकिन हम अपना स्वभाव न बदलें। यह कैसे हो सकता है?

लेकिन जब हम 'स्व' में आ जाएंगे तो हमारे भीतर स्वयं को देखने की प्रवृत्ति जागेगी। 'पर' हमारी दृष्टि से अदृश्य हो जाएंगे। और स्वयं को देखने वाला, 'स्व' भाव में रमण करने वाला व्यक्ति कभी दुखी नहीं होता है। ●●●

विशेष दिनों के आयोजन आवश्यक हैं

हम महापुरुषों की जन्म-जयन्तियां, उनकी पुण्य तिथियां मनाते हैं, उनके तप-त्यागादि के विशेष दिन मनाते हैं। कुछ लोग इन्हें आडम्बर मानते हैं। मृतपूजा मानते हैं। पर मैं ऐसा नहीं मानता हूँ। मैं उन आयोजनों को अनिवार्य मानता हूँ जो महापुरुषों से जुड़े हैं। ऐसे आयोजनों के माध्यम से ही हम अपने पूर्वजों से परिचित हो पाते हैं। हम जान पाते हैं कि हमारे पूर्वजों ने स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज के लिए, जाति के लिए, धर्म के लिए कितना बड़ा बलिदान दिया। बलिदान; बलिदान के भाव को पुष्ट बनाता है। स्वार्थ; स्वार्थ को विस्तृत करता है। अपने पूर्वजों की बलिदान-गाथा सुनकर हमारी संतानों के संस्कार निर्मित होंगे। उनके प्रति उनके हृदयों में श्रद्धा पैदा होगी और वह श्रद्धा ही उनके जीवन का निर्माण करेगी। अतः विशेष दिनों के आयोजन बहुत आवश्यक हैं। ●●●

प्रायश्चित

विवेक के अभाव में नियम, व्रत, पच्चक्खाण आदि का सम्यक् पालन नहीं हो पाएगा। अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार आदि दोष लगते रहेंगे।

दोष लगे तो उसे सावधान किया जाए, वह प्रायश्चित ले लेगा। लेकिन प्रायश्चित ले लेने के बाद भी उसका शुद्धिकरण नहीं हो सकेगा यदि वह भूल को भूल मानने के लिए तैयार न हो। भूल को भूल मान लेना मानवीय गुण है। कहावत है – भूल आदमी से होती है देवता से नहीं। पशु-पक्षी भी भूल करते हैं क्योंकि उनके पास बोध नहीं है। आदमी के पास बोध/ज्ञान है फिर भी वह भूल कर देता है। इसका कारण स्पष्ट है कि जन्म-जन्मान्तरों के प्रमाद से उसकी आत्मा घिरी है। प्रमाद ही कर्म है। प्रमाद ही भूल का कारण है। इसलिए मैंने कहा – भूल हो जाना सहज बात है। जब तक प्रमाद और अज्ञान पूर्णतः समाप्त नहीं होते तब तक भूलें होती ही रहेंगी।

इसीलिए भगवान ने हमारे लिए प्रतिक्रमण का विधान किया। प्रायश्चित का विधान किया। प्रायश्चित का यही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ है कि हम अपनी भूल को स्वीकार करके उससे उत्पन्न हुए दोष का प्रक्षालन कर दें।

हम सामायिक करते हैं। सामायिक में दोष लग गया। तो क्या सामायिक करनी ही छोड़ दें? ऐसा करना बुद्धिमानी नहीं है। उपवास किया; उसमें दोष लग गया। उपवास टूट गया। तो क्या उपवास ही करना छोड़ दें? यह कहां की अक्लमंदी है?

आप रास्ते पर चलते हैं। चलते हुए आपके वस्त्रों पर धूल जम गई, या कीचड़ लग गया। उससे क्या आप वस्त्र पहनना ही छोड़ देंगे? नहीं, आप ऐसा नहीं करेंगे। आप वस्त्र को प्रक्षालित करके उसे पुनः धारण करेंगे। यही बात सामायिक को प्रक्षालित करके उसे पुनः धारण करेंगे। यही बात सामायिक, उपवास, नियम, पच्चक्खाण के विषय में भी होनी चाहिए। इनमें यदि दोष लग जाए तो प्रायश्चित से उसका शुद्धिकरण करना चाहिए। इससे आपकी आत्मा शनैः शनैः निर्मल बन जाएगी। ●●●

स्वाध्याय प्रकाश है

स्वाध्याय का अर्थ है-स्वयं का अध्ययन अर्थात् अपने आप को पढ़ना। स्वयं को देखना, जानना कि मैं कौन हूँ। स्वाध्याय का अर्थ सत्साहित्य का पठन-पाठन भी होता है। स्वाध्याय से जीव को ज्ञान की प्राप्ति होती है।

छह प्रकार के आभ्यन्तर तपों में स्वाध्याय भी एक तप है। तप के लिए श्रम करना पड़ता है, तपना पड़ता है। जब हम तपेंगे तो हमारा ज्ञानावरणीय कर्म क्षय होगा। अन्धकार मिट जाएगा। ज्ञान प्रकाश है। अज्ञान अन्धकार है। स्वाध्याय रूपी तप से अज्ञानान्धकार को मिटाना है।

दीपक जलता है, प्रकाश होता है। प्रत्येक वस्तु प्रकाशित हो जाती है। प्रकाश में ही पता चलता है कि वस्तु क्या है, कैसी है, किस उपयोग की है। ठीक ऐसे ही जब हमारी आत्मा में ज्ञान रूपी दीपक जलता है तो हमें तत्त्व का ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञानाभाव में जो होता है वह पाप होता है। कर्म बन्ध करने वाला होता है।

आहार, व्यवहार और विचार ये तीनों ज्ञान के अभाव में कुत्सित हो जाते हैं। हम जीवन की हर प्रक्रिया को ज्ञान के प्रकाश में जानकर, देखकर बदल सकते हैं। अतः स्वाध्याय प्रकाश रूप है। ज्ञान रूप है।

स्वाध्याय श्रुत-समाधि भी है।

स्वाध्याय रूपी तप की साधना के लिए कार्योत्सर्ग की आराधना आवश्यक है। यदि आपका आसन स्थिर नहीं होगा तो आप स्वाध्याय कैसे कर पाएंगे? आसन स्थिर नहीं होगा तो आपका मन भी स्थिर नहीं हो पाएगा। आपकी वाणी भी अस्थिर बनी रहेगी। स्वाध्याय साधना के लिए आपको अपने तीनों योगों को स्थिर करना होगा। एक चित्त से शब्द और अर्थ पर चिन्तन करना होगा।

आज स्वाध्याय में रस नहीं रहा है। इसमें स्वाध्याय का दोष नहीं है। हमारा दोष है। रस पैदा करने वाले हम हैं। एकाग्रता और तन्मयता से स्वाध्याय कीजिए फिर स्वयं अनुभव कीजिए कि आप अन्धकार से मुक्त हो रहे हैं....मृत्यु से मुक्त हो रहे हैं..... आनन्द का द्वार आपके समक्ष होगा। ●●●

क्षमापना

क्षमापना का अर्थ होता है – क्षमा देना और क्षमा लेना। क्षमापना जन्म-जन्मान्तर की विष बेल को काटने की एक अत्युत्तम विधि है। क्षमापना से कषाय शान्त हो जाते हैं। जैन धर्म में क्षमापना को विराट अर्थ में लिया गया है। क्षमा मांग लेना ही पूर्ण क्षमापना नहीं है। स्वयं क्षमा करना और सामने वाले से क्षमा प्राप्त करना क्षमापना का पूर्ण अर्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमापना से जीव में आह्लाद-प्रह्लाद भाव की उत्पत्ति होती है। उसमें स्वाभाविक प्रसन्नता का उदय होता है। ऐसी प्रसन्नता जो जगत् के किसी पदार्थ से प्रात नहीं होती है। क्षमापना से मैत्री भाव का विकास होता है। **"अप्प भूयस्स"** संसार के जितने प्राणी हैं सब आत्मभूत है, आत्मवत् हैं। यह वृत्ति जब उत्पन्न होती है तो जगत के समस्त जीवों के साथ मैत्री संबंध स्थापित हो जाता है।

मैत्री भाव – अर्थात् प्राणीमात्र की रक्षा करना, किसी का विनाश न करना, किसी को हानि न पहुंचाना। मैत्री भाव के उदय के साथ ही व्यक्ति के हृदय की गांठें खुल जाती हैं। प्रतिशोध की भावनाएं विलीन हो जाती हैं। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार शनैःशनैः वैसे ही विलीन हो जाते हैं जैसे सूर्योदय की वेला में आकाश के सितारे विलीन हो जाते हैं।

क्षमापना से मैत्री और मैत्री से शत्रुता का भाव मिट जाता है। सहज आनन्द का उदय होता है। "मैं क्षमा कैसे मांगू.....मैं खमतखमावण कैसे करूं" आदि क्षुद्र भाव जड़मूल से खो जाते हैं। ●●●

क्षमापना का आराधक

जो क्षमापना करता है वह आराधक है। जो क्षमापना नहीं करता है वह विराधक है। हम दूसरों की चिन्ता क्यों करते हैं कि उसने क्षमापना नहीं की। उसकी आत्मा के परिणाम वह जाने। जो सच्चे मन से क्षमापना करता है वही क्षमापना की आराधना करता है। संयम का सार ही उपशम है। यह प्रभु का प्रवचन है। इस ओर ध्यान दें। हमें अपनी आत्मा को शांत करना चाहिए। हमें यह सोचने की आवश्यकता नहीं कि सामने वाला क्या सोचता है। हमारी शांति, हमारी सरलता, हमारी क्षमापना एक दिन अवश्य रंग लाएगी। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों कोई न कोई दिन अवश्य आएगा जब हृदय को हृदय से राहत मिलेगी। अगर हमारा हृदय साफ है तो एक दिन दूसरे का कलुषित हृदय भी अवश्य शान्त और स्वच्छ हो जाएगा। वह स्वयं अनुभव करेगा कि मैं व्यर्थ में ही गांठ बांधे बैठा हूँ। इस चिन्तन से वह गांठ से से मुक्त हो जाएगा और निर्ग्रन्थ हो जाएगा। ●●●

योग

मन, वचन और काया को योग कहा गया है। अर्थात् इनकी प्रवृति योग है। योग से ही कर्म का बन्ध होता है और योग से ही कर्म का क्षय भी होता है। योग जब संवर से जुड़ जाता है तो वह कर्मक्षय का निमित्त बनता है और जब वह आश्रव से जुड़ जाता है तो बन्ध का हेतु बन जाता है।

इसी बात को निंदा के संदर्भ में समझें। निंदा से आदमी संसार सागर से तैर भी जाता है और उस से संसार सागर में डूब भी जाता है। आत्म-निन्दा से आत्मा हल्की होती है, कर्म से मुक्त होती है और संसार सागर से पार हो जाती है। इसके विपरीत पर-निंदा से आत्मा भारी होकर संसार सागर में डूब जाती है।

योग साधन हैं। कर्मबन्ध और कर्मक्षय योग के उपयोग पर निर्भर है। इनके सदुपयोग से आप कर्ममुक्त हो सकते हैं औ और दुरुपयोग से बन्धनयुक्त हो सकते हैं। ●●●

वर्तमान पर चिन्तन कीजिए

अक्सर हम दुहाई देते हैं – हमारे गुरुमहाराज ऐसे थे, हमारे दादा-परदादा ऐसे थे। बिल्कुल ठीक है, ऐसे ही होंगे। हम पीढ़ियों की बातें अक्सर करते हैं लेकिन सोचें कि हम स्वयं कैसे हैं? क्या करते हैं? हमें वर्तमान देखना है। इस समय अपनी जो हालत है वह कैसे सुधरे? हम कैसे ऊपर उठें? कैसे गुजारा करें? किस ढंग से जीएं? इस पर चिन्तन अपेक्षित है। इस पर चिन्तन करें तो हम संकट से उबर सकते हैं। हमारा भविष्य संवर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदेहावस्था

जीवन जड़ और चेतन अवस्था का सम्मिश्रण है। जब चेतन अपनी अवस्था में और जड़ अपनी अवस्था में चला जाए अर्थात् दोनों पृथक् हो जाएं तो उसे पूर्णता कहा जाता है। जब तक चेतन जड़ का आश्रय लेता रहता है तब तक वह स्वतन्त्र नहीं होता। स्वाधीन होने के लिए दूसरे का अवलम्बन छोड़ना होगा। जब तक भौतिक पदार्थ चेतना के अवलम्बन रहेंगे तब तक जीवात्मा अपने स्वरूप में नहीं आ पाएगा। देह के रहते विदेह हो जाना, जीवन के रहते जीवन्मुक्त हो जाना यही हमारी साधना का लक्ष्य है। हम देह में रहें पर उस पर हमारी ममता न रहे, मोह न रहे, देह बुद्धि न रहे, यही विदेहावस्था है। ●●●

समदर्शी

समदर्शी वह है जो समता भाव से देखता है, समान भाव से देखता है। समदर्शी सोने और पीतल को एक भाव से देखता है। उसके भावों में उथल-पुथल नहीं मचती है। राग अथवा द्वेष से उसकी विचार धारा दूषित नहीं बनती है। स्वर्ण के लिए उसके हृदय में राग और पीतल के लिए विराग नहीं जगता है। ऐसा नहीं है कि वह स्वर्ण के मूल्य से परिचित नहीं है। वह स्वर्ण का मूल्य जानता है। पीतल का मूल्य भी जानता है। परन्तु इन दोनों धातुओं को समक्ष पाकर भी उसके भावों में विचित्रता नहीं आती है। वह समरस बना रहता है।

स्वर्ण को समक्ष पाकर हमारी आंखों में चमक उतर आती है। ऐसा क्यों? क्या स्वर्ण में इतनी शक्ति है कि वह हमें आनंदित कर सके? यह हमारी भ्रान्ति है। हमने यह मान लिया है कि स्वर्ण सुख का स्रोत है। स्वर्ण सुख का स्रोत होता तो महावीर उसे कभी न छोड़ते। बड़े-बड़े स्वर्ण स्वामी सबसे बड़े सुखी हो जाते। पर ऐसा नहीं हुआ। ऐसा हो नहीं सकता है। स्वर्ण एक साधारण धातु है। अन्य धातुओं से अधिक चमकीला होना उसका गुण है। अन्य धातुओं से पृथ्वी पर अल्प मात्रा में उसका उपलब्ध होना उसके मूल्य का कारण है। इससे अधिक कुछ नहीं है। समदृष्टि इस तथ्य-सत्य से परिचित होता है। वह यह भी जानता कि स्वर्ण से जो खरीदा जा सकता है वह भी नश्वर है। सुख देने वाला नहीं है।

समदर्शी राग और द्वेष से अतीत की साधना करता है। उसका स्वत्व और परत्व का भाव मिट चुका होता है। वह किसी को अपना और किसी को पराया नहीं मानता है। चार दिवारियों से मुक्त होकर वह निस्सीम नभ में विचरण करता है।

महावीर का मुनि भी समदर्शी होता है। हम महावीर के मुनि हैं। पर हम समदर्शी नहीं बन पाए हैं। राग द्वेष की गाँठें हमारे अन्दर मौजूद हैं। अपने श्रावक आ गए, वे वन्दना करें या न करें, पाटे के पास सहारा लेकर बैठ गए तो भी हम खुश होते हैं। उनसे मधुर आलाप-संलाप करते हैं। जिन्हें हम अपना श्रावक नहीं मानते, अमुक साधु के श्रावक मानते हैं वे बेचारे तीन बार भी वन्दन करें तो भी हम बोलते नहीं हैं। उनकी ओर देखते तक नहीं है। तो क्या यह समदर्शिता है? 'महाराज को वन्दन किया लेकिन उन्होंने हमारी ओर देखा ही नहीं' यह शिकायत समदर्शिता के अभाव में उभरती है।

जब तक समत्व नहीं जागेगा तब तक यह विभाव बना रहेगा। तेरे और मेरे का वर्गीकरण होता रहेगा। जब समत्व जागता है तब चित्त उदार हो जाता है। साधु के लिए, गुरु के लिए बहुत आवश्यक है कि उसके अन्दर समदर्शिता रहे / समदृष्टि रहे। राग और द्वेष दोनों अवस्थाओं में नुकसान है। जब राग आता है तो आसक्ति आती है। मन बंधता है। द्वेष के कारण भी मन बंधता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधक के लिए.....मुनि के लिए धनी-निर्धन, छोटा-वड़ा एक समान होना चाहिए। उसे समदर्शी होना चाहिए। इसी में उसके मुनित्व की गरिमा है। •••

संवेग/वैराग्य

व्यतीतो रागः विरागः।

राग भाव का व्यतीत हो जाना ही विराग है। **"विरागस्य भावं वैराग्यम्"** विराग का भाव ही वैराग्य है। वैराग्य से अभिप्राय है – विरति भाव। वस्तु के प्रति आसक्ति का शान्त हो जाना, मन के संकल्पों-विकल्पों का गिर जाना ही विरति भाव है।

संवेग का भी यही अर्थ है। संवेग मन का वह परिणाम है जो व्यक्ति की आसक्ति को तोड़ता है। मन से जो वस्तु की चाह का सम्बन्ध है संवेग उसे शान्त कर देता है। व्यक्ति को सहज रूप में लाने वाला है संवेग। एक विश्रुत दोहा है –

ज्यूं समदर्शी जीवड़ो करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तरगति न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल।।

संवेग सिखाता है कि हमें संसार में कैसे जीना चाहिए। धाय बालक को खिलाती पिलाती है, नहलाती है, खेलाती है। उसका पूरा ध्यान रखती है। परन्तु हृदय से वह यह जानती और मानती है कि वह बालक उसका नहीं है। कोई भी देखने वाला भ्रमित हो सकता है कि यह बालक इसी का है। पर वह स्वयं भ्रमित नहीं होती। उस बालक के मोह में वह वन्धती नहीं है। संसार में जीने का भी यही ढंग है। संसार में रहो, परिवार में रहो पर संसार या परिवार को अपने भीतर प्रवेश मत करने दो। इस सत्य को विस्मृत मत करो कि संसार या परिवार तुम्हारा नहीं है। खाओ, पीओ, सुख सुविधाएं भोगो पर उनसे लिप्त मत बनो। जग में ऐसे रहो जैसे कमल जल में रहता है। कमल जल में रहकर भी उससे असम्पृक्त रहता है, अछूता रहता है।

संवेग ही मनुष्य में यह गुण उत्पन्न करता है। इसीलिए संवेगी व्यक्ति हर्ष और शोक से अतीत बन जाता है। जिन वस्तुओं को पाकर आप आनन्दमग्न बन जाते हो संवेगी उन्हें पाकर आनन्दित नहीं होता है। क्योंकि वह जानता है जो प्राप्त हो रहा है वह उसका नहीं है। जो उसका नहीं है वह सदैव उसके साथ नहीं रह सकता है। जिसकी नियति ही छुट जाना है, वियोग हो जाना है उसके संयोगग पर कैसा हर्ष?

साधारण लोग जिन वस्तुओं या परिजनों का वियोग हो जाने पर आंसू बहाते हैं संवेगी उनके वियोग पर दुखित नहीं होता है। क्यों कि जो छुट रहा है उसे उसने पकड़ा ही नहीं था, अपना माना ही नहीं था।

संवेग मोह को उपशमित करता है। ममत्व की ग्रन्थियों का उच्छेदन करता है। संवेगी व्यक्ति "मेरे पन" के भाव से मुक्त होता है।

भगवान महावीर ने कहा – संवेग से अनुत्तर धर्म श्रद्धा की प्राप्ति होती है। संवेग धरातल है धर्म श्रद्धा का। इससे धर्मश्रद्धा सामान्य से विशेष हो जाती है, कमजोर से सुदृढ़ हो जाती है।

संवेग हमारे जीवन में घटे। संवेग ही हमें समस्त बन्धनों और सुखों-दुखों से मुक्त करके समता प्रदान करेगा। परम आनन्द की भूमिका पर प्रतिष्ठित करेगा। संकल्प-विकल्प स्वतः ही शान्त हो जाएंगे।

हमें जीवन मिला है। यह अमूल्य है। इससे हमें कटुता नहीं फैलानी चाहिए। वैमनस्य नहीं फैलाना चाहिए। प्यार का प्रसार कीजिए। मृदुता फैलाइए। इसके लिए सूत्र है – आलोचना। भूल हो जाए तो उसे तत्काल स्वीकार कर लो। ऐसा करोगे तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपका जीवन बहुत सरस हो जाएगा। मधुर हो जाएगा। •••

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनवाणी

जिनवाणी को आप यदि श्रद्धा से, विश्वास से, पूरे ध्यान से सुनेंगे तो बड़ा आनन्द आएगा। क्योंकि वह सच्चे आनन्द से आपको परिचित कराती है। उसे सुनकर, हृदयंगम करके आपका मन रोग मुक्त बनता है। आपकी आत्मा कर्म मुक्त बनती है।

पर आपका मन संदेहशील बना रहता है। संदेह के कारण ही आप सुनकर भी सुन नहीं पाते हैं। कुछ सुन भी लेते हैं तो ग्रहण नहीं करते हैं। यही कारण है कि आप जिनवाणी सुनकर भी आनन्द से रिक्त रह जाते हैं।

कई बार शरीर रुग्ण हो जाता है। ऐसी अवस्था में हम डॉक्टर के पास जाते हैं। वह हमें दवाई देता है। उस दवाई को हम पूरे विश्वास के साथ खा लेते हैं। हमारी श्रद्धा डॉक्टर पर होती है, दवाई पर होती है। उसे हम सही समय पर सही मात्रा में ग्रहण कर लेते हैं। डाक्टर के परामर्शानुसार हम परहेज भी निभा लेते हैं। फिर शीघ्र ही रोग मुक्त हो जाते हैं।

परन्तु जिनवाणी के साथ हमारा व्यवहार विपरीत होता है। संदेह का दंश बार-बार हमें दंशित करता रहता है। हम पूर्ण श्रद्धा भाव से उस अमृत का पान नहीं करते हैं। इसीलिए रिक्त रह जाते हैं। हमारे मन के रोग नहीं मिट पाते हैं।

जैसे डॉक्टर के प्रति आप आस्थाशील रहते हैं वैसे ही जिनवाणी के प्रति भी आस्थाशील बनिए। उसे सुनिए। पढ़िए। हृदयंगम कीजिए। सुनते-पढ़ते समय अपने मन-वचन-काय को स्थिर रखिए। ये तीनों योग जब जिनवाणी श्रवण-अनुचिन्तन पर पूर्णतः केन्द्रित हो जाएंगे तो एक विस्फोट होगा। हमारे राग द्वेष रूपी आत्म रोग छिन्न-भिन्न हो जाएंगे। हजारों वर्षों के कर्म क्षण भर में टूट जाएंगे। ●●●

अपरिग्रह

महापुरुषों ने कहा – **"मूच्छा परिग्गहो वुत्तो।"** मूर्च्छा ही परिग्रह है। धन, दौलत, महल, पत्नी तथा अन्य साजो-सामान परिग्रह नहीं हैं। परिग्रह बाहर की वस्तु नहीं है। भीतर के एक भाव का नाम परिग्रह है। आप अरबों पति होकर भी अपरिग्रही हो सकते हो। दरिद्र, फटेहाल होकर भी परिग्रही हो सकते हो।

वस्तु परिग्रह नहीं है। वह तो साधन है। जीवन यापन के लिए साधनों का उपयोग तो करना ही पड़ेगा। पर उन साधनों पर मूर्च्छा भाव न हो। उन्हें पकड़ कर मत बैठ जाओ।

महाराज भरत एक बड़े सम्राट् थे। षड्खण्डाधीश थे। उनके पास अपार वैभव था। हजारों रानियों के वे स्वामी थे। पर उस अपार वैभव पर, रानियों पर उनका ममत्व भाव न था। वे उनसे बन्धे हुए न थे। इसीलिए एक बड़े साम्राज्य के स्वामी होते हुए भी वे अत्यन्त हल्के रहे। पाप के भार से उनकी आत्मा भारी नहीं बनी।

अपरिग्रही बनिए। हृदय से, मन से वस्तु के ममत्व भाव से मुक्त बनिए। यही अपरिग्रह है। ●●●

आलोचना

हमारे जीवन में प्रमाद से, कषाय से, भावनाओं के तीव्र आवेग से यदि कोई दोष लग गया तो उसके प्रक्षालन का उपाय है – आलोचना। आलोचना आत्मशुद्धि का श्रेष्ठ उपाय है। आलोचना को लौकिक पक्ष से मत पकड़ना। लौकिक पक्ष से पकड़ोगे तो भटक जाओगे। दूसरों की आलोचना, निन्दा में उलझ जाओगे। आलोचना जैन आगमों का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ होता है-अपने दोषों को स्वीकार कर लेना/देखना और प्रकट करना।

अपने दोष स्वीकार करना सहज बात नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारा अहंकार इसमें एक बहुत बड़ी बाधा बनकर खड़ा हो जाता है। आलोचना वही कर सकता है जो अपने अहं को निरस्त करने में सक्षम हो।

आलोचना से हमारी आत्मा शुद्ध हो जाती है। सारे झगड़े और क्लेश मिट जाते हैं। आलोचना हमारे घर के अन्दर आने वाली कटुता को भी शान्त कर देती है। जब आप अपनी भूलोंको, अपने दोषों को अपने बड़ों के सामने स्वीकार कर लोगे तो वे आपको क्षमा कर देंगे। घर में पुनः माधुर्य उतर आएगा। घर पुनः घर बन जाएगा।

लेकिन आज हम अपनी भूल मानने को तैयार नहीं होते हैं। इसी के परिणाम स्वरूप घर टूट जाते हैं। समाज बिखर जाते हैं। समाज का अर्थ है समान जाति, कुल और विचारधारा के लोगों का, परिवारों का समूह। जहाँ समूह है वहां भूल होना बहुत सहज है। मन मुटाव होना सहज है। उसे दूर करने के लिए आलोचना एक सूत्र है। आप अपनी भूल स्वीकार करेंगे। दूसरा अपनी भूल स्वीकार करेगा तो विवाद समाप्त हो जाएगा। •••

भक्ति की रीति

भक्ति की यह रीति नहीं कि मन कहीं रहे और तन कहीं रहे। अक्सर होता यही है। हम देह से मंदिर में बैठे होते हैं, सामायिक में बैठे होते हैं पर हमारा मन कहीं ओर भटक रहा होता है। जुबान पर आराध्य की स्तुति होती है परन्तु मन कहीं व्यवसाय में उलझा होता है। यह भक्ति की रीत नहीं है। भक्ति में हमारे तीनों योग एकाग्र होने चाहिए, समरस होने चाहिएं, तभी भक्ति हो सकेगी।

विश्रृंखलित योगों से की गई भक्ति हमें कर्ममुक्त नहीं कर पाएगी। हमारी आत्मा कोई ऐसा वस्त्र नहीं है जिसे झाड़ दो तो उस पर जमी धूल गिर जाएगी। ऐसे सामान्य बन्ध भी हैं जो हल्के से यत्न से आत्मा से दूर हो जाते है। पर जो गाढ़ बन्ध हैं उनके लिए महान श्रम अपेक्षित है। वह श्रम भी तभी सार्थक होगा जब हमारे तीनों योग समरस हो जाएंगे। इसी का नाम भक्ति है।••

कार्यात्सर्ग से जीव हल्का होता है

जब शुद्धिकरण हो जाता है तो हृदय हल्का हो जाता है। हृदय में संतोष आता है। गलती हो गई लेकिन प्रायश्चित करके उस गलती को दूर कर दिया। भूल का प्रायश्चित ले लिया। तो हृदय हल्का हो गया। नहीं तो दिलो-दिमाग पर एक बोझ बना रहता है, हर वक्त एक भार बना रहता है। संकल्प - विकल्प आते रहते हैं बार-बार।

जैसे भारवाहक/मजदूर बहुत बड़ा भार उठाकर दूसरी जगह ले जाता है। चलते-चलते मंजिल आ जाती है गन्तव्य पर पहुंच जाता है। भार उतार कर वह हल्का हो जाता है। वैसे ही दोष रूपी भार उतर जाने पर भी व्यक्ति हल्का हो जाता है।

प्रायश्चित भी विशुद्ध होना चाहिए। पूर्ण होना चाहिए। यदि वह विशुद्ध नहीं होगा वह भी एक भार ही बन जाएगा।

इसी प्रकार कार्योत्सर्ग करने वाला व्यक्ति भी हल्का हो जाता है। चलते चलते ठोकर लग सकती है। भूल हो जाती है। उस भूल की शुद्धि के लिए कार्योत्सर्ग है। कायोत्सर्ग करने से जीव हल्का हो जाता है। •••

अप्पा सो परमप्पा

यह जीव सिद्धों जैसा है। यह तत्त्व दृष्टि है। इस पर हम थोड़ा गहराई से विचार करें। जीवत्व में सिद्धत्व है। जैसे बीज में वृक्ष छिपा होता है ऐसे ही जीव में सिद्धत्व छिपा है। आत्मा में परमात्मा छिपा है। एक दिन हमारा आत्मा ही परमात्मत्व को उपलब्ध होता है। जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म की यह स्पष्ट घोषणा है कि आत्मा ही परमात्मा है। परमात्मा आत्मा से अलग नहीं है। यदि अलग होता तो आत्मा कभी परमात्मा न बन पाता। आत्मा बीज रूप है, परमात्मा वृक्ष रूप है। बीज में वृक्ष होने की पूर्ण संभावना और क्षमता है इसीलिए एक दिन वह वृक्ष बन जाता है।

क्षुद्र से बीज को देखकर यदि आप यह कहें कि इससे इतना बड़ा वृक्ष कैसे उत्पन्न होगा तो यह आपकी अज्ञानता का ही दर्शन होगा। क्योंकि कि जगत में आज तक जितने वृक्ष विकसित हुए हैं वे क्षुद्र बीजों से ही प्रगट हुए हैं।

महावीर की आत्मा में परमात्मा प्रकट हुआ, ऋषभदेव की आत्मा में परमात्मा के फूल खिले, राम भगवान बने। इन पुरुषों में प्रगट हुई भगवत्ता स्पष्ट इंगित है कि हमारे भीतर भी वह क्षमता और योग्यता निहित है कि हम भी परमात्मा हो सकें। हमारी आत्मा में भी परम के पुष्प खिल सकें।

हम परमात्मत्व की संभावनाओं से पूर्ण होते हुए भी संसार में क्यों भटक रहे हैं? हमारे भीतर अनन्त प्रकाश की क्षमता होते हुए भी हम अन्धकार में क्यों भटक रहे हैं? आनन्द रूपा होकर भी हम दुखों की मूर्त्त क्यों बने हुए हैं? हमारे भीतर का परमात्मा प्रगट क्यों नहीं होता है?

इसके लिए हमें थोड़ा चिन्तन करना पड़ेगा। आप यह जानते ही हैं कि घी दूध से निकलता है। दूध के कण-कण में घी विद्यमान है। परन्तु जब तक उसे एक विशेष विधि से उबाला, जमाया और मथा नहीं जाता तब तक आप दूध से घी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

यही बात आत्मा पर चरितार्थ होगी। आत्मा से परमात्मा को प्रगट करने के लिए आत्मसाधना आवश्यक है। स्वयं को तपाना जरूरी है। एक लम्बी साधना और प्रतीक्षा अपेक्षित है तभी आत्मा से परमात्मा प्रगट होगा।

बीज एकाएक वृक्ष नहीं हो जाता है। उसे स्वयं को मिट्टी में दफन करना पड़ता है। स्वयं के अस्तित्त्व को खण्डित करना पड़ता है। उसके विखण्डन से ही वृक्ष की प्रथम सूचना कोंपल फूटती है। उसे मौसम के तीखे तेवरों का सामना करना पड़ता है। ज्येष्ठ की तपिशें और पौष की सर्दी को अपने सीने पर सहना पड़ता है। तब वह वृक्ष हो पाता है। यदि ये सब आघात उसे स्वीकार नहीं हैं तो वह वृक्ष होने की संभावनाओं से पूर्ण होकर भी वृक्ष नहीं बन पाएगा। लेकिन वे नन्हीं कोंपलें सब कुछ झेलने को तैयार रहती हैं। शनैः शनैः विकसित होते-होते, होते-होते एक दिन महावृक्ष हो जाती हैं।

आप भी महावृक्ष....अर्थात् परमात्मा हो सकते हैं। आप यदि परमात्मा होना चाहें तो कोई बाधा आपको रोक नहीं सकती। किसी में इतनी शक्ति नहीं है कि आपके संकल्प को खण्डित कर सके। बस; आवश्यकता है कि संकल्प निर्मित हो। आप संकल्प कर लें और सम्यक् विधि से साधनाशील बन जाएं तो वह क्षण दूर नहीं जब आपमें..... आपकी आत्मा में परमात्मा उतर आएगा। आपके जीवन के समस्त अन्धकार खो जाएंगे। समस्त विषाद धुल जाएंगे। तब आपको किसी परमात्मा के समक्ष खड़े होकर प्रार्थना करने की आवश्यकता न रहेगी कि वह आपको अन्धेरे से प्रकाश की ओर ले जाए। मृत्यु से अमृत की ओर ले जाए।

तुम्हारे अन्धेरों को सिवाय तुम्हारे कोई नहीं मिटा सकता। तुम्हारी मृत्यु के हन्ता तुम हो। किसी अन्य से इसकी अपेक्षा मत करना। अन्य से अपेक्षा करोगे तो भटक जाओगे। क्योंकि तुम्हारे परमात्मा तुम स्वयं हो। अपने परमात्मा को जगा लो। उसे पुकार लो। शेष किसी को पुकारने की जरूरत नहीं। **अप्पा सो परमप्पा**। इस सूत्र को आत्मसात् कर आगे बढ़ो। साधनाशील बनो। तुम स्वयं मृत्यु-हंता हो जाओगे। अरिहंत हो जाओगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहार, व्यवहार और आचार

व्यक्ति का आहार, व्यवहार और आचार जब तक दुरुस्त नहीं होगा तब तक उसका, उसकी समाज का और उसके धर्म का दूसरों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। आज यदि हमें अपने धर्म को प्रभावी बनाना है तो हमें अपने आहार पर ध्यान देना होगा। हम क्या खा रहें हैं? हमें क्या खाना चाहिए? हम भक्ष्य खा रहे हैं या अभक्ष्य खा रहे हैं, इस पर हमें चिन्तन करना होगा। आज हमारा अधिकांश आहार रेडिमेड/बना-बनाया आता है। अक्सर वह अभक्ष्य जैसा होता है। उसकी पैकिंग पर फार्मूला नहीं लिखा होता है। लिखा भी होता है तो उस पर विश्वसनीयता का कोई सुदृढ़ आधार नहीं होता है। घर हम जल्दी में होते हैं। आसान मार्ग चुनते हैं। एक तकिया कलाम बन गया है आज कि - **'कुण माथा फोड़ी करे।'** जो मिलता है बाजार में हम उसे ही ले आते हैं। घर पर बनाने की कोशिश नहीं करते। कौन बनाए? हम श्रम से जी चुराते हैं। नतीजा यह होता है कि हम अपने आहार पर ध्यान नहीं दे पाते हैं।

पुरानी कहावत है-

"जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन,"
"जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी।"

हम जैसा अन्न खाएंगे, जैसा जल पीएंगे हम वैसे ही हो जाएंगे। अपने आहार पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

अपने व्यवहार पर ध्यान दें। देखें कि हम किसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। कैसे उठते-बैठते हैं। किसके साथ किस प्रकार से बोलते हैं। छोटों के साथ हमारा क्या व्यवहार है। ये बातें ध्यान देने योग्य है। क्योंकि हमारे जाति-कुल-खानदान की पहचान हमारे व्यवहार और वचन से ही होती है। उच्च कुल का व्यक्ति भले ही निर्धन हो, साधनहीन हो लेकिन अपनी वाणी को खराब नहीं करता है, वह निम्न भाषा का उपयोग नहीं करता है, अपने व्यवहार की गरिमा को गिरने नहीं देता है।

व्यवहार के साथ ही हमें अपने आचार पर भी ध्यान देना होगा। आचार रक्षा के लिए हमें अपनी पुरानी मर्यादाओं का अध्ययन करना होगा। आज के युग में यदि अपेक्षित है तो उनमें परिवर्तन भी करना होगा। आज हम किधर जा रहे हैं? हमारे बच्चे क्या कर रहे हैं? इस पर दृष्टि डालिए।

आज आपवादिक विवाह हमारे समाज में बढ़ते जा रहे हैं। माता-पिता की सोच भी बदल गई है। वे सोचते हैं – जीवन उन्हें बिताना है, हमें क्या। जाति और कुल का विचार गौण हो गया है। लड़का स्वतंत्र हो गया है पत्नी चुनने में, लड़की स्वतंत्र हो गई है पति चुनने में। माता-पिता को, बुजुर्गों को, जिनके पास जीवन का विस्तृत अनुभव होता है बीच से विदा कर दिया गया है। यह हमारे आचार की सुरक्षा पर एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह है।

इस प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ देना, या इससे आंखें चुरा लेना समझदारी नहीं है। ऐसा करना आत्मघाती होगा। हमें अपने आचार को सुदृढ़ बनाना होगा। पवित्र और स्वच्छ बनाना होगा। अपनी संतानों में बचपन से ही सुसंस्कार डालने होंगे। उन्हें कुसंगति से बचाकर रखना होगा।

हमारा आहार, व्यवहार और आचार सम्यक् बने। ऐसा होगा तो हमारा जीवन ही आगम बन जाएगा। न केवल हम अपने मित्रों को ही धार्मिक बना पाएंगे अपितु, अन्य लोगों को भी हम प्रभावित कर सकेंगे.... उन्हें श्रेष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा दे सकेंगे। •••

आचार प्रथम धर्म है

व्यक्ति के जीवन में आचार का बहुत बड़ा महत्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आचार से अभिप्राय है-व्यक्ति के जीवन का चलन। चलन जितना साफ सुथरा होगा उतनी ही हिंसा कम होगी, झूठ का परिहार होगा, चौर्य का परिहार होगा, व्यभिचार, दुराचार आदि अब्रह्मचर्य का परिहार होगा, परिग्रह का परिहार होगा। चलन जितना स्वस्थ होगा उतना ही हमारा जीवन भी स्वस्थ होगा।

"आचारः प्रथमो धर्मः" आचार जीवन का पहला धर्म है। आप पूछ सकते हैं कि आखिर आचार है क्या? मन से सोचना, वाणी से बोलना और काया के द्वारा करना इसी का नाम तो आचार है। कोई भी कार्य निष्पन्न होता है तो तीनों योगों से निष्पन्न होता है।

वाणी, विचार और व्यवहार का सम्यक रूप ही आचार है और यह आचार ही जीवन के लिए धर्म का रूप है। जैसे धर्म की उपासना हम आत्मशुद्धि के लिए, कर्म निर्जरा के लिए करते हैं वैसे ही आचार की उपासना भी हम जीवन को स्वच्छ बनाने के लिए करते हैं।

प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है? इसका समाधान है- **"धार्यते इति धर्मः"** अर्थात् जो हमें धारण करे, हमारे जीवन को ऊपर उठाए उसका नाम धर्म है। तो यह आचार जो है यह भी धर्म है। यह धर्म इसलिए है कि इसका आचरण करने से जीव कभी नारकीय नहीं बनता, कभी पशु नहीं बनता, कभी दानव नहीं बनता। धर्म का पालन करने वाला, आचार की आराधना वाला व्यक्ति पतन की दिशा में नहीं जा सकता। वह उत्थान ही करेगा। मनुष्य से वह देव बन सकता है, देवाधिदेव बन सकता है।

आचार की आराधना से हमारे जीवन का ओछापन समाप्त हो जाएगा विचार और व्यवहार में सम्यक् दृढ़ता आएगी। पशुता मिटेगी मनुष्यता आएगी। नरक खो जाएगा दिव्यता प्रगट होगी। ●●●

कुछ क्षण अपने लिए भी निकालिए

मोहासक्त व्यक्ति सत्य को नहीं देख सकता है। मोह में तो उसे अच्छा ही अच्छा नजर आता है। एक बड़ी पुरानी कहावत है- सावन में सब ओर हरितिमा खिल जाती है। हरी-कोमल घास उग आती है। पर गधे उस घास को खाते नहीं हैं। उसे देख-देख कर ही खुश होते रहते हैं। राजी होते रहते हैं और इधर से उधर कुलांचे भरते रहते हैं। दौड़ते रहते हैं। भाद्रपद का महीना बीतता है तो घास सूखने लगती है तो वह गधा रोता है। पश्चात्ताप करता है कि वह घास कहां गई।

बन्धुओ! बुरा मत मानना। यही हालत है हमारी। भरा पूरा परिवार होता है। व्यक्ति देख-देख कर प्रसन्न होता रहता है। अपने भाग्य पर इठला कर कहता है कि देखे पांच बेटे हैं, पांच बहुएं हैं, पोते हैं, पोतियां हैं। यह सब मेरे अपने हैं।

जरा विचार कीजिए.....चिन्तन कीजिए कि क्या ये सब आपके हैं? कल तो ये आपके नहीं थे। कल फिर आएगा कि ये आपके नहीं रह जाएंगे। जिनके लिए आप दिन रात भागे फिरते हैं, सुख चैन को तिलांजलि दे बैठे हैं...... ज्ञानियों की दृष्टि में वे आपके नहीं हैं। रात भर बिताने को आप इस जीवन रूपी वृक्ष पर आ बैठे हैं। इस वृक्ष पर आश्रय प्राप्त करने आए अन्य पक्षियों के मोह में आप पड़ेंगे तो प्रभात में आपको पछताना पड़ेगा जब सब पक्षी अपनी-अपनी दिशाओं में उड़ जाएंगे।

मोह का वृक्ष स्वार्थ के धरातल पर विकसित होता है। स्वार्थ पूरे होते ही यह वृक्ष आधार हीन हो जाता है। इस सत्य को आप अपने जीवन में निश्चित रूप से अनुभव भी कर चुके होंगे। फिर भी किसी सज्जन के पुत्र-पुत्री अथवा पुत्रवधु भाग्यवान होते हैं तो उसकी सेवा हो जाती है, पर मृत्यु का क्षण तो सब विलीन कर ही देता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरा चिन्तन कीजिए। घर पर एकान्त नहीं मिलता तो स्थानक में आकर चिन्तन कीजिए। सोचिए कि यह यह अमूल्य जीवन क्या यों ही खो देने के लिए है। मैं आपको साधु बनने का पाठ नहीं पढ़ा रहा हूँ। मात्र आत्मचिन्तन के लिए प्रेरित कर रहा हूँ। थोड़ा समय अपने लिए भी निकालिए। बाहर बहुत भटक लिए हैं। अन्य के लिए बहुत श्रम कर लिया है। थोड़ा श्रम अपने लिए भी कीजिए। अपने आत्मदेव की आराधना भी कीजिए।

पर ऐसा तभी होगा जब आप ममत्व ग्रन्थियों को क्षीण करेंगे। ममत्व को क्षीण करके आप आत्मराधना करेंगे तो आपको पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा। •••

ज्ञानी और अज्ञानी

समझू शंके पाप से, अणसमझू हरषंत।
वे लूखा वे चीकणा, इम विध कर्म व्रधंत।।

जो ज्ञाता है, जानने वाला है वह पाप करने में संकोच करेगा। उसे शंका आएगी कि मैं करूं तो लोग क्या कहेंगे। क्या यह कर्म मेरे करने योग्य है। सौ वार शंका करेगा वह। पाप करने से पहले और करते हुए उसका हृदय कांपता रहेगा। लेकिन जिसे पुण्य पाप का ज्ञान ही नहीं है वह सप्रसन्न चित्त से पाप करता रहेगा। वह सशंक न होगा। जो ज्ञानी है, उसे बुरा काम करना भी पड़े तो वह विवशता और लाचारी में करता है। इससे उसका कर्मबंध हल्का होता है। जो अज्ञानावस्था में पाप करते हैं उनके कर्म चिकने बंधते हैं। वहां कषायों की तीव्रता होती है। विवेक और विचार का पूर्णरूप से अभाव होता है। इसलिए ज्ञानी और अज्ञानी समान कर्म करते हुए भी असमान कर्मबन्ध करते हैं। ज्ञानी की आत्मा पर पड़ने वाले बन्धन अत्यन्त हल्के होते हैं और अज्ञानी की आत्मा पर पड़ने वाले वन्धन सघन और चिकने होते हैं। •••

स्वयं पर भरोसा

"जब आत्म पर विश्वास नहीं,
परमात्म पर कैसे लाओगे।
यों ही सम्भ्रात बने रहकर,
जग में ठोकर खाओगे।।"

जब हमें अपनी आत्मा पर ही भरोसा नहीं है तो हम परमात्मा पर भरोसा कैसे करेंगे। "अप्पा सो परमप्पा" अर्थात् आत्मा ही परमात्मा है। इससे स्पष्ट है कि आत्मा पर भरोसा करने का तात्पर्य है परमात्मा पर भरोसा करना। पर हम स्वयं प्रथम हैं। आत्मा प्रथम है। परमात्मा पश्चात् है। इस क्षण हम आत्मा हैं, परमात्मा नहीं है। अतः पहले अपनी आत्मा पर भरोसा कीजिए, परमात्मा पर स्वतः ही भरोसा हो जाएगा।

हम परमात्मा को पुकारते हैं। मालाएं जपते हैं, मंदिरों में पूजा करते हैं। ऐसा करते करते हम वृद्ध हो जाते हैं। विदायगी का क्षण आ जाता है, पर परमात्मा की एक झलक हमें नहीं मिल पाती है। इससे तो यह सिद्ध हुआ कि या तो आपकी पुकार झूठी थी था फिर परमात्मा झूठा था।

इस पर आप चिन्तन कीजिए। परमात्मा झूठ नहीं हो सकता है। आपने पुकारा है यह भी असत्य नहीं है। आप मालाएं जपते रहे हैं..... घिसी हुई माला इसका प्रमाण है। पर परमात्मा की एक अनुभूति का एक क्षण आपके जीवन में प्रगट न हुआ। भूल कहां हुई?

भूल हुई है। वह भूल प्रारंभ में ही हो गई। हमने स्वयं को विस्मृत कर दिया। अपनी आत्मा पर भरोसा किया ही नहीं। परमात्मा को पुकारते रहे। ऐसे परमात्मा नहीं मिल सकता। ऐसा भरोसा मिथ्या भरोसा है। मिथ्यात्व है। श्रद्धा स्वयं से शुरू होती है। जो स्वयं पर श्रद्धा करता है भरोसा करता है उसके जीवन में परमात्मा अवश्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रगट होता है। उसकी जीवन धरा पर 'अप्पा सो परमप्पा के फूल अवश्य खिलते हैं।

प्रदर्शन नहीं आत्मदर्शन

समाज में प्रदर्शन की बीमारी छूत की तरह फैल रही है। मेरी यह बात आपको अच्छी नहीं लगेगी, क्योंकि आप परम्परावादी हैं, रूढ़ीवादी हैं। आज तक जो होता आया है, अथवा हो रहा है उससे आप तिलमात्र भी आगे नहीं बढ़ना चहते हैं।

मैं आपसे एक कटु प्रश्न पूछता हूँ कि – साठ वर्ष का एक वृद्ध और उसी की अवस्था की एक वृद्धा भरी सभा में खड़े होकर सजोड़े नियम लेते हैं कि आज से हम चौथे व्रत का पालन करेंगे। उत्तर दीजिए। इस प्रदर्शन की क्या आवश्यकता है? क्या यह एक निम्न प्रकार का आडम्बर नहीं है? आप इसे शायद आडम्बर नहीं मानते। आप उस आडम्बर में स्वयं सम्मिलित हो जाते हैं। वृद्ध को साफा पहनाते हैं। वृद्धा को चुन्नी ओढ़ाते हैं। क्या उन्होंने जीवन में कभी साफा अथवा चुन्नी धारण नहीं की?

यह प्रदर्शन किसलिए?

मैं नियम की आलोचना नहीं कर रहा हूँ। मैं उस 'ढंग' की आलोचना कर रहा हूँ जिस ढंग से आपने नियम को प्रदर्शन की वस्तु बनाकर छोड़ दिया है। और मैं इसे बहुत निम्न स्तर का आडम्बर मानता हूँ। नियम लेने वाले वृद्ध दम्पति के पुत्र, पुत्री, पुत्रवधु, पौत्र, पौत्री आदि सब सभा में उपस्थित होते हैं। इस नियम से आप उन्हें क्या संदेश देना चाहते हैं? यही कि तुम बहुत शौर्य का काम कर रहे हो? शौर्य का काम तो तब होता जब तुम यौवन में वैसा करते। पैर जब कब्र में लटक गए हैं, देह जब शिथिल, जर्जरित और भाररूप हो गई। जब आपको खड़े होने के लिए भी किसी के सहारे की अपेक्षा रहती है ऐसे में, भरी सभा में खड़े होकर नियम लेना आपकी निम्न सोच को ही प्रदर्शित करता है।

भाव बने हैं। तो गुरु महाराज के पास आइए। नियम लीजिए। इस विधि से लिया गया नियम आपका भाव नियम होगा। आपकी अन्तः प्रेरणा की पहचान होगा वह नियम।

युग बदल रहा है। इस बदलते हुए युग में आप भी अपनी परम्पराओं को बदलिए। समझिए इस सत्य को कि नियम मर्यादाएं आत्मा की वस्तुएं हैं। प्रदर्शन से उन्हें मत जोड़िए। जीवन से जोड़िए। •••

आन्तरिक रूपान्तरण

अणगार वही होता है जो ऋजुकृत होता है। जो ऋजुकृत नहीं है वह अणगार नहीं होता है। बात बहुत सीधी है। पर हम कैसे जानें कि यह अणगार है या अणगार नहीं है। हम मुनि-वेश को देखते हैं और नत हो जाते हैं। मुनि के मुनित्व की पहचान का वही पैमाना हमारे पास है। पर वेश से ही कोई मुनि अथवा अणगार नहीं हो जाता है।

मुनि का श्वेत परिधान उसकी निर्मलता और सरलता का प्रतीक है। प्रतीक को ही पकड़ने से सत्य पकड़ में आ जाए यह आवश्यक नहीं है। यह प्रतीक भीतरी परिवर्तन की ओर इंगित करता है। अब भीतर परिवर्तन हुआ है या नहीं हुआ है यह अलग बात है। भीतर यदि परिवर्तन नहीं हुआ है तो समझो वह प्रतीक भारस्वरूप ही है।

तीर्थकर महावीर ने कहा – जैसे गधा अपनी पीठ पर चन्दन का भार ढ़ोकर भी चन्दन की सुगन्ध का आनन्द नहीं ले पाता वैसे ही सकषायी व्यक्ति मुनिवेश धारण करके ही संयम की सुगन्ध से वंचित रह जाता है।

मुनि के लिए यह आवश्यक है कि वह कषायों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्त बने। भगवान ने स्पष्ट उद्घोषणा की – **'न वि मुंडिएण मुणी होइ'** अर्थात् मुंडन करा लेने मात्र से कोई मुनि नहीं हो जाता है। मुंडन करा लेना बड़ी बात नहीं है। जरा सा कष्ट सहकर मुंडन अथवा लुंचन कराया जा सकता है। वस्तुतः केशलुंचन मुनि की पहचान नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि लुंचन करा लिया तो मुनि हो गए।

वेश परिवर्तन तथा केशलुंचन साधुत्व / मुनित्व की कसौटी नहीं है। मुनित्व की कसौटी है अन्तरात्मा का परिवर्तन तथा कषाय का मुण्डन। आगमों में शब्द प्रयुक्त हुए हैं – क्रोधमुंड, मानमुंड, मायामुंड, लोभमुंड। अर्थात् क्रोध-मान-माया और लोभ का मुण्डन करने वाला ही मुनि होता है।

जहां आपको क्रोध दिखाई दे, अहंकार, छल या लोभ दिखाई दे समझ लेना वहां मुनित्व घटित नहीं है। वहां मात्र वेशविन्यास बदला है। अन्तर नहीं बदला है।

आप अपने जीवन में ऋजुता, सरलता, विनम्रता, सन्तोष वृत्ति को धारण करके मुनित्व में जी सकते हैं। सागारी होते हुए भी आप अनगार वृत्ति के आनन्द को अनुभव कर सकते हैं। क्योंकि मुनि/अणगार का सम्बन्ध संयम से है – **"मोणेण मुणि होइ"** – मौन से अर्थात् संयम से मुनि होता है। 'मौनं-संयमम्' – मौन का अर्थ है संयम। •••

सहिष्णुता : सफलता की कुंजी

सहिष्णुता से क्या लाभ है इस पर हम थोड़ा विचार करें। घर में, परिवार में, समाज में कुछ ऐसे छोटे बड़े आदमी मिलेंगे जो किसी भी बात को सुनकर अपना मानसिक सन्तुलन खो देते हैं, क्रोधित हो उठते हैं। जिनमें सुनने का माद्दा नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति अपनी तुनकमिज़ाजी अथवा क्रोध से पूरे परिवेश को क्लेशमय बना देते हैं। घर में और समाज में ऐसी अनेक बातें सुनने में आती हैं, जो अप्रिय होती हैं, जो मात्र सुनने के लिए ही होती हैं, जो एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देने के लिए ही होती हैं। अगर उन्हें सुनकर हम तुनकते रहे तो अपना जीवन और अपना घर विषाक्त बना लेंगे। जीवन अशांति का पर्याय बन कर रह जाएगा।

सहिष्णुता एक गुण तो है ही, यह एक कला भी है जीवन को मधुरता से जीने की। आपके जीवन में यदि सहिष्णुता का गुण है तो आप अपने जीवन में जो चाहें हो सकते हैं। बड़ी से बड़ी सफलताएं सहिष्णुता के बल पर आप अर्जित कर सकते हैं। जन साधारण की पिचानवें प्रतिशत एनर्जी क्रोध में भस्म हो जाती है। उस एनर्जी को आप सुरक्षित रख सकते हैं। उसके बल पर बड़ी से बड़ी मंजिल को पा सकते हैं।

महावीर की कैवल्य की साधना का प्राण तत्त्व सहिष्णुता ही तो था। यदि उनमें सहिष्णुता न होती तो कदापि उनकी साधना को मंजिल न मिल पाती। उनके साधना काल में कदम-कदम पर ऐसी परिस्थितियां निर्मित होती रही कि साधारण व्यक्ति उलझ कर रह जाए। पर महावीर कहीं न उलझे। वस्तुतः जो भीतर से सुलझ जाता है उसकी समस्त उलझनें मिट जाती हैं। भूलभुलैय्या में भी वह भटक नहीं सकता है। उसके कदम जहां-जहां पड़ते हैं वहां-वहां राजमार्ग निर्मित होता जाता है।

आपने संतों से सुना होगा....अथवा आगमों में पढ़ा होगा कि महावीर जहां जाते.....जिस राह से गुजरते उस राह के कांटें औंधे हो जाते थे। यह असत्य नहीं है। इस कथन में प्रतीकात्मक सत्य छिपा है। इसका अर्थ है-महावीर जहां जाते उनके सम्पर्क में आने वाले.....उन्हें कष्ट तक देने वाले दुष्ट सज्जन हो जाते थे...महावीर अपनी सहिष्णुता के बल पर उनके हृदय कण्टकों को औंधा कर देते थे.... अति पवित्र कर देते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगम ने महावीर को असह्य और असंख्य कष्ट दिए। पर महावीर तुनके नहीं। विचलित नहीं हुए। उन्होंने संगम को उत्तर नहीं दिया। अपने हृदय को भी उसके लिए मैला नहीं किया। सहिष्णुता से साधनाशील बने रहे। संगम का दुष्ट हृदय परिवर्तित होगया। अर्थात् उसका हृदय रूपी कांटा ओंधा हो गया।

सहिष्णुता एक महान गुण है। इस गुण के विना आपका जीवन नरक बन जाएगा।

सहिष्णु बनिए। सुखी बनिए। •••

विलुप्त होती श्रद्धा

आज के युग में श्रद्धा का पक्ष कमजोर और तर्क का पक्ष मजबूत हो गया है। व्यक्ति प्रत्यक्ष पर अधिक विश्वास करने लगा है। वह परोक्ष पर कम विश्वास करता है। आज वह हर चीज का आकलन तर्क और बुद्धि के बल पर करना चाहता है। विज्ञान ने, भौतिकवाद ने मनुष्य के मस्तिष्क को बदल दिया है। उसकी विचार धाराओं में परिवर्तन आ गया है। उसी परिवर्तन के कारण आज सहसा किसी बात को स्वीकार नहीं किया जाता है।

विज्ञान अपने प्रत्येक सिद्धान्त को तर्क की कसौटी पर सिद्ध करता है। इसलिए उसके प्रति आज के युग के मानव में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास का भाव है। परन्तु हम तर्क की कसौटी पर अपने सिद्धान्तों की उपयोगिता सिद्ध नहीं कर पाते हैं। हम कहते हैं – धर्म करो, शान्ति मिलेगी। लेकिन ऐसा हो नहीं पाता। आप वर्षों से धर्म कर रहे हैं परन्तु आपको शान्ति नहीं मिल पाई। आप सामायिक करते हैं, वर्षों से करते हैं फिर भी आपमें विषमता विद्यमान है। इससे हमारी सामायिक पर ही प्रश्नचिन्ह लग जाता है। धार्मिक पिता को देखकर उसका पुत्र धार्मिक नहीं हो पाता है। क्यों? क्योंकि पिता धर्म क्रियाएं करके भी अपने भीतर धर्म को जन्म नहीं दे पाया है। वह धार्मिक क्रियाएं भी करता है परन्तु असत्य, हिंसा, क्रोध से भी मुक्त नहीं हुआ है। बल्ब जलेगा तो अन्धकार मिटेगा ही। बल्ब भी जल जाए और अन्धकार भी विद्यमान रहे यह नहीं हो सकता है।

आज धर्म के क्षेत्र में यही हो रहा है। आप धर्म भी करते हैं परन्तु पाप से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। आपकी दशा को देखकर आपकी सन्तानें धर्म से विमुख बन गई हैं। उनमें श्रद्धा का जन्म नहीं हो पाया है।

महावीर की वाणी अकाट्य है। पूर्ण प्रामाणिक और असंदिग्ध है। परन्तु हमने उसे ठीक ढंग से ग्रहण नहीं किया है। हमने शब्द को तो पकड़ लिया है पर उसके भाव को ग्रहण नहीं कर पाए हैं। आज हमारी अकुशलता के कारण धर्म शब्द तो शेष है उसकी आत्मा नष्ट हो गई है।

इसके कारण स्पष्ट हैं – हमने धर्म को विस्मृत कर दिया है और अपनी परम्पराओं की रक्षा में व्यस्त हो गए। धर्म को बचाने के स्थान पर हम स्वयं को बचाने के लिए प्रयत्नशील बन गए। इसी का यह परिणाम हुआ कि दर्शन तो विलुप्त हो गया प्रदर्शन शेष रह गया। •••

✤ ✤ ✤

आपस विच प्रेम ते प्यार वी नहीं, इक दूजे नाल प्यार दी गल्ल वी नहीं।
दसो होर असीं की बणावणाए, सानूं मिल बैठण दा वल्ल वी नहीं।।
आपोधापियां दा होवे जोर जित्थे, ओत्थे बुध वी नहीं ते बल वी नहीं।
कल-कल जिस घर विच आ जावे, ओत्थे अज वी नहीं ते कल वी नहीं।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५

जैन दर्शन का आलोक . पंचम खण्ड

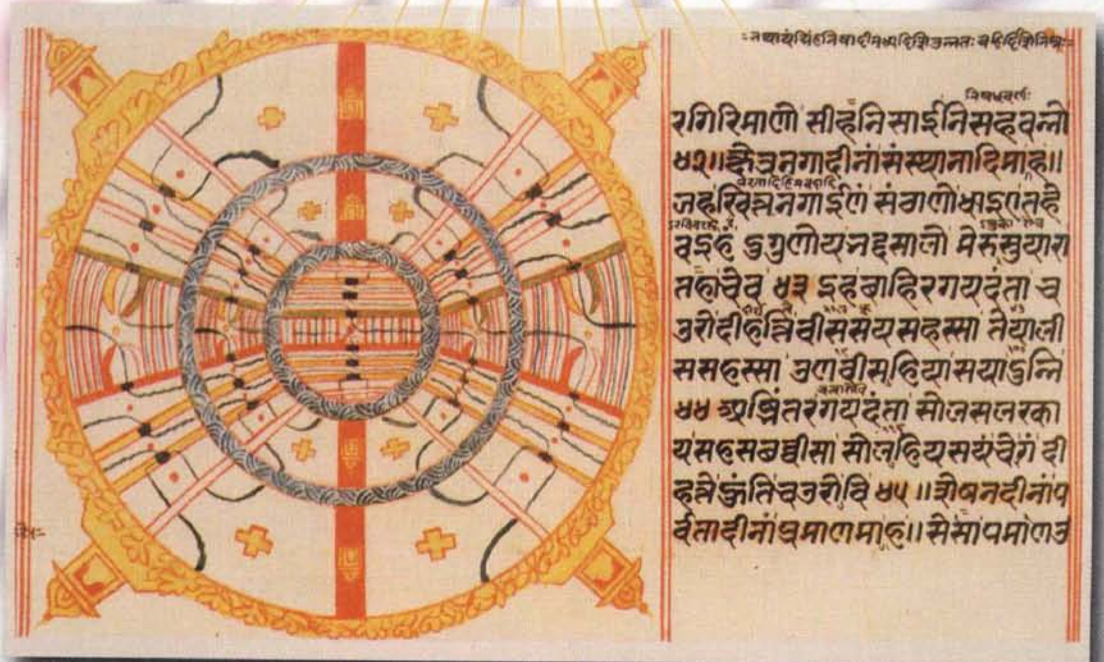

जैन संस्कृति से अनुप्राणित,मूर्धन्य विद्वानों की लेखनी
से संस्पर्शित- ये आलेख जैन दर्शन के इन्द्रधनुषी
विविध पक्षों को उजागर कर रहे हैं।
सन्देश प्रदान कर रहे हैं- दया, क्षमा, शील, सन्तोष के।
रेखाएं हैं प्रतिबिम्बित- जीवन सूत्रों की।
दिग्दर्शन अहिंसा, अनेकान्त का ,संस्तुति जिनवाणी की
विविध पक्ष, विविध तथ्य,आलोचनात्मक, व्याख्यात्मक, तुलनात्मक !
और भी रहस्य होंगे- उजागर......गर करेंगे दृष्टिपात इन पृष्ठों पर !

-भद्रेश जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तवाद : समन्वय का आधार

❑ प्रोफेसर डॉ. प्रेम सुमन जैन, उदयपुर

अनेकांत वस्तुतः समन्वय का आधार है। एक ही सत्य-तथ्य को अनेक पहलूओं से उजागर करना ही अनेकांत है। प्रमाण एवं नय के आलोक में ही अनेकांत के दिग्दर्शन हो सकते है। अनेकांत समस्याओं के सुलझाने हेतु एक न्यायाधीश की भाँति कार्य करता है। प्रो. डॉ. श्री प्रेमसुमन जैन अनेकांत दर्शन को वर्तमान युग के सन्दर्भ में व्याख्यायित कर रहे हैं।

— सम्पादक

सत्य सापेक्ष है

भगवान् महावीर ने ज्ञान के भेद-प्रभेदों का जो प्रतिपादन किया, उसके द्वारा आत्मा के क्रमिक विकास का पता चलता है तथा इस वस्तुस्थिति का भी भान होता है कि हम ज्ञान की कितनी छोटी-सी किरण को पकड़े बैठे हैं, जबकि सत्य की जानकारी सूर्य-सदृश प्रकाश वाले ज्ञान से हो पाती है। महावीर ने इस क्षेत्र में एक अद्भुत कार्य और किया। उनके युग में चिन्तन की धारा अनेक टुकड़ों में बंट गयी थी। सभी विचारक अपनी दृष्टि से सत्य को पूर्णरूपेण जान लेने का दावा कर रहे थे। प्रत्येक के कथन में दृढ़ता थी कि सत्य मेरे कथन में ही है, अन्यत्र नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि अज्ञानी एवं अन्धविश्वासी लोगों का कुछ निश्चित समुदाय प्रत्येक के साथ जुड़ गया था। अतः प्रत्येक सम्प्रदाय का सत्य अलग-अलग हो गया था।

महावीर यह सब देख-सुनकर आश्चर्य में थे कि सत्य के इतने दावेदार कैसे हो सकते हैं ? प्रत्येक अपने को ही सत्य का बोधक समझता है, दूसरे को नहीं। ऐसी स्थिति में महावीर ने अपनी साधना एवं अनुभव के आधार पर कहा कि सत्य उतना ही नहीं है, जिसे मैं देख या जान रहा हूँ। यह वस्तु के एक धर्म का ज्ञान है, एक गुण का। पदार्थ में अनन्त गुण एवं अनन्त पर्यायें हैं। किन्तु व्यवहार में उसका कोई एक स्वरूप ही हमारे सामने आता है। उसे ही हम जान पाते हैं। अतः प्रत्येक वस्तु का ज्ञान सापेक्ष रूप से हो सकता है। पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के दो साधन हैं - प्रमाण एवं नय। जब हम केवलज्ञान जैसे प्रामाणिक ज्ञान के अधिकारी होते हैं तब वस्तु को पूर्णरूपेण जानने की क्षमता रखते हैं। किन्तु जब हमारा ज्ञान इससे कम होता है तो हम वस्तु के एक अंश को जानते हैं, जिसे नय कहते हैं। लेकिन जब हम वस्तु को जानकर उसका स्वरूप कहने लगते हैं तो एक समय में उसके एक अंश को ही कह पायेंगे। अतः सत्य को सापेक्ष मानना चाहिए।

अनिर्वचनीय अस्तित्व

उस युग में महावीर की इस बात से अधिकांश लोग सहमत नहीं हो पाये। लोगों को आश्चर्य होता यह देखकर कि यह कैसा तीर्थंकर है, जो एक ही वस्तु को कहता है – 'है' और कहता है – 'नहीं है।' अपनी बात को भी सही कहता है और जो दूसरों का कथन है उसे भी गलत नहीं मानता। इस आश्चर्य के कारण उस युग में भी महावीर के अनुयायी उतने नहीं बने, जितने दूसरे विचारकों के थे। क्योंकि व्यक्ति तभी अनुयायी बनता है, जब उसका गुरु कोई बंधी-बंधाई बात कहता हो। जो यह सुरक्षा देता हो कि मेरा उपदेश तुम्हें निश्चित रूप से मोक्ष दिला देगा। महावीर ने यह कभी नहीं कहा। इस कारण उनके ज्ञान और उपदेशों से वही श्रावक बन सके जो स्वयं के पुरुषार्थ में विश्वास रखते थे एवं बुद्धिमान थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर जैसा गैरदावेदार आदमी ही नहीं हुआ इस जगत् में। उनका एकदम असाम्प्रदायिक चित्त था। इसी कारण वे सत्य को विभिन्न कोनों से देख सके हैं। महावीर के पूर्व उपनिषद् कहते थे कि ब्रह्म की व्याख्या नहीं हो सकती। बड़ा अद्भुत है उसका स्वरूप। महावीर ने कहा ब्रह्म तो बहुत दूर की चीज है, तुम एक घड़े की ही व्याख्या नहीं कर सकते। उसका अस्तित्व भी अनिर्वचनीय है। इसे महावीर ने विस्तार से समझाया।

सप्तभंगी

महावीर के पूर्व सत्य के सम्बन्ध में तीन दृष्टिकोण थे- (१) है, (२) नहीं है और (३) दोनों – नहीं भी एवं है भी। घट के सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि वह घट है, कोई कपड़ा आदि नहीं। घट नहीं है, क्योंकि वह तो मिट्टी है। तथा घड़े के अर्थ में वह घड़ा है तथा मिट्टी के अर्थ में घड़ा नहीं है। इस प्रकार वस्तु को इस त्रिभंगी से देखा जाता था। महावीर ने कहा कि सिर्फ तीन से काम नहीं चलेगा। सत्य और भी जटिल है। अतः उन्होंने इसमें चार सम्भावनाएं और जोड़ दीं। उन्होंने कहा कि घट स्यात् अनिर्वचनीय है, क्योंकि न तो वह मिट्टी कहा जा सकता है और न घड़ा ही। इसी अनिर्वचनीय को महावीर ने प्रथम तीन के साथ और जोड़ दिया। इस प्रकार सप्तभंगी द्वारा वे पदार्थ के स्वरूप की व्याख्या करना चाहते थे।

इस सप्तभंगी नय को महावीर ने अनेक दृष्टान्तों द्वारा समझाया है। उनमें छह अन्धों और हाथी का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। आप इसे अन्य उदाहरण से समझें। एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, पति, मामा, भानजा, काका, भतीजा इत्यादि सभी हो सकता है। एक साथ होता है। किन्तु उसे ऐसा सब कुछ एक साथ नहीं कहा जा सकता। उसकी एक विशेषता को मुख्य और शेष को गौण रखकर ही कहना होगा। यहाँ गौण रखने का अभिप्राय उसकी विशेषताओं का अस्वीकार नहीं है और न संशय या अनिश्चय ही। बल्कि व्यावहारिकता का निर्वाह है। अतः किसी वस्तु का युगपद् कथन न जरूरी है और न सम्भव। फिर भी उसकी पूर्णता अवश्य बनी रहती है। वस्तुओं के इस अनेकत्व को मानना ही अनेकान्तवाद है।

स्याद्वाद कोई संशयवाद नहीं

पदार्थों की अनेकता स्वयं द्रव्य के स्वरूप में छिपी है, प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य से युक्त होता है। प्रत्येक क्षण उसमें नयी पर्याय की उत्पत्ति, पुरानी पर्याय का नाश एवं द्रव्यपने की स्थिरता बनी रहती है। इसी बात को कहने के लिए महावीर ने अनेकान्त की बात कही। वस्तु का अनेकधर्मा होना अनेकान्तवाद है तथा उसे अभिव्यक्त करने की शैली का नाम स्याद्वाद कोई संशयवाद नहीं है। अपितु स्यात् शब्द का प्रयोग वस्तु के एक और गुण की सम्भावना का द्योतक है।

स्याद्वाद महावीर के जीवन में व्याप्त था। उनके बचपन में ही स्याद्वादी चिंतन प्रारम्भ हो गया था। कहा जाता है कि एक दिन वर्द्धमान के कुछ बालक साथी उन्हें खोजते हुए माँ त्रिशला के पास पहुँचे। त्रिशला ने कह दिया – वर्द्धमान भवन में ऊपर है। बच्चे सबसे ऊपरी खण्ड पर पहुँच गये। वहाँ पिता सिद्धार्थ थे, वर्द्धमान नहीं। जब बच्चों ने पिता सिद्धार्थ से पूछा तो उन्होंने कह दिया – वर्द्धमान नीचे है। बच्चों को बीच की एक मंजिल में वर्द्धमान मिल गये। बच्चों ने महावीर से शिकायत की कि आज आपकी माँ एवं पिता दोनों ने झूठ बोला।

वर्द्धमान ने अपने साथियों से कहा – तुम्हें भ्रम हुआ है। माँ एवं पिताजी दोनों ने सत्य कहा था। तुम्हारे समझने का फर्क है। माँ नीचे की मंजिल पर खड़ी थी। अतः उनकी अपेक्षा मैं ऊपर था और पिताजी सबसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपरी खण्ड पर थे इसलिए उनकी अपेक्षा मैं नीचे था। वस्तुओं की सभी स्थितियों के सम्बन्ध में इसी प्रकार सोचने से हम सत्य तक पहुँच सकते हैं। भ्रम में नहीं पड़ते। वर्द्धमान की यह व्याख्या सुनकर बालक हैरान रह गये। महावीर स्याद्वाद की बात कह गये।

स्याद्वाद और अनेकान्त का सम्बन्ध

स्याद्वाद और अनेकान्तवाद में घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान् महावीर ने इन दोनों के स्वरूप एवं महत्व को स्पष्ट किया है। अनेकान्तवाद के मूल में है – सत्य की खोज। महावीर ने अपने अनुभव से जाना था कि जगत् में परमात्मा अथवा विश्व की बात तो अलग व्यक्ति अपने सीमित ज्ञान द्वारा घट को भी पूर्ण रूप से नहीं जान पाता। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुणों से युक्त वह घट छोटा-बड़ा, काला-सफेद, हल्का-भारी, उत्पत्ति-नाश आदि अनन्त धर्मों से युक्त है। पर जब कोई व्यक्ति उसका स्वरूप कहने लगता है तो एक बार में उसके किसी एक गुण को ही कह पाता है। यही स्थिति संसार की प्रत्येक वस्तु की है।

हम प्रतिदिन सोने का आभूषण देखते हैं। लकड़ी की टेबिल देखते हैं। और कुछ दिनों बाद इनके बनते-बिगड़ते रूप भी देखते हैं किन्तु सोना और लकड़ी वही बनी रहती है। आज के मशीनी युग में किसी धातु के कारखाने में हम खड़े हो जायें तो देखेंगे कि प्रारम्भ में पत्थर का एक टुकड़ा मशीन में प्रवेश करता है और अन्त में जस्ता, तांबा आदि के रूप में बाहर आता है। वस्तु के इसी स्वरूप के कारण महावीर ने कहा था प्रत्येक पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता से युक्त है। द्रव्य के इस स्वरूप को ध्यान में रखकर उन्होंने जड़ और चेतन आदि छः द्रव्यों की व्याख्या की है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान आदि पाँच ज्ञानों के स्वरूप को समझाया है। केवलज्ञान द्वारा हम सत्य को पूर्णतः जान पाते हैं। अतः सामान्य ज्ञान के रहते हम वस्तु को पूर्णतः जानने का दावा नहीं कर सकते। जान कर भी उसे सभी दृष्टियों से अभिव्यक्त नहीं कर सकते। इसलिए सापेक्ष कथन की अनिवार्यता है। सत्य के खोज की यह पगडंडी है।

अनेकान्तः सत्य का परिचायक

अनेकान्त-दर्शन महावीर की सत्य के प्रति निष्ठा का परिचायक है। उनके सम्पूर्ण और यथार्थ ज्ञान का द्योतक है। महावीर की अहिंसा का प्रतिबिम्ब है – स्याद्वाद। उनके जीवन की साधना रही है कि सत्य का उद्घाटन भी सही हो तथा उसके कथन में भी किसी का विरोध न हो। यह तभी सम्भव है जब हम किसी वस्तु का स्वरूप कहते समय उसके अन्य पक्ष को भी ध्यान में रखें तथा अपनी बात भी प्रामाणिकता से कहें। स्यात् शब्द के प्रयोग द्वारा यह सम्भव है। यहाँ स्यात् का अर्थ है – किसी अपेक्षा से यह वस्तु ऐसी है।

विश्व की तमाम चीजें अनेकान्तमय हैं। अनेकान्त का अर्थ है – नाना धर्म। अनेक यानी नाना और अन्त यानी धर्म और इसलिए नाना धर्म को अनेकान्त कहते हैं। अतः प्रत्येक वस्तु में नाना धर्म पाये जाने के कारण उसे अनेकान्तमय अथवा अनेकान्तस्वरूप कहा गया है। अनेकान्तवाद स्वरूपता वस्तु में स्वयं है, – आरोपित या काल्पनिक नहीं है। एक भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो सर्वथा एकान्तस्वरूप (एकधर्मात्मक) हो। उदाहरणार्थ यहलोक, जो हमारे और आपके प्रत्यक्ष गोचर है, चर और अचर अथवा जीव और अजीव इन दो द्रव्यों से युक्त है। वह सामान्य की अपेक्षा एक होता हुआ भी इन दो द्रव्यों की अपेक्षा अनेक भी है और इस तरह वह अनेकान्तमय सिद्ध है।

जो जल प्यास को शान्त करने, खेती को पैदा करने आदि में सहायक होने से प्राणियों का प्राण है / जीवन है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वही बाढ़ लाने, डूबकर मरने आदि में कारण होने से उनका घातक भी है। कौन नहीं जानता कि अग्नि कितनी संहारक है, पर वही अग्नि हमारे भोजन बनाने आदि में परम सहायक भी है। भूखे को भोजन प्राणदायक है, पर वही भोजन अजीर्ण वाले अथवा मियादी बुखार वाले बीमार आदमी के लिए विष है। मकान, किताब, कपड़ा, सभा, संघ, देश आदि ये सब अनेकान्त ही तो हैं। अकेली ईंटों या चूने-गारे का नाम मकान नहीं है। उनके मिलाप का नाम ही मकान है। एक-एक पन्ना किताब नहीं है, नाना पन्नों के समूह का नाम किताब है। एक-एक सूत कपड़ा नहीं कहलाता। ताने-बाने रूप अनेक सूतों के संयोग को कपड़ा कहते हैं। एक व्यक्ति को कोई सभा या संघ नहीं कहता। उनके समुदाय को ही समिति, सभा, संघ या दल आदि कहा जाता है। एक-एक व्यक्ति मिलकर जाति और अनेक जातियाँ मिलकर देश बनते हैं।

जिस प्रकार समुद्र के सद्भाव में ही उसकी अनन्त बिन्दुओं की सत्ता बनती है और उसके अभाव में उन बिन्दुओं की सत्ता नहीं बनती उसी प्रकार अनेकान्त रूप वस्तु के सद्भाव में ही सर्व एकान्त दृष्टियाँ सिद्ध होती हैं और उसके अभाव में एक भी दृष्टि अपने अस्तित्व को नहीं रख पाती। आचार्य सिद्धसेन अपनी चौथी द्वात्रिंशिका में इसी बात को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादन करते हैं:

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः।।

" – जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्र में सम्मिलित हैं उसी तरह समस्त दृष्टियाँ अनेकान्त-समुद्र में मिली हैं। परन्तु उन एक-एक में अनेकान्त दर्शन नहीं होता। जैसे पृथक्-पृथक् नदियों में समुद्र नहीं दीखता।"

इसे एक अन्य उदाहरण से भी समझा जा सकता है। राजेश एक व्यक्ति है। वह अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है तथा अपने पुत्र की अपेक्षा पिता है। वह पति है एवं जीजा भी। मामा है और भानजा भी। अब यदि कोई उसे केवल मामा ही माने और अन्य सम्बन्धों को गलत ठहरादे तो यह राजेश नामक व्यक्ति का सही परिचय नहीं है, इसमें हठधर्मिता है / अज्ञान है। महावीर इस प्रकार के आग्रह को वैचारिक हिंसा कहते हैं। अज्ञान से अहिंसा फलित नहीं होती। अतः उन्होंने कहा कि स्याद्वाद पद्धति से प्रथम वैचारिक उदारता उपलब्ध करो। केवल अपनी बात कहना ही पर्याप्त नहीं है, दूसरों को भी अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर दो। सत्य के दर्शन तभी होंगे। तभी व्यवहार की अहिंसा सार्थक होगी।

सत्य को विभिन्न कोणों से जानना और कहना दर्शन के क्षेत्र में नयी बात नहीं है। किन्तु महावीर ने स्याद्वाद के कथन द्वारा सत्य को जीवन के धरातल पर उतारने का कार्य किया है। यही उनका वैशिष्ट्य है। हम सभी जानते हैं कि हर वस्तु के कम से दो पहलु होते हैं। कोई भी वस्तु न सर्वथा अच्छी होती है और न सर्वथा बुरी –

"दृष्टं किमपि लोकेस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम्।"

नीम सामान्य व्यक्ति को कड़वा लगता है। वही रोगी के लिए औषधि भी है। अतः नीम के सम्बन्ध में कोई एक धारणा बना कर किसी दूसरे गुण का विरोध करना बेमानी है। सामान्य नीम की जब यह स्थिति है तो संसार के अनन्त पदार्थों/अनन्त धर्मों के स्वरूप को जानकर उनका आग्रहपूर्वक कथन करना सम्भव नहीं है। महावीर ने इसे गहराई से समझा था। अतः वे मनुष्य तक ही सीमित नहीं रहे। प्राणी मात्र के स्पन्दन की सापेक्षता को भी उन्होंने स्थान दिया। मनुष्य की भांति एक सामान्य प्राणी भी जीने का अधिकार रखता है। अपनी साधनों द्वारा उसे भी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है। यह महावीर के स्याद्वाद की फलश्रुति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर अनेकान्तवाद व स्याद्वाद से उन गलत धारणाओं को दूर कर देना चाहते थे, जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में बाधक थीं। उनके युग में एकान्तिक दृष्टि से यह कहा जा रहा था कि जगत् शाश्वत है, अथवा क्षणिक है। इससे वास्तविक जगत् का स्वरूप खंडित हो रहा था। मनुष्य का पुरुषार्थ कुण्ठित होने लगा था नियतिवाद के हाथों। अतः महावीर ने आत्मा, परमात्मा और जगत् इन तीनों के स्वरूप का वह यथार्थ सामने रख दिया, जिससे व्यक्ति अपनी राह का स्वयं निर्णायक बन सके। अपूर्व थी – महावीर की यह देन। अनेकान्त व स्याद्वाद के सम्बन्ध में महावीर ने जो कहा वह उनके जीवन से भी प्रकट हुआ है। वे अपने जीवन में कभी किसी की बाधा नहीं बने। जगत् में रहते हुए किसी अन्य के स्वार्थ से न टकराना, कम लोगों के जीवन में सध पाता है। महावीर के अनुसार यह टकराहट अधूरे ज्ञान के अहंकार से होती है। प्रमाद व अविवेक से होती है। अतः अप्रमादी होकर विवेकपूर्वक आचरण करने से ही अनेकान्त जीवन में आ पाता है। अनेकान्त दृष्टि से ही सत्य का साक्षात्कार संभव है।

महावीर द्वारा प्रतिपादित स्याद्वाद में वस्तु के अनन्त धर्मात्मक होने के कारण उसे अवक्तव्य कहा गया है। मुख्य की अपेक्षा से गौण को अकथनीय कहा गया है। वेदान्त दर्शन में सत्य को अनिर्वचनीय और बौद्ध दर्शन में उसे शून्य व विभज्यवाद कहा गया है। अन्य भारतीय दार्शनिकों के अतिरिक्त प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन व दार्शनिक वर्टनरसेल के सापेक्षवाद के सिद्धान्त भी महावीर के स्याद्वाद से मिलते-जुलते हैं। महावीर ने कहा था कि वस्तु के कण-कण को जानो तब उसके स्वरूप को कहो। ज्ञान की यह प्रक्रिया आज के विज्ञान में भी है। इसका अर्थ है कि स्याद्वाद का चिन्तन संशयवाद नहीं है। अपितु, इसके द्वारा मिथ्या मान्यताओं की अस्वीकृति और वस्तु के यथार्थ पक्षों की स्वीकृति होती है। विचार के क्षेत्र में इससे जो सहिष्णुता विकसित होती है वह दीनता व जी-हजूरी नहीं है, बल्कि मिथ्या अहंकार के विसर्जन की प्रक्रिया है।

दर्शन व चिन्तन के क्षेत्र में अनेकान्त व स्याद्वाद की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही व्यावहारिक दैनिक जीवन में। वस्तुतः इस विचारधारा से अच्छे-बुरे की पहिचान जागृत होती है। अनुभव बताता है कि एकान्त विग्रह है, फूट है, जब कि अनेकान्त मैत्री है, संधि है। इसे यों भी समझ सकते हैं कि जिस प्रकार सही मार्ग पर चलने के लिए कुछ अन्तर्राष्ट्रीय यातायात संकेत बने हुए हैं। पथिक उनके अनुसरण से ठीक-ठीक चल कर अपने गन्तव्य पर पहुँच जाते हैं। उसी प्रकार स्वस्थ चिन्तन के मार्ग पर चलने के लिए स्याद्वाद द्वारा महावीर ने सप्तभंगी रूपी सात संकेतों की रचना की है। इनका अनुगमन करने पर किसी बौद्धिक दुर्घटना की आशंका नहीं रह जाती। अतः बौद्धिक शोषण का समाधान है – स्याद्वाद।

महावीर के स्याद्वाद से फलित होता है कि हम अपने क्षेत्र में दूसरों के लिए भी स्थान रखें, अतिथि के स्वागत के लिए हमारे दरवाजे हमेशा खुले हों। हम प्रायः बचपन से कागज पर हाशिया छोड़ कर लिखते आये हैं, ताकि अपने लिखे हुए पर कभी संशोधन की गुंजाइश बनी रहे। जो हमने अधूरा लिखा है, वह पूर्णता पा सके। महावीर का स्याद्वाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें हाशिया छोड़ने का संदेश देता है। चाहे हम ज्ञान संग्रह करें अथवा धन व यश का, प्रत्येक के साथ सापेक्षता आवश्यक है। संविभाग की समझ जागृत होना ही महावीर के अनेकान्त को समझना है। यही हमारे चरित्र की कुंजी है। अनेकान्त हमारे चिन्तन को निर्दोष करता है। निर्मल चिंतन से निर्दोष भाषा का व्यवहार होता है। सापेक्ष भाषा व्यवहार में अहिंसा प्रकट करती है। अहिंसक वृत्ति से अनावश्यक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह और किसी का शोषण नहीं हो सकता। जीवन अपरिग्रही हो जाता है। इस तरह आत्म शोधन की प्रक्रिया का मूलमन्त्र है – महावीर का स्याद्वाद। जैनाचार्य कहते हैं कि संसार के उस एक मात्र गुरु अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार है, जिसके बिना इस लोक का कोई व्यवहार सम्भव नहीं है। यथा –

जेण विणा लोयस्स वि ववहारो सव्वहा न निव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स।।

– आचार्य एवं अध्यक्ष,
जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

❖ ❖ ❖

❑ डा. श्री प्रेमसुमन जैन का जन्म सन् १६४२ में जबलपुर में हुआ। आपने वाराणसी, वैशाली व बोधगया में संस्कृत, पाली, प्राकृत, जैनधर्म एवं भारतीय संस्कृति का गम्भीर अध्ययन किया। आपने लगभग २० पुस्तकों का लेखन-संपादन किया और १२५ शोधपत्र प्रकाशित किए। आप सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। आपने भारत व विदेशों में अनेक सम्मेलनों में शोधपत्र प्रस्तुत किए तथा जैन विद्या पर व्याख्यान दिये। 'प्राकृत-अध्ययन प्रसार संस्थान', उदयपुर के निदेशक एवं "प्राकृत-विद्या" पत्रिका के संपादक। सुप्रतिष्ठित लेखक, पत्रकार, वक्ता एवं संगठक। प्राकृत-विद्या के प्रति पूर्णतः समर्पित व्यक्तित्व !

मनुष्य का भाग्य जब दुर्भाग्य में परिणत होता है तो बुरे कर्मों का उदय होता है। दिन दुर्दिन हो जाते हैं तो सब बातें विपरीत हो जाती हैं। दुश्मन प्रसन्न होते हैं। इस दशा को देखकर अपने सज्जन भी पराये हो जाते है और लेनदार तगादा, वापिस कर्ज की मांग का आग्रह करते हैं - "लाओ दो" ऐसी दुखद स्थिति में सुख कहाँ? शरीर का ढांचा हिल जाता है, चरमरा जाता है क्यों कि प्रति समय "गम की रोटी" यानि दुःख ही दुःख, चिंता ही चिंता सताती है। खुशी तो शुष्क हो गई और हृदय में दुःख की शूलें बढ़ गई। विपदग्रस्त व्यक्ति की दशा है यह। विपत्ति में पड़े व्यक्ति को विपद्ग्रस्त ही उससे सहानुभूति जताता है कि भाईजान ! तूं क्यों कुछ सोच रहा है? मेरी तरफ देख, मैं भी विपद्ग्रस्त हूँ। वह हमदर्दी जताएगा, उससे कुछ पूछने की कोशिश करेगा। लेकिन संपत्ति में रहने वाला व्यक्ति विपत्ति में रहने वाले की मनः स्थिति को क्या समझेगा और उसे कैसे समझाएगा?

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर के जीवन सूत्र

❑ श्रीचन्द सुराना 'सरस'

भगवान् महावीर ने केवल तत्त्वों का ही उद्‌बोधन नहीं दिया अपितु ऐसे जीवन सूत्र भी दिये हैं जिसमें आप्लावित होकर श्रद्धालु अपने जीवन को सर्वांगीण बना सकता है। इसके लिए आवश्यक है – ज्ञान और क्रिया का समन्वय, मधुर सत्य से जुड़ाव, विवेकपूर्वक धर्म क्रिया का आचरण। प्रस्तुत है – जैन जगत् के सुप्रतिष्ठित विद्वान् श्री श्रीचंद जी सुराना 'सरस' का युगानुकूल आलेख।

- सम्पादक

जीवन जीने की कला के मर्मज्ञ आचार्य विनोबा भावे ने एक वार जीवन की परिभाषा करते हुए कहा था – रसायन शास्त्र की भाषा में पानी का सूत्र है – H_2O (एच-टू-ओ) यानी दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन मिलकर पानी बनता है। इसी प्रकार जीवन का सूत्र है – M_2A (एम-टू-ए) दो भाग, मेडीटेशन (चिन्तन-मनन) और एक भाग एक्टीविटी (प्रवृत्ति)।

पहले विचार फिर आचार

मानव जीवन और पशु जीवन में यही एक मुख्य भेद है कि पशु जीवन केवल प्रवृत्ति प्रधान है। उसमें क्रिया होती है, किन्तु चिन्तन नहीं। जबकि मानवीय जीवन चिन्तन प्रधान है। उसमें क्रिया होती है, किन्तु चिन्तनपूर्वक। विचार, मनन, ज्ञान यह मानवीय गुण हैं। मनुष्य जो कुछ करता है, पहले सोचता है। जो पहले सोचता है, उसे बाद में सोचना, पछताना नहीं पड़ता। वह खूब सोच-विचार कर, समझकर अपनी प्रवृत्ति का लक्ष्य निश्चित करता है। प्रवृत्ति की प्रकृति निश्चित करता है और प्रवृत्ति का परिणाम भी। उसके पश्चात् ही वह प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार मानव की प्रत्येक प्रवृत्ति/एक्टीविटी में पहले चिन्तन-मनन अर्थात् मेडिटेशन किया जाता है।

जीवन के इस सहज नियम को भगवान् महावीर ने **'पढमं नाणं तओ दया'**[1] के सरल सिद्धांत द्वारा प्रकट किया है। भगवान् महावीर का दर्शन क्रियावादी दर्शन है। वह क्रिया, प्रवृत्ति एवं पुरुषार्थ में दृढ़ विश्वास रखता है। किन्तु क्रिया के साथ ज्ञान का संयोग करता है। **'आहंसु विज्ञा चरणं पमोक्खं'**[2]-विद्या और आचरण के मिलन से ही मुक्ति होती है। साधु के लिए, आचार्य के लिए जो विशेषण आते हैं उसमें एक मुख्य विशेषण है - **विज्ञा-चरण सम्पन्ना** या **विज्ञा-चरण पारगा**[3] - अर्थात् ज्ञान एवं क्रिया से सम्पन्न एवं क्रिया के सम्पूर्ण भावों को जानने वाले। इससे पता चलता है कि भगवान् महावीर का क्रियावाद ज्ञानयुक्त क्रियावाद है। अज्ञान या अविवेक पूर्वक की गई क्रिया 'क्रियावाद' नहीं है, वह 'अज्ञानवाद' या मिथ्यात्व है। जिसकी दृष्टि स्पष्ट है, जिसका विवेक जागृत है जो अपने द्वारा होने वाली प्रवृत्ति के परिणामों पर पहले ही विचार कर लेता है, वह ज्ञानी है। भगवान् कहते हैं - **णाणी नो परिदेवए** - वह ज्ञानी कर्म करके फिर शोक या चिंता नहीं करता इसलिए - **णाणी नो पमायए**[4]। ज्ञानी कभी अपनी प्रवृत्ति में, अपने आचरण में/आचार में प्रमाद नहीं करता। न तो वह आलस्य करता है और न ही नियम विरुद्ध आचरण।

१. दशवैकालिक ४/१० २. सूत्रकृतांग १२/११ ३. उत्तरा. २/६३ ४. आचारांग ३/३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए ऐसे ज्ञानी को, चिन्तनशील को कोई उपदेश या शिक्षा की भी जरूरत नहीं रहती। **उद्देसो पासगस्स णत्थि।**[1] जो स्वयं द्रष्टा है, जो अपना मार्ग स्वयं देखता है, उसे क्या किसी दूसरे मार्ग दर्शक की जरूरत रहती है? **किमत्थि उवाही पासगस्स?**[2] **न विज्जइ** – क्या विचारशील, विवेकशील द्रष्टा को कभी उपाधि, परेशानी या चिन्ता होती है? नहीं होती।

भगवान् महावीर का यह चिन्तन हमें जीवन का सबसे पहला नियम समझाता है कि जो करो, वह विवेकपूर्वक करो।

दूसरी बात वे अपने ज्ञान को दूसरों पर नहीं थोपते हैं, किन्तु उसी के भीतर ज्ञान दृष्टि जगाते हैं। उसे स्वतंत्र चिन्तन, स्वतंत्र विचार करने का अवसर देते हुए कहते हैं – **मइमं पास**[3] – हे मतिमान, तू स्वयं विचार कर, मैंने कहा है, इसलिए तू मानने को बाध्य नहीं है। किंतु अपनी बुद्धि की तुला पर तोलकर इसकी परीक्षा कर और फिर विश्वास कर। भगवान् महावीर का यह कथन मानव की बुद्धि पर, उसकी विचार क्षमता पर गहरा विश्वास प्रकट करता है।

अध्यात्मवादी आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं -

जह विसमुवभुंजतो विज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि।[4]

जिस प्रकार औषध का ज्ञाता वैद्य विष खाता है या औषध के रूप में विष देता है तब भी उससे मृत्यु नहीं होती, अपितु वह विष औषध भी रोग का प्रतीकार करने वाला होता है।

आज हमारे जीवन में चिन्तन की, जागृति की, विवेक की कमी आ रही है। हम जो कुछ कर रहे हैं, उसके पीछे या तो परम्परा की लीक पीटी जाती है या रूढ़ि के रूप में हम बिना विचारे ही करते जाते हैं या लोक दिखावे के रूप में प्रवाह में बहते जाते हैं। इसलिए हमारे क्रिया कलापों में, धार्मिक कहे जाने वाले क्रिया कांडों में न तो तेजस्विता होती है न ही हृदयस्पर्शिता होती है। विचार शून्य क्रिया हमारे आचरण को प्रभावशाली नहीं बना सकती और न ही कोई जीवन में परिवर्तन ला सकती है। जिस क्रिया व आचार के पीछे विचार नहीं है, उससे अच्छे परिणाम की क्या आशा की जा सकती है? इसलिए भगवान् महावीर का यह सबसे मुख्य जीवन सूत्र है - *तत्थ भगवया परिण्णा पवेइया*[5] – भगवान् ने यह प्रज्ञा, विवेक, विचार बताया है कि जो भी काम करो, पहले उसका चिन्तन मनन करो, विवेक करो। विवेक की रोशनी हमारे कर्म को चैतन्य और परिणामकारी बनायेगी।

सत्य से जुड़ो

भगवान् महावीर का दूसरा महत्वपूर्ण जीवन सूत्र है- **सया सच्चेण सम्पन्ने**[6]। सदा सत्य से जुड़े रहो। **सच्चे तत्थ करेज्जुवक्कमं।**[7] जो सत्य हो, उसमें पुरुषार्थ करो, पराक्रम करो। सत्य ही संसार में मूल-भूत शक्ति है। इसलिए **सच्चस्स आणाए उवट्ठिए स मेहावी मारं तरइ।**[8] जो बुद्धिमान सत्य का आधार लेकर चलता है, सत्य का पक्ष लेता है या जीवन में सत्य का सहारा लेता है वह सब प्रकार के भयों को जीत जाता है। सब प्रकार के कष्टों से पार पहुँच जाता है। यहाँ तक कि मृत्यु को भी जीत लेता है।

भगवान् महावीर के सामने गणधर गौतम आते हैं। वे कहते हैं – भन्ते ! आनन्द श्रावक कहता है, उसे ऐसा अपूर्व अवधि ज्ञान हुआ है, जिससे वह विशाल क्षेत्र को देख सकता है, परन्तु मैंने उसे कहा है, ऐसा विशाल अवधिज्ञान श्रावक को नहीं हो सकता है, तुम्हें असत्य का

१. आचारांग २/६ २. आचारांग ३/४ ३. आचारांग ३ ४. समयसार १/४ ५. सूत्रकृतांग १५/३, आचारांग सूत्र १/१
६. सूत्रकृतांग २/३/६४ ७. आचारांग ३ ८. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोष लग रहा है। भन्ते ! क्या मेरा कथन सत्य है, या आनन्द श्रावक का कथन सत्य है ?

भगवान् महावीर कहते हैं - "गौतम ! आनन्द श्रावक का कथन सत्य है। तुमने उसके ज्ञान का अपलाप करके उसकी अवहेलना की है। अतः जाओ उसे खमाओ।" गौतम तुरंत जाते हैं और आनन्द श्रावक को खमाते हैं। अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप करते हैं।

भगवान् महावीर सत्य के पक्षधर थे। एक श्रावक के सत्य-कथन का अपलाप करने पर अपने प्रमुख शिष्य गणधर को भी उसके पास भेजकर क्षमा माँगने को कहा। यह घटना बताती है, सत्य के सामने कोई छोटा-बड़ा नहीं। सत्य ही महान् है। सत्य ही भगवान है।

सच्चं खु भयवं[1] – जो सत्य की रक्षा करता है वह स्वयं सुरक्षित रहता है, सत्य को भी भय नहीं। उपनिषद् का प्रवक्ता ऋषि कहता है – **सत्यं वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि, तन्मामवतु तद् वक्तारमवतु**[2] – मैं सत्य बोलूंगा। मैं न्याय युक्त वाणी बोलूंगा। वह सत्य मेरी और बोलने/सुनने वालों की रक्षा करे। सत्य समस्त जगत् को अभय करे।

सत्य भी मधुर बोलो

कहते हैं सत्य कड़वा होता है। सुनने में, बोलने में सत्य कभी-कभी कठोर व अप्रिय लगता है। इसलिए भगवान् महावीर सत्य को मानते हुए भी सत्य के साथ माधुर्य का योग करते हैं। भगवान् कहते हैं - **भासियव्वं हियं सच्चं**[3] - सत्य तो बोलो, परन्तु वह हितकारी हो और प्रिय हो, मधुर हो। सत्य सुनकर किसी का हृदय दुखी न हो, किसी के मन पर आघात नहीं लगे। इस बात का भी पूरा ध्यान रखना है।

एक तरफ प्रभु सत्य के पूर्ण पक्षधर हैं तो साथ ही लोक नीति व लोक व्यवहार को भी महत्व देकर चलते हैं। इसलिए सत्य के साथ लोक नीति को जोड़ने की बात कहते हैं - **सच्चं पि होइ अलियं जं पर पीडाकरं वयणं।**[4] जिस सत्य वचन को सुनकर किसी के हृदय पर चोट लगती है, दूसरों को पीड़ा होती है, ऐसा सत्य वचन असत्य की कोटि में है। वह सत्य, सत्य नहीं जो दूसरों के हृदयों पर घाव कर दे। **ओए तहीयं फरुसं वियाणे**[5] - जो सत्य कठोर हो, जिसके सुनने से सुनने वाले का मन खिन्न व दुखी हो जाता है, ऐसा सत्य वचन मत बोलो।

भगवान् महावीर का प्रमुख श्रावक है – महाशतक। अपनी पौषधशाला में बैठा है, जीवन की अन्तिम आराधना करता है, उसे अवधि ज्ञान हो जाता है। अपनी आराधना में लीन है तभी उसकी पत्नी रेवती उसके साथ अत्यन्त अभद्र दुर्व्यवहार करती है। बड़े ही अश्लील वचन बोलती है, जिन्हें सुनते, सहते महाशतक का धैर्य जबाव दे जाता है। तब वह उससे कहता है – रेवती ! तू इस प्रकार के दुराचरण के कारण घोर रोगों का शिकार होगी और अन्त में मरकर प्रथम नरक में जायेगी। वहाँ भयंकर यातनाएँ भोगेगी।

पति का यह वचन सुनकर रेवती उद्भ्रांत हो जाती है – पति ने मुझे शाप दे दिया। इस प्रकार वह भयभीत होकर आकुल-व्याकुल होकर इधर-उधर भागती है। आकुलता से छटपटाती है। छाती पीटती है।

दूसरे दिन प्रातः भगवान् महावीर गणधर गौतम को कहते हैं – गौतम ! तुम जाओ और श्रावक महाशतक से कहो, उसने अपनी भार्या रेवती को पौषध में जो कठोर कर्कश वचन कहे हैं, उन्हें सुनकर उसका हृदय व्यथित हो उठा है। भले ही सत्य वचन हो, परन्तु श्रावक को इतना

१. प्रश्न व्याकरण २ २. ऐतरेय उपनिषद् १/३ ३. उत्तराध्ययन १६/२३ ४. प्रश्न व्याकरण २ ५. सूत्र १४/२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठोर, दूसरों के हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाला वचन नहीं बोलना चाहिए। महाशतक से कहो वह इसकी आलोचना प्रायश्चित करे।[1]

सत्य के साथ भद्रता, मधुरता का मिलन ही, सत्य को उपादेय और लोकमान्य बनाता है। इसलिए सत्य के श्रेष्ठतम अद्वितीय साधक भगवान् महावीर भी सत्य के साथ **हियं सच्चं अणवज्जं अकक्कसं** – आदि नियम जोड़ देते हैं। सत्य हितकारी हो, अकर्कश हो, मधुर हो, मर्मघाती न हो / मन को पीड़ाकारी न हो। ऐसा मधुर हितकारी सत्य बोलने वाला लोक में यश और कीर्ति का भागी होता है।

व्यक्तित्व में छिपी संभावनाओं के द्रष्टा

भगवान् महावीर सर्वज्ञ थे। यह एक सत्य है। वे भूत-भविष्य के ज्ञाता थे। परन्तु इस विशिष्टता से हटकर हम उनकी जीवन दृष्टि पर विचार करें तो यह एक सत्य उजागर होता है कि वे व्यक्ति के भीतर छिपी असीम संभावनाओं को देखते थे और उनको उद्घाटित करते थे। बीज के भीतर वट बनने की क्षमता का ज्ञान तो सभी को है परन्तु उस क्षमता का सम्मान करना और उसे उद्घाटित करने का अवसर प्रदान करना, यह जीवन दृष्टि किसी-किसी के पास ही होती है।

अन्तकृद्दशा सूत्र में एक प्रसंग है। जब अतिमुक्तक कुमार श्रमण भावनाओं में बहकर पानी में अपनी नाव तिराता है और स्थविर आकर भगवान् से उसकी शिकायत करते हैं – भन्ते ! आपका बाल शिष्य तो वर्षा के पानी में नाव तिराता है। यह अभी अबोध है। तब भगवान् अतिमुक्तक कुमार को कुछ नहीं कहते, न ही किसी प्रकार का प्रायश्चित्त देते हैं। न ही डांटते हैं, किन्तु उन स्थविर श्रमणों को ही कहते हैं – "हे श्रमणों ! तुम इस बाल मुनि की अवज्ञा मत करो। इसकी अवहेलना मत करो, यह बहुत सरल आत्मा है। इसी भव में मोक्ष जाने वाला चरम शरीरी है। इसलिए इसे खमाओ, इसको जो कटु वचन कहे हैं उसके लिए क्षमा मांगो।"

यह है बीज में वट की असीम संभावना का दर्शन। वे बालमुनि के भीतर छिपी चरम शरीरी की श्रेष्ठता का दर्शन कराते हैं। उसकी सरलता और सहजता का सम्मान करते हैं। वर्तमान में भविष्य को देखते हैं और उज्ज्वल भविष्य को उद्घाटित कर उसे संयम में उत्साहित करते हैं और साधना में सतत आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं।

ज्ञातासूत्र में मेघकुमार का प्रसंग है – जब वह रात भर नींद नहीं आने के कारण विचलित हो जाता है और साधु जीवन छोड़कर वापस अपने राजमहलों में लौट जाने के लिए भगवान् के पास आता है तो भगवान् उसके भीतर की आकुलता को समझते हैं, छटपटाहट पहचानते हैं। परन्तु उसकी अधीरता को प्रताड़ित नहीं करते। उसे कठोर या अप्रिय शब्दों में लांछित नहीं करते, किन्तु उसके भीतर छिपी संवेदना को, सहिष्णुता को जगाते हैं। कुछ भी नहीं कहके उसे उसका हाथी का पिछला भव सुनाते हैं। बस, अपना पूर्व जीवन सुनकर ही वह जागृत हो उठता है। अपनी भूल पर पश्चाताप करता है और भगवान् के चरणों में पुनः स्वयं को समर्पित कर देता है। यह प्रसंग बताता है, भगवान् महावीर मानव-मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को भीतर से टटोलते थे, उसकी भावनात्मक चेतना को, मूर्च्छित संवेदना को जगाकर उसे स्वयं ही जागृत होकर आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करते थे।

इस प्रकार की अलौकिक जीवन दृष्टि ने सैंकड़ों

१. उपासक दशा सूत्र

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

व्यक्तियों का भविष्य संवारा है। पापी हत्यारे अर्जुनमाली में क्षमतावीर श्रमण की तस्वीर देखते हैं। क्रूर, उग्र विषधर चंडकौशिक की जहरीली फुंकारों में भी वे उसके कल्याण की संभावना सुनते हैं। इसी दिव्य दृष्टि ने पापियों को, अधमियों को साधुता और श्रेष्ठता के पथ पर बढ़ाया है।

आज जब हम भगवान् महावीर के जीवन सूत्रों पर विचार करते हैं तो आगमों में यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे उन जीवन सूत्रों को और घटनाओं के साथ जुड़े उस जीवन दर्शन को समझने की, स्वीकारने की जरूरत है। वही आज हमारा मार्गदर्शन करेगी और हमें अंधकार में प्रकाश का पथ दिखायेंगी।

❖ ❖ ❖

❑ **जैन साहित्य के सुप्रतिष्ठित विद्वान् श्री श्रीचंद सुराणा ने जैन श्रमणों / साध्वियों के अनेक ग्रन्थों का संपादन एवं प्रकाशन किया है। आपने आगम साहित्य का विशेष अध्ययन किया एवं आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि सूत्रों के हिन्दी एवं अंग्रेजी में सुंदर चित्रात्मक संस्करणों का प्रकाशन किया। आप आगरा स्थित "दिवाकर प्रकाशन" के निदेशक हैं। इस प्रतिष्ठान ने दिवाकर कथा-माला के अंतर्गत चित्रात्मक जैन कथाओं का प्रकाशन कर जैन साहित्य को लोकप्रिय बनाने का अभूतपूर्व कार्य किया है। आप जैन दर्शन के गम्भीर ज्ञाता हैं। आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा प्रकाशित अनेक आगम-ग्रन्थों के संपादन व प्रकाशन का कार्य आप द्वारा हुआ है। 'देवेन्द्र भारती' मासिक के यशस्वी संपादक।**

"आदमी आत्म हत्या पर उतारू कब होता है? जब वह किसी आवेश में होता है। भावों के अतिशय आवेग के बिना आत्महत्या नहीं होती। शान्ति में आदमी मरता नहीं है। आदमी जब भी मरता है अशान्ति में मरता है। क्रोधादि में वह उत्तेजित होता है, तभी मरने को तैयार होता है। और वैसे कोई आदमी को कहते कि "मैं तुझे मार दूँगा" या "तूं मरजा" तो देखो क्या सोचता है आदमी? इसने मुझे यह कैसे कह दिया? माँ अपने बेटे को भले ही कहती रहे कि "इससे तो मर जाना ही बेहतर था तेरा" आदि-आदि। किंतु गली-मोहल्ला का कोई व्यक्ति कह दे कि "तेरा बेटा मर जाए" फिर देखो माता के मन पर क्या बीतती है? लड़ती है, झगड़ती है – "मेरा बेटा क्यों मर जाये! तूं ने कहा तो कहा कैसे? मेरा बेटा मर जाये।" माता नहीं चाहती किन्तु स्वयं कहती रहती है। घर में झगड़ों से तंग आकर कभी स्वयं के लिए तो कभी पुत्र आदि के लिए कि "मर जाता तो अच्छा था" – यह आवेश तो है ही किन्तु आवेश में भी तारतम्य, कमोवेशी रहती है। माता का आवेश मंद ही रहता है, प्रायः वह अंतर से न स्वयं मरना चाहती है न ही बच्चों को मारना।"

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण संस्कृति के संरक्षण में चातुर्मास की सार्थक परम्परा

❑ प्रो. डॉ राजाराम जैन

श्रमण-परंपरा में चातुर्मास की साधना का विशेष महत्व है। प्राचीन काल से ही जैन श्रमण व श्रमणियां चातुर्मास के चार महीनों तक एक ही स्थान पर रहते आये हैं अतः यह काल धर्म की साधना एवं उसके प्रसार-प्रचार का उत्तम अवसर है। प्राचीन काल में श्रमणों व श्रमणियों ने अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ इसी काल में लिखे व संपादित किये। जिनवाणी का प्रचार, ज्ञान की साधना, साहित्य का प्रसार तथा समाज विकास की अनेक योजनाएँ आज भी इसी कालावधि में ही परिपूर्ण होती है। वर्तमान काल में चातुर्मास को सार्थक बनाने के सुझाव दे रहे हैं – डॉ. श्री राजाराम जैन।

– संपादक

सार्थकता : चातुर्मास की

श्रमण-परम्परा की सुरक्षा एवं विकास में चातुर्मासों का विशेष महत्व है। उसका संविधान साधु-साध्वियों के लिए तो है ही, श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी उसका विशेष महत्व है। चाहे धर्म-प्रचार अथवा प्रवचन करना हो, चाहे धर्म-प्रवचन-हेतु आत्म-विश्वास जागृत करना हो, चाहे एकान्त-स्वाध्याय करना हो, चाहे आत्म-चिन्तन करना हो, चाहे गम्भीर-लेखन-कार्य करना हो, चाहे प्राचीन-शास्त्रों का प्रतिलिपि कार्य करना हो, और चाहे उनका एकाग्रमन से सम्पादन एवं संशोधन-कार्य करना हो अथवा संघ, धर्म, जिनवाणी एवं समाज के संरक्षण तथा उनकी विकास-सम्बन्धी विस्तृत योजनाएँ बनानी हो, इन सभी के लिए चातुर्मास-काल अपना विशेष महत्व रखता है। श्रावक-श्राविकाओं की भले ही अपनी गार्हस्थिक सीमाएँ हों, फिर भी वे उक्त सभी कार्यों में स्वयं तथा उक्त कार्यों के संयोजकों/सूत्रधारों को भी यथाशक्ति सक्रिय योगदान देकर चातुर्मास को सार्थक बना सकते हैं।

चातुर्मास : अनुकूल समय

चातुर्मास का समय भारतीय ऋतु-विभाजन के अनुसार वर्षा के चार महीनों तक माना गया है। चूंकि जाड़े एवं ग्रीष्म की ऋतुओं में सूर्य एवं चन्द्र की सम्पूर्ण किरणें पृथ्वी-मण्डल को मिलती रहती हैं। उनके प्रभाव के कारण सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति एवं उत्पाद नगण्य ही होता है, अतः इन दिनों में न तो साधु-साध्वियों के गमनागमन में कठिनाई होती है और न श्रावक-श्राविकाओं के लिए धर्माचार एवं गृहस्थाचार के पालन में कठिनाई होती है। इन दोनों ऋतुओं में व्यक्ति का स्वास्थ्य भी अनुकूल रहता है। इन्हीं कारणों से समाज के व्यवस्थापकाचार्यों ने गृहस्थों के लिए व्यापार का प्रारम्भ तथा उनके परिवर्तन की योजनाओं, शादी-विवाह के आयोजनों, तीर्थयात्राओं के आयोजन, वेदी-प्रतिष्ठा, मन्दिर एवं भवन-निर्माण आदि के कार्य प्रायः इन दो ऋतुओं में विशेषरूप से विहित बतलाए।

वर्षा का समय विशेष असुविधापूर्ण होने के कारण श्रावकों को बाहरी आरम्भों को छोड़कर घर में ही रहना पड़ता है। साधु-साध्वियों के लिए भी बरसात के समय गमनागमन में अनेक धर्माचार-विरोधी परिस्थितियों के कारण एक ही स्थान पर रहकर धर्मसाधना करने का विधान बनाया गया।

साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविका जब चार माह तक अपने-अपने आवासों में स्थिर रहेंगे, तो एकाग्रता पूर्वक आत्म-विकास, धर्मप्रचार तथा नवीन पीढ़ी के लिए जागृत, प्रबोधित एवं प्रभावित करने के लिए उन्हें पर्याप्त समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है। श्रावक-श्राविकाओं के लिए इस समय घर-गृहस्थी एवं व्यापार के जटिल कार्यों से तनावमुक्त रहने के अवसर मिलते हैं, अतः वे साधु-संघ के सान्निध्य में समय व्यतीत करने की भूमिका ही तैयार नहीं करते, बल्कि अपने सन्तुलित जीवन से अपने बच्चों के/परिवार के अन्य सदस्यों तथा पड़ोसियों के मन में भी एक प्रभावक धार्मिक छाप छोड़ते हैं।

वर्षावास : साहित्य-विकास की यात्रा

मुझे मध्यकालीन हस्तलिखित अप्रकाशित कुछ पाण्डुलिपियों के अध्ययन का अवसर मिला है। उनकी प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं में समकालीन आश्रयदाताओं, प्रतिलिपिकर्ताओं एवं नगरश्रेष्ठियों की चर्चाएँ आती है। उनके अनुसार श्रावक-श्राविकाएँ साधु एवं साध्वियों के आदेश-उपदेश से अनेक त्रुटित अथवा जीर्ण-शीर्ण पोथियों का प्रतिलिपि-कार्य या तो स्वयं करते अथवा विशेषज्ञों द्वारा करवाते रहते थे। ऐसी पोथियों के प्रतिलिपि-कार्य का प्रारम्भ अथवा पूर्णता प्रायः चातुर्मास के समय ही होता था।

साधु-साध्वियों के लिए भी चातुर्मास-काल में गमनागमन न करने के कारण अपनी दैनिक-चर्या के अतिरिक्त भी पर्याप्त समय मिलता है। वे प्रायः मन्दिरों की परिक्रमाओं अथवा उपाश्रयों के शान्त, एकान्त एवं निराकुल आश्रय-स्थलों में रहते हैं। पुराकाल में तो वे स्वतन्त्र चिन्तन अथवा ग्रन्थ-लेखन का कार्य करते अथवा करवाते थे, या फिर प्राचीन उपलब्ध शास्त्रों का स्वाध्याय, पठन-पाठन, मनन एवं चिन्तन किया करते थे। यही नहीं, इन शास्त्रों में से जो अत्यन्त महत्व का होता था, उसकी आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व मुद्रणालयों का आविष्कार न होने के कारण अनेकानेक प्रतिलिपियों को करवाकर वे उन्हें दूर-दूर के मन्दिरों अथवा शास्त्र-भण्डारों में भिजवाने की प्रेरणा भी श्रावक-श्राविकाओं को देते रहते थे। यदि किसी ग्रन्थ का कोई अंश चूहे या दीमक खा जाते थे, तो साधुगण उतने अंश का स्वयं प्रणयन कर उसे सम्पूर्ण कर दिया करते थे और उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ करवाकर उन्हें देश के कोने-कोने में भिजवा देने की प्रेरणा देते थे। प्राचीन ग्रन्थों की प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

मध्यकाल में भारत में जब राजनैतिक अस्थिरता यहाँ का एक स्वाभाविक-क्रम बन गयी थी तथा साम्प्रदायिक मदान्धता के कारण जैन साहित्य एवं उसकी पुरातात्विक सामग्री की विनाशलीला की गई थी, तब भी कहीं न कहीं हमारा साहित्य सुरक्षित रह गया था। उसका मूल कारण था – चातुर्मासों में संघस्थ हमारे महामहिम साधक मुनियों, आचार्यों, यतियों, साध्वियों एवं भक्त श्रावक-श्राविकाओं की वही सजगता एवं जागरूकता।

कष्टेन लिखितं शास्त्रं

हमारे आचार्य-संघों ने निरन्तर ही दूरदृष्टि से सम्पन्न होकर यह कार्य किया। चातुर्मासों के समय इन मुनिसंघों के सान्निध्य में पिछले वर्षों की सामाजिक, साहित्यिक एवं नैतिक प्रगति एवं विकास अथवा अवनति सम्बन्धी कार्यों का सिंहावलोकन किया जाता था। उसी आधार पर अगले वर्ष की प्रगति की रूपरेखाएँ तैयार की जाती थी। साधु-साध्वी अपने समाज के भविष्य के निर्माण तथा विकास के लिए मार्गदर्शन देते थे और श्रावक-श्राविकाएँ उन्हें यथाशक्ति कार्यरूप देने का प्रयत्न करते थे। यदि ऐसा न होता तो सहस्रों जैनग्रन्थों, मूर्तियों एवं मन्दिरों के नष्ट हो जाने के बाद भी आज इतना विशाल साहित्य, मूर्तियाँ एवं मन्दिर कैसे उपलब्ध हो सके ? एक जैन साहित्य-संरक्षक एवं प्रतिलिपिकर्ता की मानसिक-पीड़ा एवं कष्ट-सहिष्णुता तथा शास्त्र-सुरक्षा के प्रति उनकी समर्पित-वृत्ति का अनुमान निम्न पद्य से लगाया जा सकता है। महाकवि रइधि-कृत शौरसेनी प्राकृत में गाथा-बद्ध "सिद्धान्तार्थसार" (अद्यावधि अप्रकाशित) का प्रतिलिपिकार कहता है कि –

भग्नपृष्ठि-कटि-ग्रीवा, ऊर्ध्वदृष्टिरधोमुखः।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेन परिपालयेत्।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि करते-करते गर्दन झुक गई है, कमर एवं पीठ टूट गई है, नीचा मुख करके निरन्तर लिखते रहने के कारण मेरी दृष्टि कमजोर हो गई है। भूख-प्यास सहकर अत्यन्त कठिनाई पूर्वक मैंने इस ग्रन्थ-शास्त्र को लिखकर दीमक एवं चूहों से सुरक्षित रखा है। अतः अब आप जैसे सज्ञनों का यह कर्तव्य है कि आप उसे अत्यन्त सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखें।

चातुर्मास का इतिहास संजोये ये खंडहर

प्राचीन भारतीय भूगोल के अध्ययन क्रम में यदि ग्रामों एवं नगरों के नामों पर विशेष ध्यान दिया जाय तो चातुर्मासों के महत्व को समझा जा सकता है। बिहार एवं राजस्थान के चौसा एवं चाइवासा तथा चौमूँ जैसे ऐतिहासिक नगर के नाम आज खण्डहर के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किन्तु सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से उनका अध्ययन करने की आवश्यकता है। उक्त ग्रामों के नाम-शब्द आज भी प्राकृतभाषा का बाना धारण किए हुए हैं। वे निश्चित रूप से किन्हीं जैन-संघों के चातुर्मास का इतिहास अपने अन्तस्तल में संजोए हुए हैं। उक्त प्रथम एवं तृतीय शब्द चातुर्मासों के ही परवर्ती संक्षिप्तरूप है - जैसे चौसा = चउसा-चुम्मासा-चातुर्मासः। इसी प्रकार चौमूँ-चउमा-चउम्मासा-चातुर्मासः तथा चाइवासा=त्यागी-मुनि-वासः। प्रतीत होता है कि इन स्थलों में कभी किसी युग में विशाल साधु-संघों ने चातुर्मास किये होंगे और वहाँ उस काल में उन्होंने विशिष्ट संरचनात्मक कार्य भी सम्पन्न किए होंगे, जिनकी स्मृति में उन्हें चातुर्मास अथवा त्यागीवास नगर जैसे नामों से अभिहित किया गया होगा, जो आज उक्त संक्षिप्त नामों के रूप में उपलब्ध हैं। उक्त चौसा ग्राम में तो उत्खनन करने पर ८वीं ९वीं सदी की प्राचीन सुन्दर अनेक जैन धातु प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हुई हैं, जिन्हें पुरातात्विकों ने प्राचीनतम एवं अनुपम माना है तथा वे पटना एवं कलकत्ता के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

परम्परा को आगे बढ़ाये

आखिर में आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त, गुणधर, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद क्षमाश्रमण, जिनसेन रविषेण, हरिभद्र, अकलंक, अमृतचन्द्र, विद्यानन्दि, यशोविजय आदि ने जो इतना विशाल एवं गौरवपूर्ण अमर साहित्य लिखा, उसे उन्होंने कब लिखा होगा? मेरे विचार से उनका अधिकांश भाग चातुर्मासों के एकान्तवास में ही लिखा/लिखाया गया होगा। पूर्व मध्यकालीन कर्नाटक के तलकाट एवं गुजरात के वाटनगर एवं वल्लभी जैसे श्रमण-विद्या के उच्च केन्द्र इसके लिए अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं, जहाँ अधिकांश जैन साहित्य, पुराण, न्याय, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद तथा षट्खण्डागम-साहित्य एवं अर्धमागधी आगम साहित्य एवं उन पर विस्तृत टीकाएँ लिखी गईं। अतः वर्तमानकालीन चातुर्मास के पावनकाल में सचमुच ही उन चिन्तक-लेखक महामनीषियों तथा उनके सौभाग्यशाली अगणित सेवक/श्रावक-श्राविकाओं तथा विद्वानों का स्मरण कर उनसे प्रेरणा लेने तथा उस परम्परा को आगे बढ़ाने की महती आवश्यकता है।

ठोस रूपरेखा बनायें

यह तथ्य है कि जिनवाणी-सेवा, साहित्य-सुरक्षा, मूर्ति-मन्दिर-निर्माण तथा समाज-विकास के कार्य कभी पूर्ण नहीं होते। उनका चक्र निरन्तर चलता रहता है और यह गति किसी भी समाज की समुन्नति एवं विकास की द्योतक मानी गई है। सामाजिक विकास के साथ-साथ द्रव्य-क्षेत्र-काल एवं भाव के अनुसार साहित्यिक एवं पुरातात्विक नित नवीन आवश्यकताएँ भी बढ़ती जाती हैं। अतः उनकी ठोस रूपरेखाएँ चतुर्विध संघों को चातुर्मासों के समय ही पर्याप्त समय मिलने पर पारस्परिक विचार-विमर्श के बाद तैयार की जा सकती हैं और विकास कार्यों को अविश्रान्त गति प्रदान की जा सकती है। बदले हुए सन्दर्भों में आज जिन बातों की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है, वे संक्षेप में निम्नप्रकार है –

१. जहाँ भी आचार्य/मुनि संघ विराजमान हों, उस स्थल का नाम "चातुर्मास स्थल" घोषित किया जाय और वहाँ जैनाजैन विद्वानों की चरित्र-निर्माण सम्बन्धी भाषण-मालाएँ कराई जावें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. नियमित आवश्यक दिनचर्या के अतिरिक्त प्रतिदिन संघस्थ मुनियों एवं आचार्यों के प्रवचनों के कार्यक्रम रखें जावें। उसमें कुछ समय प्रश्नों के उत्तरों के लिए भी निर्धारित रहे।

३. प्रवचनों में तात्त्विक चर्चा के अतिरिक्त चरित्र-निर्माण सम्बन्धी रोचक एवं सरल कथाएँ भी प्रस्तुत की जावें, ताकि नवीन पीढ़ी तथा बच्चे भी उन प्रवचनों को सुनने के लिए लालायित, आकर्षित और प्रभावित हों।

४. आचार्य एवं मुनि-संघ के निदेशन में स्थानीय मन्दिरों एवं उपाश्रयों में सुरक्षित हस्तलिखित-ग्रन्थों की साज-सम्हाल एवं उनका सूचीकरण किया जाय, जिसमें विद्वानों तथा श्रावक-श्राविकाओं का यथाशक्ति पूर्ण सहयोग रहे। तत्पश्चात् जैन-पत्रों में उस सूची को प्रकाशित करा दिया जाय जिससे समस्त शिक्षा-जगत् को उसकी जानकारी मिल सके।

५. चातुर्मास की स्मृति को स्थायी बनाए रखने के लिए एक-एक हस्तलिखित ग्रन्थ का प्रकाशन प्रत्येक नगर की जैन समाज तथा साहित्यिक संस्थाओं के आर्थिक सहयोग से अवश्य किया जाय।

६. चातुर्मास की स्मृति को स्थायी बनाए रखने के लिए प्रत्येक श्रावक-श्राविका को कम से कम नवीनतम प्रकाशित एक जैन-ग्रन्थ अवश्य खरीदना चाहिए।

७. श्रावक-श्राविकाओं को प्रतिदिन मुनि-दर्शन एवं स्वाध्याय की प्रतिज्ञा करना चाहिए।

८. पूज्य आचार्यों, महामुनियों एवं साध्वियों से भी विनम्र प्रार्थना है कि वे अपने चातुर्मासकाल में कम से कम एक नवीन अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थ का स्वाध्याय, उद्धार, सम्पादन, अनुवाद एवं तुलनात्मक समीक्षात्मक अध्ययन तथा प्रकाशन अवश्य ही करने की कृपा करें। यह कार्य व्यक्तिगत रूप से भी किया जा सकता है अथवा संघस्थ साधु-साध्वियों के सहयोग से भी तैयार कराया जा सकता है।

यदि हमारे आचार्य/मुनि इस दिशा में कार्य करने/कराने की महती कृपा कर सकें, तो जैन-विद्या की सुरक्षा एवं प्रगति में तीव्रगामी पंख लग जावेंगे और हम लोग यही अनुभव करेंगे कि एक बार पुनः हमारे जीवन में प्रारम्भिक सदियों का वह ऐतिहासिक काल आ गया है, जब एक ही साथ अनेक आचार्य एवं मुनि, समाज की आवश्यकतानुसार विविध-विषयक साहित्य का संरक्षण-सम्पादन, प्रणयन, लेखन-कार्य कर रहे थे और जो परवर्ती कालों में सभी के लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करता रहा।

नित्यप्रति बदलते सन्दर्भों में अब यह समय विशेषरूप से जागृत होने तथा जैनेतर समाजों की सभी प्रकार की प्रगतियों और मानसिकताओं को समझने की आवश्यकता है। पारस्परिक तुलना करते हुए यह भी देखना है कि विभिन्न परिस्थितियों में हमारी वर्तमान सामाजिक स्थिति और इसी स्थिति में रहते हुए अगले ५० वर्षों में उसके क्या परिणाम होंगे ? •••

प्रो. डॉ. श्री राजाराम जैन 'जैन विद्या' के श्रेष्ठ विद्वान् हैं। आपको प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं के साहित्य का विशेष ज्ञान है। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन जैन विद्या एवं प्राकृत के अध्यापन में लगाया तथा अनेक ग्रन्थों का प्रणयन तथा संपादन किया। सेवा निवृत्त होने के बाद भी आपकी साहित्य सृजन व शोध-कार्य की प्रवृत्तियाँ निरंतर गतिशील हैं।

— संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन एकता : आधार और विस्तार

❑ आचार्यश्री विजय नित्यानन्दसूरी

जैन एकता की हर कोई बात करता है किंतु उसका प्रतिफल? प्रतिफल आज दिन तक शून्य में विलीन है। धूल में हर कोई लट्ठ मार रहा है किंतु एकता का सूत्र नजर नहीं आ रहा है। हाथी के दांत दिखाने के और तथा खाने के और होते है ! संगठन हेतु कभी किसी के हाथ बढ़े भी तो वे हाथ बढ़ते-बढ़ते ही जड़वत् हो गये। निराशा में आशा की एक किरण ला रहे हैं – आचार्य श्री विजय नित्यानंदसूरी जी म. ! आप द्वारा आलेखित एकता के पाँच सूत्र अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

– सम्पादक

एकता कैसी हो ?

एक विचारक ने लिखा है - "संगठन का मतलब है, एक साथ मिल-जुलकर परस्पर एक दूसरे का सहयोग करना।"

प्रकृति संगठन चाहती है, संगठन के आधार पर ही संसार चलता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखना हो तो कहीं दूर मत जाइए, अपने शरीर पर ही एक नजर डालिए। शरीर में विभिन्न अवयव हैं, अंग-उपांग हैं – हाथ, पैर, आँख, कान, नाक जीभ आदि। इस शरीर के भीतर पेट है, हृदय है, यकृत है, गुर्दा है, इन सबके व्यवस्थित कार्य संचालन से शरीर चल रहा है। देखिए ये सब अलग-अलग हैं, सबका काम भी अलग-अलग है, स्थान भी अलग हैं। किन्तु फिर भी सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हाथ-पैर परिश्रम करते हैं, मुंह भोजन ग्रहण करता है, पेट उस भोजन को पचाता है, रक्त आदि रस बनते हैं। हृदय प्रति क्षण धड़कता रहकर उस रक्त को हजारों नसों में फेंकता है। अशुद्ध रक्त को स्वयं ग्रहण करता है, शुद्ध रक्त को नसों में प्रवाहित करता है। गुर्दा रक्त को शुद्ध/रिफाइन करता है। इस प्रकार प्रत्येक अवयव की अपनी-अपनी जिम्मेदारी है, सब स्वतंत्र हैं किन्तु फिर भी एक दूसरे से जुड़े हैं। यदि पुरुष का एक हाथ या एक पैर बेकार हो जाता है तो दूसरा हाथ पैर अकेला ही पूरी जिम्मेदारी उठा लेता है और देखने का सब काम एक ही आँख पूरा कर लेती है।

दो गुर्दे हैं, जिन्हें किडनी कहते हैं। यदि एक किडनी खराब हो जाती है तो दूसरी किडनी पूरे शरीर में रक्त शुद्धि का काम अकेली करती जाती है। हृदय का एक बाल्व बन्द पड़ जाता है या एक फेंफड़ा काम नहीं करता है, तो इसका दूसरा अंग अपने आप सब काम पूरा कर लेता है। शरीर के सभी अंग बिना किसी शिकवे-शिकायत के स्वयं ही पूरी जिम्मेदारी से शरीर का संचालन करते रहते हैं और मनुष्य को पूरे जीवन काल तक जीवित/सक्रिय रखते हैं। सब अवयव एक-दूसरे से अलग होते हुए भी एक दूसरे के लिए काम करते हैं, एक दूसरे के क्षतिग्रस्त या नष्ट होने पर उसका पूरा काम अकेला ही करता जाता है – सामाजिक चेतना का, सामूहिक सहयोग भावना का कितना बड़ा और आश्चर्यकारी उदाहरण आपके सामने है। प्रकृति ने आपको सामाजिकता का, संगठन का, पारस्परिक सहयोग और मेल-जोल का कितना सुन्दर पाठ दिया है, परन्तु आप हैं कि इस पर ध्यान ही नहीं दे रहे हैं।

मैं पूछता हूँ, आप जो भाषणों में, चर्चाओं में संगठन एकता और सहयोग की बड़ी-बड़ी लच्छेदार बातें करते हैं। कभी सोचा है, आपने, कि संगठन कैसे चलता है, एकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसे निभती है और किस प्रकार हम सब एक-दूसरे के लिए उपयोगी और सहयोगी बन सकते हैं? संगठन की बात करने वाले जरा पांच मिनट शांत चित्त से अपने ही शरीर पर चिन्तन करें। प्रकृति द्वारा पढ़ाया यह पाठ याद करें कि एकता या संगठन कैसे चलता है। कैसे निभाया जाता है।

हमारे आचार्यों ने हजारों वर्ष पहले ही हमें एक अमर सूत्र दिया था – **परस्परोपग्रहो जीवानाम्**। सभी जीव परस्पर एक दूसरे के उपकारी व सहयोगी होते हैं। यह जीव का स्वभाव है, प्रकृति का नियम है और इसी आधार पर मानव समाज क्या, समूचा प्राणिजगत् जीवित है, गतिशील है / प्रगतिशील है और उन्नतिशील है।

अपने ऊपर आकाश मंडल में देखिए जरा। इस नील गगन में असंख्य-असंख्य तारे अनादि काल से विचरण कर रहे हैं। सब तारों का अपना-अपना प्रभाव है, अपनी-अपनी चमक है और अपना मंडल है, दायरा है। कभी कोई किसी दूसरे की सीमा पर आक्रमण नहीं करता। किसी पर प्रहार नहीं करता। किसी से कोई टकराता नहीं। सब तारे मिलकर संसार को प्रकाशित कर रहे हैं। क्या हम इस संसार में रहकर अपना अलग अस्तित्व रखकर भी तारों की तरह विचरण नहीं कर सकते? क्या हमारी एकता, हमारा संगठन इतना प्रभावशाली नहीं हो सकता कि जैन शासन के सभी तारे मिलकर संसार को प्रकाश देते रहें?

मुझे आश्चर्य होता है और खेद भी होता है कि आज जैन एकता की बातें हो रही हैं और वह भी हवाई। पचासों वर्षों से जैन एकता और जैन समाज का संगठन होने की चर्चायें चल रही हैं। हमारे आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म. ने जैन एकता के लिए पचास वर्ष पहले एक जोरदार प्रयास प्रारंभ किया था। उनकी आत्मा का कण-कण, शरीर का रोम-रोम पुकारकर कह रहा था.... "जैनों! एक हो जाओ ! एकता के बिना तुम अपने धर्म व संस्कृति को सुरक्षित नहीं रख सकोगे।" उन्होंने सभी संप्रदायों के आचार्यों व नेताओं से भी संपर्क किया था। जैन एकता के प्रयासों में काफी प्रगति हुई थी परन्तु कहते हैं ऐन मौके पर मक्खी छींक गई। कुछ सांप्रदायिक तत्त्वों ने उन प्रयासों को सफल नहीं होने दिया और जैन समाज पहले से भी ज्यादा फूट ग्रस्त हो गया।

जो जैन समाज अनेकान्तवादी है, स्याद्वादी है, जिसने समन्वय का सिद्धान्त संसार को सिखाया है, परस्पर सहयोग एवं उपकार का अमर सिद्धान्त जिसने अपने दर्शन का आधार माना है – वही जैन समाज एकता और संगठन के लिए वर्षों से बातें कर रहा है, परन्तु आज भी वही ढ़ाक के तीन पात !

मुझे दुख होता है यह देखकर कि आज पहले से भी ज्यादा फूट-द्वेष-झगड़े और एक दूसरे पर दोषारोपण करने की प्रवृत्ति बढ़ी है, बढ़ रही है और यही प्रवृत्ति हमारे समाज की शान्ति को छिन्न-भिन्न कर रही है। फूट का घुन समाज रूपी वृक्ष की जड़ें खोखली करता जा रहा है। बल्कि कहूं, कर चुका है।

स्वार्थ व अहंकार त्यागे बिना एकता कैसी ?

आप जानते हैं एकता बातों से नहीं होती, केवल भाषणबाजी से एकता नहीं चलती। एकता के लिए एक बात छोड़नी पड़ती है और एक बात स्वीकारनी पड़ती है। एकता का आधार है – सरलता, प्रेम और विश्वास। एकता का शत्रु है – अहंकार और स्वार्थ।

एक ऐतिहासिक उदाहरण

भगवान् महावीर के समय में गणधर इन्द्रभूति १४ हजार साधुओं में सबसे ज्येष्ठ थे। प्रथम गणधर थे। अगणित लब्धि-ऋद्धि-सिद्धि के धारक थे। देव-देवेन्द्र भी उनके चरणों की रज मस्तक पर चढ़ाकर आनन्दित होते थे। स्वयं को भाग्यशाली समझते थे। वे गौतम स्वामी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार जब श्रावस्ती नगरी में पधारे हैं, उनके शिष्य नगर में भिक्षा के लिए जाते हैं और वहाँ देखते हैं कि उनके जैसे ही श्रमण जिनके वस्त्र रंग-बिरंगे हैं, नगर में भिक्षा के लिए घूम रहे हैं। गौतम-शिष्यों को आश्चर्य होता है, उनसे मिलते हैं, पूछते हैं - आप कौन हैं ?

वे श्रमण कहते हैं – हम भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार श्रमण के शिष्य हैं। उनको आश्चर्य होता है, जब हम सब निर्ग्रन्थ हैं, एक ही मोक्ष मार्ग के पथिक हैं तो फिर यों अलग-अलग क्यों हैं? क्या बात है जो हमें एक-दूसरे से दूर किये हुए हैं।

महान् ज्ञानी गौतम स्वामी शिष्यों को बताते हैं – भगवान् पार्श्वनाथ का धर्म चातुर्याम धर्म है। भगवान् महावीर का धर्म पंचयाम धर्म है। बस, ऐसे ही कुछ छोटे-छोटे मतभेद हैं जिनके कारण हम अलग-अलग हैं किन्तु अब हमें परस्पर मिलकर इन मतभेदों को सुलझाना है और दोनों ही श्रमण परम्पराओं को मिलकर एक धारा बन जाना है। छोटी-छोटी धारा, धारा होती है किन्तु जब सब धाराएं मिल जाती हैं तब प्रवाह बन जाता है, नदी बन जाती है और नदी समुद्र बन जाती है। अलग-अलग बिखरे तिनके कचरा कहलाते हैं। किन्तु सब तिनके मिलकर झाडू बन जाता है तो वही तिनके कचरा बुहारने और सफाई करने का साधन हो जाता है।

लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े अलग-अलग स्थानों पर पड़े जल रहे हैं, उनसे धुंआं निकल रहा है। वातावरण दूषित हो रहा है, परन्तु जब सब जलती लकडियाँ एकत्र हो जाती हैं तो वही महाज्वाला बन जाती है। उस महाज्वाला का सामना करने की शक्ति किसी में नहीं है। तो गौतम स्वामी अपने शिष्यों से कहते हैं – हमें केशीकुमार श्रमण से मिलना चाहिए। प्रश्न खड़ा होता है, पहले कौन मिले? एकता और संगठन तो चाहिए, किंतु पहल कौन करें ? जब बडप्पन का प्रश्न आ जाता है तो पांव वहीं चिपक जाते हैं; किन्तु गौतम गणधर सरलता के देवता थे। विनय और प्रेम के महाप्रवाह थे। यद्यपि गौतम स्वामी भगवान् महावीर के गणधर थे। पूरे संघ में सबसे ज्येष्ठ और घोर तपस्वी, महाज्ञानी थे। जबकि केशीकुमार श्रमण भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के एक अंतिम प्रतिनिधि आचार्य मात्र थे। पद की दृष्टि से गौतम ज्येष्ठ थे, ज्ञान की दृष्टि से भी, साधना की दृष्टि से भी वे उत्कृष्ट थे। परन्तु जहाँ प्रेम और सरलता होती है, वहाँ बड़े-छोटे का भेद उभरता ही नहीं। बड़े-छोटे का विचार भी संकीर्ण और छोटे मन की उपज है। गौतम कहते हैं- वे भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य हैं। हमारी निर्ग्रन्थ कुल परम्परा में बड़े हैं। हम ही उनके पास जायेंगे। उनसे मिलेंगे और परस्पर बातचीत करके सभी मतभेदों को दूर कर एक हो जायेंगे।

एकता के लिए यह है – त्याग ! एकता व संगठन हमेशा त्याग चाहता है / बलिदान चाहता है। जब तक आप अपने अहंकारों का त्याग नहीं करेंगे। अपने छोटे-छोटे स्वार्थ नहीं छोड़ेंगे तब तक एकता का स्वप्न पूरा नहीं होगा। गौतम और केशी स्वामी का इतना प्रेरक और उच्च उदाहरण हमें मार्गदर्शन करता है, प्रेरणा देता है कि यदि एकता और संगठन चाहते हैं तो अपना अहंकार छोड़ो, स्वार्थ छोड़ो; शिष्यों का मोह छोड़ो। पदों की लालसा छोड़ो और दूध-चीनी की तरह मिल जाओ। दूध-पानी की तरह नहीं, जो दूध का मोल गिरा दे, मिलो तो ऐसे मिलो ज्यों दूध में मिश्री। प्रेम से मिलो ! सद्भाव बढ़ाओ।

आप सब जैन हैं, भाई-भाई हैं, स्वधर्मी हैं। आपके शास्त्रों में स्वधर्मी-प्रेम, स्वधर्मी-सहायता की बड़ी-बड़ी महिमा बताई हैं। आपने भी सुनी है, स्वधर्मी बंधु की सेवा करना महान् पुण्य का कार्य है। परन्तु जान-बूझकर भी फिर आप भाई-भाई क्यों लड़ते हैं ? क्यों एक दूसरे की निन्दा करते हैं? क्यों एक दूसरे के चरित्र पर कीचड़ उछालते हैं? सोचिए, यदि कोई आप पर कीचड़ उछालता है तो आपके ऊपर उसके छींटे लगें या न लगें किन्तु हाथ तो गंदे होंगे ही। कीचड़ उछालने वाला सदा घाटे में रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निन्दा में तेरह पाप हैं -

आज जैन समाज राग, द्वेष, कलह, फूट-फजीता में बदनाम हो चुका है। अपनी हजारों वर्षों की प्रतिष्ठा खो रहा है। तीर्थों के झगड़े, स्थानकों व उपाश्रयों के झगड़े, संस्थाओं के झगड़े और इससे भी आगे साधु-साधु में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता। एक दूसरे की यश-कीर्ति सुनकर जलना, एक दूसरे की सफलता और सम्मान देखकर छाती पीटना और उनकी निन्दा करना। उनके चरित्र पर अवांछनीय लांछन लगाना। कितना नीचे गिर गया है हमारा समाज। अपने उदार सिद्धान्तों से पतित हो गया है। मुझे बहुत पीड़ा होती है, यह देखकर। एक तो यह छोटा-सा समाज है। करोड़ों के सामने लाखों की संख्या में ही है और वह भी इतने टुकड़ों में बंटा है। बंटा है तो भी कोई बात नहीं, परन्तु एक-दूसरे को नीचा दिखाने में, एक-दूसरे की टांग खींचने में, एक-दूसरे की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचाने में ही अपनी शक्ति, समय और धन की बर्बादी कर रहा है। और बात केवल धन की बर्बादी की नहीं है, अपनी आत्मा को कलुषित, पतित कर रहा है।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म. फरमाते थे – एक दूसरे की निन्दा, आलोचना और छींटाकशी करना महापाप है। निन्दक, अठारह पापों में तेरह पापों का भागी होता है। यानी दूसरों की निन्दा, चुगली, आलोचना, दोषारोपण करने वाला तेरह पापों का सेवन करता है। पाप के अठारह भेद में से तेरह भेद निन्दा के साथ जुड़े हैं।* इसलिए यह महापाप है। अस्तु,

आज संगठन की, एकता की बहुत जरूरत है। आज की दुनिया में जो संगठित है वही शक्ति सम्पन्न है। शुक्ल यजुर्वेद में एक मंत्र है –

अनाधृष्टाः सीदतः सहौजसः।

जो संगठित हैं, परस्पर प्रेम सूत्र में बंधे हैं, उन्हें कोई भी महाबली परास्त नहीं कर सकता! उन्हें कोई भी शक्ति भयभीत नहीं कर सकती।

आज जैन संस्कृति, जैनधर्म और श्रमणों व श्रावकों पर चारों तरफ से आक्रमण हो रहे हैं। उन्हें स्थान-स्थान पर प्रताड़ित, भयभीत करने का प्रयास हो रहा है। जैन मन्दिरों को, जैन मूर्तियों को विध्वंस किया जा रहा है। उन पर आक्रमण किये जा रहे हैं। जैन साधु-साध्वियों पर कई बार कई स्थानों पर बर्बर आक्रमण हुए हैं और इतना बड़ा साधन-संपन्न, बुद्धि-संपन्न जैन समाज एक हीनसत्व पुरुष की तरह यह सब देखता है। बिल्ली जब एक कबूतर पर झपटती है तो दूसरे कबूतर अपनी गर्दन नीची कर लेते हैं। सोचते हैं, यह उस पर झपट रही है, हम पर नहीं। हम सुरक्षित हैं। क्या आज ऐसी स्थिति नहीं है? सम्पूर्ण जैन संस्कृति पर आक्रमण हो रहे हैं। यदि अपनी संस्कृति और अपनी महान् दार्शनिक धरोहर की रक्षा करनी है तो जैन समाज को एकता के सूत्र में बंधना ही पड़ेगा। संगठित हुए बिना वह अपनी अस्मिता की रक्षा नहीं कर सकेगा। अपना अस्तित्व भी सुरक्षित नहीं रख पायेगा।

एकता के पाँच सूत्र-

मैं विस्तार में नहीं जाकर एकता की पृष्ठभूमि के रूप में एक पांच सूत्री योजना आपके सामने रख रहा हूँ। आप सोचें, आपको मैं नहीं कहता अपनी संप्रदाय छोड़ दो, आम्नाय छोड़ दो, अपनी मान्यताएं त्याग दो। अपनी गुरु परम्परा को भुलाने की बात भी नहीं करता हूँ। आप जहाँ हैं, जिस परम्परा में हैं, वहाँ रहें परन्तु शान से रहें,

★ निंदा करनेवाला – १. मृषावाद बोलता है। २. क्रोध, ३. मान, ४. माया, ५. लोभ, ६. राग, ७. द्वेष, ८. कलह, ९. अभ्याख्यान, १०. पैशुन्य, ११. पर परिवाद, १२. माया मृषा और १३. मिथ्यादर्शन शल्य रूप इन तेरह पापों का भागी होता है – निन्दक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरता के साथ रहें, कायर बनकर नहीं। शेर बनकर रहिए। कुत्तों की तरह पीछे से टांग मत पकड़िए।

निंदा करना कायरता है। झगड़ना दुर्बलता है। लाँछन लगाना नीचता है, बस, इनसे बचे रहें। खरबूजे की तरह ऊपर से भले ही एक-एक फांक अलग-अलग दीखें परन्तु भीतर सब एक हैं। पूरा खरबूजा एक है। बस, आप भले ही ऊपर से अपनी-अपनी परम्पराओं से जुड़े रहें, परन्तु भीतर से जैनत्व के साथ, महावीर के नाम पर एक बने रहें।

एकता के लिए सबसे पहले निम्न पहलुओं पर हमें पहल करनी होगी-

(१) एक-दूसरे की निंदा, आलोचना, आक्षेप, चरित्र हनन जैसे घृणित व नीच कार्यों पर तुरंत प्रतिबंध लगे।

(२) तीर्थों, मन्दिरों, धर्म-स्थानों व शिक्षा संस्थाओं आदि के झगड़े बन्द किये जाय। इनके विवाद निपटाने के लिए साधु वर्ग या त्यागी वर्ग को बीच में न डालें और न ही जैन संस्था का कोई भी विवाद न्यायालय में जाये। दोनों समाज के प्रतिनिधि मिलकर परस्पर विचार विनिमय से 'कुछ लें, कुछ दें' की नीति के आधार पर उन विवादों का निपटारा किया जाय। अहंकार और स्वार्थ की जगह धर्म की प्रतिष्ठा को महत्व दिया जाय। महावीर का नाम आगे रखें।

(३) सभी जैन श्रमण, त्यागीवर्ग परस्पर एक-दूसरी परम्परा के श्रमणों से प्रेम व सद्भाव पूर्वक व्यवहार करें। आदर व सम्मान दें।

(४) महावीर जयन्ती, विश्व मैत्री दिवस जैसे सर्व सामान्य पर्व दिवसों को समूचा जैन समाज एक साथ मिलकर एक मंच पर मनाये। सभी परम्परा के श्रमण एक मंच पर विराजमान होकर भगवान् महावीर की अहिंसा, विश्व शांति का उपदेश सुनायें।

(५) संवत्सरी पर्व, दशलक्षण पर्व, क्षमा दिवस जैसे सांस्कृतिक व धार्मिक पर्व एक ही तिथि को सर्वत्र मनाये जाएं।

इस प्रकार हम एक-दूसरे के निकट आ सकते हैं। **मैं विलय का पक्षपाती नहीं हूँ, केवल समन्वय चाहता हूँ। विलय हो नहीं सकता। जो संभव नहीं उसके विषय में सोचना भी व्यर्थ है। समन्वय हो सकता है। हमारा दर्शन अनेकान्तवादी है। इसलिए हम परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी बनकर एक-दूसरे की उन्नति और प्रगति में सहायक बनें। एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न हों। इस पृष्ठभूमि पर ही हमें सोचना चाहिए।**

गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।।

यदि जैन एकता के लिए यह प्राथमिक आधारभूमि बन सके तो इस शताब्दी की, इस सहस्राब्दी की यह उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटना सिद्ध होगी। जो भाग्यशाली इसका श्रेय लेगा वह इतिहास का स्मरणीय पृष्ठ बन जायेगा। ●●●

आचार्य श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरिजी महाराज जैन संघ के प्रभावशाली संत है। आपका जन्म वि. सं. २०१५ में दिल्ली में हुआ और आपने मात्र ९ वर्ष की अल्पायु में दीक्षा ग्रहण की। आप अध्ययनशील, गुण-ग्राही एवं जिज्ञासु वृत्ति के धनी हैं। आप श्री के समन्वयपरक व्यक्तित्व ने समाज में एकता, संगठन एवं शान्तिपूर्ण सौहार्द स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आपने शिक्षा व मानव सेवा के क्षेत्र में अनेक कार्य किये हैं तथा शिक्षालयों, चिकित्सालयों व सहायता केन्द्रों की भी स्थापना की। 'नवपद पूजे, शिवपद पावे' ग्रन्थ आपकी श्रेष्ठ धार्मिक कृति है। — संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाजिक समरसता के प्रणेता तीर्थंकर महावीर

❑ डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन

भगवान् महावीर ने जिस समतादर्शन का प्रवर्तन किया वह आज सामाजिक समरसता का प्रतीक बन सकता है, बशर्ते कि उसको हम जीवन में आचारित करे। मानसिक द्वन्द्व, साम्प्रदायिक वेदना, धर्मान्धता, रूढ़िवाद, जातिगत भेदभाव आदि सभी समता दर्शन में अन्तर्धान हो सकते हैं तथा राष्ट्र समाज एवं जन-जन में मैत्री, सर्वधर्म समभाव, करूणा आदि सद्गुणों का प्रस्फुटन हो सकता है। श्रीमती डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन ने तीर्थंकर महावीर के समतादर्शन का सुंदर एवं वैचारिक विश्लेषण किया है, इस रचना में। - सम्पादक

जीवनशैली का मूलमंत्र : समता

जैनधर्म के चौबीसवें एवं अन्तिम तीर्थंकर महावीर ने विश्वशान्ति, विश्वबंधुत्व और सर्वोदय के क्षेत्र में अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह जैसे मूलभूत सिद्धान्तों का आदर्श स्थापित कर विश्वबन्धुत्व, समानता, एकता, समन्वय, प्रेम और "समता" जैसे जीवन मूल्यों का विकास किया। इन मूल्यों में ही सामाजिक समरसता का भाव निहित है।

विश्व की समग्र जाति सभ्यता-विकास के साथ-साथ जीवन मूल्यों को "धर्म" के नाम से प्रतिष्ठित करती रही है। सभ्यता और संस्कृति के साथ विभिन्न धर्मों के विचार विभिन्न दर्शनों में ढलते गये और अनेक धर्म-सम्प्रदायों का जन्म और विकास हुआ। विचारभेदों के कारण इनमें परस्पर संघर्ष, कटुता, विद्रोह का बोलबाला होता गया। वैसे तो हर धर्म, सम्प्रदाय अपने-अपने ढंग से "धर्म" की परिभाषा करते हैं, परन्तु मानवता की गरिमा के साथ जीवन-यापन, श्रेष्ठ जीवनशैली का अनुपम मूलमंत्र महावीर ने "समता" सिद्धान्त के रूप में हमें दिया है। महावीर के समय में विषमता अनेक स्तरों पर थी। अनुपयुक्त एवं अनर्थकारी कार्यों को रोकने के लिए उनका विरोध करना भी आवश्यक होता है। बेशक इसमें अनेकों मुसीबतों का सामना करना होता है, क्योंकि **क्रांतियाँ सरल नहीं होतीं, चाहे वे देश की स्वतन्त्रता के लिए हो या फिर समाज में प्रचलित घातक पाखण्डों या कुरीतियों के प्रति हों। महावीर ने उस समय समाज की अनेक विषमताओं के बीच समन्वयवाद की क्रान्ति की और समता का बिगुल बजाकर साम्प्रदायिक सद्भाव और विश्वबंधुत्व के लिए सामाजिक समरसता का जो मार्ग प्रतिपादित किया, उसकी आज सबसे ज्यादा आवश्यकता है।**

समता : सामाजिक समरसता

वस्तुत : आज के संक्रमणकालीन, साम्प्रदायिक वेदना तुल्य अस्त-व्यस्त जीवन में भगवान् महावीर का समता सिद्धान्त अत्यंत महत्वपूर्ण है। महावीर के उपदेशों ने किसी एक मत या सम्प्रदाय के लिए कट्टरता का कभी प्रतिपादन नहीं किया, वरन् धर्मान्धता और रुढ़िवाद के विरोध में समता सिद्धान्त का उद्घोष किया – जो मानवतावाद और समाजवाद की एकता तथा विकास में समग्र रूप से समर्थ है। जो लोग समता धर्म की उपेक्षा करते हैं और बाह्य आवरणों–जातिवाद, भाषावाद, रंगभेद आदि भिन्नताओं में उलझते तथा परस्पर झगड़ते रहते हैं, उन्होंने धर्म के मूल तत्त्व समता, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व जैसे सिद्धांतों पर साम्प्रदायिकता की धूल (परत) चढ़ाकर उसे धूमिल कर रखा है। महावीर ने कहा- **"बाह्य आवरणों से समानता को नहीं मापा जा सकता। यद्यपि हम लोग शरीर, मस्तिष्क, प्रवृत्ति, बुद्धि रुचियों, भाषा, रंग-रूप आदि विभिन्नताओं के होते हुये भी आत्मिक धरातल पर यानि उस आत्मिक धरातल पर जो हमारे अस्तित्व का मूल**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधार है, हम लोग परस्पर समान है। महावीर ने कहा – मनुष्य जन्म से नहीं "कर्म" से महान् बनता है। जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं होता –

"कम्मुणा बम्भणो होई कम्मुणा होई खत्तिओ।"

समता का विकास कब?

अगर मानव समता सिद्धान्त के अनुसार जीवन के क्रियाकलाप करेगा तो वह अधिक अन्तर्मुखी और विश्वव्यापी होगा तथा एकता, समानता, सह-अस्तित्व, मैत्री, प्रेम जैसी अनुकूलताओं का विकास कर सम्पूर्ण समरसता की ओर अग्रसर होगा। समता का विकास तभी हो सकता है जब मन, वचन और काय से हम अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह सिद्धान्तों पर अमल करें।

'अहिंसा' मात्र हिंसा का अभाव ही नहीं, बल्कि भावनात्मक रूप से सभी प्राणियों के प्रति मैत्री का भाव है, जिसमें करुणा, दया, परोपकार, प्रेम जैसे गुणों का निवास होता है। भगवान् महावीर ने कहा – **"मित्ती मे सव्व भूएसु"**- अर्थात् मेरी सभी प्राणियों से मैत्री है। उनकी शिक्षा है – सभी प्राणियों को समान समझना चाहिये, इसी में अहिंसा और समता निहित है –

समया सव्व भुएसु सत्तु मित्तेसु वा जगे।
पाणाइवाय विरई जावज्जीवाए दुक्करं।।

भगवान् महावीर ने अनेकान्त का आदर्श देकर मानवतावाद की जड़ें मजबूत की है। विचारों की टकराहट से ही विभिन्न धर्मों में परस्पर द्वेष पैदा किया जाता रहा है, जिससे इतिहास में अनेकों लड़ाईयाँ लड़ी गई और निर्दोष, निर्बलों तथा अनेकानेक प्राणियों को उसका शिकार होना पड़ा। भगवान् महावीर ने अनेकान्त दृष्टिकोण द्वारा इसका समाधान किया। उन्होंने कहा – "मैं जो जानता हूँ वही सत्य है, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है" – ऐसी भावना अहंकार को जन्म देती है। जो स्व के लिए तथा मानव समाज के लिए भी घातक है। **महावीर ने कहा सत्य एक है, परन्तु उसके महलू अनेक हैं। एक बार में एक ही पहलू को जाना जा सकता अथवा देखा जा सकता है जो पूर्ण सत्य न होकर सत्य का एक अंश होता है। अतः सभी की दृष्टि में अलग-अलग सत्यांश की अनुभूति होती है, इसलिए अपना मत (पक्ष) दूसरों पर थोपना नहीं चाहिये, बल्कि परस्पर एक दूसरे को समझने का प्रयास करना ही अनेकान्त है। इससे समन्वय और समता को बल मिलता है।**

समता बनाम आर्थिक समानता

सामाजिक समता के साथ आर्थिक समानता के लिए महावीर ने अपरिग्रह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। महावीर ने कहा –

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठेव अणंत मोहे, नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव।।

अर्थात् "व्यवहार में जीवन चलाने के लिए धन आवश्यक है, उसके बिना जीवन नहीं चलता। मैं उसके उपार्जन को बुरा नहीं मानता, किन्तु आवश्यकता से अधिक संचय वास्तव में विष है / अन्याय है।"

मानव की महानता उसके आचरण से मापी जाती है न कि धन से। धन की अधिकता से भोग विलासिता की ओर ही प्रवृत्ति होती है और यह तृष्णा अपरिग्रहवाद से ही संयमित की जा सकती है। अपरिग्रह के सिद्धान्त से प्रभावित होकर मगधदेश के सबसे बड़े धनी आनन्द सेठ ने 'परिग्रह-परिमाण', व्रत को स्वीकार किया तथा अतिरिक्त आय को वह प्रतिवर्ष गरीबों में वितरित कर महादानी प्रसिद्ध हो गया। यही तो था उसका समता की ओर पहला कदम।

समता में अन्तर्निहित : नारी समानता

इसी तरह अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह तथा समता सिद्धान्त से साम्प्रदायिक विषमता को भी दूर किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर ने इन सभी समानताओं के साथ-साथ नारी समानता अर्थात् नारी के अधिकारों के प्रति भी आवाज उठाई। महावीर के समय में मानव समाज में नारी को पुरुष से हीन समझा जाता था, उसे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सभी स्तरों पर पुरुष के अधीन समझा जाता था। उन्होंने उपेक्षित नारी चन्दनबाला को दीक्षा देकर नारी जाति के गौरव को फलीभूत किया।

समता : दुराग्रह से परे

महावीर ने मानवीय एकता की व्याख्या की उसमें साम्प्रदायिक दुराग्रह को कोई स्थान नहीं दिया। उनके अनुसार कौन व्यक्ति, किस सम्प्रदाय में दीक्षित है? यह महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि उसका आचार-विचार कितना पवित्र है? सम्प्रदाय तो सीमित और संकुचित होता है जबकि समता का सन्देश सबके लिए होता है। इसमें सभी का विकास एवं कल्याण सुनिश्चित है। जहाँ समता होगी, वहाँ शान्ति-सुख और प्रेम का साम्राज्य होगा।

समता : सद्भाव की जननी

आज भारतीय समाज जो विश्व के श्रेष्ठतम मूल्यों वाला माना जाता है। वह अपनी मान्यताओं, मर्यादाओं की पूंजी को खोता जा रहा है, जिससे राष्ट्रीयता, कर्तव्य, प्रेम, समर्पण का ढांचा ही गिर रहा है और समाप्रदायिकता की आग दिनों दिन भयंकर रूप लेती जा रही है। आज इस विषम स्थिति में भगवान् महावीर का समता सिद्धान्त सबसे अधिक आवश्यक हो गया है। समता, समन्वय, समर्पण, सहयोग, सहिष्णुता, सह अस्तित्व से ही साम्प्रदायिकता पर विजय पाई जा सकती है और सामाजिक समरसता की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

इसीलिए महावीर ने इस समता के सिद्धान्त को साम्प्रदायिक सद्भाव अर्थात् मानव समाज के साथ ही, मनुष्य के अनन्य सहयोगी पशु-पक्षियों के लिए भी बताया। उनके समोसरण में सभी को समान रूप से शरण प्राप्त थी। श्रावक, श्राविकाएं, विद्वानों, साधुओं, साध्वियों के साथ-साथ पशु-पक्षियों को भी समोसरण में समान स्थान प्राप्त था। महावीर ने सभी प्राणियों की आत्मा को समान कहा है। सभी आत्माएं, परम-पद की ओर अग्रसर हो सकती हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

इस तरह उन्होंने सामाजिक समरसता रूप प्रकाश-स्तंभ से विश्व को रोशनी प्रदान करते हुए विश्वबंधुत्व की भावना का प्रसार किया। उन्होंने कहा कि इस समरसता रूप सामाजिक समता द्वारा ही मानव के मन से राग-द्वेष अहंकार, हठाग्रह, जैसी दुष्प्रवृत्तियों का अंत होगा और मैत्री, प्रेम, करूणा, सहयोग, सह अस्तित्व, समर्पण, समन्वय, सर्वधर्म समभाव जैसे गुणों का विकास होगा और फिर निश्चित ही सम्पूर्ण विश्व में सुख-शान्ति का प्रसार हो सकेगा।..

- बाराणसी

✣ ✣ ✣

❑ श्रीमती डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन मूलतः दमोह (म.प्र.) निवासी है। विवाहोपरान्त एम.ए., आचार्य, जैनदर्शनाचार्य, बी.लिट्.बी.एड., नेट में सफलताएं अर्जित करके "हिन्दी गद्य के विकास में जैन मनीषी पण्डित सदासुखदास का योगदान" विषय पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपके 'शोध प्रबंध' को कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान, बंबई ने १९९६ में रजत पदक से पुरस्कृत किया।
जैन धर्म दर्शन एवं साहित्य की मर्मज्ञा डॉ. जैन ने अनेक शोधपरक निबंध एवं एक दर्जन से भी अधिक ग्रन्थों का प्रणयन एवं सम्पादन किया है। कतिपय ग्रंथ पुरस्कृत भी हुए हैं। अनेकों संगोष्ठियों में शोधपत्रों का वाचन भी किया है। आप एक विदुषी नारी रत्न है। जैन समाज इस प्रतिभा से गौरवान्वित है।

— सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा परमो धर्मः

❑ स्वामी ब्रह्मेशानन्द
संपादक, वेदान्त केसरी

'अहिंसा' सभी धर्मों का मूलतत्व है। जैन, बौद्ध एवं वैदिक धर्म में अहिंसा को श्रेष्ठ धर्म माना है। अहिंसा का स्वरूप क्या है? अहिंसा के प्रकार कितने हैं? अहिंसा अपनाने में क्या-क्या समस्याएँ हैं? आदि सभी प्रश्नों का समाधान दे रहे हैं - स्वामी श्री ब्रह्मेशानंद जी। स्वामी जी का यह आलेख जैन, वैदिक, बौद्ध दर्शन – त्रिवेणी की धारा को प्रस्फुटित कर रहा है।
- सम्पादक

प्रस्तावना

मानव-जाति की हजारों वर्ष की संस्कृति और सभ्यता के बावजूद आज भय और हिंसा हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग बने हुए हैं। हमने इन्हें जीवन पद्धति का अनिवार्य और स्वाभाविक अंग मान लिया है। भले ही हम किसी की हिंसा न करते हों लेकिन द्वेष, घृणा, दूसरों के दोष देखना आदि हमारे मन में विद्यमान हैं। युद्ध, हत्या और अपराध के समाचारों में हमारी तीव्र रुचि हमारी हिंसक प्रवृति की ओर स्पष्ट संकेत करती है।

लेकिन आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भारत में अहिंसा पर आधारित समाज रचना के दो महत्वपूर्ण प्रयोग हुए थे। वर्धमान महावीर द्वारा प्रवर्तित जैन धर्म ने अहिंसा को जीवन का केन्द्र बिन्दु मानकर मानवों की ही नहीं बल्कि छोटे से छोटे कीड़े तक की हत्या को त्याग कर मानव जाति को विकास के एक उच्चतर सोपान तक उठाने का प्रयास किया था। सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म को अंगीकार कर अहिंसा को एक राजधर्म के रूप में स्वीकार किया था। लेकिन अहिंसा प्रधान जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव ने एक ओर जहाँ समाज को एक उच्चतर दिशा प्रदान की, वहीं दूसरी ओर उसने समाज को दुर्बल भी किया। अहिंसा उच्चतम आदर्श है और किसी भी समय किसी भी समाज में एक अल्पसंख्यक वर्ग ही उस उच्चतम आदर्श का अधिकारी और ग्रहण करने में समर्थ होता है। अनधिकारी तथा सारे समाज के द्वारा स्वीकार किए जाने के कारण भारत की अवनति ही हुई जिसके फलस्वरूप भारत को हजार वर्षों की दासता सहन करनी पड़ी।

पातंजल योग सूत्र के अनुसार अहिंसा पाँच यमों में पहला और सबसे महत्वपूर्ण है। वैसे तो अष्टांग योग का एक अंग होने के कारण अहिंसा एक साधन मात्र है लेकिन यह इतना महत्वपूर्ण है कि इसे यदि लक्ष्य एवं परम धर्म मानें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। व्यास देव के अनुसार अन्य सभी यम नियम का मूल अहिंसा ही है तथा वे अहिंसा की सिद्धि हेतु होने के कारण अहिंसा प्रतिपादन के लिए ही शास्त्र में प्रतिपादित हुए हैं। सभी धर्मों में इसे महत्व दिया गया है तथा अहिंसा को किसी न किसी प्रकार से अपने जीवन में स्थान दिए बिना धार्मिक जीवन संभव ही नहीं है। अतः इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त एवं जीवन के अनिवार्य अंग को भलीभाँति समझ लेना परम आवश्यक है।

अहिंसा का अर्थ

सामान्यतः हिंसा का अर्थ है – दूसरे को मारना या कष्ट पहुँचाना और अहिंसा का अर्थ है किसी को कष्ट न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुँचाना। व्यास के अनुसार अहिंसा का अर्थ है : **"सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानां अनभिद्रोहः"** – अर्थात् सर्वथा, सदा सभी प्राणियों के प्रति सभी प्रकार के द्वेष-द्रोह-भाव का त्याग।

अहिंसा मूलक जैन धर्म के प्रवर्तक वर्धमान महावीर कहते हैं - 'जिसे तू हनन करने योग्य मानता है, वह तू ही है, जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है।" जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है। अतः आत्म हितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीव हिंसा का परित्याग किया है।" प्राणी हत्या करना स्वयं की हत्या के समान है, इस बात की प्रतिध्वनि ईशावास्योपनिषद् में भी मिलती है –

असूर्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तां स्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः।।

अर्थात् आत्मा का हनन करने वाले लोग मरणोपरान्त अन्धकार से आवृत लोकों को जाते हैं। जो अज्ञानी लोग अपने अद्वय आत्मस्वरूप को नहीं जानते वे मरणोपरान्त पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करते हैं-तथा पुनः-पुनः मृत्यु को प्राप्त होते हैं अर्थात् वे बार-बार अपनी ही मृत्यु का कारण बनते हैं। देहात्मबोध के कारण हम स्वयं को दूसरों से पृथक् समझते हैं तथा उसके कारण राग द्वेषादि उत्पन्न होते हैं। जहाँ द्वैत है, दो हैं, वहीं भय है- **द्वितीया द्वै भयम् भवति**। भगवान् महावीर का कथन है, राग आदि की अनुत्पत्ति ही अहिंसा है तथा उनकी उत्पत्ति हिंसा है।

"अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसोति।
तेषामेवोत्पत्ति हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।"

तात्पर्य यह कि अद्वैत में प्रतिष्ठित होकर रागादि को जीते बिना अहिंसा में प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार भी हम कुछ इसी प्रकार के निष्कर्ष पर आते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार शरीर का जन्म तथा मृत्यु उसके सुख-दुःख सभी प्रारब्ध कर्म के अधीन होते हैं। अतः यदि कोई किसी की हत्या करता है अथवा किसी को कष्ट पहुँचाता है, तो कर्म सिद्धान्त के अनुसार इसके पीछे पूर्व जन्मों के कर्म ही उत्तरदायी हैं तथा भविष्य में हिंसक अथवा कष्ट देने वाले को इसका फल भोगना होगा। कहा भी गया है :

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता।
परो ददातीति कुबुद्धि रेषा।।
अहं करोमीति वृथाभिमान।
स्वकर्म सूत्रेण ग्रथितो हि लोकः।।

अर्थात् सुख और दुःख का दाता अन्य कोई नहीं है। यह सोचना कि दूसरा सुख-दुःख प्रदान करता है कुबुद्धि है; मैंने ऐसा किया है, यह व्यर्थ का अभिमान है। वस्तुतः सभी स्वकर्म के सूत्र द्वारा बँधे हैं। तात्पर्य यह कि कर्मवाद के अनुसार पर हिंसा जैसी कोई चीज नहीं है। दूसरे को मारने से स्वयं की ही हानि होती है। यदि किसी व्यक्ति या पशु को बाँधकर उसकी शक्ति का हनन किया जाय तो इसके परिणाम स्वरूप बंधनकर्ता की इन्द्रियाँ निस्तेज हो जाती हैं। दूसरों को दुःख प्रदान करने पर नारकीय दुःख प्राप्त होता है, तथा दूसरे का प्राण हरने से या तो व्यक्ति अल्पायु होता है, अथवा दीर्घायु होने पर भी रुग्ण होता है। इस तरह दूसरे को कष्ट देने पर हम वस्तुतः स्वयं को कष्ट देने की ही भूमिका तैयार करते हैं।

विशुद्ध व्यावहारिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो भी पूर्ण अहिंसा संभव प्रतीत नहीं होती। शरीर धारण के लिए न्यूनाधिक मात्रा में हिंसा को स्वीकार करना ही पड़ता है। श्वास-प्रश्वास में असंख्य कीटाणु मरते हैं; चलने-फिरने में भी छोटे-मोटे अनेक कीड़े-मकोड़े पैरों तले कुचल जाते हैं; वनस्पतियों में भी प्राण होता है तथा उसका भोजन भी एक प्रकार की हिंसा है। वस्तुतः जीवन धारण में एक प्राणी दूसरे को आहार बनाकर ही जीवित रहता है – यह प्रकृति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विधान है। अतः व्यावहारिक, भौतिक स्तर पर पूर्ण अहिंसा असंभव है। जो साधक इस सत्य को समझ लेते हैं। पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लेते हैं, तथा स्वयं के अस्तित्व के लिए प्राणि हिंसा नहीं चाहते, वे जितना शीघ्र ही, संसार बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं; जिससे पुनः जन्म न लेना पड़े और न ही दूसरे प्राणियों की हिंसा करनी पड़े। वे भोग के स्थान पर योग का आश्रय लेते हैं / जो क्रमशः अल्प से अल्पतर हिंसा का मार्ग है। अहिंसा के सन्दर्भ में योग का अर्थ है — न्यूनतम हिंसा का जीवन।

स्वयं की आत्मा के समान ही समस्त प्राणियों की आत्मा है, इस सत्य का साक्षात्कार करना ही जीवन का उद्देश्य है, और जो योगी समस्त प्राणियों के सुख-दुःख अपने सुख-दुःख के रूप में अनुभव करता है, वह गीता के अनुसार सर्वोत्तम योगी है।

सर्व भूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुनः।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।

एक संन्यासी के जीवन का चरम आदर्श इसी सत्य की उपलब्धि करना है। वह समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करता है, क्योंकि सभी प्राणी उसी के अंग हैं। "**अभयं सर्वभूतेषु मनःसर्व प्रवर्तते।**" यही कारण है कि किसी प्राणी की हिंसा करना साध्य के विरुद्ध होने से त्याज्य है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अन्याय का प्रतिकार न करना" Resist not Evil संन्यास का आदर्श है, क्योंकि अन्याय करने वाला भी उसी का एक रूप है।

अहिंसा के इस उच्चतम रूप को कुछ दृष्टान्तों के द्वारा समझा जा सकता है। एक कृशकाय तपस्वी सूफी सन्त मांस की एक दुकान के सामने से गुजरते हुए क्षण भर के लिए वहीं खड़े हो गए। उन्हें देखकर मुसलमान दुकानदार ने सलाम किया और कहा कि क्या वे मांस लेंगे। सन्त ने कहा कि उन्हें मांस की आवश्यकता नहीं है। दुकानदार ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "जनाब, आपके शरीर में मांस बिल्कुल नहीं है, आपको तो मांस की जरूरत है, क्योंकि मांस से ही मांस बनता है। सूफी सन्त ने क्षण भर रुक कर उत्तर दिया, "मेरी देह में जितना माँस है, उतना कब्र के कीड़ों के लिए काफी है" और वे आगे बढ़ गये। उन सन्त के लिए स्वयं की देह कब्र के कीड़ों की देह से अधिक मूल्यवान् नहीं रह गयी थी।

श्रीरामकृष्ण ने भी **"सर्वात्मैकत्व"** के अनुभव के फलस्वरूप स्वयं की रुग्ण देह को स्वस्थ करना अस्वीकार कर दिया था। घटना उस समय की है जब वे गले के कैंसर से पीड़ित थे तथा उसके कारण कुछ भी खा-पी नहीं सकते थे। गले में तीव्र पीड़ा होती थी तथा शरीर धीरे-धीरे दुर्बल होता चला जा रहा था। वे गले के रोग-ग्रस्त अंश पर मन को एकाग्र करके उसे ठीक करने की संभावना को उन्होंने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि जो देह माँ जगदम्बा को अर्पित की जा चुकी है, उस पर वे मन को एकाग्र नहीं कर सकते। लेकिन भक्तों के अत्यधिक आग्रह को वे अस्वीकार नहीं कर सके और उनके आग्रह पर उन्होंने मां जगदम्बा से प्रार्थना की कि गले को थोड़ा ठीक कर दें जिससे कि वे कुछ खा सकें। मां जगदम्बा ने जो उत्तर दिया वह वस्तुतः श्री रामकृष्ण की उच्चतम अद्वैत ज्ञान में प्रतिष्ठा का द्योतक है। माँ जगदम्बा ने सभी भक्तों को दिखाकर कहा कि तू इतने मुखों से तो खा रहा है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानी महापुरुष सर्वत्र अपनी ही आत्मा का दर्शन करने के फलस्वरूप स्वयं की देह की विशेष सेवा सुश्रूषा की इच्छा नहीं करते। वे केवल लोक कल्याण के लिए अल्पतम हिंसा को स्वीकार कर देह धारण करते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से दो बातें स्पष्ट हो गई होंगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम तो यह कि हिंसा करने से स्वयं की हिंसा होती है, और परहिंसा जैसी कोई चीज नहीं है; और द्वितीय यह कि अहिंसा के तीन स्तर सम्भव हैं। (१) पारमार्थिक अर्थात् सर्वभूतात्मानुभूति में प्रतिष्ठित होना, (ii) मानसिक-याने राग-द्वेष से रहित होना और (३) व्यावहारिक जो वाचिक और शारीरिक इन दो प्रकार की हो सकती है। पारमार्थिक अहिंसा साध्य है तथा अन्य दो साधन है। मानसिक अहिंसा को भाव अहिंसा भी कहा जाता है, और वाचिक और शारीरिक हिंसा अथवा अहिंसा, द्रव्य हिंसा अथवा द्रव्य अहिंसा के नाम से भी अभिहित होती है। इसके अतिरिक्त अहिंसा के नकारात्मक तथा विधेयात्मक, इस तरह दो पक्ष भी हो सकते हैं। किसी को कष्ट न देना, हत्या न करना, किसी से द्वेष घृणा न करना नकारात्मक पक्ष है, जब कि दूसरों की सेवा, प्रेम, करुणा, मैत्री की भावना का विकास करना आदि विधेयात्मक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं। जिस समाज में अहिंसा का पालन तथा सर्वात्मभाव की प्रतिष्ठा जितनी अधिक होगी वह समाज उतना ही अधिक विकसित समाज कहलाएगा।

पारमार्थिक अहिंसा के आदर्श को समझने एवं स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। उसी तरह मानसिक अहिंसा अर्थात् घृणा, राग, द्वेष के त्याग के विषय में विवाद संभव नहीं है। लेकिन स्थूल बाह्य हिंसा, अथवा शारीरिक, व्यावहारिक स्तर पर हिंसा और अहिंसा का क्या रूप होना चाहिए? इस विषय को लेकर मतभेद है। एक मत के अनुसार पारमार्थिक अहिंसा में प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी भी प्रकार की हिंसा क्यों न करे वह हिंसा नहीं कही जा सकती जैसा कि गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया था। दूसरा मत कहता है कि जो व्यक्ति अहिंसा में प्रतिष्ठित है, वह बाह्य हिंसा का त्याग क्यों न करे। यही नहीं, अगर कोई व्यक्ति ठीक-ठीक पारमार्थिक अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाय तो उससे किसी की हिंसा संभव ही नहीं है। वह प्राणियों की हिंसा करने के बदले अपने शरीर का त्याग श्रेयस्कर ही समझेगा। यह मत राम और कृष्ण जैसे शस्त्रधारी महापुरुषों को पूर्ण विरक्त शुकदेवादि की तुलना में निम्न कोटि का समझता है।

हिंसा का अर्थ

जिस प्रकार अहिंसा को एक व्यापक दृष्टि से देखा जा सकता है उसी प्रकार व्यापक अर्थों में हिंसा के भी कई रूप हो सकते हैं। शास्त्रकारों ने हिंसा **"प्राण वियोगानुकूल व्यापार"**, **"प्राण वृत्तिच्छेद"** आदि पदों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। वृत्ति का अर्थ है वह व्यवसाय या क्रिया जिससे कमाई कर हमारी जीविका चलती है। वृत्तिच्छेद का अर्थ है – उस कमाई या पोषण का मार्ग बन्द कर देना। यथा, वृक्ष को काटने के बदले उसकी जड़ से मिट्टी, जल, खाद आदि हटा देना – इससे पेड़ को काटा तो नहीं वह स्वयं बिना आहार के मर गया। अथवा किसी जानवर को तलवार से नहीं मारना, पर उसके नाक-मुँह आदि बन्द कर देना, अथवा किसी अपराधी को पत्थर से बाँधकर पानी में डुबो देना जिससे वह वायु के अभाव में मर जाए। इसी भाव का थोड़ा विस्तार करने पर देखेंगे कि किसी व्यक्ति की नौकरी छीन लेना अथवा ऐसी सामाजिक परिस्थिति कर देना जिससे आजीविका उपार्जन कठिन हो जाये, हिंसा के अन्तर्गत आ जायेंगे।

सामान्यतः यदि हमारी कोई लापरवाही या प्रमाद से कष्ट पाये या मृत्यु को प्राप्त हो, उसे हिंसा नहीं मानते। यथा सड़क पर कोई व्यक्ति छटपटाता पड़ा है और हम उसे देखते हुए भी उठाकर अस्पताल ले जाने के बदले उपेक्षा करके वहीं छोड़कर चले जायें और यदि वह मर जाये तो मृत्यु का दोष लगेगा। यदि हम एक ऐसे समाज में रहते हैं जो हिंसा एवं मानव उत्पीड़न को प्रोत्साहित करता है, और फिर भी उसके विरुद्ध बोलते तक नहीं, तो प्रकारान्तर से हम उसका अनुमोदन ही करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त व्यापक दृष्टि से विषय का अवलोकन करने पर यह समझना आसान हो जाएगा कि अहिंसा को पंच यमों में क्यों प्रमुख स्थान दिया गया है तथा सत्यादि भी अहिंसा के अंग क्यों माने गये हैं? सत्य का अर्थ है असत्य भाषण कर दूसरे को कष्ट न देना। अस्तेय अर्थात् दूसरे के सत्त्व का हरण कर उसे कष्ट न देना।

परिग्रह का अर्थ है जिन वस्तुओं पर दूसरों की दृष्टि है, वह मेरे द्वारा भोगी जाये यह भाव तथा आवश्यकता से अधिक संग्रह करना। संसार में भोजन का एक भी ऐसा कौर नहीं है, जिस पर मक्खी, चींटी, चिड़ियाँ आदि की दृष्टि न हो इतना होते हुए भी जो इनका संग्रह करता है, वह हिंसा करता है। – अतः इससे विरत होना अपरिग्रह है। इसी तरह दूसरे को भोग्य न समझना एवं भोक्तृत्व की हिंसा न करना ही ब्रह्मचर्य है। दुर्भाग्य यह है कि अनादि काल से जीवन के लिए संघर्ष में रत मानव के लिए हिंसा स्वाभाविक हो गई है उसे सीखना नहीं पड़ता। लेकिन अहिंसा के लिए शिक्षा आवश्यक है, एवं हिंसा के त्याग द्वारा अहिंसा के संस्कारों को दृढ़ करना आवश्यक है।

अहिंसा की साधना

अहिंसा के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या का उद्देश्य उसकी साधना के प्रकार तथा उपायों को भलिभाँति समझना है। जैसा कि कहा जा चुका है, अहिंसा के तीन स्तर हैं: पारमार्थिक, मानसिक और शारीरिक। पारमार्थिक अहिंसा लक्ष्य है, एवं मानसिक और शारीरिक अहिंसा उस लक्ष्य को पाने के उपाय। इन उपायों में मानसिक अहिंसा या भाव अहिंसा, शारीरिक या द्रव्य अहिंसा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि मन से अहिंसक अथवा शान्त हुए बिना बाह्य जीवन में हिंसा का सम्यक् त्याग संभव नहीं है।

भाव अहिंसा या मानसिक अहिंसा की साधना

(१) **सर्वत्र आत्म दर्शन का अभ्यास** – इस पारमार्थिक सत्य को बार-बार विचार द्वारा मन में बिठाने का प्रयत्न करना चाहिए तथा लौकिक व्यवहार के समय मन में इस बात का स्मरण करते रहना चाहिए कि सर्वत्र एक ही परमात्म सत्ता विद्यमान है जो मेरी आत्मा से अभिन्न है। पारमार्थिक सत्य पर सीधे आधारित हुए भी यह साधना आसान नहीं है। अतः इससे उतर कर कुछ निम्न स्तर पर मन से हिंसा तथा हिंसा सम्बन्धित भावों को त्यागने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(२) **वैर त्याग की साधना** – मानसिक स्तर पर अहिंसा वैर, घृणा इत्यादि के रूप में अभिव्यक्त होती है। वैर भी पर-पात्र के भेद से चार प्रकार का होता है। जिसके सुख में हमारा स्वार्थ नहीं रहता या जिसके सुख से हमारे स्वार्थ का व्याघात होता है, उसको सुखी देखने से उनका चिन्तन करने से साधारण चित्त प्रायः ईर्ष्यालु होते हैं। उसी प्रकार शत्रु आदि को दुखी देखने से निष्ठुर हर्ष उमड़ता है। जो हमारे अपने मतानुसारी नहीं हैं पर पुण्यकर्मा हैं, ऐसे व्यक्तियों की प्रतिष्ठा आदि देखने से या चिन्तन करने से मन में असूया या अमुदित भाव आते हैं और जो पुण्यकर्मा नहीं हैं उनके प्रति (यदि स्वार्थ नहीं रहे तो) अमर्ष या क्रुद्ध तथा पिशुन भाव उठते हैं। इस प्रकार ईर्ष्या, निष्ठुर हर्ष, अमुदिता तथा क्रुद्ध पिशुन भाव हिंसा या वैर के ही चार प्रकार हैं। इन्हें सुखी के प्रति मैत्री भाव, दुःखी के प्रति करुणा, पुण्यात्मा के प्रति मुदिता या प्रसन्नता की भावना तथा अपुण्यात्माओं की उपेक्षा के द्वारा दूर करना चाहिए। इन भावनाओं को दृढ़ करने वाली अनेक प्रार्थनाएँ सभी धर्मों में प्रचलित है, तथा उनका प्रतिदिन पाठ कर इन भावनाओं को मन में दृढ़ करना मानसिक अहिंसा की साधना का अंग है। यह भाव निम्न श्लोक में सुन्दर रूप से व्यक्त हुआ है :

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीतवृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परदोष दर्शन, प्रतिस्पर्धा, दूसरे को पीछे ढ़केल कर आगे निकल जाने की इच्छा एवं प्रयत्न, ये भी हिंसा के ही अंग हैं। ये आज के युग में जीवन के अनिवार्य अंग बन गये हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम यह स्वीकार करें कि ये अहिंसा के विरोधी हैं तथा इन्हें प्रोत्साहन प्रदान न करें। दूसरों के गुणों में दोष देखना असूया कहलाता है। "पर **गुणेषु दोषाविष्कारम्**"।। अनसूया का अर्थ है – **न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तोति चान्यगुणानपि। न हसेच्चान्य दोषाश्च सानसूया प्रकीर्तिताः।** अर्थात् दूसरे के गुणों का हनन न करके उनकी स्तुति करना तथा दूसरे के दोषों की हंसी न उड़ाना अनसूया कहलाता है।

अहिंसा से सम्बन्धित भावनाएँ

मैत्र्यादि चतुर्भावनाओं के अतिरिक्त मानसिक अहिंसा की साधना के लिए हिंसा वृत्ति के दोषों को देखकर उसके प्रति त्याज्य बुद्धि प्रबल बनाना आवश्यक है। कृत, कारित, वांछित और अनुमोदित, ये हिंसा के चार प्रकार पुनः लोभ, मोह और क्रोध ये हिंसाएँ त्रिविध प्रकार की होती है। चाहे कैसी भी हिंसा हो, अपरिहार्य कर्म सिद्धान्त के कारण दुःखदायक होती है। वन्धनादि द्वारा किसी के वीर्य का नाश करने के फलस्वरूप हिंसक के मन और इन्द्रियाँ दुर्बल वीर्यहीन हो जाती हैं। दूसरो को दुःख प्रदान करने के कारण हिंसक को नरक, तिर्यग् आदि योनियों में दुःख सहन करना पड़ता है और किसी प्राणी के प्राण नाश करने के फलस्वरूप हिंसक या तो स्वयं अल्पायु होता है, अथवा दीर्घायु होकर भी बहुत समय तक रुग्ण रहकर मृत्यु तुल्य कष्ट भोगता है। इस प्रकार हिंसा के दुष्परिणामों का चिन्तन कर उसके प्रति त्याग बुद्धि दृढ़ करनी चाहिए।

इसी प्रकार अहिंसा के गुण का चिन्तन करना चाहिए। अहिंसा में ही सुख और शान्ति है तथा समाज की व्यवस्था का आधार भी अहिंसा है। इस विचार को दृढ़ करना चाहिए। हिंसा अपरिहार्य होते हुए भी जीवन का आधार या दिशा निर्देशक नहीं हो सकती। **अहिंसा सभी नैतिकता, सभी धर्मों का मूल है, तथा वही धर्म का शाश्वत, शुद्धतम रूप है।** वस्तुतः **अहिंसा कोई गुण विशेष नहीं – वह तो अनेक गुणों की समष्टि है। शान्ति, प्रेम, करुणा, दया कल्याण मंगल, अभय, रक्षा, क्षमा, अप्रमाद आदि सभी गुण अहिंसा के ही पर्याय एवं अंग-प्रत्यंग हैं। प्रेम, आत्मीयता, त्याग, समता, करुणा, अहिंसा के आधार हैं। सभी प्राणियों के प्रति समभाव से व्यवहार करना यही अहिंसा है। सभी मानवों, प्राणियों को शान्तिपूर्ण ढंग से जीने का अधिकार है अतः जहाँ भी जीवन है उसका आदर करना अहिंसा का ही रूप है। यही नहीं व्यावहारिक स्तर पर सहयोग एवं सहायता के बिना जीवन ही संभव नहीं। अतः सह-अस्तित्व के लिए भी अहिंसा अपरिहार्य है। भले ही हिंसा का पूर्णरूपेण परित्याग संभव न हो तो भी यह तो निश्चित है कि जितनी कम हिंसा हो, उतना ही जीवन श्रेष्ठतर होगा - 'Less killing is better living.'** साधना में प्रवृत्त त्यागी साधक समस्त प्राणियों को संकल्प द्वारा अभय प्रदान करता है। अगर किसी संयोग अथवा कारणवश उसे हिंसा में प्रवृत्त होना पड़े, ऐसा कार्य करना पड़े जिससे दूसरे को कष्ट हो तो उसे इसके लिए पश्चाताप करना चाहिए। "धिक्कार है मुझे कि मैं समस्त प्राणियों को अभय-प्रदान करने के बाद पुनः इसके विपरीत कार्य कर रहा हूँ। इस तरह स्वयं को कोसना, अहिंसा की भावनाओं को मन में बैठाने में अत्यन्त उपयोगी है।" ..."मैं अभी तक अहिंसा में प्रतिष्ठित नहीं हो सका" यह सोचकर क्षोभ करना चाहिए तथा किसी भी स्थिति में हिंसा का अनुमोदन नहीं करना चाहिए। वर्तमान समय में जब हिंसा की सर्वत्र वृद्धि हो रही है तथा उसे अनिवार्य एवं आवश्यक माना जाने लगा है, अहिंसा एवं सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों पर से लोगों की आस्था हटती जा रही है ऐसी स्थिति में पुनः अहिंसा के प्रति आदर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थापित करने के लिए उपर्युक्त भावना करना अत्यन्त आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है : There is no justifiable killing and there is no righteous anger. अर्थात् हिंसा की पुष्टि और क्रोध की तुष्टि नहीं हो सकती।

व्यावहारिक स्तर अहिंसा की साधना – जैसा कि कहा जा चुका है, पूर्ण अहिंसा एक उच्चतम आदर्श है जिसका पालन व्यावहारिक दैनन्दिन जीवन में लगभग असम्भव है। अतः न्यूनतम हिंसायुक्त जीवन यापन करना ही अहिंसा की साधना का व्यावहारिक रूप है। इस दृष्टि से हिंसा के चार प्रकार किये जा सकते हैं (१) संकल्पी (२) विरोधी (३) उद्योगी (४) आरंभी।

संकल्पी – संकल्प पूर्वक, मानसिक उत्तेजना सहित तथा जान बूझकर दूसरे का अकल्याण करने के उद्देश्य से की गयी हिंसा संकल्पी कही जाती है।

२. **विरोधी** – स्वयं तथा स्वयं से सम्बन्धित लोगों की निरीह, निरपराध की रक्षा के लिए जिस हिंसा को स्वीकार किया जाता है वह विरोधी हिंसा कहलाती है। धर्मयुद्ध इसी के अन्तर्गत आते हैं।

३. **उद्योगी** – खेतीबाडी, व्यवसायादि में अनिवार्य रूप से युक्त हिंसा को उद्योगी हिंसा कहा गया है।

४. **आरंभी** – जीवन निर्वाह के साथ जुड़ी हुई हिंसा, यथा मकान साफ करने, भोजन पकाने, कपड़े धोने आदि में होनेवाली हिंसा।

संकल्पी हिंसा का त्याग तो सर्वदा सर्वथा किया ही जाना चाहिए। शेष तीन प्रकार की हिसाएं पूरी तरह से त्यागी नहीं जा सकतीं। उन्हें भी यथा संभव कम करने का प्रयल करना चाहिए। यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि निरपराध और असम्बद्ध व्यक्ति या प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे।

अन्य यम-नियमों का अनुष्ठान - जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विभिन्न यम नियमों में अहिंसा सर्व प्रथम एवं प्रमुख है तथा ये सारे यम नियम, अहिंसा की सिद्धि के लिए ही हैं। यह भी बताया जा चुका है कि असत्य, परिग्रह, चोरी तथा अब्रह्मचर्य प्रकारान्तर से हिंसा के ही रूप हैं। अतः इनका त्याग एवं सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना अहिंसा के ही रूप हैं। वस्तुतः समस्त आध्यात्मिक साधनाएँ अहिंसा के लक्ष्य की ओर ले जानेवाली ही हैं। एक सरल शान्त, पवित्र अनाडंबरयुक्त जीवन व्यतीत करना अहिंसक होने के लिए परमावश्यक है। विशेषकर आधुनिक काल में जब हमारे जीवन निर्वाह के लिए तथा सुख सुविधा आदि के लिए अन्य प्राणियों को कष्ट देना अवश्यंभावी हो गया है।

अहिंसा का विध्यात्मक पक्ष – अहिंसा का अर्थ केवल किसी की हत्या न करना या कष्ट न पहुँचाना मात्र नहीं है उसका एक भाव रूप, विध्यात्मक पक्ष भी है। सभी पर दयालु भाव रखना तथा पर पीड़ा निवृत्ति भी अहिंसा के ही रूप हैं। अतः सेवा, दान आदि द्वारा दूसरों के दुःख दूर करने का प्रयत्न करना भी अहिंसा का ही प्रकार है।

अहिंसा : एक व्रत के रूप में – जैन धर्म में अहिंसा को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। जैन गृहस्थ एवं संन्यासी अनेक व्रतों का पालन करते हैं जिनमें अहिंसा व्रत सबसे महत्वपूर्ण है। संन्यासी, कृत, कारित और अनुमोदित, मन वचन एवं शरीर से की गई सभी हिंसा का पूरी तरह त्याग करता है। अर्थात् शरीर, मन या वाणी से न किसी की हिंसा करना या कष्ट पहुँचाना, न ऐसा करवाना और न किसी के द्वारा किए गए का अनुमोदन करना। जब इस प्रकार का आचार जाति, देश, काल और समय के द्वारा अनवच्छिन्न होता है, तब महाव्रत कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाति देशसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम्।

इसे समझना आवश्यक है। जाति अवच्छिन्न अहिंसा का उदाहरण है – मछुओं की मत्स्यगत हिंसा और अन्य जातिगत अहिंसा (अर्थात् उनकी हिंसा यदि केवल आजीविकार्थ मत्स्यों तक सीमित रहे और अन्यत्र वे अहिंसक रहें तो यह जाति अवछिन्न अहिंसा होगी। इसी प्रकार देशावाच्छिन्न अहिंसा है – "तीर्थ में हनन नहीं करूँगा इत्यादि।" कालावच्छिन्न अहिंसा है – चतुर्दशी या किसी पुण्य दिन में हनन नहीं करूँगा" इत्यादि। यह अहिंसा समयावाच्छिन्न भी हो सकती हैं जैसे "देव ब्राह्मण के लिए हिंसा करूँगा अन्य किसी प्रयोजन से नहीं।" समय का अर्थ कर्तव्य के लिए नियम भी हो सकता है। जैसे अर्जुन ने क्षत्रिय कर्तव्य की दृष्टि से युद्ध किया था। इस तरह जाति, देश, कालादि द्वारा अवच्छिन्न न होकर जो अहिंसा सर्वथा, सर्वदा, सर्वावस्था में पालन की जाती है, वही श्रेष्ठ है, तथा महाव्रत कहलाती है। योगी जन इसी का पालन करते हैं।

जहाँ तक गृहस्थों का प्रश्न है, उनके लिए महाव्रत संभव न होने के कारण वे आंशिक रूप में, क्रम पूर्वक, अधिकाधिक कठोर व्रत स्वीकार कर अहिंसा का पालन करते हैं। जान बूझ कर किसी भी प्राणी की शरीर से हिंसा नहीं करूँगा और न ही करवाऊंगा केवल अनुमोदन की छूट रहती है। इस प्रकार का व्रत अणुव्रत कहलाता है। वस्तुतः इस प्रकार के अपवादयुक्त व्रत तो दुर्बल मानवों के लिए राहत प्रदान करने जैसे हैं एवं क्रमशः हिंसा वृत्ति को त्याग कर पूरी तरह अहिंसक बनाने की दिशा में प्रथम कदम मात्र हैं। जाति, देश, कालादि के भी अपवाद उपर्युक्त रीति से स्वीकार किए गए है।

अहिंसा-साधना की समस्याएँ – जैसा कि प्रारंभ में कहा जा चुका है, अन्य यमों की तरह अहिंसा के भी दो रूप हैं; एक साध्य और एक साधन। साध्य के रूप में अहिंसा का अर्थ है सर्व प्राणियों में आत्मा का दर्शन करना, सत्य का अर्थ है; आत्मा ही एकमात्र सत्य है, जगत् मिथ्या है, इस सत्य में प्रतिष्ठित होना, ब्रह्मचर्य का अर्थ है सदा ब्रह्मस्वरूप में विचरण करना इत्यादि। लेकिन साधन के रूप में इन तीनों के कई स्तर हैं, एवं अन्य साधनों की तरह इनकी भी समस्याएँ हैं। पहली समस्या तो यह है कि सभी साधनों का लक्ष्य एक होते हुए भी सभी के लिए एक साधन संभव नहीं है। कोई सत्य को साधना के रूप में स्वीकार कर सकता है, कोई अहिंसा पर बल दे सकता है अथवा कोई ब्रह्मचर्य को लेकर आगे बढ़ सकता है। सभी साधन परस्पर सम्बन्धित अवश्य हैं लेकिन भिन्न-भिन्न साधक भिन्न-भिन्न साधनों पर बल देते हैं। यही नहीं, पात्र, देश और काल के अनुसार भी परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए जिस गरीब व्यक्ति को अपने परिवार के भरण पोषण के लिए रोजी रोटी के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ रहा है जिसे अपने तथा अपने परिवार के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्षरत रहना पड़ रहा है उसके लिए अहिंसा परमोधर्म एवं चरम लक्ष्य होते हुए भी तात्कालिक साधन नहीं हो सकता। जिस देश को सदा बाहरी शत्रुओं के आक्रमण का भय बना रहता हो उसके लिए भी अहिंसा का संपूर्ण पालन सम्भव नहीं है। दुर्बल बलहीन व्यक्ति को अहिंसा का आदर्श और अधिक दुर्बल बना सकता है। **क्षमा वीरस्य भूषणम्।** अहिंसा उच्चतम या परमादर्श है, लेकिन समाज में कभी भी उच्च्तम आदर्श का आचरण करने वाले विरले व्यक्ति ही होते हैं। व्यावहारिक स्तर पर दैनन्दिन जीवन के स्तर पर निरन्तर आदर्श को स्वीकार करना होता है अन्यथा सारे समाज का पतन होता है।

सभी साधनों की दूसरी समस्या यह है कि साधन ही साध्य बन जाते हैं। उन पर इतना अधिक बल दिया जाने लगता है कि लोग लक्ष्य को भूल जाते हैं। यह दुराग्रह एवं कट्टरवादिता का रूप ले लेता है। अहिंसा के सम्बन्ध में भी यही बात है। अहिंसा के प्रति दुराग्रह वाले लोग चींटी, मच्छर, कीड़े-मकोड़े आदि को बचाने में ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपना सारा समय गंवा देते हैं और यदि कहीं गलती से कीड़ा मर जाय तो अत्यधिक शोक करने लगते हैं। वे भूल जाते हैं कि इस साधना का चरम लक्ष्य सर्वभूतों में स्वयं की आत्मा का दर्शन करना है।

इससे सम्बन्धित एक और समस्या है। सभी साधनों की तरह अहिंसा के भी दो पक्ष हैं। स्थूल – शारीरिक अथवा भौतिक तथा सूक्ष्म – भावरूप, अथवा मानसिक। कालान्तर में स्थूल पर अधिक बल दिया जाने लगता है क्योंकि वह सरल होता है, आसानी से समझ में आता है, तथा प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उसकी सामाजिक मान्यता होती है तथा प्रशंसा भी प्राप्त होती है। अहिंसा के सम्बन्ध में भी यही बात है। मानसिक या भाव अहिंसा अधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी अधिक कठिन होती है। किसी प्राणी की हत्या नहीं करना आसान है लेकिन किसी के प्रति द्वेष भाव पूरी तरह त्यागना कठिन है। अतः अहिंसा भी कालान्तर में प्राणी हत्या नहीं करना, निराभिष भोजन त्याग आदि में ही परिवर्तित होकर रह जाती है। मैत्री भाव बढ़ाने को गौण महत्व मिलने लगता है। यही नहीं, साधना का नकारात्मक पक्ष प्रबल हो जाता है। दूसरों के कष्ट को लाघव करना भी अहिंसा का अंग है, यह बात गौण हो जाती है।

रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा में अहिंसा – वस्तुतः सभी अवतारी महापुरुष प्रेम व अहिंसा को शाश्वत संदेश के रूप में अपने जीवन द्वारा प्रदर्शित करने एवं उसका उपदेश देने के लिए ही आते हैं। श्रीरामकृष्ण भी इसके अपवाद नहीं हैं। श्रीरामकृष्ण की जीवनी पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक ब्रह्मज्ञ पुरुष थे तथा अत्यन्त स्वाभाविक रूप से ब्रह्मात्मैकत्व में प्रतिष्ठित थे। अहिंसा के संदर्भ में वे पारमार्थिक अहिंसा में सर्वदा प्रतिष्ठित थे। गले के कैन्सर से पीड़ित हो जब वे मुँह से कम खा पी रहे थे तब भी उन्हें यह अनुभूति थी कि वे असंख्य भक्तों के मुँह से खा रहे हैं। यह तभी संभव है जब वे समस्त प्राणियों में स्वयं को अवस्थित देखें। एक बार उन्होंने स्वयं भोजन करके अपने अनेक भूखे भक्तों की क्षुधा निवृत्ति की थी। यह भी तभी सम्भव है जब वे स्वयं को सभी की देहों में अवस्थित देखें। एक मांझी के दूसरे मांझी पर कराघात करने पर स्वयं उसका अनुभव करना तथा घास पर चल रहे व्यक्ति के पदाघात को स्वयं के सीने पर अनुभव करना भी श्रीरामकृष्ण के पारमार्थिक अहिंसा में प्रतिष्ठित होने के दृष्टान्त हैं। वे सर्वत्र यहाँ तक कि वनस्पति में भी आत्मा का दर्शन करते थे, अतः एक अवस्था ऐसी आई थी जब वे हरी दूब पर पैर नहीं रख सकते थे तथा उसे बचा कर, सुखी जमीन पर पैर रख रख कर चलते थे।

जहाँ तक भाव अहिंसा अथवा मानसिक अहिंसा का प्रश्न है, इसमें भी श्रीरामकृष्ण पूर्ण प्रतिष्ठित थे। उनका जन्म ही जगत् के कल्याण के लिए हुआ था। दुखी, वृद्ध, आर्त प्राणियों के लिए वे करुणा से पूर्ण थे, तथा उनका समग्र जीवन दूसरों के कष्ट लाघव करने तथा उन्हें मुक्ति प्रदान करने में ही बीता था। सुखी एवं पुण्यात्माओं के प्रति उनके मन में मुदिता एवं मैत्री का भाव था। वे उनके दर्शन करके आनन्दित होते थे तथा उनसे मैत्री स्थापित करते थे। केशव चन्द्रसेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं अन्यान्य मनीषियों एवं सन्त पुरुषों के दर्शन करने वे स्वयं गए थे। दुष्टों के प्रति उनके हृदय में उपेक्षा का भाव था। जिस ब्राह्मण पुजारी ने उन्हें लात से मारा था, उसे किसी प्रकार हानि न हो, यह सोच कर उन्होंने उसकी बात श्रीमथुरनाथ विश्वास से नहीं कही। यहाँ तक कि श्रीरामकृष्ण ने किसी की निन्दा तक नहीं की। **प्रेम कभी दोष नहीं देखता। किसी की निन्दा करना अथवा उसके दोष देखना प्रेम का लक्षण नहीं बल्कि ईर्ष्या एवं स्वयं की उच्चाभिलाषा का फल है।** श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि किसी का दोष नहीं देखना चाहिए।

भय अहिंसा का विरोधी है। अहिंसक सभी प्राणियों को अभय प्रदान करता है और स्वयं भी सभी से निर्भय हो जाता है क्योंकि उसकी यह मान्यता होती है कि सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में एक ही आत्म सत्ता है। व्यावहारिक स्तर पर भय पर विजय पाने का प्रयत्न करना अहिंसा-साधना का एक अंग है। श्रीरामकृष्ण इसका उपदेश दिया करते थे। मास्टर महाशय एक बार नाव के डाँवाडोल होने पर भयभीत होकर उतर गए थे। वे अपने परिवारवालों से भी भयभीत रहते थे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें इसे त्यागने का उपदेश दिया था।

माँ शारदा तो प्रेम व अहिंसा की जीवन्त प्रतिमूर्ति ही थीं। "कोई पराया नहीं है, सभी अपने हैं, सभी को अपना बनाना सीखो" - माँ शारदा का यह उपदेश अहिंसा और प्रेम का ही उपदेश है। "किसी का दोष न देखो" यह उनका सबसे महत्त्वपूर्ण सन्देश अहिंसा का आधार है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार भी अहिंसा सर्वोपरि है। वे अहिंसा के महत्त्व को समझने के लिए पवहारी बाबा का दृष्टान्त दिया करते थे जिनके लिए सांप, चोर आदि सभी परमात्मा के ही रूप थे। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि जो पूर्ण नैतिक है वह किसी प्राणी या व्यक्ति की हिंसा नहीं कर सकता। जो मुक्त होना चाहता है, उसे अहिंसक बनना होगा। जिसमें पूर्ण अहिंसा का भाव है उससे बढ़कर कोई शक्तिशाली नहीं है। स्वयं स्वामीजी ऐसी स्थिति में अवस्थित थे जहाँ से वे संसार के समस्त प्राणियों के कष्टों का अनुभव कर सकते थे। वे संसार के उद्धार के लिए बार-बार जन्म लेने के लिए भी प्रस्तुत थे।

अहिंसा और आहार अहिंसा की चर्चा करने पर साधारणतया लोगों में कीड़े मकोड़ों की हत्या न करना तथा निरामिष भोजन का विचार आता है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि वास्तविक अहिंसा इन स्थूल विषयों से कहीं अधिक व्यापक है। जिससे अहिंसा को व्रत के रूप में अपनी साधना के प्रमुख अंग के रूप में स्वीकार किया है उसे निश्चित रूप से मांसाहार अथवा आमिष भोजन का त्याग करना चाहिए। योगियों के लिए भी आमिष भोजन वर्जित है। अन्य प्राणी के मांस से स्वयं के शरीर के पोषण का विचार अत्यन्त गर्हित है। मांस-मछली आदि तमोगुणी आहार हैं, एवं किसी भी साधक के लिए उपयोगी नहीं माने जा सकते। शीत प्रधान देशों में रहने वाले लोग बाल्यकाल से ही मांसाहार करते हैं। उनका शरीर एवं मन मांस खाने का अभ्यस्त हो जाता है। लेकिन ऐसे लोगों को भी साधना प्रारम्भ करने तथा कुछ प्रगति करने पर एक अवस्था में उसका त्याग कर निरामिष आहार को ग्रहण करना पड़ता है। हिन्दू शास्त्रों में कहा गया है कि मैथुन, मद्यपान एवं मांसाहार मानवों के लिए स्वाभाविक है, लेकिन इनके त्याग में महान् पुण्य है। आहार का मन पर भी प्रभाव पड़ता है। **आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।** अतः जहाँ तक आध्यात्मिक साधक का प्रश्न है उसके लिए निरामिष आहार ही श्रेष्ठ है यह बात असंदिग्ध है।

✣ ✣ ✣

❑ स्वामी ब्रह्मेशानन्द सुप्रतिष्ठित आध्यात्मिक संस्थान श्री रामकृष्ण मिशन के एक वरिष्ठ सन्यासी हैं। आपने १९६४ में एम.डी. की उपाधि प्राप्त की तथा बाइस वर्षों तक रामकृष्ण मिशन के बृहद चिकित्सालय, वाराणसी में सेवा कार्य किया। आजकल आप चेन्नई में अंग्रेजी मासिक "वेदांत केसरी" का संपादन कर रहे हैं। आपने जैन धर्म पर अंग्रेजी एवं हिन्दी में कई आलेख लिखे हैं। आपने मिशन द्वारा हिन्दी में "महावीर की वाणी" व अंग्रेजी में "Thus spake Lord Mahavira" प्रकाशित की है। आप एक श्रेष्ठ वक्ता, चिंतक एवं लेखक हैं।

— सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन कर्मसिद्धान्त : नामकर्म के विशेष सन्दर्भ में

❑ डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'

अष्ट कर्मों में नाम कर्म का छट्ठा स्थान है। डॉ. श्री फूलचंदजी जैन 'प्रेमी' ने नाम कर्म का स्वरूप उसकी उत्तर प्रकृतियाँ आदि का विवेचन बड़ी ही निष्ठा के साथ किया है।

कर्म सिद्धान्त के विषय में जितनी युक्तियुक्त वैज्ञानिक सूक्ष्म विवेचना जैन धर्म में की गई है वैसी अन्य किसी भी धर्म में नहीं है। अनेकान्तवाद, अहिंसा आदि सिद्धान्तों की तरह कर्म-सिद्धान्त भी जैन धर्म का अपना विशेष महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। जैनधर्म की वैज्ञानिक धर्म के रूप में मान्यता या प्रसिद्धि में कर्म सिद्धान्त की वैज्ञानिकता एक प्रमुख कारण है। कर्म क्या है? क्यों बंधते हैं? बंधने के क्या-क्या कारण हैं? जीवन के साथ वे कब तक रहते हैं? वे क्या-क्या और किस प्रकार फल देते हैं? उनसे मुक्ति कैसे प्राप्त होती है? विविध प्रश्नों का समाधान मात्र जैन धर्म में ही मिलता है।

जैन कर्म सिद्धान्त इसलिए और भी महत्वपूर्ण है कि इसने ईश्वरादि परकर्तृत्व या साहित्कर्तृत्व के भ्रम को तोड़कर प्रत्येक प्राणी को अपने पुरूषार्थ द्वारा उस अनन्त चतुष्टय (अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य) की प्राप्ति का मार्ग सहज और प्रशस्त किया है। वस्तुतः प्रत्येक प्राणी अपने भाग्य का स्वयं स्रष्टा, स्वर्ग-नरक का निर्माता और स्वयं ही बंधन और मोक्ष को प्राप्त करनेवाला है। इसमें ईश्वर आदि किसी अन्य माध्यम को बीच में लाकर उसे कर्तृत्व मानना घोर मिथ्यात्व बतलाया गया है। इसीलिए **"बुज्झिज्जत्ति त्तिउट्टिज्जा बंधणं परिजाणिया"** – आगम का यह वाक्य स्मरणीय है जिसमें कहा गया है कि बंधन को समझो और तोड़ो, तुम्हारी अनन्तशक्ति के समक्ष बन्धन की कोई हस्ती नहीं है।

इसीलिए जैन एवं वेदान्त दर्शन का यही स्वर बार-बार याद आता है कि हे आत्मन्। तेरी मुक्ति तेरे ही हाथ में है, तू ही बन्धन करनेवाला है और तू ही अपने को मुक्त करनेवाला भी है-

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते।।

इसीलिए किसी एक को दूसरों के सुख-दुःख, जीवन-मरण का कर्ता मानना अज्ञानता है। यदि ऐसा मान लिया जाए तो फिर स्वयं शुभाशुभ कर्म निष्फल सिद्ध होंगे। इस सन्दर्भ में आचार्य अमितगति का यह कथन स्मरणीय है-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयं कृतं कर्म निरर्थक तदा।।
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किंञ्चन।
विचारयन्नेवमनन्य मानसः परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम्।।

इस तरह जैन कर्म सिद्धान्त दैववाद नहीं, अपितु अध्यात्मवाद है क्योंकि इसमें दृश्यमान सभी अवस्थाओं को कर्मजन्य कहकर यह प्रतिपादन किया गया है कि आत्मा अलग है और कर्मजन्य शरीर अलग है। इस भेद-विज्ञान का सर्वोच्च उपदेष्टा होने के कारण जैन कर्मसिद्धान्त अध्यात्मवाद का ही दूसरा नाम सिद्ध होता है।

कर्म विषयक साहित्य

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तथा अन्यान्य देशी भाषाओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में कर्म-विषयक जैन साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। आचार्य गुणधर विरचित **कसायपाहुडसुत्त** तथा आचार्य वीरसेन स्वामी विरचित इसकी सोलह खण्डों में प्रकाशित बृहद् **जय धवला** नामक टीका, आचार्य पुष्पदन्त-भूतबलि विरचित **षट्खण्डागम** तथा इस पर आचार्य वीरसेन एवं जिनसेन स्वामी विरचित **धवला** नामक टीका, **पंचसंग्रह, मूलाचार का पर्याप्ति अधिकार, गोम्मटसार** आदि अनेक महान् ग्रन्थ कर्म-विषयक साहित्य में प्रमुख हैं। इस सन्दर्भ में विशेष जानकारी हेतु सिद्धान्ताचार्य पं. श्री कैलाशचन्द शास्त्री द्वारा लिखित **"जैन साहित्य का इतिहास"** प्रथम भाग विशेष दृष्टव्य है।

कर्मबंध और उसकी प्रक्रिया

मूलतः आत्मा की दो अवस्थाएँ हैं - बद्धदशा और मुक्तदशा। एक में बन्धन है तो दूसरी में मुक्ति। जगत् में कर्मबंध का और आत्मा के अशुद्ध भाव का एक विलक्षण ही सम्बन्ध है। आत्मा में बंध तो निजी विकल्पों के कारण होता है। यदि अन्तः भावों में राग-द्वेष की चिकनाई न हो तो बाह्य पदार्थों के रजकण उस पर चिपक नहीं सकते और न उस आत्मा को मलिन ही कर सकते हैं। आचार्य अकलंकदेव ने तत्वार्थवार्तिक में उदाहरण देते हुए कहा है कि जिस प्रकार पात्र विशेष में रखे गये अनेक रस वाले बीज, पुष्प तथा फलों का मद्य (शराब) रूप में परिणमन होता है, उसी प्रकार आत्मा में स्थित पुद्गलों का क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषायों तथा मन, वचन, काय की क्रिया रूप योग के कारण कर्मरूप परिणमन होता है। जीव के परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल स्वयमेव कर्मरूप परिणमन करते हैं। कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध होने से जो अवस्था उत्पन्न होती है, उसे बंध कहते हैं।

वस्तुतः प्रत्येक प्राणी की प्रवृत्ति के पीछे राग-द्वेष की वृत्ति काम करती है। यह प्रवृत्ति अपना एक संस्कार छोड़ जाती है। संस्कार से पुनः प्रवृत्ति एवं प्रवृत्ति से पुनः संस्कार निर्मित होते हैं। इस तरह यह सिलसिला बीज और वृक्ष की तरह सनातन-काल से चला आ रहा है। जीव और कर्मों का सम्बन्ध अनादि है या सादि? इसके उत्तर में आचार्य पूज्यपाद ने कहा है कि जीव और कर्मों का अनादि सम्बन्ध भी है और सादि सम्बन्ध भी है। कार्य-कारण भाव की परम्परा की अपेक्षा अनादि सम्बन्ध है और विशेष की अपेक्षा सादि सम्बन्ध है। जैसे बीज और वृक्ष का सम्बन्ध। यद्यपि ये सम्बन्ध अनादि से चले आ रहे हैं किन्तु बीज के बिना वृक्ष नहीं होता और वृक्ष के बिना बीज नहीं होता। इस अपेक्षा से प्रत्येक बीज और वृक्ष सादि व सहेतुक हैं। इस प्रकार प्रत्येक कर्मबंध व जीव का विकारी परिणाम सहेतुक व सादि है, किन्तु संतान-परंपरा की अपेक्षा अनादि है। (सर्वार्थ सिद्धि २/४१)

प्रायः सभी परलोकवादी दर्शनों की यह मान्यता है कि आत्मा जैसे अच्छे या बुरे कर्म करता है, तदनुसार ही उसमें अच्छा या बुरा संस्कार पड़ जाता है और उसे उसका अच्छा या बुरा फल भोगना पड़ता है किन्तु जैनधर्म जहाँ अच्छे या बुरे संस्कार आत्मा में मानता है वहाँ सूक्ष्म कर्मपुद्गलों का उस आत्मा से बंध भी मानता है। उसकी मान्यता है कि इस लोक में सूक्ष्म कर्म पुद्गल स्कन्ध भरे हुए हैं। जो इस जीव की कायिक, वाचिक या मानसिक प्रवृत्ति रूप योग से आकृष्ट होकर स्वतः आत्मा से बद्ध हो जाते हैं और आत्मा में वर्तमान कषाय के अनुसार उनमें स्थिति और अनुभाग पड़ जाता है। जब वे कर्म अपनी स्थिति पूरी होने पर उदय में आते हैं तो अच्छा या बुरा फल देते हैं। इस प्रकार जीव पूर्वबद्ध कर्म के उदय से क्रोधादि कषाय करता है और उससे नवीन कर्म का बंध करता है।

कर्मबंध के चार भेद हैं १. कर्मों में ज्ञान को घातने,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख-दुःखादि देने का स्वभाव पड़ना **प्रकृतिबंध** है। २. कर्म बंधने पर जितने समय तक आत्मा के साथ बद्ध रहेंगे, उस समय की मर्यादा का नाम **स्थितिबंध** है। ३. कर्म तीव्र या मन्द जैसा फल दे उस फलदान की शक्ति का पड़ना **अनुभाग बन्ध** है। ४. कर्म परमाणुओं की संख्या के परिणाम को **प्रदेश-बंध** कहते हैं।

इनमें प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योग से होते हैं तथा स्थितिबंध और अनुभाग बंध कषाय से होते हैं। योग जितना तीव्र या मन्द होता है, तदनुसार ही पौद्गलिक कर्मस्कन्ध आत्मा की ओर आकृष्ट होते हैं। जैसे हवा जितनी तेज, मन्द चलती है, तदनुसार ही धूल उड़ती है। इसी तरह क्रोध, मान, माया, लोभ जैसे तीव्र या मन्द होते है, तदनुसार ही कर्म पुद्गलों में तीव्र या मन्द स्थिति और अनुभाग पड़ता है। इस तरह योग और कषाय बंध के कारण है। इनमें भी कषाय ही संसार की जड़ है। क्योंकि कषायों के बिना कर्म परमाणु आत्मा में टिकते नहीं है। जबकि आत्मा में चुम्बक की तरह एक आकर्षण शक्ति होती है, जो संसार में सर्वत्र पाये जाने वाले सूक्ष्म कार्मण स्कन्धों को अपनी ओर खींचा करती है। आत्मा की इस आकर्षण शक्ति को ही "योग" कहा जाता है। इस तरह कर्म पुद्गलों का खिंच आकर आत्मा से सम्बन्ध करना और उनमें स्वभाव का पड़ना, यह कर्मयोग (मन, वचन, कामरूप क्रिया) से होता है। यदि वे कर्म पुद्गल किसी के ज्ञान में बाधा डालनेवाली क्रिया से खिंचे हैं तो उनमें ज्ञान गुण को आवृत (ढ़कने) करने का स्वभाव पड़ेगा। और यदि रागादि कषायों से खिंचे है तो चारित्र के नष्ट करने का स्वभाव पड़ेगा।

जिस तरह खाया हुआ अन्न अपने आप रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी आदि के रूप में बदल जाता है। उसी तरह से ये आत्मा के साथ संबंधित "कर्म" भी तरह-तरह के भेदों में बदल जाते हैं, जिन्हें हम ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय – इन आठ भेदों या नामों से पुकारते हैं। और ये कर्म ही विभिन्न रूप में आत्मा के साथ संबंधित होकर मनुष्यों में और समस्त जीवधारियों में हीनाधिकता पैदा किया करते हैं। ये आठ कर्म ही आत्मा के निर्मल स्वरूप को किसी न किसी प्रकार धूमिल बनाते रहते हैं। इसीलिए इन आठ कर्मों का अपने-अपने स्वभाव के अनुसार नामकरण भी हैं। इनमें आत्मा के गुणों का घात करने के कारण ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय — ये चारों घातिया कर्म कहलाते हैं क्योंकि आत्म विकास में ये विशेष बाधक होते हैं। शेष चार कर्म—वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चारों अघातिया कर्म कहलाते हैं। इनमें चार घातिया कर्म के नाश से सर्वज्ञता से समलंकृत आत्मा निज स्वरूप में लीन रहती हुई **अरहंत** पद प्राप्त करती है, जब कि घातिया, अघातिया समस्त कर्मों के पूरी तरह क्षय हो जाने पर पूर्ण विशुद्धि रूप **"सिद्ध"** स्वरूप की प्राप्ति होती है।

पूर्वोक्त जैन कर्म सिद्धान्त के विशेष सन्दर्भ में "नामकर्म" को इसलिए इस निबंध में विशेष सन्दर्भित किया जा रहा है चूँकि उपर्युक्त आठ कर्मों में इस नामकर्म का अनेक दृष्टियों से विशेष महत्व है। आज संसार में अनन्तानन्त प्रकार के जीवों में जो विविधता, समानता, चित्र-विचित्रता, आकार-प्रकार, उनका अपना-अपना स्वभाव, स्पर्श, गन्ध, यश-अपयश आदि दिखलाई देता है, वह सब इसी नाम कर्मोदय की महिमा है न कि किसी ईश्वर विशेष की। परकर्तृत्व के भ्रम को तोड़ने में यही कर्म विशेष कार्य करता है। चौरासी लाख योनियों में जीव की अनन्त आकृतियाँ हैं। इन सबके निर्माण का कार्य यह नामकर्म ही करता है। इसी से शरीर और उसके अंगोपांग आदि की रचना होती है। जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार इस नामकर्म के उदय से हमारा शरीर और उसके अंगोपांगों का निर्माण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी होता है। सुन्दर, विकृत, छोटा, बड़ा शरीर आदि सब शुभाशुभ नामकर्म के उदय से बनते हैं। इस प्रकार विश्व की विचित्रता में नामकर्म रूपी चितेरे की कला अभिव्यक्त होती है न कि ईश्वरादि किसी अन्य विशेष की। इसीलिए तो जिनसेनाचार्य ने कहा है-

विधिः स्रष्टा विधाता च दैवकर्म पुराकृतम्।
ईश्वरश्चेति पर्याया विज्ञेयाः कर्मवेधसः।।

— महापुराण ३७/४

नामकर्म का स्वरूप

नामकर्म के विशेष विवेचन के पूर्व सर्वप्रथम उसका स्वरूप जान लेना भी आवश्यक है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है-

कम्मं णामसमक्खं सभावमध अप्पणो सहावेण।
अभिभूय णरं तिरियं णेरियं वा सुरं कुणदि।।

— प्रवचनसार ११७

अर्थात् नाम संज्ञा वाला कर्म जीव के शुद्ध स्वभाव को आच्छादित करके उसे मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी अथवा देवरूप करता है। धवला टीका (६/१, ६ तथा १०/१३/३) में कहा है जो नाना प्रकार की रचना निर्वृत्त करता है वह नामकर्म है। शरीर, संस्थान, संहनन, वर्ण, गन्ध आदि कार्यों के करने वाले जो पुद्गल जीव में निविष्ट हैं वे "नाम" इस संज्ञावाले होते हैं[२]। आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थिसिद्धि (६/१, ६ तथा १०/१३/३) में बतलाया है कि आत्मा का नारक आदि रूप नामकरण करना नामकर्म की प्रकृति (स्वभाव) है, जो आत्मा को नमाता है या जिसके द्वारा आत्मा नमता है, वह "नामकर्म" है।

इस नामकर्म की बयालीस प्रकृतियाँ तथा तैरानवें उत्तर प्रकृतियाँ है। इनका विश्लेषण आगे किया जाएगा। इनमें शरीर नामकर्म के अन्तर्गत शरीर के पाँच भेदों का निरूपण विशेष दृष्टव्य है। वस्तुतः औदारिक या वैक्रियिक शरीर योग्य कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करना, यही जन्म का प्रारम्भ है। कर्मों के ही उदय से वह जीव बिना चाहे हुए मरण करके दूसरी पर्याय में उत्पन्न होता है। वहाँ वर्गणाओं का ग्रहण नामकर्म के उदय से स्वयमेव होता रहता है। ये वर्गणाएँ स्वयं ही पर्याप्ति, निर्माण, अंगोपांग आदि के उदय से औदारिक या वैक्रियिक शरीर के आकार परिणमन कर जाती है। जैसे - जीव के अशुद्ध भावों का निमित्त पाकर लोक में सर्वत्र फैली हुई कार्मण वर्गणाएँ स्वयं ही अपने-अपने स्वभावानुसार ज्ञानावरणादि पूर्वोक्त आठ कर्मरूप परिणमन कर जाती है। इसी तरह नाम कर्म तथा गोत्रकर्म के उदय से भिन्न-भिन्न जाति की वर्गणाएँ स्वयं अनेक प्रकार के देव, नारकी, मनुष्य, तिर्यंचों के शरीर के आकार रूप परिणमन कर जाती हैं। इस तरह यह शरीर आत्मा का कोई कारण या कार्य नहीं है, कर्मों का ही कार्य है।

कार्मण शरीर का निर्माण सूक्ष्म बीज रूप अदृश्य वर्गणायें ही करती हैं। जैसे महान् वटवृक्ष का अत्यन्त छोटा बीज या महासागर का एक बूँद जल, वृक्ष अथवा सागर की सारी प्रकृति, गुण, ढाँचा आदि अपने भीतर आत्मसात् किए हुए रहता है, वैसे ही ये बीज कार्मण वर्गणाएँ भी अलग-अलग उन सभी विभिन्न रासायनिक संगठनों की प्रतिनिधि स्वरूप उनके विभिन्न गुण-प्रभाव से युक्त रहती हैं। इन्हीं बीज रूप कार्मण वर्गणाओं द्वारा परिचालित या प्रेरित हमारे मन, वचन और शरीर (इन्द्रियों) द्वारा होने वाले सभी कार्य या कर्म होते हैं। इस तरह हमारे सभी कर्मों का उद्गम स्थान-ये आंतरिक रासायनिक संगठन रूप वर्गणायें (मॉलीक्यूलस) ही हैं। अब यहाँ "नामकर्म" की बयालीस प्रकृतियों का स्वरूप विवेचन प्रस्तुत है।

नामकर्म और उसकी प्रकृतियाँ

नामकर्म की बयालीस प्रकृतियाँ हैं। इन्हें पिण्ड प्रकृतियाँ भी कहते हैं। ये इस प्रकार हैं - गति, जाति, शरीर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, अंगोपांग, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, विहायोगति, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, विहायोगति, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, साधारण, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, दुःस्वर, सुस्वर, अयशस्कीर्ति, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थकरत्व[३] । ये ही नामकर्म के भेद (प्रकार) कहे जाते हैं। इनका विवेचन प्रस्तुत है।

१. गति नामकर्म

गति, भव, संसार – ये पर्यायवाची शब्द हैं[४] । जिसके उदय से आत्मा भवान्तर को गमन करता है वह गति नामकर्म है। यदि यह कर्म न हो तो जीव गति रहित हो जाएगा। इसी गति नामकर्म के उदय से जीव में रहने से आयु कर्म की स्थिति रहती है और शरीर आदि कर्म उदय को प्राप्त होते है। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति - ये इसके चार भेद हैं। जिन कर्मस्कन्धों के उदय से आत्मा को नरक, तिर्यंच आदि भव प्राप्त होते हैं, उनसे युक्त जीवों को उन-उन गतियों में नरक गति, तिर्यंचगति आदि संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं।

२. जाति नामकर्म

जिन कर्मस्कन्धों से सदृशता प्राप्त होती है, जीवों के उस सदृश परिणाम को जाति कहते हैं[५] । अर्थात् उन गतियों में अव्यभिचारी सादृश से एकीभूत स्वभाव (एकरूपता) का नाम जाति है। यदि जाति नामकर्म न हो तो खटमल खटमल के समान, बिच्छू बिच्छू के समान इसी प्रकार अन्य सभी प्राणी सामान्यतः एक जैसे नहीं हो सकते। जाति के पाँच भेद हैं – एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इनके लक्षण इस प्रकार हैं- जिसके उदय से जीव एकेन्द्रिय जाति में पैदा हो अर्थात् एकेन्द्रिय शरीर धारण करे उसे एकेन्द्रिय जाति नामकर्म कहते है। इसी प्रकार द्वीन्द्रियादि का स्वरूप बनता है।

३. शरीर नामकर्म

जिसके उदय से आत्मा के लिए शरीर की रचना होती है वह शरीर नामकर्म है। यह कर्म आत्मा को आधार या आश्रय प्रदान करता है। क्योंकि कहा है कि **"यदि शरीर नामकर्म न स्यादात्मा विमुक्तः स्यात्-[६]"** अर्थात् यदि यह कर्म न हो तो आत्मा मुक्त हो जाय। इसके भी पाँच भेद हैं – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस् और कार्मण शरीर। जिसके उदय से जीव के द्वारा, ग्रहण किये गये आहार वर्गणा रूप पुद्गलस्कन्ध रस, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा और शुक्र स्वभाव से परिणत होकर औदारिक शरीर रूप हो जाते हैं उसका नाम औदारिक शरीर है। इसी प्रकार अन्य भेदों का स्वरूप बनता है[७]।

४. बन्धन नामकर्म

शरीर नामकर्म के उदय से जो आहार-वर्गणारूप पुद्गल-स्कन्ध, ग्रहण किये उन पुद्गलस्कन्धों का परस्पर संश्लेष सम्बन्ध जिस कर्म के उदय से हो उसे बंधन-नामकर्म कहते हैं। यदि यह कर्म न हो तो यह शरीर बालू द्वारा बनाये हुए पुरुष के शरीर की तरह हो जाए। इसके भी औदारिक, वैक्रियिक शरीर बन्धन आदि पाँच भेद हैं[८]।

५. संघात नामकर्म

जिसके उदय से औदारिक शरीर छिद्ररहित परस्पर प्रदेशों का एक क्षेत्रावगाह रूप एकत्व प्राप्त हो उसे संघात नामकर्म कहते हैं। इसके भी औदारिक-शरीर- संघात आदि पाँच भेद हैं।

६. संस्थान नामकर्म

जिसके उदय से औदारिक आदि शरीर के आकार की रचना हो वह संस्थान नामकर्म है। इसके छह भेद हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादिक, वामन, कुब्जक और हुंडक (विध आकार) संस्थान।

७. संहनन नामकर्म

जिसके उदय से हड्डियों की संधि में बंधन विशेष होता है वह संहनन नामकर्म है। इसके छह भेद हैं- १. वज्रऋषभनाराच, २. ऋषभनाराच, ३.नाराच, ४.अर्द्धनाराच, ५. कीलक और ६. असंप्राप्तासृपटिका / सेवार्त संहनन[१०]।

८. अंगोपांग नामकर्म

जिस कर्म के उदय से अंग और उपांगों की स्पष्ट रचना हो वह अंगोपांग नामकर्म है। इसके तीन भेद हैं - औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर अंगोपांग[११]।

९. वर्ण नामकर्म

जिस कर्म के उदय से शरीर में कृष्ण, नील, रक्त, हरित और शुक्ल-ये वर्ण (रंग या रूप) उत्पन्न हों वह वर्ण नामकर्म है। इन ५ वर्णों से ही इसके पाँच भेद बनते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर के पुद्‌गलों में कृष्णता प्राप्त होती है वह कृष्णवर्ण नामकर्म है। इसी तरह अन्य हैं[१२]।

१०. रस नामकर्म

इसके उदय से शरीर में जाति के अनुसार जैसे नीबू, नीम आदि में प्रतिनियत तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस उत्पन्न होते हैं। यही इस नामकर्म के पाँच भेद है।

११. गन्ध नामकर्म

जिसके उदय से जीव शरीर में उसकी जाति के अनुसार गन्ध उत्पन्न हो वह गन्ध नामकर्म है। इसके दो भेद हैं – सुगन्ध और दुर्गन्ध।

१२. स्पर्श नामकर्म

जिस कर्मस्कन्ध के उदय से जीव के शरीर में उसकी जाति के अनुरूप स्पर्श उत्पन्न हो। जैसे सभी उत्पल, कमल आदि में प्रतिनियत स्पर्श देखा जाता है। इसके आठ भेद हैं - कर्कश, मृदु, गुरू, लघु, स्निग्ध, रुक्ष, शीत और ऊष्ण।

१३. आनुपूर्वी नामकर्म

जिस कर्म के उदय से विग्रहगति में पूर्वशरीर (मरण से पहले के शरीर का) आकार रहे उसका नाम आनुपूर्वी है। इस कर्म का अभाव नहीं कहा जा सकता क्योंकि विग्रहगति में उस अवस्था के लिए निश्चित आकार उपलब्ध होता और उत्तम शरीर, ग्रहण करने के प्रति गमन की उपलब्धि भी पाई जाती है। इसके चार भेद हैं- नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगति, प्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी।

१४. अगुरू लघु नामकर्म

जिसके उदय से यह जीव अनन्तानन्त पुद्‌गलों से पूर्ण होकर भी लोहपिण्ड की तरह गुरू (भारी) होकर न तो नीचे गिरे और रूई के समान हल्का होकर ऊपर भी न जाय उसे अगुरूलघु नामकर्म कहते हैं।

१५. उपघात नामकर्म

"उपेत्य घातः उपघातः" अर्थात् पास आकर घात होना उपघात है। जिस कर्म के उदय से अपने द्वारा ही किये गये गलपाश आदि बंधन और पर्वत से गिरना आदि निमित्तों से अपना घात हो जाता है वह उपघात नामकर्म है। अथवा जो कर्म जीव को अपने ही पीड़ा में कारणभूत बड़े-बड़े सींग, उदर आदि अवयवों को रचता है वह उपघात है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. परघात नामकर्म

जिसके उदय से दूसरे का घात करने वाले अंगोपांग हो उसे परघात नामकर्म कहते हैं। जैसे बिच्छू की पूंछ आदि।

१७. उच्छ्वास

जिसके उदय से जीव में श्वासोच्छ्वास हो।

१८. आतप

जिसके उदय से जीव के शरीर में आतप अर्थात् अन्य को संतप्त करने वाला प्रकाश उत्पन्न होता है वह आतप है। जैसे सूर्य आदि में होने वाले पृथ्वीकायिक आदि में ऐसा चमत्कारी प्रकाश दिखता है।

१६. उद्योत

जिसके उदय से जीव के शरीर में उद्योत (शीतलता देने वाला प्रकाश) उत्पन्न होता है वह उद्योत नामकर्म है। जैसे चन्द्रमा, नक्षत्र, विमानों और जुगनू आदि जीवों के शरीरों में उद्योत होता है।

२०. विहायोगति

जिसके उदय से आकाश में गमन हो उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके प्रशस्त और अप्रशस्त – ये दो भेद हैं।

२१. त्रस नामकर्म

जिसके उदय से द्वीन्द्रियादिक जीवों में उत्पन्न हो, उसे त्रस नामकर्म कहते है।

२२. स्थावर

जिसके उदय से एकेन्द्रिय जीवों (स्थावर कायों) में उत्पन्न हो वह स्थावर नामकर्म है।

२३. बादर (स्थूल)

जिसके उदय से दूसरे को रोकने वाला तथा दूसरे से रुकनेवाला स्थूल शरीर प्राप्त हो उसे बादर शरीर नामकर्म कहते हैं।

२४. सूक्ष्म नामकर्म

जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो, जो न किसी को रोक सकता हो और न किसी से रोका जा सकता हो, उसे सूक्ष्म शरीर नामकर्म कहते हैं।

२५. पर्याप्ति

जिसके उदय से आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन – इन छह पर्याप्तियों की रचना होती है वह पर्याप्ति नामकर्म है। ये ही इसके छह भेद हैं।

२६. अपर्याप्ति

उपर्युक्त पर्याप्तियों की पूर्णता का न होना अपर्याप्ति है।

२७. प्रत्येक शरीर नामकर्म

जिसके उदय से एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नामकर्म कहते है।

२८. साधारण शरीर नामकर्म

जिसके उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हो, उसे साधारण-शरीर नामकर्म कहते है।

२६. स्थिर नामकर्म

जिस कर्म के उदय से शरीर की धातुएँ (रस, रुधिर, मांस, मेद, मज्जा, हड्डी और शुक्र) – इन सात धातुओं की स्थिरता होती है वह स्थिर नामकर्म है।

३०. अस्थिर

जिसके उदय से इन धातुओं में उत्तरोत्तर अस्थिर रूप परिणमन होता जाता है वह अस्थिर नामकर्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. शुभ नामकर्म

जिसके उदय से शरीर के अंगों और उपांगों में रमणीयता (सुन्दरता) आती है वह शुभनामकर्म है।

३२. अशुभ नामकर्म

जिसके उदय से शरीर के अवयव अमनोज्ञ हों उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं।

३३-३४. सुभग, दुर्भग नामकर्म

जिसके उदय से स्त्री-पुरुष या अन्य जीवों में परस्पर प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभग नामकर्म तथा रूपादि गुणों से युक्त होते हुए भी लोगों को जिसके उदय से अप्रीतिकर प्रतीत होता है उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

३५-३६. आदेय, अनादेय नामकर्म

जिसके उदय से आदेय-प्रभा सहित शरीर हो वह आदेय तथा निष्प्रभ शरीर हो वह अनादेय नामकर्म है।

३७-३८. सुस्वर, दुस्वर नामकर्म

जिसके उदय से शोभन (मधुर) स्वर हो वह सुस्वर तथा अमनोज्ञ स्वर होता है वह दुःस्वर नामकर्म है।

३९-४०. यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति नामकर्म

जिसके उदय से जीव की प्रशंसा हो वह यशः कीर्ति तथा निन्दा हो वह अयशः कीर्ति नामकर्म है।

४१. निमान (निर्माण) नामकर्म

निश्चित मान (माप) को निमान कहते हैं। इसके दो भेद हैं-प्रमाण और स्थान। जिस कर्म के उदय से अंगोपांगों की रचना यथाप्रमाण और यथा स्थान हो उसे निमान या निर्माण नामकर्म कहते हैं।

४२. तीर्थंकर नामकर्म

जिस कर्म के उदय से तीन लोकों में पूज्य परम आर्हन्त्य पद प्राप्त होता है वह परमोत्कृष्ट तीर्थंकर नामकर्म है।

इस प्रकार ये नामकर्म की ४२ पिण्ड प्रकृतियाँ हैं। इन्हीं में एक-एक की अपेक्षा इनके ९३ भेद हैं। इनमें अन्तिम तीर्थंकर नामकर्म का आस्रव दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का विधान है। यद्यपि ये एक साथ सभी सोलह भावनाएँ आवश्यक नहीं है किन्तु एक दर्शन विशुद्धि अति आवश्यक होती है। दो से लेकर सोलह कारणों के विकास से भी तीर्थंकर नामकर्म बंध होता है।

इस प्रकार नामकर्म की बयालीस प्रकृतियों तथा उत्तर भेद रूप तेरानवें प्रकृतियों के स्वरूप विवेचन से स्पष्ट है कि यह नामकर्म कितना व्यापक, सूक्ष्म और अति संवेदनशील कर्म है। आधुनिक विज्ञान में जहाँ नित-नवीन प्रयोग हो रहे हैं, वहीं इस नामकर्म की महत्ता और

---

१. जैन साहित्य का इतिहास प्रथम भाग पृ. ३८
२.
३. मूलाचार १२/१९३-१९६ तत्वार्थसूत्र ८/११
४. गतिर्भवः संसारः मूलाचार टीका १२/९३
५. जातिर्जीवानां सदृशः परिणाम – वही
६-७-८. मूलाचारवृत्ति १२/१९३
९. गोम्मटसार कर्मकाण्ड हिन्दी टीका (आर्यिका आदिमती जी) पृ. २६
१०-१२. मूलाचारवृत्ति १२/१९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी बढ़ जाती है। नामकर्मोदय से प्रत्येक जीव की अपनी-अपनी विशेष पहचान वाला स्पर्श, गन्ध, स्वर आदि होते हैं। आज वैज्ञानिक क्षेत्र में इनकी संवेदनाओं का विशेष शोध-खोजपूर्ण अध्ययन हो रहा है और हमारे सामाजिक जीवन में उपयोग करके उनसे लाभ भी लिया जा रहा है। जैसे अपराध और अपराधियों की खोज करने के लिए सूंघकर अपराधी का पता लगाने वाले विशेष कुत्तों को पुलिस प्रशिक्षित करके इनके द्वारा अपराध संबंधी अनेक गुत्थियों को सुलझाने में सहज ही सफलता प्राप्त कर लेती है। यह गन्ध नामकर्म की ही महत्ता है। "स्पर्श" के द्वारा भी अनेक सम्वेदनाओं का ज्ञान सहज हो जाता है। इसी प्रकार नामकर्म की इन प्रकृतियों का वैज्ञानिक अध्ययन रोमांचिक उपलब्धि से युक्त होकर विभिन्न क्षेत्रों में बहुआयामी रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

✤ ✤ ✤

❑ **जैनदर्शन, साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति के संवर्द्धन, संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार में सदैव तत्पर डॉ. श्री फूलचन्दजी जैन 'प्रेमी' का जन्म १२ जुलाई १९४८ को दलपतपुर ग्राम (सागर-म.प्र.) में हुआ। प्रारंभिक शिक्षोपरांत आपने जैनधर्म विशारद, सिद्धान्त शास्त्री, साहित्याचार्य, एम.ए. एवं शास्त्राचार्य की परीक्षाएं दी। "मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन" विषय पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा पीएच.डी. की उपाधि से विभूषित डॉ. प्रेमी जी को कई पुरस्कारों से आज दिन तक सम्मानित किया गया है।**

जैन जगत् के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. प्रेमी ने अनेक कृतियों का लेखन-संपादन करके जैन साहित्य में श्री वृद्धि की है। अनेक शोधपरक निबंध जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ! राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में जैनदर्शन विषयक व्याख्यान ! 'जैन रत्न' की उपाधि से विभूषित डॉ. प्रेमी जी सरलमना एवं सहृदयी सज्जन है।

मृग की नाभि में कस्तूरी की पिण्डिका रहती है। उसको अपने पिंड से सुगन्धी आती है, किन्तु वह उसको ढूँढता बाहर फिरता है। उसके लिए वह पूरे जंगल को छान मारता है, सूंघता रहता है कि यह सुगन्धी कहाँ से आती है? लेकिन प्राप्त नहीं होती। क्यों? उसको उसकी उपस्थिति का ज्ञान नहीं है। सुगन्धी तो उसके अपने शरीर में ही है। लेकिन वह उसे बाहर ढूँढता-ढूँढता ही जन्म गवां देता है, बंधुओ! हमारी भी यही हालत है, हम ढूँढते रहते हैं, सुख यहाँ मिलेगा, वहाँ मिलेगा, वहाँ भागते है, वहाँ भागते है, कितना उपक्रम करते हैं – इच्छित सुख की प्राप्ति के लिए। लेकिन इच्छित सुख मिलता नहीं। क्योंकि हम सुख का आधार वस्तु को मानकर चलते है। ज्ञानी पुरुष, मनीषी साधक, सुख का आधार वस्तु को नहीं आत्मा को मानते है। अनंत सुखात्मक आत्मा ही है।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगमों की मूल भाषा : अर्धमागधी या शौरसेनी?

❑ प्रो. डॉ. सागरमल जैन
पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

जैन आगमों की मूलभाषा अर्धमागधी या शौरसेनी इस प्रश्न को लेकर कतिपय विद्वानों के बीच में मतभेद है। प्रो. श्री सागरमलजी जैन स्वयं शोध केंद्र के निदेशक रहे है तथा आगमों का एवं प्राकृत भाषा का उन्हें विशद ज्ञान है। इस आलेख के माध्यम से उनका यही स्पष्टीकरण है कि मूल आगमों की भाषा अर्धमागधी ही है न कि शौरसेनी। — सम्पादक

वर्तमान में प्राकृत विद्या नामक शोध पत्रिका के माध्यम से जैन विद्या के विद्वानों का एक वर्ग आग्रहपूर्वक यह प्रतिपादन कर रहा है कि **"जैन आगमों की मूल भाषा शौरसेनी प्राकृत थी, जिसे कालान्तर में परिवर्तित करके अर्धमागधी कर दिया गया"**। इस वर्ग का यह भी दावा है कि शौरसेनी प्राकृत ही प्राचीनतम प्राकृत है और अन्य सभी प्राकृतें यथा – मागधी, पैशाची, महाराष्ट्र आदि इसीसे विकसित हुई हैं, अतः वे सभी शौरसेनी प्राकृत से परवर्ती भी हैं। इसी क्रम में दिगम्बर परम्परा में आगमों के रूप में मान्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में निहित अर्धगामधी और महाराष्ट्री शब्द रूपों को परिवर्तित करके उन्हें शौरसेनी में रूपान्तरित करने का एक सुनियोजित प्रयत्न भी किया जा रहा है। इस समस्त प्रचार-प्रसार के पीछे मूलभूत उद्देश्य यह है कि श्वेताम्बर-मान्य आगमों को दिगम्बर परम्परा में मान्य आगमतुल्य ग्रन्थों से अर्वाचीन और अपने शौरसेनी में निबद्ध आगमतुल्य ग्रन्थों को प्राचीन सिद्ध किया जाये। इस पारम्परिक विवाद का एक परिणाम यह भी हो रहा है कि श्वेताम्बर – दिगम्बर परम्परा के बीच कटुता की खाई गहरी होती जा रही है और इस सब में एक निष्पक्ष भाषाशास्त्रीय अध्ययन को पीछे छोड़ दिया जा रहा है। प्रस्तुत निबन्ध में मैं इन सभी प्रश्नों पर श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा में आगम रूप में मान्य ग्रन्थों के आलोक में चर्चा करने का प्रयत्न करूँगा।

क्या आगम साहित्य मूलतः शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध था?

यहाँ सर्वप्रथम मैं इस प्रश्न की चर्चा करना चाहूँगा कि क्या जैन आगम साहित्य मूलतः शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध था और उसे बाद में परिवर्तित करके अर्धमागधी रूप दिया गया? जैन विद्या के कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि जैन आगम साहित्य मूलतः शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध हुआ था और उसे बाद में अर्धमागधी में रूपान्तरित किया गया। अपने इस कथन के पक्ष में वे श्वेताम्बर, दिगम्बर किन्हीं भी आगमों का प्रमाण न देकर प्रो. टाटिया के व्याख्यान से कुछ अंश उद्धृत करते हैं। डॉ. सुदीप जैन ने प्राकृत विद्या जनवरी-मार्च '९६ के सम्पादकीय में उनके कथन को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है:-

"हाल ही में श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ में सम्पन्न द्वितीय आचार्य कुन्दकुन्दस्मृति व्याख्यानमाला में विश्वविश्रुत भाषाशास्त्री एवं दार्शनिक-विचारक प्रो. नथमल जी टाटिया ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि "श्रमण - साहित्य का प्राचीन रूप, चाहे वे बौद्धों के त्रिपिटक आदि हों, श्वेताम्बरों के आचारांगसूत्र, दशवैकालिकसूत्र आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हों अथवा दिगम्बरों के षट्खण्डागमसूत्र, समयसार आदि हों, सभी शौरसेनी प्राकृत में ही निबद्ध थे। उन्होंने आगे सप्रमाण स्पष्ट किया कि बौद्धों ने बाद में श्रीलंका में एक बृहत्संगीति में योजनापूर्वक शौरसेनी में निबद्ध बौद्ध साहित्य का मागधीकरण किया और प्राचीन शौरसेनी निबद्ध बौद्ध साहित्य ग्रंथों को अग्निसात् कर दिया। इसी प्रकार श्वेताम्बर जैन साहित्य का भी प्राचीन रूप शौरसेनी प्राकृत में ही था, जिसका रूप क्रमशः अर्धमागधी में बदल गया। यदि हम वर्तमान अर्धमागधी आगम साहित्य को ही मूल श्वेताम्बर आगम साहित्य मानने पर जोर देंगें, तो इस अर्धमागधी भाषा का आज से पन्द्रह सौ वर्ष के पहिले अस्तित्व ही नहीं होने से इस स्थिति में हमें अपने आगम साहित्य को ५०० वर्ष ई. के परवर्ती मानना पड़ेगा। उन्होंने स्पष्ट किया कि आज भी आचारांगसूत्र आदि की प्राचीन प्रतियों में शौरसेनी के शब्दों की प्रचुरता मिलती है, जबकि नये प्रकाशित संस्करणों में उन शब्दों का अर्धमागधीकरण हो गया है। उन्होंने कहा कि पक्ष-व्यामोह के कारण ऐसे परिवर्तनों से हम अपने साहित्य का प्राचीन मूल रूप खो रहे हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि दिगम्बर जैन साहित्य में ही शौरसेनी भाषा के प्राचीन रूप सुरक्षित उपलब्ध हैं।"

- प्राकृत विद्या, जनवरी-मार्च ९६ का सम्पादकीय

निस्संदेह प्रो. टाटिया जैन और बौद्ध दर्शन के वरिष्ठतम विद्वानों में एक हैं तथा उनके कथन का कोई अर्थ और आधार भी होगा। किन्तु ये कथन उनके अपने हैं या उन्हें अपने पक्ष की पुष्टि हेतु तोड़-मोड़ कर प्रस्तुत किया गया है, यह एक विवादास्पद प्रश्न है, क्योंकि एक ओर तुलसी प्रज्ञा के सम्पादक का कहना है कि टाटिया जी ने इसका खण्डन किया है। वे **तुलसी प्रज्ञा** (अप्रैल जून, ९६ खण्ड २२, अंक ४) **में लिखते हैं कि "डॉ. नथमल टाटिया ने दिल्ली की एक पत्रिका में छपे और उनके नाम से प्रचारित इस कथन का खण्डन किया है कि महावीर-वाणी शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध हुई। उन्होंने स्पष्ट मत प्रकट किया कि आचारांग, उत्तराध्ययन, सूत्रकृतांग और दशवैकालिक में अर्धमागधी भाषा का उत्कृष्ट रूप है"।**

दूसरी ओर प्राकृत विद्या के सम्पादक डॉ. सुदीप जी का कथन है कि उनके व्याख्यान की टेप हमारे पास उपलब्ध है और हमने उन्हें अविकल रूप से यथावत् दिया है। मात्र इतना ही नहीं, डॉ. सुदीप जी का तो यह भी कथन है कि तुलसीप्रज्ञा के खण्डन के बाद भी वे टाटिया जी से मिले हैं और टाटिया जी ने उन्हें कहा है कि वे अपने कथन पर आज भी दृढ़ हैं। टाटिया जी के इस कथन को उन्होंने प्राकृत विद्या जुलाई - सितम्बर '९६ के अंक में निम्नलिखित शब्दों मे प्रस्तुत किया है:-

"मैं संस्कृत विद्यापीठ की व्याख्यानमाला में प्रस्तुत तथ्यों पर पूर्णतः दृढ़ हूँ तथा यह मेरी तथ्याधारित स्पष्ट अवधारणा है जिससे विचलित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है।" (पृ.९)

यह समस्त विवाद दो पत्रिकाओं के माध्यम से दोनों सम्पादकों के मध्य है, किन्तु इस विवाद में सत्यता क्या है और डॉ. टाटिया का मूल मन्तव्य क्या है? इसका निर्णय तो तभी सम्भव है जब डॉ. टाटियाजी स्वयं इस सम्बन्ध में लिखित वक्तव्य दें, किन्तु वे इस संबंध में मौन हैं। मैंने स्वयं उन्हें पत्र लिखा था, किन्तु उनका कोई प्रत्युत्तर नहीं आया। मैं डॉ. टाटियाजी की उलझन समझता हूँ। एक ओर कुन्दकुन्द भारती ने उन्हें उपकृत किया है, तो दूसरी ओर वे जैन विश्वभारती की सेवा में रहे हैं, जब जिस मंच से बोले होंगे भावावेश में उनके अनुकूल वक्तव्य दे दिये होंगे और अब स्पष्ट खण्डन भी कैसे करें? फिर भी मेरी अन्तरात्मा यह स्वीकार नहीं करती हैं कि डॉ. टाटियाजी जैसा गम्भीर विद्वान् बिना प्रमाण के ऐसे वक्तव्य दे दे। कहीं न कहीं शब्दों की कोई जोड़ – तोड़ अवश्य हो रही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। डॉ. सुदीप जी प्राकृत विद्या, जुलाई – सितम्बर ९६ में डॉ. टाटिया जी के उक्त व्याख्यानों के विचार बिन्दुओं को अविकल रूप से प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि "हरिभद्र का सारा योगशतक धवला से है।"

इसका तात्पर्य है कि हरिभद्र ने अपने योगशतक को धवला के आधार पर बनाया है। क्या टाटिया जी जैसे विद्वान् को इतना भी इतिहास बोध नहीं है कि योगशतक के कर्ता हरिभद्र सूरी और धवला के कर्ता में कौन पहले हुआ? यह तो ऐतिहासिक सत्य है कि हरिभद्रसूरि का योगशतक (आठवीं शती) धवला (१०वीं शती) से पूर्ववर्ती है। मुझे विश्वास भी नहीं होता है, कि टाटिया जी जैसा विद्वान् इस ऐतिहासिक सत्य को अनदेखा कर दे। कहीं न कहीं उनके नाम पर कोई भ्रम खड़ा किया जा रहा है। डॉ. टाटिया जी को अपनी चुप्पी तोड़कर भ्रम का निराकरण करना चाहिए। वस्तुतः यदि कोई भी चर्चा प्रमाणों के आधार पर नहीं होती तो उसे मान्य नहीं किया जा सकता, फिर चाहे उसे कितने ही बड़े विद्वान् ने क्यों नहीं कहा हो। यदि व्यक्ति का ही महत्व मान्य है, तो अभी संयोग से टाटिया जी से भी वरिष्ठ अन्तर-राष्ट्रीय ख्याति के जैन-बौद्ध विद्याओं के महामनीषी और स्वयं टाटिया जी के गुरु पद्म-विभूषण पं. दलसुख भाई हमारे बीच हैं, फिर तो उनके कथन को अधिक प्रमाणिक मानकर प्राकृत विद्या के सम्पादक को स्वीकार करना होगा। और यह सब प्रास्ताविक बातें थी, जिससे यह समझा जा सके कि समस्या क्या है, कैसे उत्पन्न हुई? हमें तो व्यक्तियों के कथनों या कर्तव्यों पर न जाकर तथ्यों के प्रकाश में इसकी समीक्षा करनी है कि आगमों की मूलभाषा क्या थी और अर्धमागधी और शौरसेनी में कौन प्राचीन है?

आगमों की मूल भाषा अर्धमागधी

यह एक सुनिश्चित सत्य है कि महावीर का जन्म-क्षेत्र और कार्य-क्षेत्र दोनों ही मुख्य रूप से मगध और उसके समीपवर्ती क्षेत्र में ही था। अतः यह स्वाभाविक है कि उन्होंने जिस भाषा को बोला होगा वह समीपवर्ती क्षेत्रीय बोलियों से प्रभावित मागधी अर्थात् अर्धमागधी रही होगी। व्यक्ति की भाषा कभी भी अपनी मातृभाषा से अप्रभावित नहीं होती। पुनः श्वेताम्बर-परम्परा में मान्य जो भी आगम साहित्य आज उपलब्ध है, उनमें अनेक ऐसे सन्दर्भ हैं, जिनमें स्पष्ट रूप से यह उल्लेख हैं कि महावीर ने अपने उपदेश अर्धमागधी भाषा में दिये थे।

इस सम्बन्ध में अर्धमागधी आगम साहित्य से कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, यथा –

१. **भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ।**
- समवायांग, समवाय ३४, सूत्र २२

२. **तए णं समणे भगवं महावीरे कुणिअस्स भंभसारपुतस्स अद्धमागहीए भासाए भासत्ति अरिहाधम्मं परिकहइ।**
- औपपातिक-सूत्र

३. **गोयमा ! देवाणं अद्धमागहीए भासाए भासंति सवियण अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी विसज्झति।**
- भगवई, (लाडनूं) शतक ५, उद्देशक ४, सूत्र ९३

४. **तए णं समणे भगवं महावीरे उसभदत्त माहणस्स देवाणंदा माहणीए तीसे य महति महलियाए इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइपरिसाए....सव्व भासाणुगामणिए सरस्सईए जोयणणीहारिणासरेणं अद्धमगहाए भासाए भासइ धम्मं परिकहइ।**
— भगवई (लाडनूं) शतक ९, उद्देशक ३३, सूत्र १४९

५. **तए णं समणे भगवं महावीरे जामालिस्स खत्तियकुमारस्स.... अद्धमागहाए भासाए भासइ धम्मं परिकहइ।**
— भगवई (लाडनूं) शतक ९ उद्देशक ३३ सूत्र १६३।

६. **सव्वसत्तसमदरिसीहिं अद्धमागहाए भासाए सुत्तं उवदिट्ठं।**
- आचारांग चूर्णि, जिनदासगणि पृ.२५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्र इतना ही नहीं, दिगम्बर परम्परा में मान्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ बोधपाहुड, जो स्वयं शौरसेनी में निबद्ध है, उसकी टीका में दिगम्बर आचार्य श्रुतसागर जी लिखते हैं कि भगवान् महावीर ने अर्धमागधी भाषा में अपना उपदेश दिया। प्रमाण के लिए उस टीका के अनुवाद का वह अंश प्रस्तुत है – **"अर्धमगध देश भाषात्मक और अर्ध सर्वभाषात्मक भगवान् की ध्वनि खिरती है। शंका – अर्धमागधी भाषा देवकृत अतिशय कैसे हो सकती है, क्योंकि भगवान् की भाषा ही अर्धमागधी है? उत्तर – मगध देव के सानिध्य में होने से।"** आचार्य प्रभाचन्द्र ने नन्दीश्वर भक्ति के अर्थ में लिखा है, **"एक योजन तक भगवान् की वाणी स्वयमेव सुनाई देती है। उसके आगे संख्यात योजनों तक उस दिव्य-ध्वनि का विस्तार मगध जाति के देव करते हैं। अतः अर्धमागधी भाषा देवकृत है।**

(षट्प्राभृतम् चतुर्थ बोधपाहुड टीका पृ. १७६/२१)

मात्र यही नहीं, वर्तमान में भी दिगम्बर-परम्परा के महान् संत एवं आचार्य विद्यासागर जी के प्रमुख शिष्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी अपनी पुस्तक **जैन धर्म दर्शन** पृष्ठ ४० में लिखते हैं कि **"उन भगवान् महावीर का उपदेश सर्वग्राह्य 'अर्धमागधी' भाषा में हुआ।"**

जब श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराएँ यह मानकर चल रही हैं कि भगवान् का उपदेश अर्धमागधी में हुआ था और इसी भाषा में उनके उपदेशों के आधार पर आगमों का प्रणयन हुआ तो फिर शौरसेनी के नाम से नया विवाद खड़ा करके इस खाई को चौड़ा क्यों किया जा रहा है? यह तो आगमिक प्रमाणों की चर्चा हुई। व्यावहारिक एवं ऐतिहासिक तथ्य भी इसी की पुष्टि करते हैं –

१. यदि महावीर ने अपने उपदेश अर्धमागधी में दिये तो यह स्वाभाविक है कि गणधरों ने उसी भाषा में आगमों का प्रणयन किया होगा। अतः सिद्ध है कि आगमों की मूल भाषा क्षेत्रीय बोलियों से प्रभावित 'मागधी' अर्थात् 'अर्धमागधी' रही है, यह मानना होगा।

२. इसके विपरीत शौरसेनी आगम तुल्य मान्य ग्रन्थों में किसी एक भी ग्रन्थ में एक भी सन्दर्भ ऐसा नहीं है, जिससे यह प्रतिध्वनित भी होता हो कि आगमों की मूल भाषा शौरसेनी प्राकृत थी। उनमें मात्र यह उल्लेख है कि तीर्थंकरों की जो वाणी खिरती है, वह सर्वभाषारूप परिणत होती है। उसका तात्पर्य मात्र इतना ही है कि उनकी वाणी जन साधारण को आसानी से समझ में आती थी। वह लोक-वाणी थी। उसमें मगध के निकटवर्ती क्षेत्रों की क्षेत्रीय बोलियों के शब्द रूप भी होते थे और यही कारण था कि उसे मागधी न कहकर **अर्धमागधी** कहा गया था।

३. जो ग्रन्थ जिस क्षेत्र में रचित या सम्पादित होता है, उसका वहाँ की बोली से प्रभावित होना स्वाभाविक है। प्राचीन स्तर के जैन आगम यथा – आचारांग, सूत्रकृतांग, इसिभासियाई (ऋषिभाषित), उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि मगध और उसके समीपवर्ती क्षेत्र में रचित हैं। उनमें इसी क्षेत्र के नगरों आदि की सूचनाएँ हैं। मूल आगमों में एक भी ऐसी सूचना नहीं हैं कि महावीर ने बिहार, बंगाल और पूर्वी उत्तर प्रदेश से आगे विहार किया हो। अतः उनकी भाषा अर्धमागधी रही होगी।

४. पुनः आगमों की प्रथम वाचना पाटलीपुत्र में और दूसरी वाचना खण्डगिरी (उड़ीसा) में हुई। ये दोनों क्षेत्र मथुरा से पर्याप्त दूरी पर स्थित हैं। अतः कम से कम प्रथम और द्वितीय वाचना के समय तक अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शती तक उनके शौरसेनी में रूपान्तरित होने का या उससे प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

यह सत्य है कि उसके पश्चात् जब जैन धर्म, एवं विद्या का केन्द्र पाटलीपुत्र से हटकर लगभग ईस्वी पूर्व प्रथम शती में मथुरा बना तो उस पर शौरसेनी का प्रभाव आना प्रारम्भ हुआ हो। यद्यपि मथुरा से प्राप्त दूसरी शती तक के अभिलेखों का शौरसेनी के प्रभाव से मुक्त होना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही सिद्ध करता है कि जैनागमों पर शौरसेनी का प्रभाव दूसरी शती के पश्चात् ही प्रारम्भ हुआ होगा। सम्भवतः फल्गुमित्र (दूसरी शती) के समय या उसके भी पश्चात् स्कंदिल (चतुर्थ शती) की माथुरी वाचना के समय उन पर शौरसेनी प्रभाव पड़ चुका था। यही कारण है कि यापनीय परम्परा में मान्य आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, निशीथ, कल्प, आदि जो आगम रहे हैं, वे शौरसेनी से प्रभावित रहे हैं। यदि डॉ. टाटिया ने यह कहा है कि आचारांग आदि श्वेताम्बर आगमों का शौरसेनी प्रभावित संस्करण भी था, जो मथुरा क्षेत्र में विकसित यापनीय परम्परा को मान्य था, तो उनका कथन सत्य है, क्योंकि भगवती आराधना की टीका में आचारांग, उत्तराध्ययन, निशीथ आदि के जो संदर्भ दिये गये हैं, वे सभी शौरसेनी से प्रभावित हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि आगमों की रचना शौरसेनी में हुई थी और वे बाद में अर्धमागधी में रूपान्तरित किये गये। ज्ञातव्य है कि यह माथुरी वाचना स्कंदिल के समय महावीर निर्वाण के लगभग आठ सौ वर्ष पश्चात् हुई थी और उसमें जिन आगमों की वाचना हुई, वे सभी उसके पूर्व अस्तित्व में थे। यापनियों ने आगमों के इसी शौरसेनी प्रभावित संस्करण को मान्य किया था, किन्तु दिगम्बरों के लिए तो वे आगम भी मान्य नहीं थे, क्योंकि उनके अनुसार इस माथुरी वाचना के लगभग दो सौ वर्ष पूर्व ही आगम साहित्य तो विलुप्त हो चुका था। श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आचारांग, सूत्रकृतांग, ऋषिभाषित, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, कल्प, व्यवहार, निशीथ आदि तो ई.पू. चौथी शती से दूसरी शती तक की रचनाएँ हैं, जिसे पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। ज्ञातव्य है कि जैन विद्या के केन्द्र के रूप में मथुरा का विकास ईस्वी पूर्व दूसरी शती से ही हुआ है और उसके पश्चात् ही इन आगमों पर शौरसेनी प्रभाव आया होगा।

आगमों के भाषिक स्वरूप में परिवर्तन कब और कैसे?

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि स्कंदिल की इस माथुरी-वाचना के समय ही समानान्तर रूप से एक वाचना वलभी (गुजरात) में नागार्जुन की अध्यक्षता में हुई थी और इसी काल में उन पर महाराष्ट्री प्रभाव भी आया, क्योंकि उस क्षेत्र की प्राकृत महाराष्ट्री प्राकृत थी। इसी महाराष्ट्री प्राकृत से प्रभावित आगम आज तक श्वेताम्बर परम्परा में मान्य हैं। अतः इस तथ्य को भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि आगमों के महाराष्ट्री प्रभावित और शौरसेनी प्रभावित संस्करण जो लगभग ईसा की चतुर्थ – पंचम शती में अस्तित्व में आये, उनका मूल आधार अर्धमागधी आगम ही थे। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि न तो स्कंदिल की माथुरी वाचना में और न नागार्जुन की वलभी वाचना में आगमों की भाषा में सोच – समझपूर्वक कोई परिवर्तन किया गया था। वास्तविकता यह है कि उस युग तक आगम कण्ठस्थ चले आ रहे थे और कोई भी कण्ठस्थ ग्रन्थ स्वाभाविक रूप से कण्ठस्थ करने वाले व्यक्ति की क्षेत्रीय बोली से अर्थात् उच्चारण शैली से अप्रभावित नहीं रह सकता है। यही कारण था कि जो उत्तर भारत का निर्ग्रन्थ संघ मथुरा में एकत्रित हुआ, उसके आगम पाठ उस क्षेत्र की बोली – शौरसेनी से प्रभावित हुए और जो पश्चिमी भारत का निर्ग्रन्थ संघ वलभी में एकत्रित हुआ उसके आगम पाठ उस क्षेत्र की बोली महाराष्ट्री प्राकृत से प्रभावित हुए। पुनः यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इन दोनों वाचनाओं में सम्पादित आगमों का मूल आधार तो अर्धमागधी आगम ही थे। यही कारण है कि शौरसेनी आगम न तो शुद्ध शौरसेनी में और न वलभी वाचना के आगम शुद्ध महाराष्ट्री में हैं। उन दोनों में अर्धमागधी के शब्द रूप तो आज भी उपलब्ध होते ही हैं। शौरसेनी आगमों में तो अर्धमागधी के साथ-साथ महाराष्ट्री प्राकृत के शब्द रूप भी बहुलता से मिलते हैं। यही कारण है कि भाषाविद् उनकी भाषा को जैन-शौरसेनी और जैन-महाराष्ट्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं। दुर्भाग्य तो यह है कि जिन शौरसेनी आगमों की दुहाई दी जा रही है, उनमें से अनेक आगम ५० प्रतिशत से अधिक अर्धमागधी और महाराष्ट्री प्राकृत से प्रभावित हैं। श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्य आगमों में प्राकृत के रूपों का जो वैविध्य है, उसके कारणों की विस्तृत चर्चा मैंने अपने लेख **'जैन आगमों में हुआ भाषिक स्वरूप परिवर्तन : एक विमर्श'** सागर जैन विद्या भारती - भाग १, पृ. २३६ - २४३ में की है। प्रस्तुत प्रसंग में उसका निम्नलिखित अंश दृष्टव्य है –

"जैन आगमिक एवं आगम रूप में मान्य अर्धमागधी तथा शौरसेनी ग्रन्थों के भाषिक स्वरूप में परिवर्तन क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर अनेक रूपों में दिया जा सकता हैं। वस्तुतः इन ग्रन्थों में हुए भाषिक परिवर्तनों का कोई एक ही कारण नहीं है, अपितु अनेक कारण हैं, जिन पर हम क्रमशः विचार करेंगे –

१. भारत में वैदिक परम्परा में वेद वचनों को मंत्र रूप में मानकर उनके स्वर-व्यंजन की उच्चारण योजना को अपरिवर्तनीय बनाये रखने पर ही अधिक बल दिया गया। उनके लिए शब्द और ध्वनि ही महत्त्वपूर्ण रही और अर्थ गौण रहा। यही कारण है कि आज भी अनेक वेदपाठी ब्राह्मण ऐसे हैं, जो वेदमंत्रों की उच्चारण शैली, लय आदि के प्रति तो अत्यन्त सतर्क रहते हैं, किन्तु वे उनके अर्थों को नहीं जानते। यही कारण है कि वेद शब्द रूप में यथावत् बने रहे। इसके विपरीत जैन परम्परा में यह माना गया कि तीर्थंकर अर्थ के उपदेष्टा होते हैं। उनके वचनों को शब्द रूप तो गणधर आदि के द्वारा दिया जाता है। अतः जैनाचार्यों के लिए अर्थ या कथन का तात्पर्य ही प्रमुख था। उन्होंने कभी भी शब्दों पर बल नहीं दिया। शब्दों में चाहे परिवर्तन हो जाए, लेकिन अर्थों में परिवर्तन नहीं होना चाहिए। यही जैन आचार्यों का प्रमुख लक्ष्य रहा। शब्द रूपों की उनकी इस उपेक्षा के फलस्वरूप आगमों के भाषिक स्वरूप में परिवर्तन होते गये। इसी क्रम में ईसा की चतुर्थ शती में अर्धमागधी आगमों के शौरसेनी प्रभावित और महाराष्ट्री प्रभावित संस्करण अस्तित्व में आये।

२. आगम साहित्य में जो भाषिक परिवर्तन हुए उसका दूसरा कारण यह था कि जैन भिक्षु संघ में विभिन्न प्रदेशों के भिक्षुगण सम्मिलित थे। अपनी-अपनी प्रादेशिक बोलियों से प्रभावित होने के कारण उनकी उच्चारण शैली में भी स्वाभाविक भिन्नता रहती थी। फलतः उनके द्वारा कण्ठस्थ आगम साहित्य के भाषिक स्वरूप में भिन्नताएँ आ गयीं।

३. जैन भिक्षु सामान्यतः भ्रमणशील होते हैं। उनकी भ्रमणशीलता के कारण उनकी बोलियों, भाषाओं पर अन्य प्रदेशों की बोलियों का प्रभाव भी पड़ता ही था। फलतः आगमों के भाषिक स्वरूप में परिवर्तन हुआ और उनमें तत्-तत् क्षेत्रीय बोलियों का मिश्रण होता गया। उदाहरण के रूप में जब पूर्व का भिक्षु पश्चिमी प्रदेशों में अधिक विहार करता है, तो उसकी भाषा में पूर्व और पश्चिम दोनों की ही बोलियों का प्रभाव आ जाता है। फलतः उनके द्वारा कण्ठस्थ आगम के भाषिक स्वरूप की एकरूपता समाप्त हो गई।

४. सामान्यतया बुद्ध के वचन बुद्ध के निर्वाण के २००-३०० वर्ष के अन्दर ही अन्दर लिखित रूप में आ गए। अतः उनके भाषिक स्वरूप में उनके रचनाकाल के बाद बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया, तथापि उनकी उच्चारण शैली विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रही है। आज भी लंका, बर्मा, थाईलैण्ड आदि देशों के भिक्षुओं का त्रिपिटक का उच्चारण भिन्न-भिन्न होता है, फिर भी उनके लिखित स्वरूप में बहुत कुछ एकरूपता है। इसके विपरीत जैन आगमिक एवं आगमतुल्य साहित्य एक सुदीर्घकाल तक लिखित रूप में नहीं आ सका। वह गुरु-शिष्य परम्परा से मौखिक ही चलता रहा। फलतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशकालगत उच्चारण-भेद से उनको लिपिबद्ध करते समय उनके भाषिक स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया। मात्र यही नहीं, लिखित प्रतिलिपियों के पाठ भी प्रतिलिपिकारों की असावधानी या क्षेत्रीय बोली से प्रभावित हुए। श्वेताम्बर आगमों की प्रतिलिपियाँ मुख्यतः गुजरात और राजस्थान में हुई, अतः उन पर महाराष्ट्री का प्रभाव आ गया।

५. भारत में कागज का प्रचलन न होने से भोजपत्रों या ताड़पत्रों पर ग्रंथों को लिखवाना और उन्हें सुरक्षित रखना जैन मुनियों की अहिंसा एवं अपरिग्रह की भावना के प्रतिकूल था। लगभग ईस्वी सन् की ५वीं शती तक इस कार्य को पाप-प्रवृत्ति माना जाता था तथा इसके लिए दण्ड की व्यवस्था भी थी। फलतः महावीर के पश्चात् लगभग १००० वर्ष तक जैन साहित्य श्रुत-परम्परा पर ही आधारित रहा। श्रुत-परम्परा पर आधारित होने से आगमों के भाषिक स्वरूप में वैविध्य आ गया।

६. आगमिक एवं आगम-तुल्य साहित्य में आज भाषिक रूपों का जो वैविध्य देखा जाता है, उसका एक कारण लहियों (प्रतिलिपिकारों) की असावधानी भी रही है। प्रतिलिपिकार जिस क्षेत्र का होता था, उस पर उस क्षेत्र की बोली/भाषा का प्रभाव रहता था और असावधानी से अपनी प्रादेशिक बोली के शब्द रूपों को लिख देता था। उदाहरण के रूप में चाहे मूलपाठ में "गच्छति" लिखा हो, लेकिन यदि उस क्षेत्र में प्रचलन में "गच्छइ" का व्यवहार है, तो प्रतिलिपिकार "गच्छइ" रूप ही लिख देगा।

७. जैन आगम एवं आगम-तुल्य ग्रन्थों में आये भाषिक परिवर्तनों का एक कारण यह भी है कि वे विभिन्न कालों एवं प्रदेशों में सम्पादित होते रहे हैं। सम्पादकों ने उनके प्राचीन स्वरूप को स्थिर रखने का प्रयत्न नहीं किया, अपितु उन्हें सम्पादित करते समय अपने युग और क्षेत्र की प्रचलित भाषा और व्याकरण के आधार पर उनमें परिवर्तन भी कर दिया। यही कारण है कि अर्धमागधी में लिखित आगम भी जब मथुरा में संकलित और सम्पादित हुए तो उनका भाषिक स्वरूप अर्धमागधी की अपेक्षा शौरसेनी के निकट हो गया और जब वलभी में लिखे गए तो वह महाराष्ट्री से प्रभावित हो गया। यह अलग बात है कि ऐसा परिवर्तन सम्पूर्ण रूप में न हो सका और उनमें अर्धमागधी के तत्व भी बने रहे। अतः अर्धमागधी और शौरसेनी आगमों में भाषिक स्वरूप का जो वैविध्य है, वह एक वास्तविकता है, जिसे हमें स्वीकार करना होगा।

क्या शौरसेनी आगमों के भाषिक स्वरूप में एकरूपता है?

किन्तु डॉ. सुदीप जैन का दावा कि "आज भी शौरसेनी आगम साहित्य में भाषिक तत्व की एकरूपता है, जबकि अर्धमागधी आगम साहित्य में भाषा के विविध रूप पाये जाते हैं। उदाहरणस्वरूप शौरसेनी में सर्वत्र **"ण"** का प्रयोग मिलता है, कहीं भी **'न'** का प्रयोग नहीं है। जबकि, अर्धमागधी में **नकार** के साथ-साथ **णकार** का प्रयोग भी विकल्पतः मिलता है। यदि शौरसेनी युग में नकार का प्रयोग आगम भाषा में प्रचलित होता तो दिगम्बर साहित्य में कहीं तो विकल्प से प्राप्त होता।"; **प्राकृत विद्या जुलाई-सितम्बर '९६ पृ.७**

यहाँ डॉ. सुदीप जैन ने दो बातें उठाई हैं, प्रथम, शौरसेनी आगम साहित्य की भाषिक एकरूपता की ओर दूसरी 'ण' कार और 'न' कार की। क्या सुदीप जी आपने शौरसेनी आगम साहित्य के उपलब्ध संस्करणों का भाषाशास्त्र की दृष्टि से कोई प्रामाणिक अध्ययन किया है? यदि आपने किया होता तो आप ऐसा खोखला दावा प्रस्तुत नहीं करते? आप केवल णकार का ही उदाहरण क्यों देते हैं- वह तो महाराष्ट्र और शौरसेनी दोनों में सामान्य है। दूसरे शब्द रूपों की चर्चा क्यों नहीं करते? नीचे मैं दिगम्बर शौरसेनी आगम-तुल्य ग्रन्थों से ही कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदाहरण दे रहा हूँ, जिनसे उनके भाषिक तत्व की एकरूपता का दावा कितना खोखला है, यह सिद्ध हो जाता है। मात्र यही नहीं, इससे यह भी सिद्ध होता है कि शौरसेनी आगम-तुल्य ग्रन्थ न केवल अर्धमागधी से प्रभावित हैं, अपितु उससे परवर्ती महाराष्ट्री प्राकृत से भी प्रभावित है –

१. आत्मा के लिये अर्धमागधी में **आता, अत्ता, अप्पा** आदि शब्द रूपों के प्रयोग उपलब्ध हैं, जबकि शौरसेनी में मध्यवर्ती 'त' का "द" होने के कारण **"आदा"** रूप बनाता है। समयसार में "आदा" के साथ-साथ "अप्पा" शब्द रूप जो कि अर्धमागधी का है अनेकबार प्रयोग में आया है। केवल समयसार में ही नहीं, अपितु नियमसार (१२०,१२१,१८३) आदि में भी "अप्पा" शब्द का प्रयोग है।

२. 'श्रुत' का शौरसेनी रूप "सुद" बनता है। शौरसेनी आगम-तुल्य ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर "सुद" "सुदकेवली" शब्द के प्रयोग भी हुए हैं, जबकि समयसार (वर्णी ग्रन्थमाला) गाथा ६ एवं १० में स्पष्ट रूप से "सुयकेवली" "सुयणाण" शब्दरूपों का भी प्रयोग मिलता है। ये दोनों महाराष्ट्री शब्द रूप हैं और परवर्ती भी हैं। अर्धमागधी में तो सदैव 'सुत' शब्द का प्रयोग होता है।

३. शौरसेनी में "द" की प्रधानता है, साथ ही, उसमें "लोप" की प्रवृत्ति अत्यल्प है। अतः उसके क्रिया रूप "हवदि, होदि, कुणदि, गिण्हदि, कुत्तदि, परिणमदि, भण्णदि, परसदि आदि बनते हैं। इन क्रिया रूपों का प्रयोग उन ग्रन्थों में हुआ भी है, किन्तु उन्हीं ग्रन्थों के क्रिया रूपों पर महाराष्ट्री प्राकृत का कितना व्यापक प्रभाव है, इसे निम्न उदाहरणों से जाना जा सकता है-

समयसार, वर्णी ग्रन्थमाला (वाराणसी)-

जाणइ (१०), हवई (११ ३१५, ३८६, ३८४), मुणइ (३२), वुच्चइ (४५), कुव्वइ (८१, २८६, ३१६, ३२१, ३२५, ३४०) परिणमइ (७६,७६,८०), (ज्ञातव्य है कि समयसार के इसी संस्करण की गाथा क्रमांक ७७,७८,७६ में परिणमदि रूप भी मिलता है) इसी प्रकार के अन्य महाराष्ट्री प्राकृत रूप, जैसे वेयई (८४), कुणई (७१, ६६, २८६, २६३, ३२२, ३२६), होइ (६४, ३०६, १६७, ३४६, ३५८), करेई (६४,२३७, २३८ ३२८, ३४८), हवई (१४१, ३२६, ३२६), जाणई (१८५, ३१६, ३१६, ३२०, ३६१), बहइ (१८६), सेवइ (१६७) मरइ (२५७, २६०) ३२८, ३४८), हवई (१४१, ३२६, ३२६), जाणई (१८५, ३१६, ३१६, ३२०, ३६१), बहइ (१८६) सेवइ (१६७), मरइ (२५७,२६०), (जबकि गाथा २५८ में मरदि रूप भी है इसी प्रकार, सवइ (२६२, २६१), घिप्पइ (२६६), उप्पज्जइ (३०८), विणस्सइ (३१२, ३४५), दीसइ (३२३) आदि भी मिलते हैं। ये तो कुछ ही उदाहरण हैं- ऐसे अनेकों महाराष्ट्री प्राकृत के क्रिया रूप समयसार में उपलब्ध हैं। न केवल समयसार अपितु नियमसार, पंचास्तिकायसार, प्रवचनसार आदि की भी यही स्थिति है।

बारहवीं शती में रचित वसुनन्दीकृत श्रावकाचार (भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण) की स्थिति तो कुन्दकुन्द के इन ग्रन्थों से भी बदतर है उसकी प्रारम्भ की सौ गाथाओं में 40% क्रियारूप महाराष्ट्री प्राकृत के हैं।

इसके फलित यह होता है कि तथाकथित शौरसेनी आगमों के भाषागत स्वरूप में तो अर्धमागधी आगमों की अपेक्षा भी न केवल अधिक वैविध्य है, अपितु उस महाराष्ट्री प्राकृत का भी व्यापक प्रभाव है, जिसे सुदीप जी शौरसेनी से परवर्ती मान रहे हैं। यदि ये ग्रन्थ, प्राचीन होते, तो इन पर अर्धमागधी और महाराष्ट्री का प्रभाव कहाँ से आता? प्रो. ए.एम. उपाध्ये ने प्रवचनसार की भूमिका में स्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि उसकी भाषा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर अर्धमागधी का प्रभाव है। प्रो. खडबडी ने तो षट्खण्डागम की भाषा को भी शुद्ध शौरसेनी नहीं माना है।

'न' कार और 'ण' कार में कौन प्राचीन?

अब हम नकार और णकार के प्रश्न पर आते हैं। भाई सुदीप जी, आपका यह कथन सत्य है कि अर्धमागधी में नकार और णकार दोनों पाये जाते हैं। किन्तु, दिगम्बर शौरसेनी आगम-तुल्य गन्थों मे सर्वत्र णकार का पाया जाना यही सिद्ध करता हैं कि जिस शौरसेनी को आप अरिष्टनेमी के काल से प्रचलित प्राचीनतम प्राकृत कहना चाहते हैं, उस णकार प्रधान शौरसेनी का जन्म तो ईसा की तीसरी शताब्दी तक हुआ भी नहीं था। "ण" की अपेक्षा 'न' का प्रयोग प्राचीन है। ईस्वी पूर्व द्वितीय शती के अशोक अभिलेख एवं ईस्वी पूर्व द्वितीय शती के खारवेल के शिलालेख से लेकर मथुरा के शिलालेख (ई.पू. दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक) इन लगभग ८० जैन शिलालेखों में एक भी 'णकार' का प्रयोग नहीं है। इनमें शौरसेनी प्राकृत के रूपों यथा "णमो" "अरिहंताणं" और "णमो वड्ढमाणं" का सर्वथा अभाव है। यहाँ हम केवल उन्हीं प्राचीन शिलालेखों को उद्धृत कर रहे हैं, जिनमें इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। ज्ञातव्य है कि ये सभी अभिलेखीय साक्ष्य जैन शिलालेख संग्रह, भाग २ से प्रस्तुत हैं, जो दिगम्बर जैन समाज द्वारा ही प्रकाशित हैं।

०१. हाथीगुफा बिहार का शिलालेख – प्राकृत, जैन सम्राट् खारवेल, मौर्यकाल १६५वाँ वर्ष, पृ. ४ लेख क्रमांक २ – **'नमो अरहंतानं, नमो सवसिधानं'**

०२. वैकुण्ठ स्वर्गपुरी गुफा, उदयगिरी, बिहार, – प्राकृत, मौर्यकाल १६५ वाँ वर्ष लगभग ई.पू. दूसरी शती पृ.११ ले.क. **'अरहन्तपसादन'**

०३. मथुरा, प्राकृत, महाक्षत्रप शोडाशके ८१ वर्ष का पृ. १२ क्रमांक ५, **नम अहरतो वधमानस'**

०४. मथुरा, प्राकृत काल निर्देश नहीं दिया है, किन्तु जे.एफ. फलीट के अनुसार लगभग १४-१३ ई. पूर्व प्रथम शती का होना चाहिए पृ. १५ क्रमांक ३ मो **'अरहतो वर्धमानस्य'**

०६. मथुरा प्राकृत सम्भवतः १४-१३ ई.पू. प्रथमशती पृ.१५ लेख क्रमांक १०, **'मा अरहतपूजा'**

०७. मथुरा प्राकृत पृ.१७ क्रमांक १४ **'मा अरहंतानं श्रमणश्रविका'**

०८. मथुरा प्राकृत पृ.१७ क्रमांक १५ **'नमो अरहंतानं'**

०९. मथुरा प्राकृत पृ.१८ क्रमांक १६ **'नमो अरहतो महाविरस'**

१०. मथुरा, प्राकृत दुविष्क संवत ३९-हस्तिस्तम्भ पृ.३४, क्रमांक ४३ **'अयर्येन रुद्रदासेन अरहंतनं पुजाये'।**

११. मथुरा प्राकृत भग्न वर्ष ६३ पृ.४६ क्रमांक ६७ **'नमो अर्हतो महाविरस्य'**

१२. मथुरा, प्राकृत वासुदेव सं. ९८ पृ.४७ क्रमांक ६० **'नमो अरहतो महावीरस्य'**

१३. मथुरा, प्राकृत पृ.४८ क्रमांक ७१ **'नमो अरहंतानं सिहकस'**

१४. मथुरा, प्राकृत भग्न पृ.४८ क्रमांक ७२ **'नमो अरहंतानं'**

१५. मथुरा, प्राकृत भग्न पृ.४८ क्रमांक ७३ **'नमो अरहंतानं'**

१६. मथुरा, प्राकृत भग्न पृ.४८ क्रमांक ७५ **'अरहंतानं वधमानस्य'**

१७. मथुरा, प्राकृत भग्न पृ.५१, क्रमांक ८० **'नमो अरहंतान...द्वन'**

शूरसेन प्रदेश, जहाँ से शौरसेनी प्राकृत का जन्म हुआ, वहाँ के शिलालेखों में दूसरी-तीसरी शती तक मध्यवर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णकार एवं 'त', द होने के प्रयोग का अभाव यही सिद्ध करता है कि दिगम्बर आगमों एवं नाटकों की शौरसेनी का जन्म ईसा की तीसरी शती के पूर्व का नहीं है, जबकि नकार प्रधान अर्धमागधी का प्रयोग तो अशोक के अभिलेखों से अर्थात् ई.पू. तीसरी शती से सिद्ध होता है। इससे यही फलित होता हैं कि अर्धमागधी आगम प्राचीन थे। आगमों का शब्द रूपान्तरण अर्धमागधी से शौरसेनी में हुआ है, न कि शौरसेनी से अर्धमागधी में। दिगम्बर मान्य आगमों की वह शौरसेनी जिसकी प्राचीनता का बढ़-चढ़ कर दावा किया जाता है, वह अर्धमागधी और महाराष्ट्री दोनों से ही प्रभावित है और न केवल भाषायी स्वरूप के आधार पर, वरन् अपनी विषय-वस्तु के आधार पर भी ईसा की चौथी-पाँचवीं शती के पूर्व की नहीं है। क्योंकि, कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में और मूलाचार षट्खण्डागम और भगवती आराधना में गुणस्थान का सिद्धान्त मिलता है, जो लगभग पाँचवीं-छठी शती में अस्तित्व में आया है।

यदि शौरसेनी प्राचीनतम प्राकृत है, तो फिर सम्पूर्ण देश में ईसा की तीसरी चौथी शती तक का एक भी अभिलेख शौरसेनी प्राकृत में क्यों नहीं मिलता? अशोक के अभिलेख, खारवेल के अभिलेख, बलडी का अभिलेख और मथुरा के शताधिक अभिलेख – कोई भी तो शौरसेनी प्राकृत में नहीं हैं। इन सभी अभिलेखों की भाषा क्षेत्रीय बोलियों से प्रभावित मागधी ही है। अतः उसे अर्धमागधी तो कहा जा सकता है, किन्तु शौरसेनी कदापि नहीं कहा जा सकता है। अतः प्राकृतों में अर्धमागधी ही प्राचीन है, क्योंकि मथुरा के प्राचीन अभिलेखों में भी **नमो अरहंतानं, नमो वधमानस** आदि अर्धमागधी शब्द रूप मिलते हैं। श्वेताम्बर आगमों और अभिलेखों में आये **'अरहंतानं'** पाठ का तो **प्राकृत विद्या** में खोटे सिक्के की तरह बताया गया हैं। इसका अर्थ है कि यह पाठ शौरेसनी का नहीं है (प्राकृत विद्या अक्तूबर - दिसम्बर ९४ पृ.१०-११) अतः शौरसेनी उसके बाद ही विकसित हुई है।)

शौरसेनी आगम और उनकी प्राचीनता

जब हम आगम की बात करते हैं तो हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि आचारांग आदि द्वादशांगी जिन्हें श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय परम्परा आगम कहकर उल्लेखित करती है, वे सभी मूलतः अर्धमागधी में निबद्ध हुए हैं। चाहे श्वेताम्बर परम्परा में नन्दीसूत्र में उल्लेखित आगम हों, चाहे मूलाचार, भगवती आराधना और उनकी टीकाओं में या तत्त्वार्थ और उसकी दिगम्बर टीकाओं में उल्लेखित आगम हो, अथवा अंगपण्णति और धवला के अंग और अंग-बाह्य के रूप में उल्लेखित आगम हों, उनमें से एक भी ऐसा नहीं है जो शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध था। हाँ, इतना अवश्य है कि इनमें से कुछ के शौरसेनी प्राकृत से प्रभावित संस्करण माथुरी वाचना लगभग चतुर्थ शती के समय अस्तित्व में अवश्य आये थे, किन्तु इन्हें शौरसेनी आगम कहना उचित नहीं होगा, वस्तुतः ये आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, ऋषिभाषित आदि श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आगमों के ही शौरसेनी प्रभावित संस्करण थे, जो यापनीय परम्परा में मान्य थे और जिनका भाषिक स्वरूप और कुछ पाठ भेदों को छोड़कर श्वेताम्बर मान्य आगमों से समरूपता थी। इनके स्वरूप आदि के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा मैंने **"जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय"** नामक ग्रन्थ के तीसरे अध्याय के प्रारम्भ में की है। पाठक उसे वहाँ देख सकते हैं।

वस्तुतः आज जिन्हें हम शौरसेनी आगम के नाम से जानते है, उनमें मुख्यतः निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं:-

अ. यापनीय आगम

१. **कसायपाहुड** लगभग ईसा की चौथी-पाँचवी शती, गुणधर

२. **षट्खण्डागम,** ईसा की पाँचवीं शती का उत्तरार्ध, **पुष्पदंत और भूतबली**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. **भगवती आराधना**, ईसा की छठी शती, - शिवार्य

४. **मूलाचार**, ईसा की छठी शती, - वट्टकेर

ज्ञातव्य है कि ये सभी ग्रन्थ मूलतः यापनीय परम्परा के हैं और इनमें अनेकों गाथाएँ श्वेताम्बर मान्य आगमों, विशेष रूप से निर्युक्तियों और प्रकीर्णकों के समरूप हैं।

ब. कुन्दकुन्द, ईसा की छठी शती के लगभग के ग्रन्थ-

५. **समयसार**

६. **नियमसार**

७. **प्रवचनसार**

८. **पञ्चास्तिकायसार**

- **आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित (६ठी शती)**

९. **अष्टपाहुड** (इसका कुन्दकुन्द द्वारा रचित होना सन्दिग्ध है, क्योंकि इसकी भाषा में अपभ्रंश के शब्द रूप भी हैं)

स. अन्य ग्रन्थ, ईसा की छठी शती के पश्चात् –

१०. **तिलोय पण्णति** – यतिवृषभ

११. **लोकविभाग**

१२. **जंबुद्वीप पण्णति**,

१३. **अंगपण्णति**

१४. **क्षपणसार**

१५. **गोम्मटसार** (दसवीं शती)

किन्तु इनमें से **कसायपाहुड** को छोड़कर कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं हैं, जो पाँचवीं शती के पूर्व का हो। ये सभी ग्रन्थ **गुणस्थान सिद्धान्त** और **सप्तभंगी** की चर्चा अवश्य करते हैं और गुणस्थान की चर्चा जैन दर्शन में पांचवीं शती से पूर्व के ग्रन्थों में अनुपस्थित है। श्वेताम्बर आगमों में समवायांग और आवश्यक निर्युक्ति की दो प्रक्षिप्त गाथाओं को छोड़कर गुणस्थान की चर्चा पूर्णतः अनुपस्थित है, जबकि षट्खण्डागम, मूलाचार, भगवती आराधना आदि ग्रन्थों में और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में इनकी चर्चा पायी जाती है अतः ये सभी ग्रन्थ उनसे परवर्ती हैं। इसी प्रकार उमास्वाति के तत्वार्थसूत्र मूल और उसके स्वोपज्ञ भाष्य में भी गुणस्थान की चर्चा अनुपस्थित है, जबकि इसकी परवर्ती टीकाएँ गुणस्थान की विस्तृत चर्चा प्रस्तुत करती है। उमास्वाति का काल तीसरी-चौथी शती के लगभग है। अतः यह निश्चित है कि गुणस्थान का सिद्धान्त पाँचवी शती में अस्तित्व में आया। अतः शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध कोई भी ग्रन्थ, जो गुणस्थान का उल्लेख कर रहा है, ईसा की पाँचवी शती के पूर्व का नहीं हैं। प्राचीन शौरसेनी आगम-तुल्य ग्रन्थों में मात्र कसायपाहुड ही ऐसा है, जो स्पष्टतः गुणस्थानों का उल्लेख नहीं करता हैं, किन्तु उसमें भी प्रकारान्तर से १२ गुणस्थानों की चर्चा उपलब्ध है। अतः वह भी आध्यात्मिक विकास की उन दस अवस्थाओं, जिनका उल्लेख आचारांग निर्युक्ति और तत्त्वार्थसूत्र में हैं, से परवर्ती और गुणस्थान सिद्धान्त के विकास के संक्रमणकाल की रचना है। अतः उसका काल भी चौथी से पाँचवी शती के बीच सिद्ध होता है।

शौरसेनी की प्राचीनता का दावा, कितना खोखला

शौरसेनी की प्राचीनता का गुणगान इस आधार पर भी किया जाता है कि यह नारायण कृष्ण और तीर्थंकर अरिष्टनेमि की मातृभाषा रही है, क्योंकि इन दोनों महापुरुषों का जन्म शूरसेन में हुआ था और ये शौरसेनी प्राकृत में ही अपना वाक्-व्यवहार करते थे। डॉ. सुदीप जी के शब्दों में "इन दोनों महापुरुषों के प्रभावक व्यक्तित्व के महाप्रभाव से शूरसेन जनपद में जन्मी शौरसेनी प्राकृत-भाषा को सम्पूर्ण आर्यावर्त में प्रसारित होने का सुअवसर मिला था।" (प्राकृत विद्या, जुलाई - सितम्बर ९६, पृ. ६)

यदि हम एक बार उनके इस कथन को मान भी ले,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो प्रश्न उठता है कि अरिष्टनेमि के पूर्व नमि मिथिला में जन्मे थे, वासुपूज्य चम्पा में जन्मे थे, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ और श्रेयांस काशी जनपद में जन्मे थे, यही नहीं प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और मर्यादा पुरुषोत्तम राम आयोध्या में जन्मे थे। यह सारा क्षेत्र मगध का निकटवर्ती क्षेत्र ही तो है, अतः इनकी मातृभाषा तो अर्धमागधी रही होगी। भाई सुदीप जी के अनुसार यदि शौरसेनी अरिष्टनेमी जितनी प्राचीन है, तो फिर अर्धमागधी तो ऋषभ जितनी प्राचीन सिद्ध होती है अतः शौरसेनी से अर्धमागधी प्राचीन ही है।

यदि शौरसेनी प्राचीन होती तो सभी प्राचीन अभिलेख और प्राचीन आगमिक ग्रन्थ शौरसेनी में मिलने चाहिए - किन्तु ईसा की चौथी – पाँचवीं शती से पूर्व का कोई भी ग्रन्थ और अभिलेख शौरसेनी में उपलब्ध क्यों नहीं होता?

नाटकों में शौरसेनी प्राकृत की उपलब्धता के आधार पर उसकी प्राचीनता का गुणगान किया जाता है, मैं विनम्रतापूर्वक पूछना चाहूँगा कि क्या इन उपलब्ध नाटकों में कोई भी नाटक ईसा की चौथी-पाँचवी शती से पूर्व का है? फिर उन्हें शौरसेनी की प्राचीनता का आधार कैसे माना जा सकता है। मात्र नाटक ही नहीं, वे शौरसेनी प्राकृत का एक भी ऐसा ग्रन्थ या अभिलेख दिखा दें, जो अर्धमागधी आगमों और मागधी प्रधान अशोक, खारवेल, आदि के अभिलेखों से प्राचीन हो। अर्धमागधी के अतिरिक्त जिस महाराष्ट्री प्राकृत को वे शौरसेनी से परवर्ती बता रहे हैं, उसमें हाल की गाथा सप्तशती लगभग प्रथम शती में रचित है और शौरसेनी के किसी भी ग्रन्थ से प्राचीन है।

मैं डॉ. सुदीप के निम्न कथन की ओर पाठकों का ध्यान पुनः दिलाना चाहूँगा, वे प्राकृत विद्या जुलाई-सितम्बर '९६ में लिखते हैं कि दिगंबरों के ग्रंथ उस शौरसेनी प्राकृत में हैं, जिससे 'मागधी' आदि प्राकृतों का जन्म हुआ। इस सम्बन्ध में मेरा उनसे निवेदन है कि मागधी के सम्बन्ध में 'प्रकृतिः शौरसेनी' – (प्राकृत प्रकाश १२/२) इस कथन की वे जो व्याख्या कर रहे हैं वह भ्रान्त हैं और वे स्वयं भी शौरसेनी के सम्बन्ध में 'प्रकृतिः संस्कृतम्' (प्राकृत प्रकाश १२/२) इस सूत्र की व्याख्या में 'प्रकृतिः' का जन्मदात्री – यह अर्थ अस्वीकार कर चुके हैं। इसकी विस्तृत समीक्षा हमने अग्रिम पृष्ठों में की है। इसके प्रत्युत्तर में मेरा दूसरा तर्क यह है कि यदि शौरसेनी प्राकृत ग्रन्थों के आधार पर ही मागधी के प्राकृत आगमों की रचना हुई, तो उनमें किसी भी शौरसेनी प्राकृत के ग्रन्थ का उल्लेख क्यों नहीं हैं? श्वेताम्बर आगमों में वे एक भी संदर्भ दिखा दें, जिनमें भगवती आराधना, मूलाचार, षट्खण्डागम, तिलोयपण्णत्ति, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार आदि का उल्लेख हुआ हो। टीकाओं में भी मलयगिरिजी ने मात्र 'समयपाहुड' का उल्लेख किया है इसके विपरीत मूलाचार, भगवती आराधना और षट्खण्डागम की टीकाओं में और तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, आदि सभी दिगम्बर टीकाओं में इन आगमों और निर्युक्तियों के उल्लेख हैं, भगवती आराधना की टीका में तो आचारांग, उत्तराध्ययन कल्प तथा निशीथ से अनेक अवतरण भी दिये हैं। मूलाचार में न केवल अर्धमागधी आगमों का उल्लेख है, अपितु उनकी सैकड़ों गाथाएँ भी हैं। मूलाचार में आवश्यकनिर्युक्ति, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, चन्द्रवेध्यक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि की अनेक गाथाएँ अपने शौरसेनी शब्द रूपों में यथावत् पायी जाती हैं।

दिगम्बर परम्परा में जो प्रतिक्रमण सूत्र उपलब्ध हैं, उसमें ज्ञातासूत्र के उन्हीं १९ अध्ययनों के नाम मिलते हैं, जो वर्तमान में श्वेताम्बर परम्परा में उपलब्ध ज्ञाताधर्मकथा में उपलब्ध हैं। तार्किक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि जो ग्रन्थ जिन-जिन ग्रन्थों का उल्लेख करता है, वह उनसे परवर्ती ही होता है, पूर्ववर्ती कदापि नहीं। शौरसेनी आगम या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम-तुल्य ग्रन्थों में अर्धमागधी आगमों के नाम मिलते हैं, तो फिर शौरसेनी और उसका रचित साहित्य अर्धमागधी आगमों से प्राचीन कैसे हो सकता है?

आदरणीय टाटिया जी के माध्यम से यह बात भी उठायी गयी कि मूलतः आगम शौरसेनी में रचित थे और कालान्तर में उनका अर्धमागधीकरण (महाराष्ट्री करण) किया गया। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि जैनधर्म का उद्‌भव मगध में हुआ और वहीं से वह दक्षिणी एवं उत्तर-पश्चिमी भारत में फैला। अतः आवश्यकता हुई अर्धमागधी रूपान्तर की। सत्य तो यह है कि अर्धमागधी आगम ही शौरसेनी या महाराष्ट्री में रूपान्तरित हुए न कि शौरसेनी आगम अर्धमागधी में रूपान्तरित हुए। अतः ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना कर मात्र कुतर्क करना कहाँ तक उचित है?

बुद्ध वचनों की मूल भाषा मागधी थी, न कि शौरसेनी

शौरसेनी को मूल भाषा और मागधी से प्राचीन सिद्ध करने हेतु आदरणीय प्रो. नथमल जी टाटिया के नाम से यह भी प्रचारित किया जा रहा है कि "शौरसेनी पालि भाषा की जननी है – यह मेरा स्पष्ट चिन्तन है। पहिले बौद्धों के ग्रन्थ शौरसेनी में थे। उनको जला दिया गया और पालि में लिखा गया।" – **प्राकृत विद्या, जुलाई - सितम्बर ९६ पृ. १०.**

टाटिया जी जैसा बौद्ध विद्या का प्रकाण्ड विद्वान् ऐसी कपोल कल्पित बात कैसे कह सकता है? यह विचारणीय है। क्या ऐसा कोई भी अभिलेखीय या साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध है? जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि मूल बुद्ध वचन शौरसेनी में थे? यदि हो तो आदरणीय टाटिया जी या भाई सुदीप जी उसे प्रस्तुत करें, अन्यथा ऐसी आधारहीन बातें करना विद्वानों के लिए शोभनीय नहीं है।

यह बात तो बौद्ध विद्वान् भी स्वीकार करते हैं कि मूल बुद्ध वचन 'मागधी' में थे और कालान्तर में उनकी भाषा को संस्कारित करके पालि में लिखा गया। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि जिस प्रकार मागधी और अर्धमागधी में किंचित् अन्तर है, उसी प्रकार 'मागधी' और 'पालि' में भी किंचित् अन्तर है। वस्तुतः पालि तो भगवान् बुद्ध की मूलभाषा 'मागधी' का एक संस्कारित रूप ही है, यही कारण है कि कुछ विद्वान् पालि को मागधी का ही एक प्रकार मानते हैं। दोनों में बहुत अधिक अन्तर नहीं है। पालि, संस्कृत और मागधी की मध्यवर्ती भाषा है या मागधी का ही साहित्यिक रूप है। यह तो प्रमाण सिद्ध है कि भगवान् बुद्ध ने मागधी में ही अपने उपदेश दिये थे, क्योंकि उनकी जन्म-स्थली और कार्य-स्थली दोनों मगध और उसका निकटवर्ती प्रदेश ही था। बौद्ध विद्वानों का स्पष्ट मन्तव्य है कि मागधी ही मूल भाषा है। इस सम्बन्ध में बुद्धघोष का निम्नलिखित कथन सबसे बडा प्रमाण है-

सा मागधी मूल भासा बरायाय आदिकप्पिका।
बह्मणो च अस्सुवालापा संबुद्धा चापि भासरे।

अर्थात् मागधी ही मूलभाषा है, जो सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुई और न केवल ब्रह्मा (देवता) अपितु बालक और बुद्ध भी इसी में बोलते हैं (See — The preface to the childer's Pali Dictionary)

इससे यही फलित होता है कि मूल बुद्ध वचन मागधी में थे। पालि उसी मागधी का संस्कारित साहित्यिक रूप है, जिसमें कालान्तर में बुद्ध वचन लिखे गये। वस्तुतः पालि के रूप में मागधी का एक ऐसा संस्करण तैयार किया गया, जिसे संस्कृत के विद्वान् और भिन्न - भिन्न प्रान्तों के लोग भी आसानी से समझ सकें। अतः बुद्ध वचन मूलतः मागधी में थे, न कि शौरसेनी में। बौद्ध त्रिपिटक की पालि और जैन आगमों की अर्धमागधी में कितना साम्य है, यह तो सुत्तनिपात और इसिभासियाइ के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन पालि ग्रन्थों की एवं प्राचीन अर्धमागधी आगमों की भाषा में अधिक दूरी नहीं है। जिस समय अर्धमागधी और पालि में ग्रन्थ रचना हो रही थी, उस समय तक शौरसेनी एक बोली थी, न कि एक साहित्यिक भाषा। साहित्यिक भाषा के रूप में उसका जन्म तो ईसा की तीसरी शताब्दी के बाद ही हुआ है। संस्कृत के पश्चात् सर्वप्रथम साहित्यिक भाषा के रूप में यदि कोई भाषाएं विकसित हुई है तो वे अर्धमागधी और पालि ही हैं, न कि शौरसेनी। शौरसेनी का कोई भी ग्रन्थ या नाटकों के अंश ईसा की तीसरी - चौथी शती से पूर्व का नहीं हैं-जबकि पालि त्रिपिटक और अर्धमागधी आगम साहित्य के अनेक ग्रन्थ ई.पू. तीसरी-चौथी शती में निर्मित हो चुके थे।

'प्रकृतिः शौरसेनी' का सम्यक् अर्थः-

जो विद्वान् मागधी या अर्धमागधी को शौरसेनी से परवर्ती और उसीसे विकसित मानते हैं, वे अपने कथन का आधार वररुचि (लगभग ७वीं शती) के **प्राकृत प्रकाश** और **हेमचन्द्र** (लगभग १२वीं शताब्दी) के **प्राकृत व्याकरण** के निम्नलिखित सूत्रों को बताते हैं –

अ. १. **प्रकृतिः शौरसेनी।। १०/२।।**
अस्याः पैशाच्याः प्रकृतिः शौरसेनी। स्थितायां शौरसेन्यां पैशाची – लक्षणं प्रवर्ततितव्यम्।

२. **प्रकृतिः शौरसेनी ।।११/२।।**
अस्याः मागध्याः प्रकृतिः शौरसेनीति वेदितव्यम्।
- वररुचि कृत 'प्राकृत प्रकाश'

ब. १. **शेष शौरसेनीवत् ।।८/४/३०२।।**
मागध्यां यदुक्तं, ततोअन्यच्छौरसेनीवद् द्रष्टव्यम्।

२. **शेष शौरसेनीवत् ।। ८/४/३२३ ।।**
पैशाच्यां यदुक्तं, ततोअन्यच्छेषं पैशाच्यां शौरसेनीवद् भवति।

३. **शेष शौरसेनीवत् ।। ८/४/४४६।।**
अपभ्रंशे प्रायः शौरसेनीवत् कार्य भवति।
अपभ्रंशभाषायां प्रायः शौरसेनीभाषातुल्य कार्य जायते; शौरसेनी-भाषायाः ये नियमाः सन्ति, तेषां प्रवृत्तिरपभ्रंश-भाषायामपि जायते
- हेमचन्द्र कृत 'प्राकृत व्याकरण'

अतः इस प्रसंग में यह आवश्यक है कि हम सर्वप्रथम इन सूत्रों में 'प्रकृति' शब्द का वास्तविक तात्पर्य क्या है, इसे समझें। यदि हम यहाँ प्रकृति का अर्थ उद्‌भव का कारण मानते हैं, तो निश्चित ही इन सूत्रों से यह फलित होता है कि मागधी या पैशाची का उद्‌भव शौरसेनी से हुआ, किन्तु शौरसेनी को एकमात्र प्राचीन भाषा मानने वाले तथा मागधी और पैशाची को उससे उद्‌भूत मानने वाले ये विद्वान् वररुचि के उस सूत्र को भी उद्धृत क्यों नहीं करते, जिसमें शौरसेनी की प्रकृति संस्कृत बताई गयी है, यथा – **"शौरसेनी - १२/१ टीका - शूरसेनानां भाषा शौरसेनी साच लक्ष्यलक्षणाभ्यां स्फुटीकियते इति वेदितव्यम्। अधिकारसूत्रमेतदा परिच्छेद समाप्तेः १२/१ प्रकृतिः संस्कृतम्- १२/२ टीका – शौरसेन्यां ये शब्दास्तेषां प्रकृतिः संस्कृतम्।। प्राकृत प्रकाश/१२/२/"** अतः उक्त सूत्र के आधार पर हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि शौरसेनी प्राकृत संस्कृत से उत्पन्न हुई। इस प्रकार प्रकृति का अर्थ उद्‌गम स्थल करने पर उसी **प्राकृत प्रकाश** के आधार पर यह भी मानना होगा कि मूलभाषा संस्कृत थी और उसी से शौरसेनी उत्पन्न हुई। क्या शौरसेनी के पक्षधर इस सत्य को स्वीकार करने को तैयार हैं? भाई सुदीप जी, जो शौरसेनी के पक्षधर हैं और **'प्रकृतिः शौरसेनी'** के आधार पर मागधी को शौरसेनी से उत्पन्न बताते हैं, वे स्वयं भी **'प्रकृतिः संस्कृतम् – प्राकृत प्रकाश १२/२'** के आधार पर यह मानने को तैयार नहीं हैं कि प्रकृति का अर्थ उससे उत्पन्न हुई ऐसा हैं वे स्वयं लिखते हैं - "आज जितने भी प्राकृत व्याकरण शास्त्र उपलब्ध हैं। वे सभी संस्कृत भाषा में हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और संस्कृत व्याकरण के मॉडल पर निर्मित हैं। अतएव उनमें 'प्रकृतिः संस्कृतम्' जैसे प्रयोग देखकर कतिपयजन ऐसा भ्रम करने लगते हैं कि प्राकृतभाषा संस्कृत भाषा से उत्पन्न हुई – ऐसा अर्थ कदापि नहीं हैं। **(प्राकृत-विद्या, जुलाई-सितम्बर ९६, पृ.१४)** भाई सुदीप जी जब शौरसेनी की बारी आती है, तब आप प्रकृति का अर्थ आधार मॉडल करें और जब मागधी का प्रश्न आये तब आप 'प्रकृतिः शौरसेनी' का अर्थ मागधी और शौरसेनी से उत्पन्न हुई ऐसा करें – यह दोहरा मापदण्ड क्यों? क्या केवल शौरसेनी को प्राचीन और मागधी को अर्वाचीन बताने के लिये? वस्तुतः प्राकृत और संस्कृत शब्द स्वयं ही इस बात के प्रमाण हैं कि उनमें मूलभाषा कौन है? संस्कृत शब्द स्वयं ही इस बात का सूचक है कि संस्कृत स्वाभाविक या मूल भाषा न होकर एक संस्कारित कृत्रिम भाषा है। प्राकृत शब्दों एवं शब्द रूपों का व्याकरण द्वारा संस्कार करके जो भाषा निर्मित होती है, उसे ही संस्कृत कहा जा सकता हैं। जिसे संस्कारित न किया गया हो, वह संस्कृत कैसे होगी? वस्तुतः प्राकृत स्वाभाविक या सहज भाषा है और उसी को संस्कारित करके संस्कृत भाषा निर्मित हुई है। इस दृष्टि से प्राकृत मूलभाषा है और संस्कृत उससे उद्भूत हुई – भाषा।

हेमचन्द्र के पूर्व नमिसाधु ने रुद्रट् के काव्यालङ्कार की टीका में प्राकृत और संस्कृत शब्द का अर्थ स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं :

सकल जगज्जन्तुनां व्याकरणादिभिरनाहित संस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्। आरिसवयणे सिद्धं, देवाणं अद्धमागहा वाणी इत्यादि, वचनाद्वा प्राक् पूर्वकृतं प्राकृतम् – बालमहिलादि सुबोधं सकल भाषा निन्धनभूत वचनमुच्यते। मेघनिर्मुक्तजलमिवैक-स्वरूप तदेव च देशविशेषात् संस्कार करणात् च समासादित विशेष सत् संस्कृताधुत्तर भेदोनाप्नोति।

- काव्यालंकार टीका, नमिसाधु २/१२

अर्थात् जो संसार के प्राणियों का व्याकरण आदि संस्कार से रहित सहज वचन व्यापार है, उससे निःसृत भाषा प्राकृत है, जो बालक, महिला आदि के लिए भी सुबोध है और पूर्व में निर्मित होने से (प्राक्+कृत) सभी भाषाओं की रचना का आधार है, वह तो मेघ से निर्मुक्त जल की तरह सहज है। उसी का देश-प्रदेश के आधार पर किया गया संस्कारित रूप संस्कृत और उसके विभिन्न भेद अर्थात् विभिन्न साहित्यिक प्राकृतें हैं। सत्य यह है कि बोली के रूप में तो प्राकृत ही प्राचीन हैं और संस्कृत उनका संस्कारित रूप हैं – वस्तुतः संस्कृत विभिन्न प्राकृत बोलियों के बीच सेतु का काम करने वाली एक सामान्य साहित्यिक भाषा के रूप में अस्तित्व में आई।

यदि हम भाषा – विकास की दृष्टि से इस प्रश्न पर चर्चा करें तो भी यह स्पष्ट है कि संस्कृत सुपरिमार्जित, सुव्यवस्थित और व्याकरण के आधार पर सुनिबद्ध भाषा है। यदि हम यह मानते हैं कि संस्कृत से प्राकृतें निर्मित हुई हैं, तो हमें यह भी मानना होगा कि मानव जाति अपने आदिकाल में व्याकरण शास्त्र के नियमों से संस्कारित संस्कृत भाषा बोलती थी और उसी से अपभ्रष्ट होकर शौरसेनी और शौरसेनी से अपभ्रष्ट होकर मागधी, पैशाची, अपभ्रंश आदि भाषाएँ निर्मित हुई। इसका अर्थ यह भी होगा कि मानव जाति की मूल भाषा अर्थात् संस्कृत से अपभ्रष्ट होते-होते ही विभिन्न भाषाओं का जन्म हुआ। किन्तु मानव जाति और मानवीय संस्कृति के विकास का वैज्ञानिक इतिहास इस बात को कभी भी स्वीकार नहीं करेगा।

वह तो यही मानता है कि मानवीय बोलियों के संस्कार द्वारा ही विभिन्न साहित्यिक भाषाएँ अस्तित्व में आई, अर्थात् विभिन्न बोलियों से ही विभिन्न भाषाओं का जन्म हुआ है। वस्तुतः इस विवाद के मूल में साहित्यिक भाषा और लोक भाषा अर्थात् बोली के अन्तर को नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझ पाना है। वस्तुतः प्राकृतें अपने मूल स्वरूप में भाषाएँ न होकर बोलियाँ रही हैं। यहाँ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्राकृत कोई एक बोली नहीं, अपितु बोली समूह का नाम है। जिस प्रकार प्रारम्भ में विभिन्न प्राकृतों अर्थात् बोलियों को संस्कारित करके एक सामान्य वैदिक भाषा का निर्माण हुआ, उसी प्रकार काल क्रम में विभिन्न बोलियों को अलग – अलग रूप में संस्कारित करके उनसे विभिन्न साहित्यिक प्राकृतों का निर्माण हुआ। अतः यह एक सुनिश्चित सत्य है कि बोली के रूप में प्राकृतें मूल एवं प्राचीन हैं और उन्हीं से संस्कृत का विकास एक 'कामन' (Common) भाषा के रूप में हुआ। प्राकृतें बोलियाँ और संस्कृत भाषा हैं। बोली को व्याकरण से संस्कारित करके एक रूपता देने से भाषा का विकास होता है। भाषा से बोली का विकास नहीं होता है। विभिन्न प्राकृत बोलियों को आगे चलकर व्याकरण के नियमों से संस्कारित किया गया, तो उनसे विभिन्न प्राकृतों का जन्म हुआ। जैसे मागधी बोली से मागधी प्राकृत का, शौरसेनी बोली से शौरसेनी प्राकृत का और महाराष्ट्र की बोली से महाराष्ट्री प्राकृत का विकास हुआ। प्राकृत के शौरसेनी, मागधी, पैशाची, महाराष्ट्री आदि भेद तत् तत् प्रदेशों की बोलियों से उत्पन्न हुए हैं न कि किसी प्राकृत विशेष से। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि कोई भी प्राकृत व्याकरण सातवीं शती से पूर्व का नहीं है। साथ ही उनमें प्रत्येक प्राकृत के लिये अलग-अलग मॉडल अपनाये हैं। वररुचि के लिए शौरसेनी की प्रकृति संस्कृत है, जबकि हेमचन्द्र के लिए शौरसेनी की प्रकृति (महाराष्ट्री) प्राकृत है, अतः प्रकृति का अर्थ आदर्श या मॉडल है। अन्यथा हेमचन्द्र के शौरसेनी के सम्बन्ध में **'शेषं प्राकृतवत्** (८.४.२८६) का अर्थ होगा शौरसेनी महाराष्ट्री से उत्पन्न हुई, जो शौरसेनी के पक्षधरों को मान्य नहीं होगा।

क्या अर्धगामधी आगम मूलतः शौरसेनी में थे?

प्राकृत विद्या, जनवरी - मार्च '९६ के सम्पादकीय में डॉ. सुदीप जैन ने प्रो. टाटिया को यह कहते हुए प्रस्तुत किया है कि "श्वेताम्बर जैन साहित्य का भी प्राचीन रूप शौरसेनी प्राकृतमय ही था, जिसका स्वरूप क्रमशः अर्धमागमधी के रूप में बदल गया।" इस सन्दर्भ में हमारा प्रश्न यह है कि यदि प्राचीन श्वेताम्बर आगम साहित्य शौरसेनी प्राकृत में था, तो फिर वर्तमान उपलब्ध पाठों में कहीं भी शौरसेनी की 'द' श्रुति का प्रभाव क्यों नहीं दिखाई देता। इसके विपरीत हम यह पाते हैं कि दिगम्बर परम्परा में मान्य शौरसेनी आगम साहित्य पर अर्धमागधी और महाराष्ट्री प्राकृत का व्यापक प्रभाव है, इस तथ्य की सप्रमाण चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में दिगम्बर परम्परा के शीर्षस्थ विद्वान् प्रो. ए.एन. उपाध्ये का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि प्रवचनसार की भाषा पर श्वेताम्बर आगमों की अर्धमागधी भाषा का पर्याप्त प्रभाव है और अर्धमागधी भाषा की अनेक विशेषताएँ उत्तराधिकार के रूप में इस ग्रन्थ को प्राप्त हुई हैं।

इसमें स्वर परिवर्तन, मध्यवर्ती व्यंजनों के परिवर्तन, 'य' श्रुति इत्यादि अर्धमागधी भाषा के समान ही मिलते हैं। दूसरे वरिष्ठ दिगम्बर विद्वान् प्रो. खडबडी का कहना है कि षट्खण्डागम की भाषा शुद्ध शौरसेनी नहीं है। इस प्रकार यहाँ एक ओर दिगम्बर विद्वान् इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर रहे हैं कि दिगम्बर आगमों पर श्वेताम्बर आगमों की अर्धमागधी भाषा का प्रभाव है, वहाँ यह कैसे माना जा सकता है कि श्वेताम्बर आगम शौरसेनी से अर्धमागधी आगम ही शौरसेनी में रूपान्तरित हुए हैं। पुनः अर्धमागधी भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में दिगम्बर विद्वानों में जो भ्रांति प्रचलित रही है, उसका स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। सम्भवतः ये विद्वान् अर्धमागधी और महाराष्ट्री के अन्तर को स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाये हैं तथा सामान्यतः अर्धमागधी और महाराष्ट्री को पर्यायवाची मानकर ही चलते रहें। यही कारण है कि उपाध्ये जैसे विद्वान् भी 'य' श्रुति को अर्धमागधी का लक्षण बताते हैं' जबकि वह मूलतः महाराष्ट्री प्राकृत का लक्षण है, न कि अर्धमागधी का। अर्धमागधी में तो 'त' का न तो लोप होता है और न मध्यवर्ती असंयुक्त 'त' का 'द' होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह सत्य है कि श्वेताम्बर आगमों की अर्धमागधी भाषा में कालक्रम में परिवर्तन हुए हैं और उस पर महाराष्ट्री प्राकृत की 'य' श्रुति का प्रभाव आया है, किन्तु यह मानना पूर्णतः मिथ्या है कि श्वेताम्बर आगमों का शौरसेनी से अर्धमागधी में रूपान्तरण हुआ है। वास्तविकता यह है कि अर्धमागधी आगम ही माथुरी और वल्लभी वाचनाओं के समय क्रमशः शौरसेनी और महाराष्ट्री से प्रभावित हुए हैं।

टाटिया जी जैसा विद्वान् इस प्रकार की मिथ्या धारणा को प्रतिपादित करे कि शौरसेनी आगम ही अर्धमागधी में रूपान्तरित हुए – यह विश्वसनीय नहीं लगता है। यदि टाटिया जी का यह कथन कि 'पालि त्रिपिटक और अर्धमागधी आगम मूलतः शौरसेनी में थे और फिर पालि और अर्धमागधी में रूपान्तरित हुए' हैं, तो उन्हें या सुदीप जी को इसके प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिए। वस्तुतः जब किसी बोली को साहित्यिक भाषा का रूप दिया जाता है, तो एकरूपता के लिए नियम या व्यवस्था आवश्यक होती हैं और यही नियम भाषा का व्याकरण बनाते हैं। विभिन्न प्राकृतों को जब साहित्यिक भाषा का रूप दिया गया, तो उनके लिए भी व्याकरण के नियम आवश्यक हुए और ये व्याकरण के नियम मुख्यतः संस्कृत से गृहीत किये गये। जब व्याकरणशास्त्र में किसी भाषा की प्रकृति बताई जाती है, तब वहाँ तात्पर्य होता है कि उस भाषा के व्याकरण के नियमों का मूल आदर्श किस भाषा के शब्दरूप हैं? उदाहरण के रूप में जब हम शौरसेनी के व्याकरण की चर्चा करते हैं तो यह मानते हैं कि उसके व्याकरण का आदर्श अपनी कुछ विशेषताओं को छोड़कर, जिसकी चर्चा उस भाषा के व्याकरण में होती है, संस्कृत के शब्द रूप हैं।

किसी भी भाषा का जन्म बोली के रूप में पहले होता है। फिर बोली से साहित्यिक भाषा का जन्म होता है। जब साहित्यिक भाषा बनती है, तब उसके लिए व्याकरण के नियम बनाये जाते हैं, ये व्याकरण के नियम जिस भाषा शब्दरूपों के आधार पर उस भाषा के शब्द रूपों को समझाते हैं, वही उसकी प्रकृति कहलाते हैं। यह सत्य है कि बोली का जन्म पहले होता है, व्याकरण उसके बाद बनता है। शौरसेनी अथवा प्राकृत की प्रकृति को संस्कृत मानने का अर्थ इतना ही है कि इन भाषाओं के जो भी व्याकरण बने हैं, वे संस्कृत शब्द रूपों के आधार पर बने हैं। यहाँ पर भी ज्ञातव्य है कि प्राकृत का कोई भी व्याकरण प्राकृत के लिखने या बोलने वालों के लिए नहीं बनाया गया, अपितु उनके लिए बनाया गया, जो संस्कृत में लिखते या बोलते थे। यदि हमें किसी संस्कृत के जानकार व्यक्ति को प्राकृत के शब्द या शब्दरूपों को समझाना हो, तो हमें उसका आधार संस्कृत को ही बनाना होगा और उसीके आधार पर यह समझाना होगा कि संस्कृत के किस शब्द से प्राकृत का कौन सा शब्द रूप कैसे निष्पन्न हुआ है। इसलिए जो भी प्राकृत व्याकरण निर्मित किये गये, अपरिहार्य रूप से वे संस्कृत शब्दों या शब्द रूपों को आधार मानकर प्राकृत शब्द या शब्द रूपों की व्याख्या करते हैं। संस्कृत को प्राकृत की प्रकृति कहने का इतना ही तात्पर्य हैं। इसी प्रकार जब मागधी, पैशाची या अपभ्रंश की 'प्रकृति' शौरसेनी को कहा जाता है तो उसका तात्पर्य होता है, प्रस्तुत व्याकरण के नियमों में इन भाषाओं के शब्द रूपों को शौरसेनी शब्दों को आधार मानकर समझाया गया है। प्राकृत प्रकाश की टीका में वररुचि ने स्पष्टतः लिखा है – **शौरसेन्या ये शब्दास्तेषां प्रकृतिः संस्कृतम्** (१२/२) अर्थात् शौरसेनी के जो शब्द हैं उनकी प्रकृति या आधार संस्कृत शब्द हैं।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि प्राकृत में तीन प्रकार के शब्द रूप मिलते हैं - तत्सम, तद्भव, और देशज। देशज शब्द वे हैं जो किसी देश विशेष में किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त हैं। इनके अर्थ की व्याख्या के लिये व्याकरण की कोई आवश्यकता नहीं होती। तद्भव शब्द वे हैं जो संस्कृत शब्दों से निर्मित हैं, जबकि संस्कृत के समान शब्द तत्सम हैं। संस्कृत व्याकरण में दो शब्द प्रसिद्ध हैं –

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

प्रकृति और प्रत्यय। इनमें मूल शब्दरूप को प्रकृति कहा जाता है। मूल शब्द से जो शब्द रूप बना हैं वह तद्भव हैं। प्राकृत व्याकरण संस्कृत शब्द से प्राकृत का तद्भव शब्द रूप कैसे बना है, इसकी व्याख्या करता है। अतः यहाँ संस्कृत को प्रकृति कहने का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि तद्भव शब्दों के सन्दर्भ में संस्कृत शब्द को आदर्श मानकर या मॉडल मानकर व्याकरण लिखा गया है। अतः प्रकृति का अर्थ आदर्श या मॉडल है। संस्कृत शब्द रूप को मॉडल/आदर्श मानना इसलिए आवश्यक था कि प्राकृत व्याकरण संस्कृत के जानकार विद्वानों को दृष्टि में रखकर या उनके लिए ही लिखे गये थे। जब डॉ. सुदीप जी शौरसेनी के सन्दर्भ में 'प्रकृतिः संस्कृतम्' का अर्थ मॉडल या आदर्श करते हैं तो उन्हें मागधी, पैशाची आदि के सन्दर्भ में **'प्रकृतिः शौरसेनी'** का अर्थ भी यही करना चाहिए कि शौरसेनी को मॉडल या आदर्श मानकर इनका व्याकरण लिखा गया है – इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि मागधी आदि प्राकृतों की उत्पत्ति शौरसेनी से हुई है। हेमचन्द्र ने महाराष्ट्री प्राकृत को आधार मानकर शौरसेनी, मागधी आदि प्राकृतों को समझाया है। अतः इससे यह सिद्ध नहीं होता हैं कि महाराष्ट्री प्राचीन है या महाराष्ट्री से मागधी, शौरसेनी आदि उत्पन्न हुई।

प्राचीन कौन? अर्धमागधी या शौरसेनी

इसी सन्दर्भ में टाटिया जी के नाम से यह भी प्रतिपादित किया गया है कि "यदि वर्तमान अर्धमागधी आगम साहित्य को ही मूल आगम साहित्य मानने पर जोर देंगे तो इस अर्धमागधी भाषा का आज से १५०० वर्ष पहले अस्तित्व ही नहीं होने से इस स्थिति में हमें अपने आगम साहित्य को ही ५०० ई.के परवर्ती मानना पड़ेगा। ज्ञातव्य है कि यहाँ भी महाराष्ट्री और अर्धमागधी के अन्तर को न समझते हुए एक भ्रान्ति को खड़ा किया गया है। सर्वप्रथम तो यह समझ लेना चाहिए कि आगमों के प्राचीन अर्धमागधी के 'त' की प्रधानता वाले पाठ चूर्णियों और अनेक प्राचीन प्रतियों में आज भी मिल रहे हैं। उससे निःसंदेह यह सिद्ध होता है कि मूल अर्धमागधी असंयुक्त मध्यवर्ती 'त' का लोप न होकर वह यथावत् बना रहता है और उसमें लोप की प्रवृति नगण्य ही है और यह अर्धमागधी भाषा शौरसेनी और महाराष्ट्री से प्राचीन भी हैं। यदि श्वेताम्बर आगम शौरसेनी से महाराष्ट्री, जिसे दिगम्बर विद्वान् भ्रांति से अर्धमागधी कह रहे हैं। बदले गये तो फिर उनकी प्राचीन प्रतियों में मध्यवर्ती 'त' के स्थान पर 'द' पाठ क्यों उपलब्ध नहीं होते हैं जो शौरसेनी की विशेषता है। इस प्रसंग में डॉ. टाटिया जी के नाम से यह भी कहा गया है कि आज भी आचरांग सूत्र आदि की प्राचीन प्रतियों में शौरसेनी के शब्दों की प्रचुरता मिलती है। मैं आदरणीय टाटिया जी से भाई सुदीप जी से साग्रह निवेदन करुंगा की वे आचारांग-ऋषिभाषित-सूत्रकृतांग आदि की किन्हीं भी प्राचीन प्रतियों में मध्यवर्ती 'त' के स्थान पर 'द' होने संबन्ध पाठ दिखला दें। प्राचीन प्रतियों में जो पाठ मिल रहे हैं, वे अर्धमागधी या आर्ष प्राकृत के हैं, न कि शौरसेनी के। यह एक अलग बात है कि कुछ शब्दरूप आर्ष अर्धमागधी और शौरसेनी में समान हैं।

वस्तुतः इन प्राचीन प्रतियों में न तो मध्यवर्ती 'त' के स्थान पर 'द' की प्रधानता देखी जाती है और न "न" के स्थान पर "ण" की प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसे व्याकरण में शौरसेनी की विशेषता कहा जाता है। सत्य तो यह है कि अर्धमागधी आगमों का ही शौरसनी रूपान्तर हुआ है, न कि शौरसेनी आगमों का अर्धमागधी रूपान्तरण। यह सत्य है कि न केवल अर्धमागधी आगमों पर अपितु शौरसेनी आगम-तुल्य कुन्दकुन्द आदि के ग्रन्थों पर भी महाराष्ट्री की 'य' श्रुति का स्पष्ट प्रभाव है, जिसे हम पूर्व में सिद्ध कर चुके हैं।

क्या पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व अर्धमागधी भाषा और श्वेताम्बर अर्धमागधी आगमों का अस्तित्व नहीं था?

डॉ. सुदीप जी द्वारा टाटिया जी के नाम से उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह कथन कि १५०० वर्ष पहले अर्धमागधी भाषा का अस्तित्व ही नहीं था' पूर्णतः भ्रान्त है। आचारांग, सूत्रकृतांग, ऋषिभाषित जैसे आगमों को पाश्चात्य विद्वानों ने एक स्वर से ई.पू. तीसरी-चौथी शताब्दी या उससे भी पहले का माना है। क्या उस समय ये आगम अर्धमागधी भाषा में निबद्ध न होकर शौरसेनी में निबद्ध थे? ज्ञातव्य है कि 'द' श्रुति प्रधान और 'ण' कार की प्रवृति वाली शौरसेनी का जन्म तो उस समय हुआ ही नहीं था, अन्यथा अशोक के अभिलेखों में और मथुरा (जो शौरसेनी की जन्म-भूमि हैं) के अभिलेखों में कहीं तो इस शौरसेनी के वैशिष्ट्य वाले शब्द रूप उपलब्ध होने चाहिए थे। क्या शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध ऐसा एक भी ग्रन्थ है जो ई.पू. में लिखा गया हो? सत्य तो यह है कि ईसा की चौथी-पाँचवी शताब्दी के पूर्व शौरसेनी में निबद्ध एक भी ग्रन्थ नहीं था, जबकि मागधी के अभिलेख और अर्धमागधी के आगम ई.पू. तीसरी शती से उपलब्ध हो रहे हैं। पुनः यदि ये लोग जिसे अर्धमागधी कह रहे हैं, उसे महाराष्ट्री भी मान ले तो उसके भी ग्रन्थ ईसा की प्रथम शताब्दी से उपलब्ध होते हैं। सातवाहन काल की गाथा-सप्तशती महाराष्ट्री प्राकृत का प्राचीन ग्रन्थ हैं, जो इसी ई.पू. प्रथम शती से ईसा की प्रथम शती के मध्य रचित है। पुनः यह एक संकलन ग्रन्थ है, जिसमें अनेक ग्रन्थों से गाथाएँ संकलित की गई हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इसके पूर्व भी महाराष्ट्री प्राकृत में ग्रन्थ रचे गये थे। कालिदास के नाटक, जिनमें शौरसेनी का प्राचीनतम रूप मिलता है, भी ईसा की चतुर्थ शताब्दी के बाद के ही हैं। कुन्दकुन्द के ग्रन्थ स्पष्ट रूप से न केवल अर्धमागधी आगमों से, अपितु परवर्ती 'य' श्रुति प्रधान महाराष्ट्री से भी प्रभावित हैं। किसी भी स्थिति में ईसा की ५वीं शताब्दी के पूर्व के सिद्ध नहीं होते हैं। षट्खण्डागम और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में गुणस्थान, सप्तभंगी आदि लगभग ५वीं शती में निर्मित अवधारणाओं की उपस्थिति उन्हें श्वेताम्बर आगमों और उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र (लगभग चतुर्थ शती) से परवर्ती ही सिद्ध करती है, क्योंकि इनमें ये अवधारणाएँ अनुपस्थित हैं। इस सम्बन्ध में मैंने अपने, ग्रन्थ **'गुणस्थान सिद्धान्तः एक विश्लेषण'** और **'जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय'** में विस्तार से प्रकाश डाला है। इस प्रकार सत्य तो यह है कि अर्धमागधी भाषा या अर्धमागधी आगम नहीं, अपितु शौरसेनी भाषा और शौरसेनी आगम ही ईसा. की ५वीं शती के पश्चात् अस्तित्व में आये। अच्छा होगा कि भाई सुदीप जी पहले मागधी और पालि तथा अर्धमागधी और महाराष्ट्री के अन्तर को, इनमें प्रत्येक के लक्षणों को तथा जैन आगमिक साहित्य के ग्रन्थों के कालक्रम को और जैन इतिहास को तटस्थ दृष्टि से समझ लें और फिर प्रमाण सहित अपनी कलम निर्भीक रूप से चलाएं, व्यर्थ की आधारहीन भ्रान्तियाँ खड़ी करके समाज में कटुता के बीज न बोएं।

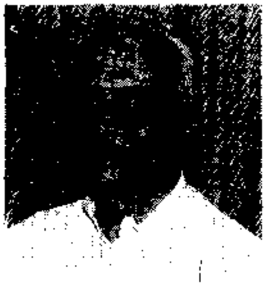

❑ प्रोफेसर डॉ. सागरमल जी जैन का जन्म ता: २२ फरवरी सन् १६३२ में शाजापुर (म.प्र.) में हुआ। आपने एम.ए.एवं साहित्यरत्न की परीक्षाएं श्रेष्ठ अंकों से उत्तीर्ण की। आप इंदौर, रीवाँ, भोपाल और ग्वालियर के महाविद्यालयों में दर्शन शास्त्र के प्रवक्ता, आचार्य एवं विभागाध्यक्ष रहे। सन् १६७६ से १६६६ तक आप पार्श्वनाथ विद्यापीठ शोध संस्थान, वाराणसी के निदेशक रहे। भारत और विदेशों में आपने अनेक व्याख्यान दिए। ओजस्वी वक्ता, लेखक, समालोचक के रूप में सुविख्यात डा. जैन ने जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का विशेष अध्ययन किया। आपने बीस से अधिक शोधपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। आपके सैकड़ों शोधपूर्ण निबंध अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। "श्रमण" के प्रधान संपादक। आपके निर्देशन में तीस छात्रों ने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। जैन विद्या के शीर्षस्थ विद्वान्। अनेक शैक्षणिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं के पदाधिकारी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साधना और ध्यान

❑ प्रोफेसर डॉ. छगनलाल शास्त्री एम.ए (त्रय) पी.एच.डी.
काव्यतीर्थ, विद्यामहोदधि, प्राच्यविद्याचार्य

जैन साधना और ध्यान का हृदयस्पर्शी एवं सटीक विश्लेषण किया है- डॉ. श्री छगनलाल जी शास्त्री ने। शास्त्री जी कई दशकों से जैन योग पर शोध-खोज कर रहे हैं, किंतु वे व्यथित हैं कि साधना एवं योग की पद्धतियाँ आज मात्र अर्थोपार्जन के साधन बन कर रह गई हैं। आइए – जैन जगत् के इस उद्भट विद्वान् की लेखनी से पढ़िए जैन साधना एवं ध्यान का मनोहारी वर्णन !

- सम्पादक

भगवान् महावीर की साधना : ध्यान

अन्तः परिष्कार या आध्यात्मिक विशुद्धि के लिए जैन साधना में ध्यान का बहुत बड़ा महत्व रहा है। अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के अन्यान्य विशेषणों के साथ एक विशेषण 'ध्यानयोगी' भी है। आचारांग सूत्र के नवम् अध्ययन में जहाँ भगवान् महावीर की चर्या का वर्णन है, वहीं उनकी ध्यानात्मक साधना का भी उल्लेख है। विविध प्रकार से नितान्त असंग भाव से उनके ध्यान करते रहने के अनेक प्रसंग वर्णित हैं। एक स्थान पर लिखा है –

"भगवान् प्रहर-प्रहर तक अपनी आँखें बिल्कुल न टिमटिमाते हुए तिर्यक् भित्ति/तिरछी भींत पर केंद्रित कर ध्यान करते थे। दीर्घकाल तक नेत्रों के निर्निमेष रहने से उनकी पुतलियाँ ऊपर को चढ़ जातीं। उन्हें देखकर बच्चे भयभीत हो जाते, 'हन्त-हन्त' कहकर चिल्लाने लगते और दूसरे बच्चों को बुला लेते।"[1]

इस संदर्भ से प्रकट होता है कि भगवान् महावीर का यह ध्यान किसी प्रकार त्राटक-पद्धति से जुड़ा था।

दूसरा प्रसंग है –

"भगवान् अपने विहार क्रम के बीच यदि गृहस्थ-संकुल स्थान में होते तो भी अपना मन किसी में न लगाते हुए ध्यान करते। किसी के पूछने पर भी अभिभाषण नहीं करते। कोई उन्हें बाध्य करता तो वे चुपचाप दूसरे स्थान पर चले जाते अपने ध्यान का अतिक्रमण नहीं करते।"[2]

आगे लिखा है –

भगवान् अपने साधना काल के साढ़े बारह वर्षों में जिन-जिन वास स्थानों में रहे, बड़े प्रसन्न मन रहते थे। रात दिन यत्नशील, स्थिर, अप्रमत्त, एकाग्र, समाहित तथा शांत रहते हुए ध्यान में संलग्न रहते थे।[3]

एक दूसरे स्थान पर उल्लेख है-

"जब भगवान् उपवन के अंतर – आवास में कभी

---

१ अदु पोरिसिं तिरियं भित्तिं चक्खुमासज्ज अंत सो झाइ।
अह चक्खु – भीया सहिया तं हंता हंता बहवे कंदिंसु।।
-आचारांग सूत्र ६.१.५

२. जे के इमे अगारत्था, मीसीभावं पहाय से ज्झाति।
पुट्ठो वि णाभिभासिंसु, गच्छति णाइवत्तई अंजू।।
– आचारांग सूत्र ६.१.७

३. एतेहिं मुणी सयणेहिं, समणे आसी पत्तेरस वासे।
राइंदिवं पि जयमाणे अप्पमत्ते समाहिए झाति।।
– आचारांग सूत्र ६.२.४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यानस्थ हुए, तब वहाँ प्रतिदिन आनेवाले व्यक्तियों ने उनसे पूछा – यहाँ भीतर कौन है? भगवान् ने उत्तर दिया, "मैं भिक्षु हूँ।" उनके कहने पर भगवान् वहाँ से चले गये। श्रमण का यही उत्तम धर्म है। फिर मौन होकर ध्यान में लीन हो गये।[1]

सूत्रकृतांग में भगवान् महावीर अनुत्तर सर्वश्रेष्ठ ध्यान के आराधक कहे गये हैं तथा उनका ध्यान हंस, फेन, शंख और इंदु के समान परम शुक्ल अत्यंत उज्ज्वल बताया गया है।[2]

व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र का एक प्रसंग है। भगवान् महावीर अपने अंतेवासी गौतम से कहते हैं –

"मैं छद्मस्थ-अवस्था में था। तब ग्यारह वर्ष का साधु-पर्याय पालता हुआ, निरंतर दो-दो दिन के उपवास करता हुआ, तप एवं संयम द्वारा आत्मा को भावित-स्वभावाप्लुत करता हुआ, ग्रामानुग्राम विहरण करता हुआ सुंसुमार नगर पहुंचा। वहाँ अशोक वनखंड नामक उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी पर स्थित शिलापट्ट के पास आया, वहाँ स्थित हुआ और तीन दिन का उपवास स्वीकार किया। दोनों पैर संहत किये – सिकोडे, आसनस्थ हुआ, भुजाओं को लंबा किया – फैलाया। एक पुद्गल पर दृष्टि स्थापित की, नेत्रों को अनिमेष रखा, देह को थोड़ा झुकाया, अंगों को, इंद्रियों को यथावत् आत्मकेन्द्रित रखा। एक रात्रि की महाप्रतिमा स्वीकार की। यह क्रम आगे विहार-चर्या में चालू रहा।[3]"

भगवान् के तपश्चरण का यह प्रसंग उनके ध्यान, मुद्रा, आसन-अवस्थिति आदि पर इंगित करता है। इसके आधार पर स्पष्ट रूप में तो कुछ नहीं कहा जा सकता, किंतु इतना अवश्य अनुमेय है कि उनके ध्यान का अपना कोई विशेष क्रम अवश्य रहा, जिसका विशद, वर्णन हमें जैन आगमों में प्राप्त नहीं होता।

वास्तव में जैन परंपरा की जैसी स्थिति आज है, भगवान् महावीर के समय में सर्वथा वैसी नहीं थी। आज लंबे उपवास, अनशन आदि पर जितना जोर दिया जाता है, उसकी तुलना में मानसिक एकाग्रता चैतसिक वृत्तियों का नियंत्रण, विशुद्धीकरण, ध्यान, समाधि आदि गौण हो गये हैं। परिणामतः ध्यान संबंधी अनेक तथ्यों तथा विधाओं का लोप हो गया है।

स्थानांगसूत्र स्थान ४, उद्देशक १, समवायांग सूत्र समवाय ४ तथा आवश्यक निर्युक्ति, कार्योत्सर्ग अध्ययन आदि में इनके व्याख्यापरक वाङ्मय में तथा और भी अनेक आगम ग्रंथों और उनके टीका-साहित्य में एतद्विषयक सामग्री बिखरी पड़ी हैं।

---

१. अयमंतरंसि को एत्थ, अहमंसि त्ति भिक्खू आहट्टु।
अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए स कसाइए झाति।।
— आचारांग सूत्र, ९.२.१२

२. अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता अणुत्तरं झाणवरं झियाइ।
सुसुक्क सुक्कं अपगंडसुक्कं, संखिंदु एगंत वदात सुक्कं।।
— सूत्रकृतांग सूत्र १-६-१६

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा ! छउमत्थ कालियाए, एकारसवास चरियाए, छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे जेणेव सुंसुमार पुरे नगरे जेणेव असोयसंडे उज्जाणे, जेणेव असोयवरपायवे, जेणेव पुढवीसिलावट्टए तेणेव उवागच्छामि। उवागच्छित्ता असोगवर पायवस्स हेट्ठा पुढवी सिलावट्टयंसि अट्ठमभत्तं पगिण्हामि, दो वि पाए साहट्टु वग्घारिय पाणी, एग पोग्गल निविट्ठदिट्ठी अणिमिस णयणे, ईसिपब्भार गहणंकाएणं, अहापणिहिएहिं गत्तेहिं सव्विंदिएहिं गुत्तेहिं एग राइयं महापडिमं उवसंपज्जेत्ता णं विहरामि।
— व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र ३.२.१०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्त्वार्थ सूत्र में ध्यान की व्याख्या

आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में ध्यान की जो परिभाषा की है, उसके अनुसार **"अंतःकरण की वृत्ति का किसी एक विषय में निरोध-स्थापन-एकाग्रता ध्यान है।[1]"**

उन्होंने चैतसिक वृत्ति की एकाग्रता के साथ अपनी परिभाषा में एक बात और कही है, जो बड़ी महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं कि ध्यान के साधने के लिए व्यक्ति का दैहिक संहनन उत्तम कोटि का होना चाहिए।

"संहनन" जैन शास्त्रों का एक पारिभाषिक शब्द है, जो शरीर के संघटन-विशेष के अर्थ में प्रयुक्त है। यहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि ध्यान, जिसका संबंध विशेषतः मन के साथ है, दैहिक दृढ़ता से कैसे जुड़े? कुछ बारीकी में जाएं तो हमें यह प्रतीत होगा कि मन की स्वस्थता के लिए देह की स्वस्थता और शक्तिमत्ता का भी महत्व है। इसका अर्थ यह नहीं कि सबल-प्रबल देह का धनी स्वभावतः उच्च मनोबल का भी धनी होगा। पर, इतना अवश्य है कि जिसका दैहिक स्वास्थ्य समृद्ध हो, वह यदि ध्यान साधना में अपने को लगाए, तो एक दुर्बल, अस्वस्थ काय मनुष्य की अपेक्षा शीघ्र तथा अधिक सफल होगा। अस्वस्थ और अनुत्तम संहननमय शरीर के व्यक्ति में मन की स्थिरता इसलिए कम हो जाती है कि वह देहगत अभाव, अल्पशक्तिमत्ता आदि के कारण समय-समय पर अस्थिर या विचलित होता रहता है।

हठयोग में देह-शुद्धि पर जो विशेष जोर दिया गया है उसका तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि दूषित, मलग्रस्त और अस्वस्थ देह **राजयोग** जो ध्यान चिन्तनमूलक है, के योग्य नहीं होता। उत्तम संहनन की बात से यह तुलनीय है।

यहाँ एकाग्र चिंतन के साथ उत्तम संहनन की जो बात कही गई है, उसका आशय ध्यान के अनवरुद्ध सधने से है। ध्यान की चिरस्थिरता, अविचलता और अभग्नता की दृष्टि से ही आचार्य उमास्वाति ने यह कहा है अन्यथा यत् किञ्चित् एकाग्र चिंतन तो हर किसी के सधता ही है। पारिभाषिक रूप में जिसे उत्तम संहनन कहा गया है, वह आज किसी को प्राप्त नहीं हैं। वैसी स्थिति में आज ध्यान का अधिकारी कोई हो ही नहीं पाता। फिर आचार्य हरिभद्र, हेमचंद्राचार्य, शुभचंद्र आदि महामनीषी, जिन्होंने ध्यान पर काफी लिखा है, वैसा कैसे करते? सामान्यतः एकाग्रचिंतन मूलक साधना या ध्यान का अधिकारी अपनी शक्ति, मनोबल, संकल्पनिष्ठा के अनुसार प्रत्येक योगाभिलाषी योगानुरागी पुरुष है।

ध्यान के भेद

जैन परंपरा ध्यान के आर्त्त, रौद्र, धर्म तथा शुक्ल ये चार भेद स्वीकार करती है।[2] उपादेयता की दृष्टि से इन चारों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, एक-आर्त्त, रौद्र तथा दूसरा – धर्म-शुक्ल ध्यान। जीवन शुद्धि, अंतःपरिष्कार या मोक्ष की दृष्टि से धर्म एवं शुक्ल ध्यान उपादेय है।[3]

आर्त्त तथा रौद्र अशुभ बंध के हेतु हैं। इसलिए वे अनुपादेय एवं अश्रेयष्कर हैं। पर, ध्यान की कोटि में तो आते ही हैं। क्योंकि मन की एकाग्रता, चाहे किसी भी कारण से हो, वहाँ है।

आर्त्त और रौद्रध्यान जब अनुपादेय एवं अश्रेयस्कर हैं, तो उनके संबंध में विशेष जानने की क्या आवश्यकता है? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है, किंतु यहाँ विशेषरूप से समझने की बात यह है कि साधारणतः मनुष्य की एक

१. उत्तम संहननस्यैकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानम्-तत्त्वार्थ सूत्र ९.२७
२. आर्त-रौद्र-धर्म शुक्लानि। – तत्त्वार्थसूत्र ९-२९
३. परे मोक्ष हेतू! – तत्त्वार्थसूत्र ९-३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्बलता है। अशुभ या विकार की ओर उसका मन झट चला जाता है, सत् या शुभ की दिशा में, आगे बढ़ने में तन्मूलक चिंतन में, धर्मध्यान में प्रवृत्त होने हेतु बड़ा अध्यवसाय और उद्यम-प्रयत्न करना होता है। अशुभमूलक आर्त्त-रौद्र ध्यान से वह बचे इसलिए यह आवश्यक है कि वह जाने तो सही – वे क्या हैं? सिद्धांततः जगत् में सभी पदार्थ, सभी बातें ज्ञेय-ज्ञातव्य या जानने योग्य हैं। ज्ञात पदार्थों या विषयों में जो हेय हैं उनका परित्याग किया जाए तथा जो उपादेय हैं, उन्हें ग्रहण किया जाए। यही कारण है कि शास्त्रों में आर्त्त और रौद्र ध्यान का यथाप्रसंग विवेचन हुआ है।

आर्त्तध्यान

तत्त्वार्थ सूत्र में आर्त्त ध्यान चार कारणों से उत्पन्न होने का उल्लेख है। उस आधार पर उसके चार भेद माने गये हैं। तदनुसार अमनोज्ञ - अप्रिय वस्तुओं के प्राप्त होने पर उनके विप्रयोग या वियोग के लिये सतत चिन्ता करना पहला आर्त्तध्यान है।[१]

वेदना या दुःख के आने पर उसे दूर करने की निरन्तर चिंता करना दूसरा आर्त्तध्यान है।[२]

मनोज्ञ/प्रिय वस्तुओं का वियोग हो जाने पर उनकी प्राप्ति के लिए अनवरत चिंतामग्न रहना तृतीय आर्त्तध्यान है।[३]

अप्राप्त अभीप्सित वस्तु की प्राप्ति के लिए संकल्परत रहना तदनुरूप चिंतन करना चौथा आर्त्तध्यान है।[४]

आर्ति का अर्थ पीड़ा, शोक या दुःख है। आर्त्त का आशय है- आर्तियुक्त अर्थात् पीड़ित, दुःखित, शोकान्वित। जब व्यक्ति बहुत दुःखित होता है तो उसका चिंतन और-और सभी बातों से हटकर मात्र उस दुःख पर केन्द्रित हो जाता है। आचार्य उमास्वाति ने जैसा प्रतिपादन किया है उसके अनुसार जब किसी अनिष्ट वस्तु का संयोग हो, इष्ट पदार्थ का वियोग हो, दैहिक या मानसिक पीड़ा हो, भौगिक लालसा की उत्कटता हो, तब मन की, मानसिक चिन्तन की ऐसी स्थिति बनती है। दूसरे शब्दों में बहिरात्म-भाव की जितनी उग्रता-तीव्रता होगी, आर्त-चिंतन उतना ही प्रचंड होगा। वह आत्मा के विकास, सम्मार्जन या शान्ति की दृष्टि में सर्वथा अहितकर, अग्राह्य या त्याज्य है।

रौद्रध्यान

जिस प्रकार उद्‌भावक कारणों के आधार पर आर्त्तध्यान का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार रौद्रध्यान का भी तत्त्वार्थसूत्र में वर्णन है। हिंसा, असत्य, चौर्य, विषय-संरक्षण के लिए जो सतत चिंतामग्नता होती है, वह रौद्रध्यान है।[५] इसे अधिक स्पष्ट यों समझा जा सकता है, जब कोई व्यक्ति हिंसा करने हेतु उतारु हो, उसका अंतर्मानस अत्यंत क्रूर और कठोर बन जाता है और एकमात्र उसी हिंसामूलक ध्यान में लगा रहता है।

असत्य के संबंध में भी ऐसा ही है। जब व्यक्ति असत्य बोलने, उसे सत्य सिद्ध करने में तत्पर होता है तो उसके मन से सत्योन्मुख सहज सौम्य भाव विलुप्त हो जाता है। अस्वाभाविक एवं मिथ्या भाव रुद्रता या क्रूरता में परिणत हो जाता है। ऐसी ही स्थिति चोरी में बनती है।

१. आर्तममनोज्ञानां संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति समन्वाहारः – तत्त्वार्थसूत्र ९.३१

२. वेदनायाश्च – तत्त्वार्थसूत्र ९.३२

३. विपरीतं मनोज्ञानाम् – तत्त्वार्थसूत्र ९.३३

४. निदानं च – तत्त्वार्थसूत्र ९.३४

५. हिंसाऽनृतस्तेयविषय संरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत देशविरतयोः – तत्त्वार्थ सूत्र ९.३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोर को भी अपने लक्ष्य में जो वस्तुतः दुर्लक्ष्य है, तन्मय भाव से जुट जाना होता है।

ये कार्य नितान्त अशुभ है। इसलिए भावात्मक वृत्ति भीषण और क्रूर हो जाती है। विषय, भोग या भोग्य पदार्थों के संरक्षण के लिए भी व्यक्ति कठोर, क्रूर तथा उन्मत्त बन जाता है। उसका चिंतन अत्यंत रौद्रभावापन्न अथवा दुर्धर्ष क्रोधावेश लिए रहता है।

रौद्र शब्द रुद्र से बना है। रुद्र के मूल में रुद् धातु है – जिसका अर्थ रोना है – जो अपनी भीषणता, क्रूरता अथवा भयावहता द्वारा रूदन-द्रवित कर दे। ऊपर जिन स्थितियों का विवेचन हुआ, वे ऐसी ही दुःसह होती हैं।

इन पाप बंधक दो ध्यानों के बाद धर्मध्यान और शुक्लध्यान का निरूपण आता है। ये दोनों ध्यान आत्मलक्षी हैं। शुक्लध्यान विशिष्ट ज्ञानी साधकों के सधता है। वह अन्तःस्थैर्य या आत्मस्थिरता की क्रमशः पराकाष्ठा की दशा है। धर्मध्यान उससे पहले की स्थिति है। वह शुभमूलक है। कुंदकुंद आदि महान् आचार्यों ने अशुभ, शुभ और शुद्ध इन तीन शब्दों का विशेष रूप से व्यवहार किया है। अशुभ पापमूलक, शुभ पुण्यमूलक तथा शुद्ध पाप-पुण्य से अतीत, निरावरण शुद्ध आत्ममूलक है। आर्त्त-रौद्र ध्यान अशुभात्मक, धर्मध्यान शुभात्मक तथा शुक्ल ध्यान शुद्धात्मक है।

धर्मध्यान

तत्त्वार्थ सूत्र में धर्मध्यान के आज्ञा विचय, अपायविचय, विपाक विचय तथा संस्थान विचय, ये चार भेद किये गये हैं।[1]

आज्ञाविचय

विचय का अर्थ गहन चिंतन, परीक्षण या मनन है। आज्ञाविचय ध्यान में सर्वज्ञ-वाणी ध्येय-ध्यान के केंद्र रूप में ली जाती है। उनकी वाणी-देशना सर्वथा सत्य है, पूर्वापर विरोध विवर्जित है, सूक्ष्म है। वह तर्क और युक्ति द्वारा अबाधित है। वह आदेय है। सभी द्वारा आज्ञा रूप में ग्रहण किये जाने योग्य है, हितप्रद है। क्योंकि सर्वज्ञ अतथ्यभाषी नहीं होते।

यों चित्त को सर्वज्ञ की वाणी या आज्ञा पर टिकाते हुए, एकाग्र करते हुए द्रव्य, गुण और पर्याय आदि की दृष्टि से तन्मयता और स्थिरतापूर्वक ध्यान करना आज्ञा विचय कहा जाता है।[2]

अपायविचय

उपाय का विलोम अपाय है। उपाय प्राप्ति या लाभ का सूचक है। अपाय हानि विकार या दुर्गति का द्योतक है। कषाय – राग-द्वेष, क्रोध, मान और माया आदि से उत्पन्न होनेवाले अपाय-कष्ट या दुर्गति को सम्मुख रखकर जहाँ चिंतन को एकाग्र किया जाता है, वह अपाय विचय ध्यान कहा जाता है। अपाय चिंतन उस ओर से निवृत्त आत्म भाव में संप्रवृत्त होने की दिशा प्रदान करता है। इस ध्यान में संलग्न योगी-साधक ऐहिक – इस लोक विषयक तथा आमुष्मिक – परलोक विषयक अपायों का परिहार करने में समुद्यत हो जाता है। पाप-कर्मों से निवृत्त हुए

---

१. आज्ञाऽपायविपाक संस्थान विचयाय धर्ममप्रमत्त संयतस्य।
— तत्त्वार्थसूत्र ६.३६

२. आज्ञां यत्र पुरस्कृत्य, सर्वज्ञानामबाधिताम्।
तत्वतस्चिन्तयेदर्थास्तदाज्ञा ध्यान मुच्यते।।
सर्वज्ञवचनं सूक्ष्मं, हन्यते यन्न हेतुभिः।
तदाज्ञा रूप मादेयं, न मृषा भाषिणो जिनाः।।
— योगशास्त्र १०. ८-९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिना अपायों से कोई बच नहीं सकता।[1]

विपाक-विचय

अनादिकाल से सांसारिक आत्माओं के साथ कर्म संलग्न है। यह संलग्नता तब तक चलती रहेगी, जब तक संयम और तप द्वारा व्यक्ति उनका संपूर्णतः क्षय नहीं कर डालेगा। जैन दर्शन में कर्मवाद का जितना विशद, व्यापक और विस्तृत विवेचन है, वैसा अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होता।

प्रतिक्षण कर्मों की फलात्मक परिणति होती रहती है, उसे कर्म-विपाक कहा जाता है। ध्यानाभ्यासी कर्मविपाक के ध्येय के रूप में परिगृहीत कर उस पर अपना चिंतन स्थिर, एकाग्र करता है। उसे विपाक विचय ध्यान कहा जाता है।[2]

इस ध्यान द्वारा साधक में कर्मों से पृथक् होते उन्हें निर्जीर्ण करने तथा आत्मभाव से संपृक्त होने की संस्फूर्ति का उद्‌भव होता है।

अपाय-विचय और विपाक विचय दोनों की दिशाएँ लगभग एक जैसी हैं। अंतर केवल इतना-सा है कि अपाय विचय के चिंतन का क्षेत्र व्यापक है और विपाक विचय का उसकी अपेक्षा सीमित है-कर्मफल तक अवस्थित है। विपाक विचय के चिन्तन क्रम को स्पष्ट करते हुए आचार्य हेमचंद्र ने लिखा है – साधक अपने समक्ष एक ओर तीर्थंकरों के (अष्ट महाप्रतिहार्य आदि) श्रेष्ठतम साम्पतिक वैभव तथा दूसरी ओर प्राणियों के अत्यंत घोर कष्टमय नारकीय जीवन – ये दोनों एक दूसरे के अत्यंत विरुद्ध हैं। ध्यातव्य विषयों पर अपने चिंतन को कर्मविपाक के वैचित्र्य के साथ जोड़े – कर्मों का फल कितना विभिन्न-विचित्र है क्या से क्या हो जाता है। इस ध्यान द्वारा साधक को कर्म विमुक्ति की यात्रा पर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है।

संस्थान विचय

इस लोक का न आदि है और न अंत। स्थिति-मूलतः सदैव ध्रुव या शाश्वत बने रहना। उत्पत्ति – नये-नये पर्यायों का उत्पन्न होना, व्यय – उनका मिटना, यों यह लोक 'उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक' है। लोक के संस्थान-अवस्थिति या आकृति का जिस ध्यान में चिंतन किया जाता है उसे संस्थान विचय कहा जाता है।[3]

इस ध्यान के फल का निरूपण करते हुए लिखा है-इस लोक में नाना प्रकार के द्रव्य हैं। उनमें अनंत पर्याय परिवर्तित-नवाभिनव रूप में परिणत होते जाते हैं, पुराने मिटते जाते हैं, नये उत्पन्न होते जाते हैं। उन पर मनन, एकाग्र चिंतन करने से मन जो निरन्तर उनसे जुड़ा रहता है। राग-द्वेष आदिवश आकुल नहीं होता। इस ओर से अनासक्त बनता जाता है। जागतिक पर्यायों पर, जो अनित्य हैं, ध्यान करने से जगत् के अनित्यत्व का भान

१. रागद्वेष कषायाद्यैर्जाय मानानू विचिन्तयेत्।
यत्रापायांस्तदपाय विचय ध्यानमुच्यते।।
ऐहिकामुष्मिकापाय-परिहार परायणः
ततः प्रति निवर्तेत् समन्तात् पापकर्मणः।।
— योगशास्त्र १०/१०.११

२. प्रतिक्षण समुद्‌भूतो यत्र कर्म फलोदयः
चिन्त्यते चित्ररूपः स विपाक विचयोदयः।।
या संपदाऽर्हतो या च, विपदा नारकात्मनः,
एकातपत्रता तत्र, पुण्यापुण्यस्य कर्मणः।।
— योगशास्त्र १०/१२,१३

३. अनाद्यनन्त लोकस्य, स्थित्युत्पत्ति व्ययात्मनः।
आकृतिं चिन्तयेद्यत्र संस्थान विचयण सतु।।
— योगशास्त्र १०-१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है, योगोन्मुख साधक का आत्मरमण का भाव जागृत होता है।[1]

सारांश यह है कि धर्मध्यान वैराग्य/पर - पदार्थों की विरक्ति तथा आत्मसौख्य में अनुरक्ति-अनुराग तत्परता उजागर करता है। उससे जो आत्मसौख्य/आध्यात्मिक आनंद प्राप्त होता है, उसे केवल स्वयं के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है, जो इंद्रियगम्य नहीं है, आत्मगम्य है।[2]

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि धर्मध्यान चित्त शुद्धि या चित्त-निरोध का प्रारंभिक अभ्यास है। शुक्ल ध्यान में वह अभ्यास परिपक्व हो जाता है।

शुक्ल ध्यान

मन सहज ही चंचल है, विषयों का आलंबन पाकर वह चंचलता बढ़ती जाती है। ध्यान का कार्य उस चंचल और भ्रमणशील मन को शेष विषयों से हटाकर किसी एक विषय पर स्थिर कर देना है।[3]

ज्यों-ज्यों स्थिरता बढ़ती है, मन शांत और निष्प्रकम्प होता जाता है। शुक्लध्यान के अंतिम चरण में मन की प्रवृत्ति का पूर्ण निरोध-पूर्ण संवर हो आता है, अर्थात् समाधि अवस्था प्राप्त हो जाती है।

आचार्य उमास्वाति ने शुक्लध्यान के चार भेद बतलाए हैं –

१. प्रथक्त्व-वितर्क सविचार २. एकत्वबितर्क अविचार ३. सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति तथा ४. व्युपरत क्रिया निवृत्ति।[4]

पृथक्त्व वितर्क सविचार

जैन परंपरा के अनुसार वितर्क का अर्थ श्रुतावलंबी विकल्प है। पूर्वधर – विशिष्ट ज्ञानी मुनि पूर्वश्रुत-विशिष्ट ज्ञान के अनुसार किसी एक द्रव्य का आलंबन लेकर ध्यान करता है, किंतु उसके किसी एक परिणाम या पर्याय (क्षण-क्षणवर्ती अवस्था विशेष) पर स्थिर नहीं रहता। वह उसके विविध परिणामों पर संचरण करता है – शब्द से अर्थ पर, अर्थ से शब्द पर तथा मन-वाणी और देह में एक-दूसरे की प्रकृति पर संक्रमण करता है। अनेक अपेक्षाओं में चिंतन करता है।

ऐसा करना पृथक्त्व-वितर्क सविचार शुक्लध्यान है। शब्द, अर्थ, मन, वाक् तथा देह पर संक्रमण होते रहने पर भी ध्येय द्रव्य एक ही रहता है। अतः उस अंश में मन की स्थिरता बनी रहती है। इस अपेक्षा से उसे ध्यान कहने में आपत्ति नहीं है।

महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में सवितर्क समापत्ति (समाधि) का जो वर्णन किया है[5], वह पृथक्त्व-वितर्क सविचार शुक्ल ध्यान से तुलनीय है। वहाँ शब्द-अर्थ और ज्ञान इन तीनों के विकल्पों से संकीर्ण-सम्मिलित समापत्ति समाधि को सवितर्क-समापत्ति कहा गया है।

---

१. नाना द्रव्य गतानन्त पर्याय परिवर्तनात्
सदा सक्तं मनो नैव, रागाद्याकुलतां व्रजेत्।। – योगशास्त्र १०.१५

२. अस्मिन्नितान्त वैराग्य व्यतिषंग तरंगित
जायते देहिनां सौख्यं स्वसंवेद्यमतीन्द्रियम्।। – योगशास्त्र १०.१७

३. "शुचं क्लमयतीति शुक्लम्।" – तत्त्वार्थ राजवार्तिक

४. पृथक्त्वैकत्व वितर्क सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरत क्रियानिवृत्तीनि।- तत्त्वार्थ सूत्र ६.४१

५. एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्म विषया व्याख्याता – योगसूत्र १.४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन एवं पातंजल योग से संबद्ध इन तीनों विधाओं की गहराई में जाने से अनेक दार्शनिक तथ्यों का प्राकट्य संभाव्य है।

एकत्व-वितर्क अविचार

पूर्वधर-विशिष्ट ज्ञानी पूर्वश्रुत-विशिष्ट ज्ञान के किसी एक परिणाम पर चित्त को स्थिर करता है। वह शब्द, अर्थ, मन, वाक् तथा देह पर संक्रमण नहीं करता[1]। वैसा ध्यान एकत्व वितर्क अविचार की संज्ञा से अभिहित होता है। पहले में पृथक्त्व है अतः वह सविचार है। दूसरे में एकत्व है। इस अपेक्षा से उसकी अविचार संज्ञा है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि पहले में वैचारिक संक्रम है, दूसरे में असंक्रम। आचार्य हेमचंद्र ने इन्हें **पृथक्त्व श्रुत सविचार** तथा **एकत्व श्रुत अविचार** की संज्ञा से अभिहित किया है।[2]

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित **निर्वितर्क-समापत्ति** एकत्व-वितर्क अविचार से तुलनीय है। पतंजलि लिखते हैं - जब स्मृति परिशुद्ध हो जाती है अर्थात् शब्द और प्रतीति की स्मृति लुप्त हो जाती है चित्तवृत्ति केवल अर्थमात्र का-ध्येय मात्र का निर्भास करानेवाली-ध्येय मात्र के स्वरूप को प्रत्यक्ष करानेवाली होकर, स्वयं स्वरूप शून्य की तरह बन जाती है, तब वैसी स्थिति निर्वितर्क-समापत्ति से संज्ञित होती है।[3]

महर्षि पतंजलि के अनुसार यह विवेचन स्थूल ध्येय पदार्थों की दृष्टि से है। जहाँ ध्येय पदार्थ सूक्ष्म हो, वहाँ उक्त दोनों की संज्ञा सविचार और निर्विचार समाधि हो जाती है।

निर्विचार समाधि में अत्यंत वैशद्य-नैर्मल्य रहता है। अतः योगी उसमें अध्यात्म प्रसाद-आत्मोल्लास प्राप्त करता है। उस समय योगी की प्रज्ञा ऋतंभरा हो जाती है। ऋतम् का अर्थ सत्य, स्थिर या निश्चित है। वह प्रज्ञा या बुद्धि सत्य को ग्रहण करनेवाली होती है। उसमें संशय या भ्रम का लेश भी नहीं रहता। उस ऋतंभरा प्रज्ञा से उत्पन्न संस्कारों के प्रभाव से अन्य संस्कारों का अभाव हो जाता है। अंततः ऋतंभरा प्रज्ञा से जनित संस्कारों में भी आसक्ति न रहने के कारण उनका भी निरोध हो जाता है। यों समस्त संस्कार निरुद्ध हो जाते हैं। फलतः संसार के बीज का सर्वथा अभाव हो जाने से निर्बीज-समाधि दशा प्राप्त होती है।

इस संबंध में जैन दृष्टिकोण कुछ भिन्न है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा पर जो कर्मावरण छाये हुए हैं उन्हीं के कारण उसका शुद्ध स्वरूप आवृत्त है। ज्यों ज्यों उन आवरणों का विलय होता जाता है, आत्मा की वैभाविक दशा छूटती जाती है और स्वाभाविक दशा उद्भासित होती जाती है।

आवरण के अपचय तथा नाश के जैन दर्शन में तीन क्रम हैं – क्षय, उपशम तथा क्षयोपशम। किसी कार्मिक आवरण का सर्वथा नष्ट या निर्मूल हो जाना क्षय, अवधि विशेष के लिए उपशांत-मिट जाना या शांत हो जाना उपशम एवं कर्म की कतिपय प्रकृतियों का सर्वथा क्षीण नष्ट हो जाना तथा कतिपय प्रकृतियों का अवधि विशेष के लिए उपशांत हो जाना क्षयोपशम कहा जाता है। कर्मों के उपशम से जो समाधि अवस्था प्राप्त होती है, वह सबीज है क्योंकि वहाँ कर्म बीज का सर्वथा उच्छेद या

१. तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः। – योगसूत्र १.४२

२. ज्ञेयं नानात्वश्रुत विचारमैक्य श्रुताविचारं च।
सूक्ष्म क्रियमुत्सम क्रियमिति भेदेश्चतुर्धा तत्।। – योगशास्त्र ११.५

३. स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थ मात्र निर्भासा निर्वितर्का। – योगसूत्र १.४३

४. एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषय व्याख्याता – योगसूत्र १.४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्मूलन नहीं होता, केवल उपशम होता है। कार्मिक आवरणों के संपूर्ण क्षय से जो समाधि अवस्था प्राप्त होती है, वह निर्बीज है क्योंकि वहाँ कर्म बीज परिपूर्ण रूप में दग्ध/विनष्ट हो जाता है। कर्मों के उपशम से प्राप्त उन्नत दशा फिर अवनत दशा में परिवर्तित हो सकती है, पर कर्मक्षय से प्राप्त उन्नत दशा में ऐसा नहीं होता।

अस्तु, जैन साधना और योग पर बहुत संक्षेप में उपर्युक्त विचार मैंने व्यक्त किये हैं। यह एक बड़ा महत्वपूर्ण विषय है। इस पर वर्षों से मैं अध्ययन-अनुसंधान में अभिरत हूँ। बहुत कुछ लिखना चाहता था, किंतु स्थान की अपनी सीमा है।

यहाँ एक बात विशेष रूप से ज्ञातव्य है। जैन योग पर स्वतंत्र रूप से भी कतिपय आचार्यों ने ग्रंथों की रचना की। उनमें आचार्य हरिभद्रसूरि, आचार्य हेमचंद्र, आचार्य शुभचंद्र तथा उपाध्याय यशोविजय आदि मुख्य हैं।

जैन परंपरा में आचार्य हरिभद्र सूरि वे पहले मनीषि हैं जिन्होंने योग को एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने संस्कृत में **योगदृष्टि समुच्चय, योगबिंदु** तथा प्राकृत में **योगशतक** और **योगविंशिका** नामक ग्रंथ लिखे। इन चारों ग्रंथों का मैंने हिंदी में अनुवाद – संपादन एवं विश्लेषण किया है। जो **"जैनयोग ग्रंथ चतुष्टय"** के नाम से मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर (राजस्थान) द्वारा प्रकाशित है। हिंदी में इन महान् ग्रंथों का यह पहला अनुवाद है।

आचार्य हरिभद्र ने इन ग्रंथों में अनेक प्रकार से जैनयोग का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण किया है। **योग दृष्टि समुच्चय में उन द्वारा निरुपित-आविष्कृत मित्रा, तारा, बला, दीप्रा, स्थिरा, कांता, प्रभा एवं परा नामक आठ योगदृष्टियाँ योग के क्षेत्र में निःसंदेह उनका एक अभूतपूर्व मौलिक चिंतन है।**[1]

ये योगदृष्टियां अपने आप में एक स्वतंत्र शोध का विषय है।

आचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र में **पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान के चार भेदों का बड़ा मार्मिक विवेचन किया है। पिंडस्थ ध्यान की उन्होंने पार्थिवी आग्नेयी, वायवी, वारुणी तथा तत्वभू नामक पाँच धारणाओं का वर्णन किया है, जहाँ पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु तथा आत्मस्वरूप के आधार पर ध्यान करने का बड़ा विलक्षण विश्लेषण है।**[2]

आचार्य शुभचंद्र ने पिण्डस्थ ध्यान की धारणाओं के अतिरिक्त शिवतत्व, गरुडतत्व और कामतत्व के रूप में ध्यान का जो मार्मिक निरूपण किया है, वह वास्तव में उनकी अनूठी सूझ है, मननीय है।

प्राचीन जैन आचार्यों ने योग पर जितना जो लिखा है, उस पर जितना जैसा अपेक्षित है, अध्ययन, अनुशीलन अनुसंधान नहीं हो सका। यह बड़े खेद का विषय है। यदि जैन विद्वान्, जैन तत्त्वानुरागी मनीषी इस दिशा में कार्य करते तो न जाने कितने महत्वपूर्ण योग विषयक उपादेय तत्त्व, तथ्य आविष्कृत होते।

यह भी एक विषाद का विषय है कि आज अन्यान्य क्षेत्रों की तरह योग का क्षेत्र भी एक अर्थ में व्यावसायिकता लेता जा रहा है। अमेरिका आदि में अनेक योग केंद्र चल रहे हैं। आसनादि का जो प्रशिक्षण दिया जाता है, वह सब अर्थ – पैसे के लिए है। वहाँ यह लगभग विस्मृत जैसा है कि आसन यम-नियम के बिना अधूरे हैं। प्राणायाम का प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के बिना क्या सार्थक्य

१. योगदृष्टि समुच्चय २१.१८६
२. योगशास्त्र ७.१०.२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है? उस दिशा में कौन जाए, क्यों जाए, क्यों सोचे? योग से तो पैसा मिलना चाहिए।

एक और कथ्य है - ऐसा भी हम अपने देश में देख रहे है, वित्त तो योग पर नहीं छाया है, किंतु लोकेषणा इतनी अधिक व्याप्त हो गई है कि जैन योग के प्राचीन आचार्यों के सिद्धान्तों पर चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करने का किसीको अवकाश ही नहीं हैं। ध्यान और योग के प्रणेता अभिनव आविष्कर्ता की ख्याति एवं प्रशस्ति का आकर्षण इतना अधिक मन में घर कर गया है कि योग की अंतः समाधान, आत्मशांति और समाधिमूलक फलवत्ता गौण होती जा रही है। यह भी योग का एक प्रकार से व्यवसायीकरण है। कृपया योग को व्यवसाय न बनाएं यह तो चिन्तामणि रत्न है। इसका उपयोग उसके स्वरूप के अनुकूल ही होना चाहिए।

ये कुछ कटुक्तियाँ हैं, पर वस्तुतः स्थिति आज इससे कुछ भिन्न प्रतीत नहीं होती।

अंत में मैं यही कहूँगा कि योग एक ऐसा विषय है जिसकी उपयोगिता त्रिकालवर्तिनी है। आज के तनाव, अनैतिकता, अनाचरण, अव्यवस्था और असंतुलनपूर्ण जन-जीवन में योगाभ्यास और अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। अजगर की तरह निगलने को उद्यत इन समस्याओं से जूझने के लिए योग के यथार्थ स्वरूप का बोध, अभ्यास, तन्मूलक चिन्तन और व्यवहार सर्वथा अपरिहार्य है। कितना अच्छा हो, हमारे धर्मोपदेष्टा इस विषय को सर्वाधिक महत्व देते हुए योग की जीवनगत उपयोगिता को उजागर करें। ●●●

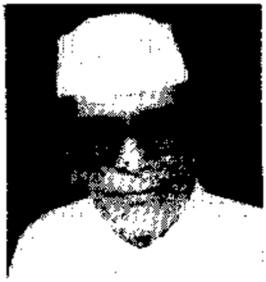

❑ **सरस्वती पुत्र एवं भारतीय विद्या के समुन्नयन में समर्पित प्रो. डॉ. छगनलाल जी 'शास्त्री' निःसन्देह राष्ट्र के प्रबुद्ध मनीषी हैं। काव्यतीर्थ, विद्यामहोदधि एवं निम्बार्कभूषण से विभूषित डॉ. शास्त्री संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं के आधिकारिक विद्वान् हैं। वैदिक, आर्हत् एवं सौगात आदि विभिन्न दर्शनों के ज्ञाता एवं मर्मज्ञ ! मद्रास विश्वविद्यालय में डिपार्टमेन्ट ऑफ जैनोलॉजी की स्थापना में आपश्री का अनन्य योगदान हैं। कई वर्षों तक इसी विभाग को कुशल प्राध्यापक के रूप में महती सेवाएं दीं। रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ प्राकृत जैनोलॉजी एण्ड अहिंसा, वैशाली में भारतीय तथा वैदेशिक छात्रों को शिक्षण और मार्गदर्शन दिया। अनेक कृतियाँ संपादित, अनूदित एवं व्याख्यात ! "आचार्य हेमचन्द्रः काव्यानुशासनञ्च - समीक्षात्मक-मनुशीलनम्" महत्वपूर्ण ग्रंथ इसी वर्ष प्रकाशित ! संप्रतिः लेखन - सम्पादन - अध्ययन - अध्यापन।**

— सम्पादक

जिंदगी में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं वस्तुओं का कहीं प्राचुर्य तो कहीं अभाव या सीमित रूप होता है। ये जिन्दगी के साधन हैं। अधिक साधनों वाला बहुत ऊँचा है और थोड़े साधनों वाला नीचा है। अमीर गरीब, छोटा-बड़ा आदि सामाजिक व्यवस्था का या मानवीय विचार वाला व्यापार है और कुछ नहीं है। वस्तु, धन को विशेषण बना दिया आदमी के लिए। आदमी तो वही है, उसी माटी का बना है, वही जीवन जीने की प्रक्रिया है।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधना और सेवा का सहसम्बन्ध

❑ डॉ. सागरमल जैन

साधना और सेवा एक-दूसरे के अभिन्न अंग हैं। साधना तो है किंतु ग्लान-रुग्ण के प्रति सेवा की भावना नहीं है, तो वह साधक निकृष्ट है। वैसी साधना दम्भ है, पाखंड है। जैन, वैदिक और बौद्धधर्म में व्याप्त सेवा और साधना के संबंधों को परिभाषित कर रहे हैं – जैन दर्शन के उत्कृष्ट गवेषक-लेखक – डॉ. सागरमलजी जैन। – सम्पादक

साधना और सेवा : एक दूसरे के पूरक

सामान्यतः साधना व्यक्तिगत और सेवा समाजगत है। दूसरे शब्दों में साधना का सम्बन्ध व्यक्ति स्वयं से होता है अतः वह वैयक्तिक होती है, जबकि सेवा का सम्बन्ध दूसरे व्यक्तियों से होता है। अतः उसे समाजगत कहा जाता है। इसी आधार पर कुछ विद्वानों की यह अवधारणा है कि साधना और सेवा एक-दूसरे से निरपेक्ष हैं। इनके बीच किसी प्रकार का सहसम्बन्ध नहीं है। किन्तु मेरी दृष्टि में साधना और सेवा को एक दूसरे से निरपेक्ष मानना उचित नहीं है, वे एक दूसरे की पूरक हैं, क्योंकि व्यक्ति अपने आप में केवल व्यक्ति ही नहीं है, वह समाज भी है। व्यक्ति के अभाव में समाज की परिकल्पना जिस प्रकार आधारहीन है, उसी प्रकार समाज के अभाव में व्यक्ति, विशेष रूप से मानव व्यक्ति, का भी कोई अस्तित्व नहीं है। क्योंकि न केवल मनुष्यों में, अपितु किसी सीमा तक पशुओं में भी एक सामाजिक व्यवस्था देखी जाती है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि चींटी और मधुमक्खी जैसे क्षुद्र प्राणियों में भी एक सामाजिक व्यवस्था होती है। अतः यह सिद्ध है कि व्यक्ति और समाज एक-दूसरे से निरपेक्ष नहीं है। यदि व्यक्ति और समाज परस्पर सापेक्ष हैं और उनके बीच कोई सहसम्बन्ध है, तो फिर हमें यह भी मानना होगा कि साधना और सेवा भी परस्पर सापेक्ष है और उनके बीच भी एक सहसम्बन्ध है। जैन दर्शन में व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति का चित्रण करते हुए स्पष्ट रूप से यह माना गया है कि पारस्परिक सहयोग प्राणीय प्रकृति है। इस सन्दर्भ में जैन दार्शनिक उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में एक सूत्र दिया है:-

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

– तत्त्वार्थ सूत्र - ५/२१

अर्थात् एक दूसरे का हित साधन करना प्राणियों की प्रकृति है। प्राणी जगत् में यह एक स्वाभाविक नियम है कि वे एक-दूसरे के सहयोग या सहकार के बिना जीवित नहीं रह सकते। दूसरे शब्दों में कहें तो जीवन का कार्य है जीवन जीने में एक दूसरे का सहयोगी बनना। जीवन एक-दूसरे के सहयोग से ही चलता है। अतः एक-दूसरे का सहयोग करना प्राणियों का स्वाभाविक धर्म है।

व्यक्ति और समाज में अंग-अंगीय सम्बन्ध

कुछ विचारकों का विचार है कि व्यक्ति स्वभावतः स्वार्थी है, वह केवल अपना हित चाहता है, किन्तु यह एक भ्रान्त अवधारणा है। यदि व्यक्ति और समाज एक दूसरे से निरपेक्ष नहीं है, तो हमें यह मानना होगा कि व्यक्ति के हित में ही समाज का हित और समाज के हित में ही व्यक्ति का हित समाया हुआ है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक कल्याण और वैयक्तिक कल्याण एक-दूसरे से पृथक् नहीं है। यदि व्यक्ति समाज का मूलभूत घटक है, तो हमें यह मानना होगा कि समाज-कल्याण में व्यक्ति का कल्याण निहित है। व्यक्तियों के अभाव में समाज एक अमूर्त कल्पना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। व्यक्ति से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथक् होकर समाज की कोई सत्ता नहीं है। इसलिए सामाजिक कल्याण के नाम पर जो किया जाता है या होता है, उसका सीधा लाभ तो व्यक्ति को ही है। जैनधर्म-दर्शन की मूलभूत अवधारणा सापेक्षवाद की है। उसका यह स्पष्ट चिंतन है कि व्यक्ति के बिना समाज और समाज के बिना व्यक्ति सम्भव ही नहीं है। व्यक्ति समाज की कृति है। उसका निर्माण समाज की कर्मशाला में ही होता है। हमारा वैयक्तिक विकास, सभ्यता एवं संस्कृति समाज का परिणाम है। पुनः समाज भी व्यक्तियों से ही निर्मित होता है। अतः व्यक्ति और समाज में अंग-अंगीय सम्बन्ध है। किन्तु यह सम्बन्ध ऐसा है जिसमें एक के अभाव में दूसरे की सत्ता नहीं रहती है। इस समस्त चर्चा से यही सिद्ध होता है कि व्यक्ति और समाज एक-दूसरे में अनुस्यूत है। एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती और यदि यह सत्य है तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सेवा और साधना में परस्पर सहसम्बन्ध है। आइए, इस प्रश्न पर और गम्भीरता से चर्चा करें।

साधना सेवा से पृथक् नहीं

साधना और सेवा के इस सहसम्बन्ध की चर्चा में सर्वप्रथम हमें यह निश्चित करना होगा कि साधना का प्रयोजन/उद्देश्य क्या है? यह तो स्पष्ट है कि साधना वह प्रक्रिया है, जो साधक को साध्य से जोड़ती है। वह साध्य और साधक के बीच योजक कड़ी है। साधना साध्य के क्रियान्वयन की प्रक्रिया है। अतः बिना साध्य के उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता है। साधना में साध्य ही प्रमुख तत्व है। अतः सबसे पहले हमें यह निर्धारित करना होगा कि साधना का वह साध्य क्या है, जिसके लिए साधना की जाती है। दार्शनिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति स्वरूपतः असीम या पूर्ण है, किन्तु उसकी यह तात्त्विक पूर्णता किन्हीं सीमाओं में सिमट गई है। असीम होकर भी उसने अपने को ससीम बना लिया है। जिस प्रकार मकड़ी स्वयं ही अपना जाल बुनकर उसी घेरे में सीमित हो जाती है या बंध जाती है, उसी प्रकार वैयक्तिक चेतना (आत्मा) आकांक्षाओं या ममत्व के घेरे में अपने को सीमित कर बंधन में आ जाती है। वस्तुतः सभी धर्मों और साधना पद्धतियों का मूलभूत लक्ष्य है व्यक्ति को ममत्व के इस संकुचित घेरे से निकालकर उसे पुनः अपनी अनन्तता या पूर्णता प्रदान करना है। दूसरे शब्दों में कहें तो सम्पूर्ण धर्मों और साधना पद्धतियों का उद्देश्य आकांक्षा और ममत्व के घेरे को तोड़कर अपने को पूर्णता की दिशा में आगे ले जाना है। जिस व्यक्ति का ममत्व का घेरा जितना संकुचित या सीमित होता है, वह उतना ही क्षुद्र होता है। इस ममत्व के घेरे को तोड़ने का सहजतम उपाय है, इसे अधिक से अधिक व्यापक बनाया जाए जो व्यक्ति केवल अपने दैहिक हित साधन का प्रयत्न या पुरुषार्थ करता है, उसे निकृष्ट कोटि का व्यक्ति कहते हैं, ऐसा व्यक्ति स्वार्थी होता है। किन्तु, जो व्यक्ति अपनी दैहिक वासनाओं से ऊपर उठकर परिवार या समाज के कल्याण की दिशा में प्रयत्न या पुरुषार्थ करता है, उसे उतना ही महान् कहा जाता है। वैयक्तिक हितों से पारिवारिक हित, पारिवारिक हितों से सामाजिक हित, सामाजिक हितों से राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय हितों से मानवीय हित और मानवीय हितों से प्राणी जगत् के हित श्रेष्ठ माने जाते हैं। जो व्यक्ति इनमें उच्च, उच्चतर और उच्चतम की दिशा में जितना आगे बढ़ता है, उसे उतना ही महान् कहा जाता है। किसी व्यक्ति की महानता की कसौटी यही है कि वह कितने व्यापक हितों के लिए कार्य करता है। वही साधक श्रेष्ठतम समझा जाता है, जो अपने जीवन को सम्पूर्ण प्राणी जगत् के हित के लिए समर्पित कर देता है। इस प्रकार साधना का अर्थ हुआ लोकमंगल या विश्वमंगल के लिए अपने आप को समर्पित कर देना। इस प्रकार साधना वैयक्तिक हितों से ऊपर उठकर प्राणि-जगत् के हित के लिए प्रयत्न या पुरुषार्थ करना है, तो वह सेवा से पृथक् नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म का अर्थ लोकमंगल

कोई भी धर्म या साधना पद्धति ऐसी नहीं है, जो व्यक्ति को अपने वैयक्तिक हितों या वैयक्तिक कल्याण तक सीमित रहने को कहती है। धर्म का अर्थ भी लोकमंगल की साधना ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने धर्म की परिभाषा करते हुए स्पष्ट रूप से कहा है –

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

तुलसीदास जी द्वारा प्रतिपादित इसी तथ्य को प्राचीन आचार्यों ने **"परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीड़नम्"** अर्थात् परोपकार करना पुण्य या धर्म है और दूसरों को पीड़ा देना पाप है – कहकर परिभाषित किया था। पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म के बीच यदि कोई सर्वमान्य विभाजक रेखा है, तो वह व्यक्ति की लोकमंगल की या परहित की भावना ही है, जो दूसरों के हितों के लिए या समाज- कल्याण के लिए अपने हितों का सर्मपण करना जानता है, वही नैतिक है, वही धार्मिक है और वही पुण्यात्मा है। बौद्धधर्म में लोकमंगल को साधना का एक उच्च आदर्श माना गया था। बुद्ध ने अपने शिष्यों को यह उपदेश दिया था – **"चरत्थ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय"**, अर्थात् हे भिक्षुओ! बहुजनों के हित के लिए और बहुजनों के सुख के लिए प्रयत्न करो। न केवल जैन धर्म, बौद्ध धर्म या हिन्दू धर्म की, अपितु इस्लाम और ईसाई धर्म की भी मूलभूत शिक्षा लोकमंगल या सामाजिक हित साधन ही रही है। इससे यही सिद्ध होता है कि सेवा और साधना दो पृथक्-पृथक् तथ्य नहीं हैं। सेवा में साधना और साधना में सेवा समाहित है। यही कारण था कि वर्तमान युग में महात्मा गांधी ने भी दरिद्रनारायण की सेवा को ही सबसे बड़ा धर्म या कर्तव्य कहा।

सेवा श्रेष्ठ है !

जो लोग साधना को जप, तप, पूजा, उपासना या नाम स्मरण तक सीमित मान लेते हैं, वे वस्तुतः एक भ्रान्ति में ही हैं। प्रश्न प्रत्येक धर्म साधना पद्धति में उठा है कि वैयक्तिक साधना अर्थात् जप, तप, ध्यान तथा प्रभु की पूजा-उपासना और सेवा में कौन श्रेष्ठ है? जैन परम्परा में भगवान् महावीर से यह पूछा गया कि एक व्यक्ति आपकी पूजा-उपासना या नाम स्मरण में लगा हुआ है और दूसरा ग्लान एवं रोगी की सेवा में लगा हुआ है इनमें कौन श्रेष्ठ है? प्रत्युत्तर में भगवान् महावीर ने कहा था कि जो रोगी एवं ग्लान की सेवा करता है, वही श्रेष्ठ है, क्योंकि वही मेरी आज्ञा का पालन करता है।[१] इसका तात्पर्य यह है कि वैयक्तिक जप, तप, पूजा और उपासना की अपेक्षा जैन धर्म में भी संघ-सेवा को अधिक महत्व दिया गया। उसमें संघ या समाज का स्थान प्रभु से भी ऊपर है, क्योंकि तीर्थंकर भी प्रवचन के पूर्व **'नमो तित्थस्स'** कहकर संघ को वंदन करता है। संघ के हितों की उपेक्षा करना सबसे बड़ा अपराध माना गया था। जब आचार्य भद्रबाहु ने अपनी ध्यान साधना में विघ्न आएगा, यह समझकर अध्ययन करवाने से इन्कार किया, तो संघ ने उनसे यही प्रश्न किया था कि संघहित और आपकी वैयक्तिक साधना में कौन श्रेष्ठ है और अन्ततोगत्वा उन्हें संघहित को प्राथमिकता देना पड़ी। यही बात प्रकारान्तर से हिन्दू धर्म में भी कही गई है। उसमें कहा गया है कि वे व्यक्ति जो दूसरों की सेवा छोड़कर केवल प्रभु का नाम स्मरण करते रहते हैं, वे भगवान् के सच्चे उपासक नहीं हैं।[२]

इस प्रकार इस समस्त चर्चा से यह फलित होता है कि सेवा ही सच्चा धर्म है और यही सच्ची साधना है। यही कारण है कि जैन धर्म में तप के जो विभिन्न प्रकार बताए गये हैं, उनमें वैयावृत्य (सेवा) को एक महत्वपूर्ण आभ्यन्तर तप माना गया है। तप में सेवा का अन्तर्भाव

१. आवश्यकवृत्ति पृ. ६६१-६६२

२. भगवद्गीता (राधाकृष्णन) पृ. ७१ भूमिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही सूचित करता है कि सेवा और साधना अभिन्न हैं। मात्र यही नहीं जैन परम्परा में तीर्थंकर पद, जो साधना का सर्वोच्च साध्य है, की प्राप्ति के लिए जिन १६ या २० उपायों की चर्चा की गई है, उनमें सेवा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।

निष्काम सेवा ही साधना है !

गीता में भी लोकमंगल को भूतयज्ञ (प्राणियों की सेवा) का नाम देकर यज्ञों में सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।[१] इस प्रकार जो यज्ञ पहले वैयक्तिक हितों की पूर्ति के लिए किये जाते थे, उन्हें गीता ने मानव सेवा से जोड़कर एक महत्वपूर्ण क्रान्ति की थी। धर्म का एक अर्थ दायित्व या कर्त्तव्य का परिपालन भी है। कर्त्तव्यों या दायित्वों को दो भागों में विभाजित किया जाता है – एक वे जो स्वयं के प्रति होते हैं और दूसरे वे जो दूसरे के प्रति होते हैं। यह ठीक है कि व्यक्ति को अपने जीवन रक्षण और अस्तित्व के लिए भी कुछ करना होता है, किन्तु इसके साथ-साथ ही परिवार, समाज, राष्ट्र या मानवता के प्रति भी उसके कुछ कर्त्तव्य होते हैं। व्यक्ति के स्वयं के प्रति जो दायित्व है, वे ही दूसरे की दृष्टि से उसके अधिकार कहे जाते हैं और दूसरों के प्रति उसके जो दायित्व हैं, वे उसके कर्त्तव्य कहे जाते हैं। वैसे तो अधिकार और कर्त्तव्य परस्पर सापेक्ष ही हैं। जो मेरा अधिकार है, वही दूसरों के लिए मेरे प्रति कर्त्तव्य हैं। दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का परिपालन ही सेवा है। जब यह सेवा बिना प्रतिफल की आकांक्षा के की जाती है तो यही साधना बन जाती है। इस प्रकार सेवा और साधना अलग-अलग तथ्य नहीं रह जाते हैं। सेवा साधना है और साधना धर्म है। अतः सेवा, साधना और धर्म एक दूसरे के पर्यायवाची हैं।

सामान्यतयः साधना का लक्ष्य मुक्ति माना जाता है और मुक्ति वैयक्तिक होती है। अतः कुछ विचारक सेवा और साधना में किसी प्रकार के सहसम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार वैयक्तिक मुक्ति के लिए किए गए प्रयत्न ही साधना हैं और ऐसी साधना का सेवा से कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु, भारतीय चिन्तकों ने इस प्रकार की वैयक्तिक मुक्ति को उचित नहीं माना है। जहाँ तक वैयक्तिकता या मैं है, अहंकार है और जब तक अहंकार है, मुक्ति सम्भव नहीं है। जब तक मैं या मेरा है, राग है और राग मुक्ति में बाधक है।

पर-पीड़ा-स्व-पीड़ा

वस्तुतः भारतीय दर्शनों में साधना का परिपाक सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत् दृष्टि के विकास में माना गया है। गीता में कहा गया है कि जो सभी प्राणियों को आत्मा के रूप में देखता है, वही सच्चे अर्थ में द्रष्टा है और वही साधक है। जब व्यक्ति के जीवन में इस आत्मवत् दृष्टि का विकास होता है, तो दूसरों की पीड़ा भी उसे अपनी पीड़ा लगने लगती है। इस पर दुःख कातरता को साधना की उच्चतम स्थिति माना गया है। रामकृष्ण परमहंस जैसे उच्चकोटि के साधकों के लिए यह कहा जाता है कि उन्हें दूसरों की पीड़ा अपनी पीड़ा लगती थी। जो साधक साधना की इस उच्चतम स्थिति में पहुँच जाता है और दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझने लगता है, उसके लिए वैयक्तिक मुक्ति का कोई अर्थ नहीं रह जाता। श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में प्रह्लाद ने स्पष्ट रूप से कहा था –

प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामाः।
मौनं चरन्ति विजने न तु परार्थनिष्ठाः।।
नेतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्षुरेकः।।

" – प्रायः कुछ मुनिगण अपनी मुक्ति के लिए वन में अपनी चर्या करते हैं और मौन धारण करते हैं, लेकिन उनमें परार्थ निष्ठा नहीं है। मैं तो सब दुःखीजनों को छोड़कर अकेला मुक्त नहीं होना चाहता।"

१. जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग – २ पृ.१४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो व्यक्ति दूसरे प्राणियों को पीड़ा से कराहता देखकर केवल अपनी मुक्ति की कामना करता है, वह निकृष्ट कोटि का है। अरे और तो क्या, स्वयं परमात्मा भी दूसरों की पीड़ाओं को दूर करने के लिए ही संसार में जन्म धारण करते हैं। हिन्दू परम्परा में जो अवतार की अवधारणा है उसमें अवतार का उद्देश्य यही माना गया है कि वे सत्पुरुषों के परित्राण के लिए ही जन्म धारण करते हैं। जब परमात्मा भी दूसरों के दुःख को दूर करने के लिए संसार में अवतरित होते हैं, तो फिर यह कैसे माना जा सकता है कि दूसरों को दुःख और पीड़ाओं में तड़पता देखकर केवल अपनी मुक्ति की कामना करने वाला साधक उच्चकोटि का साधक है। बौद्ध परम्परा में आचार्य शान्तिरक्षित ने बोधिचर्यावतार में कहा है कि दूसरों को दुःख और पीड़ाओं में तड़पते देखकर केवल अपने निर्वाण की कामना करना कहाँ तक उचित है? अरे, दूसरों के दुःखों को दूर करने में जो सुख मिलता है वह क्या कम है, जो केवल स्वयं विमुक्ति की कामना की जाए?

लोकमंगल हेतु धर्मचक्र का प्रवर्तन

बौद्ध परम्परा में महायान सम्प्रदाय में बोधिसत्व का आदर्श सभी के दुःखों की विमुक्ति होता है। वह अपने वैयक्तिक निर्वाण को भी अस्वीकार कर देता है, जब तक संसार के सभी प्राणियों के दुःख समाप्त होकर उन्हें निर्वाण की प्राप्ति न हो। **जैन परम्परा में भी तीर्थंकर को लोक कल्याण का आदर्श माना गया है। उसमें कहा गया है कि समस्त लोक की पीड़ा को जानकर तीर्थंकर धर्मचक्र का प्रवतन करते हैं। यह स्पष्ट है कि कैवल्य की प्राप्ति के पश्चात् तीर्थंकर के लिए कुछ भी करणीय शेष नहीं रहता है, वे कृत-कृत्य होते हैं। फिर भी लोकमंगल के लिए ही वे धर्मचक्र का प्रवर्तन करके अपना शेष जीवन लोकहित में समर्पित कर देते हैं।** यही भारतीय दर्शन और साहित्य का सर्वश्रेष्ठ आदर्श है। इसी प्रकार बोधिसत्व भी सदैव ही दीन और दुःखी जनों को दुःख से मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील बने रहने की अभिलाषा करता है और सबको मुक्त कराने के पश्चात् ही मुक्त होना चाहता है।

- भवेयमुपजीव्योऽहं यावत्सर्वे न निर्वृताः।

वस्तुतः मोक्ष अकेला पाने की वस्तु ही नहीं है। इस सम्बन्ध में आचार्य विनोबा भावे के उद्गार विचारणीय हैं –

"जो समझता है कि मोक्ष अकेले हथियाने की वस्तु है, वह उसके हाथ से निकल जाता है। 'मैं' के आते ही मोक्ष भाग जाता है। मेरा मोक्ष – यह वाक्य ही गलत है। *'मेरा'* मिटने पर ही मोक्ष मिलता है।"

इसी प्रकार अहंकार से मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है। 'मैं' अथवा अहं भाव से मुक्त होने के लिए हमें अपने आपको समष्टि में, समाज में लीन कर देना होता है। मुक्ति वही प्राप्त कर सकता है जो कि अपने व्यक्तित्व को समष्टि में, समाज में विलीन कर दे। आचार्य शान्तिदेव लिखते हैं:-

सर्वत्यागश्च निर्वाण निर्वाणार्थि च मे मनः।
त्यक्तव्यं चेन्मया सर्वं वरं सत्त्वेषु दीयताम्।।

इस प्रकार यह धारणा कि मोक्ष का प्रत्यय सामाजिकता का विरोधी है, गलत है। मोक्ष वस्तुतः दुःखों से मुक्ति है और मनुष्य जीवन के अधिकांश दुःख, मानवीय संवेगों के कारण ही हैं। अतः मुक्ति, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा आदि के संवेगों से मुक्ति पाने में है और इस रूप में वह वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टि से उपादेय भी है। दुःख, अंहकार एवं मानसिक क्लेशों से मुक्ति रूप में मोक्ष की उपादेयता और सार्थकता को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता।

अन्त में, कह सकते हैं कि भारतीय जीवन दर्शन की दृष्टि पूर्णतः सामाजिक और लोकमंगल के लिए प्रयत्नशील बने रहने की है। उसकी एकमात्र मंगल कामना है:-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु। सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्।।

परम करुणा !

कुछ लोग अहिंसा की अवधारणा को स्वीकार करके भी उसकी मात्र नकारात्मक अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि अंहिसा का अर्थ है दूसरों को पीड़ा नहीं देना। अतः व्यक्ति की साधना केवल दूसरों को पीड़ा नहीं देने तक सीमित है। दूसरों के दुःख और पीड़ा को दूर करना उनकी दृष्टि में व्यक्ति का दायित्व नहीं है। किन्तु यह अहिंसा की एकांगी व्याख्या है। अंहिसा का एक सकारात्मक पहलू भी है, जो हमें दूसरों के दुःख और पीड़ाओं को दूर करने का दायित्व बोध कराता है। **वस्तुतः जब तक दूसरों के दुःख और पीड़ा को अपना दुःख और पीड़ा मानकर उसके निराकरण का प्रयत्न नहीं होता है, तब तक करुणा का चरम विकास सम्भव नहीं है। यदि व्यक्ति दूसरे को दुःख और पीड़ा में तड़पता देखकर उसके निराकरण का कोई प्रयत्न नहीं करता, तो यह कहना कठिन है कि उसके हृदय में करुणा का विकास हुआ है और जब तक करुणा का विकास नहीं होता, तब तक अंहिसा का परिपालन सम्भव नहीं है। परमकारुणिक व्यक्ति ही अहिंसक हो सकता है। जिनका हृदय दूसरों को दुःख और पीड़ा में तड़पता देखकर भी निष्क्रिय बना रहे, उसे हम किस अर्थ में अहिंसक कहेंगे?**

सेवा : साधना का एक अंग

समाज को एक आंगिक संरचना माना गया है। शरीर में हम स्वाभाविक रूप से यह प्रक्रिया देखते हैं कि किसी अंग की पीड़ा को देखकर दूसरा अंग उसकी सहायता के लिए तत्काल आगे आता है। शरीर का कोई भी अंग दूसरे अंग की पीड़ा में निष्क्रिय नहीं रहता। तो फिर हम यह कैसे कह सकते हैं कि समाज रूपी शरीर में व्यक्ति रूपी अंग दूसरे अंग की पीड़ा में निष्क्रिय बना रहे। अतः हमें यह मानकर चलना होगा कि अहिंसा मात्र नकारात्मक नहीं है। उसमें करुणा और सेवा का सकारात्मक पक्ष भी जुड़ा हुआ है। वस्तुतः सेवा अहिंसा का सकारात्मक पहलू ही है। यदि हम अहिंसा को साधना का आवश्यक अंग मानते हैं, तो हमें सेवा को भी साधना के एक अंग के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा और इससे यही सिद्ध होता है कि सेवा और साधना में सहसम्बन्ध है। सेवा के अभाव में साधना सम्भव नहीं है। पुनः जहाँ सेवा है, वहाँ साधना है ही। वस्तुतः वे व्यक्ति ही महान् साधक हैं, जो लोकमंगल के लिए अपने को समर्पित कर देते हैं। उनका निष्काम समर्पण भाव साधना का सर्वोत्कृष्ट रूप है।...

❑ प्रोफेसर श्री सागरमल जी जैन का जन्म ताः २२ फरवरी सन् १६३२ में शाजापुर (म.प्र.) में हुआ। आपने एम.ए.एवं साहित्यरत्न की परीक्षाएं श्रेष्ठ अंकों से उत्तीर्ण कीं। आप इंदौर, रीवाँ, भोपाल और ग्वालियर के महाविद्यालयों में दर्शन शास्त्र के प्रवक्ता, आचार्य एवं विभागाध्यक्ष रहे। सन् १६७६ से १६६६ तक आप पार्श्वनाथ विद्यापीठ शोध संस्थान, वाराणसी के निदेशक रहे। भारत और विदेशों में आपने अनेक व्याख्यान दिए। ओजस्वी वक्ता, लेखक, समालोचक के रूप में सुविख्यात डा. जैन ने जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का विशेष अध्ययन किया। आपने बीस से अधिक शोधपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। आपके सैकड़ों शोधपूर्ण निबंध अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। "श्रमण" के प्रधान संपादक। आपके निर्देशन में तीस छात्रों ने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। जैन विद्या के शीर्षस्थ विद्वान्। अनेक शैक्षणिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं के पदाधिकारी। — सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म - सिद्धांत की वैज्ञानिकता

❑ डॉ. जयन्तीलाल जैन, चेन्नई

जैनदर्शन में कर्म सिद्धांत का महत्व विशेषरूपेण प्रतिपादित है। जब तक जीवात्मा कर्म से बद्ध है तब तक संसार में भ्रमण करती रहेगी। कर्म निःशेष होने पर वही आत्मा परमात्म रूप बन जाती है। जीव की अवस्थाओं के परिज्ञान के लिए कर्मवाद को समझना अत्यावश्यक है। कर्म सिद्धांत की वैज्ञानिकता, त्रैकालिकता, सार्वभौमिकता को प्रतिपादित कर रहे हैं — डॉ. श्री जयन्तीलाल जी जैन।

— सम्पादक

जैन-दर्शन में सिद्धांत किसी के द्वारा बनाये या प्रतिपादित नहीं किये जाते हैं। ये सिद्धांत अरहंत या तीर्थकरों द्वारा प्ररूपित होते हैं। केवलज्ञान में जैसी विश्व-व्यवस्था झलकती है, वैसा ही भगवान् द्वारा बताया जाता है। भगवान् अपनी ओर से कोई सिद्धांत बनाते नहीं है, अपितु वे तो लक्ष्य को सिद्ध कर स्वयं आदर्श प्रस्तुत करते हैं। 'अंत' अर्थात् लक्ष्य जिससे 'सिद्ध' होता है, वही 'सिद्धांत' है। इस प्रकार समस्त जैन-दर्शन में प्ररूपित सिद्धांत परम वैज्ञानिकता को लिए हुए हैं, चाहे उन्हें कोई माने या न माने। कर्म का सिद्धांत जीव की संसार अवस्था का एक मूलभूत सिद्धांत है। जैन दर्शन में इसका इतना व्यापक, वैज्ञानिक, त्रैकालिक, सार्वभौमिक एवं अकाट्य निरूपण हुआ है, जितना अन्य किसी दर्शन में नहीं हुआ है। सभी जीवों की समस्त अवस्थाओं को समझने के लिए इस कर्मवाद का ज्ञान आवश्यक है।

विश्व-व्यवस्था व कर्म

इस विश्व में छः द्रव्य हैं – जीव, पुद्गल, आकाश, काल, धर्मास्तिकाय व अधर्मास्तिकाय। जीव चेतन लक्षण वाला है और अन्य पांच अजीव है। कर्म पुद्गल परमाणु रूप हैं और उस संबंधी जो जीव के भाव है वे भाव कर्म हैं। जो जीव विश्व-व्यवस्था को नहीं जानते, वे अज्ञान अवस्था रूप परिणमन करते हैं क्योंकि पुद्गलादि अन्य द्रव्यों का स्वरूप नहीं जानते। इस अचेतन रूप या अज्ञान रूप परिणमन से कर्मों का आस्रव है एवं बंध है। बंधे कर्म फिर समय पाकर उदय में आते हैं और बंध को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अज्ञान चक्र से संसार परिभ्रमण है। जीव कर्म की प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभाग के आधार पर चारों गतियों में भ्रमण करता है। जब जीव अपने शुद्ध स्वभाव अर्थात् कर्म-रहित स्वभाव का ज्ञान कर उसमें लीन होता है, उस रूप परिणमन करता है, तब आस्रव रुक जाता है, बंध नहीं होता, संवर व निर्जरा होते हैं और अंत में जीव मोक्षदशा को प्राप्त करता है, जहाँ कर्म के बंध का सर्वथा अभाव है।

उक्त शुद्धिकरण की जिनवाणी में त्रैकालिक वैज्ञानिक व्यवस्था है। अनंतजीवों ने भूतकाल में इसी वैज्ञानिक व्यवस्था को समझकर, उस रूप परिणमन कर मोक्ष दशा या सिद्ध दशा को प्राप्त किया है। वर्तमान में भी जीव इसी को जान कर मोक्ष की साधना करते हैं। भविष्य में भी वही जीव इस दशा को प्राप्त होते हैं जो जिनवाणी की इस शुद्धि करण की व्यवस्था के अनुरूप परिणमन करते हैं। छः द्रव्य एक दूसरे द्रव्य के गुण या पर्याय को उत्पन्न नहीं कर सकता है। इससे यह वैज्ञानिक सिद्धांत सिद्ध होता है कि प्रत्येक द्रव्य का परिणमन अपने से होता है। प्रत्येक द्रव्य के षट्कारक कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान व अधिकरण वह द्रव्य स्वयं ही है। इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक द्रव्य स्वयं चालित है और यह त्रैकालिक वैज्ञानिक व्यवस्था है।

कर्म का भेद-विज्ञान

जीव जो अनेक प्रकार के भाव या विचार करता है उसे विकल्प कहते हैं। विकल्प ही कर्म है और विकल्प का करने वाला कर्ता है। इस प्रकार जो जीव विकल्प सहित है, उसका कर्ता-कर्म भाव कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है। जब जीव विकल्प करता है, उसी समय ज्ञानावरणादि कर्म द्रव्य कर्म रूप परिणमन करते हैं। इस प्रकार भाव कर्म व द्रव्य कर्म रूप कर्म के भेद किये जाते हैं। कर्म के द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नोकर्म (शरीर आदि संबंधी कर्म) रूप तीन भेद भी किये जाते हैं। कर्म के शुभ (पुण्य) व अशुभ (पाप) ऐसे दो भेद भी किये जाते हैं। पुण्य कर्म से स्वर्गादि की प्राप्ति होती है और पाप से नर्रकादि की, लेकिन दोनों ही संसार के कारण हैं। जैसे लोहे की वेड़ी बंधन है, वैसे ही सोने की बेडी भी बंध का ही कारण है।

सामान्यतया कर्मों को आठ भागों में बांटा जाता है- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय। वैसे इन ८ कर्मों के १४८ भेद भी किये जाते हैं। सचमुच देखा जाय तो कर्म के भेद तो अनंत हैं, जितने प्रकार के विकल्प होते हैं, उतने ही कर्म के भेद हो सकते हैं। जिनवाणी में कर्म का सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण देखने को मिलता है।

कर्म के भेद एवं विश्लेषण के पीछे एक अनोखा वैज्ञानिक सत्य छिपा हुआ है और वह एक शुद्धात्मा या सिद्ध समान आत्मा का रहस्य उद्घाटन। जब विकल्प ही कर्म है तो विकल्प रहित अवस्था ही कर्म रहित अवस्था है। सिद्ध भगवान् के आठों कर्मों का नाश है क्योंकि उनकी सकल कर्मों से रहित की अवस्था है। कर्म के घाति व अघाति रूप में भेद किया जाता है। उक्त आठ कर्मों में प्रथम चार को घातिकर्म कहते हैं व शेष चार को अघाति, जो आत्मस्वभाव का घात करते हैं अर्थात् प्रगट न होने में बाधक या निमित्त होते हैं उन्हें घाति और जो बाधक नहीं हैं उन्हें अघाति। प्रथम चार के नाश होते ही अरहंत दशा प्रगट होती है और अन्य चार के नाश होते ही सिद्ध दशा की प्राप्ति होती है। हर कर्म के प्रतिपक्ष में आत्मा के एक गुण का प्रतिपादन है। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, सम्यक्त्व, अनंतवीर्य, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व सूक्ष्मत्व, अव्याबाधत्व। इस प्रकार कर्म के अवलम्बन से शुद्ध या सिद्ध आत्मा का प्रतिपादन ही जिनवाणी का लक्ष्य है। कर्म या कर्मफल में अति सावधान जीव की प्रवृत्ति कर्मचेतना या कर्म फल-चेतनारूप है, जो संसार का कारण है, यह अज्ञानचेतना है। इसका विनाश कर ज्ञान चेतना में प्रवृत्त होना मोक्षमार्ग है और उसका फल साक्षात् मोक्ष है।

कर्म के नाश का उपाय सरल व सहज है। जैसे अंधकार का नाश करने अंधकार को मारना, पीटना, भगाना, अनुष्ठान, उत्सव आदि करने की आवश्यकता नहीं है। अंधकार के बारे में ज्यादा सोचने या विचारने से भी अंधकार नहीं मिटता। मात्र प्रकाश या दीपक से अंधकार का नाश होता है। उसी प्रकार कर्म के अंधकार या आवरण से आत्मा दिखाई नहीं देता। जैसे ही जीव ज्ञानरूपी दीपक को अपने भीतर जलाता है, कर्म का अंधकार उसी समय नाश को प्राप्त होता है। विकल्प, विचार, बुद्धि व्यवसाय, मति, विज्ञान, चित, भाव या परिणाम – ये सब एकार्थवाची है। यह जीव स्व-पर के भेद विज्ञान के अभाव में, एक में दूसरे की मान्यतापूर्वक अनेक परिणाम करता रहता है जो झूठे हैं। जिनेन्द्र भगवान् ने अन्य पदार्थों में ऐसे आत्मबुद्धि रूप विकल्प छुडायें हैं, यही कर्म का नाश है। यही वैज्ञानिकता है – कर्म के सिद्धांत की। जैसे प्रकाश के उदय से अंधकार का नाश सहज व सरल है, वैसे ही ज्ञान के उदय से कर्म का नाश सहज व सरल है। कर्म स्वयं भाग जाता है, अंधकार की भांति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्य-कारण विज्ञान

किसी भी वैज्ञानिक व्यवस्था में कारण-कार्य का प्रतिपादन नितान्त आवश्यक है। जैसा कारण होता है, वैसा कार्य होता है। जैसा बीज होता है, वैसा ही वृक्ष होता है, यह व्यवस्था कारण-कार्य संबंध से जानी जाती है। कोई कहता है कार्य पुरुषार्थ से होता है, तो कोई काल से, तो कोई स्वभाव से, तो अन्य कोई कर्म से होता है, तो कोई होनहार से। वास्तव में देखा जाय तो कोई कार्य किसी एक के कारण से नहीं होता है, उक्त पांचों बातें अपना-अपना कार्य करते हैं, यही वस्तु स्वतंत्रता है, वैज्ञानिकता है या स्वचालित वस्तु-व्यवस्था है।

यह लोक कर्म योग्य पुद्गलों से भरा हुआ है लेकिन वे कर्म बंध के कारण नहीं है, क्योंकि ऐसा होता तो मोक्ष में भी सिद्ध भगवान् के कर्म बंध का प्रसंग बन सकता है। क्योंकि कार्मण वर्गणा तो सिद्ध शिला में भी हैं। मन, वचन व काय यदि कर्म बंध का कारण हो तो अरहंत भगवान् के भी बंध का प्रसंग बनता है क्योंकि उनके मन, वचन काय हैं। जीव का घात यदि कर्म बंध का कारण है तो साधु जो समिति आदि में तत्पर हैं, उनके भी आहार, विहार आदि में जीव हिंसा है। अतः उनको मोक्ष नहीं हो सकता क्योंकि बंध होता रहेगा। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कर्म से जीव को बंध नहीं है। जीव के उपयोग में राग आदि के जो परिणाम हैं, उससे बंध होता है। जैसे कोई रेत में व्यायाम करे तो रेत उसके चिपकती या बंध नहीं करती है, लेकिन वही व्यक्ति यदि तेल मर्दन कर रेत में व्यायाम करे तो धूलिबंध का प्रसंग अवश्य बनता है।

मिथ्यात्व आदि कर्म का उदय होना, नवीन कर्म के पुद्गलों का परिणमन व बंधना और जीव का अपने अज्ञान भावरूप परिणमन – ये तीनों बातें एक साथ एक समय में होती है। तीनों स्वतंत्र अपने आप अपने रूप ही परिणमन करते हैं। कोई एक किसी अन्य का परिणमन नहीं करता। मिथ्यात्व, असंयम, कषाय व योग के उदय पुद्गल के परिणाम है और जीव अपने अज्ञान के कारण उस भाव रूप परिणमन करता है, नवीन पुद्गल उसी समय स्वयमेव ज्ञानावरणादि कर्म रूप परिणमन करते हैं और जीव के साथ बंधते हैं। इस तरह जीव स्वयं अपने अज्ञानमय भावों का कारण स्वयं ही होता है और कर्म का बंध करता है। ज्ञानी जीव की / चैतन्यमय आत्मा की मान्यता इतनी दृढ़ होती है कि वह कर्म, निमित्त, राग, पर्याय, अवस्था आदि किसी को भी महत्व नहीं देता। उसका सर्वस्व तो चैतन्यमय आत्मा है, उसमें लीनता ही मोक्ष का कारण है। यह कारण-कार्य वस्तु स्वतंत्रता का विज्ञान है।

कर्म सिद्धांत – एकान्तवाद

अन्य मतों में जैसे जगत् का कर्ता ईश्वर माना जाता है। वैसे ही, कर्म की एकान्तवादी मान्यता के अनुसार कर्म ही आत्मा को अज्ञानी करता है, क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म के उदय बिना अज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। उसी तरह कर्म ही आत्मा को ज्ञानी करता है क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ऐसा होता है। कर्म से ही जीव सोता है क्योंकि निद्राकर्म के उदय से जीव को नींद आती है और कर्म ही जीव को जगाता है क्योंकि निद्राकर्म के क्षयोपशम के बिना ऐसा नहीं हो सकता। **सातावेदनीय कर्म के उदय से जीव सुखी होता है और असातावेदनीय कर्म से जीव दुःखी होता है। मिथ्यात्व कर्म के उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होता है और सम्यक्त्व कर्म के उदय से जीव सम्यक्दृष्टि होता है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से जीव असंयमी होता है। पुरुषवेद कर्म से जीव स्त्री चाहता है और स्त्री वेद कर्म के उदय से पुरुष की चाह होती है। कर्म ही जीव को चारों गतियों में भ्रमण कराता है। यश, धन, सन्तान, परिवार आदि सब कर्म के उदय से**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है। कर्म किसी को नहीं छोड़ता, चाहे निर्धन हो या धनवान, बड़ा व्यक्ति हो या छोटा, सामान्य व्यक्ति हो या तीर्थंकर, राजा या प्रजा। इस प्रकार जो कुछ शुभ-अशुभ होता है सब कर्म ही स्वतंत्र रूप से करता है। कर्म ही देता है, कर्म ही हरता है और कर्म से टिका रहता है।

यदि कोई जैन भी उक्त एकान्तवाद को मानता है, तो जैन और अन्य मतों में भेद नहीं रहता है। राग-द्वेष के भाव आत्मस्वभाव का निरंतर घात करते हैं परन्तु उनका कर्ता कर्म है जीव स्वयं नहीं, तो यह जैनों के सिद्धांत के विपरीत है। वे आत्मा के घातक हैं क्यों कि राग-द्वेष द्वारा आत्मा की निरंतर होती हुई हिंसा को नहीं जानते, अतः आत्मघाती हुए। जिनवाणी उन पर कोप करती है क्योंकि यह जिनवाणी का विरोध है। जिनवाणी तो कथंचित् कर्ता कहती है और वे सर्वथा कर्ता मानते हैं।

भगवान् आदिनाथ जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी थे, क्षायिक समकित के धनी थे। ८३ लाख पूर्व तक उन्होंने चारित्र ग्रहण नहीं किया और राज्य करते रहे। अज्ञानी की यह दलील होती है कि चारित्रमोहनीय कर्म के उदय के कारण उनको चारित्र प्रगट नहीं हुआ। परन्तु यह तर्क संगत नहीं है। स्वयं की पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण उन्होंने चारित्र अंगीकार नहीं किया। कर्म के उदय के कारण उनके चारित्र का अभाव था, ऐसा कथन उपचार मात्र है। स्वयं की कमजोरी के साथ ही उस समय कर्म का उदय भी है, ऐसा मात्र ज्ञान कराया है।अन्यथा कर्म आत्मा से भी बड़ा हो जायेगा, स्वयं भगवान् बन जायेगा। वास्तविक चारित्र तो स्वयं अपनी चैतन्यमूर्ति भगवान् आत्मा में लीनतारूप परिणाम है, जिसके प्रचुर आनंद में जीव लीन हो जाता है, स्थिर रहता है, वही सच्चा चारित्र है। कर्म की क्रिया कोई चारित्र नहीं है।

उसी तरह एकान्तवादी ऐसा मानता है कि श्रेणिक राजा जो क्षायिक समकित थे, तीर्थंकर, प्रकृति को जिन्होंने बांधा था, परन्तु नरकगति नामकर्म को भी बांधा था, जिससे नरक में गये। यह मान्यता एकान्त है। स्वयं के उल्टे पुरुषार्थ के कारण उन्होंने नरक गति का बंध किया। प्रथम नरक में गये वे भी अपनी स्वयं की उस समय की योग्यता से गये। कर्म के कारण गये या कर्म उनको खींचकर नरक ले गया, ऐसा नहीं है, कर्म तो जड़ है, आत्म स्वभाव में इसका अभाव है। जिसका जीव में अभाव है, वह जीव को नुकसान कैसे कर सकता है? उसी तरह एक व्यक्ति व्यापार कर काफी धन कमाता है। वहां पैसा का आना या जाना, उसका तो आत्मा कदापि कर्ता नहीं होता, परन्तु इस धन संबंधी लोभ या माया के परिणाम का वह जीव कर्ता अवश्य है। इसी प्रकार अन्य अन्य जगह भी सर्व अवस्थाओं में ऐसा ही समझना।

कर्म सिद्धांत व स्याद्वाद

स्याद्वाद के अवलम्बन से अनेक जैन सिद्धांत परम वैज्ञानिकता को प्राप्त होते हैं। वस्तु को एकान्त से जो समझते हैं, वह मिथ्या है। जैन दर्शन तो वस्तु जैसी है वैसा मानता है। द्रव्य से नित्य व शाश्वत है और कर्म व अन्य द्रव्यों से स्वतंत्र व भिन्न है। पर्याय में कर्म के अभाव या सद्भाव के निमित्त से पलटता है, यह सत्य है, परन्तु वस्तु कथंचित् नित्यानित्यात्मक है। ऐसा जान कर नित्य पर दृष्टि करना और कर्म के संयोग से बदलती दशा है तो अवश्य, परन्तु लक्ष्य करने का विषय नहीं है।

जैसा कि ऊपर कहा गया कि जीव के अज्ञानमय भाव का होना व कर्म बंधने का काल एक ही है, उसमें भिन्नता का अभाव है। इसलिए जब उसका एक बंध पर्याय की अपेक्षा से देखने में आता है तो जीव कर्म से बंधा है, ऐसा एक पक्ष है। उसी समय यदि जीव व पुद्गल कर्म को अनेक द्रव्य या भिन्न द्रव्य की अपेक्षा देखा जाय तो दोनों बिल्कुल अलग-अलग हैं। इसलिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव कर्म से बंधा नहीं है, ऐसा दूसरा नय पक्ष है।

नय से देखने पर तीन प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं। नय ज्ञान सापेक्ष है, नय विकल्परूप है और नय अंश ग्राही है। नय कहते ही तीनों ही बातें सचमुच एक साथ आ जाती हैं। सापेक्ष होने से नय एक पक्ष या प्रतिपक्ष खड़ा करता है, जिससे विकल्प होता है और वह विकल्प तो अंश को ही ग्रहण करता है। विकल्प या अंश को जानने से और अधिक जानने की इच्छा होती है, आकुलता होती है – यही दोष है। इस प्रकार कर्म जीव की सापेक्ष दशा को बताने का कार्य वैज्ञानिक ढ़ंग से करता है, लेकिन वास्तव में देखा जाय तो जीव का कर्म से या नय से कोई संबंध नहीं है। आत्मा तो निराकुल, अतीन्द्रिय, आनंदमय व विकल्प रहित है और कर्म या नय पक्ष व प्रतिपक्ष से रहित है।

उपसंहार : भेद विज्ञान की वैज्ञानिकता

इस प्रकार एक आत्मा ही कर्म का कर्ता है और अकर्ता भी है – ये दोनों भाव विवक्षा से सिद्ध होते हैं। जब तक जीव को स्व-पर का भेद विज्ञान नहीं होता, तब तक आत्मा कर्म का कर्ता है। भेद विज्ञान होने के पश्चात् आत्मा शुद्ध विज्ञानघन समस्त कर्तापने के भाव से रहित एक ज्ञाता ही मानना। कर्म से भिन्न स्वरूप शुद्ध चैतन्यमय स्वभाव रूप आत्मा का भान होते ही कर्म का जीव अकर्ता है, ज्ञाता ही है। अज्ञानमय दशा में कर्म का कर्ता है और भेद विज्ञान होते ही अकर्ता सिद्ध होता है। जैनों का यही स्याद्वाद है और वस्तु स्वभाव भी ऐसा ही है। यह कोई कल्पना नहीं है। परन्तु जैसा वस्तु स्वभाव है, वैसा भगवान् की वाणी में स्याद्वाद शैली में कहने में आया है।

स्याद्वाद मानने से जीव को संसार-मोक्ष की सिद्धि होती है, यह सिद्धि ही वैज्ञानिकता है। एकान्त मानने से संसार व मोक्ष – दोनों का लोप हो जाता है। अज्ञान दशा में कर्म का कर्ता मानने से संसार सिद्ध होता है अर्थात् अनंत संसार में परिभ्रमण का कारण जीव की यह मान्यता है कि कर्म या राग भाव का कर्ता जीव है। ज्ञान भाव प्रगट होते ही कर्म का अकर्ता सिद्ध होता है, यही मोक्षमार्ग व मोक्ष है। कर्म का कर्ता मानने से नित्य संसार का प्रसंग बनता है, उसके प्रतिपक्ष मोक्ष का प्रसंग नहीं होता, अतः संसार-मोक्ष कुछ भी सिद्ध नहीं होता है और मोक्षमार्ग का लोप हो जाता है। इस प्रकार भेद विज्ञान द्वारा मोक्ष की सिद्धि ही कर्म सिद्धांत की वैज्ञानिकता है।

✣ ✣ ✣

❑ डॉ. जयन्तिलाल जी जैन का जन्म १ मार्च १६४६ का है। गलियाकोट (डूंगरपुर - राजस्थान) के इस सपूत ने १६८० में अर्थशास्त्र में पी.एच.डी. ओकलाहोम स्टेट यूनिवर्सिटी यू.एस.ए. से की। १६७६ में अर्थशास्त्र में एम.ए. बने - विचिता स्टेट यूनिवर्सिटी यू.एस.ए. से। १६७१ में एम.ए. (अर्थशास्त्र) की परीक्षा स्वर्ण पदक (प्राप्त कर उत्तीर्ण की, उदयपुर विश्वविद्यालय से। भारत-सरकार के विभिन्न प्रतिष्ठानों में महत्वपूर्ण पदों पर पूर्व में कार्यरत जैन वर्तमान में इंडियन बैंक चेन्नै के महाप्रबंधक है। जैन दर्शन में गहरी अभिरूचि ! आत्मतत्त्व के गवेषक, विश्लेषक एवं व्याख्याता ! अब तक जैन-दर्शन विषयक कई आलेख प्रकाशित !
— सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व का प्राचीनतम धर्म

❑ मेघराज जैन

जैन धर्म विश्व का सबसे प्राचीनतम धर्म है इसमें किञ्चित् मात्र भी संशय की गुंजाइश नहीं है। तथापि प्रश्न समुपस्थित होता है कि इसके संस्थापक कौन थे? भगवान महावीर, भगवान पार्श्व या भगवान ऋषभदेव विविध विद्वानों के उद्धरणों से इस विषय को स्पष्ट कर रहे हैं – श्री मेघराजजी जैन। — संपादक

जैनधर्म विश्व के प्रमुख एवं प्राचीन धर्मों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बीसवीं शती के प्रथम चरण पर्यंत अनेक पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वान् इस धर्म को हिन्दू धर्म की एक सुधारवादी शाखा के रूप में ही स्वीकार करते थे। इसकी ऐतिहासिकता को भी श्रमण महावीर से अधिक प्राचीन नहीं मानते थे। किन्तु आज ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यों के फलस्वरूप अनेक प्रामाणिक परिणाम सामने आये हैं जो जैन धर्म को प्राचीनतम परम्परा के रूप में प्रतिपादित करते हैं।

प्राच्य विद्याओं के विश्वविख्यात अनुसंधाता डॉ. हर्मन याकोबी ने जैन सूत्रों की व्याख्या में जैनधर्म की प्राचीनता पर पर्याप्त ठोस प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। **'इस तथ्य से अब सब सहमत है कि वर्धमान, बुद्ध के समकालीन थे। बौद्ध ग्रंथों में इस बात के प्रमाण है कि वर्धमान, बुद्ध के समकालीन थे। स्वयं बौद्ध ग्रंथों में इस बात के प्रमाण हैं कि श्रमण महावीर से पूर्व जैन या अर्हत् धर्म विद्यमान था। परन्तु महावीर इसके संस्थापक थे ऐसा कोई भी उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता।.....**

पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे, इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। जैन परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव को जैनधर्म का संस्थापक मानने में एकमत है।"..... **विश्वविख्यात दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन् ने भी अपनी प्रख्यात पुस्तक 'भारतीय दर्शन' में स्पष्ट लिखा है – निस्संदेह जैन धर्म वर्धमान और पार्श्वनाथ से भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ, और अरिष्टनेमि तीर्थंकरों के नामों का निर्देश है। भागवत-पुराण द्वारा भी इस बात का समर्थन होता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के संस्थापक थे।"**

शरद कुमार साधक के शब्दों में – "आम धारणा है कि वेद संसार के सबसे प्राचीन धर्म ग्रंथ हैं। पर वेदों में जो अंतर्विरोधी धर्मतत्त्व प्रतिपादित हैं, वे उनसे भी पूर्ववर्ती धार्मिक अवधारणाओं की पुष्टि करते हैं। उन अवधारणाओं के प्रवक्ता व्रात्य थे। व्रात्य संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति मानी जाती है। महाव्रात्य ऋषभदेव की चर्चा प्राचीन ग्रंथों में होने का अर्थ ही है कि वेद काल में ऋषभदेव लोक श्रद्धा के केन्द्र बन चुके थे। उनसे पूर्व हुए व्रात्यों तक पहुँचाने में सहायक है – जैन तीर्थंकरों की पिछली चौबीसी। वर्तमान चौबीसी में ऋषभदेव पहले तीर्थंकर है और महावीर चौबीसवें, किन्तु इन चौबीस तीर्थंकरों से पहले हुए चौबीस व्रात्यों की प्रतिमाएँ कच्छ (गुजरात) में निर्मित ७२ जिनालयों में विद्यमान हैं।"

भारत की प्राचीन श्रमण संस्कृति तथा अध्यात्म-प्रधान महान् मागध धर्म के सजीव सतेज प्रतिनिधि के रूप में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति का भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृतियों में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के दार्शनिक चिंतन, धार्मिक, इतिहास एवं सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरी शती ईस्वी के **आचार्य समन्तभद्र के शब्दों में** – "महावीर प्रभृति श्रमण तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं प्रचारित यह सर्वोदय तीर्थ मानव मात्र का उन्नायक एवं कल्याण कर्ता है।"

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन के अनुसार – "ऋग्वेद में वातरशना मुनियों और केशी से सम्बन्धित कथाएँ भी जैनधर्म की प्रागैतिहासिक प्राचीनता का पुष्कल प्रमाण प्रस्तुत करती है। ऋषभदेव और केशी का साथ-साथ उल्लेख भी इसी प्राचीनता का द्योतक है। वैदिक साहित्य में मुनियों के साथ यतियों और व्रात्यों का वर्णन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। ये तीनों मूलतः श्रमण परम्परा के ही हैं। इनके आचरण और स्वभाव में तथा वैदिक ऋषियों के सामान्य स्वभाव और आचरण में जो व्यापक अन्तर है, वह सहज ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आहार, तप और यज्ञादि की हिंसात्मक या शिथिल प्रवृत्ति में श्रमण साधु विश्वास नहीं रखते थे। वे स्वभावतः अधिक शांत और संयमी थे।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के अनुसार – "जैन परम्परा के मूल स्रोत प्रागैतिहासिक पाषाण एवं धातु पाषाण युगीन आदिम मानव सभ्यताओं की जीववाद (एनिमिज्म) प्रभृति मान्यताओं में खोजे गए हैं। सिंधु उपत्यका में जिस धातु/लोह युगीन प्राग्ऐतिहासिक नागरिक सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं उसके अध्ययन से एक संभावित निष्कर्ष यह निकाला गया है कि उस काल और क्षेत्र में वृषभ लांछन दिगम्बर योगीराज ऋषभ की पूजा-उपासना प्रचलित थी। उक्त सिंधु सभ्यता को प्राग्वैदिक एवं आर्य ही नहीं, प्रागार्य भी मान्य किया जाता है, और इसी कारण सुविधा के लिए बहुधा द्राविडीय संस्कृति की संज्ञा दी जाती है।"

'विश्वधर्म' पुस्तक में **आचार्य सुशीलमुनि जी ने जैन धर्म का परिचय देते हुए लिखा है** – "आदि युग जितना प्राचीन है, उतना ही अज्ञात भी है। सभ्यता के स्वर्ण विहान का शुभ अरुणोदय यदि आदि दिवस मान लिया जाय तो उसी दिन जैनत्व अस्तित्व में आया। उसका लालन-पालन ऋषभ ने किया और असि, मसि, कृषि के साथ प्राणि विज्ञान दिया। उनसे वैदिक संस्कृति ने जन्म नहीं तो स्वरूप अवश्य प्राप्त किया। श्रमण संस्कृति के तो वे आदि पुरुष ही है। कर्म और ज्ञान योग के सफल व्याख्याकार और जैन तीर्थंकर होना ही उनकी इतिमत्ता नहीं है, अपितु उनकी महत्ता तो आदि धर्म के मूलाधार समूची आर्य जाति के उपास्य तथा समूचे विश्व के प्राचीनतम व्यवस्थाकार होने में है।"

आचार्य सुशील मुनि जी ने अपनी पुस्तक 'इतिहास के अनावृत पृष्ठ' में जैन धर्म की ऐतिहासिक खोज विषयक शोध सामग्री प्रस्तुत की है। जिसमें अनाग्रहभाव से अतीत को देखा और खोजा है। इस पुस्तक से पाठकों को एक तलस्पर्शी दृष्टि निश्चित रूप से प्राप्त होगी। देखिए पुस्तक का एक अंश – 'प्रश्न उठ सकता है कि विश्व के विराट् प्रांगण में वैचारिक क्रांति के जन्मदाता और मानवीय मर्यादाओं के व्यवस्थापक कौन है ? यद्यपि प्राचीनता का व्यामोह रखना विशेष अर्थ नहीं रखता क्योंकि श्रेष्ठता और उच्चता प्राचीनता से नहीं आ सकती तो भी ऐतिहासिक दृष्टि से होने वाली खोज का महत्व है। मेरा मानना है कि वेद किसी एक परम्परा की निधि नहीं है और न ही वेदों में कोई एक ही विचार-व्यवस्था है। कहीं यज्ञ समर्थक मंत्र है, कहीं यज्ञ-विरोधी। एकदेव, बहुदेव और बहुदेवों में एकत्व की प्रतीति कराने वाली तात्त्विक पृष्ठभूमि वेद-विहित होने से ही उनमें यम, मातरिश्वा, वरुण, वैश्वानर, रुद्र, इन्द्र आदि नाना देवों का स्थान है।

वेदों से ब्राह्मण धर्म का बोध कराना, वेदों के विविधमुखी दृष्टिकोणों एवं आर्य-अनार्य ऋषियों के विभिन्न विचारों का अपमान करना है। क्योंकि वेद भारत की समस्त विभूतियों, संतों, ऋषियों मुनियों, मनीषियों की पुनीत वाणी का संग्रह है। यही कारण है कि श्रमणों ने अन्य ग्रंथों का निर्माण नहीं किया। सबके विचारों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलन, वेदों में हो जाने से यज्ञपरक भाग से ब्राह्मणों का तथा त्यागपरक भाग से श्रमणों का समाधान होता रहा। जैन विचारकों का मत है कि भले ही आज वेद ब्राह्मण धर्म के ग्रंथ हो गये हैं लेकिन वे बहुत वर्षों तक श्रमण संस्कृति के भी आधार ग्रंथ रहे हैं जिनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की वाणी संकलित है। उन्हें महाव्रात्य कहा जाता था। वेद में ऋषभवाणी का समावेश हो जाने से सिद्ध हो जाता है कि व्रात्य वेदों से भी प्राचीन है।"

व्रात्य भारत का प्राचीनतम सम्प्रदाय है। उसका प्रादुर्भाव वेदों के निर्माण से पूर्व और संभवतः आर्यों के आगमन से पहले हो चुका था। वेद में व्रात्य, द्रविड़, दास, दस्यु, पणि, किरात और निषादादि शब्दों का उल्लेख है। उन्हें सम-समानार्थक तो नहीं कहा जा सकता हाँ, व्रात्यों के प्रभाव से आयी हुई प्राचीन जातियाँ अवश्य माना जा सकता है।

वेद में व्रात्य को परमेश्वर, आत्मद्रष्टा मुनि के रूप में चित्रित किया गया है। वह अक्षरशः जैन तीर्थंकर का वर्णन है किन्तु स्मृति-युग में व्रात्य को निन्दित बताया गया। सम्भव है कि उस समय श्रमण ब्राह्मणों में एक दूसरे का विरोध करने का वातावरण बन गया हो। उसका प्रभाव व्याकरणकार पर भी पड़ा है। जैन शास्त्रों में अरिहंतों का श्रावकों के प्रति (मनुष्य के लिए) गौरवमय उच्चारण **"देवानुप्रिय"** रहा, जिसका सामान्य अर्थ देवताओं से भी अधिक प्यारा लगने वाला मानव होता है किन्तु पाणिनीय व्याकरण में **'देवा न प्रिय'** का अर्थ मूर्ख किया गया और अहि-नकुल, मार्जर-मूषक की भांति श्रमण-ब्राह्मणों को जन्मजात बैरी बता दिया गया।

व्रती का लक्ष्य एकमात्र आत्म-साक्षात्कार अन्तर्नाद और परमात्मपद प्राप्ति है और याज्ञिक का ध्येय स्वर्ग तथा लोकैषणा प्राप्ति के लिए अनुष्ठान और सोमपान की ओर प्रवृत्त होना है। व्रात्य पशुओं का वध यज्ञ में होता नहीं देख सकते थे और अहिंसा की स्थापना करना चाहते थे इसीलिए पशुवध रोकने के कारण याज्ञिक उन्हें विघ्नकर्ता अनार्य, असुर, म्लेच्छ कहा करते थे। व्रात्य भौतिक देवताओं को न मानने से 'अदेवयु', यज्ञ विरोधी होने से अयज्वन, अन्यव्रत, अकर्मन् आदि नामों से पुकारे जाते थे।

व्रात्यों और ब्राह्मणों का विकास-क्रम जानने के लिए हमें अतीत के उस पाषाणयुग और धातुयुग में जाना पड़ेगा जहाँ 'मोहनजोदड़ो' और 'हड़प्पा' की सैन्धव और व्रात्य सभ्यता की जन्म कहानी शिलांकित की गई है। तक्षशिला, मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, मथुरा के टीलों से मिले शिलालेख, उड़ीसा की हाथीगुफा से प्राप्त खारवेल के शिलालेख, उज्जैन की प्राचीनतम प्रस्तर कृतियाँ देखें तो उनमें मुनियों को, ऋषभदेव की धार्मिक सभा को, उपदेशों को अधिक व्यापक सर्वजाति और सर्वजीव समानत्व के लिए उकेरा गया है। इससे भी प्रमाणित होता है कि आर्यों के आने से पूर्व भारतवर्ष में द्राविड़ों और आग्नेयों का पर्याप्त विकास हो चुका था।

भारतीय रहस्यवाद के विकास की पृष्ठभूमि और उसमें साधुसंस्था के योगदान का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए **भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पूर्व महानिदेशक श्री एम.एन. देशपांडे** इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे– "भारत में साधुवृत्ति अत्यन्त पुरातन काल से चली आ रही है और जैन मुनि चर्या के जो आदर्श ऋषभदेव ने प्रस्तुत किये वे ब्राह्मण परम्परा से अत्यन्त भिन्न हैं। यह भिन्नता उपनिषद्काल में और भी मुखर हो उठती है। उपनिषदों की मूल भावना की संतोषजनक व्याख्या केवल तभी संभव है जब इस प्रकार सांसारिक बंधनों के परित्याग और गृहविरत भ्रमणशील जीवन को अपनाने वाली मुनिचर्या के अतिरिक्त प्रभाव को स्वीकार कर लिया जाय। भारतीय धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि के आरम्भ में मानव जाति के लिए ऋषभदेव जी ने विशेष पुरूषार्थ किया था। विवाह व्यवस्था, पाक शास्त्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणित, लेखन आदि संस्कृति के बीज ऋषभदेव ने समाज में बोये। यह निर्विवाद है कि ऋषभ को समझे विना भारतीय संस्कृति के प्रारम्भ बिन्दु को नहीं समझा जा सकता।"

'णाणसायर' जैन शोध की एक महत्वपूर्ण त्रैमासिकी है। इसके ऋषभ अंक में संकलित डॉ. प्रेमसागर जैन का **'सिंधु घाटी में ऋषभ युग'** का एक अंश –

"सर वेल्स के अनुसार भारत में आर्यों के आने से पूर्व एक सभ्यता थी, जो भूमध्य सागर में, सुदूर दक्षिण-पूर्व जावा तक विस्तृत थी। इसे विदेशी सभ्यता कह सकते हैं क्योंकि इसमें जितने लक्षण थे, वे सब भारत के द्राविड़ों में प्राप्त होते हैं। अतः यह भारतीय सभ्यता थी जो ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व समृद्धि को प्राप्त हुई।

मुण्डा आदिवासियों की अपनी सभ्यता थी। उसका समय भी विद्वानों ने ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व कहा है। मुण्डा आदिवासी वर्मा से कम्बोडिया और वियतनाम होते हुए भारत में आये थे। ईसा से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व जब आर्य भारत में आये तो उन्होंने मुण्डा आदिवासियों को देखा था। इनकी मुण्डरी भाषा थी। इसमें प्राकृत शव्द अधिक हैं। मुण्डा आदिवासी जिन पवित्र आत्माओं पर विश्वास करते हैं, उनमें औरतों की आत्माएँ भी शामिल हैं।"

मौलाना सुलेमान नदवी ने अपने ग्रंथ – **"भारत और अरव** के सम्बन्ध में लिखा है कि समनियन और कैलिड्यन दो ही धर्म थे। समनियन नग्न रहते थे और पूर्व देश के थे। खुरासान देश के लोग इन्हें शमनान या श्रमन कहते थे। ह्वेनसांग ने श्रमणेरस (shramneras) का उल्लेख किया है। अरवी कवि और तत्त्ववेत्ता अबु-ल-अला (९७३-१०५८) की रचनाओं में जैनत्व का पोषण है। वे शाकाहारी थे और दूध और मधु सेवन भी अधर्म मानते थे।

फर्ग्युसिन ने अपनी पुस्तक **'विश्व की दृष्टि में'** (पृष्ठ २६ से ५२) में लिखा है कि ऋषभ की परम्परा अरव में थी और अरव में स्थित पोदनपुर जैनधर्म का गढ़ था। इस्लाम के कलंदरी सम्प्रदाय के लोग जैनधर्म के सिद्धांतों से साम्य रखते हैं, वे आदिमानव सभ्यता के प्रवाह को सूचित करते हैं। साइवेरिया के पुरातात्विक उत्खनन में नरकंकाल २० से २५ फुट तक के निकले है जिन्हें एक करोड़ चालीस लाख वर्ष पहले का माना जाता है।

डॉ. ज्योति प्रासद जैन ने "जैन ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि' निबंध में कहा है – "तीर्थंकर ऋषभ का ज्येठ पुत्र भरत ही इस देश का सर्वप्रथम चक्रवर्ती सम्राट् था और इसी के नाम पर यह देश भारत या भारतवर्ष कहलाया। यह जैन पौराणिक अनुश्रुति भी वैदिक साहित्य एवं ब्रासणीय पुराणों से समर्थित है। ऋषभ के उपरान्त समय-समय पर २३ अन्य तीर्थंकर हुए जिन्होंने उनके सदाचार प्रधान योगकर्म का पुनः पुनः प्रचार किया और जैन संस्कृति का पोषण किया। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ में अयोध्यापति रामचन्द्र हुए, जिन्होंने श्रमण-ब्राह्मण उभय संस्कृतियों के समन्वय का भगीरथ प्रयास किया। इक्कीसवें तीर्थंकर नमि विदेह के जनकों के पूर्वज मिथिला नरेश थे जो उस आध्यात्मिक परम्परा के सम्भवतया आद्य प्रस्तोता थे, जिसने जनकों के प्रश्रय में औपनिषदिक आत्मविद्या के रूप में विकास किया। बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि नारायण कृष्ण के ताऊजात भाई थे। दोनों ही जैन परम्परा के शलाका पुरुष हैं। अरिष्टनेमि ने श्रमणधर्म पुनरुत्थान का नेतृत्व किया तो कृष्ण ने उभय परम्पराओं के समन्वय का स्तुत्य प्रयत्न किया। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्व (८७७-७७७ ई.पू.) काशी के उरगवंशी क्षत्रिय राजकुमार थे और श्रमणधर्म पुनरुत्थान आंदोलन के सर्वमहान् नेता थे। उनका चातुयार्म धर्म प्रसिद्ध है। सम्भवतया इसी कारण अनेक आधुनिक इतिहासकारों ने तीर्थंकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्व को ही जैनधर्म का प्रवर्तक मान लिया। अंतिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर, बौद्ध साहित्य में जिनका **'निगंठ नातपुत्त'** (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र) के नाम से उल्लेख हुआ है का जीवन काल ५९९-५२७ ई.पू. है। महावीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रमण पुनरुत्थान आंदोलन पूर्णतया निष्पन्न हुआ, इसका अधिकांश श्रेय महावीर को है।"

निष्कर्षत : माना जा सकता है कि जैनधर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है। चाहे उस समय अथवा अंतराल में उसका नाम जो भी रहा है। इस विषय पर शोध, आज की महती आवश्यकता है। जिससे आधुनिक इतिहासकारों की भ्रामक मान्यताओं का उन्मूलन किया जा सके। जो इतिहास के शोध-छात्र इस क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं उनका सदैव स्वागत है।

✤ ✤ ✤

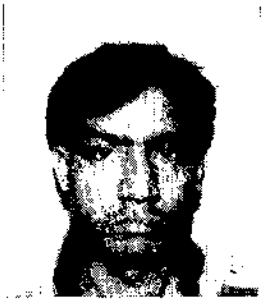

❑ श्री मेघराज जी जैन का जन्म १८ अगस्त १९१८ को दिल्ली में हुआ। दिल्ली विश्वविद्यालय से बी. कॉम. की शिक्षा प्राप्त की तदनन्तर प्रकाशन-व्यवसाय में संलग्न हो गये। आपकी जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार में विशेष अभिरुचि है। आप वर्तमान में केलादेवी सुमति प्रसाद ट्रस्ट, दिल्ली के सचिव हैं।

– सम्पादक

वैराग्य उसी का सफल है जिसे आत्मा का ज्ञान है। आत्मज्ञान के बिना वैराग्य शून्य है, ऊपरी वैराग्य का कोई महत्व नहीं है। जिस प्रकार किसी ने भोजन छोड़ा, वस्त्र त्याग दिये और कई प्रकार की उपभोग क्रियाएँ त्याग दी लेकिन आत्मज्ञान नहीं, तो उसका प्रभाव किस पर पड़ने वाला है? किसी पर भी नहीं ! आत्मज्ञान के बिना, किया गया त्याग, वह तो देह का कष्ट हो जाएगा। त्याग ज्ञान पूर्वक करना चाहिए। वहीं निर्जरा का कारण बनेगा, उसीसे सकाम निर्जरा होगी कर्म की। अन्यथा बालकर्म या अज्ञान कर्म ही कहलाएगा, अतः विराग के साथ ज्ञान होना अति आवश्यक है।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साधना एवं योग के क्षेत्र में आचार्य हरिभद्र सूरि की अनुपम देन : आठ योग दृष्टियाँ

❑ महेन्द्रकुमार रांकावत (M.A.)

जैन साधना एवं योग का क्षेत्र अतीव विस्तृत है। अनेक आचार्यों ने इस पर अपना मनोचिंतन प्रस्तुत किया है। आचार्य हरिभद्रसूरी का स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। शोधार्थी महेन्द्रकुमार रांकावत प्रस्तुत कर रहे हैं – आचार्य हरिभद्रसूरि द्वारा वर्णित आठ योग दृष्टियों का विश्लेषण !

– संपादक

स्वनामधन्य आचार्य हरिभद्रसूरि अपने युग के महान् प्रतिभाशाली विद्वान् तथा मौलिक चिन्तक थे। वे बहुश्रुत थे, समन्वयवादी थे, माध्यस्थ-वृत्ति के थे। उनकी अनुपम प्रतिभा और विलक्षण विद्वता उन द्वारा रचित अनुयोगचतुष्टय विषयक धर्मसंग्रहणी (द्रव्यानुयोग), क्षेत्रसमास-टीका (गणितानुयोग), पंचवस्तु, धर्मविन्दु (चरण-करणानुयोग), समराइच्चकहा (धर्मकथानुयोग) तथा अनेकान्तजयता (न्याय) का एवं भारत के तत्कालीन दर्शनशास्त्रों से संबद्ध षड्दर्शन-समुच्चय आदि अनेक ग्रंथों से प्रकट है। योग के संबन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह न केवल जैनयोग साहित्य में वरन् आर्यों के योग विषयक चिन्तन में एक निरुपम मौलिक वस्तु है। उन्होंने योग पर 'योग दृष्टि समुच्चय' तथा 'योगबिन्दु' नामक दो पुस्तकें संस्कृत में एवं 'योगशतक' और 'योगविंशिका' नामक दो पुस्तकें प्राकृत में रची, जिनमें योगदृष्टि समुच्चय का मौलिक चिन्तनात्मक उद्‌भावना की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रसादपूर्ण प्राञ्जल संस्कृत में दो सौ अट्ठाईस अनुष्टुप् छन्दों में है। आचार्यवर ने इसमें नितान्त मौलिक और अभिनव चिन्तन दिया है।

जैन शास्त्रों में आध्यात्मिक विकास-क्रम का वर्णन चतुर्दश गुण-स्थान के रूप में किया गया है। आचार्य हरिभद्र ने आत्मा के विकास-क्रम को योग की पद्धति पर एक नये रूप में व्याख्यायित किया। उन्होंने इस क्रम को आठ योगदृष्टियों के रूप में विभक्त किया, यथा – मित्रा तारा, बला, दीप्रा, स्थिरा, कान्ता, प्रभा तथा परा।[१]

उन्होनें उन्हें संक्षेप में परिभाषित करते हुए लिखा है - **"तृण के अग्निकण, गोमय (गोबर) या उपले के अग्निकण, काठ के अग्निकण, दीपक की प्रभा, रत्न की प्रभा, तारे की प्रभा, सूर्य की प्रभा तथा चन्द्र की प्रभा के सदृश साधक की दृष्टि आठ प्रकार की होती है।**[२]

वे दृष्टियाँ इस प्रकार हैं –

१. मित्रा दृष्टि

तृणों या तिनकों की अग्नि नाम से अग्नि तो कही जाती है, पर उसके सहारे किसी वस्तु का स्पष्ट रूप से दर्शन नहीं हो पाता। उसका प्रकाश क्षण भर के लिए होता है, फिर मिट जाता है। बहुत मंद, धुंधला और हल्का होता है। मित्रा दृष्टि के साथ भी इसी प्रकार की स्थिति है। उसमें बोध की एक हल्की-सी ज्योति एक झलक के रूप में आती तो है, पर वह टिकती नहीं।

१. योगदृष्टि समुच्चय १३ २. योगदृष्टि समुच्चय १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः तात्त्विक या पारमार्थिक दृष्ट्या उससे अभीप्सित बोध हो नहीं पाता। वह अल्पस्थितिक होती है। इसलिए कोई संस्कार निष्पन्न कर नहीं पाती, जिसके सहारे व्यक्ति आध्यात्मिक बोध की ओर गति कर सके। केवल इतना सा उपयोग इसका है, बोधमय प्रकाश की एक हल्की सी रश्मि आविर्भूत हो जाती है, जो मन में आध्यात्मिक उद्‌बोध के प्रति किञ्चित् आकर्षण उत्पन्न कर जाती है। संस्कार निष्पत्ति नहीं पाता इसलिए ऐसे व्यक्ति द्वारा भावात्मक दृष्टि से शुभ कार्यों का समाचरण यथावत् रूप में सधता नहीं, मात्र बाह्य या द्रव्यात्मक दृष्टि से वैसा होता है।

२. तारा दृष्टि

तारा दृष्टि में समुत्पद्यमान बोध गोमय (गोबर) या उपलों के अग्निकणों से उपमित किया गया है। तिनकों के अग्निकण और उपलों के अग्निकण प्रकाश तथा उष्मा की दृष्टि से कुछ तरतमता लिए रहते हैं। तिनकों की अग्नि की अपेक्षा उपलों की अग्नि के प्रकाश एवं उष्मा कुछ विशिष्टता लिए रहते हैं, पर बहुत अन्तर नहीं होता। उपलों की अग्नि का प्रकाश भी अपेक्षाकृत अल्पकालिक होता है। लम्बे समय तक टिक नहीं पाता। इसलिए इसके सहारे किसी भी वस्तु का सम्यक्‌दर्शन नहीं हो सकता। तारा दृष्टि की ऐसी ही स्थिति है। उसमें बोधमय प्रकाश की जो झलक उद्‌भासित होती है, यद्यपि वह मित्रादृष्टि में होने वाले प्रकाश से कुछ तीव्र अवश्य होती है पर स्थिरता, शक्तिमत्ता आदि की अपेक्षा से अधिक अन्तर नहीं होता, इसलिए उससे भी साधक का कोई विशेष कार्य नहीं सधता, इतना सा है, मित्रा दृष्टि में जो झलक मिली थी वह किञ्चित् अधिक ज्योतिर्मयता के साथ साधक को तारा दृष्टि में स्वायत्त हो जाती है। तरतमता की दृष्टि से इसमें कुछ वैशेष्य आता है।

३. बला दृष्टि -

जैसे काष्ठ की अग्नि का प्रकाश कुछ स्थिर होता है, अधिक समय टिकता है, कुछ शक्तिमान् भी होता है, इसी प्रकार बलादृष्टि में उत्पन्न बोध आया और गया – ऐसा नहीं होता। वह कुछ टिकता भी है, सशक्त भी होता है। इसलिए (वह) संस्कार भी छोड़ता है। छोड़ा हुआ संस्कार ऐसा होता है, जो तत्काल मिटता नहीं। स्मृति में आस्थित हो जाता है। वैसे संस्कार की विद्यमानता साधक को जीवन में वास्तविक लक्ष्य की ओर उद्‌बुद्ध रहने को प्रेरित करती है, जिससे साधक में सत्कर्म के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति की परिणति चेष्टा या प्रयत्न में होती है।

४. दीप्रा दृष्टि -

दीप्रा दृष्टि में होनेवाला बोध दीपक की प्रभा से उपमित किया गया है। पूर्वोक्त तीन दृष्टियों में उपमान के रूप में जिन-जिन प्रकाशों का उल्लेख हुआ है, दीपक का प्रकाश उनसे विशिष्ट है। वह लम्बे समय तक टिकता है। उसमें अपेक्षाकृत स्थिरता होती है। वह सर्वथा अल्प बल नहीं होता। उसके सहारे पदार्थ को देखा जा सकता है। उसी प्रकार दीप्रा दृष्टि में होने वाला बोध उपर्युक्त दृष्टियों के बोध की अपेक्षा दीर्घकाल तक टिकता है, अधिक शक्तिमान् होता है। बला दृष्टि की अपेक्षा कुछ और दृढ़ संस्कार छोड़ता है जिससे साधक की अन्तःस्फूर्ति, सत्क्रिया के प्रति प्रीति और तदुन्मुख चेष्टा की स्थिति बनी रहती है। इतना तो होता है, पर साधक के क्रिया-कलाप में अब तक सर्वथा अन्तर्भावात्मकता नहीं आ पाती, द्रव्यात्मकता या बहिर्मुखता ही रहती है। वन्दन, नमस्कार, अर्चना, उपासना – जो कुछ वह करता है, वह द्रव्यात्मक, यांत्रिक या बाह्य ही होती है। सत्क्रिया में संपूर्ण तन्मयता का भाव उस पुरुष में आ नहीं पाता, इसलिए वह क्रिया आन्तरिकता से नहीं जुड़ पाती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. स्थिरा दृष्टि -

स्थिरा दृष्टि को रत्न की प्रभा से उपमित किया गया है। साधक की यह वह स्थिति है, जहाँ उसे प्राप्त बोध-ज्योति स्थिर हो जाती है। रत्न की प्रभा कभी मिटती नहीं। वह सहजतया प्रदीप्त रहती है। वैसे ही स्थिरा दृष्टि में प्राप्त बोधमय उद्योत स्थिर रहता है। क्योंकि तब तक साधक का ग्रन्थि-भेद हो चुकता है। राग, द्वेष आदि विभाव-ग्रथित दुरुह कर्म-ग्रंथि वहाँ खुल चुकती है। दृष्टि सम्यक् हो जाती है। मिथ्या अध्यास मिट जाता है। यहाँ से भेदविज्ञान की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। आत्मा और पर पदार्थों की भिन्नता का साधक अनुभव करता है। पर में जो स्व की बुद्धि थी, उस पर सहसा एक चोट पड़ती है, साधक के अन्तरतम में आत्मोन्मुख भाव हिलोरें लेने लगते हैं। इतना ही नहीं, जैसे रत्न का प्रकाश पाषाण यंत्र आदि पर घर्षण, परिष्करण एवं परिमार्जन से और बढ़ जाता है, उसी प्रकार सम्यक्दृष्टि साधक का बोध, सद् अभ्यास, आत्मानुभूति, सद्चिन्तन आदि द्वारा उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होता जाता है।

रत्न का प्रकाश स्वावलम्बी होता है। उसे अपने लिए अन्य पदार्थ की अपेक्षा नहीं होती। तेल समाप्त हो जाने पर जैसे दीपक बुझ जाता है, वैसी बात रत्न के साथ नहीं है। न उसे तैल चाहिए और न बाती। वह प्रकाश निरपाय या निर्बाध है। वह अपाय या बाधा से प्रतिबद्ध एवं व्याहत नहीं होता। उसे दूसरा अवलम्बन नहीं चाहिए। यही स्थिति स्थिरादृष्टि की है। स्थिरादृष्टि का बोध परावलम्वी नहीं होता, स्वावलम्बी होता है। उसे कहीं से कोई हानि पहुँचने की आशंका नहीं रहती।

तृण, कण्डे, काष्ठ और दीपक का प्रकाश दूसरों के लिए परिताप कारक भी हो सकता है। यदि ठीक से उपयोग न किया जाए तो उनसे आग आदि लगकर हानि भी हो सकती है। रत्न के प्रकाश में ऐसा नहीं है। वह सर्वथा अपरितापकर है। स्थिरा दृष्टि का बोध भी किसी के लिए परितापकर नहीं होता। वह मृदुल और शीतल होता है, क्योंकि क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय वहाँ उपशान्त हो जाते हैं।

परिताप न देने की बात निषेधात्मक है। विध्यात्मक दृष्टि से स्थिरादृष्टि का बोधमय प्रकाश रत्न की प्रभा की तरह औरों के लिए प्रसादकर होता है। रत्न की कान्ति को देखने से जैसे नेत्र शीतल होते है, चित्त उल्लसित होता है, उसी तरह स्थिरादृष्टि में प्राप्त बोध से आत्मा में परितोष होता है। प्रसन्नता होती है। जिस प्रकार रत्न को देख लेने वाला तुच्छ काच जैसी वस्तु की ओर आकृष्ट नहीं होता, उसी प्रकार स्थिरादृष्टि के बोध द्वारा जिसे आत्मदर्शन प्राप्त हो जाता है, फिर आत्मेतर – पर या बाह्य वस्तुओं में उसे विशेष औत्सुक्य रह नहीं जाता।

जहाँ आभामय रत्न पड़ा है, उसके चारों ओर जो भी होता है, यथावत् एवं स्पष्ट दिखाई देता है। वैसे ही स्थिरादृष्टि में प्राप्त बोध से आत्मदर्शन तो होता ही है, तदितर पदार्थ भी दृष्टिगोचर होते हैं। इससे द्रष्टा या दर्शक दृश्यमान वस्तु का उपयोगिता, अनुपयोगिता की दृष्टि से यथार्थ मूल्यांकन कर पाता है।

६. कान्तादृष्टि -

ग्रंथकार ने कान्ता दृष्टि को तारे की प्रभा की उपमा दी है। रत्न का प्रकाश हृद्य होता है, उत्तम होता है, पर तारे के प्रकाश जैसी दीप्ति उसमें नहीं होती। तारे का प्रकाश रत्न के प्रकाश से अधिक उद्दीप्त होता है। उसी तरह स्थिरादृष्टि में प्राप्त बोध की अपेक्षा कान्तादृष्टि का बोध अधिक प्रगाढ़ होता है। तारे की प्रभा आकाश में स्वाभाविक रूप में होती है, सुनिश्चित होती है, अखंडित होती है। उसी प्रकार कान्तादृष्टि का बोध – उद्योत अविचल, अखंडित और प्रगाढ़ रूप में चिन्मय आकाश में सहजरूपेण समुदित रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस दृष्टि को कान्ता नाम देने में भी आचार्यवर का अपना विशेष दृष्टिकोण रहा है। कान्ता का अर्थ लावण्यमयी प्रियंकरी गृहस्वामिनी होता है। ऐसी सन्नारी पतिव्रता होती है। पतिव्रता नारी की यह विशेषता है कि वह घर, परिवार तथा जगत् के सारे कार्य करती हुई भी अपना चित एकमात्र अपने पति से जोड़े रहती है। उसके चिन्तन का मूल केन्द्र उसका पति होता है। कान्तादृष्टि में पहुँचा हुआ साधक आवश्यकता एवं कर्तव्य की दृष्टि से जहाँ जैसा करना अपेक्षित है, वह सब करता है, पर उसमें आसक्त नहीं होता। अन्ततः उसका मन उसमें रमता नहीं है। उसका मन तो एकमात्र श्रुत-निर्दिष्ट धर्म में ही लीन रहता है। उसके चिन्तन का केन्द्र आत्मस्वरूप में संप्रतिष्ठ होता है। वह अनासक्त कर्मयोगी की स्थिति पा लेता है। गीताकार ने ऐसे अनासक्त कर्मयोगी का बड़ा सुन्दर भाव-चित्र उपस्थित किया है। कहा है –

"तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है, फल में नहीं। कर्म-फल की वासना कभी मत रखो और अकर्म-कर्म न करने में भी तुम्हारी आसक्ति न हो।"[१]

कान्तादृष्टि प्राप्त गीताकार के शब्दों में उत्कृष्ट, निष्काम, स्थितप्रज्ञ कर्मयोगी की भूमिका का सम्यक् निर्वाह करता है।

वैसी स्थिति प्राप्त कर लेने के कारण सत्क्रिया के भावानुष्ठान में वह सोत्साह संलग्न रहता है। अनुष्ठान शब्द अपने आप में बड़ा महत्वपूर्ण है। अनु उपसर्ग का अर्थ पीछे या अनुरूप है। सम्यक् ज्ञानी की क्रिया उस द्वारा प्राप्त आत्मज्ञान के अनुरूप या उसका अनुसरण करती हुई गतिशील रहती है। वह भावक्रिया है। वहाँ क्रियमाण कर्म में केवल दैहिक योग नहीं होता, आत्मा का लगाव होता है। वैसा पुरुष अनवरत धर्म के आचरण या सच्चारित्र्य के अनुपालन में उद्यमशील रहता है। एक ऐसी अन्तर्जागृति साधक में उत्पन्न हो जाती है कि वह स्वभाव में अनुरत और पर-भाव से विरत रहने में इच्छाशील एवं यत्नशील रहता है। पर-भाव से पृथक् रहने के समुद्यम का यह प्रतिफल होता है कि उसके सद् आचरण में कोई अतिचार-प्रतिकूल कर्म या दोष नहीं होता। अशुभ-पापमूलक, शुभ/पुण्यमूलक उपयोग से ऊँचा उठकर वह साधक शुद्धोपयोग के अनुष्ठान की भूमिका में अवस्थित हो जाता है। आत्मा के निर्लिप्त-राग, द्वेष, मोह आदि से असंपृक्त शुद्ध स्वरूप की भव्य भावना का वह अनुचिन्तन करता है।

ऐसे साधक की प्रमाद रहित साधना-भूमि और विशिष्ट बनती जाती है। ऐसा अप्रमाद वह अधिगत कर लेता है कि फिर उसको उसके स्वरूप से भ्रष्ट या च्युत करने वाला प्रमाद वहाँ फटक नहीं सकता।

ऐसे साधक की एक विशेषता और होती है, साधना के अनुभव-रस का जो पान वह कर चुका होता है, ज्ञान एवं दर्शन का जैसा प्रत्यय, बोध, अनुभव वह पा चुका होता है, उससे औरों को भी लाभ मिले, औरों को भी वह ऐसे मार्ग के साथ जोड़ सके, इस प्रकार का उद्यम भी उसका रहता है।

निर्मल आत्मज्ञान के उद्योत के कारण ऐसे साधक का व्यक्तित्व धर्म के आचरण की दृष्टि से बहुत गंभीर और उदार भूमिका का संस्पर्श कर जाता है, समुद्र की सी गंभीरता उसके व्यक्तित्व का विशेष गुण हो जाता है।

७. प्रभादृष्टि :-

ग्रंथकार ने प्रभादृष्टि को सूर्य के प्रकाश की उपमा दी है। तारे और सूर्य के प्रकाश में बहुत बड़ा अन्तर है।

१. श्रीमद्भगवद्गीता – २,४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तारे की अपेक्षा सूर्य का प्रकाश अनेक गुना अधिक, अवगाढ़ तथा तीव्र तेजोमय होता है। प्रभादृष्टि का बोध-प्रकाश भी अत्यन्त ओजस्वी एवं तेजस्वी होता है। कान्ता दृष्टि की अपेक्षा प्रभादृष्टि के प्रकाश की प्रगाढ़ता बहुत अधिक बढ़ी चढ़ी होती है। सूर्य के प्रकाश से सारा विश्व प्रकाशित होता है। उसके सहारे सब कुछ दीखता है। ऐसी ही स्थिति प्रभा दृष्टि की है। वहाँ पहुँचे हुए साधक को समग्र पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। प्रचुर तेजोमयता तथा प्रभाशालिता के कारण आचार्यप्रवर ने इस दृष्टि का नाम 'प्रभा' रखा, जो बहुत संगत है।

जहाँ इस कोटि का बोधमूलक प्रकाश उद्‌भासित होता है, वहाँ साधक की स्थिति बहुत ऊँची हो जाती है। वह सर्वथा अखंड आत्मध्यान में निरत रहता है। ऐसा होने से उसकी मनोभूमि विकल्पावस्था से प्रायः ऊँची उठ जाती है। ऐसी उत्तम, अविचल, ध्यानावस्था से आत्मा में अपरिसीम सुख का स्रोत फूट पड़ता है। वह सुख परमशान्ति रूप होता है, जिसे पाने के लिए साधक साधना-पथ पर गतिमान् हुआ। वह ऐसा सुख है, जिसमें आत्मेतर किसी भी पदार्थ का अवलम्बन नहीं होता। वह परवश से सर्वथा अस्पृष्ट होता है।

यहाँ साधक का प्रातिभ ज्ञान या अनुभूतिप्रसूत ज्ञान इतना प्रबल एवं उज्ज्वल हो जाता है कि उसे शास्त्र का प्रयोजन नहीं रहता। ज्ञान की प्रत्यक्ष या साक्षात् उपलब्धि उसे हो जाती है। आत्मसाधना की यह बहुत ऊँची स्थिति है। उस समाधिनिष्ठ योगी की साधना के परम दिव्य भाव-कण आस-पास के वातावरण में एक ऐसी पवित्रता संभृत कर देते है कि उस महापुरुष के सान्निध्य में आनेवाला जन्मजात शत्रुभावापन्न प्राणी भी अपना वैर भूल जाते हैं। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सचाई है। ऐसे महान् योगी की परमदिव्य करुणा, जिसे जैन एवं बौद्ध वाङ्मय में 'महाकरूणा' कहा गया है, का ऐसा अमल, धवल स्रोत फूट पड़ता है कि वह (योगी) अन्य प्राणियों का भी उपकार करना चाहता है, उन्हें श्रेयस् और कल्याण का मार्ग दिखाकर अनुगृहीत करना चाहता है। यह सब स्वभावगत परिणामधारा से सम्बन्ध है। वहाँ कृत्रिमता का लेश भी नहीं होता।

८. परादृष्टि :-

सूरिवर्य ने परादृष्टि को चन्द्रमा की प्रभा से उपमित किया है। सूर्य का प्रकाश बहुत तेजस्वी तो होता है पर उसमें उग्रता होती है। इसलिए आलोक देने के साथ-साथ वह उत्ताप भी उत्पन्न करता है। सूर्य की अपेक्षा चन्द्र के प्रकाश में कुछ अद्‌भुत वैशिष्ट्य है। वह अत्यन्त शीतल परम सौम्य तथा प्रशान्त होता है। सहज रूप में सब के लिए आनन्द, आह्लाद और उल्लास प्रदान करता है। प्रकाशकता की दृष्टि से सूर्य के प्रकाश से उसमें न्यूनता नहीं है। सूर्य दिन में समग्र को प्रकाशित करता है तो चन्द्रमा रात में। दोनों का प्रकाश अपने आप में परिपूर्ण हैं, पर हृद्यता, मनोज्ञता की दृष्टि से चन्द्रमा का प्रकाश निश्चय ही सूर्य के प्रकाश से उत्कृष्ट कहा जा सकता है।

परादृष्टि साधक की साधना का उत्कृष्टतम रूप है। चन्द्र की ज्योत्स्ना सारे विश्व को उद्योतित करती है। उसी तरह अर्थात् सोलह कलायुक्त, परिपूर्ण चन्द्र की ज्योत्स्ना के सदृश परादृष्टि में प्राप्त बोध-प्रभा समस्त विश्व को, जो ज्ञेयात्मक है, उद्योतित करती है। साधक इस अवस्था में इतना आत्मविभोर हो जाता है कि उसकी बोध-ज्योति उद्योत तो अव्याबाध रूप में सर्वत्र करती है, पर अपने स्वरूप में अधिष्ठित रहती है। उद्योत्य/प्रकाश्य या ज्ञेय रूप नहीं बन जाती। चन्द्र ज्योत्स्ना यद्यपि समस्त जागतिक पदार्थों को आभामय बना देती है, पर पदार्थमय नहीं बनती, वैसे ही परादृष्टि में पहुँचा हुआ साधक ऐसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही सर्वथा स्वाश्रित, स्वभावनिष्ठ, दिव्य, सौम्य बोध-ज्योति से आभासित रहता है। उसकी स्थिति सर्वथा आत्मपरायण अथवा स्वभावपरायण बन जाती है, जिसे वेदान्त की भाषा में विशुद्ध-केवल 'अद्वैत' से उपमित किया जा सकता है।

साधक की यह सद्ध्यान रूप दशा है, जिसमें अव्यवहित तथा निरन्तर आत्मसमाधि विद्यमान रहती है। आत्मस्वरूप में निष्प्रयास परिरमण की यह उच्चतम दशा है, जिसका सुख सर्वथा निर्विकल्प है। बोध तो निर्विकल्प है ही। बोध और सुख की निर्विकल्पता में ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी, ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की त्रिपदी एकमात्र अभेद-आत्मस्वरूप में परिणत हो जाती है, जहाँ द्वैतभाव सर्वथा विलय पा लेता है। यह साधक की परम आनन्दावस्था है, परं ब्रह्मनिष्ठ योगी वहाँ आनन्दघन बन जाता है। परम आत्मसुख या अनुपम ब्रह्मानन्द का वह आस्वाद लेता है। साध्य सध जाता है, करणीय कृत हो जाता है, प्राप्य प्राप्त हो जाता है। ●●●

❑ **श्री महेन्द्र कुमार जी रांकावत संस्कृत, सांख्य, योग, न्याय, वेदान्त एवं जैन जैनेत्तर दर्शनों के अभिरुचिशील अध्येता एवं युवा लेखक है। शोधार्थी भी। प्रो. डॉ. छगनलाल जी शास्त्री के निकटतम अन्तेवासी है। विज्ञान में स्नातक होने के पश्चात् संस्कृत में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सम्प्रति : शोधकार्य में संलग्न ! युवाओं के लिए अनुकरणीय रांकावत से साहित्य जगत् को बहुत ही अपेक्षाएं हैं।**

— सम्पादक

जीवन व्यवहार में कठोर वचन, क्रोध के वचन, अहंकार के वचन तथा अहंकार की वाणी काम नहीं देती। इससे मुसीबतें खड़ी हो जाती हैं, आदमी विपद्ग्रस्त हो जाता है। इसके विपरीत नम्रता धारण करने से व्यक्ति संकटों से उबर जाता है।

✤ ✤ ✤

जाति-समाज और राष्ट्र में समय-समय पर असर प्रबुद्ध नारी-जीवन का ही रहा है, जिसने स्वयं के साथ व्यक्ति व समाज को नई दिशा दी है। मात्र धर्मक्षेत्र में ही नहीं अपितु कर्म क्षेत्र में भी वे अग्रणी रही हैं।

✤ ✤ ✤

आपने कभी ध्यान दिया हो सत्ताधीश लोग जब गद्दी पर बैठे होते हैं तब और, जब गद्दी से उतर जाते हैं तब दशा और हो जाती है। जिस सताधीश में परार्थ वृत्ति रहती है वह सदा ही यश का पात्र होता है, आत्म सन्तुष्ट होता है। जो स्वार्थी होता है और किसी के प्रति उदारता, सहयोग नहीं करता जनता में अपयश का भागीदार बन कर पतित हो जाता है।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषाय : क्रोध तत्त्व

❑ प्रो. कल्याणमल लोढ़ा

क्रोध आत्मा के पतन का द्वार है। क्रोध से प्रेम, दया एवं करुणा की भावना विलुप्त हो जाती है। क्रोध बुद्धि को विकृत करनेवाला एवं मस्तिष्क को ताप देने वाला तत्व है। नरक गति में जाने के कारणों में एक कारण है – महाक्रोध। आत्म शांति को बाधित करनेवाला तत्व भी क्रोध ही है। क्रोध को उपसम भाव से,जीते बिना साधक की साधना अपूर्ण है। क्रोध तत्व को जैन-जैनेत्तर धर्म ग्रंथों के आधार पर व्याख्यायित एवं विश्लेषित कर रहे हैं – हिन्दी जगत् के मूर्धन्य एवं ज्येष्ट-श्रेष्ठ लेखक – प्रो. डॉ. कल्याणमलजी लोढ़ा। – सम्पादक

जैनधर्म में क्रोध एक कषाय है। चार कषायों में – क्रोध, मान, माया और लोभ में क्रोध की सर्वप्रथम गणना की गयी है। आस्रव के पांच द्वारों में कषाय चतुर्थ है। पांच द्वार हैं – मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। **"कषति इति कषायः"** – जो आत्मा को कसे और उसके गुणों का घात करे वह कषाय है। **"कर्षति इति कषायः"** – जो संसार रूपी कृषि को बढ़ाए / जन्म-मरण नाना दुःखों का वर्धन करे – जो आत्मा को बंधनों में जकड़ कर रखे, वही कषाय है। कषाय आत्मा का आंतरिक कालुष्य है। **"कषाय वेदनीयस्योदयादात्मनः कालुष्य क्रोधादि रूपमुत्पद्यमानं "कषायात्मात्मानं हिनस्ति"** यही कषाय है। कर्म के उदय से होने वाली कलुषता कषाय कहलाती है क्योंकि वह आत्मा के स्वाभाविक स्वरूप को कस देती है। क्रोध, मान, माया, लोभ के पथ में धंस कर जीव अपने स्वभाव से विस्मृत होकर त्रि-भाव (त्रिकृत भाव) में लिप्त हो जाता है, जहां केवल ऐषणाएं हैं – अनवरत अतृप्ति, स्पर्धा और भोग प्रवृत्ति के साथ अधिकार लिप्सा और आत्म प्रवंचना है। जीवन एक भूल भुलैया बन जाता है, जिसमें प्रवेश के द्वार तो अनेक हैं पर बाहर आने के मार्ग अत्यंत दुष्कर है। जैन धर्म (प्रत्येक नीति शास्त्र) इसी से कषायों की विकृति पर बल देता है। कलियुग का एक नाम कषाय भी है। गोम्मटसार में दो प्रकार से कषाय की उत्पत्ति बताई है – कर्म क्षेत्र का जो घर्षण करता है वह कषाय है। इससे संसार रूपी मर्यादा अत्यन्त दूर है। दूसरी उत्पत्ति 'कष्' धातु से है – जीव के शुभ परिणामों को जो "कषे" वह कषाय है। इस कषाय के अनेक भेद हैं। जैन धर्म व दर्शन में इनकी विशद व्याख्या की गयी है। उमास्वाति कहते हैं – **"शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्य"** (तत्त्वार्थ सूत्र) शुभ योग पुण्य है और अशुभ योग आस्रव के हेतु। पुण्य कर्म के आस्रव का हेतु शुद्धोपयोग है।

जैन धर्म में कषाय का विशद वर्णन आगमों व अन्य ग्रंथों में मिलता है। दशवैकालिक निर्युक्ति (१८६) में कहा है **"संसारस्स मूलं कम्मं, तस्स वि हुंति य कसाया"** – विश्व का मूल कर्म है और कर्म का मूल कषाय। एक अन्य स्थान पर कषाय रूप अग्नि जिससे प्रदीप्त होती है, उस कार्य को छोड़ देना चाहिए और कषाय को दमन करने वाले कार्यों को धारण करना अपेक्षित है। (गुणानुराग कुलक) कषाय दमन के लिए क्रोध मान, माया एवं लोभ का हनन; मृदुता, ऋजुता और सहिष्णुता से संभव है। यही नहीं सारी साधना और तपस्या को क्षण भर के कषाय नष्ट कर देते हैं (निशीथ भाष्य २७६३) कषाय ही आत्मा का शत्रु है। उत्तराध्ययन (२३ – ५३) में कहा है – कषाय रूपी अग्नि को ज्ञान, शील और तप के शीतल जल से बुझाया जा सकता है – **"कसाया अग्गिणो बुत्ता, सुय सीतल तवो जलं।"** कषाय असंयम को जन्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देता है। अन्तरात्मा के चार प्रमुख दोषों (क्रोध, मान, माया, लोभ) में क्रोध ही प्रथम और निकृष्ट है – क्रोध प्रेम का नाश कर – घृणा, द्वेष और वैर का कारण है, मान विनय का, माया मैत्री का और लोभ सर्वनाशक है (दशवैकालिक ८ – ३७)। आचाराङ्ग में बताया है – **वीरेहि एयं अभिभूयं दिट्ठं संजेतेहि सया जतेहि सया अप्प-मत्तेहिं** (४ – ६८)। वीर साधना के विघ्नों को निरस्त करते हैं – संयम से इन्द्रिय और मन का निग्रह, यमी होकर क्रोध का दमन और अप्रमत्त होकर सदा जागरूक रहते हैं। कषाय विरति के लिए सूत्र हैं **"से वंता कोहं च, माणं च, मायं च लोभं च'** – साधक क्रोध, मान, माया लोभ का परित्याग करे। पुनः क्रोध, मान, माया लोभ का प्रेरक वर्णन है (शीतोष्णीय ३)। इसी से **'दुक्खं लोभस्स जाणित्ता'**। संक्षेप में कषाय त्याग के लिए साधना, तप और एकाग्रता आवश्यक है "आंतरिक ज्ञान – प्रज्ञा से ही अप्रमादी और **"कोह दंसी"** बनना संभव है। आचार्य अमितगति ने –

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्"

आस्रव का हेतु कर्म है – पुण्य और पाप आस्रव के लिए कहा गया है – **"पुण्णस्सासव भूदा अणुकंपा सुद्धो उवजोओ"** – अनुकंपा और सद् प्रकृति से शुद्धोपयोग और पुण्य कर्मों का आस्रव होता है और चारों कषायों का क्षय। सुभाषित है **"प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूराद् स्पर्शनं वरम्"** – कीचड़ लगा कर धोने की अपेक्षा, न लगाना ही उत्तम और अपेक्षित है। आचार्य हस्ति ने (अध्यात्म आलोक पृ. १८६ में) पूर्वाचार्यों के कथन का उल्लेख किया है –

मंज्जं विसय कसाया, निद्दा विकहा य पंचमी भणिया
एए पंच पमाया जीवा पाडंति संसारे"

★ ★ ★

"प्रकर्षेण मादयति जीवं येन स प्रमादः" –

प्रमाद में मनुष्य विवेकहीन हो जाता है – करणीय अकरणीय का ध्यान नहीं रहता और आत्मा के स्वरूप की हिंसा करता है। वेदनीय कर्म के उदय से होने वाली क्रोधिता रूप कलुषता कषाय है – वह हिंसा करती है। मिथ्यात्व सबसे बड़ा कषाय है।

जिन जीवों के कषाय नष्ट हो चुके हैं, जो वीतरागी है उनकी सभी क्रियाएं ऐर्यापिथिकी हैं और जो क्रियाएं सांसारिक बन्धन को और कसती हैं, वे साम्प्रायिकास्रव हैं। तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार **"सकषाया-कषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः** (६ – ५)। कषाय चारित्रिक मोहनीय कर्म बंध के हेतु हैं – वे आत्मा को उद्वेलित करते हैं। चारित्र मोहनीय कर्म के दो भेद हैं – कषाय और नोकषाय। इनके भी अनेक भेद – प्रभेद हैं। उत्तराध्ययन के अनुसार कषाय के प्रत्याख्यान से वीतराग भाव उत्पन्न होता है और जीव सुख-दुःख में सम हो जाता है (२६ – ३७) कषाय के लिए कहा गया है –

होदि कसाउम्मतो उम्मतो तध ण पित्त उम्मत्तो।
ण कुणदि पितुम्मत्तो पावं इदरो जधुम्मतो।

(भगवती आराधना १३३१)

कषाय से उन्मत्त व्यक्ति पित्त से उन्मत्त व्यक्ति से भी अधिक तीव्र होता है – **क्रोध पित्त निज छाती जारा** तुलसीदास पुनः कहते हैं: –

काम क्रोध मद लोभ न जाके।
तात निरन्तर वश में ताके।

जिस प्रकार नाव के छिद्र को रोक देने से नाव डूब नहीं सकती उसी प्रकार कषायों के अवरूद्ध होने से सभी आश्रव अवरुद्ध हो जाते हैं। कषाय पुनर्जन्म वृक्ष की जड़ों को सींचते हैं –

"चत्तारि ए ए कसिणा कसाया
सिचंति मूलाई पुण भवस्स" (द – ८ – ३६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध कषाय में सर्वप्रथम है। सूत्रकृतांग (१ – ६ – २६) में क्रोध को कषायों में प्रमुख कहकर अन्तरात्मा का महान् दोष गिना है – इसके परित्याग से महर्षि न पाप करते हैं और न कराते हैं। स्थानाङ्ग (४ – २) कहता है – क्रोध आत्मा को नरक में ले जाता है। स्वयं पर भी क्रोध न करने का आदेश वीर प्रभु ने दिया है (उत्तराध्ययन २४ – ६७)। क्रोध से प्रेम, दया व करुणा नष्ट होते हैं। इसी से वज्जालग के मत में **"कोह समो वेरियो नत्थि"** क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है। क्रोध में व्यक्ति माता-पिता-गुरु का भी बध कर देता है – **क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्यात् गुरुनपि" "सान्तात्मसे पृथग्भूतः** क्षमा रहित मात्र क्रोध है। "क्रोध" **"सान्तात्मतःपृथग्भूतः एका अक्षमा रूपो भावः क्रोधः"**। अन्यत्र **"प्रतिकूले सति तैक्ष्ण्यस्य प्रबोधः"**। एक अन्य परिभाषा के अनुसार **"स्वपरोपघात निरनुग्रहाहितकार्य परिणामो अमर्षः क्रोधः"** अपने या पर के उपघात या अनुपकार आदि करने का क्रूर परिणाम क्रोध है। 'द्रव्य संग्रह टीका' में उसे **"अभ्यन्तरे परमोपशम मूर्ति केवलज्ञाना द्यनत गुण स्वभाव परमात्म स्वरूप क्षोभ कारकाः। बहिर्विषये परेणां संबन्धित्वेन क्रूरत्वाद्या वेश मूर्ति केवलज्ञानादि"** अनन्त गुण-स्वभाव परमात्म रूप में क्षोभ उत्पन्न करने वाले तथा बाह्य विषयों अन्य पदार्थों के संबंध से क्रूरता आवेशरूप क्रोध है। 'साहित्य दर्पण' में विश्वनाथ कविराज ने इसे रौद्ररस का स्थायी भाव मान कर कहा है –

अनुभावस्तथाक्षेप क्रूर संदर्शनादयः
उग्रतावेग-रोमाञ्चस्वेद-वेपथवो मदः।
मोहामर्षादयस्तत्र भावास्युर्व्यभिचारिणः।।

'भाव प्रकाश' में क्रोध का स्वरूप है –

तेजसो जनकः क्रोधः समिधः कथ्मतेसुधेः
क्रोधः कोपश्च रोषश्चेत्येष भेदास्त्रिधा मतः
कृत क्रौर्यं तेन सर्वत्र धचयतीत्यस्त निर्वहः
क्रोध्यते क्रोधयत्येवं क्रोध इत्यभिधीयते।

प्रसिद्ध आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने इसे शान्ति भंग करने वाला मनोविकार गिनते हुए वैर को क्रोध का अचार या मुरब्बा गिना है। इस प्रकार क्रोध की परिपक्वावस्था रौद्र, क्रूरता, वैर का हेतु है। क्रोध के पर्याय हैं – कोप, अमर्ष, रोष, प्रतिध, रूट, कुत, भीम, रूपा, हेल, हर हृणि, तपुषी, मृत्यु, चूर्णि, एह आदि। क्रोध एक वत्सर भी है, जिसके आने पर सकल जगत् आकुल हो जाता है एवम् प्राणियों में क्रोध भाव की बहुलता रहती है। यह रजोगुणात्मक और तमोगुणात्मक है। हलायुध कोश में इसके पर्याय कोप, अमर्ष, रोष, प्रतिघ, रुद्र, कृत, कृद दिए हैं। **प्रतिकूलेसति तैक्ष्ण्यस्य प्रबोधः**। अपने और अपघात अथवा अनुपकार आदि करने का क्रूर परिणाम क्रोध है। वह पर्वत रेखा, पृथ्वी रेखा, धूलि रेखा और जल रेखा के सदृश चार प्रकार का होता है (राजवार्तिक) पौराणिक मान्यता के अनुसार इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के भू से हुई है। क्रोध का अनुभाव समस्त शरीर में कम्पन, रक्त कमल के सदृश दोनों नेत्रों का आरक्त होना, भ्रमंग से भी भयंकर आकृति।

क्रोधेनेदुत धृत कुन्तल भटः सर्वाङ्ग जोवे पशुः।
किञ्चित् कोकनदस्य सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः।।
वत्ते कान्तिमिदे न वक्त्रमन्यो भंगड़ेन भिन्नं भ्रुवोः।
चन्द्रोस्यदुम्टलानछनस्य कमलस्योम्द्रान्त भृंगस्य च।।

(उत्तरराम चरित (५ – ३६)

जैन मान्यता के अनुसार भी क्रोध में हृदय दाह, अंग कम्प, नेत्र रक्तता और इन्द्रियों की अपटुता उसके प्रभाव हैं। भौंह चढ़ाने के कारण जिसके ललाट में तीन बली पड़ती है, शरीर में संताप होता है, कांपने लगता है – वह क्रोध सब अनर्थ की जड़ है। आधुनिक मनोविज्ञान में जेम्स लेज का सिद्धान्त भी क्रोध के इन अनुभावों का समर्थन करता है।

भारतीय चिन्तन धारा में क्रोध पर विशेष विचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है। शायद ही कोई ऐसा आप्त ग्रन्थ हो, जिसने इस मनोविकार या कषाय की विवेचना नहीं की। अनेक काव्य ग्रंथों में क्रोध की मीमांसा की गयी है। जैन धर्म व तत्त्व चिन्तन में तो कषाय में सर्वप्रथम इसे परिगणित किया है। इस पर विचार करने के पूर्व हम भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध क्रोध संबंधी कुछ अभिमत देखें। काम के सदृश ही क्रोध से पराभूत होने पर विवेक और समय नष्ट हो जाता है। वह भी नरक का एक द्वार है। वाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट उल्लेख है –

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरुनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत्।।
वाच्या वाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विधतेक्वचित्।।

(सुन्दर काण्ड – ५५-३-४)

क्रोध से भर जाने पर कौन पाप नहीं करता, मनुष्य गुरुजनों की भी हत्या कर सकता है। क्रोधी साधु पुरुषों पर भी कटुवचनों द्वारा आक्षेप करता है। क्रोध से व्यक्ति अंधा और बहरा होता है – उसकी चेतना शक्ति नष्ट हो जाती है और वह कर्तव्यहीन होता है। ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध षष्टि संवत्सरों में क्रोध एक संवत्सर है जिसमें सकल जगत आकुल- व्याकुल होकर प्राणियों में क्रोध की अतिशयता आती है। (वेदान्त सार)। 'शब्दार्थ चिन्तामणि' में कहा है – इस संवत्सर में

"विषमस्य जगतः सर्वं व्याकुलं समुदाहृतम्।
जनानां जायते भद्रे क्रोधे क्रोधः परः स्थिरम्'।

महाभारत में **"क्रोधा प्राधान्य विश्वा च विनतो कपिलो मुनिः** क्रोध सबसे घातक शत्रु है – **क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम"** क्रोध मुनियों और यतियों के संचित पुण्य व साधना का क्षरण कर लेता है। क्रोधालू व्यक्ति धर्मविहीन होते हैं – उन्हें अभीष्ट गति प्राप्त नहीं होती।

क्रोधो हि धर्म हरति यतीनां दुःख संचितम्।
ततो धर्म विहीनानां गतिरिष्टा न वियते।

(महाभारत – आदि पर्व ४-२-८)

श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण का स्पष्ट कथन है – **"काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः"** रजोगुण क्रियाशील है – इसी से रजोगुण समुद्भव कहा है। काम और क्रोध में अधिक अंतर नहीं – **यः कामः स क्रोधः य क्रोधः स कामः**"। आधुनिक मनोविज्ञान भी इस मत का अनुमोदन करता है। क्रोध को महापाप कहा है, क्योंकि क्रोध में ज्ञान आवृत्त होता है और व्यक्ति विवेक और संयमहीन हो जाता है। श्रीगीता में पुनः श्री कृष्ण कहते हैं – **संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते** – काम से क्रोध और **क्रोधाद्भवति संमोहः** – तत्पश्चात् स्मृति विभ्रम और बुद्धि-नाश"। इस प्रकार क्रोध को वर्जनीय गिना है। श्री कृष्ण पुनः कहते हैं – काम क्रोध से रहित शुद्ध चित्त वाले ज्ञानी पुरुषों के लिए सब ओर से शांत परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है। (५-२६)। आगे (१६-२) में भी कहा है – काम, क्रोध और लोभ ये तीन ही नरक के द्वार हैं और आत्मा का नाश करके अधोगति में ले जाते हैं – इन तीनों का त्याग आवश्यक है –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।

क्रोध के दो स्तर हैं – शांत (साइलेन्ट) और आक्रामक (वाईलेन्ट)। पहला क्रोध शांत होता है जिससे व्यक्ति हताश, निराश व अवसादग्रस्त हो जाता है। आक्रामक क्रोध बहिर्मुखी होता है – जिससे व्यक्तित्व खंडित होता है और मानसिक एवं ग्रंथि तंत्रीय विषैले सुख व्यक्ति को अस्वस्थ करते हैं। क्रोध से थाइरॉड ग्लांड (कंठ मणि) का स्राव बंद हो जाता है जिससे विनाश की प्रवृत्ति बढ़ती है। इसी से कहा है –

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधोऽमित मुखी रिपुः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोधः असि समुहातीक्ष्ण तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत्।।

क्रोध के समय शरीर की आक्रामक ग्रंथियां अधिक सक्रिय होकर शरीर और भाव तंत्र को विकृत करती है। ब्रेन हेमरेज का भी एक कारण क्रोध है। जैन आगमों में क्रोध को अल्पायु का एक कारण गिना है। भगवान् महावीर का निर्देश है – **उवसमेण हणे कोहं**" उपशम क्रोध का हनन करता है। जीवन में क्षमता, समता और स्थिरता, ऋजुता आवश्यक है। क्रोध एक भाव तरंग है जो मस्तिष्क का भावावेश (इमोशनल एरिया) से उत्पन्न होकर, एड्रीनल ग्लांड (अधिवृक्क ग्रंथि) को उत्तेजित करता है, जिससे मनुष्य अपना मानसिक व शारीरिक संतुलन खो बैठता है। और विष तरंगों का प्रभाव बढ़ता है। क्षमता, समता, स्थिरता और ऋजुता ही संतुलन देते हैं। महर्षि व्यास के अनुसार क्रोध न करने वाला व्यक्ति सौ वर्ष तक यज्ञ करने वाले से भी श्रेष्ठ है।

यो यजुद परिश्रान्तो मासि मासि शतं सभा।
क्रुध्येच्च सर्वस्य.... तयोरक्रोधनोऽधिकः।

वन पर्व (२०६-३२) में व्यास का कथन है –

बलाका हि त्वया दग्धा शेषात्तदधिगतं मया।
क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम।।

तुमने क्रोध कर के एक बगुली को जला दिया। यह मुझे ज्ञात हो गया। क्रोध नामक शत्रु मनुष्य के शरीर में ही रहता है। अन्यत्र नहीं, जो उसे जीत लेता है, वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। लोक मर्यादा, व्यक्ति हित, दोनों दृष्टियों से क्रोध गर्हणीय है। महाभारत में अनेक स्थलों पर महर्षि व्यास ने क्रोध को महाशत्रु गिना है – यथा आदि पर्व – ७९-६, ४२-३ वन पर्व २०७-३२)। अनेक पुराणों में क्रोध को अभिशाप गिना है। पद्म पुराण में नन्दा गाय अपनी पुत्री को कभी प्रमाद न करने का उपदेश देती है। लोभ से किसी घास को मत चरना। लोभ व प्रमाद सद्गुणों का नाश कर देते हैं। गरुड़ पुराण में नरकों का वर्णन करते समय कहा गया है कि व्यक्ति को पाप का फल भोगना पड़ता है। यह पुराण मनुष्य को असत् कर्म से हटा कर सत् कर्म के लिए प्रवृत्त करता है – अशुभ कर्म से पाप फल प्राप्त होते हैं। वामन पुराण (२८-७) में कहा है कि क्रोधी लोक में यज्ञ, दान, तप, हवन आदि सभी क्रियाओं का फल प्राप्त नहीं करता – उसके शुभ कर्म निष्फल होते हैं। अक्रोधी शांत एवं उन्नति चाहता है – उसकी वाणी में माधुर्य होता है – दुर्वचन क्रोध का परिणाम है जिसका घाव कभी नहीं भरता। सत्य, अहिंसा और प्रेम मानवीय गुण है। विष्णु पुराण (१-१-१७-२०) में वसिष्ठ का कथन है –

"मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः"

* * *

संचितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः।
यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः।।
स्वर्गापवर्ग व्यासेधकारणं परमर्षयः
वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव।

पुनः साधुओं का बल केवल क्षमा है। यही पुराण आगे कहता है कि वैर भाव रहते हुए भी तुमने क्षमा का आश्रय लिया है और क्रुद्ध होने पर भी सन्तान का वध नहीं किया। तुम वर के अधिकारी हो (वही-२५)। इसी पुराण में प्रहलाद ने अपरिमेय क्षमा का उदाहरण देकर मृत ब्राह्मणों को पुनः जीवित करा दिया। मत्स्य पुराण में तप, दान, शम, आर्जव, सरलता, दया को सर्वोत्तम गुण गिने हैं। पुराणों के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में भी क्रोध को हेय बताया है। नीति शास्त्रों में भी क्रोध को अग्नि कहा है। चाणक्य नीति कहती है कि काम के समान कोई रोग नहीं, मोह के समान शत्रु और क्रोध के समान कोई आग नहीं। क्रोधी नरक में जाता है। क्रोध यमराज की मूर्ति है। विद्यार्थी को कामवासना के साथ क्रोध का त्यागने का भी चाणक्य ने आदेश दिया है। शुक्रनीति में भी छः दोषों में से क्रोध को एक दोष गिना है – इसी में मनुष्य का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकल्याण है। क्रोध मुनियों के गुण को भी समाप्त कर देता है। मनुस्मृति में क्षमा को दस लक्षणों में परिगणित किया है और विद्वान् की शुद्धि का कारण क्षमा बताया है। व्यवहार में मनु ने क्रुद्ध के प्रति भी क्रोध न करने का आचरण की पवित्रता बतायी है। विदुरनीति में विदुर कहते हैं:

अव्याधिजं कटुकं शीर्ष रोगं,
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
एता पेयं यन्न पिबन्त्य सन्तो,
मन्युं महाराजमिव प्रशाम्य।।

क्रोध बिना व्याधि के उत्पन्न होने वाला, बुद्धि को विकृत करने वाला, कठोर, कुकर्मों की ओर ले जाने वाला, ताप देने वाला होता है। पुनः **"कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः"** – काम व क्रोध ज्ञान को नष्ट कर देते हैं। विदुर पुनः कहते हैं। क्रोध, लक्ष्मी और अहंकार सर्वस्व का नाश करते हैं। अपना कल्याण चाहने वाला व्यक्ति सर्वप्रथम क्रोध पर विजय पाता है। पंडित वह है जो क्रोध को आत्मबोध और जीवन के उद्देश्य में बाधा नहीं पहुँचाता। इसलिए धैर्य पूर्वक काम – क्रोध रूपी मगरमच्छों से पूर्ण संसार रूपी नदी को पार करना है। भर्तृहरि ने नीति शतक (२१) में कहा है – **"क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोस्ति चेद्देहिनां"** अर्थात् क्षमा को कवच की आवश्यकता नहीं और क्रोधी को शत्रुओं की, क्योंकि उसके तो अनेक शत्रु होंगे ही। क्रोध मानव संहार का कारण है। इसी से कहा है – **"जहां क्रोध तहं काल है"**। **"क्रोधो वैवस्वतो राजा"**। क्रोध यमराज है। पुनः धीर पुरुषों के लक्षण में बताया है जिसका चित्त क्रोध रूपी अग्नि से ज्वलित नहीं होता – वही धीर है – **"चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः"**। बौद्ध धर्म में भी क्रोध का पूर्ण निषेध गौतम बुद्ध ने किया है। धम्म पद में "क्रोध वग्गो" के अंतर्गत उन्होंने कहा –

क्रोधं जहे विप्प जहेय्यं मानं संयोजनं सव्वमतिक्कमेय्यी
तं नाम रूपस्मिं असज्ज मानं अकिंचनं ना नुपतत्ति दुक्खा
(२२१)

व्यक्ति को क्रोध, अभिमान का पूर्ण त्याग करना चाहिए। नाम रूप से निरस्त आसक्ति का त्याग करने से दुःख का निरोध होता है। वे पुनः कहते हैं – **"अक्कोधेन जिने कोधं"**, क्रोध का निरोध करो। उनका स्पष्ट कथन है – **"यो वे उप्पतितं कोधं रथ भन्त वधारये"** क्रोध को विजय करने वाला उस सारथी के समान है जो अपने रथ को नियन्त्रण में रखता है। यही नहीं उन्होंने वाणी के संयम, शब्दों के नियन्त्रण, असत्य भाषण, को भी त्यागने को कहा है – **"वचीय कोपं रक्खेय्य वाचाय संवितोसिया"** (२३२) ऐसे ही मनुष्य सर्वदा अपने को सर्वभावेन नियन्त्रण में रखते हैं। बुद्ध मत के विज्ञानवाद में क्रोध को उपक्लेश गिना है – मूल क्लेश नहीं। क्लेश रागादि से असंप्रयुक्त अविद्या मात्र है (**बौद्ध धर्म-दर्शन पृ. ३३६**) क्रोध की परिभाषा इस प्रकार है **"व्यापाद हिंसा से अन्य सत्व – असत्व का आघात"** है।

संस्कृत के कवियों ने अपने महाकाव्यों में यथा अवसर क्रोध और क्रोधी की भर्त्सना की है। किरातार्जुनीय में कहा है –

अवन्ध्य कोपस्य विहन्तुरापदो भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुः मान न जातहार्देन न विद्विषादरः।।
(२-३३)

उत्तररामचरित में भवभूति का भी यही मत है। उत्साह वीर पुरुष का भूषण है पर क्रोध के अभिभूत हो कर्तव्यच्युत होकर वह कदाचार करना प्रारंभ कर देता है। प्रलाप में उसके कथन में न संगति रहती है और न औचित्य। क्रोध रूपी अज्ञान को नष्ट करना सर्वाधिक आवश्यक है। जैन धर्म में तो क्रोध को प्रथम कषाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिना है। वीर प्रभु ने सर्वदा और सर्वथा क्रोध के शमन पर बल दिया है।

तम्हा अतिविज्जो नो
तम्हा अतिविज्जो नो पडिसंजलिज्जासि त्ति बेमि।

विद्वान् पुरुष क्रोध से आत्मा को संज्वलित न करें। भगवान् महावीर का आदेश है –

अकहो होइ चरे भिक्खुं , न तेसिं पडिसंजले।
सरिसो होइ बालाणं तम्हा भिक्खु न संजले।।

यदि कोई भिक्षु को अपशब्द कहे तो भी वह क्रोध न करे। क्रोधालु व्यक्ति अज्ञानी होता है। आक्रोश में भी संज्वलित न हो। **"रखेज्ज कोहं"** क्रोध से अपनी रक्षा करे – यही धर्म श्रद्धा मार्ग है। देवेन्द्र नमिराजर्षि से कहते हैं – **"अहो ते निज्जिओ कोहो"** आश्चर्य है कि तुमने क्रोध को जीत लिया।

"प्रवचन माता" में भाषा समिति में भी कहा है।

कोहे माणे य मायाए लोभे य उवउत्तया
हासे भए मोहरिए विकहासु तहेव य।

(उत्तराध्ययन २४-६)

क्रोध विजय से जीव शांति को प्राप्त होता है। क्रोध-विजय वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं करता। क्रोधादि परिणाम आत्मा को कुगति में ले जाते हैं। क्रोध चार प्रकार का होता है – अनन्तानुबन्धी (अनन्त) अप्रत्याख्याना-वरण (कषाय विरति से अवरोध के कारण) प्रत्याख्यानावरण (सर्व विरति का अवरोध करने वाला) और संज्वलन (पूर्ण चरित्र का अवरोध करने वाला) यह भी कहा है – **"क्रोधः कोपश्च रोषश्च एष भेदस्त्रिधा मतः"**। ठाणांग में पुनः –

चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा –
आभोगणिव्वत्तिते,
अणाऽभोगणिव्वत्तिते
उवसंते, अणुवसंते
एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चार प्रकार का – **आभोग निवर्तित** – स्थिति को जानने वाला, **अनाभोग निवर्तित** – स्थिति को न जानने पर, **उपशान्त** (क्रोध की अनुदयावस्था) **अनुपशान्त** (क्रोध की उदयावस्था) (४-८८)।

क्रोध १८ दोषों में तृतीय दोष है – सांसारिक वासना का अभाव कषाय का क्षय करता है – केशीकुमार के प्रश्न पर गणधर गौतम कहते हैं – **"कसाय अग्गिणो वुत्ता सुय-सील-तवो जलं"** क्रोध रूपी कषाय अग्नि को बुझाने की श्रुत, शील, तप रूपी जल है। यही नहीं प्रभु तो यहां तक कहते हैं कि क्रोधी को शिक्षा प्राप्त नहीं होती। चौदह प्रकार से आचरण करने वाला संयत मुनि भी अविनीत है – यदि वह बार-बार क्रोध करता है, और लम्बी अवधि तक उसे बनाए रखता है। महावीर स्वामी कहते हैं कि क्रोध विजय से जीव शान्ति प्राप्त करता है। क्रोध मनुष्य के पारस्परिक प्रेम और सौमनस्य को समाप्त करता है – **कोहो पीइं पणासेइ** (वह आत्मस्थ दोष है – वैर का मूल, घृणा का उपधान"। क्रोध के अनेक कारणों का भी आगमों में उल्लेख है। उसकी उत्पत्ति क्षेत्र, शरीर, वास्तु और उपधि से होती है – क्षेत्र अधर्मत् भूमि की अपवित्रता, शरीर अर्थात् कुरूप, अंग-दोष, वास्तु गृह से और उपधि का अर्थ है उपकरणों के नष्ट होने से। अन्य प्रकार से उसके दस हेतु हैं – मनोज्ञ का अपहरण, उसके अतीत व वर्तमान और भविष्य की आशंका। आचार्य और उपाध्याय से मिथ्यावर्तन का भय आदि। (ठाणं) भगवान् बुद्ध ने तीन प्रकार के मनुष्यों का उल्लेख किया है – एक वे हैं, जिनका क्रोध प्रस्तर पर उत्कीर्ण रेखा की भांति दीर्घ काल तक रहता है। दूसरे वे हैं, जिनका क्रोध पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान अल्पकालीन होता है और तृतीय प्रकार के वे हैं जिनका क्रोध जल पर खिंची रेखा के सदृश होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है – वह अपनी प्रसन्नता नहीं खोता, समभाव रखता है – इस प्रकार – **"यद् ध्यायति तद् भवति"** – (अंगुत्तर निकाय भाग १)

भगवान् महावीर ने क्रोध कषाय का वर्णन ही नहीं किया वरन् उसके उपशमन की भी विधि बतायी है। हम आगे देखेंगे कि आधुनिक मनोविज्ञान की अवधारणाओं से क्रोध का यह निरूपण और उपचार मिलता-जुलता है। महावीर कहते हैं –

कोहादि सगब्भावक्खय पहुदि भावणाए णिग्गहणं
पायच्छित्तं म मणिदं णियगुणचिन्ता य णिच्छ्यदो।

क्रोध आदि भावों के उपशमन की भावना करना तथा निज गुणों का चिन्तन करना निश्चय से प्रायश्चित तप है, इसे ही आधुनिक मनोविज्ञान में अन्तर्निरीक्षण (इन्ट्रोइंस्पेकक्शन) कहा है – "अन्तर्निरीक्षण व्यक्ति के मानसिक उद्वेग व असंतुलन को नष्ट कर देता है – यदि क्रोधित व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण करे तो उसका आवेश – उद्वेग शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा और वह पुनः स्वस्थ होगा। आत्म चिन्तन के साथ – साथ शील और सत्य भावना भी क्रोध का क्षय करती है। दशवैकालिक (८-३८) के अनुसार **"उवसमेण हणे कोहं"** – क्रोध का हनन शान्ति से होता है। संयम और विनय से शुभ भावनाओं के द्वारा व्यक्ति क्रोध के मनोविका से मुक्त होता है। **(द्रष्टव्य – भगवती आराधना – १४०६-७-८)**। इसी प्रकार तप, ज्ञान, विनय और इन्द्रिय दमन क्रोध के उपशमन के साधन हैं। भाषा समिति के अंतर्गत कहा गया है कि क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, वाचालता व विकथा के प्रति सतत उपयोगयुक्त रहना अभीष्ट है। इसी प्रकार वही प्रशान्तचित्त है, जिसने क्रोध को अत्यन्त/अल्प किया है। महावीर स्वामी कहते हैं, क्रोध पर ही क्रोध करो, क्रोध के अतिरिक्त और किसी पर क्रोध मत करो। क्रोध के शमन के लिए अध्यात्म और स्वाध्याय आवश्यक है। अपने चित्त को अन्तर्मुखी कर शास्त्र का अवलम्बन ले अन्तःकरण शुद्ध करना क्रोध पर विजय पाना है। आचार्य हरिभद्र कहते हैं :

मलिनस्य यथात्यन्तं जलं वस्त्रस्य शोधनम्।
अन्तःकरणरत्नस्य तथा शास्त्रं विदुर्बुधाः।।

जिस प्रकार जल वस्त्र की कलुषता नष्ट कर देता है उसी प्रकार शास्त्र भी मनुष्य के अन्तःकरण में स्थित काम-क्रोधादि कालुष्य का प्रक्षालन करता है। क्रोध का हनन क्षमा होता है।

उत्तराध्ययन (२६-४७) में क्षमा को परीषहों पर विजय प्राप्त करने वाली कहा है – इससे मानसिक शांति व संतोष प्राप्त होता है। वज्जालग (५-५) में कहा है कि कुल से शील, रोग से दारिद्य, राज्य से विद्या और बड़े से बड़े तप से क्षमा श्रेष्ठ है। क्षमाशील वह है – जो घोर से घोर उपसर्ग में भी क्रोध न करे / वही क्षमाशील है / वही समस्त पाप कर्मों के बन्ध से मुक्त होता है। इसी से कल्प सूत्र (३ – ५९) में कहा है – **"खमियव्वं खमावियव्वं"** क्षमा मांगनी चाहिए, क्षमा देनी चाहिए। जैन धर्म का सर्वश्रेष्ठ पर्व पर्युषण जहां साधना और तप का पर्व है, वहां वह क्षमा का भी पर्व है। श्रमण व श्रावक समस्त जीवों से क्षमा मांगते हैं। जाने-अनजाने, ज्ञात-अज्ञात किसी भी क्षण यदि प्रमाद हुआ हो तो सभी जीव क्षमा करे –

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ति मे सव्व भुएसु वेरं मज्झ न केणई।।

(वंदितु सूत्र ४८)

सभी जीवों से मेरा मैत्री भाव है, वैर – विरोध कदापि नहीं। इसी प्रकार बौद्ध धर्म में भी गौतम बुद्ध ने क्षमा का महत्व अनेक गाथाओं में प्रतिपादित किया है। **"न हि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कदाचनं।"** – वैर से वैर कभी समाप्त नहीं होता। बुद्ध कहते हैं – उसने मुझे दुत्कारा, अपशब्द कहे, लूटा, त्रास दी – इन सबको सोचने वाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमारहित होकर कभी शांति नहीं पा सकता (यमक वग्गो – ३-४)। ललितविस्तर (४-१-१६) में कहा है **"क्षान्त्या सौरभ्य सम्पन्ना"** – क्षमा की सुगन्ध से, सुरभि से सुगन्धित हो। बुद्ध कहते हैं जब कोई व्यक्ति अत्यधिक क्रोध की स्थिति में हो और यदि वह अभिज्ञ है कि वह क्रुद्ध हो तो उसी क्षण उसका क्रोध समाप्त हो जाता है। समस्त कषायों के लिए अभिज्ञ होना उनको दूर करना है। बुद्ध का ध्येय है **'महात्याग शील व्रत शान्ति वीर्य बलां'**, अर्थात् शील, क्षमा, तेज, बल और दान से भव सागर पार करना है। बौद्ध धर्म का मैत्री व करुणा मुदिता का सिद्धान्त भी परोक्ष रूप में क्षमा है, जिससे अमृत रस का पान होता है। शांतिदेव कारिका में कहते हैं – **"क्षमेत श्रुतमेषेत संप्रयते वनं तत्"** इसकी व्याख्या में कहा गया है कि शांति से बड़ा कोई तप नहीं है – द्वेष सहस्रों कामों के शुभ कर्म को नष्ट करता है। श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव, आकार परिवितर्क, दृष्टि विधान-शांति – ये पांच धर्म इसी जन्म के विपाक वाले हैं।

भारतीय वाङ्मय में क्षमा को समस्त दुष्कर्मों के प्रतिहार के साथ – साथ क्रोध के पाप कर्म से मुक्ति माना गया है। महाभारत में (**अनुशासन पर्व २३-८६ में**) व्यास कहते हैं – **"क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः"** जो क्षमा के सदाचार से युक्त हैं वे स्वर्ग को जाते हैं। सुभाषित हैं – **"अक्रोधस्तेजः – क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता"** – क्षमा प्रभुता का भूषण है। भर्तृहरि ब्राह्मण का गुण बताते हुए कहते हैं **"शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणस्य गुणः स्मृतः।" क्षमा वीरस्य भूषणम्** – यह तो प्रसिद्ध ही है। इस संबंध में विष्णु पुराण (१-१८-४२) में प्रह्लाद कहता है कि जो मुझे मारने को आए, विष दिया, आग में जलाया, दिग्गजों से पीड़ित किया, सर्पों से डंसाया, उन सबके प्रति मैं समान मित्र भाव से रहा हूँ और कभी पाप बुद्धि नहीं हुई हो तो ये सब पुरोहित जी उठे।

श्री कृष्ण ने गीता में जिन देवी सम्पदाओं का वर्णन किया है उनमें अनुद्वेग, प्रिय और हितकारक वचन वाणी तप कहा गया है – **अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।"** यही सदाचार है और क्षमा का स्वरूप है। यजुर्वेद (३६ – १८) में ऋचा है –

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहि।

विश्व मैत्री की इस प्रार्थना का मूल अक्रोध, अद्वेष के साथ सर्वत्र शांति, सर्वव्यापी प्रेम और क्षमा है। विदुर नीति में कहा है कि क्षमा ही शांति का श्रेष्ठ उपाय है – **क्षमैका शान्तिरुत्तमा"**। विदुर पुनः कहते हैं 'क्षमा सब के लिए हितकारी है – **क्षमेत शक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।**

अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता। (७-५८)

तितिक्षा और क्षमा में परस्पर संबंध है। तितिक्षा का एक अर्थ क्षमा भी है। आचार्य हस्ति ने (**उत्तराध्ययन भाग-२ पृष्ठ २५७ में**) शान्ति के दो अर्थ लिए हैं – क्षमा और सहिष्णुता। सहिष्णुता और तितिक्षा होने पर व्यक्ति की सहन शक्ति बढ़ जाती है और वह परीषहों पर विजय पा लेता है। इस प्रकार के श्रमण धर्म में शान्ति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव हैं। शान्ति अर्थात् **क्षमुष् सहने; क्षम्यते सह्यते इति क्षान्तिः"**। अन्यत्र कहा है –

"क्षान्त्या क्षमया क्षमते न त्वसमर्थतया
यः सः शान्तिः क्षमः। (कल्प सूत्र-४-५)
इहादौ वचनं शान्तिः धर्मः क्षान्तिरनंन्तरम्।
अनुष्ठानं वचनानुष्ठानात्स्याद् संगतम्।।
उपकारापकाराभ्यां विमोकाद्वचनात्तया।
धर्माच्च समये शान्तिः पंचधा हि प्रकीर्तिता।।

(अभिधान राजेन्द्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहिष्णुता तितिक्षा का लक्षण है "**तितिक्षा.... शीतोष्णादि द्वन्द्व सहिष्णुता** यह भी कहा गया है – **सहनं सर्वदुःखानां...तितिक्षा निगद्यते**। क्षमावान् अभय रहता है। योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं – **क्षमा धृति मिताहार ...क्षमा सेवेति**। गीता में (१२ – १३ में) श्री कृष्ण कहते हैं –

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।
ऐसा मनुष्य ही *"स मे प्रियः"*।

हिंदुओं में पितृतर्पण के उपलक्ष्य में पूर्व जन्म के शत्रुओं को भी जलदान देना क्षमा – साधना की पराकाष्ठा है "**ये बान्धवाऽबान्धवा ते तृप्ति मखिलां यान्तु**"। (द्रष्टव्य विष्णु पुराण – ४-१०-२५७)।

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्।
सम दृष्टेस्तदा पुंसः सर्वास्सुखमया दिशः।।

अर्थात् जो किसी भी प्राणी के प्रति पापमयी भावना नहीं रखता, उस समय उस समदर्शी के लिए सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं। (पुनः वाल्मीकि सुन्दर कांड ५५) हनुमान कहते हैं – **धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्धया कोप-मुत्थितम्**। वस्तुतः जो हृदय में उत्पन्न क्रोध को क्षमा के द्वारा निकाल देता है जैसे सांप पुरानी केंचुल को; वही वास्तव में पुरुष है –

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमां चैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते।।

क्षमा ही क्रोध का उपचार है :

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं च उज्जुभावेण, लोभं संतोसओ जिणे।।

क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आर्जव से और लोभ को संतोष से जीता जाता है। उत्तम क्षमा धर्म के दस लक्षणों में प्रथम है – "**उत्तमखममदवज्जव**"। भयंकर से भयंकर उपसर्ग पर भी जो क्रोध नहीं करता है, वही "**तस्स खमा णिम्मला होदि**"। जैन धर्मावलम्बियों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे समस्त जीवों से क्षमा याचना करें और उन्हें क्षमा भी करें। सभी प्राणियों के प्रति समभाव का यह प्रथम उपकरण है, जिसमें किसी से भी वैर भाव नहीं। यह संकल्प वस्तुतः क्षमा, मैत्री और अप्रमाद का ही संकल्प है (क्रोध का कारण द्वेष है – "**दोसे दुविहे पण्णत्ते तं जहा-कोहे य माणे य**"। द्वेष समाप्त करो, क्रोध स्वतः नष्ट हो जाएगा। (ठाणं-२-३-२) शान्तसुधारस में भी "**क्रोध क्षान्त्या मार्दव नाभिमान**" कहा है। क्षमा मनुष्य का भूषण है। क्षमा मानसिक शांति का महत् और अचूक अस्त्र है। सभी तत्व चिन्तकों ने क्षमा को मनुष्य की अप्रतिम शक्ति माना है। "**क्षमते आत्मोपरिस्थिता जीवानाम् अपराध या**"। पृथ्वी का एक नाम क्षमा है। दुर्गा को भी "**दुर्गा शिवा क्षमा**" कहा गया है, "**क्षमा तु श्रीमुखे काया योग-पट्टोत्तरीयका**"। क्षमा केवल वाणी से नहीं वरन् अन्तर्मन से होती है और वही सार्थक है। **एकादशी तत्त्वम्** में कहा है –

बाह्ये चाध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पादिते क्वचित्।
न कुप्यति न वहन्ति सा क्षमा परिकीर्तिता"।।

भगवान् महावीर उत्तराध्ययन सूत्र २९वें अध्य. में कहते हैं – **खन्तीएण "परीसहे जिणइ"** – क्षमा से समस्त परीषहों पर विजय प्राप्त होती है। इसी में २२-४५ में कहा गया है कि क्रोधादि कषायों का पूर्ण निग्रह, इंद्रियों को वश में करने से अनाचार से निवृत्त होना ही श्रामण्य है। राजमती का रथनेमि से यह उद्‌बोधन प्राणिमात्र के लिए सत्य है। भावपाहुड़ में धीर और धीर पुरूष का यही गुण बताया गया है, जिन्होंने चमकते हुए क्षमा खड्ग से उद्दण्ड कषाय रूपी योद्धाओं पर विजय प्राप्त कर ली है। मूलाचार के अनुसार –

जइ पंचिंदिय दमओ होज्ज जणो रूसिदव्वय णियतो
तो कदरेण कयंतो रूसिज्ज जए मणूमाणं (२६६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांचों इन्द्रियों का दमन करके क्रोधादि से निवृत्त होने पर यमराज के क्रोध का कोई कारण शेष नहीं रहता।

जैन शास्त्रों में उत्तम क्षमा के लिए कहा गया है कि – क्रोध उत्पन्न होने के साक्षात् कारण होने पर भी जो रंच मात्र भी क्रोध न करे वही उत्तम क्षमा धर्म है। प्रत्येक स्थिति में परम समरसी भाव स्थिति में रहना ही उत्तम क्षमा है –

"वधे सत्य मूर्तस्य परब्रह्म रूपिणो ममापकार
हानिरिति परम समरसी भावस्थितिरुत्तमा क्षमा।"

जैन धर्म उत्तम क्षमा को सर्वाधिक महत्व देता है क्योंकि एक ओर यह अहिंसा व्रत का अचूक साधन है – सर्वात्म मैत्री भाव का – दूसरी ओर यह वीतराग भाव के उदय का भी है। उपवास करके तपस्या करने वाले निस्सन्देह महान् हैं पर उनका स्थान उनके अनन्तर है जो अपनी निन्दा, भर्त्सना और अपकार करने वाले को क्षमा कर देते हैं। क्षमा न तो दौर्बल्य है और न पलायन। वह मनुष्य की मानसिक शुचिता और सदाचारिता का प्रमाण है। **"सत्यपि सामर्थ्ये अपकार सहनं क्षमा"** – सामर्थ्य रहते हुए भी जो अपकार सहता है, वही क्षमा धर्म का पालन करता है। पुनः –

"क्षाम्यति क्षमोप्याशु प्रति कर्तुकृतागस।
कृतागसं तमिघन्ति क्षान्ति पीयूष संजुषः।"

विष का पान कर सत्त्वस्थ रहना ही शिवत्त्व है। शिव ने हलाहल का पान कर अपना प्रचार नहीं किया न गर्व, अपितु वे प्रसाद के शब्दों में –

नील गरल से भरा हुआ यह चन्द्र कपाल लिए हो,
इन्हीं नीमिलित ताराओं में कितनी शांति पिए हो।

यह शांति ही जीवन का अभिधेय है। शास्त्रों में प्रथम और द्वितीय क्षमा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है।

अकारणाद् प्रियवादिनो मिथ्या दृष्टिकारणेन मां त्रासयितु मुद्योगो विद्यते, अयं गतो मत्पुण्येनेति प्रथमा क्षमा। अकारणेन संत्रासकरस्य ताड़न वधादि परिणामोऽस्ति अयं चापगतोमत्सु-कृतेनेति द्वितीया क्षमा। अकारण अप्रिय भाषण करने वाले मिथ्या दृष्टि से अकारण त्रास देने का प्रयास वह मेरे पुण्य से दूर हुआ है; ऐसा विचार कर क्षमा करना प्रथम है। अकारण मुझे त्रास देने वाले को ताड़न और वध का परिणाम होता है, वह मेरे सुकृत से दूर हुआ – यह द्वितीय क्षमा है **(नियमासार तात्पर्यवृत्ति-११५) ठाणं** में धर्म के चार द्वारों में संतोष, सरलता और विनय में क्षमा ही प्रथम है। साधु को "क्षमा श्रमण" भी कहा जाता है, जिसके मन में उपशान्त भाव है, वही क्षमाशील है – **उवसमं खु सामण्णं"**। क्षमा ही आत्म विजय का साधन है। वह शुक्ल ध्यान का प्रथम अवलम्बन है। वाल्मीकि कहते हैं:

समुत्पतितं क्रोधं क्षमां चैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते।।

– जो हृदय में उत्पन्न क्रोध को क्षमा के द्वारा निकाल देता है वही पुरुष कहलाता है। महात्मा विदुर ने तो न जाने कितनी बार 'क्षमा' को प्रथम गुण गिनकर उसकी महत्ता प्रतिपादित की है : **क्षमया किं न साध्यते" – क्षमैका शान्तिरुत्तमा' अर्थादनर्थोऽक्षमो – यस्मै तस्मै नित्यं क्षमा हिता"। क्षमा हि परमं बलम्।** भगवान् महावीर का जीवन क्षमा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कितने परीषह व उपसर्ग आए पर उन्होंने क्षमा धर्म ही अपनाया। उनके समस्त साधना-वर्ष चुनौतियों में बीते। ग्वाला ने पीटा, यक्ष ने सताया, चण्डकोशिक ने डसा, अग्नि ताप में अडिग रहे, उन्हें गुप्तचर समझकर बंदी बनाया गया, कटपूतना व्यंतरी के प्रतिशोध की सीमा न रही – संगम देव ने कौन सा विघ्न नहीं डाला पर वे थे महावीर, जिन्होंने क्षमा धर्म नहीं छोड़ा। सबको आत्म भाव से क्षमा करते हुए केवल ज्ञान प्राप्त किया। क्षमा का ऐसा उदाहरण विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब हम आधुनिक मनोविज्ञान के संदर्भ में क्रोध का विवेचन करें। क्रोध पर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं। क्रोध के मनोवैज्ञानिक कारणों और स्वरूप का आधुनिक मनोविज्ञान ने विशद विश्लेषण और विवेचन किया है। यहां हम कुछ संदर्भों का ही उल्लेख करना चाहेंगे। इरिक बर्न ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि –

When Morlido (Death was lend) is awakened by danger, some people run away and some fight it. It has two emotions-fear and anger ? — He is afraid, he may slow down. The rate of heart depends — upon emotions. It is important and useful for an angry man to have a strong beating heart. Patient who complains of palpitation, it happens when one is angry. Even at night, the heart palpitates though he is unaware of the tension. This is also due to tension, though he may not know that he is angry but his heart knows it, (Ala, Man's guide to Pschiatry psychology (Papa 161-162) Any emotions desire or anger will cause functional changes (182).

यही कारण है कि हृदय रोग का एक कारण क्रोध है। विश्रुत हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. विलियम्स का कहना है कि हृदय पर क्रोध का विषम प्रभाव पड़ता है और अपने क्रोध को नियंत्रण न करने से हृदय-स्पन्दन के साथ-साथ अन्य रोग भी हो जाते हैं। एक सेनापति ने कहा कि यदि मुझे मारना हो तो क्रोध कराना। एक दिन सचमुच उसने अत्यधिक क्रोध किया और वह हृदय की असह्य पीड़ा से मर गया (बर्न का उदाहरण)। ईर्ष्या, वैमनस्य व असफल आकांक्षाएं क्रोध का कारण होते हैं। मनोविज्ञान में रियेलिटी प्रिंसिपल का विवेचन तनाव के अनियंत्रण होने में एवं असफलता के संदर्भ में किया गया है। इसे ही इड का तनाव कहा गया है। कोई व्यक्ति वर्षों तक अपने क्रोध को न पहचान पाये पर उसका चेतन और अचेतन तत्व इसे जानता है। **जेम्स रोलेंड एंजल** ने क्रोध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर विचार किया है – उसके अनुसार "उत्तेजना, चिढ़ाना, सामाजिक विसंगति, प्रतिरोध एवं अवमानना है। युद्ध भी एक प्रकार से सामूहिक क्रोध है। शैशव काल से ही जो निराशा उत्पन्न होती है, वही शनैः शनैः आक्रामक व्यक्तित्व का हेतु बनती है। उभय मुखता भी एक कारण है। मेंडोरा का बक्स खुलते ही जो व्याधियाँ फैली उनमें क्रोध की व्याधि भी थी। नोहा की कथा में विधाता ने मनुष्य को समाप्त करने की एक विधि क्रोध की भी कही। क्रोध से उत्पन्न अनेक आधि-व्याधियों का वर्णन चिकित्सकों ने किया है। मनोचिकित्सक ने इसके उपचार की विधि भी निर्धारित की है। जिस प्रकार **चरक** ने प्रज्ञापराध का एक घटक क्रोध कहा है। उसी प्रकार इन आधि-व्याधियों का विशद विवेचन **लियो मेडो** ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **'एंगर'** में किया है। इवो के छिदरबिन्ड ने अपने ग्रन्थ **'एंगर, विडेन्स एंड पोलाइटिज'** में बताया है कि विश्व की अशांति में भी हिंसा एवं राजनीति के दुष्प्रभाव का हेतु क्रोध रहता है। यह कहा गया है कि सामाजिक हिंसा को रोकने के लिए व्यक्ति की हिंसक प्रवृत्ति को रोकना पड़ेगा।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मेकड्गल ने क्रोध के मनोभाव और मनोविकार का वर्णन किया है। वह कहता है कि

Anger at the stupidity of others might also be quoted as an instance not comfortable to the law but it is only that the normal man is angered by it.

सोमन साइकोलोजी – पृ.५१)। पुनः कहा गया है –

In the matters of offences against the person, individual anger remains as a latent threat whose influence is by no means negligible in the regulation of manners (page 250)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी ग्रंथ में आगे कहा है –

We speak of hate and hatred yet hatred is also the general name of all sentiments in the structure of which the affective dispositions of angers and fear are incorporated (page 436)

जिस प्रकार धर्म और अध्यात्म में क्रोध के दमन और हनन पर विचार किया गया है उसी प्रकार मनोविज्ञान और समाज शास्त्रियों ने भी। इरिक बर्न कहता है –

Man must apply destructive energy to certain goals spiritual progress. Fear and anger must he inwardly directed.

पेज के अनुसार आत्म निरीक्षण करके क्रोध का दमन करना उचित है। इसे ही क्रोध पर क्रोध करना कहा है। इसके साथ ही विवेक और औचित्य से क्रोध के कारणों का विश्लेषण करने से क्रोध पर नियंत्रण किया जा सकता है। सचेतन, सक्रियता और सर्जनात्मक वृत्ति भी क्रोध समाप्त करती है। कलात्मक सृजन और स्वाध्याय भी क्रोध को शान्त करते हैं। सामाजिक व्यवहार और आचरण की शुद्धता एवं आत्म विश्वास के साथ मैत्री भाव भी क्रोध के उपचार हैं। मेकगुडल के अनुसार

—Tender feeling is purely self-seeking as any other pleasure." "From the emotions and the impulse to cherish and protect-spring generosity gratitude, love and pity — true benevolence and altrensic conducting every kind. *(वही पृ. ६१)*

मनोशास्त्रियों की सम्मति में क्रोध व हिंसा भावना की जड़ें मनुष्य के आदिम मस्तिष्क में विद्यमान रहती है। डॉ. एम.आर.डेलगाडे ने यह प्रमाणित कर दिया है। उन्होंने मस्तिष्क के विशेष बिन्दु को उत्तेजित कर शान्त मनःस्थिति को भी उग्र बना दिया। ये प्रयोग उन्होंने बन्दरों व सांडों पर किए। डॉ. मार्क ने जानवरों से भिन्न मानवीय मस्तिष्क के उस आदिम हिस्से पर प्रकाश डाला है। जिसके कारण वह अपनी भावनाओं, संवेदनाओं और स्थितियों पर नियंत्रण खो देता है। इन प्रयोगों के अतिरिक्त अनेक मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियों द्वारा क्रोध के मनोविकार का निरूपण किया है। कुछेक उल्लेख पर्याप्त होंगे।

डॉ. जेम्स रोलेण्ड एनगिल ने शैशव काल से ही क्रोध की उत्पत्ति के कारणों का संधान किया है – जिनमें चिड़चिड़ाहट, चिढ़ाना, मनोमालिन्य, अपमान आदि मुख्य हैं, ये ही वे हेतु हैं, जो मानवीय मस्तिष्क को असंतुलित करते हैं। वस्तुतः युद्धलिप्सा भी एक सामूहिक क्रोधाभिव्यक्ति है, व्यक्ति या समाज अथवा राष्ट्र अपनी अस्मिता के खण्डित होने पर युद्ध, धर्मान्धता, स्वार्थ, अधिकार व सत्ता की एषणा से युद्धोन्मत्त हो जाते हैं। प्राचीन काल से ही ये उदाहरण इतिहास में उपलब्ध हैं – यूनान के निवासियों ने इब्रानियों को अपना शिकार बनाया, रोम के निवासियों ने ईसाईयों पर पाशविक अत्याचार किए। मध्ययुग की क्रुसेड युद्ध – धर्मान्धता के प्रमाण थे। भारत में चंगेज खां, मोहम्मद गोरी, तैमूर खाँ, नादिरशाह आदि आक्रामकों ने धर्म-विरोध व सत्ता के मद में कत्लेआम किया। आधुनिक युग में हिटलर ने लाखों यहूदियों को मौत के घाट उतारा। यहूदियों का देवता भी प्रतिशोध का देवता है। आज विद्वान् कहते हैं कि कोलम्बस भी अत्यधिक उग्र और क्रोधी था – हिटलर तो उसके समक्ष बौना लगता है। राष्ट्र और समाज की यह उग्रता और आक्रामक प्रवृत्ति सामूहिक होते हुए भी, मूलतः व्यक्तिपरक है। डॉ. लियो मेडो ने इस पर विशेष प्रकाश डाला है।

डॉ. मेडो ने अपने ग्रंथ "क्रोध" (एंगर) में यह बताया है कि मनुष्य का इतिहास एक दृष्टि से क्रोध का इतिहास है। इंजील में यह प्रतदिपादित किया गया है कि मनुष्य की सृष्टि के उपरान्त ही क्रोध की उत्पत्ति हुई। प्रलय में नोहा की कल्प कथा में ईश्वर ने मनुष्य को ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाप्त करना चाहा। आदम और इव के दोनों पुत्रों ने क्रोध के कारण एक-दूसरे का वध कर दिया। यहीं प्रश्न उठता है कि क्रोध होता क्यों है ? डॉ.मिडो इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं। प्रथम कारण है – नैराश्य, विफलता, महत्वाकांक्षा, स्वाग्रह, परिवेश के साथ असंतुलन, स्वपीड़न व परपीड़न आकांक्षा। व्यक्ति की विकृत कामवासना भी क्रोध का एक कारण है।

क्रोध का परिणाम अत्यन्त घातक होता है। डॉ. मिडो का कथन है कि मनुष्य के लिए यह सर्वाधिक घातक संवेग है। मनुष्य की स्नायविक प्रक्रिया सहानुकम्पी (पेरासिम्पथेटिक) व अनुकम्पी (सिम्पेथेटिक) नाड़ियों पर निर्भर करती है। सहानुकम्पी दैनिक कार्य-कलापों का संचालन करती है। मनुष्य की पाचन क्रिया, स्वास्थ्य लाभ आदि इससे होते हैं। अनुकम्पी नाड़ियों की आवश्यकता आपात्कालीन स्थिति में सहायक होती है। सहानुकम्पी शांति का सूचक है और अनुकम्पी उत्तेजक स्थिति का। उत्तेजना की स्थिति में हृदय पर भार पड़ता है, रक्तचाप बढ़ जाता है, शर्करा का अधिक प्रयोग होता है। अधिवृक्क (ऐडरीनल) ग्रंथि से स्राव भी अधिक होने लगता है। क्रोध की अवस्था में यही दैहिक क्रिया है। इसका दुःखद परिणाम है शिरःशूल, तनाव, अधिक रक्त चाप, गठिया, हृदयरोग, मानसिक असंतुलन, मधुमेह, श्वास प्रक्रिया की तीव्रता, आमाशय शोथ, आदि। कभी – कभी जब आक्रामक प्रवृत्ति अनियंत्रित होकर गहन अवसाद में परिणत हो जाती है, तब व्यक्ति आत्महत्या भी कर लेता है।

मनुष्य के भीतर एक सृजनात्मक वृत्ति होती है और दूसरी ध्वंसात्मक। एरिक वर्न का अभिमत है कि मनुष्य को अपनी ध्वंसात्मक वृत्ति समाप्त कर लेने के लिए कुछ निश्चित उद्देश्य निर्धारित करना चाहिए। इनमें आध्यात्मिक उन्नति ही मुख्य है। हम आगे चलकर देखेंगे कि "प्रेक्षा ध्यान" किस प्रकार मानसिक संतुलन के साथ मनुष्य की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति को भी समाप्त करने में सहायक होता है। वर्न कहता है कि भय व क्रोध का हनन करने के लिए व्यक्ति को अपनी सारी ऊर्जा का आभ्यंतरीकरण करना चाहिए। व्यक्ति चाहे यह न जाने कि वह क्रोधित है, पर उसका दृश्य इसे जानता है। क्रोध का घातक परिणाम सारे शरीर पर पड़ता है। डॉ. विलियम्स का मत है कि दिल का दौरा क्रोध के कारण ही अधिक होता है – वैमनस्य और क्रोध ही इसके हेतु हैं। एक अन्य विद्वान् **इवो के फियराबेंड** कहते हैं कि क्रोध व आततायीपन का निषेध कर व्यक्ति को अपनी अस्मिता की खोज से बृहत् मानवीय मूल्यों का संचार करना चाहिए। इसी प्रकार एक अन्य विद्वान का मत है कि **मनुष्य का शंकालु-स्वभाव, अविश्वास, असंयम, मानसिक विक्षेप और क्रोध, उसकी व्यावहारिकता नष्ट कर एक ऐसा प्रतिशोध उपस्थित करते हैं, जिससे अन्ततः हतप्रभ होकर वह अपने से और समाज से ही टूट जाता है।**

अब हम प्रसिद्ध **मनोशास्त्री डॉ. एलबर्ट ऐलिस** का अभिमत भी देखें। डॉ. एलिस ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **"हाउ टू लिव विद एंड विदाउट एंगर"** में क्रोध पर अत्यन्त वैज्ञानिक व विवेकपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं। उनका मत है कि क्रोध मानव जीवन में सर्वाधिक अपकारक व निरर्थक है। उन्होंने उन विद्वानों का सतर्क उत्तर दिया है जो यह मानते हैं कि क्रोध अपनी सीमित परिधि में, एक ऐसा कवच है, जो आक्रामक व आततायी समाज से व्यक्ति की रक्षा कर उसके "अहं" का बचाव करता है। इस भ्रांत धारणा का विरोध करते हुए डॉ. एलिस ने यह प्रतिपादित किया है कि क्रोध व्यक्ति के व्यक्तित्व का खण्डन कर उसे विषयगामी बनाता है। वह आगे कहता है कि क्रोधी स्वभाव वाले व्यक्ति से सभी दूर रहकर उसकी अवहेलना करते हैं। डॉ. एलिसन क्रोध के उपचारार्थ नवीन और लोकप्रिय पद्धति **"रेशनल इमोटिव थिरेपी"**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलित की है। यह पद्धति मनुष्य की बौद्धिकता को परिष्करण कर उसके संवेगों का उदात्तीकरण करती है। **क्रोध का सामान्य उपचार और उससे निवृत्ति निम्नलिखित उपायों से संभव है – (१) क्रोध की आत्म स्वीकृति, आत्म – संलाप व निरीक्षण, (२) उसके कारणों का विवेकपूर्ण वस्तुनिष्ठ विश्लेषण, (३) रचनात्मक वृत्ति से पारस्परिक संप्रेषणीयता द्वारा यथार्थबोध (४) अन्तर्दर्शन (५) बाह्य नीति (६) एग्रनोफोबिया से मुक्ति आदि।** वाल्मीकि रामायण में हनुमान लंका दाह पर प्रायश्चित करते हुए कहते हैं – यह मैंने क्या किया, क्रोधावेश में लंका जला डाली। उनका कथन है –

> *"धन्याः खलु महात्मानः ये बुद्धया कोप मुत्थितम्।*
> *निरुन्धन्ति .... दीप्तमग्निमिवाम्भसा।।"*

प्रेक्षाध्यान-साधना एक ऐसी सिद्ध पद्धति और प्रक्रिया है, जो मनुष्य की आंतरिक शक्ति का विवेकीकरण व उदात्तीकरण कर उसे आत्मसाक्षात्कार व आत्म दर्शन कराती है। प्रज्ञा के जागरण का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन है – समता और अनेकान्त दृष्टि, प्रभा का सतत चैतन्य। इन्द्रियातीत चैतन्य; उसका विकास, जिसका सुखद परिणाम है – संयम, समता और शांति, अर्थात् सर्वतोभावेन क्षमा भाव। युवाचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि – "अशेष, की अनुभूति ममत्व और तनाव का विसर्जन है" – क्रोध का आवश्यक फल है – विकृत अहं और तनाव। आज विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मानव जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। ये संस्कार कम से कम पांच पीढ़ी तक चलते रहते हैं, हेय संस्कारों का शुद्धिकरण जीवन को उच्च भाव और ऊर्ध्व मार्ग पर अग्रसर करता है। संस्कार की शुद्धि वस्तुतः आत्म शुद्धि है – **"आत्मशुद्धि साधनं धर्मः"।** जिस क्षण मन में राग, द्वेष, घृणा, जुगुप्सा, क्रोधादि कषाय उत्पन्न हो, तब अप्रमत्त भाव से उनका निषेध और निराकरण आत्मशुद्धि का हेतु बनता है। प्रसिद्ध विद्वान् अब्राहम ओसलो ने मानव चेतना के जिन ६ स्तरों का विवेचन किया हैं, उसकी अंतिम स्थिति "आत्म साक्षात्कार" में है। आत्म साक्षात्कार की यह भूमिका मनुष्य के सामाजिक आचार और मूल्यों पर आधृत है। इन मूल्यों के लिए भी संस्कारों का शुद्धिकरण अनिवार्य है। आज व्यक्ति और समाज भय और चिंता से आक्रांत हैं। प्रसिद्ध **मनोशास्त्री कर्ट राइडर** कहता है कि सम्पूर्ण विश्व एक सार्वभौम नियम व व्यवस्था से बंधा है – इस नियम और व्यवस्था का अतिक्रमण करके व्यक्ति और समाज दोनों भय, आतंक व चिन्ता से ग्रस्त होते हैं। यह अतिक्रमण ज्ञात और अज्ञात दोनों कारणों से होता है। यदि वह इस सार्वभौम व्यवस्था का पालन करे तो अभय है और निरातंक होकर चिंता से मुक्त हो जाएगा। क्रोध रहित जीवन इसका एक हेतु है। वशिष्ठ जी राम से कहते हैं – **अभयं वैब्रह्ममामैर्षा** – अभय रहो और अभय रखो।

जैन साधना पद्धति में आभ्यंतर तप के अन्तर्गत प्रायश्चित, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग का विवेचन कषाय विजय का अमोघ अस्त्र है। आधुनिक मनोरोग चिकित्सा में भी ध्यान को अत्यन्त महत्वपूर्ण गिना है। **बायोएथिक्स** और **बायो फीड बेक** प्रणाली ध्यान की क्षमता को उजागर करती है। मनोविज्ञान की अवधारणा चारित्रिक शुद्धता के साधन हैं – **कहु एवं अविषाणाओं बितिया बाचतन मंया"।** गलती करके उसे स्वीकार न करना दुगुनी मूर्खता है। निशीथ चूर्णि" में आत्मालोचन और प्रायश्चित से चरित्र शुद्धि, आत्म शुद्धि, संयम, ऋजुता, मृदुता, आदि का विकास माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार प्रायश्चित से व्यक्ति सभी संवेगों से मुक्त होता है। जैन धर्म में कायोत्सर्ग का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। क्रोध की स्थिति में जो मानसिक और शारीरिक उग्रता व तनाव होता है उसका उपचार है – कायोत्सर्ग, जिससे स्थिरता और जागरूकता के साथ साथ शुद्ध चैतन्य की अनुभूति होती है। "भाव विशुद्धि, मानसिक एकाग्रता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्दर्शन व विवेकीकरण की यही आधार भूमि है। विवेक-विचार, उचित-अनुचित का ज्ञान सदाचार के लिए अनिवार्य है। आचारांग में महावीर बार-बार विवेक सहित संयम में रत हो जीवन पथ पर चलने का उपदेश देते हैं।

साहिस्सामो नाणं वीराणं
समियाणं सहियाणं सया
जयाणं संघडदंसिणं आतोवरयाणं
अहा तहा लोयं समुवेहमाणाणं।।

जो वीर है, क्रियाओं में संयत हैं, विवेकी हैं, सदैव यत्नवान हैं, दृढ़दर्शी व पाप कर्म से निवृत्त हैं और लोक को यथार्थ रूप में देखते हैं – ज्ञान और अनुभवपूर्ण तत्त्वदर्शी को उपाधि नहीं होती। शुक्ल ध्यान के चार लक्षणों में विवेक तीसरा लक्षण है। जैन सिद्धान्तों के अनुसार इन्द्रिय विषयों और कषायों का निग्रह कर ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा जो आत्म-दर्शन करता है – उसी को तप धर्म होता है। असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति।क्रोध के परिहार के लिए जैन धर्म ज्ञान, ध्यान और तप पर बल देता है। ...ज्ञान, ध्यान और तप का विपुल विवेचन जैनागमों में उपलब्ध है। जैन शिक्षा पद्धति जीवन निर्माण का नियामक और धारक तत्व है। शिक्षा सूत्र के अनुसार पांच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती। शिक्षा के लिए ८ आवश्यक उपायों में सत्यरत रहना, अक्रोधी होना, अशील न होना, विशील न होना और इन्द्रिय और मनोविजय मुख्य है। इस सूत्र में भावों के सद्भाव के निरूपण में जो श्रद्धा को सम्यक्त्व कहा गया है, जिसके दस भेद उल्लिखित हैं। इन सबके साथ जैन साधना की परम उत्कृष्ट पद्धति है – सामायिक। सामायिक का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है "समय" अर्थात् आत्मा के निकट पहुँचना। बाह्य प्रभावों से मुक्त होकर अतल आंतरिक क्षमता और शक्ति प्राप्त करना। यह सामायिक महत्व का अकाट्य प्रमाण है।

"समभावो सामइयं तण-कंचण – सत्तुमित्तविसओति"

तृण और स्वर्ण में, शत्रु और मित्र में समभाव ही सामायिक है। अर्थात् सर्वभूतों के प्रति समभाव। 'षडावश्यक' में सामायिक का प्रथम स्थान है। एकीभाव द्वारा बाह्य परिणति से आत्माभिमुख होना सामायिक है। सामायिक समत्व है (अर्थात् रागद्वेष से परे, मानसिक स्थैर्य और अनुकूल-प्रतिकूल में मध्यस्थ भाव रखना।) संयम, नियम, तप में संलग्न रहना ही सामायिक है। जब वैर घृणा, द्वेष, विरोध आक्रामक वृत्ति ही नहीं रहेगी, तब कहां से आएगा क्रोध कषाय। उत्तराध्ययन (२४-८) में सामायिक के प्रश्न पर – **"सामाइएणं भंते, जीवे किं जणयइ।"** उत्तर में वीर प्रभु कहते हैं **"सामाइएणं सावज्ज जोग-विरइं जणयइ"** समस्त प्राणियों के प्रति समभाव, शत्रु-मित्र, दुःख-सुख, लाभ-अलाभ, निन्दा-प्रशंसा, संयोग-वियोग, मानापमान में राग-द्वेष, का अभाव सामायिक समता की साधना है। समभाव में स्थिर होना ही सामायिक है। गीता में **"समत्वं योग उच्यते"** से भी यही तात्पर्य है। जो अपनी आत्मा को ज्ञान आदि के समीप पहुँचा दे। वही सामायिक है। (सूत्रकृताङ्ग १-२)। ज्ञान, संयम, तप इनसे जीव का जो प्रशस्त समभाव है – वही सामायिक है **(दृष्टव्य मूलाचार, नियमसार)**।

मनोविज्ञान ने जहां क्रोध का उपचार बताया है यहाँ जैन – विज्ञान उपचार और परिहार के साथ-साथ उसके रूपान्तरण और आन्तरिक क्रियाशीलता के द्वारा व्यक्तित्व के सम्यक् विकास का निरूपण भी किया है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र का परमोत्कर्ष ही इस रूपान्तरण और क्रियाशीलता का लक्ष्य है। ज्ञान से पदार्थों का ज्ञान, दर्शन से श्रद्धा और चारित्र से कर्मास्रव का निरोध होता है। तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। चारित्र के बिना ज्ञान व दर्शन के बिना चारित्र कुछ भी अर्थ नहीं रखते। बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त होना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। धर्म, दर्शन और अध्यात्म के साथ जैन मनोविज्ञान अनुपम और अनन्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज विश्व में चारों ओर नयी नैतिकता की मांग हो रही है। विज्ञान और तकनीकी युग की भौतिक विभीषिका से वैज्ञानिक ही संत्रस्त हैं। एक आवाज गूँज रही है – भारतीय पथ(दि इंडियन वे) को अपनाने की। मनुष्य की आंतरिक शक्ति को उभार कर नए आयाम देने की, मानवीय आचार संहिता को सेवा, त्याग, समता और संयम के साथ व्यक्ति और समाज के व्यापक संतुलन और सामञ्जस्य की। विज्ञान पंगु होकर अध्यात्म और दर्शन का संबल खोज रहा है। बौद्धिक ऊहापोह ने हमारी भावनात्मक क्रियाशीलता विकृत कर दी है। आचार्य विनोबा भावे के शब्दों में – स्वार्थ, सत्ता और सम्पत्ति ही जीवन का लक्ष्य है। कुछ ऐसे चिन्तक भी हैं जो पाशविकता, आक्रामक भावना, प्रतिशोध और सत्तास्वार्थ को आवश्यक बता रहे हैं – उदाहरणार्थ – "नेकेड एव", दि टेरिटोरियल इम्पेरिटिव आदि ग्रंथ। आज प्रत्येक पन्द्रह वर्ष में मनुष्य की बुद्धि (ज्ञान नहीं) दुगुनी हो रही है, उसके बोझ से वह स्वयं घबरा उठा है। नियमन और नियंत्रण का नितान्त अभाव है। अर्थवत्ता और गुणवत्ता ऐषणाओं और कषायों में धूमिल हो गयी, तब मुक्ति का एक ही पथ है, वह है- जैन धर्म की मूल भूत मानवीय नैतिकता का। बरतानिया के एक सर्वेक्षण में बाताया गया है कि १८ और २५ वर्ष की आयु के अधिकांश युवा (विद्यार्थी) अपच, क्रोध, वैफल्य, विभिन्न आधि-व्याधि के साथ-साथ जिजीविषा खो बैठे हैं, उन्हें न घर सुहाता है और न बाहर। वे पूर्णतः निस्संग और एकाकी हैं – असामान्य व असंतुलित। माता-पिता और भाई-बहिन के प्रति उन्हें न प्रेम है और न लगाव। इस ग्लानि का उपचार, इन कषायों का अंत इस जिजीविषा से मुक्ति और दिशाहीनता में मार्ग प्रशस्त करने के लिए धर्म ही एकमात्र संबल है। बनार्ड शॉ ने भी अपने संस्मरण में यही कहा है – धर्म ही हमें भय और दुश्चिंताओं से मुक्त करेगा। जैन शासन इसका समर्थ और सबल आलोक है।

रवीन्द्रनाथ की एक कविता आराध्य के प्रति है, जिसमें आज के मनुष्य की मूढ़ता व गतिशीलता का ज्वलंत चित्रण है –

तुमि जतो मार दिये छो से मार
करिया दिये छो सोझा
आमि जतो मार तुलेछि
सकलइ होयेछे बोझा
ए बोझा आमार नामाओ बंधु, नामाओ,
भारेर वेगेति ठेलिया चलेछि
एइ यात्रा आमार थामाओ, बंधु थामाओ!

✣ ✣ ✣

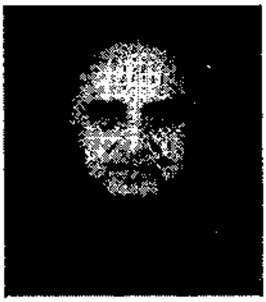

❑ डॉ. श्री कल्याणमल जी लोढ़ा का जन्म २१ सितम्बर सन् १९२१ में हुआ। आगरा एवं प्रयाग विश्वविद्यालयों से एम.ए., पी.एच.डी. करके १९४८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बने। २० वर्ष तक हिन्दी विभागाध्यक्ष भी रहे। विश्वविद्यालयीय अनेक समितियों के सदस्य एवं डायरेक्टर श्री लोढ़ा को जोधपुर विश्वविद्यालय का उप कुलपति चुना गया। हिन्दी के श्रेष्ठ लेखक एवं व्याख्याता। अनेक ग्रन्थों एवं शोधपत्रों के प्रणेता श्री लोढ़ा ने अनेक पुरस्कार अर्जित किये। जैन विद्या के लेखक, चिंतक एवं गवेषक !

– सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान और अनुभूति

❑ डॉ. अशोक जैन 'सहजानन्द'

ध्यान और अनुभूति के माध्यम से डॉ. श्री अशोक जैन 'सहजानन्द' ने यह बताने का प्रयास किया है कि अनुभूति जितनी तीव्र होगी ध्यान उतना ही प्रबल होगा। ध्यान कषायों से आत्मा को विरत कर उपशांत बनाता है और आत्मा में एक अलौकिक ज्योति प्रगट करता है। अनुभूतिजन्य बन पड़ा है – यह आलेख। – सम्पादक

अनुभूति

मार्ग पर चलते हुए हमारे सामने अनेक दृश्य आते हैं किन्तु घर पहुँचते ही उन्हें भूल जाते हैं। समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि अमुक स्थान पर दुर्घटना हो गई और अनेक लोग मर गए। हम समाचार पत्र पढ़कर एक ओर रख देते हैं। ऐसा लगता है जैसे वह घटना हुई ही नहीं अथवा उसका हमारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं। अनेक स्थानों पर विपत्ति के कारण हजारों व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। इन समाचारों को पढ़कर किसी के मन में तनिक सा संवेदन होता है, मुँह से एक आह निकलती है और अनुभूति समाप्त हो जाती है। यदि उन दुर्घटनाओं में उसका कोई आत्मीय होता है और वह जितना निकट होता है, अनुभूति उतनी ही उत्कट और स्थायी होती है। इसी प्रकार यदि दुर्घटना हमारे सामने हो तब अनुभूति अपेक्षाकृत प्रबल होती है। सामने लेटे हुए रुग्ण या घायल की कराहट जो संवेदन उत्पन्न करती है, दूरस्थ सैकड़ों व्यक्तियों की कराहट का समाचार, उत्पन्न नहीं करती। इन उदाहरणों से निष्कर्ष निकलता है कि घटना जितनी निकट होगी, अनुभूति भी उतनी ही प्रबल होगी।

आत्मीयता से अनुभूति प्रबल

दूसरा तत्व **आत्मीयता** है जिस व्यक्ति को हम पराया समझते हैं, उसके साथ प्रत्यक्ष दुर्घटना होने पर भी अनुभूति प्रबल नहीं होती। सड़क पर एक व्यक्ति बस या स्कूटर से टकराकर घायल हो जाता है किन्तु हमें अपने कार्यालय में ठीक समय पर पहुँचने की पड़ी रहती है। दुर्घटना को देखकर भी अनदेखी कर देते हैं। कार्यालय में पहुँच कर यदि उसकी चर्चा भी करते हैं तो उस चर्चा में हमारे हृदय की वेदना प्रगट नहीं होती। इसके विपरीत यदि वह व्यक्ति हमारा आत्मीय है तो हम कार्यालय को भूलकर उसके उपचार में लग जाते हैं। **बहुत बार ऐसा भी होता है, एक व्यक्ति को कष्ट पीड़ित देखकर हम उसकी सुरक्षा में लग जाते हैं किन्तु जब उसका कष्ट लम्बे समय तक चलता है और दैनिक आवश्यकताओं में अड़चनें आने लगती हैं तो सुश्रूषा शिथिल हो जाती है। एक दिन हृदय इतना कठोर हो जाता है कि सहानुभूति भी नहीं रहती। आत्मीय होने पर भी उसका कष्ट हमें विचलित नहीं करता। हमारी निजी आवश्यकताएँ उस अनुभूति को दबा देती हैं।...** इसके विपरीत यदि यह प्रतीत हो कि उस सुश्रूषा से स्वार्थपूर्ति भी होगी तो अनुभूति स्थायी ही नहीं उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है।

ध्यान की निष्पत्ति

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुभूति को प्रबल बनाने के लिए **साक्षात्कार, लक्ष्य की आत्मीयता** तथा उसके द्वारा **स्वार्थ का पोषण** इन तीन तत्वों की आवश्यकता है। ध्यान को भी शक्तिशाली बनाने के लिए भी इन तीनों की आवश्यकता है। ईश्वर हमारी आत्मा से भिन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। उसकी खोज हमारी अपनी ही खोज है। **धन, संतान, पत्नी आदि अपने आप में प्रिय नहीं होते वे हमें तृप्त करने के कारण प्रिय लगते हैं किन्तु आत्मा अपने आप में प्रिय है। साथ ही वह आनन्द रूप है। उसे प्राप्त कर लेने पर समस्त दुःख मिट जाते हैं। समस्त स्वार्थ पूर्ण हो जाते हैं। उसके साक्षात्कार से बढ़कर कोई स्वार्थ नहीं है।** इस प्रकार पुनः-पुनः चिंतन करने पर भावना दृढ़ होती है और एक दिन साक्षात्कार हो जाता है। साधना जगत् में इस प्रक्रिया को ध्यान कहा जाता है।

ध्यान में सफलता प्राप्त करने के लिए उसके स्वरूप और प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिए। बिना विचारे किया गया ध्यान अभीष्ट फलदायक नहीं होता। साधक जिस ध्यान को प्रारम्भ करे निरन्तर उसी का अभ्यास करता रहे। बदलते रहने से यथेष्ट लाभ नहीं मिलता। ध्यान मन में विशेष प्रकार के संस्कार उत्पन्न करने की प्रक्रिया है। ये संस्कार तभी उत्पन्न होते हैं, जब निरन्तर एक ही बात का चिंतन किया जाए। एक ही आलम्बन रहने पर वह उत्तरोत्तर स्पष्ट होता चला जाता है उसमें दृढ़ता आती है। आँखें बंद करने पर भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे सामने बैठा हो। वास्तविक लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि ध्यान में प्रतिपादित प्रत्येक शब्द को समझकर मन में उतारने का प्रयत्न किया जाए। महाकवि कालिदास ने अपने 'कुमारसंभव' में सार्वभौम सत्ता के रूप में ईश्वर का चित्रण किया है। उसका ध्यान करने से विश्व के कण-कण में परमात्मा की अनुभूति होने लगती है। प्रत्येक हलचल में उसकी हलचल अनुभव होती है। साधक का उस महासत्ता के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है। वह उसकी शक्ति को अपनी शक्ति समझने लगता है। ध्यान में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है दुर्बलताएं और दुःख दूर होते जाते है। अज्ञान का अंधकार मिटता चला जाता है और परमात्मा की ज्योति चमकने लगती है। ध्यान में हमें परमात्म तत्त्व का चिंतन करना चाहिए।

ध्यान में चिंतन आवश्यक

भगवद् गीता में स्थितप्रज्ञ का स्वरूप बताया गया है, उसका ध्यान करने से मन में दृढ़ता आती है। काम, क्रोध, राग-द्वेष, लोभ आदि विकार शांत होते हैं। चित्त स्थिर और निर्मल बनता है। आत्म ज्योति प्रगट होती है। ध्यान में निम्नलिखित बातों का चिंतन करना चाहिए – जब समस्त कामनाएं शांत हो जाती है तो मन में किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न नहीं होती, मनुष्य अपने ज्ञान में तल्लीन रहने लगता है, तब उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। जिस प्रकार कछुआ समस्त अंगों को समेट लेता है, इसी प्रकार जो व्यक्ति इंद्रियों को समेट लेता है उन्हें बाह्य विषयों की ओर नहीं जाने देता, उनकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। समझदार व्यक्ति इन्द्रियों को वश में रखने का प्रयत्न करता है। फिर भी वे मन को बलपूर्वक खींचती रहती है। उन सबको नियंत्रित करके मन को परमात्मा के ध्यान में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में – **"ध्यान चेतना की वह अवस्था है जहाँ समस्त अनुभूतियाँ एक ही अनुभूति में विलीन हो जाती हैं, विचारों में सामंजस्य आ जाता है, परिधियाँ टूट जाती हैं और भेद-रेखाएं मिट जाती हैं। जीवन और स्वतंत्रता की अखण्ड अनुभूति में ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहता। संकुचित जीवात्मा विराट् सत्ता में विलीन हो जाता है।**

ध्यान का सम्बन्ध किससे?

साधारणतया ध्यान का सम्बन्ध आत्मा, ईश्वर आदि अतीन्द्रिय तत्त्वों के साथ जोड़ा जाता है किन्तु लौकिक जीवन में भी उसकी उतनी ही उपयोगिता है जितनी आध्यात्मिक जीवन में। हम व्यायाम द्वारा शारीरिक शक्ति प्राप्त करते हैं उसे अच्छे या बुरे किसी भी कार्य में लगाया जा सकता है। वैज्ञानिक अपने चिंतन का उपयोग नवीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वेषण में करता है। उसने ऐसी औषधियों का पता लगाया जिनसे करोड़ों व्यक्तियों के प्राण बच गए। उसने ही परमाणु अस्त्रों का भी पता लगाया जिनसे समस्त मानवता का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। व्यापारी अपना मनोबल व्यवसाय की वृद्धि में लगाता है, औद्योगिक विकास के साथ शोषण के तरीके भी सोचता है। राजनीतिज्ञ एक ओर प्रजा-पालन की बात सोचता है, दूसरी ओर शत्रु के नाश की। इस प्रकार मनोबल का उपयोग दोनों दिशाओं में होता आया है। इसीलिए हमारे ऋषियों ने ध्यान को अध्यात्म के साथ जोड़ा।

प्रातः जगने से लेकर रात्रि में नींद आने तक हमारे मस्तिष्क को अनेक प्रकार के विचार घेरे रहते हैं। नींद के बाद भी सपनों में उनका तांता चलता रहता है। बहुत से विचार जीवन के लिए उपयोगी होते हैं। वे जब आते हैं तो मन में सुख और शांति की अनुभूति होती है, किन्तु अधिकांश विचार निरर्थक और मन को दुर्बल बनाने वाले होते हैं।

ध्यान : प्रकाश एवं उर्जास्रोत

ऐसा कोई लक्ष्य नहीं जिसे ध्यान के द्वारा प्राप्त न किया जा सके। ऐसा कोई रोग नहीं, जिसे ध्यान के द्वारा दूर न किया जा सके। विधिपूर्वक किया गया ध्यान हृदय को शुद्ध करता है और दृष्टि को निर्मल बनाता है। ध्यान ऊँचे उड़ने के लिए पंख प्रदान करता है और भौतिक जगत् की संकुचित परिधियों से ऊपर उठने का सामर्थ्य देता है। ध्यान के निरंतर अभ्यास से हम अपने दुःखों और कष्टों से मुक्ति पा सकते हैं।

मानव शरीर में कुछ ऐसे केन्द्र हैं जो चेतना के विभिन्न स्तरों को प्रगट करते हैं। जब मन नीचे के केन्द्रों पर अधिष्ठित होता है तो क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि विचार घेर लेते हैं। शरीर अस्वस्थ रहने लगता है और मन अशांत, पर जब उन केन्द्रों को छोड़कर ऊपर की भूमिकाओं में पहुँचता है तब जीवन के सूक्ष्म तथा शक्तिशाली तत्वों के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है। सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि सात्विक गुणों की अभिव्यक्ति होने लगती है। विचार तथा व्यवहार में एकसूत्रता आ जाती है। पवित्रता, नम्रता, सहानुभूति आदि दैवी गुणों का विकास होने लगता है, मन के अन्तर्मुखी होने पर ही सच्ची शक्ति प्राप्त होती है। साधारण व्यक्ति विषम परिस्थितियों में पड़कर अपने आपको खो देता है। मानसिक संतुलन नष्ट हो जाता है। समझदार उस समय ध्यान और मानसिक स्थिरता का अभ्यास करता है। साधक को दृढ़ निष्ठा और एकाग्रता से ध्यान द्वारा जो प्रकाश मिलता है, उससे वह अपनी प्रत्येक इच्छा पूर्ण कर लेता है।

सभी व्यक्तियों का मानसिक धारतल एक-सा नहीं होता। अतः सभी को एक ही प्रकार के ध्यान से लाभ नहीं मिल सकता। जो व्यक्ति तमोगुणी है जिनमें अज्ञान की प्रधानता है, उसके चित्त को जागृत करने की आवश्यकता होती है। जिसका चित्त रजोगुणी है उसे शांत करने की आवश्यकता है। जिस व्यक्ति में आसक्ति या राग की प्रधानता है उसे अनासक्ति का अभ्यास करना होगा और जिसमें द्वेष वृत्ति की प्रधानता है उसे मित्रता का अभ्यास करना होगा। अहंकारी को विनय सीखना चाहिए और जो आत्म-सम्मान खो चुका है उसे निज-शक्ति की पहचान करा होगी। जो अशांत है उसे शांति की आवश्यकता है और जो निष्क्रिय बना हुआ है उसे खड़ा होने की। जब हम अपने प्रिय-पात्र का चित्र देखते हैं (जो वास्तव में कागज का टुकड़ा होता है) उसे देखते ही ऐसी अनुभूति होती है जैसे सामने बैठा हो, तदनुसार सारी चेष्टाएँ बदल जाती हैं। ध्वज केवल कपड़े का टुकड़ा है किन्तु जब उसके साथ राष्ट्रीय अस्मिता जुड़ जाती है तो हम उसकी प्रतिष्ठा में मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः परमात्मा का कोई स्वरूप नहीं है फिर भी विविध कामनाओं को लेकर रूपों की कल्पना की गई है। फिर उन रूपों और उपासना पद्धतियों ने संप्रदाय का रूप ले लिया और परस्पर खंडन-मंडन होने लगा। इस सांप्रदायिकता के कारण ध्यान का जीवन के साथ सम्बन्ध टूट गया और वह शास्त्रीय चर्चा में ही सीमित हो गया। आज उसे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। यदि सांप्रदायिक कदाग्रह छोड़कर वैज्ञानिक पद्धति पर अन्वेषण किया जाए तो ध्यान की ये प्रकियाएं जीवन के लिए बहुत उपयोगी बन सकती हैं।

- संपादक - 'आपकी समस्या-हमारा समाधान' (मासिक)

✤ ✤ ✤

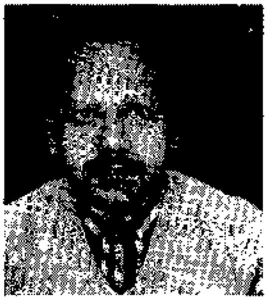

❑ **डॉ. श्री अशोक जी 'सहजानन्द' का जन्म १६-२-४६ को मेरठ (उ.प्र.) में हुआ। शिक्षा-शास्त्री, साहित्यरत्न एम.ए., बी.एड., आर.एम.पी. आयुर्वेद ! साहित्यिक अभिरुचि, १०० से अधिक आलेख प्रकाशित ! प्रधान सम्पादक हैं- 'आपकी समस्या-हमारा समाधान' (मासिक-पत्र) के। सम्मान प्रदर्शन से दूर, कर्मठ अध्यवसायी ! जन्म से नहीं अपितु कर्मणा भी जैन ! महत्वपूर्ण अनेक ग्रंथों के सम्पादक एवं लेखक !**

— सम्पादक

हम कहते हैं - "मकान बहुत सुंदर है" बहुत अच्छा है। किन्तु खड़ा किसके आधार पर है? नींव के आधार पर खड़ा है। उस नींव को तो याद ही न करे केवल ऊपर के निर्माण को देखकर ही कहें तो यह एक पक्ष होगा, एक दृष्टिकोण होगा। जैन दर्शन ने वस्तु को एकाकी दृष्टिकोण से देखने को "अपूर्ण" कहा है। उसे अनेक दृष्टियों से देखना चाहिए, क्यों कि वस्तु अनेक धर्मात्मक है।

✤ ✤ ✤

जिसने प्रभु को अपने हृदय में बसा लिया है उसको याद करने की जरूरत नहीं रहती। उसका मन तो निरंतर, अखण्डरूप से उस प्रभु के स्वरूप में ही तन्मय रहता है। एकाग्र/लीन रहता है। कैसे? जैसे पनिहारी का घट में, नट का अपने संतुलन में, पतिव्रता नारी का पति में, चक्रवाक पक्षिणी का सूर्य में ध्यान रहता है।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तमिलनाडु में जैन धर्म

❑ पण्डितरत्न मल्लिनाथ जैन 'शास्त्री'

प्राचीनकाल में तमिलनाडु प्रदेश में जैन धर्म का व्यापक प्रचार था। अनेक जैनाचार्यों यथा – कुंदकुंद, अकलंक, समन्तभद्र, पूज्यपाद, जिनसेन, मल्लिषेण आदि धुरंधर विद्वानों के धर्म-प्रचार की यह पावन भूमि रही है। यहाँ के श्रमणों ने अनेक नीति ग्रन्थों व अन्य विषयों की रचनाएं की। तिरुकुरल, नालडियार, अरनेरिचारं आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया। अनेक राजाओं ने इस धर्म को प्रोत्साहन दिया। श्रमणों एवं श्रमणियों ने जन-जन में सदाचरण, अहिंसा, व्रतनिष्ठा आदि का व्यापक प्रचार करके इस धर्म को जन धर्म बना दिया। तमिलनाडु में जैन धर्म के प्रवाह के इतिहास को प्रवाहित कर रहे है – दक्षिण के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री मल्लिनाथजी जैन 'शास्त्री'। – सम्पादक

कालचक्र

जैन धर्म विश्वधर्म है। यह अनादि है ऐसी बात है तो भगवान् ऋषभदेव के पहले भी जैन धर्म था। इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा। जब विश्व है तो उसके साथ-साथ धर्म भी है। म्लेच्छ खण्ड में धर्म नहीं रहता परंतु आर्य खंड में धर्म निरंतर रहता ही है। वहाँ तो तीर्थंकर भगवन्त जन्म लेते हैं। भूतकाल के भी चौबीस तीर्थंकर माने गये हैं। वे सब पहले हो चुके हैं। इस तरह अनादि धर्म परम्परा चलती आ रही है। कालचक्र निरंतर घूमता रहता है।

विद्वान् लोग काल को 'चक्र' के साथ समावेश करते हैं। अर्थात् चक्र जैसे घूम कर स्थान परिवर्तन करता है – वैसे काल भी परिवर्तन करता रहता है। हमेशा एक ही स्थिति पर नहीं रहता यह उसका स्वभाव है। इसे हम अपने जीवन काल में भी देखते हैं। हम स्वयं कहते हैं कि अपना जीवन-काल निकलता जा रहा है। अर्थात् यह काल परिवर्तनशील है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि काल एक वस्तु है और उसका परिवर्तन होता रहता है। इस तरह के परिवर्तनशील काल को ही दुनिया संसार के नाम से पुकारती है। **संसरणं संसारः** अर्थात् परिवर्तन होना संसार है। यह परिवर्तन हमेशा होता रहता है। संसार का विशेषतः अर्थ यह है कि परिवर्तन होते रहना। यह परिवर्तन नया नहीं है। इसे हम अपने जीवन काल में भी देखते हैं। अर्थात् जीवन काल में उत्थान-पतन होना, इस परिवर्तन का आधार है।

उत्थान-पतन (ऊँचा-नीचा) आपस में सम्बन्ध रखता है। जहाँ पर उत्थान है वहाँ पतन भी मौजूद है। इसके उदाहरण में हम कह सकते हैं कि खेल में जो व्यक्ति गिरता है फिर वह उठता ही है। तथा चक्र का अधो-भाग ऊपर आना और ऊपर का भाग नीचे जाना स्वाभाविक है। इसी तरह उत्थान-पतन का स्वरूप भी देख सकते हैं। इसका निष्कर्ष यह है कि उत्थान-पतन वाला ही संसार है।

यह संसार जब पतन से उत्थान की ओर जाता है तब उसे **उत्सर्पिणी काल** कहते हैं। और उत्थान से पतन की ओर जब आता है तब उसे **अवत्सर्पिणी** काल कहते हैं। उत्सर्पिणी काल में मनुष्यों की आयु, शक्ति और ऊँचाई आदि अभिवृद्धि की ओर बढ़ती जाती है। अवत्सर्पिणी काल में ऊपर की सभी बातें कम होती जाती है। इसके उदाहरण में चन्द्रमा के पूर्व पक्ष और अपर पक्ष कला की उपमा दे सकते हैं। इस तरह उत्सर्पिणी के बाद अवत्सर्पिणी और अवत्सर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी बदलती रहती है। यह काल परिवर्तन का स्वभाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके प्रत्येक में छह-छह भेद हैं। उत्सर्पिणी के छह भेद यह हैं– (१) दुषम-दुषमा (२) दुषमा (३) दुषम-सुषमा (४) सुषम-दुषमा (५) सुषमा (६) अति सुषमा। अवत्सर्पिणी के लिए इसे उल्टा समझना चाहिए।

संस्कृत भाषा में "सु' माने श्रेष्ठ है। 'दुर' माने घनिष्ठ है। इस तरह समा के साथ (सु) और (दुर) मिलने से 'सुषमा' और 'दुषमा' की उत्पत्ति होती है। 'सुषमा' कहे तो बढ़िया और 'दुषमा' कहे तो 'घटिया'।

इस तरह अवत्सर्पिणी काल का पहला जो भेद है उसका काल परिमाण चार कोड़-कोडी सागर परिमाण है। दूसरे का तीन कोड़-कोड़ी सागर है। तीसरे का दो कोड़ा-कोड़ी सागर है। चौथे का बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर है। पाँचवे का सिर्फ इक्कीस हजार वर्ष है। छट्टे का भी इक्कीस हजार वर्ष है।

इस तरह अवत्सर्पिणी का कुल दस कोड़ाकोडी सागर काल परिमाण है वैसे ही उत्सर्पिणी का काल परिमाण समझना चाहिए। सागर कहे तो बड़ा लंबा है। वह अपने समझ के बाहर है।

एक जमाने में भरत क्षेत्र के अंदर अवत्सर्पिणी का जो पहला अति सुषमा आरा चल रहा था उस जमाने के लोग वज्र के समान दृढ़ शरीर और सोने के समान कान्तिवाले थे तथा वे अच्छे बलशाली, शूरवीर तेजस्वी एवं पुण्यशाली होते थे। उनकी आयुष्य तीन पल्य की थी। उसी तरह नारियां भी रूप-लावण्य एवं आयु आदि से ओत-प्रोत थी। उस समय के स्त्री-पुरुष आपस में बड़े प्रेम भाव के साथ रहते थे। उन लोगों की इच्छापूर्ति कल्पवृक्षों से होती थी। वे लोग भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, अपमृत्यु, दुःख आदि कष्टों से दूर होकर बड़े आनंद के साथ अपना जीवन बिताते थे।

शरीर मजबूत होने के कारण उन्हें किसी तरह का रोग नहीं होता था। भोजन की कमी न होने के कारण किसी भी तरह का मन चंचल नहीं होता था। अकाल मरण एवं बुढ़ापा न होने के कारण किसी भी तरह की दिक्कत के बिना भोग भोग कर सानंद काल यापन करते थे। दस प्रकार के कल्पवृक्ष होने के कारण उनको आजीविका की सारी चीजें बराबर मिलती रहती थी। किसी तरह का कष्ट नहीं होता था। वहाँ की जमीन और उत्पन्न होने वाली सारी चीजें एक व्यक्ति के अधीन न होकर समाज की होने से सभी लोग समान रूप से अर्थात् उच्च-नीचता के बिना समान रूप से जीविका चलाते थे। हर चीजें हर वक्त मिल जाने के कारण भविष्य के लिए वस्तुओं को संग्रह करने की जरूरत नहीं पड़ती थी। इन्हें अपरिग्रही कहे तो आश्चर्य की बात नहीं है। वस्तुओं की कमाई एवं रक्षा से होने वाले कसूरों से मुक्त रहते थे। इस काल को भोगभूमि काल कहा जाता था। यह उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से विमुक्त था। सम मानव समुदाय कहें तो युक्ति युक्त कहा जा सकता है। आजकल भी ऐसा आनंदमय जीवन बिताने का सौभाग्य मिलता तो कितना अच्छा होता।

इस तरह का पहला, दूसरा, तीसरा भोगभूमि काल बीत गया। चौथा कर्म भूमि का काल आया। उसी समय तीर्थंकर आदि महापुरुषों का जन्म होता है। उक्त काल में चौबीस तीर्थंकर महापुरुषों ने जन्म लिया वे सब के सब करुणा के सागर होने के नाते सारी जीव राशियों के उत्थान के लिए अहिंसा प्रधान जैन धर्म का प्रचार करते थे। उनका उपदेश यह था कि सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यग् चारित्र की आराधना से मोक्ष की प्राप्ति है। हर एक व्यक्ति का कर्तव्य यह है कि उनकी आराधना अवश्य करनी चाहिए। इस महामंत्र का उपदेश दूसरों को देने के साथ-साथ खुद भी उनका आचरण कर मार्गदर्शी होते हुए मोक्ष सिधारे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म की मुख्य शिक्षा यही है कि सदाचरण के बिना आत्मा का कल्याण कदापि नहीं हो सकता। **"परोपदेशेपाण्डित्यं"** इस तरह दूसरों को उपदेश देने मात्र से अपना आत्मकल्याण होना असंभव है। अतः खुद को भी आचरण करने की बड़ी आवश्यकता है। यह सुंदर शिक्षा है।

इस तरह का महत्वपूर्ण जैन धर्म अनादि काल से चला आ रहा है। परंतु अब पंचम काल चल रहा है। इस काल-दोष के कारण सद्धर्म का पतन और अधर्म का उत्थान नजर आ रहा है। इसे काल का दोष ही कहना चाहिए।

तमिलनाडू और जैन धर्म

अब हम तमिलनाडु में जैन धर्म, उसकी परिस्थिति पर विचार करेंगे।

सबसे पहले समझने की बात यह है कि आजकल तमिलनाडु जितना दिखता है, पहले इससे कई गुणा विस्तृत था अर्थात् तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल और आंध्र सम्मिलित होकर विशाल था। इसे द्राविडनाडु के नाम से पुकारते थे और वह जैन धर्मावलंबियों का गढ़ था। यह जैन और अजेन सारे इतिहासकारों की सुनिश्चित बात है। वहाँ पर जैन धर्म और जैन संस्कृति का अच्छा प्रभाव था। क्योंकि यहाँ महान् आचार्य कुंदकुंद, समन्तभद्र और भट्टाकलंक आदि विस्तृत विद्वद् शिरोमणियों का जन्मस्थान एवं प्रचार स्थली होने के नाते जैन धर्म जगमगाता रहा। वे आचार्य गण ज्ञानसिंधु और गरिमा के प्रतीक थे। इस बात को केवल जैन ही नहीं अजैन भी तहेदिल से मानते हैं।

भगवान् महावीर तीर्थंकर का समवशरण यहाँ आने के पूर्व तमिलनाडु में जैन धर्म मौजूद था और वहाँ जैन श्रावक लोग निवास करते थे। इससे आप लोग जान सकते हैं कि ईसा के ६०० वर्ष पूर्व वहाँ जैन श्रावक थे किंतु वे कब से थे यह विचार करने की बात है। सिंधुघाटी के आधार से भी इसका निर्णय हो सकता है परंतु यह विस्तृत विषय होने के कारण संक्षेप में कहा जा सकता है कि अहिंसा प्रधान आर्यों का यहाँ आना हुआ संभवतः जैन धर्म का प्रारंभ तभी से हुआ हो। इस तरह का अभिप्राय भी प्रचलित है। चाहे कुछ भी हो इस प्रांत में बहुत समय से जैन धर्म का प्रचार रहा और जैन श्रावक लोग रहा करते थे। यह बात एक तरह से सुनिश्चित है। प्रो. ए. चक्रवर्ती का कहना भी यही है। वे सुविख्यात इतिहासकार थे।

तमिलनाडु जैन सिद्धांत और जैनत्व के अति प्राचीनतम भग्नावशेष का स्थानभूत प्राचीन देश है। यहाँ का स्थान जिनबिंब, जिनालय, शिलालेख, विज्ञान कला आदि से ओतप्रोत है। यहां पर जैनत्व के अनमोल जवाहरात बिखरे पड़े हैं। इन रत्नों का परिचय होना जैन समाज के लिए अत्यंत आवश्यक है। यदि उत्तरभारत की जैनी जनता यहाँ के खंडहरों का अवलोकन करेंगे तो स्पष्ट विदित होगा कि एक समय में जैन संप्रदाय के लोग कितनी तादाद में यहाँ रहे होंगे और उन लोगों से जैन धर्म की आराधना किस तरह से की गई होगी। यहाँ (तमिलप्रांत) के जैन धर्म तीर्थ और उन स्थानों को जाने का मार्ग आदि जानना आवश्यक समझा जायेगा।

यहाँ की परम पवित्र तमोभूमियां त्यागी महात्माओं के त्याग के रजकणों से भरी पड़ी हैं। जिस प्रकार हमारे तीर्थंकर परम देवों ने उत्तर भारत को अपने दिव्य चरणों से पवित्र किया है। तदनुसार अत्यंत उद्भट महती प्रभावना से ओतप्रोत आचार्यवर्यों ने तमिल प्रांत को एकदम पवित्र बनाया है। इस प्रदेश में दिगंबर जैनाचार्यों के संचार ने जैन संस्कृति को अत्यंत प्रगतिशील बनाया है। मगर कालवश उसका उत्थान-पतन हुआ है।

श्रुतकेवली भद्रबाहु महाराज के साथ १२ हजार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिराजों का विहार दक्षिण भारत में हुआ था। उनमें से ८००० साधु गण ने तमिलनाडु में विचरण किया था। उनके विहार से पवित्रित यह भूमि भग्नावशेषों के द्वारा आज भी उनकी पवित्र गाथाओं की याद दिलाती हुई शोभित हो रही है। काश ! जैन धर्म ज्यों का त्यों रहता तो कितना अच्छा होता। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिमित परिग्रह आदि पंचशीलों का कैसा प्रचार रहता ?

भगवान् महावीर के मोक्ष चले जाने के बाद उनके पदानुगामी कुंदकुंद महाराज की तपोभूमि इसी प्रांत में है। उसका नाम 'जोन्नूरमलै' है। वह पवित्र स्थान उनके महत्व की याद दिलाता हुआ शोभायमान हो रहा है। **अकलंक बस्ती** आह्वान करता हुआ बता रहा है कि आओ और महात्माओं के चरण-चिह्नों से आत्मसंशोधन कर प्रेरणा प्राप्त कर लो ! दक्षिण मथुरा आदि जिलों में जैन धर्मानुयायी मिट चुके हैं। परंतु यहाँ के सुरम्य पर्वतों की विशाल चट्टानों पर उत्कीर्ण जिनेंद्र भगवान् के बिंब और गुफाओं में बनी हुई वस्तिकाएँ तथा चित्रकारी आदि सब के सब अपनी अमर कहानी सुनाती रहती है।

यहाँ सैंकड़ों साधु साध्वियों के निवास, अध्ययन-अध्यापन के स्थान आश्रम आदि के चिह्न पाये जाते हैं। सिद्धन्नवासल यानैमलै कलुगुमलै समणर्मले आदि पहाड़ हैं। वे दर्शनीय होने के साथ-साथ आत्मतत्त्व के प्रतिबोध के रूप में माने जा सकते हैं।

वर्तमान समय में यह प्रांत उपेक्षा का पात्र बना हुआ है। कर्नाटक प्रांत भगवान् बाहुबलि के कारण प्रख्यात है। परंतु यह प्रांत विशेष आकर्षणशील वस्तु के अभाव होने के कारण इस प्रांत की तरफ लोगों का ध्यान नहीं के बराबर है। परंतु यहाँ की तपोभूमि का अवलोकन करेंगे तो अध्यात्मतत्त्व से अमरत्व प्राप्त तपोधनों के रजकणों का महत्व अवश्य ध्यान में आ सकता है। जैनत्व की अपेक्षा से देखा जाय तो कोई भी प्रांत उपेक्षणीय नहीं है। सत्य की बात यह है कि त्यागी महात्माओं से धर्म का प्रचार होता है और वह टिका रहता है। सैकड़ों वर्षों से दिगंबर जैन साधुओं का समागम एवं संचार का अभाव होने से जैन धर्म का प्रचार नहीं के बराबर है। परंतु खद्योत के समान टिमटिमाता हुआ जिंदा ही है अर्थात् सर्वथा नष्ट नहीं हुआ है।

यहाँ की जनता सरस एवं भोली-भाली है। धर्म के प्रति अच्छी श्रद्धा है। व्यवसायी होने के नाते अपने धार्मिक कृत्य को पूर्ण रूप से करने में असमर्थ है। यहाँ के जैनी लोग संपन्न नहीं है। धर्म प्रचार के लिए भी धन की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। नीति है कि **"धनेन विना न लभ्यते क्वापि"** अर्थात् धन के अभाव में कोई भी कार्य साधा नहीं जा सकता। यहाँ पर फिर से धर्म प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। इस पर उत्तर हिंदुस्तान के संपन्न व्यक्ति अथवा संपन्न संस्था यदि ध्यान देंगे तो सब कुछ हो सकता है। अन्यथा ज्यों का त्यों ही रहेगा।

प्राचीन काल में तमिलनाडु के अंदर जैन धर्म राजाओं के आश्रय से पनपता था। चेर, चोल, पाण्डय और पल्लव नरेशों में कुछ तो जैन धर्मानुयायी थे और कुछ जैन धर्म को आश्रय देने वाले थे। इसका प्रमाण यहाँ के भग्नावशेष, और बड़े बड़े मन्दिर हैं। चारों दिशाओं के प्रवेश द्वार वाले अजैनों के जो भी मन्दिर है, वे सब एक जमाने में जैन मन्दिर थे।[१] वे सब समवशरण की पद्धति से बनाये हुए थे। बाद में जैनों का ह्रास कर ले लिये थे अब भी बहुत से अजैन मन्दिरों में जैनत्व चिह्न पाये जाते हैं।[२]

१. उन अजैनों के स्तुतिपद्य में जिनंकर (जिनगृहं) पुगुन्दु याने प्रवेश कर आता है। इससे जान सकते हैं कि एक जमाने में वह जिन मन्दिर था।
२. नागर कोयिल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पवित्र भूमि में जगत् प्रसिद्ध समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक,सिंहनंदी, जिनसेन, वीरसेन और मल्लिषेण आदि धुरंधर महान् ऋषियों ने जन्म लिया था। यह पावन स्थान उन तपोधनों का जन्म स्थान होने के साथ-साथ उनका कार्य क्षेत्र भी रहा था। यहाँ का कोई भी पहाड़ ऐसा नहीं है जो जैन संतों के शिलालेख, शय्यायें, वसतिकायें आदि चिह्नों से रिक्त हो।

वर्तमान में यहाँ के मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महासभा एवं दि. जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी इन दोनों संस्थाओं की ओर से काफी सहायता मिल रही है। उनकी सहायता से कई मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ। करीब पन्द्रह साल पहले सन् १९७७ में आचार्य श्री निर्मलसागरजी महाराज पधारे थे। वे यहाँ छः साल तक प्रचार करते रहे। उन्होंने सारे तमिलनाडु में विहार किया। उनके कारण जैन धर्म का काफी प्रचार हुआ था। उसके बाद आर्यिका गणिनी १०५ श्री विजयामती माताजी का आगमन हुआ था। उन्होंने भी छः साल तक सारी जगह विहार कर काफी प्रचार किया था। इस तरह साधु-साध्वियों के कारण प्रचार होता है।

समझने की बात यह है कि धर्म का प्रचार त्यागियों से हो रहा है और होता रहेगा। क्योंकि त्यागी लोगों को आहार, जप-तप अनुष्ठान और धर्म प्रचार के सिवाय और कोई काम नहीं है। लोग भी उनकी वाणी का आदर करते हैं। गृहस्थी में बसने वाले श्रावकों को सैकड़ों काम रहते हैं। नित्य प्रति देवदर्शन करने के लिए भी उन्हें अवकाश नहीं मिलता। आजकल नौजवानों में कालदोष एवं वातावरण के कारण धर्म के प्रति श्रद्धा कम होती जा रही है। सिनेमा, ड्रामा, रेडियो, वीडियो, टीवी आदि के विषय में दिलचस्पी ज्यादा दिखाई दे रही है। विरला ही घर ऐसा होगा जहाँ पर रेडियो और टीवी नहीं रहते हों। लोगों के दिल में कामवासना की जागृति ज्यादा दिखाई देती है। आचार-विचार दूर होता जा रहा है। भविष्य अंधकार सा दिखता है। पाश्चात्य देशों की शिक्षा भी इसका एक मुख्य कारण है। थोड़े दिनों में सदाचार का नामोनिशां रहना भी मुश्किल-सा दिख रहा है। पाश्चात्य शिक्षा के कारण युवक और युवतियां स्वतंत्र हो गये हैं। माता-पिता के आधीन नहीं रहते, ऐसे जमाने में धर्मधारणा कहाँ तक रहेगी। यह बात समझ में नहीं आती। फिर भी त्यागी महात्माओं का संपर्क बार-बार मिलता रहेगा तो थोड़ा बहुत सुधार होने की संभावना है।

तमिलनाडु में जैनाचार्यों द्वारा विरचित नीतिग्रंथ बहुत हैं, जैसे – तिरुक्कुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि। ऐसे महत्वपूर्ण नीतिग्रंथ होते हुए भी लोगों के दिल में सुधार नहीं हो पाता। हिंसाकांड की भरमार है। साधारण जैनेत्तर लोग तो छोटे-छोटे देवताओं की पूजा में तथा भक्ति में लगे हुए हैं। वे लोग मनौती करते हैं कि अमुक कार्य पूरा हो जाय तो बकरे और मुर्गियों की बलि देंगे। सरकार की तरफ से काली आदि देवियों के सामने बलि देने को मना है। फिर भी कुछ दूर जाकर छिप-छिपाते हुए बलि देते ही रहते हैं। लोग अज्ञानवश अनाचार करते हैं। उन्हें रोकना असंभव सा दिख रहा है।

यहाँ भट्टारकों की मान्यता है। यह प्रथा एक जमाने में सारे भारत में थी। उत्तर भारत में धीरे धीरे मिट चुकी है। दक्षिण में अब तक मौजूद है। वर्तमान में मेलचित्तामुर के अंदर लक्ष्मिसेन भट्टारक जी हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र में भट्टारकों की मान्यता अब भी मौजूद है। मैं समझता हूँ कि जैनधर्म के रक्षार्थ यह मान्यता आदि-शंकराचार्य के जमाने में हुई होगी। आदि शंकराचार्य जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने शैव मठ की स्थापना कर कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक हिन्दू धर्म का प्रचार किया। जैन धर्म का ह्रास होते देखकर जैनी लोगों ने दिल्ली, कोल्हापुर, जिनकांचि, पेनुगोपडा आदि स्थानों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में मठ की स्थापना कर जैन धर्म की काफी रक्षा की थी। न जाने उत्तर भारत में भट्टारक परंपरा क्यों खत्म कर दी गई? यह समझ में नहीं आता। कुछ न कुछ कारण अवश्य होना चाहिए।

तमिलप्रांत की प्रथा यह है कि जैनियों के लड़के-लड़कियों को पहले-पहले भट्टारकों से ही पंच नमस्कार महामंत्र का उपदेश लिया जाता है। लड़कों को पंच नमस्कार मंत्रोपदेश देते समय जनेऊ पहनाया जाता है। जनेऊ का प्रचार यहाँ अब तक चलता आ रहा है। कुछ नौजवान लोग इससे दूर होते जा रहे हैं। दुबालकृष्णप्प नायकन के जमाने में सारे के सारे जैन अजैन हो गये। उनमें से वर्तमान के जैन लोग जनेऊ पहनकर जैन के रूप में दीक्षित किये गये। बचे बाकी लोग शैवधर्मानुयायी बन कर रहे गये। अब वे लोग मौजूद हैं। इसका मतलब यह है कि एक जमाने में जैन धर्म की रक्षा जनेऊ से हुई थी, इसे कभी नहीं भूल सकते।

वर्तमान में यहाँ रहनेवाले जैन लोग ज्यादातर कृषक है, अर्थात् खेती करने वाले हैं। वे लोग गांवों में रहते हैं। जैनियों के सैकड़ों गांव हैं। जैनियों के लड़के अब पढ़ने लगे हैं। अंग्रेजी का प्रचार ज्यादा है। अपने जैन युवक नौकरी भी करते हैं। वकील, इंजीनियर, डॉक्टर ऑडिटर और अध्यापक आदि पदवीधर हैं। धनाढ्य नहीं के बराबर हैं। हर गांव में जैन मंदिर है। कुछ दुरावस्था में है। धनाभाव के कारण कुछ मंदिरों का जीर्णोद्धार नहीं हो पा रहा है। पुरुषों की अपेक्षा नारियों को धर्म के प्रति श्रद्धा ज्यादा है। कुछ लोग देवदर्शन आदि नित्यकर्म करते हैं। फिर भी शिथिलता पाई जाती है। परंतु सर्वथा अभाव नहीं है।

यहाँ की तमिल भाषा में ग्रंथ बहुत है। धनाभाव के कारण कुछ अप्रकाशित भी है। जैन ग्रंथों को जैनियों की अपेक्षा अजैन लोग प्रकाशन में लाते हैं। क्यों कि जैन धर्म के ग्रंथ उत्तमोत्तम है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथ अन्य धर्म में नहीं है। इसका उदाहरण नीलकेशी, जीवकचिंतामणि, मेरुमंदर पुराण आदि हैं। जैन लोगों की अपेक्षा अजैन लोग इन्हें चाव से पढ़ते हैं। इसमें सब तरह का महत्व भरा पड़ा है।

यहाँ का मौसम बड़ा अनुकूल है। यहाँ न तो गर्मी है, न सर्दी। सम शीतोष्ण है। आश्विन-कार्तिक बरसात का मौसम है। यहाँ पर अधिकतर धान और मूँगफली पैदा होती है। गन्ना भी पैदा किया जाता है। यहां के लोगों का मुख्य खाना चावल है। कभी-कभी गेहूँ का उपयोग किया जाता है। हल्का खाना होने से चावल सुपाच्य है। जैन और ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य लोग ज्यादातर मांसाहारी हैं। गांवों में जैनियों का निवास स्थान अलग रहता है। वहाँ मांस बेचनेवाले जाते ही नहीं। इस तरह जैन लोग गांवों में पृथक् रहकर अपना आचरण करते हैं। अन्य मत वाले जैनियों का आदर करते हैं। परंतु आजकल कम होता जा रहा है।

यहाँ की जैन संस्कृति का ह्रास अधिकतर शैववालों से हुआ है। एक जमाने में तमिलनाडु जैन वाङ्मय से और कला कौशल से समृद्ध था। यह ऐतिहासिक तथ्य है। ऐसा कला केंद्र देश इस तरह अवनति की हालत में आने का कारण क्या था ? केवल मत-द्वेष, धर्म के नाम से जो संघर्ष हुआ था, उसी कारण यह हालत हुई। असत्य के द्वारा सत्य छिपाया गया था। अहिंसावादी धर्मात्मा लोगों को खत्म कर दिया गया था। अन्य लोगों का यह विचार रहता था कि अहिंसावादी रहेंगे तो अपना हिंसात्मक कांड नहीं चलेगा। अतः इन लोगों को किसी न किसी तरह से खत्म कर देना है। इस तरह कंकण (राखी) बांधकर नाश किया गया था। प्रजा अनभिज्ञ थी। उसे सत्यासत्य का विचार नहीं था। अनभिज्ञता के कारण झूठे चाल-बाजियों के जाल में प्रजा फँस जाती थी तथा अकृत्य भी कर डालती थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौटुंबिक, जातीय, धार्मिक कोई भी वैषम्य याने विद्वेष होता हो • तो उससे होने वाली भवितव्यता पर मानव की दृष्टि नहीं जाती। चाहे सगे-संबंधी क्यों न हो ? किसी न किसी तरह से विपक्ष वालों को हरा देना ही एक मात्र प्रण लिया जाता था। यह चरित्र प्रसिद्ध प्रामाणिक बात है।

इतिहास पर जरा दृष्टि डालिए। पृथ्वीराज को हराने के लिए जयचंद ने मुहम्मद गोरी को बुलाया था। जयचंद को मालूम नहीं था कि पृथ्वाराज की जो हालत होगी। एक दिन वही हालत मुझे भी भुगतने पड़ेगी। क्रोध से अंधा व्यक्ति इस बात को कहाँ सोचता है ? फिर जयचंद की क्या हालत हुई थी दुनिया जानती है। इसी तरह इब्राहिम लोदी ने अपने रिश्तेदार को हराने के लिए बाबर को बुलाया था। परंतु बाद में इब्राहिम लोदी की क्या दशा हुई थी? इसका इतिहास साक्षी है।

इसी तरह ८वीं सदी में आपसी वैमनस्य के कारण तमिलनाडु में भी दो साम्राज्य समाप्त हुए। कांजीपुर के पल्लवनरेश का राज्य एवं दक्षिण मथुरा के पाण्डय नरेश का राज्य – इन दोनों की हालत भी यही रही।

पहले के जमाने में कोई भी धर्म हो वह पनपने एवं सुरक्षित होने के लिए राज्यसत्ता की जरूरत पड़ती थी। **"यथा राजा तथा प्रजा"** राजा जिस धर्म को अपनाता है या आदर करता है उसकी उन्नति होती थी। प्रजा के अंदर न्याय और अन्याय के विषय में विचार करने की न तो शक्ति थी, न कर सकती थी। राजा किसी भी धर्म को या धर्मवालों को खतम करना चाहे तो वह आसानी से कर सकता था। न तो प्रजा पूछ सकती और न कोई दूसरा पूछ सकता था। राजा सर्वेसर्वा था और उसकी हुकूमत प्रजा पर सर्वोपरि थी।

आठवीं सदी तक तमिलनाडु में जैन धर्म पनपता रहा। जैन धर्म का प्रचार प्रसार होता रहा। लोगों में अहिंसा का अस्तित्व पूर्ववत् रहा। सभी अहिंसा के पुजारी रहे। साथ ही साथ जनता के आचरण में सत्य और सदाचार का परिपालन होता रहा। किंतु कुछ हिंसावादी लोगों को यह पसंद नहीं आया। वे लोग विरोध करने लगे। बस, यही बात सत्य है।

तमिलनाडु के अंदर शुरू से जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव धर्म के लोग अपने-अपने आचरण करते आ रहे थे राज्य सत्ता जिस ओर झुकती वह धर्म बढ़ता और जिस ओर न झुकती वह धर्म घटता रहता था। प्रजा इस प्रकार कुछ न कर सकती थी। उसे न अधिकार था और न विचारशीलता थी। लेकिन ये चारों धर्मवाले प्रेमभाव से मिलजुल कर नहीं रहते थे अर्थात् आपस में लड़ते रहते थे।

जैन, बौद्ध दोनों अहिंसावादी थे। जैन लोग अहिंसावादी होने के साथ-साथ मांसाहार के विषय में तीव्र विरोधी थे। बौद्ध लोग मांसाहार के विरोध में कुछ भी कहे बिना सिर्फ अहिंसा प्रचार किया करते थे। इस विषय में जैन लोग सहमत नहीं थे। जैनों के ग्रंथ मांस खाने पर खूब खंडन करते थे। उदाहरण के लिए देखिए तमिलनाडु के नीति प्रधान कुरल काव्य में बताया गया है कि **"कोल्लान पुलालै मरुत्तानै कै कूप्पि-एल्ला उयिरुं तोलुं"** – इसका मतलब यह है कि जो मानव हिंसा नहीं करता है, वह साथ-साथ मांस का भी त्यागी रहेगा तो उसे संसार के सारे जीव हाथ जोड़ नमस्कार करेंगे।

देखिए कितनी मधुर बात है शायद, बौद्धों का खण्डन करने के लिए ही तिरुक्कुरल के कर्ता ने अहिंसा के साथ-साथ मांस त्याग पर भी जोर दिया हो। इस तरह जैन धर्म का दृष्टिकोण लोगों के आचार-विचार पर केन्द्रित था इसलिए जैनाचार्यों ने तिरुक्कुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि नीति ग्रंथों की सृष्टि की थी। इस तरह भरमार नीति ग्रंथों की रचना किसी भी अन्य भाषा में या किसी भी प्रांत में नहीं देखी जा सकती है। इस तरह नीति प्रधान आचरण भी कुछ हिंसामय क्रियाकांड वालों को पसंद नहीं आता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम देखते हैं कि दुनियाँ के अंदर धर्म के नाम पर नीति प्रधान सदाचार का प्रचार होवे तो उसे भी अन्य धर्म वाले सहन नहीं करते चाहे न्याय हो अथवा अन्याय हो, किसी न किसी तरह से उस धर्म का समूल नष्ट करने के लिए उतारू हो जाएंगे। उसके लिए राज्यसत्ता की जरूरत पड़े तो उसे भी अपनी तरफ खींचने के लिए तैयार हो जाएंगे। बस, यही हालात तमिलनाडु में जैन धर्म की हुई थी।

जैन धर्मोन्नति के समय में शैव-वैष्णव धर्म उतनी उन्नति पर नहीं थे। तमिलनाडु में जैन धर्म को गिराने में शैव धर्म वाले आगे रहे। वैसे ही कर्नाटक में वैष्णव धर्म वाले आगे रहे। पहले शैव धर्म में भी हिंसा का जोर नहीं था बाद में कापालिक वाममार्ग के लोग आकर घुसे । वे लोग हिंसामय क्रियाकांड पर जोर देने लगे। जैन लोग हिंसा के विरोधी थे ही। इसलिए जैन लोगों को अलग करने एवं नीचा दिखाने की दृष्टि से वेद को आधार शिला बनाकर जैन लोगों को अविरत, अन्यविरत, अयज्ञ, अतांत्रिक आदि शब्दों के द्वारा खण्डन करने के साथ-साथ मांसाहार की पुष्टि करते रहे।

उन लोगों का विचार यह था कि साधारण जनता को अपनी तरफ खींचना है। वह सदाचार को बोझ सा समझती है। मांस खाना, मदिरा पीना, भोग भोगना और मनमानी चलाना यह सब के लिए इष्ट है। इस पर नियंत्रण रखना साधारण लोगों के लिए एक तरह बोझ (Burden) है। इस तांत्रिकवाद को वे लोग अच्छी तरह समझते थे अतः उन लोगों का प्रचार इस तरह होने लगा कि देवताओं के नाम पर बलि देना। धर्मशास्त्र के अनुसार अनुचित नहीं है बल्कि उचित ही है। शिवजी ने नरबलि चाही। देखो, इसका आधार **तिरुतोण्ड नायनार पुराण** है। मांस खाना अनुचित नहीं है क्योंकि शिवजी ने **कण्णप्प नायनार** से दिये हुए मांस को खाया।[1]

कापालिक लोगों के संबंध होने के बाद ही शैव धर्म में कमियाँ आने लगी। कापालिक लोगों को मदिरा पीना, मांस खाना, भोग भोगना सर्वसाधारण था। अतः कुछ लोग प्रजा को अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रहे थे।

उस समय जैनधर्म का जोर था। तिरुक्कुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि आचार ग्रंथों का प्रचार होने से कापालिक उन्हें अपने मार्ग पर खींचने में असमर्थ हो रहे थे। उसके बाद उन लोगों ने एक नाटक खेला। एक व्यक्ति के दो बच्चे थे – एक लड़का एक लड़की। लड़के का नाम था तिरुनावुक्करसु और लड़की का नाम था तिलकवती। तिरुनावुक्करसु बड़ा हुआ, उसका कापालिक मार्ग पर आदर भाव था।

संबंधन नाम का एक व्यक्ति था। उसको भी कापालिक मार्ग में आदर भाव था इसलिए संबंधन और तिरुनावुक्करसु दोनों मिलकर षड्यंत्र रचने लगे। उन लोगों की योजना यह थी कि तिरुनावुक्करसु को कपटी जैन संन्यासी बनाया जाय तथा उसे पाटलीपुत्र (तिरुपापुलियुर) जैन मठ में शामिल करा दिया जाय। उसका जैन साधु के बराबर सारा आचरण रहे। फिर क्या करना है ? उसे पीछे से बताया जायेगा।

इस कूटनीति के अनुसार तिरुनावुक्करसु को कपटी जैन संन्यासी बनवाकर पाटलीपुत्र के जैन मठ में प्रवेश कराया। जैन साधु होने के बाद उसका नाम "धर्मसेन" रखा गया। जैन साधुगण मायाचार से दूर रहने वाले थे। उनको इन लोगों का कपट व्यवहार मालूम नहीं था। वे लोग धर्मसेन को सच्चा साधु समझते थे। कुछ दिन ऐसा चलता रहा। संबंधन और तिलकवती (तिरुनावुक्करसु की बहन) दोनों इस पर निगरानी रखते थे।

१ तमिलरवीचि पेज नं १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके बाद एक दिन 'धर्मसेन' नाम का कपट संन्यासी पेट दर्द का बहाना बनाकर एकदम चिल्लाने लगा। जैन साधु गण वास्तव में दर्द समझकर मणि-मंत्र-औषधि के द्वारा चिकित्सा करने लगे, दर्द शांत नहीं हुआ, बढ़ता ही गया। वह जोर-जोर से चिल्लाकर रोता था। वास्तव में पेट दर्द होता तो चिकित्सा से ठीक हो जाता। यह तो मायाचार था। कैसे शांत होता ? जैन साधुगण असमंजस में पड़ गये। क्या किया जाय ?

इतने में यह समाचार सुनकर धर्मसेन की बहन तिलकवती आयी। भाई को तसल्ली दी और कहने लगी कि शैव धर्म को छोड़ने से ही यह हालत हुई। तुम पर भगवान् शिवजी का कोप है। यह सब उनकी माया है। घबराओ मत। मैं शिवजी की विभूति (राख) लायी हूं। उसे शिवजी का नाम लेकर पेट पर लगाओ। सब ठीक हो जायेगा। ऐसा ही लगाया गया। फौरन दर्द ठीक हो गया। अर्थात् ठीक हो जाने के बाद यह नाटक का पहला दृश्य था।

फिर लोगों में यह प्रचार शुरू कर दिया कि जो पेट दर्द जैनों के मणि-मंत्र औषधि आदि से ठीक नहीं हो सका ऐसा भयंकर दर्द शिवमहाराज की राख से एक क्षण में ठीक हो गया। देखो, शिवजी की महिमा। इस तरह शिव की महिमा के बारे में खूब प्रचार करने लगे। कपट संन्यासी के रूप में जो 'धर्मसेन' था वह जैन धर्म को छोड़कर फिर से शैव धर्म में आ गया और 'अप्पर' के नाम से शैव भक्तों में प्रधान बन गया। इस तरह यह पहला नाटक था।

उन लोगों का प्रचार यह था कि जो कुछ भी कर लो परवाह नहीं परंतु शिवजी की भक्ति अवश्य करना। शिवजी सबको क्षमा कर देंगे। लोग अपनी दिक्कत से मुक्त हो जाएंगे। जैनों के ज्ञानमार्ग में कुछ नहीं है। केवल आचरण पर जोर देते रहते हैं। ढोंगी हैं और मायाचारी हैं। उन लोगों की बात पर विश्वास करना नहीं। इस तरह उन लोगों का प्रचार होता था।

कापालिकों का यहाँ तक हद से ज्यादा प्रचार था कि "जितना भी भोग कर लो परवाह नहीं शैव भक्त होकर शिवजी की भक्ति करने लग जाय तो भगवान् शिवजी क्षमा कर देंगे।"[२]

"ललाट पर राख लगाओ और रुद्राक्ष (एक फल की माला) गले में रहे तो काफी है। अन्य कोई आचार-विचार के ऊपर ध्यान देते फिरने की जरूरत नहीं।" इस तरह भक्तिमार्ग पर जोर देते हुए प्रचार करने लगे। साधारण प्रजा कुछ नहीं समझती थी। जो मार्ग आसान रहता है जिसमें कठिनाई नहीं है उसे अपनाने लग जाती थी।

इस तरह भक्तिमार्ग का प्रचार करने के साथ-साथ जैन मन्दिरों के जिनेंद्र भगवान् को हटाकर बलात्कार के साथ शिवलिंगजी की स्थापना करते जाते थे। जहाँ कहीं इस तरह जबरदस्ती से मन्दिरों को परिवर्तित किया गया था, उक्त गांव के नाम आज भी जैनत्व को जता रहे हैं। जैसे अरहन्तनल्लूर जिनप्पल्लि[३] आदि।

अप्पर (तिरुनावुक्करसु) के साथ **संबंधन** नाम का व्यक्ति मिला हुआ तो था ही। इन दोनों का विचार यह था कि किसी न किसी तरह से आचार्य वसुनन्दि द्वारा स्थापित मूलसंघ को खतम करना है। उक्त संघ की शाखा तमिलनाडु भर में फैली हुई थी। जैन धर्मावलम्बियों पर उनका प्रभुत्व था। वे (जैन लोग) मरते दम तक तर्कवाद करते थे। वे तर्कशास्त्र में निपुण थे इसलिए उन शैव भक्तों का विचार यह था कि उन्हें (जैन तर्कवादियों को) जीतना है तो कपट व्यवहार से जीत सकते हैं न कि तर्कवाद से । इसका रास्ता क्या है ? इसे ढूँढना आवश्यक है। यह कापालिक शैवों का विचार था।

१. तमिलरवीचि पेज नं १६, २. तमिलरवीचि पेज नं २५ ३. तमिलरवीचि पेज नं ३४, २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंधन को दैवी शक्तिमान एवं शिवजी के दूत के रूप में प्रचलित किया जाता था। यह बात राजा पाण्डय का आमात्य "कुलच्चिरै" को मालूम हुई । वह पक्का शैव भक्त था। पाण्ड्य नरेश जैन धर्मावलंबी था। अमात्य ने रानी "मंगैयर्क्करसी" को येन केन प्रकारेण शैव धर्मानुयायिनी बना लिया था। फिर क्या था ? ये दोनों मिलकर जैन धर्म को खत्म करने के कार्य में षडयन्त्र करने लगे।

इन दोनों में संबंधन (शिवदूत) को मथुरा (दक्षिण) बुला लिया। वहाँ एक मठ में उसे ठहराया गया था। संबंधन के द्वारा श्रमण (जैन) धर्म के विरुद्ध खूब प्रचार किया गया। बाद में उन्हीं लोगों ने उस शैवमठ पर आग लगा दी उल्टा प्रचार इस तरह किया गया था कि जैन लोगों ने ही शैव मठ पर आग लगा दी। उस समय जैनों पर जितना उपद्रव करा सकते थे उतना किया गया था।

उसके बाद दूसरा नाटक तैयार किया गया था कि शिवदूत नाम का जो संबंधन था, उसके मुँह से शाप दिलाया गया था कि शैव मठ पर जो आग लगा दी गई थी उसके दंडस्वरूप **राजा पांड्य** के पेट में भयंकर दर्द हो जाय। रानी शैव धर्मानुयायिनी तो थी ही उसने छिप छिपाकर राजा के भोजन में पेटदर्द होने की दवाई दे दी थी राजा पेट के दर्द के मारे तड़पता था। श्रमण (जैन) लोगों ने बढ़िया दवाईयाँ दी थी। रानी बहाना बनाकर उसे नहीं खिलाती थी। उसका विचार यह था कि किसी न किसी तरह से राजा को शैव बनाना है। फिर संबंधन को बुला लिया गया। उसने आकर "शिवायनमः' कहते हुए पेट के ऊपर विभूति लगायी। पेट दर्द फौरन ठीक हो गया। विचार करने की बात यह है कि कोई भी बीमारी हो दवाई से ही ठीक हो सकती है। वहाँ दवाई है नहीं सिर्फ राख से हो जाती है। क्या यह बात विश्वास करने लायक है ? बिलकुल नहीं। यह नाटक तो सिर्फ मत (धर्म) प्रचार के सिवाय और कुछ नहीं है। अनभिज्ञ राजा पेट दर्द ठीक हो जाने से वह राख की महिमा समझ कर स्वयं शैव भक्त बन गया, नहीं-नहीं, बना दिया गया था। देखिए कैसी विडंबना है ?

राजा को अपनी इच्छा के अनुसार शैव बना लिया गया, उन लोगों के नाटक का दूसरा मंच भी पूरा हो गया था। फिर क्या था? राजा को वश में रखकर श्रमणों (जैनों) को खतम करने का काम बाकी था। उसके लिए भी जो करना था वह भी शुरू कर दिया गया। वह यह था कि श्रमणों (जैनों) के साथ शास्त्रार्थ किया जाय उसमें जो हार जाते हैं, उन सबको शूली पर चढ़ाकर मार दिया जाय। इसके लिए शिवजी से सिफारिश मांगी गई थी।[४] हर एक कार्य में श्रमणों को खतम कर देना – इसका भार शिवजी के ऊपर डाल दिया जाता था। ये सारी बातें **संबंधन तेवारं** में आती हैं। परंतु यहाँ समझने की बात यह है कि संबंधन ने अपने तेवारं ग्रंथ में यह बात नहीं लिखी थी, अर्थात् श्रमण लोगों के द्वारा शैव मठ को आग लगा दी गई थी। इस बात से जान सकते हैं कि जैनों पर शैवमठ के ऊपर आग लगाने का आरोप बिल्कुल कल्पित है।

फिर श्रमणों के साथ (जैनों) शास्त्रार्थ (वाद) करने का निश्चय किया गया था। शास्त्रार्थ वह कहलाता है कि स्वपक्षी प्रश्न पूछेगा, उसका विपक्षी जवाब देगा। जवाब न देने पर उसे हारा हुआ समझा जाता है। मगर यहाँ पर विचित्र शास्त्रार्थ था। वह यह था कि अपने पक्ष के ताड़पत्र को लिखकर पानी में डाला जाय, उनमें जिसका पत्र पानी के प्रवाह में बह जाय वह हार गया है। जिसका उल्टा वापस आवे वह जीता हुआ समझा जायेगा। यह कैसा शास्त्रार्थ था पता नहीं ? उन शैव लोगों वाली गाली में लिखते हैं कि **"सावायुं वादुसेय समणर टाल"** अर्थात् जैन लोग मरते दम तक वाद (शास्त्रार्थ) करने वाले हैं। इसलिए छल-कपट के द्वारा जैनों पर हार की छाप लगा

---

३ तमिलरवीचि ४ संबंधन तेवारं वेदवेल्यिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दी गई थी। उन लोगों ने निरपराध श्रमण (जैन) साधुओं को सूली पर चढ़ा कर मार दिया था। इस प्रसंग को पुराण में भी लिख रखा है और दक्षिण में मथुरा में आज तक उसका उत्सव भी मीनाक्षी मंदिर में मनाते हैं। देखिए कैसी मानसिकता है ?

समझने की बात यह है कि खास कर जैन साधुओं को खत्म करने का कारण यह था कि उन साधुओं के कारण से ही श्रमण (जैन) धर्म का प्रचार होता था। अतः उन साधुओं को खत्म कर दें तो अपने आप जैन धर्म खत्म हो जाएगा। इसी कारण से श्रमण साधुओं को खत्म कर दिया गया था। तथा जैन धर्म के अनुयायिओं को मारपीट कर भगा दिया गया था। उनकी जमीन जायदाद छीन ली गई, महिलाओं का शीलभंग किया गया। इस तरह जैन लोगों पर भयंकर अत्याचार किया गया था। जैसे पाकिस्तान में हिंदुओं पर हुआ था। इसका आधार उन्हीं लोगों के **शैवपेरिय पुराणं तेवारं** आदि है। खैर हुआ सो हुआ। हमें तो मत द्वेष कितना भयंकर है, इस पर ध्यान देना है। यह सारी बातें सातवीं सदी एवं आगे पीछे की है।[१]

जैन धर्म पर क्रमशः आपत्ति पर आपत्ति आती रहीं। दूसरा उपद्रव यह था करीब तीन सौ साल के पहले जिंजी प्रदेश को वेंकटप्प (कृष्णप्प) नायक नाम का छोटा राजा राज्य करता था, वह विजयनगर साम्राज्य के अधीन था। उससे भी धर्म की बड़ी हानि हुई थी?[२]

इस तरह जैनों और जैन साधुओं पर कई आपत्तियाँ आई । जैन साधु लोग कीड़े-मकोड़े से लेकर मनुष्य तक के किसी भी जीव को किसी तरह का दुख या कष्ट देने वाले नहीं थे, **"जिओ और जीने दो"** – इस सिद्धांत (महामंत्र) को पालने वाले थे। ऐसे संतों पर भी अत्याचार एवं अनाचार होता है, हुआ था। इसका ही नहीं, निर्दयता के साथ हजारों साधुओं को कत्ल किया गया था। खास कर साधुओं के प्रति विद्रोह करते थे। अफसोस! कैसा भयंकर मत द्वेष रहा। काश! हर धर्मवाले आनंद के साथ अपने-अपने धर्म का आचरण कर सकते ! न जाने अन्य धर्म के विनाश में क्यों खुशी मनाते थे ? यही बात समझ में नहीं आती है। खैर, क्या करे ? मनुष्य का स्वभाव है। उसे मिटाया नहीं जा सकता। सब धर्मों में ऐसा होता है। जो हुआ सो हुआ अब कहना-करना क्या है ? कुछ नहीं केवल पछताना है। इसके सिवाय और कुछ नहीं।

✣ ✣ ✣

❑ श्री मल्लिनाथ जी जैन 'शास्त्री' तमिल, संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपने शास्त्री, न्यायतीर्थ, प्रवीण प्रचारक की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। त्यागराय कॉलेज-मद्रास में ३० साल तक हिन्दी के प्राध्यापक रहे। तमिल में २५ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा प्रसिद्ध जैन ग्रंथों के समीक्षक। हिन्दी भाषा में भी आपके पाँच ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। संप्रति : लेखन -संपादन एवं अनुवादक, 'जैन गजट' के सह संपादक, मद्रास सम्यग्दर्शन जैन संघ तथा कर्नाटक जैन विद्वद् संघ के अध्यक्ष।

— सम्पादक

१ समणमुत्तं तमिलु पेज -८१
२ समणसुत्तं तमिलु पेज -८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण संस्कृति का हृदय एवं मस्तिष्क

❑ डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन

श्रमण संस्कृति का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसका हार्द हैं – अहिंसा एवं मस्तिष्क है – अनेकांतदर्शन ! परिग्रही अहिंसक नहीं हो सकता और हिंसक अनेकांती नहीं बन सकता। अहिंसा और अनेकांत का अन्योन्याश्रित संबंध है। प्रो. रवीन्द्रकुमार जैन रहस्योद्घाटन कर रहे हैं – अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत सिद्धांतों का। – सम्पादक

सभ्यता के समान संस्कृति का स्वरूप, परिभाषा एवं विधायक तत्त्व आज तक सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत नहीं हो सके हैं। पूर्व और पश्चिम के विद्वान् जन्मजात पारम्परिक संस्कारों को, जन्मोपरांत सत्संग, विद्या एवं प्रतिभा से उद्भूत परिष्कृत जीवन को, महान् पुरुषों के गुणों और कार्यों के अनुकरण को संस्कृति कहते हैं। वस्तुतः संस्कृति की चेतना इतनी व्यापक एवं गहरी है कि हम उसे जन्मजात, ईश्वरीय देन या विद्वत्ता एवं प्रतिभा से प्रसूत नहीं कह सकते है। आज संपूर्ण विश्व की संस्कृति में एक अद्भुत संश्लिष्टता दृष्टिगोचर हो रही है। विज्ञान और उद्योगीकरण के विकास ने विश्व को बहुत बड़ी सीमा तक बाँध रखा है। सभी देश एक दूसरे के गुणों, कार्यों और विचारों से किसी न किसी मात्रा में प्रभावित हो रहे हैं।

इस प्रकार इस प्रकट सत्य के बावजूद हम प्रत्येक देश, जाति एवं संप्रदाय की संस्कृति के कुछ खास लक्षणों को तो समझ ही सकते हैं।

संस्कृति की बहुमान्य परिभाषाएँ ये हैं – आप्टे के संस्कृत शब्दकोष में संस्कृत धातु के अनेक अर्थ किये गए है – सजाना, संवारना, पवित्र करना, सुशिक्षित करना आदि।[१] वेब्सटर्स इन्टर नेशनल डिक्शनरी में संस्कृति के विषय में यह कथन है – "मस्तिष्क, रुचि और आचार व्यवहार की शिक्षा और शुद्धि। इस प्रकार शिक्षित और शुद्ध होने की व्यवस्था, सभ्यता का बौद्धिक विकास, विश्व के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान एवं कथित वस्तुओं से स्वयं को परिचित कराना"।[२]

उक्त परिभाषाओं का तात्पर्य यह है कि मानव की अंतः बाह्य व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्कृष्टता ही संस्कृति है।

श्रमण कौन?

श्रमण शब्द पर विचार करने के पूर्व सभ्यता और संस्कृति के असली अंतर को जान लेना अत्यंत आवश्यक है। **सभ्यता मानव जाति का बहिर्मुखी एवं बहुमुखी भौतिक विकास है जबकि संस्कृति अंतर्मुखी, आध्यात्मिक एवं गुणात्मक विकास है। सभ्यता और संस्कृति में साम्य नहीं विषमता और विरोध है। संस्कृति के शव पर सभ्यता का प्रासाद बनता है जबकि संस्कृति का गुलाब सभ्यता के बगीचे में उगता है।**

जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव थे।

(1) To adorn, grace, decorate (2) To refine, polish (3) To consecrate by rebeating mantras (4) To purity (a person) (5) To cultivate educate, train

(2) The training and retirement of mind to ...... and manners, the condition of .... than trained and retired, the ....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे ही आदि श्रमण थे अतः श्रमणों या जैनों की संस्कृति तीर्थंकरों की संस्कृति है।

यह आत्मोन्नयन और त्याग तपस्या की संस्कृति है। 'श्रमण' शब्द का अर्थ है श्रम, शम, सम का जीवन जीनेवाला संत या मुनि। श्रम अर्थात् तपश्चर्या एवं साधना, शम स्वयं के राग-द्वेष का शमन कर शांत रहना और सम का अर्थ है सभी जीवों के प्रति समभाव रखना। जैन श्रमण इन तीन गुणों से युक्त होते थे। संस्कृत भाषा का श्रमण शब्द अपभ्रंश और प्राकृत में 'समण' के रूप में प्रचलित है। वर्तमान में जिसे हम आत्म-धर्म या अध्यात्म कहते हैं। यह वही श्रमणधर्म है। यही श्रमण संस्कृति का प्रतीक है। प्रत्येक धर्म का एक दार्शनिक पक्ष होता जो उसकी मान्यताओं का पोषक होता है। जैन धर्म का दार्शनिक पक्ष है अनेकांतवाद। इस दर्शन के माध्यम से हम सृष्टि, तत्त्वनिरुपण और व्यक्ति स्वातंत्र्य को भलीभांति समझ सकते हैं। जैन धर्म की संरचना नहीं हुई, वह सनातन है, उसे सुधारवादी और परवर्ती धर्म कहना मात्र अज्ञान है।

प्रवचनसार के चारित्राधिकार में 'श्रमण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है – **"पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुःख परिमोक्खं"**[१]। अर्थात् हे भद्र! यदि तू दुःखों से मुक्त होना चाहता है तो श्रामण्य-मुनि पद स्वीकार कर। प्रवचनसार के चारित्राधिकार की २६वीं, ३२वीं तथा ४१वीं गाथाओं में **समण** शब्द का अत्यंत सटीक प्रयोग हुआ है। श्रमण के गुण और चारित्र का बहुत तर्क संगत एवं हृदयस्पर्शी वर्णन वहाँ किया है। अतः स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का निश्चल धारी ही श्रमण कहलाता है। इसी रत्नत्रय की पूर्णता मोक्ष प्राप्ति का सशक्ततम आधार है।

इस आधारभूत विवेचन के साथ यह जानना अत्यंत समीचीन होगा कि श्रमण संस्कृति के प्राणभूत विशिष्ट गुण कौन-कौन से हैं उसका हृदय और मस्तिष्क क्या है? श्रमण संस्कृति के हृदय के रूप में अहिंसा धर्म प्रतिष्ठित है और उसके मस्तिष्क के रूप में अनेकांत दर्शन प्रतिष्ठित है। अहिंसा समस्त जैनाचार का पर्यायवाची शब्द है तो अनेकांत समस्त जैन दर्शन या विचारधारा का पर्यायवाची शब्द है।

अहिंसा

जैन धर्म में अहिंसा समस्त उत्कृष्ट आचार संहिता का पर्याय है। वह केवल जीव की रक्षा मात्र तक सीमित नहीं है। अहिंसा में शेष चार व्रत पूर्णतया गर्भित है। अपरिग्रह तो अहिंसा धर्म का मुकुट है। इसके बिना वह पूर्ण नहीं हो सकती। मन-वाणी और कर्म में इसकी एक रूपता प्रकट होनी चाहिए।

"अहिंसा की विशाल विमल धाराएं प्रांतवाद, भाषावाद, पंथवाद और संप्रदायवाद के क्षुद्र घेरे में कभी आबद्ध नहीं हुई है। न किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर ही रही है। यह विश्व का सर्वमान्य सिद्धान्त है। भगवान् महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है।"[२] जैन आगमों के अनुसार भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर ने पांच महाव्रतात्मक धर्म का निरुपण किया और शेष २२ तीर्थंकरों ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया। इस विविध परंपरा से फलित यह हुआ कि धर्म का मौलिक रूप अहिंसा है। सत्य आदि उसका विस्तार है। इसलिए आचार्यों ने लिखा है- **"अवसेसा तस्स रक्खणा"** शेष व्रत अहिंसा की सुरक्षा के लिए है।"

निश्चय दृष्टि से आत्मा ही अहिंसा है और वही हिंसा

१. **प्रवचनसार - चारित्राधिकार '१'**
२. **अहिंसा तत्वदर्शन - पृ.३ लेखक मुनि नथमल**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और जो प्रमत्त है वह हिंसक है।

"आया चेव अहिंसा आया हिंसेति निच्छओ एसो।
जो होइ अप्पमत्तो अहिंसओ हिंसओ अरिओ।।"

श्रमणी अहिंसा निषेधात्मकता से उठकर सक्रिय विधानात्मकता में परिणत होती है। यह केवल हिंसा न करना मात्र नहीं है, बल्कि दुःखी प्राणियों में समभाव और यथासंभव सह अस्तित्व प्रदान करने का संकल्प भी है। आज के विश्व को इस प्रकार की रक्षापरक, मैत्रीपरक और समभावी अहिंसा की महती आवश्यकता है। मानव हिंसा, झूठ, चोरी, लुटेरापन, कपट और शोषण जैसी विभावात्मक अवस्था में बहुत देर तक नहीं रह सकता। उसे आत्मा की सहज, शांत एवं समभावी अवस्था में आना ही होगा। यही उसकी स्वाभाविक परिणति है।

विश्व के सभी धर्मों (हिंदू धर्म, इस्लामधर्म, ईसाईधर्म, सिक्ख धर्म, बौद्ध धर्म आदि) ने अपनी आचार संहिता में अहिंसा को महत्व दिया है, परंतु श्रमण परंपरा ने अहिंसा का जो व्यापक, गंभीर एवं सार्वभौम तथा सार्वकालिक स्वरूप स्थिर किया है वह अनुपम एवं अद्वितीय है। श्रमण पूर्ण अहिंसक होता है तो श्रमणोपासक श्रावक सीमित रूप से पूर्ण अहिंसक होता है। पूर्ण अहिंसा मन-वचन और शरीर की एकता के साथ तथा कृत, कारित और अनुमोदन के साथ पाली जाती है।

सच्चा अहिंसक भीतर से ईमानदार होता है। वह अन्तर्मुखी दृष्टिवाला होता है। बहिर्मुखी दृष्टिवाला व्यक्ति अवसरवादी होता है। उसके मन-वचन और क्रिया में एकरूपता नहीं होती। अहिंसक स्वभाव से अहिंसक होता है, वह निष्काम कर्मयोगी होता है, वह फल-आशा कभी नहीं करता। सच्चा अहिंसक पहले स्वयं की आत्मा को निर्मल करता है तभी वह दूसरों के लिए आदर्श बनता है। अहिंसा आत्मा को परखती है। सच्चाई उसको तेज करती है। जहाँ ये नहीं, वहाँ व्यक्तित्व ही नहीं; धर्म तो दूर की बात है। आत्म शोधक ही दूसरों को उबार सकता है।"

अपरिग्रह

अपरिग्रह अर्थात् इच्छाओं, अधिकारों और वस्तु धन-धान्यादि का असंग्रह सच्चे अहिंसक के लिए आवश्यक है। यह असंग्रह भाव क्रिया के स्तर पर हो तभी पूर्ण होता है। स्थूल रूप से त्याग और भावना के स्तर पर यदि आसक्ति बनी रहे, तो वह अपरिग्रह नहीं हैं। पाप का मूल जन्म तो मन में ही होता है। क्रिया तो मात्र अनुचरी है। मन का पाप क्रिया में परिणत न भी हो, तब भी पाप का बंध होता है।

आज समस्त विश्व का संघर्ष मूलतः परिग्रह एवं अपरिग्रह अर्थात् मूलभूत-न्यूनतम सुविधाओं का विषमीकरण है। हमारी पूंजीवादी व्यवस्था में धनवान अधिक धनवान हो रहा है और गरीब अधिक गरीब हो रहा है। साम्राज्यवाद को परास्त किया जा सकता है परंतु पूंजीवाद को नहीं क्योंकि यह बेतसी वृत्ति का जीवन जीना भी जानता है। यह मक्कारी में निपुण होता है। यह शोषण और हत्याएं करता है और अनाथालय चलाता है, मंदिर बनवाता है। परिग्रही होकर कोई अहिंसक नहीं हो सकता, हो भी सका तो आंशिक रूप से ही। अपरिग्रह अहिंसा की पहली और अनिवार्य शर्त है। सच्चा त्यागी अपरिग्रही पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा से सर्वथा मुक्त रहता है। वह गृहस्थ भी हो तो जल में कमल की तरह रहता है। वह तो अपने शरीर को भी परिग्रह मानता है।

१. हरिभद्र कृत अष्टक से
२. अहिंसा तत्व दर्शन पृ. १०६ — मुनि नथमल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार की वस्तुएं ससीम है और मानव मन की इच्छाएं असीम है। उन दोनों का मेल नहीं हो सकता। तृष्णा ऐसी प्यास है जो संग्रह से शांत किये जाने पर और तीव्र होती है। तृष्णा मानव की अनेक उत्तम शक्तियों का विकास नहीं होने देती।

"जैन श्रमण परिग्रह को मन-वचन और कर्म से न स्वयं संग्रह करता है, न दूसरों से करवाता है और न करने वाले का अनुमोदन ही करता है। वह पूर्ण रूप से अकिंचन/अनासक्त और असंग होता है। जैन श्रमण का एक नाम निर्ग्रन्थ है।"

अनेकांत दर्शन

वस्तु अनेकान्तात्मक है। एक ही वस्तु को अनेक दृष्टिकोणों से देखना-समझना अनेकांत है। एक ही वस्तु के संबंध भेद से अनेक रूप हो सकते हैं। यथा एक ही व्यक्ति अपेक्षा भेद से पुत्र है, पिता है, पति है, शिष्य है और गुरु भी है।

अनेक का अर्थ है एक से अधिक। यह संख्या दो भी हो सकती है और दो से अधिक भी। अंत का अर्थ है धर्म-अवस्था विशेष। वस्तु के अनेक धर्मों को एक साथ समझानेवाली अर्थ-व्यवस्था अनेकांत है। जब कि वस्तु के अनेकांत स्वरूप को समझाने वाली सापेक्ष कथन पद्धति स्याद्वाद है। व्यक्ति एक समय में वस्तु के अनेक पक्षों को देख समझ तो सकता है, परंतु वह केवल एक ही पक्ष को व्यक्त कर सकता है। (एक समय में)

स्यात् शब्द का प्रयोग वस्तु की पर्यायों में / अवस्थाओं में किया जाता है। पर्याय परिवर्तनशील होती हैं। गुण वस्तु के अनुजीवी होते हैं। अनेकांत दर्शन वस्तु की गुण-पर्याय परक स्थिति का पूर्ण अध्ययन करके उसकी संपूर्णता पर दृष्टि रखकर सापेक्ष कथन करता है। वह सदाग्रही है, एकांती और हठी या दुराग्रही नहीं। बौद्धदर्शन प्रत्येक वस्तु को अनित्य और नश्वर मानता है तो दूसरी ओर अद्वैतवाद वस्तु को नित्य और अविनाशी मानता है। चार्वाक पुद्गल या वस्तु के अतिरिक्त परलोक, पुनर्जन्म या आत्मा जैसी किसी मान्यता में विश्वास नहीं रखता। वह विशुद्ध भौतिकतावादी और प्रत्यक्षदर्शी है। स्पष्ट है कि उक्त तीनों धारणाएं ऐकान्तिक और अतिवादी है। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। संशयवाद में दोनों कोटियाँ अनिश्चित होती है। जबकि स्याद्वाद में दोनों कोटियाँ निश्चित होती है। जैसे – यह सांप है या रस्सी? द्रव्य दृष्टि से वस्तु नित्य है और पर्याय दृष्टि से अनित्य भी है। अनेकांती 'भी' में विश्वास रखता है जबकि एकान्ती 'ही' में। एक आपेक्षिक दृष्टि से कथन करता है तो दूसरा वस्तु के प्रत्यक्ष एक पक्ष पर ही आग्रह करता है।

सप्तभंगी द्वारा भी उक्त सापेक्षवाद को स्पष्ट किया गया है। एक ही वस्तु को सात भंगों अर्थात् प्रकारों से कहा है – समझा जा सकता है। इसमें वस्तु की पर्याय दशा का महत्व है। अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति, अवक्तव्य (४ भेद) अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्ति नास्ति अवक्तव्य (३ भेद)

सप्तभंगी के स्पष्टीकरण के लिए घट का उदाहरण प्रचलित है-

१. स्यादस्ति – प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (अवस्थाविशेष की अपेक्षा से) सत् है।
२. स्यान्नास्ति – प्रत्येक वस्तु पर-द्रव्य की अपेक्षा से असत् है।
३. स्यादस्तिनास्ति – उक्त दोनों दृष्टियों की अपेक्षा से है भी, नहीं भी।

१. जैन आचार - सिद्धांत और स्वरूप -पृ. ६५ - श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. स्यादवक्तव्य – हाँ, न, की दोनों अवस्थाओं को एक साथ नहीं कहा जा सकता। बोलने का क्रम होता है। दोनों को एक कहना अवक्तव्य है।

५. स्यादस्ति अवक्तव्य – किसी अपेक्षा से घट है और अन्य अपेक्षा से अवक्तव्य है।

६. स्यान्नास्ति अवक्तव्य – किसी अपेक्षा से घट नहीं है और किसी अपेक्षा से अवक्तव्य है।

७. स्यादस्ति-नास्ति अवक्तव्य – अपेक्षा से है, नहीं है और अवक्तव्य है।

अनेकांत दर्शन का प्राण 'नय' है। 'नय' का अभिप्राय है वस्तु के वर्तमान पक्ष को ध्यान में रखकर बात करना। इसमें अन्य दर्शनों का समन्वय हो जाता है। समभाव आ जाता है। विश्व की सभी समस्याएं इस दृष्टिकोण को अपनाने से सुलझ सकती हैं। नय एक व्यावहारिक दृष्टि है। यह वस्तु के पर्याय पक्ष को महत्व देकर सभी दृष्टियों में प्रयोगात्मक समभाव पैदा करती हैं।

निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि श्रमण संस्कृति का हृदय अहिंसा है और मस्तिष्क है अनेकांत। ये दोनों एक दूसरे के पूरक है। जैन दर्शन आदर्शमूलक अप्रायोगिक अभेदवाद को न मानकर भेदवाद को मानता है। सामान्यतया वह अविरोधी है। यह दृष्टि सापेक्ष सत्य पर आधारित है।

"अनेकांतदृष्टि यदि आध्यात्मिक मार्ग में सफल हो सकता है और अहिंसा का सिद्धान्त यदि आध्यात्मिक कल्याण का साधन हो सकता है, तो यह भी मानता चाहिए कि ये दोनों तत्त्व व्यावहारिक जीवन का श्रेय अवश्य कर सकते हैं।"

✤ ✤ ✤

१. अनेकांतदर्शन पृष्ठ - २६ लेखक-पं. सुखलाल संघवी

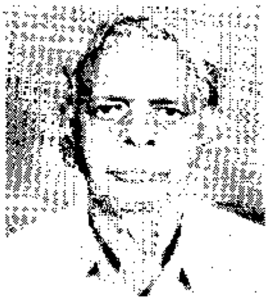

❑ डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, लेखक एवं साहित्यकार हैं। आपका जन्म झांसी में सन् १६२५ में हुआ। आप एम.ए., पी.एच.डी. एवं डी.लिट्. उपाधियों से सम्मानित हैं। आपने ३५ वर्षों तक अनेक कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में स्नाकोत्तरीय अध्यापन का कार्य किया है तथा ३५ छात्रों को पी.एच.डी. करवाई है। आपके लगभग २०० निबंध विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपने समीक्षा एवं शोध से सम्बन्धित २० पुस्तकों का प्रणयन किया है।

– सम्पादक

जीवन में मोक्ष की बात तो दूर रही, जहां संस्था और समाज के सदस्यों में स्वच्छंदता आ जाय तो समाज नहीं चलता, स्वच्छंदता के कारण देश की व्यवस्था भी छिन्न-भिन्न हो जाती है। कर्म-बन्धन से वही मुक्त हो सकता है जो अपनी स्वच्छंदता को रोक लेता है। जहाँ स्वच्छंदता आ जाती है वहाँ धर्म धर्म नहीं, तप तप नहीं रहता।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्म-साक्षात्कार की कला : ध्यान

❑ आचार्य डॉ. श्री शिवमुनि

ध्यान एक दर्शन है। ध्यान शुभ भी है और अशुभ भी। आत्म स्वभाव में रमण करना ही ध्यान है। मन की चंचल वृत्तियों पर समता का अंकुश लगाना ध्यान है। ध्यान करने-करवाने की कला में सिद्धहस्त आचार्य डॉ. शिवमुनि जी म. ध्यान के रहस्यों को उद्घाटित कर रहे हैं, अपने इस आलेख के माध्यम से। — सम्पादक

ध्यान : आत्मभाव में रमण

भारत की भूमि आध्यात्मिक साधना की रंगस्थली रही है। इस भारत में समय-समय पर अनेक तीर्थंकरों का एवं प्रबुद्ध महापुरुषों का अवतरण हुआ है। यहाँ अनेकानेक आत्माएँ दिव्य साधना के बल पर अपनी दिव्यता को प्राप्त कर चुकी हैं। उन्होंने जन-जन को भगवत्ता प्राप्त करने की साधना दी है, जो आज के भौतिक सुखों की दौड़ में दौड़ने वाले जनमानस को वर्तमान क्षण में शाश्वत सुख-शान्ति की अनुभूति कराती है, वह साधना है – **ध्यान-साधना।**

ध्यान के सम्बन्ध में आचार्यों का मत है कि उत्तम संहनन वाली आत्मा का किसी एक अवस्था में अन्तर्मुहूर्त के लिए चिंता का निरोध होता है वही ध्यान है।

"उत्तम संहननस्यैकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानम्।"

(तत्त्वार्थ सूत्र ९-२१)

अर्थात्, साधक का अपने चित्त का निरोध करते हुए अपने आत्मभाव में बिना किसी व्यवधान के (अन्तर्मुहूर्त) स्थित रहना ही **ध्यान** है।

भगवान् महावीर से गौतम स्वामी ने पूछा – **"एगग्गमण सन्निवेसणाएणं भन्ते जीवे किं जणयइ?"** अर्थात् भन्ते ! एकाग्र मन सन्निवेशना से जीव को क्या प्राप्त होता है? इसका उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा कि एकाग्रमन सन्निवेशना से जीव चित्त का निरोध करता है।

एकाग्रता अर्थात् अपने चित्त को किसी एक आलम्बन में स्थित करके आत्मभाव में रमण करने से चित्त का निरोध होता है और आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है। अतः चित्त की स्थिरता ही आत्मभाव में रमण करने का साधन है ; यही साधन ध्यान है।

मन का स्वरूप क्या है? – जैसे सागर में लहरों का स्थान है वही स्थान चेतना रूपी समुद्र में अर्थात् अंतःकरण में उठनेवाले संकल्प-विकल्प जनित वैचारिक लहरों का है। इन संकल्प-विकल्पों का कोई निज अस्तित्व नहीं है। ज्यों ही समुद्र शान्त होने पर लहरें शान्त हो जाती है, उसी प्रकार चेतना में शुद्ध भावों का आविर्भाव होने पर अंतःकरण के संकल्प-विकल्प शान्त हो जाते हैं और निर्विकल्पक अवस्था प्राप्त होती है। निर्विकल्पक अवस्था को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है – **ज्ञाता-द्रष्टा भाव की साधना।** अंतःकरण में उठनेवाले संकल्प-विकल्पों को द्रष्टाभाव से देखने का अभ्यास साधना के द्वारा करें। तभी उसे अनुभूति होती है –

एगो मे सासओ अप्पा नाण-दंसण संजुओ।
सेसा से बाहिरा भावा सव्वे संजोग लक्खणा।।

अर्थात् एक मेरी आत्मा शाश्वत है जो ज्ञान-दर्शन से संयुक्त है शेष सभी बाहर के भाव हैं। अर्थात् संयोग मात्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपनिषद् में भी कहा है कि **"आत्मानि विज्ञाते सर्व-मिदं विज्ञातं भवति"** – जो आत्मा को जान लेता है उसे सर्व ज्ञात हो जाता है। यहाँ जानने का अर्थ अनुभूति है। जब यह अनुभूति होती है, तब साधक संसार के माया, मोह, संयोग, वियोग से ऊपर उठ जाता है और सबको जानकर अपने आत्मभाव में रमण करता है।

ज्ञाता-द्रष्टा भाव की साधना है – ध्यान

ध्यान की जागृत अवस्था आनन्दमयी होती है, यह प्रगति का सोपान है, इस अवस्था में सत्य का सबेरा होता है। ज्ञान आदित्य का उदय होता है। तब आत्मा अपने स्वरूप का बोध प्राप्त करके जाग उठती है। उसके जीवन में **"सच्चं खु भगवं"** की ज्योति जगमगाने लग जाती है। उस आत्म-ज्योति के दर्शन होते ही हृदय की सभी ग्रन्थियाँ विलीन हो जाती है और उसके सब संशय समूल क्षीण हो जाते हैं। कहा है कि -

भिद्यते हृदय ग्रन्थिर्छिद्यते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् द्रष्टे परावरे।।

अब प्रश्न समुपस्थित होता है कि हम ध्यान कैसे करें? ध्यान क्या है? ध्यान क्यों करें?

ध्यान क्या है?

ध्यान है – अमन की स्थिति। ध्यान है – मन का शून्य हो जाना। ध्यान है- मन का सध जाना। ध्यान है – चेतना का ऊर्ध्वारोहण। ध्यान है- अंतर का स्नान। ध्यान है – चित्त की शुद्धि। ध्यान है – विकारों से हटकर निर्मल हो जाना। ध्यान है – अन्तर में प्रवेश। ध्यान ही मुक्ति का द्वार है। ध्यान ही अंतर की जागरुकता है। ध्यान है – अहिंसा, संयम व तप रूपी त्रिवेणी की साकार अनुभूति के साथ जीवन जीना। ध्यान अंतर की खोज है। ध्यान बाहर से पर्दा हटाता है और अन्दर की ओर ले के जाता है। जैसे पक्षी दिनभर आकाश में उड़ता रहता है और साँझ को अपने घौंसले में आ जाता है वैसे ही विभाव से हटकर स्वभाव में आ जाना ही ध्यान है। ध्यान एक दीपक है जो अन्तर के आलोक को प्रकाशित करता है। ध्यान एक पवित्र गंगा है, जिसके पास बैठकर तुम स्नात हो सकते हो। ध्यान एक कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर के आप आनन्द के आलोक तक जा सकते हो।

सामायिक ही ध्यान है – भगवान् महावीर के शब्दों में सामायिक ही ध्यान है। उन्होंने सामायिक व ध्यान को अलग नहीं कहा। सम्+आय+इक = सामायिक अर्थात् - समता ही ध्यान है। भगवान् महावीर ने ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे में ध्यान के चार भेद बताये हैं – आर्त, रौद्र, धर्म एवं शुक्ल। उनमें आर्त और रौद्र भी ध्यान है, लेकिन वह गलत है, वासनाओं से भरा हुआ निगेटिव है। वह संसार की ओर ले जायेगा। धर्म और शुक्ल आपको परमार्थ की ओर ले जाएगा।

स्वाध्याय व ध्यान का स्वरूप – ध्यान का अर्थ आँखें बन्द करना नहीं होता। ध्यान का अर्थ है – अपने स्वरूप में आ जाना। वस्तुतः **भगवान् महावीर की साधना, उनका ज्ञान, आचरण एवं तप को जीवन में स्थापित करना है तो वह एक ही धारा है, वह है – स्वभाव और ध्यान। हम दोनों को अलग नहीं कर सकते। दो ही पंख है, दो ही पहिये है – गाड़ी के। स्वाध्याय का अर्थ ही ध्यान होता है और ध्यान का अर्थ ही स्वाध्याय होता है। सामायिक का मतलब ही ध्यान होता है और ध्यान का मतलब ही सामायिक होता है, स्वाध्याय का अर्थ कुछ बोलना, धर्मकथा करना इतना ही स्वाध्याय नहीं होता। स्वाध्याय का अर्थ अपने को जान लेना है। स्व का चिन्तन, मनन करते हुए अनुशीलन**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशीलन के गूढ़तम रहस्य को अनुभव करना स्वाध्याय है।

ध्यान क्यों करें ?

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा 'मन वायु की गति के समान चंचल है, उसे बाँधना, उसे वश में करना बड़ा कठिन है।'

उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान् महावीर ने कहा "मन दुष्ट घोड़े के समान है, उसे साधना कठिन है।" जितनी भी धर्म की साधनाएँ हैं, वे मन के द्वारा होती हैं। आज हमारी भाव सामायिक लुप्त हो गई है। हमारा भाव प्रतिक्रमण/कायोत्सर्ग की साधना नहीं रही। आज आम शिकायत यह है कि सामायिक में मन नहीं लगता। माला में मन नहीं लगता। धर्म-क्रियाओं में मन नहीं लगता। मन हमेशा बिखरा-बिखरा रहता है। दुकान में हैं तो आधा मन घर में रहता है, टी.वी. देख रहे हैं तो आधा मन दूसरे कामों में लगा रहता है। बच्चे पढ़ रहे हैं तो उनका आधा मन खेल में लगा रहता है। जो भी कार्य हम कर रहे हैं, उसे एकाग्रतापूर्वक कैसे करें? जीवन के हर क्षण में समता, शाँति, सुख, चैन से कैसे रहें....? इसके लिए है – ध्यान।

हमारी भारतीय संस्कृति में ऋषि-मुनियों ने वर्षों तक साधना करके मन को साधा। हिन्दू संन्यासी, बौद्ध भिक्षु, जैन साधु, भगवान् महावीर या गौतम बुद्ध, सभी ने ध्यान के माध्यम से अपने मन को साधा।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमसंति जस्स धम्मे सया मणो।।

(दशवैकालिक सूत्र)

धर्म मंगल है, उत्कृष्ट है। कौन-सा धर्म? अहिंसा - अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति प्रेम-मैत्री, संयम यानी मन एवं इंद्रियों को साधना। तप से तात्पर्य है अंतर तप.... यही तप ध्यान है। ऐसे धर्म का जो पालन करता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अतः धार्मिक, सामाजिक एवं दैनिक जीवन के हर कार्य में ध्यान आवश्यक है।

ध्यान कैसे करे ?

केवल आँखें बंद करने से ही ध्यान नहीं होता। यह तो प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में जब आप पक जाते हैं, तो आप २४ घण्टे समाधि अवस्था में, ध्यान अवस्था में रह सकते हैं।

जैसे प्रारंभ में कार चलाना सीखनेवाले को बहुत ध्यान रखना पड़ता है, ब्रेक्स कहाँ है? गाड़ी को कैसे चलाना है? परंतु जब वह उस काम में निपुण हो जाता है, तब उसके लिए गाड़ी चलाना सहज हो जाता है।

इसी प्रकार प्रारंभ में आपको मौन रखते हुए, एक स्थान पर स्थिर बैठकर, आहार की शुद्धि करते हुए ध्यान करवाना पड़ता है। लेकिन वास्तव में ध्यान तो सहज होता है, कराना नहीं पड़ता है। हमारी आत्मा का स्वभाव है – ध्यान, यह सामायिक ध्यान ही है। सामायिक समता है। समता आत्मा का निज गुण है। इसको बाहर से लाया नहीं जा सकता। वह तो भीतर से प्रकट होता है। जैसे नींद को लाना नहीं पड़ता, भोजन को पचाना नहीं पड़ता, नींद आती है, भोजन पचता है। केवल हमें वातावरण बनाना पड़ता है। वैसे ही हम ध्यान के लिए वातावरण बनाते है।

ध्यान की पूरी विधि... **ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि** से आती है। **ठाणेणं** अर्थात् शरीर से स्थिर होकर, **मोणेणं** अर्थात् वाणी से मौन होकर, **झाणेणं** अर्थात् मन को ध्यान में नियोजित कर, **अप्पाणं वोसिरामि**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से अभिप्राय है शरीर के प्रति ममत्व का त्याग। यहाँ पर **अप्पाणं वोसिरामि** का अर्थ आत्मा का त्याग करना नहीं अपितु देह के प्रति आसक्ति का त्याग, मूर्च्छा भाव का त्याग है। जब कायिक, वाचिक, और मानसिक प्रवृत्तियों पर पूर्ण नियंत्रण हो जाता है, तब ध्यान फलीभूत हो जाता है। समाधि की प्राप्ति होती है। आत्मा सिद्ध गति को प्राप्त कर लेती है। अतः ध्यान मोक्ष का कारण है।

महापुरुषों की दृष्टि में ध्यान

भ. महावीर ने धर्मध्यान कहा, बुद्ध ने विपश्यना कहा, महर्षि पतंजलि ने समाधि कहा, रमण महर्षि ने मैं कौन हूँ? कहा, अरविन्द ने एक Universal Super Man की कल्पना की, जे. कृष्णमूर्ति ने Choiceless Awareness की बात कही। गुरु जी.एफ. ने Awareness की बात ही, कुछ नाम ले लो फर्क नहीं, सार है एक, तुम्हारे भीतर का धागा, अन्तर की ज्योति, तुम्हारी चेतना, साक्षीभाव। यह मानव का देह मिट्टी के दीपक की भाँति है, परंतु इसमें रही हुई एक ज्योति हमेशा ऊपर की ओर उठेगी।

जैन धर्म में ध्यान साधना का इतिहास

जैन धर्म में ध्यान साधना की परंपरा प्राचीन काल से उपलब्ध होती है। इसका सबसे सुंदर और प्राचीन प्रमाण है कि, सभी २४ तीर्थंकरों की प्रतिमायें चाहे वह पद्मासन में है, या खड़े हुए कायोत्सर्ग की मुद्रा में है। वे सभी ध्यान मुद्रा में ही उपलब्ध होती है। इतिहास साक्षी है कि कभी भी कोई भी जिन प्रतिमा ध्यान मुद्रा के अतिरिक्त किसी अन्य मुद्रा में उपलब्ध नहीं हुई। अतः जैन परंपरा में ध्यान का महत्व सर्वोपरि रहा है। आचारांग सूत्र में भगवान् महावीर की ध्यान-साधना सम्बन्धी बहुत संदर्भ उपलब्ध हैं। भगवान् की साधना सावलम्ब व निरावलम्ब दोनों प्रकार की रही। **'सिद्धों को नमस्कार'** की अनुगूंज से ग्रहण किए हुए संयम के पथिक श्रमण महावीर ने दीक्षा के अनन्तर सर्वप्रथम विहार कूर्मग्राम की ओर किया। स्थलमार्ग से वहाँ पहुँचकर ध्यानस्थ हो गए। उनके ध्यान के सम्बन्ध में बताते हुए कहा है -

"नासाग्रन्यस्तनयनः प्रलम्बित भुजद्वयः।
प्रभुः प्रतिमया तत्र तस्थौ स्थाणुरिव स्थिरः।।"

अर्थात् नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को स्थिर कर दोनों हाथों को लम्बे किए हुए भगवान् स्थाणु की तरह ध्यान में अवस्थित हुए। नासाग्रदृष्टि का अर्थ है नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को स्थिर करना। अर्धमुंदितनेत्र - आँखें आधी बन्द और आधी खुली।

भगवान् की साधना के सम्बन्ध में आगमकार कहते हैं -

"अदुपोरिसिं तिरियभित्तिं चक्खुमासज्ज अंतसो झाइ।
अह चक्खु-भीया सहिया ते हंता हंता बहवे कंदिंसु।।

(आचा. प्रथमश्रुत स्कन्ध ९-१-५)

भगवान् एक-एक प्रहर तक तिरछी भीत पर आँखें गड़ा कर अन्तरात्मा में ध्यान करते थे। (लम्बे समय तक अपलक रखने से पुतलियाँ ऊपर को उठ जाती थी) अतः उनकी आँखें देखकर भयभीत बनी बच्चों की मण्डली मारो! मारो!! कहकर चिल्लाती, बहुत से अन्य बच्चों को बुला लेती।

भगवान् की ध्यान साधना भी विशेष अनुष्ठान रूप मात्र न होकर समग्रजीवन चर्या रूप थी। आगमकारों ने कहा है -

"अप्पं तिरियं पेहाए अप्पं पिट्ठओ उप्पेहाए
अप्पं बुइएपडिभासी पंथपेही चरे जयमाणे।"

(आचा. प्रथमश्रुत स्कन्ध ९-१-२१)

श्रमण भगवान् महावीर चलते हुए न तिर्यक् दिशा को देखते थे, न खड़े होकर पीछे की ओर देखते थे और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न मार्ग में किसी के पुकारने पर बोलते थे। किन्तु मौनवृत्ति से यत्ना पूर्वक मार्ग को देखते हुए चलते थे।

आचारांग सूत्र के अनुसार भगवान् महावीर ने ध्यान साधना की बाह्य और आभ्यंतर अनेक विधियों का प्रयोग किया था। वे सदैव जागरुक होकर अप्रमत्त भाव से समाधि पूर्वक ध्यान करते थे। भगवान् महावीर के पश्चात् यह ध्यान-साधना की प्रवृत्ति निरंतर बनी रही। उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि मुनि दिन के द्वितीय प्रहर में और रात्रि के द्वितीय प्रहर में ध्यान-साधना करें। उस समय के साधकों को ध्यान-साधना मुनिजीवन का आवश्यक अंग थी। श्री भद्रबाहु स्वामी ने नेपाल में जाकर महाप्राण ध्यान की साधना की, ऐसा उल्लेख आवश्यक चूर्णि भाग-२ के पृठ १८७ में मिलता है। इसी प्रकार **दुर्बलिका पुष्यमित्र** की ध्यान साधना का उल्लेख भी आवश्यक चूर्णि में उपलब्ध है।

अतः ध्यान आत्म साक्षात्कार की कला है। मनुष्य के लिए जो कुछ भी श्रेष्ठ है, कल्याणकारी है; वह ध्यान से ही उपलब्ध हो सकता है। ध्यान-साधना पद्धति **कोऽहं** से प्रारंभ होकर **सोऽहं** के शिखर तक पहुँचती है। अतः ध्यान अध्यात्मिकता का परम शिखर है।

✤ ✤ ✤

❑ आचार्य डॉ. श्री शिवमुनिजी का जन्म सन् १९४२ में पंजाब के मलोट कस्बे के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। आपने ३० वर्ष की उम्र में श्रमण दीक्षा ग्रहण की। इसके पूर्व आपने विदेश के अनेक स्थानों की यात्रा करके वहाँ की संस्कृतियों का अध्ययन किया। आपने अंग्रेजी में एम.ए. किया तथा पी.एच.डी. एवं डी.लिट्. की उपाधियां प्राप्त की। आप स्वभाव से सरल, विचारों से प्रगतिशील एवं विशिष्ट ध्यान साधक हैं। आपने दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों – "भारतीय धर्मों में मुक्ति का सिद्धांत" एवं "ध्यान : एक दिव्य साधना" की रचना की। १९९९ में आप श्रमण संघ के चतुर्थ आचार्य घोषित हुए। आपने अनेक ध्यान-शिविरों का आयोजन किया।

– सम्पादक

नारी की जैन धर्म और जैनदर्शन ने निंदा नहीं की है। लेकिन विकृत जीवन चाहे वह नारी का हो, चाहे पुरुष का हो, साधु या साध्वी का हो, जहाँ जीवन मार्ग से च्युत हो गया, मार्ग-भ्रष्ट हो गया है उसकी तो भगवान् महावीर ने ही नहीं सभी ने आलोचना की है।

✤ ✤ ✤

संघ समाज के दो पक्ष है - एक नारी का, एक पुरुष का, एक साधु और दूसरा साध्वी है। यह संघ है, इसमें अकेला साधु या साध्वी हो और श्रावक हो श्राविका न हो तो कैसे बात बन सकती है? वह सर्वांगीण तीर्थ नहीं बन सकता।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृति में नारी का महत्व

❑ महासती डॉ. श्री धर्मशीला

सन्नारी को जैनागमों में 'देव-गुरु-धम्मजण्णी', 'धम्म सहाइया,' 'चारुप्पेहा' आदि अनेक विशेषणों से विभूषित किया है। नारी कहीं उद्बोधन रूपा है तो कहीं सेवा की प्रतिमूर्ति। नारी-गरिमा का जैनदर्शन में सर्वत्र स्वर गुंजरित हुआ है। नारी, नर से अधिक धर्मपरायणा है एवं कर्तव्यशीला भी।

विदुषी साध्वी डॉ. श्री धर्मशीलाजी म. ने अपने नारी विषयक आलेख में 'नारी-महिमा' का सांगोपांग विश्लेषण किया है। — सम्पादक

विविधरूपा नारी

नारी धर्म पालन में, धर्म प्रचार में एवं धर्म को अंगीकार करने में पुरुषों से अग्रणी है। यद्यपि नारी के रूप, स्वभाव, शिक्षा, सहयोग एवं पद समय के अनुसार बदलते रहे हैं। जन्मदात्री माता से लेकर कोठे की घृणित व प्रताड़ित वेश्या के रूप में भी वह समय-समय पर हमारे समक्ष आई है। यशोदा बनकर लालन-पालन किया है तो कालिका बनकर असुरों का संहार भी किया है, साक्षात् वात्सल्य की प्रतिमूर्ति भी रही है। समय व काल की गति अनंत व अक्षुण्ण है, इससे परे न कोई रहा है न रह सकेगा। कालचक्र से सभी बंधे हैं फिर भला कोई समाज या धर्म उससे विलग कैसे रह सकता है?

नारी नर की अर्धांगिनी, मित्र, मार्गदर्शिका व सेविका के रूप में हमेशा-हमेशा से समाज में अपना अस्तित्व बनाती रही है किंतु कभी-कभी तुला का दूसरा पलड़ा अधिक वजनदार हुआ तो नारी को चार दिवारी की पर्दानशीं, विलासिता, भोग की वस्तु मात्र, सेवा तथा गृहकार्य करनेवाली इकाई भी माना गया। कर्तव्यपरायण बनकर चुपचाप जुल्म सहना ही उसकी नियति बन गई व बदले में उसे सिसकने तक का अधिकार भी नहीं रहा। अधिकार के बिना कर्तव्य का न ही मूल्य रह जाता है न ही औचित्य किंतु समय-समय पर समाज में जागृति व क्रांति की लहर आयी जिसने नारी को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराया।

जैन धर्म और नारी

जैन समाज में आदिकाल से ही नारी सम्माननीय व वन्दनीय रही है। कुछेक अपवाद छोड़कर नारी परामर्शदात्री व अंगरक्षक भी रही है। नारी अपने समस्त उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के साथ ही साथ धर्मपालन, नियम, व्यवहार, स्वाध्याय उपवास आदि में अधिक समय देकर पुरुषों से कई गुना आगे हैं।

यदि हम समाज एवं राष्ट्र को प्रगति व उपलब्धि के मार्ग पर प्रशस्त करना चाहते है, यदि हम भगवान् महावीर की शिक्षाओं को व्यवहार में उतारना चाहते हैं, यदि हम समाज व देश में शिक्षा, अनुशासन भाईचारा व एकता का शंखनाद फूँकना चाहते है तो हमें नारी को उनके साधिकार व उनके उपयोग की स्वतंत्रता देनी होगी, उन्हें उनकी शक्ति, शौर्य, शील व तेज की याद दिलानी होगी।

जैनधर्म हो या अन्य धर्म, नारी का झुकाव पुरुषों की तुलना में धर्म की ओर अधिक ही होता है। यदि हम वर्तमान परिस्थितियों में देखें तो पायेंगे कि सेठजी की अपेक्षा सेठानी जी नित्यमेव धर्म-कर्म, स्वाध्याय, नियम-पालन, एकासना, उपवास आदि नियमित व आस्था से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करती है जबकि उन्हें एक बहू, बेटी, माँ, बहन या पत्नि का कर्तव्य भी निभाना पड़ता है। पुरुषवर्ग यह कहकर अपने दायित्व से हट जाते हैं कि हमें व्यापार, वाणिज्य-प्रवास आदि कार्य में व्यस्त रहना पड़ता है अतः नियम का पालन संभव नहीं।

धर्म के मर्म को जितनी पैनी व सूक्ष्म दृष्टि से महिला वर्ग ने देखा, जांचा एवं परखा है, उतना पुरुषवर्ग ने नहीं और यही कारण है कि आज जैनधर्म के उत्थान में, प्रचार-प्रसार में नारी की भूमिका अहम् है, प्रशंसनीय है, स्तुत्य है।

जैन संस्कृति में नारी की महिमा और गरिमा अद्वितीय है। प्राचीन काल में नारी जैन संस्कृति की सजग प्रहरी थी, वह एक ज्योति-स्तंभ के रूप में रही थी। इतना ही नहीं वह अध्यात्म चेतना और बौद्धिक उन्मेष की परम-पुनीत प्रतिमा थी। अध्यात्म शक्ति का चरम उत्कर्ष 'मुक्ति' स्त्री वाचक शब्द ही है। नारी शांति की शीतल सरिता प्रवाहित करनेवाली है और आध्यात्मिक क्रान्ति की ज्योति को जगमगाने वाली भी है। वास्तविकता यह है कि वह शान्ति और क्रान्ति की पृष्ठभूमि निर्मित करती है।

सार्थक नाम

नारी के बहुविध पर्यायार्थक नाम उसके कार्यों और स्थितियों के अनुसार व्यवहृत हैं। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से 'नारी' शब्द का संधि विच्छेद इस प्रकार हैं – **न + अरि इति नारी – जिसका कोई शत्रु नहीं है, वह नारी** है। उसने आध्यात्मिक और साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति कर पुरुषों को गौरवान्वित किया है। अतः वह **'योषा'** कहलायी, गृह नीति की संचालिका होने से वह **'गृहिणी'** कहलाती है। पूजनीया होने के कारण वह **'महिला'** शब्द से अभिहित है। नारी जीवन के उच्चतम आदर्श का शुभारंभ और समापन 'मातृत्व' में हुआ है। **'माता'** नाम से अधिक पावन आध्यात्मिक नाम नारी का दूसरा नहीं हो सकता। मानवता की रक्षा, आत्मा की संरक्षा वह माता के रूप में ही कर सकती है। माता निर्मात्री है। संसार में अगर कोई देव और गुरु के समान वंदनीय - पूजनीय है तो वह सिर्फ माता ही है। मानव में जो कमनीय और कोमल भावनाएँ है, वे माता की ही देन है। माता से ही मानव (पुत्र) उत्पन्न होता है। मानव का मस्तिष्क, मांस और रक्त यह तीन महत्वपूर्ण अंग माता से ही प्राप्त होते हैं। इसलिए पुत्र माता का कलेजा है। माता का अगाध वात्सल्य इसी पुत्र को प्राप्त होता है। दुनिया के महान् से महान् आत्माओं को जन्म देने वाली नारी है, माता है। तीर्थंकर भी नारी के कोख से ही जन्म लेते हैं। जिस माता ने तीर्थंकर को जन्म दिया उनकी पावनता वचनातीत है। उनके लिए तो यहाँ तक कहाँ गया है कि – संसार में सैकड़ों स्त्रियाँ पुत्रों को जन्म देती है किंतु हे भगवन् ! आप जैसे अद्वितीय अनुपम पुत्ररत्न को जन्म देने वाली स्त्री एक ही हो सकती है। अतएव उसके अनेक नामों में 'जनिः' नाम सर्वथा सार्थक है। माँ अपने रोम-रोम से अपने पुत्र का हित साधन करती है। हम इस सृष्टि-जगत् को भी धरती माता कहते हैं। वह जगज्जननी के विशिष्ट रूप में सृष्टि करती है। सरस्वती के रूप में विद्याप्रदान करती है। असुर नाशिनी के रूप में सुरक्षा देती हैं, लक्ष्मी के रूप में अपार-वैभव सौंपती है और शान्ति के रूप में बल का अभिसंचार करती है।

तात्त्विक विभेद नहीं

जैन साहित्य का सर्वेक्षण करने पर स्पष्टतः प्रतीत होता है कि अतीत काल में श्रमणियों का संगठन सुव्यवस्थित एवं अद्वितीय था। जिस युग में जो तीर्थंकर होते थे वे केवलज्ञान के पश्चात् चतुर्विध संघ श्रमण-श्रमणी, श्रमणोपासक और श्रमणोपासिका की संस्थापना करते हैं। जिसे आगमिक भाषा में तीर्थ कहा जाता है। जिन धर्म का मूलभूत महास्तंभ तीर्थ है। तीर्थंकर व तीर्थंकरत्व तीर्थ पर आधारित है। तीर्थंकर जब समवशरण में धर्मदेशना देते हैं उस समय वे तीर्थ को नमस्कार करते हैं। उक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथन से अति स्पष्ट है कि तीर्थंकर के द्वारा तीर्थ वन्दनीय है। चतुर्विध तीर्थ में आत्मा की दृष्टि से नारी और पुरुष इन दोनों में तात्त्विक विभेद नहीं है, आध्यात्मिक जगत् में नर और नारी का समान रूप से मूल्यांकन हुआ है।

हमारी जैन संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सभी को समान स्थान एवं समान अधिकार प्राप्त है। जिस तरह हमारी मातृभूमि सहिष्णु मानी गई है उतनी ही सहिष्णु नारी है। नारी सेवा रूपा और करूणा रूपा है। सेवा – सुश्रूषा और परिचर्या, दया, ममता आदि के विषय में जब विचार किया जाता है तो हमारी दृष्टि नारी समाज पर जाती है। उसकी मोहक आँखों में करुणारूपी ममता का जल और आँचल में पोषक संजीवनी देखी जा सकती है। कुटुंब, परिवार, देश, राष्ट्र, युद्ध, शांति, क्रान्ति, भ्रान्ति, अंधविश्वास मिथ्या मान्यताओं जैसी स्थितियाँ क्यों न रही हो नारी सदैव लड़ती रही और अपने साहस का परिचय देती रही। पर वह दुःखों को, भारी कार्यों को उठानेवाली 'क्रेन' नहीं है। परंतु वह इनसे लड़नेवाली एवं निरंतर चलती रहनेवाली आरी अवश्य है। मैले आँचल में दुनिया भर के दुख समेट लेना उसकी महानता है। बिलखते हुए शिशु को अपनी छाती से लगा लेना उसका धर्म है। वह सभी प्रकार के वातावरणों में घुल-मिल जानेवाली मधुर भाषिणी एवं धार्मिक श्रद्धा से पूर्ण है। विश्व के इतिहास के पृष्ठों पर जब हमारी दृष्टि जाती है तब ग्रामीण संस्कृति में पलनेवाली नारी चक्की, चूल्हे के साथ छाछ को विलोती नजर आती है और संध्या के समय वही अंधेरी रात में रोशनी का दीपक प्रज्वलित करती है। हर पल, हर क्षण, नित्य नये विचारों में डूबी हुई रक्षण-पोषण में लगी हुई, अंधविश्वासों से लड़ती हुई नजर आती है। जब वह अपने जीवन के अमूल्य समय को सेवा में व्यतीत कर देती है तब उसे अंधविश्वास एवं मिथ्या मान्यताओं से कोई लेना-देना नहीं होता है।

नारी : धर्म क्षेत्र में अग्रणी

जैन संस्कृति के मूल सिद्धान्तों के प्रगतिशील दर्शन ने नारी को यथोचित सम्मान दिया है। धार्मिक क्षेत्र में भी नर और नारी की साधना में कोई भेद नहीं रखा है। चतुर्विध संघ में नारी को समान स्थान दिया है। साधु साध्वी श्रावक और श्राविका। जैन संस्कृति के श्वेताम्बर परिप्रेक्ष्य में पुरुषों की तरह नारी भी अष्टकर्मों को क्षय करके मोक्ष जा सकती है, जिसका प्रारंभिक ज्वलन्त उदाहरण भगवान् ऋषभदेव की माता मरुदेवी है। भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर ने आध्यात्मिक अधिकारों में कोई भेद नहीं रखा। उन्होंने पुरुषों की भांति नारी को भी दीक्षित बनाया है। परिणामतः उन सभी की श्रमणसम्पदा से श्रमणी सम्पदा अधिक रही है। भगवान महावीर के संघ में श्रमणसम्पदा से श्रमणी सम्पदा अधिक रही है। भगवान् महावीर के संघ में श्रमणों की संख्या चौदह हजार थी तो श्रमणियों की संख्या छत्तीस सहस्र थी। जहाँ श्रावकों की संख्या एक लाख उनसठ हजार थी वहाँ श्राविकाओं की संख्या तीन लाख अठारह हजार थी।

भगवान् महावीर की दृष्टि में स्त्री और पुरुष दोनों का स्थान समान था। क्योंकि उन्होंने इस नश्वर शरीर के भीतर विराजमान अनश्वर आत्मतत्त्व को पहचान लिया था। उन्होंने देखा कि चाहे देह स्त्री का हो या पुरुष का, आत्मतत्त्व सभी में विद्यमान है और देह-भिन्नता से आत्मतत्त्व की शक्ति में कोई अन्तर नहीं आता। सभी आत्माओं में में समान बलवीर्य और शक्ति है। इसीलिए भगवान् फरमाते है – "पुरुष के समान ही स्त्री के भी प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में बराबर अधिकार है। स्त्री जाति को हीन पतित समझना केवल भ्रान्ति हैं।

इसीलिए भगवान् ने श्रमणसंघ के समान ही श्रमणियों का संघ बनाया, जिसकी सारणा-वारणा साध्वी प्रमुखा चंदनबाला स्वयं स्वतंत्र रूप से करती थी। मनीषियों ने आध्यात्मिक निर्देशनों की दृष्टि से चंदनबाला को गणधर गौतम के समकक्ष माना।

जैन संस्कृति में नारी के माहात्म्य में सर्वोत्कृष्ट पक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुष से पहले आत्मविकास की चरमस्थिति में पहुँचना है। उदाहरणतः भगवान् ऋषभदेव के समक्ष जब माता मरुदेवी आती है और हाथी पर बैठे-बैठे ही उनकी अन्तश्चेतना उर्ध्वारोहण करने लगती है और वह मायावी भावनाओं से ऊपर उठकर शुद्ध चैतन्य में लीन हो जाती है, उसी आसन पर बैठे-बैठे वह केवलज्ञान और सिद्धगति प्राप्त कर लेती है।

जैन संस्कृति में तीर्थंकर का पद सर्वोच्च माना जाता है। श्वेताम्बर परंपरानुसार मल्लि को स्त्री तीर्थंकर के रूप में स्वीकार करके यह उद्घोषित किया कि आध्यात्मिक विकास के सर्वोच्च पद की अधिकारी नारी भी हो सकती है। उसमें अनंतशक्ति संपन्न आत्मा का निवास है। माता मरुदेवी और मल्लि तीर्थंकर के दो ऐसे जाज्वल्यमान उदाहरण श्रमण संस्कृति ने प्रस्तुत किये हैं, जिनके कारण नारी के संबंध में रची गई, अनेक मिथ्या-धारणाएं स्वतः ही ध्वस्त हो जाती है।

नारी-गरिमा

जैन संस्कृति में नारी की गरिमा आदिनाथ से महावीर युग तक अक्षुण्ण रह सकी। महावीर ने चन्दनबाला के माध्यम से उस परंपरा को एक नवीन मोड़ प्रदान किया। तदुपरांत ही साधु और श्रावक के साथ साध्वी और श्राविका संघ की स्थापना की। साधना के पथ पर नारी ने नव कीर्तिमान स्थापित किये। नारी ने अपने अडिग साधना द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि वह किसी भी दृष्टि से पुरुष से पीछे नही है-

एक नहीं दो-दो मात्राएं नर से बढ़कर नारी।

नारी पर्याय का परमोत्कर्म आर्यिका के महनीय रूप को धारण करने में है। आर्या की व्युत्पत्ति है – **सज्जनों के द्वारा जो अर्चनीय – पूजनीय होती है, जो निर्मल चारित्र को धारण करती है, वह "आर्या" कहलाती है।** आर्या का अपर नाम "साध्वी" है। जो अध्यात्म साधना का यथाशक्ति परिपालन करती है, उसे "साध्वी" कहा जाता है। शम, शील, श्रुत और संयम ही साध्वी का यथार्थ स्वरूप है।

वास्तविकता यह है कि सत्य शील की अमर साधिकाओं की उज्ज्वल परंपरा का प्रवाहमान प्रवाह वस्तुतः विलक्षण प्रवाह है। उनकी आध्यात्मिक जगत् में गरिमामयी भूमिका रही है। **वह उद्दण्डता को प्रबाधित करती है। कठोरता को सात्विक अनुराग के द्रव में घोलकर समाप्त कर देती है। पाशविकता पर वल्गा लगाती है। यथार्थ में साध्विरत्नों ने जहाँ निजी जीवन में अध्यात्म का आलोक फैलाकर पारलौकिक जीवन के सुधार की महती और व्यापक भूमिका का कुशलता एवं समर्थता के साथ निर्वाह किया है। वहीं धर्म प्रचार के गौरवपूर्ण अभियान में भी एक अद्भुत उदाहरण उपस्थित करने में सक्षम रही है।** अतएव वे नारी के गौरवमय अतीत को अभिव्यक्त करती हैं। जिन साध्विरत्नों ने सत्य और शील की विशिष्ट साधना की वे सचमुच में अजर-अमर हो गई। उनका जीवन ज्योतिर्मय एवं परम कृतार्थ हुआ और उनके समुज्ज्वल जीवन की सप्राण प्रेरणाओं से समूची मानवता कृतार्थ होती रही है।

नारी : ज्योतिर्मयी

जैन साहित्य का गहराई से परिशीलन करने पर विदित होगा कि अनेक साध्वियों का ज्योतिर्मय जीवन सविस्तृत रूपेण प्राप्त होता है।

भगवान् ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुंदरी मानवजाति की प्रथम शिक्षिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित है। जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति, आवश्यकचूर्णी व आदिपुराण आदि में इन्हें मानव सभ्यता के आदि में ज्योतिस्तंभ माना है। ब्राह्मी ने सर्व प्रथम अक्षरज्ञान की प्रतिष्ठापना की तो सुंदरी ने गणितज्ञान को नूतन अर्थ दिया है। प्रथम शाश्वत साहित्य के वैभव की देवी है तो दूसरी राष्ट्र की भौतिक सम्पति के हानि-लाभ का सांख्य उपस्थित करती है। दोनों ने सांसारिक आकर्षणों को ताक पर रखते हुए आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर मानवजगत् के बौद्धिक विकास की जो सेवा की है, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी : उद्बोधकरूपा

भगवान् ऋषभदेव ने नारी के उत्थान हेतु जिन चौसठ कलाओं की स्थापना की है, उनमें दोनों आजन्म कुमारियाँ निष्णात थी। उक्त दोनों ने संयम अंगीकार कर स्वयं का कल्याण किया और साथ ही बाहुवलि को भी वास्तविकता का परिबोध देकर लाभान्वित किया –

आज्ञापयाति तातस्त्वां ज्येष्ठार्य! भगवनिदम्।
हस्ती स्कन्ध रूढानाम्, केवलं न उत्पद्यते।।

हे ज्येष्ठार्य ! भ. ऋषभदेव का सामयिक उपदेश है कि हाथी पर बैठे साधक को केवलज्ञान – दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है।

राजस्थानी भाषा में –

वीरा म्हारा गज थकी उतरो
गज चढ़िया केवल न होसी ओ.......।

बाहुबलि मुनि के कर्ण-कुहरों मे दोनों श्रमणियों की मधुर हितावही स्वरलहरी पहुँची; तत्काल मुनिवर सावधान होकर चिंतन करने लगे – "यह स्वर बहिन श्रमणियों का है। इनकी वाणी में भावात्मक यथार्थता है। मैं अभिमान-रूप हाथी पर बैठा हूँ। मस्तक मुंडन जरूर हुआ पर अभी तक मान का मुडंन नहीं किया। मुझे लघुभूत बनना चाहिये। अपने से पूर्व दीक्षित आत्माओं का मैंने अविनय किया हैं। मैं अपराधी हूँ। मुझे उनके चरणों में जाकर सवंदन क्षमापना करना चाहिये।"

इस तरह विचारों को क्रियान्वित करने हेतु कदम बढ़ाया। बस, देर नहीं लगी, केवलज्ञान – केवलदर्शन पा लिया – बाहुबलि मुनि ने। यदि ब्राह्मी और सुंदरी उन्हें सचेत नहीं करती, संक्षिप्त पर सारपूर्ण उद्बोधन नहीं देती, उनके मिथ्याभ्रम की ओर ध्यान केंद्रित नहीं कराती तो क्या उन्हें केवलज्ञान हो पाता? उक्त कथानक से यह सुस्पष्ट है कि इन दोनों बहनों के निमित्त से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ क्योंकि उपादान के लिए निमित्त का होना न केवल आवश्यक है अपितु अनिवार्य भी है। निमित्त अपने स्थान पर महत्व रखता है और उपादान का भी अपना महत्व है। अन्ततः इन दोनों सतियों ने समग्र कर्मो का समूलतः नाश कर निर्वाण पद की प्राप्ति की। उत्तराध्ययन और दशवैकालिक की चूर्णि में राजमति के अडिग संकल्प और दिव्यशील का वर्णन भी आया है। भगवान् महावीर स्वामी के शब्दों में राजुल के उपदेश से रथनेमि सत्पथ पर वैसे ही चल पड़ते है, जैसे उत्पथगामी मस्त हस्ती अंकुश से नियंत्रित हो जाता है –

अंकुसेण जहा नागो धम्मे संपडिवाइओ।

इसके अतिरिक्त साध्वी मृगावती ने अपनी भूल पर पश्चाताप करते हुए अपनी गुरुवर्या चन्दनबाला से पूर्व ही केवलज्ञान प्राप्त किया। साध्वीरत्ना प्रभावती, दमयंती, कुंती, पुष्पचूला, शिवा, सुलसा, सुभद्रा, मदनरेखा, पद्मावती का जीवन भी नारी गरिमा का जीवंत एवं ज्वलंत उदाहरण है।

यद्यपि पुरुषों में ऐसे महान् पुरुष हुए हैं अथवा हैं, जिन्होंने समाज/राष्ट्र एवं विश्व की शान्ति में योगदान दिया है, किंतु पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में ये गुण अपेक्षाकृत अधिक विकसित है। देखा गया है कि पुरुषों की अपेक्षा मातृजाति में प्रायः कोमलता, क्षमा, दया, स्नेहशीलता, वत्सलता, धैर्य, गांभीर्य, व्रत-नियम-पालन-दृढ़ता, व्यसनत्याग, तपस्या, तितिक्षा आदि गुण प्रचुरमात्रा में पाये जाते है, जिनकी विश्वशान्ति के लिए आवश्यकता है। प्राचीन काल में भी कई महिलाओं, विशेषतः जैन नारियों ने पुरुषों को युद्ध से विरत किया है। दुराचारी, अत्याचारी एवं दुर्व्यसनी पुरुषों को दुर्गुणों से मुक्त करा कर परिवार, समाज एवं राष्ट्र में उन्होंने शान्ति की शीतल गंगा बहाई है। कतिपय साध्वियों की अहिंसामयी प्रेरणा से पुरुषों का युद्ध प्रवृत्त मानस बदला है।

नारी-माहात्म्य : इसी प्रकार सती मदनरेखा ने आत्मशान्ति, मानसिक शान्ति एवं पारिवारिक शान्ति रखने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयत्न किया। यह अद्‌भुत पुरुषार्थ विश्वशान्ति का प्रेरक था। साधना के क्षेत्र में श्रमणी संघ वस्तुतः सफल रहा है। कहीं पर भी असफल होकर (वेरंग-चिट्ठी की तरह) नहीं लौटा। अपने आराध्य तीर्थपति आचार्य-गुरु के साथ ही गुरुणीवर्या के शासन संघ (अनुशासन-आज्ञा) में सदैव समर्पित रहा है – श्रमणीसंघ। देश कालानुसार अनुकूल – प्रतिकूल परिस्थितियों का प्रतिरोध – प्रतिकार किया है – श्रमणीसंघ ने, किंतु संघ के प्रति विद्रोह किया हो या प्रतिकूल श्रद्धा-प्ररूपणा स्पर्शना का नारा बुलंद किया हो ऐसा कहीं पर आगम के पृष्ठों पर उल्लेख नहीं मिलता है।

विविध प्रकार के तप-त्यागमय प्रवृत्ति में साध्वी - समूह ने अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित किया है। मगधाधिपति सम्राट् श्रेणिक की पट्टरानियाँ काली-सुकाली-महाकाली-कृष्णा-सुकृष्णा-महाकृष्णा-वीरकृष्णा-रामकृष्णा-पितृसेन-महासेन-कृष्णा तथा नंदादि तेरह और प्रमुख रानियों ने भगवान् महावीर के धर्मसाधना संघ को चार चांद लगाये। तपाचार में अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया। रत्नावली तप, कनकावली, लघुसिंह निष्क्रिड़ीत, महासिंह निष्क्रिड़ीत, सप्त-सप्तमिका, अष्टम-अष्टमिका नवम-नवमिका, दशम-दशमिका, लघुसर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र, भद्रोत्तर तप, मुक्तावली स्थापना, इसतरह तपसाधना क्रम को पूरा किया।

भ. महावीर की माता देवानंदा (जिनकी कुक्षि में भ. की आत्मा बयासी रात्रि रही) पुत्री तथा बहिन ने भी भगवान् के शासन में जैन आर्हती दीक्षा स्वीकार की। तप-जप संयम-साधना आराधना की गरिमा-महिमा मंडित पावन परंपरा में वे ज्योतिर्मान साधिकाएँ हो गईं। इसके पश्चात् भी समय-समय पर अनेकानेक संयम-निधि श्रमणियाँ हुई जिन्होंने जिनशासन की महती प्रभावना की। यद्यपि संख्याओं की दृष्टि में आज का श्रमणी-संघ उतना विशाल नहीं है। छोटे-छोटे विभागों में विभक्त है। तथापि यह वर्तमान का श्रमणी समूह महासाध्वी चंदनबाला का ही शिष्यानुशिष्या परिवार है। क्योंकि श्रमणी नायिका चन्दनबाला थी। देश-कालानुसार भले ही कुछ आचार संहिता में परिवर्तन हुआ है फिर भी मूलरूपेण उसी आचार प्रणाली का अनुगामी होकर चल रहा है। कई शताब्दियाँ बीत गई। चन्दनबाला के संघ शासन में एक से एक जिन धर्म प्रभाविक श्रमणियां (वर्तमान दृष्टि से पृथक - पृथक सम्प्रदायों में) हुई। वर्तमान में कुछ वर्षों पूर्व से भी अनेकानेक जिनशासन रश्मियाँ जैनजगत् में विद्यमान है। कई तपोपूत साध्वियाँ हिंसकों को अहिंसक व व्यसनियों को निर्व्यसनी बनाने में कटिबद्ध रही हैं। कई महाभाग श्रमणियों ने धर्म के नाम पर पशु बलियाँ होती थी उसे बन्द करवाईं। ऐसे कार्यों में भी वे सदैव तत्पर रहीं, तथा है।

श्रमणियों का श्लाघनीय योगदान

वस्तुतः जैन संस्कृति के कण-कण और अणु-अणु में जो प्रभाव मुनि श्रमणसंघ का रहा है वैसा ही अद्वितीय अनूठा प्रभाव गौरव श्रमणी जगत् का भी रहा है। जिनवाणी के प्रचार-प्रचार-प्रभावना में अतीत की महान् श्रमणियों का श्लाघनीय योगदान रहा है। विधि-निषेध का कार्य क्षेत्र जो श्रमणों का रहा है वही श्रमणी जगत् का। लोमहर्षक-प्राणघातक परिषह-उपसर्गों के प्रहार जितने श्रमणी जगत् ने सहे हैं, प्राणों की कुर्बानी देकर भी धर्म को बचाया। शील-संयम की रक्षा की और इतनी सुदृढ़ रही कि आततायियों को घुटने टेकने पड़े हैं। यहाँ तक कि मनुष्य ही नहीं, पशु-दैविक जगत् भी श्रमणी जीवन (चरणों में) के सम्मुख नतमस्तक हो गया।

आदरणीय सन्नारियाँ

श्रमणी न केवल ज्योति है अपितु वह अग्नि शिखा भी है। वह अग्निशिखा इस रूप में है कि अपने जन्म-जन्मांतरों के कर्मकाष्ठ को जला देती है और उसके पावन सम्पर्क में समागत भव्य आत्माएं भी अपने चिरसंचित कर्मग्रास को भस्मसात् कर देती है। जैन धर्म नारी के सामाजिक महत्व से भी आँखे मूँद कर नहीं चला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसने सामाजिक क्षेत्र में भी नारी को पुरुष के समान ही महत्व दिया है। संयम के क्षेत्र में भिक्षुणियाँ ही नहीं गृहस्थ उपासिकाएँ भी अनवरत आगे बढ़ी हैं। भगवान् महावीर के प्रमुख श्रमणोपासक/गृहस्थों का नामोल्लेख जहां होता है वहीं प्रमुख उपासिकाएं की भी चर्चाएं आती हैं। सुलसा, रेवती, जयंती, मृगावती जैसी नारियां महावीर के समवशरण में पुरुषों के समान ही आदर व सम्मानपूर्वक बैठती है। भगवती सूत्रानुसार जयंती नामक राजकुमारी ने भगवान् महावीर के पास गंभीर तात्विक एवं धार्मिक चर्चा की है। तो कोशा वेश्या अपने निवास पर स्थित मुनि को सन्मार्ग दिखाती है।

नारी : श्रद्धा की पर्याय

उत्तराध्ययन सूत्र में महारानी कमलावती एक आदर्श श्राविका थी, जिसने राजा इषुकार को सन्मार्ग दिखाया है। महारानी चेलना ने अपने हिंसापरायण महाराज श्रेणिक को अहिंसा का मार्ग दिखाया। श्रमणोपासिक सुलसा की अडिग श्रद्धा सतर्कता के विषय में हमें भी विस्मय में रह जाना पड़ता है। अम्बड़ ने उसकी कई प्रकार से परीक्षा ली। ब्रह्मा, विष्णु, महेश बना, तीर्थंकर का रूप धारण कर समवशरण की लीला रच डाली, किंतु सुलसा को आकृष्ट न कर सका। सुलसा की श्रद्धा देखकर मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है। रेवती की भक्ति देवों की भक्ति का अतिक्रमण करने वाली थी।

नारी सहिष्णु है

उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रमाणित हो जाता है कि जैन दर्शन के मस्तक पर नारी तप शील और दिव्य सौंदर्य के मुकुट की भांति शोभायमान है। उसकी कोमलता में हिमालय की दृढ़ता और सागर की गंभीरता छिपी हुई है। सीता, अंजना, द्रौपदी, कौशल्या, सुभद्रा आदि महासतियों का जीवन चरित्र जैन संस्कृति का यशोगान है। इनके संयम, सहिष्णुता एवं विविध आदर्शों को यदि देवदुर्लभ सिद्धि कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।

ये लब्धियां महाकाल की तूफानी आंधी में भी कभी धूल-धूसरित न होगी। वस्तुतः जैनागमों में नारी जीवन की विविध गाथाएं उन नन्हीं दीप शिखाओं की भांति है जो युग-युगान्तर तक आलोक की किरणें बिकीर्ण करती रहेगी। यह दीप शिखाएं दिव्य स्मृति-मंजूषा में जगमगाती रहेगी। वर्तमान परिस्थितियों में यह ज्योति अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि आज भी नारी विविध विषमताओं के भयानक दृश्यों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पा रही है। यदि हम जैन श्रमणियों और आदर्श श्राविकाओं की सुष्ठु एवं ज्योतिर्मय परंपरा को एक बार पुनः समय के पटल पर स्मरण करें तो आनेवाले कल का चेहरा न केवल कुसुमादपि कोमल होगा अपितु उसमें हिमालयादपि दृढ़ता का भी समावेश हो जायेगा।

विश्वायतन की नारियाँ

संसार के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो प्रतीत होगा कि विश्व में शान्ति के लिए तथा विभिन्न स्तर की शान्त क्रांतियों में नारी की असाधारण भूमिका रही है। जब भी शासनसूत्र उसके हाथ में आया है, उन्होंने पुरुषों की अपेक्षा अधिक कुशलता, निष्पक्षता एवं ईमानदारी के साथ उसमें अधिक सफलता प्राप्त की है। इन्दौर की रानी अहिल्याबाई, कर्णाटक की रानी चेनम्मा, महाराष्ट्र की चांदबीबी सुल्तान, इंग्लैंड की साम्राज्ञी विक्टोरिया, इजराइल की गेलडामेयर, श्रीलंका की श्रीमती भंडारनायके, ब्रिटेन की एलिझाबेथ, भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी आदि महानारियाँ इसकी ज्वलंत उदाहरण है। पुरुष शासकों की अपेक्षा स्त्री शासिकाओं की सुझबूझ, करुणापूर्ण दृष्टि, सादगी, सहिष्णुता, मितव्ययिता, अविलासिता तथा शान्ति स्थापित करने की कार्यक्षमता इत्यादि विशेषताएँ अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं। माता जीजाबाई की प्रेरक कहानियों से ही बाल शिवाजी छत्रपति शिवाजी बने। साधु मार्ग से च्युत होनेवाले भवदेव को स्थिर करनेवाली नागिला ही थी। तुलसी से महाकवि तुलसीदास बनने के पीछे नारी का ही मर्मस्पर्शी वचन था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान में नारी किसी भी बात में पीछे नहीं है, पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चलने को तैयार है। सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा, विजयलक्ष्मी पंडित, मदर टेरेसा जैसी महान् नारियाँ जागृत नारी शक्ति का परिचायक है। देश भक्तिनी झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता तथा मेवाड़ की पद्मिनी इत्यादि सुकुमार नारियों का जौहर याद करे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पन्ना धाय के अपूर्व त्याग ने ही महाराणा उदयसिंह को मेवाड का सिंहासन दिलाया, जिससे इतिहास ने नया मोड़ लिया। इसी तरह अनेक नारी रत्नों ने अपने त्याग व बलिदान एवं सतीत्व के तेज से भारतवर्ष की संस्कृति को समुज्ज्वल बनाया। **महर्षि रमण का कहना है – "पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया, तथा जीव मात्र के लिये करुणा संजोनेवाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है। वह तप, त्याग, प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति है। उसकी तुलना एक ऐसी सलिला से की जा सकती है जो अनेक विषम मार्गों पर विजयश्री प्राप्त करते हुए सुदूर प्रान्तों में प्रवाहित होते हुए संख्यातीत आत्माओं का कल्याण करती है। उसमें पृथ्वी के समान सहनशीलता, आकाश के समान चिंतन की गहराई और सागर के समान कल्मष को आत्मसात् कर पावन करने की क्षमता विद्यमान है।"**

नारी की तुलना भूले-भटके प्राणियों का पथ प्रदर्शित करनेवाले प्रकाशस्तंभ से की जा सकती है। उसके जीवन में राहों की धूल भी है, वैराग्य का चन्दन भी है और राग का गुलाल भी है। वह कभी दुर्गा बनकर क्रान्ति की अग्नि प्रज्वलित करती है तो कभी लक्ष्मी बनकर करुणा की बरसात।

नारी : प्रथम गुरु !

नारी इस सृष्टि की प्रथम शिक्षिका है, वही सर्वप्रथम विश्वरूपी शिशु को न केवल अंगुली पकड़कर चलना सिखाती है अपितु गिरकर फिर उठकर चलने का पाठ भी पढ़ाती है। नारी समाज का केंद्र बिंदु है। बाल संस्कार और व्यक्तित्व निर्माण का बीज समाहित है – नारी के आचार-विचार और व्यक्तित्व में ! उन्हीं बीजों का प्रत्यारोपण होता है, उन बाल जीवों के कोमल हृदय पर जो नारी को मातृत्व का स्थान प्रदान करते हैं। समाज ने नारी को अनेक दृष्टियों से देखा है, कभी देवी, कभी माँ, कभी पत्नी, कभी बहन, कभी केवल एक भोग्यवस्तु के रूप में उसे स्वीकार किया है। समाज की संस्कारिता और उसके आदर्शों की उच्चता की झलक, उसकी नारी के प्रति हुई दृष्टि से ही मिलती है। इस तरह नारी के पतन और उत्थान का इतिहास समाज में धर्म और नीति की उन्नति और अवनति का प्रत्यारोपण कराता है।

नारी बिन नर है अधूरा

पुरुष बलवीर्य का प्रतीक होते हुए भी नारी के बिना अधूरा है। राधा बिना कृष्णा, सीता बिना राम और बिना गौरी के शंकर अर्द्धांग है। नारी वास्तव में एक महान् शक्ति है। भारतवर्ष ने तो नारी में परमात्मा के दर्शन किए हैं और जगद्जननी भगवती के रूपों में पूजा है। नारी समाज का भावपक्ष है, नर है – कर्मपक्ष। कर्म को उत्कृष्टता और प्रखरता भर देने का श्रेय भावना को है। नारी का भाव-वर्चस्व जिन परिस्थितियों एवं सामाजिक आध्यात्मिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में बढ़ेगा, उन्हीं में सुखशान्ति की अजस्र धारा बहेगी। माता, भगिनी, धर्मपत्नी और पुत्री के रूप में नारी सुखशान्ति की आधारशिला बन सकती है, बशर्ते कि उसके प्रति सम्मानपूर्ण एवं श्रद्धासिक्त व्यवहार रखा जाए, यदि नारी को दबाया-सताया न जाए तथा उसे विकास का पूर्व अवसर दिया जाए तो वह ज्ञान में, साधना में, तप-जप में, त्याग-वैराग्य में शील और दान में, प्रतिभा, बुद्धि और शक्ति में तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में पिछड़ी नहीं रह सकती। साथ ही वह दिव्य भावनावाले व्यक्तियों के निर्माण एवं संस्कार प्रदान में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा परिवार, समाज एवं राष्ट्र की चिरस्थायी शान्ति और प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। परंपरा से विश्वशान्ति के लिए वह महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। नारी मंगलमूर्ति है, वात्सल्यमयी है, दिव्यशक्ति है। उसे वात्सल्य, कोमलता, नम्रता, क्षमा, दया, सेवा आदि गुणों के समुचित विकास का अवसर देना ही उसका पूजन है, उसकी मंगलमयी भावना को साकार होने देना, विश्वशान्ति के महत्वपूर्ण कार्यों में उसे योग्य समझकर नियुक्त करना ही उसका सत्कार-सम्मान है। तभी वह विश्वशान्ति को साकार कर सकती है।

नारी : समग्र व्यक्तित्व का मित्र रूप

हमारे देश में प्राचीनकाल से ही नारी का स्थान गरिमामय रहा है। **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'** जहां पर नारियों की पूजा और सम्मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। **'इयं वेदिः भुवनस्य नाभिः'** नारी ही संसार का केंद्र है। इन सूत्रों में नारी के प्रति अपार आस्था, श्रद्धा और पूज्य भावना अभिव्यक्त की गई है। कवियों ने उनकी तुलना वर्ण एवं गंध के फूलों की महकती मनोहारिनी माला से की हैं, जननी के रूप में वह सर्वाधिक पूज्य एवं सम्माननीय है, बहिन के रूप में वह स्नेह, सौजन्य एवं प्रेरणा की प्रवाहिनी है, पत्नी/भार्या सहधर्मिणी के रूप में वह मानव के समग्र व्यक्तित्व का मित्र रूप में विकास करती है। वह एक ऐसे असीम सागर के समान है, जिसमें चिन्तन के असंख्य मोती विद्यमान हैं।

दिव्य दृष्टिशीला नारी

"पुरुष शस्त्र से काम लेता है तथा स्त्री कौशल से। स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान होती है"

विक्टर ह्यगो ने तो यहाँ तक कहा है –

"Man have sight, woman insight"

अर्थात् – मनुष्य को दृष्टि प्राप्त होती है तो नारी को दिव्यदृष्टि।

अंत में यही कहा जा सकता है कि अत्याचार, अनाचार, दुराचार, पाखंड आदि को दूर करने में नारी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, क्योंकि उसके व्यवहारिक जीवन में मातृत्व गुण के अतिरिक्त पवित्रता, उदारता, सौम्यता, विनय संपन्नता, अनुशासन, आदर सम्मान की भावना आदि गुणों का संयोग मणिकांचन की तरह होता है।

नारी ने धर्मध्वजा को फहराया है। नारी ने ही नियम, संयम व यश कमाया है। अतः यह बात निर्विवाद है कि "जैन धर्म में नारी का स्थान, नारी का योगदान आदिकाल से रहा है, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी बना रहेगा क्योंकि वह धर्म की धुरी है"। सारपूर्ण शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है कि जैन संस्कृति में नारी का स्थान और महत्व अजोड़ और अनुपम है। नारी ने जिनशासन की प्रभावना में जब से योगदान देना प्रारंभ किया उसका इतिवृत शब्दशः लिखना इस लघुकाय लेख में संभव नहीं है तथापि मेरा विनम्र प्रयास भी उस दिशा में कदम भर है।

✣ ✣ ✣

❑ साध्वी डॉ. श्री धर्मशीलाजी का जन्म अहमदनगर में सन् १९३९ में हुआ तथा आपने सन् १९५८ में जैन दीक्षा ग्रहण की। आपने एम.ए., साहित्यरत्न एवं पी.एच.डी. की उपाधियां प्राप्त की हैं एवं जैन दर्शन का अध्ययन किया है। आपके प्रवचन बोधप्रद होते हैं। आपने 'श्रावक-धर्म' पुस्तिका का संपादन किया है। जैन ज्ञान के प्रचार-प्रसार में आप एवं आपकी विदुषी शिष्याएं निरंतर कार्यशील हैं।

– सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन जैन हिंदी साहित्य में संत-स्तुति

❑ जैन साध्वी विजयश्री 'आर्या'
M.A. जैनसिद्धांताचार्य

संत संसार की श्रेष्ठविभूति है। संत पूजनीय एवं अनुकरणीय होते हैं। वे लोक का हित करने में संलग्न रहते हैं। लोक-मंगल की भावना उनके रोम-रोम में रमी हुई रहती है। संत स्वयं भी संसार सागर को तिरते हैं एवं अन्यों को भी तारते है। अतः संत-स्तुति अवर्णनीय है।.....परमविदुषी जैन साध्वी विजयश्री 'आर्या' एम.ए. अपने आलेख "प्राचीन जैन हिन्दी साहित्य में संत स्तुति" के माध्यम से संत-महिमा का दिग्दर्शन करवा रही हैं। -- सम्पादक

भारतीय संस्कृति के प्राण : सन्त

भारतीय संस्कृति की किसी भी शाखा-प्रशाखा में सन्त का स्थान सर्वोपरि है। संत को परमात्मा का उत्तराधिकारी कहा जाता है। इसी कारण यहाँ सम्राट् की अपेक्षा संत को अधिक गौरव और आदर का स्थान प्राप्त है। सम्राट् का सत्कार अवश्य होता है, पर पूजा संत की ही होती है। भारत की जनता ने सदा संत जीवन की पूजा के साथ ही संत जीवन का अनुसरण भी किया है।

संत अपने लिए ही नहीं, विश्व के लिए जीता है। अतः संत की आत्मा में समूचा विश्व समाया हुआ है। विश्व की धड़कन संत के हृदय की धड़कन है। विश्व के हर प्राणी का संवेदन संत-हृदय का संवेदन है। भगवान् पार्श्व की परम कारुणिक भावना का चित्रण करते हुए एक कवि ने कहा है;

"जात्यैवेते परहितविधौ साधवो बद्धकक्षा"

अर्थात् साधुजन स्वभाव से ही परहित करने में सदा तत्पर रहते हैं। इसी बात को महाकवि तुलसीदासजी ने इन शब्दों मे कहा है;

"सरवर-तरवर-संतजन, चौथो बरसे मेह,
परमारथ के कारणे, चारों धारी देह।।"

जिनदासगणि महत्तर ने तो संतजनों को पृथ्वी के चलते-फिरते कल्पवृक्ष कहा है।[१] कल्पवृक्ष लौकिक अभिलाषाओं की पूर्ति करता है, वह भी कुछ समय के लिए। किंतु संतरूपी कल्पवृक्ष लोकोत्तर वैभव की वृद्धि करता है, जो अविनश्वर है।

श्रीमद् भागवत में कर्मयोग के उपदेष्टा श्रीकृष्ण कहते हैं – सन्तजन सबसे प्रथम देवता है, वे ही समस्त विश्व के बंधु हैं। वे विश्व की आत्मा हैं, मुझमें और संत में कोई अंतर नहीं है।[२]

सिक्खों के गुरू अर्जुनदेव ने संत को धर्म की जीती जागती मूरत कहा है। साधु की स्तुति वेदों ने भी गायी है। साधु के गुणों का कोई पार नही।[३]

१. विविह कुलुप्पणा साहवो कप्परुक्खा। – नन्दी चूर्णि २/१६
२. देवता वांधवा संतः, संतः आत्माऽहमेव च। – श्रीमद् भागवत ११-२६-३४
३. साधु की महिमा वेद न जाने
जेता सुने तेता वखाने,
साधु की शोभा का नहीं अंत,
साधु की शोभा सदा बे-अंत।। – गुरू अर्जुनदेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कबीरदासजी ने संत को जाति-पांति से मुक्त, पंथ, काल, देश की सीमा से परे कहकर उनके ज्ञान से संत का महत्व प्रतिष्ठापित किया है।[१] संत की आत्मा हर क्षण संतुष्ट रहती है, उसे किसी चीज की चाह नहीं होती, अन्न भी वह उतना ही ग्रहण करता है, जितने से उदर निर्वाह हो।[२] संत गुणग्राही होता है, वह सद्भूत का ग्राहक है, अद्भूत का नहीं। संत का स्वभाव सूप की तरह होता है।[३]

संत रविदासजी ने तो संतों के मार्ग पर चलनेवाले मानव तक को प्रणाम किया है, क्योंकि संत के मन में विश्व के कल्याण की कामना कूट-कूट कर भरी होती है।[४]

आगम साहित्य में संत-स्तुति

जैन शास्त्रों में साधु के स्वरूप, उनके आचार गोचर, उनकी दिन चर्या, आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। भगवती सूत्र में जहाँ अरिहंत और सिद्ध परमात्मा को परमेष्ठि पद में स्थान दिया है, वहीं साधु को भी परमेष्ठि में स्थान देकर उन्हें परम पूज्य मानकर नमस्कार किया गया है –

"नमो लोए सव्व साहूणं"

अर्थात् लोक के सभी साधुओं को नमस्कार है।

आवश्यक सूत्र में भी अरिहंत और सिद्ध के समकक्ष साधु को रखकर उसकी गरिमा में अभिवृद्धि की है। अरिहंत और सिद्ध के समान ही साधु को भी मंगल और उत्तम रूप कहकर उनका शरण ग्रहण करने का निर्देश किया गया है।[५]

उत्तराध्ययन सूत्र में स्थान-स्थान पर साधु के तप, त्याग, परिषह जय, दुष्कर ब्रह्मचर्य, और समत्व भाव की प्रशंसा मुक्त मन से गायी गई है। **साधु समता भाव का आराधक होता है।[६] वह सदा प्रसन्नचित्त रहता है।[७] वह दुष्ट व्यक्तियों द्वारा दिए गए प्रतिकूल उपसर्गों पर भी क्रोध नहीं करता। चंदन को जैसे कुल्हाडी से छेदन-भेदन करने पर भी शीतलता और सुगंध प्रदान करता है, उसी प्रकार साधु भी हर अवस्था में अपने गुणों की सुगंध ही बिखेरता है।[८] लाभ हो या हानि, सुख के साधन प्राप्त हो या दुःख के निमित्त, शुभ कर्मों का उदय हो या अशुभ कर्मों का उदय, कोई निंदा, अनादर या ताडन-तर्जन करे अथवा**

---

१. जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।
— कबीर ग्रंथावली

२. संत न बांधे गड्डि, पेट समाता लेइ,
सांई सु सन्मुख रहै, जह मांगो तह देइ।।
— वही,२०

३. साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देय उड़ाय।।
— वही, २६

४. जो जन संत सुमारगी, तिन पाँव लागो रविदास,
संतन के मन होत है, सब के हित की बात,
घट-घट देखे अलख को, पूछे जात न पाँत।।
— गुरु रविदासजी की वाणी ।। १२,१७

५. साहू मंगलं, साहू लोगुत्तमा, साहू सरणं पवज्जामि
— आवश्यक सूत्र

६. समयाए समणो होइ – उत्तराध्ययन सूत्र

७. महप्पसाया इसिणो हवंति – वही।। १२।। ३१

८. अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ,
वासी चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा।।
— वही, १६/६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशंसा और स्तुति करे, वह सदैव समभाव में स्थित रहता है।[१] साधु का दर्शन करने से परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध होते हैं। मोह कर्म का क्षय होता है, साधक श्रमण धर्म में उपस्थित होकर परंपरा से निर्वाण को प्राप्त करता है।[२]

तत्कालीन राजगृह के परम यशस्वी सम्राट् श्रेणिक महाराज भी तपस्तेज से आलोकित साधु के अपूर्व मुखमंडल को देखकर आश्चर्य चकित हो गए थे। उनके मुँह से सहसा आश्चर्यमिश्रित शब्द निकले[3] और मुनि के वैराग्यपूर्ण वचनों को सुनकर वे मार्गानुसारी बने थे। इसी प्रकार मिथिला नगरी के राजा नमि प्रव्रज्या पद पर आरूढ़ होने पर परीक्षा के लिए आये हुए इन्द्र निरस्तशंक होकर नमि राजर्षि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं – "आश्चर्य है आपने क्रोध, मान, माया, लोभ को वश में कर लिया है। आपकी सरलता, मृदुता क्षमा एवं निर्लोभता को मैं नमन करता हूँ।"[४]

नंदीसूत्र में आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने सुधर्मा स्वामी से प्रारंभ कर दूष्यगणि तक तथा अन्य भी पूज्य मुनि भगवंतों की छब्बीस गाथाओं में श्रद्धापूर्वक स्तुति करते हुए उन्हें नमन किया है।[५] इतना ही नही संतपद को इतना महत्व प्रदान किया गया है, कि ज्ञान का वर्णन करते हुए पाँच ज्ञान में मनःपर्यवज्ञान का अधिकारी मात्र श्रमण को ही बताया गया है। मति, श्रुत अवधि और केवलज्ञान गृहस्थपर्याय में रहकर भी प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु मनःपर्यवज्ञान के लिए द्रव्य और भाव से श्रमण होना अनिवार्य है।[६]

आगम साहित्य के अतिरिक्त निर्युक्ति, चूर्णि और भाष्य साहित्य में साधुओं की स्तुति और उनको किया गया नमस्कार हजारों भवों से छुटकारा दिलाने वाला कहा है। इतना ही नहीं नमस्कार करते हुए आत्मा बोधि लाभ को भी प्राप्त हो सकती है।[७] और यदि साधु की भक्ति करते हुए उत्कृष्ट भावना आ जाए तो तीर्थंकर गोत्र का भी पुण्य उपार्जन कर सकता है।[८]

योगिराज आनंदघनजी के पदों में संत-स्तुति

हिंदी साहित्य के संत कवियों में १७वीं सदी के महान् योगिराज आनंदघनजी का नाम सुविख्यात है। उनके अनेकों पद आज भी साधकों द्वारा गाए जाते हैं। वे उच्च कोटि के विद्वान् ही नहीं अपितु सम्यक् आचारवंत एक महान् संत थे। वे साधुत्व का आदर्श समताभाव में मानते थे। इसी भाव को उन्होंने अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया है –

"मान अपमान चित्त सम गिणे,
सम गिणे कनक पाषाण रे,
वंदक निंदक सम गिणे,

---

१. लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा,
समो निंदा पसंसासु, तहा माणावमाणओ।।
— वही १६/६१

२. साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे,
मोहं गयस्स संतस्स, जाइसरणं समुप्पन्नं।।
— उत्तराध्ययन सूत्र १६/७

३. अहो वण्णो! अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया,
अहो खंति! अहो मुत्ति! अहो भोगे असंगया।।

४. अहो ते निज्झिओ कोहो...... — वही ६/५६,५७

५. नन्दीसूत्र गाथा २५-५०

६. गोयमा! इड्ढिपत्त अपमत्तसंजय सम्मदिट्ठी
पज्जत्तग संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भ-
वक्कंतिय मणुस्साणं, मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ।"
— नंदीसूत्र, सूत्र १७

७. साहूणं नमोक्कारो, जीवं मोयइ भवसहस्साओ,
भावेण कीरमाणो, होइ पुणो बोहिलाभाए।।
— आवश्यक निर्युक्ति

८. ......संघ साधु समाधि वैयावृत्य करण......
तीर्थकृत्वस्य।
— तत्त्वार्थसूत्र, ६/२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इश्यो होय तूं जाण रे,
सर्व जग जंतु सम गिणे,
गिणे तृण मणि भाव रे,
मुक्ति संसार बेहु सम गिणे,
मुणे भव-जलनिधि नांव रे"[1]

समभाव ही चारित्र है, ऐसे समत्वभाव रूप निर्मल चारित्र का पालन करनेवाले मुनि संसार उदधि में नौका के समान है। श्रमण से अभिप्राय आत्मज्ञानी श्रमण से है; शेष उनकी दृष्टि में द्रव्यलिंगी है –

आतमज्ञानी श्रमण कहावे,
बीजा तो द्रव्यलिंगी रे ।।[2]

कविवर बनारसीदासजी की दृष्टि में संत-स्तुति

अध्यात्मयोगी कविवर बनारसीदासजी महाकवि तुलसीदासजी के समकालीन कवि थे। उनका समय वि.सं. १६४३-१६६३ तक का है। उनकी रचना **"अर्द्धकथानक"** हिंदी का सर्वप्रथम आत्मचरित ग्रंथ है। वैसे ही कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना **"समयसार नाटक"** अध्यात्म जिज्ञासुओं के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। संत स्वभाव का और संत के लक्षण वर्णन करनेवाला उनका सवैया इकतीसा दृष्टव्य है –

कीच सौ कनक जाके, नीच सौ नरेश पद,
मीच सी मिताई गरूवाई जाके गारसी।
जहर सी जोग जाति, कहर सी करामाती,
हहर सी हौस, पुद्गल छवि छारसी।
जाल सौ जग विलास, भाल सौ भुवनवास,
काल सौ कुटुम्ब काज, लोकलाज लारसी।
सीठ सौ सुजसु जानै, बीठ सौ बखत मानै,
ऐसी जाकी रीत ताहि वंदत बनारसी ।।[3]

भावार्थ यह है कि संत सांसारिक अभ्युदय को एक आपत्ति ही समझते है। महाव्रत, समिति-गुप्ति का पालन करते हुए जो इंद्रिय विषयों से विरक्त होते है, वे ही सच्चे संत है।[4] कवि ने साधु के अट्ठाइस मूल गुणों का भी विस्तृत विवेचन किया है।

कवि भूधरदासजी की गुरु-स्तुति

भूधरदासजी ने दो गुरु-स्तुतियों की रचना की थी। वे दोनों ही " **जिनवाणी संग्रह**" में प्रकाशित है। जैनों में देव, शास्त्र और गुरु की पूजा प्राचीनकाल से चली आ रही है। गुरु के बिना न तो भक्ति की प्रेरणा मिलती है और न ज्ञान ही प्राप्त होता है। गुरु के अनुग्रह के बिना कर्म शृंखलाएँ कट नहीं सकती। गुरु राजवैद्य की तरह भ्रम रूपी रोग को तुरन्त ठीक कर देता है।

"जिनके अनुग्रह बिना कभी,
नहीं कटे कर्म जंजीर।
वे साधु मेरे उर बसहु,
मम हरहु पातक पीर।।"

गुरु केवल **"परोपदेशे पाण्डित्यं"** वाला नहीं होता, अपितु वह स्वयं भी इस संसार से तिरता है और दूसरों को भी तारता है। भूधरदासजी ऐसे गुरु को अपने मन में स्थापित कर स्वयं को गौरवान्वित मानते हैं। ऐसे गुरुओं

१. आनंदघन ग्रंथावली, शांतिनाथ जिन स्तवन
२. वही, वासुपूज्य जिन स्तवन
३. समयसार नाटक, बंध द्वार १६ वाँ पद
४. पंच महाव्रत पाले..... मूलगुण धारी जती जैन को।।
समयसार, चतुर्दश गुणस्थानाधिकार।।८०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के चरण जहाँ भी पड़ते है, वह स्थान तीर्थ क्षेत्र बन जाता है।

इस विधि दुधर तप तपै,
तीनों काल मंझार,
लागे सहज सरूप में,
तन सो ममत निवार
वे गुरू मेरे मन बसो.......

कवि सुंदरदासजी की कृति में शूरवीर संत-स्तुति

१७वीं सदी के ही श्री सुंदरदासजी ने '**शूरातन अंग**' में शूरवीर साधु का वर्णन किया है। उनके अनुसार-

"जिसने काम-क्रोध को मार डाला है, लोभ और मोह को पीस डाला है, इंद्रियों के विषयों को कत्ल करके शूरवीरता दिखाई है। जिसने मदोन्मत्त मन और अहंकार रूप सेनापति का नाश कर दिया है। मद और मत्सर को निर्मूल कर दिया है। जिसने आशा तृष्णा रूपी पाप सांपिनी को मार दिया है। सब वैरियों का संहार करके अपने स्वभाव रूपी महल में ऐसे स्थिर हो गया है, जैसे कोई रण बांकुरा निश्चिंत होकर सो रहा है और आत्मानंद का जो उपभोग करता है, वह कोई विरल शूरवीर साधु ही हो सकता है" –

"मारे काम क्रोध सब, लोभ मोह पीसि डारे,
इंद्रिहु कतल करी, कियो रजपूतो है।।
मार्यो महामत्त मन, मारे अहंकार मीर,
मारे मद मच्छर हुं, ऐसो रण रूतो है।
मारी आशा तृष्णा पुनि, पापिनी सापिनी दोउ,
सबको संहार करी, निज पद पहुँतो है।
'सुंदर' कहत ऐसो, साधु कोउ शूरवीर,
वैरी सब मारि के, निचिंत होइ सूतो है।।"

- श्री सुंदरदास, सूरातन अंग २१-११

उपाध्याय समयसुंदरजी कृत संत-स्तुति पद

१७वीं शती के साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र महामना समयसुंदर उपाध्याय ने सैकडों कवितायें, गीत आदि रचे हैं। उनके गीतों की विशालता के लिए एक उक्ति प्रसिद्ध है –

"समयसुंदर ना गीतड़ा,
भींता पर ना चीतरा
या कुंभे राणा ना भीतड़ा"

अर्थात् दीवार पर किये गये चित्रों का, राणा कुंभा के बनाए गए मकान और मंदिरों का जैसे पार पाना कठिन है, उसी प्रकार समयसुंदरजी के गीतों की गणना करना भी कठिन है।

संत स्तुति के रूप में भी उनके कई संग्रह है -

(i) **साधु गीत छत्तीसी** - में ४२ गीत है।

(ii) **साधु गीतानि** - में ४६ गीतों का संग्रह है।

(iii) **वैराग्यगीत** - यह प्रति अधूरी है, इसमें वैराग्य गीतों का संकलन है।

(iv) **दादागुरुगीतम्** - इसमें जिनदत्तसूरि और जिनकुशल सूरिजी के ६० गीत हैं।

(v) **जिनसिंहसूरि गीत** - इसमें अनेक गीत थे, किंतु २२ गीत ही प्राप्त हुए है।

'साधुगुणगीत' में रचित एक गीत सच्चे साधु के स्वरूप की झलक देता है –

तिण साधु के जाऊं बलिहारे,
अमम अकिंचन कुखी संबल, पंच महाव्रत जे धारे रे ।।१।।
शुद्ध प्ररूपक नइ संवेगी, पालि सदा पंचाचारे,
चारित्र ऊपर खप करि बहु, द्रव्य क्षेत्र काल अनुसारे ।।२।।

१ समयसुंदरकृति कुसुमांजलि। (संग्राहक) – अगरचंद नाहटा, प्र.सं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गच्छवास छोडइ नहीं गुणवंत, बकुश कुशील पंचम आरइ;
'समयसुंदर' कहइ सौ गुरू साचउ, आप तरि अवरां तारइ।।३।।[1]

साधु के गुणों से संदर्भित उनका एक पद जो आसावरी राग पर गाया जाता है, इसमें छः काय जीव के रक्षक और २२ परिषह को जीतनेवाले परम संवेगी साधु को भक्तिपूर्वक वंदना की है।

धन्य साधु संजम धरइ सूधउ, कठिन दूषम इण काल रे।
जाव-जीव छज्ञीवनिकायना, पीहर परम दयाल रे। ध.।१।
साधु सहै बावीस परिसह, आहार ल्यइ दोष टालि रे।
ध्यान एक निरंजन ध्याइ, वइरागे मन वालि रे। ध.।२।
सुद्ध प्ररूपक नइ संवेगी, जिन आज्ञा प्रतिपाल रे।
समयसुंदर कहइ म्हारी वंदना, तेहनइ त्रिकाल रे।ध.।३।[1]

आचार्य श्री जयमलजी म. रचित साधु-वंदना

वि. सं. १८०७ में आचार्य जयमलजी महाराज ने 'साधु-वंदना' की रचना की। उसमें १११ पद्य हैं। इस रचना का इतना महत्व है कि वह जैन श्रावक-श्राविकाओं एवं साधकों की दैनिक उपासना का अंग बन गया है। यह काव्यकृति जहाँ सरल, भावपूर्ण और बोधगम्य है, वहीं संक्षेपशैली में भक्ति का अगाध महासागर भी है।

उक्त रचना में अतीतकाल में हुई अनंत चौबीसी (चौबीस तीर्थंकर) की स्तुति वर्तमानकालीन चौबीसी, महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकर एवं अन्य सभी अरिहंत भगवंतों की स्तुति करने के पश्चात् संत मुनिवृंद के गुणानुवाद हैं। इसमें आगम साहित्य से संबंधित सभी मोक्षगामी आत्माओं की नामोल्लेखपूर्वक स्तुति हैं।

उत्तराध्ययन, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, अंतकृतदशांग, अनुत्तरौपपातिक, सुखविपाकसूत्र में वर्णित अनेक महान् ज्योतिर्धर संतों के तप-त्याग-तितिक्षा, संयम-साधना एवं अंत में समस्त कर्म क्षय करके परमात्मपद प्राप्ति तक का वर्णन है। इसकी संक्षेपशैली का एक उदाहरण देखिए –

धर्मघोष तणां शिष्य, धर्मरुचि अणगार,
कीड़ियो नी करुणा, आणी दया अपार।
कड़वा तुंबानो कीधो सगळो आहार,
सर्वार्थ सिद्ध पहुँत्या, चवि लेसे भव पार।।[2]

उक्त दो दोहों में जैन आगम-साहित्य-वर्णित धर्मरुचि अणगार के लम्बे घटना प्रसंग को 'गागर में सागर' की भांति समाविष्ट कर दिया है। साथ ही कीड़ी जैसे तुच्छ प्राणी के प्रति करुणा वृत्ति की अभिव्यञ्जना कर करुण रस का उत्कृष्ट उदाहरण भी प्रस्तुत कर दिया है।

आचार्य श्री जयमलजी म. ने अनेकों स्तुति, सज्झाय, औपदेशिक पद और चरित को अपने काव्य का विषय बनाकर यत्र-तत्र साधु के गुणों का वर्णन किया है। आपकी भाषा राजस्थानी मिश्रित हिंदी है, आपकी कुछ रचनाएँ **'जय वाणी'** में संग्रहित है।

आचार्य श्री आसकरणजी म. कृत साधु-वंदना

आचार्य श्री आसकरण जी, म. की साधु वंदना को भी वही स्थान प्राप्त है, जो आचार्य श्री जयमलजी म. की साधु वंदना को है। आप ने जैन हिंदी साहित्य की अपार श्री वृद्धि की है, अनेकों खंडकाव्य और मुक्तक रचनाएँ आप द्वारा रची हुई मिलती हैं।

वि. सं. १८३८ में आपने 'साधु-वंदना' लिखी, जो जैन भक्ति साहित्य में काफी लोकप्रिय है।

संत निःस्वार्थ साधक होता है, वह भव सागर से स्वयं भी तैरता है और अन्य भव्य प्राणियों को भी जहाज के

१ समयसुंदरकृति कुसुमांजलि। संग्राहक – अगरचंद नाहटा, प्र.सं.
२ बड़ी साधु वंदना – पद्य ५१-५२

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

समान आश्रय प्रदान कर पार कर देता है, वह भी बिना कुछ लिये – इस भाव को कवि ने अपनी सरल सुबोध भाषा में अभिव्यंजित किया है, देखिये –

जहाज समान ते संत मुनिश्वर,
भव्य जीव बेसे आय रे प्राणी।
पर उपकारी मुनि दाम न मांगे
देवे मुक्ति पहुंचाय रे प्राणी।।
साधुजी ने वंदना नित-नित कीजे....।।[1]

साधु मात्र उपदेशक ही नहीं होता वरन् ज्ञानी संयमी, तपस्वी एवं सेवाभावी भी होता है। किसी संत में किसी गुण की प्रधानता है, तो किसी में किसी अन्य गुण की।

एक-एक मुनिवर रसना त्यागी
एक-एक ज्ञान-भंडार रे प्राणी
एक-एक मुनिवर वैयावच्चिया-वैरागी
जेहनां गुणां नो नावे पार रे प्राणी
साधुजी ने वंदना नित-नित कीजे....।।[2]

इस प्रकार संत जीवन पर श्रद्धा और पूज्यभाव प्रगट कराने वाले ये १० पद आचार्य जी ने 'बूसी' गाँव (राजस्थान) के चातुर्मास में बनाये हैं और स्वयं को **"उत्तम साधु का दास"** कहकर गौरवान्वित किया हैं।[3]

कवि श्री हरजसरायजी की साधु गुणमाला

संवत् १८६४ में पंजाब के महाकवि श्री हरजसराय जी ने साधु गुणमाला १२५ पद्यों में रची। इस रचना में मुनि के गुणों का उत्कृष्ट काव्य शैली में वर्णन किया गया है।

साधु के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह प्रधान जीवन शैली तथा पंचेन्द्रिय संयम, क्रोध, अहंकार कपट और लोभ रूपी महाभयंकर विषधर से मुक्त मुनि-धर्म को जिस अलंकारिक ढ़ंग से वर्णन किया है, उसे पढ़कर कवि के अगाध ज्ञान, संतों के प्रति अपूर्व निष्ठा एवं आदरभाव का भी सहज ही परिचय प्राप्त हो जाता है। काना, मात्रा से रहित एक पद्य दर्शनीय है -

कनक रजत धन रतन जड़त गण
सकल लषण रज समझत जनवर
हय गय रथ भट बल गण सहचर
सकल तजत गढ़ वरणन मयधर।
वन-वन बसन रमण सत गत मग
भव भय हरन चरण अघ रज हर
उरग अमर नर करन हरष जस
जय-जय भण भव जनवर यशकर।।१२१।।

आपकी कृतियों के परिशीलन से यह पता चलता है कि आप एक अद्वितीय साहित्य स्रष्टा तथा विलक्षण प्रतिभा संपन्न पुरुष थे। साधु गुणमाला का एक दोहा देखिये जिसमें प्रत्येक शब्द का आदि अक्षर क्रमशः १२ स्वरों से प्रारंभ होता है।

अ	आ	इ	ई	उ	ऊँ	ए
लख	दि	स	श की	त्तम	चो	क
ऐ	ओ	औ		अं	अः	
सो	ढ़क	र नहीं		त न	जग टेक।।	

अलख आदि इस ईश की, उत्तम ऊँचो एक।
ऐसे ओढ़क और नहीं, अंत न अः जग टेक।।

एक दोहे में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है -

मुनि मुनिपति वरणन करण
शिव शिवमग शिव करण

१. छोटी साधु वंदना, पद ६ २. छोटी साधु वंदना, पद ४ ३. छोटी साधु वंदना, पद १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस जस ससियर दिपत जग
जय-जय जिन जन शरण।।

इस दोहे में **यमक अलंकार** भी है साथ ही सारे वर्ण लघु हैं।

आपकी कल्पनाशक्ति बड़ी तीव्र थी, साथ ही अभिव्यंजना शैली भी बहुत ही स्पष्ट प्रभावोत्पादक है।

मन को जीतना यद्यपि कठिन है परन्तु युक्ति के आगे कठिन नहीं, इसी विषय को दृष्टान्त द्वारा समझते हुए कवि कहते हैं -

ताम्र करे कलधौत रसायन,
लोह को पारस हेम बनावे।
औषध योग कली[1] रजतोत्तम,
मूढ़ सुधी संग दक्ष कहावे।
वैद्य करे विष को वर औषध,
साधु असाधु को साधु करावे।
त्यों मन दुष्ट को सुष्ट करे,
ऋषि ता गुरु के गुण सेवक गावे ।।५०।।

साधु गुणमाला के अतिरिक्त आपकी 'देवाधिदेवरचना' और 'देवरचना' ये दो काव्य कृतियाँ और उपलब्ध होती हैं।

पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज द्वारा रचित साधु पद सवैया

आप अपने समय के उत्कृष्ट कोटि के संत थे। वि.सं. १६०४ में जन्म लेकर १६४० कुल ३६ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। कहा जाता है, कि १० वर्ष की रचना अवधि में आपने लगभग ६५ हजार काव्य पद लिखे। सभी रचनाएँ गेय हैं तथा विविध रस और अलंकार युक्त है।

पंच परमेष्ठी वंदना जैन समाज में उतनी लोकप्रिय हुई कि देवसी और रायसी आवश्यक में उसे प्रतिदिन पढ़ा जाता है। उदाहरण स्वरूप साधु-वंदना का यह सवैया देखिये –

आदरी संयम भार, करणी करे अपार,
समिति गुपति धार, विकथा निवारी है।
जयणा करे छ काय, सावद्य न बोले बाय,
बुझाय कषाय लाय, किरिया भंडारी है।।
ज्ञान भणें आठो याम, लेवे भगवंत रो नाम,
धरम को करे काम, ममता निवारी है।।
कहत तिलोक रिख, करमो को टाले विष
ऐसे मुनिराज जी को, वंदना हमारी है।।

साधु का त्याग सर्प की कैंचुली के समान है, जिसका त्याग कर दिया, उसे पुनः दृष्टि दौड़ाकर देखते भी नहीं, मात्र प्रभु के ध्यान में लीन रहते हैं,

"कंचुक अहि त्यागे, दूरे भागे,
तिम वैरागे, पाप हरे।
झूठा परछंदा, मोहिनी फंदा,
प्रभु का बंदा, जोग धरे।।
सब माल खजीना, त्यागज कीना,
महाव्रत लीना, अणगारं।।
पाले शुद्ध करणी, भवजल तरणी,
आपद हरणी, दृष्टि रखे।
बोले सतवाणी, गुप्ति ठाणी
जग का प्राणी-सम लखें।
शिवमारग ध्यावे, पाप हटावै,
धर्म बढ़ावे, सत्य सारं।।[2]

---

१. रांगा
२. पंच परमेष्ठी छंद - १०वां ११ वां पद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री तिलोकऋषि जी म. ने अनेकों लावणी, सज्झाय, चरित, रास और मुक्तक रचनाएँ की हैं। 'साधु छंद' में भी साधु के गुणों का दिग्दर्शन कराया है।

उपसंहार

उक्त काव्य रचनाओं के अलावा श्री मनोहरदास जी म. की संप्रदाय के श्री रत्नचंद जी म. ने भी वि. सं. १८५० से वि.सं. १९२१ के मध्य अनेक ग्रंथों की रचना की, जिसमें 'सती स्तवन' पद्य अत्यंत सरस भाषा में लिखा है।

अध्यात्म जगत के साधक श्रीमद् राजचंद्रजी ने सद्गुरु पर अनेक दोहे/पद रचे हैं। संत का अन्तर और बाह्य चारित्र संसार-दुःख का नाश करनेवाला है।[1] मुनि मोह, ममता और मिथ्यात्व से रहित होता है, श्रीमद् जी ने ऐसे क्षमावान् मुनि को बार-बार नमन किया है –

माया मान मनोज मोह ममता
मिथ्यात्व मोडी मुनि।
धोरी धर्म धरेल ध्यान धर थी
धारेल धैर्ये धुनि।
छे संतोष सुशील सौम्य समता
ने शीयले चंडना
नीति राय दया क्षमाधर मुनि।
कोटि करूं वंदना।

ऐसे एक नहीं अनेक पद्य श्रीमद् जी के गुरु भक्ति से भरे पड़े हैं। ये सारे पद्य गुजराती भाषा में रचित है।

श्रीमद् पर ही श्रद्धा रखने वाले श्री सहजानंद जी म. ने साधु-स्तुति, गुरु भक्ति पर अनेक पद लिखे हैं जो **'सहजानंद पदावली'** में है।

इसी प्रकार जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म, श्री खूबचन्द जी म. आदि अर्वाचीन महान् जैनाचार्यों और संतों ने जैन भारतीय भंडार को स्तुति, स्तोत्र आदि साहित्य से इतना भरा है, कि उसे प्रस्तुत करने के लिये एक अलग शोध-ग्रन्थ की जरूरत है।

✤ ✤ ✤

❑ महासती विजयश्री 'आर्या' जैन समाज की विदुषी साध्वी रत्न हैं। आपने एम.ए.एवं सिद्धांताचार्य की श्रेष्ठ उपाधियां प्राप्त की तथा अपने शिक्षा काल में स्वर्णपदक प्राप्त किये। आप प्रतिभावान तथा मेधावी हैं। आप एक श्रेष्ठ कवयित्री एवं कुशल लेखिका हैं। बृहद्काय "महासती केसरदेवी गौरव ग्रन्थ" का संपादन आपकी साहित्य-निष्ठा एवं पुरुषार्थ का प्रतीक है। अब तक आपकी आठ कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। जैन साहित्य जगत् को आप जैसी महासाध्वी से अनेक अपेक्षाएं हैं। – सम्पादक

१. बाह्य चरण सुसंतना टाले जननां पाप।
अंतर चारित्र गुरुराज नुं, भागे भव संताप ।।
– श्रीमद् राजचंद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मसाधना का मूलाधार : समत्वयोग

❑ विद्वद्वर्य श्री विनोदमुनि

धर्म की राह पर तो चल पड़े, किन्तु समत्वयोग की साधना कहाँ? धर्म-पंथ-सम्प्रदाय के दुराग्रह-हठाग्रह के कारण एक-दूसरे को हीन एवं नीचा दिखाने की प्रवृत्ति का परित्याग कहाँ किया? निंदा, कटुता वैमनस्य की वैतरणी का प्रवाह तो निरंतर जारी है। वस्तुतः समत्वयोग के अभाव में धर्म का पथ भी कंटीला है। आज के संदर्भ में समत्वयोग का विश्लेषण कर रहे हैं – विद्वद्वर्य श्री विनोदमुनिजी म.!

– संपादक

भौतिक विज्ञान : मृग मरीचिका

वर्तमान भौतिक विज्ञान के युग में मनुष्य बैलगाड़ी के युग को लांघकर राकेट-युग में प्रविष्ट हो गया है। इसी भौतिक विज्ञान के माध्यम से मनुष्य, जल, स्थल और नभ की तीव्रगति से यात्रा करने में सफल हो गया है। इतना ही नहीं उसने चन्द्रलोक की सफल यात्रा करने के साथ-साथ मंगल आदि नये-नये ग्रहों की शोध करके विश्व को आश्चर्य में डाल दिया है। इन भौतिक उपलब्धियों को मनुष्य ने वरदान समझकर स्वीकार किया। भौतिक विज्ञान के विकास से प्राप्त सुख साधनों को पाकर मनुष्य ने सोचा-समझा था कि इससे पृथ्वी पर बहने वाला दुःख का दरिया सदा के लिए सूख जाएगा, अशान्ति का धधकता हुआ दावानल प्रशान्त हो जाएगा लेकिन वह मृग-मरीचिका के समान ही धोखा देने वाला साबित हुआ। भौतिक विज्ञान पर अध्यात्म का अंकुश न होने के कारण वह वरदान रूप न होकर अभिशाप रूप ही बन गया। **सच है – अध्यात्म (आत्मधर्म) से अनुप्राणित तथा नियंत्रित न होने के कारण कोरे भौतिक विज्ञान ने विश्व में विध्वंस का वातावरण ही तैयार किया।**

आत्म-धर्म के अभाव में मानव क्या है ?

आत्म धर्म के अभाव में भौतिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त तथाकथित सुख-सुविधा के साधनों, अथवा केवल भौतिक पर-पदार्थों को अपनाकर सुख-शान्ति की कल्पना करना सपने में लड्डू खाने के समान है। आत्म धर्म के अभाव में कोई भी प्राणी वास्तविक सुखशान्ति का स्पर्श नहीं कर सकता। वह भौतिक पदार्थों को पाने की होड़ में, अहंकार, ममकार, ईर्ष्या, द्वेष, वैर-विरोध, आसक्ति आदि विषमताओं से घिरा रहता है। विविध विषमताओं के दुश्चक्र में फंसकर आत्मधर्म विहीन मानव नाना आधि-व्याधि-उपाधियों में पड़ा रहता है। उसका हृदय संकीर्ण, स्वार्थी और दम्भी बन जाता है। निपट स्वार्थी मनुष्य धन वैभव तथा भौतिक सुख-साधनों एवं सुविधाओं को पाने के लिए राक्षस बनकर दूसरों का शोषण व उत्पीड़न करने और परहित का घात करने से भी नहीं चूकता।[१] यहाँ तक कि वह जिस परिवार, समाज, धर्म सम्प्रदाय, जाति, प्रान्त और राष्ट्र में पला, बढ़ा है, वहाँ भी आत्म धर्म की मर्यादाओं को लांघकर संकीर्ण स्वार्थी बन जाता है। वह केवल स्वकेन्द्रित होकर मनुष्य के रूप में पशुओं जैसा आचरण करने लग जाता है।[२] वह मनुष्यता से गिरकर पशुता की कोटि में आ जाता है, इतना ही नहीं कभी-कभी तो मानवता के बदले दानवता का, इन्सानियत के बदले शैतानियत का रूप धारण कर लेता है। वह परिवार, समाज, राष्ट्र के अध्यात्म प्रधान आचार विचार को भी नजरअंदाज कर देता है। फलतः अपने ही निकृष्ट आचरण और व्यवहार से वह स्वयं को पतित बना ही लेता है। दुःख के सांचे में ढाल लेता है, दूसरों को भी पतित और दुःखी बनाने की परम्परा अपने पीछे छोड़ जाता है उन्हीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मविहीन रूढ़ परम्पराओं को भावी पीढ़ी धर्म समझने लगती है।

धर्म शब्द का आशय एवं लक्षण

एक बात समझ लेनी आवश्यक है कि जहाँ-जहाँ शास्त्रों में या धर्मग्रन्थों में धर्म शब्द का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ आत्मधर्म समझना चाहिए क्यों कि कार्तिकेयानुप्रेक्षानुसार -"वस्तु का अपना स्वभाव ही धर्म है।[३] इस दृष्टि से आत्मा का अपना स्वभाव ही धर्म है। चाणक्य के अनुसार-"वही सुख का मूल है।"[४] वही उत्कृष्ट मंगल है।[५] धर्म सब दुःखों का अतुल औषध है। आत्मा के लिए वही विपुल बल है।[६] यह धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है, इस जन्म में भी और पर जन्म में भी।[७] यही कल्पतरु और कामधेनु है। कणादऋषि के अनुसार-"जिससे अभ्युदय की और निःश्रेयस् यानी मोक्ष की प्राप्ति हो वही धर्म है।"[८] आचार्य समन्तभद्र के अनुसार- "जो उत्तम सुख को धारण-ग्रहण कराता है वह धर्म है। उन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग बताकर, मोक्ष को उत्तम सुख प्राप्ति का कारण बताया है।[९] आचार्य तुलसी ने धर्म का लक्षण किया है- (संवर और निर्जरा द्वारा) 'आत्मशुद्धि का साधन धर्म है।[१०] कतिपय आचार्यों और मनीषियों ने धर्म शब्द का निर्वचन करते हुए धारण करने के कारण इसे धर्म कहा है।[११] क्या और कैसे धारणा करता है यह? इसके उत्तर में उन्होंने कहा-"दुर्गति में, कुपथ में गिरते हुए आत्मा को जो धारण करके रखता है, वह धर्म है।"[१२]

शुद्ध आत्मधर्म : किसी की बपौती नहीं

इस दृष्टि से जब विश्व की समस्त आत्माओं के स्वभाव को धर्म कहा है, तब निश्चय ही वह आज के विभिन्न विशेषणों वाले धर्मों, पंथों, संप्रदायों, धर्मसंघों या मतों, दर्शनों से बिल्कुल अलग है, **यह शुद्ध आत्म धर्म किसी धर्मसंघ, पंथ, मत या सम्प्रदाय से बंधा हुआ नहीं है और न ही इस पर किसी भी तथाकथित धर्मसंघ या विशेषणयुक्त धर्म, पंथ आदि का एकाधिकार है, और न इस पर किसी की बपौती है। जो इस शुद्ध धर्म का आचरण करता है, उसी का यह धर्म है। इस दृष्टि से इस शुद्ध आत्मधर्म पर न किसी धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, मत या विशेषणयुक्त धर्म का आधिपत्य अतीत में रहा है, न ही वर्तमान में है और न ही अनागत में रहेगा।** यह शुद्ध धर्म किसी भी साम्प्रदायिक या पांथिक वेश-भूषा, वर्ण जातिपांति या बाह्य क्रियाकाण्ड में नहीं है।[१३] वेष, चिह्न आदि के नानाविध विकल्प तो सिर्फ जनसाधारण के परिचय-पहचान के लिए हैं।[१४] वस्तुतः धर्म उसी का है, जो उसका पालन-धारण-रक्षण करता है और धर्म का पालन रक्षण करने वाले का रक्षण भी वह करता है।[१५] रक्षण से मतलब यहाँ आत्मरक्षण से है। जो आत्माएँ धर्म का पालन-रक्षण करती हैं, अपने स्वभाव में रमण करती हैं, उनको वह धर्म विभाव से तथा परभावों के प्रति रागद्वेषादि से बचाता है। दशवैकालिक सूत्र में कहा है- (धर्मपालन द्वारा) सर्वेन्द्रियों को सुसमाहित होकर आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। जो धर्मपालन के द्वारा आत्मा की रक्षा नहीं करता है, वह जन्ममरण के मार्ग (संसार भ्रमण) को पाता है और आत्मा को सुरक्षित रखने वाला समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।[१६]

शुद्ध धर्म : ध्रुव और शाश्वत

विविध विशेषणों वाले धर्म से सम्बन्धित समाजों में प्रायः इस बात की बहुत चर्चा चलती रहती है कि कौन-सा और किसका धर्म प्राचीन है और कौन-सा किसका धर्म अर्वाचीन है? शुद्ध आत्मधर्म के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रश्न खड़े करना ना समझी है। यह शुद्ध धर्म न तो कभी पुराना होता है और न ही नया कहलाता है। वह तो ध्रुव, नित्य, शाश्वत है।[१७] अगर आत्मधर्म पुराना हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता है तो वह एक दिन नष्ट भी हो सकता है। और जो नष्ट होता है समय-समय पर परिवर्तित होता रहता है, वह शुद्ध आत्म धर्म नहीं होता।

तीर्थंकर : आत्मधर्म के संस्थापक नहीं

जैन सिद्धान्त और जैन धर्म के इतिहास से अनभिज्ञ कई लोग कहते हैं– प्रत्येक तीर्थंकर नये आत्मधर्म की स्थापना करते हैं परन्तु ऐसी बात नहीं है। वे तीर्थ की या संघ की स्थापना करते हैं। **'लोगस्स'** के पाठ में उनकी स्तुति करते हुए कहा गया है - **धम्म तित्थयरे जिणे,**[१८] धर्म से युक्त तीर्थ की-संघ की स्थापना करने वाले जिन – वीतराग! इसका मतलब यह नहीं है कि वे आत्मधर्म की-वीतराग भाव, समभाव, अहिंसा, क्षमा, सत्य आदि की नये सिरे से स्थापना करते हैं। समता, अहिंसा, सत्य, क्षमा आदि जो आत्मधर्म हैं वे आत्मा के स्वभाव हैं। इसी प्रकार निश्चय दृष्टि से सम्यक्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र; ये आत्मा के स्वरूप हैं, आत्मा के निजी गुण या स्वभाव हैं। क्या तीर्थंकर सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र को नये सिरे से घड़ कर तैयार करते हैं? नहीं। सम्यग्दर्शन ज्ञान युक्त चारित्र वही है जो भगवान् महावीर से पूर्व के तीर्थंकरों के युग में था। यहाँ चारित्र का अर्थ है-समभाव। मोह-क्षोभविहीन वीतराग भाव आदि। ऐसा नहीं है कि भगवान् ऋषभदेव का वीतरागभाव या समभाव अलग तरह का था और भगवान् महावीर का दूसरी तरह का था। समभाव या वीतरागभाव की साधना में कोई अन्तर नहीं है, न था और न भविष्य में होगा। स्पष्ट है, तीर्थंकर सम्यग्ज्ञान-दर्शन युक्त भाव चारित्र में कोई परिवर्तन नहीं करते। वे युग के अनुरूप बाह्य आचार में, विधि-निषेध के नियमोपनियमों में देशकालानुसार परिवर्तन करते हैं। अतः किसी भी तीर्थंकर के साधु हों उनके समभाव रूप या वीतराग भावरूप चारित्र में एकरूपता थी, है, रहेगी। किसी भी धर्मतीर्थ स्थापक तीर्थंकर ने रागभाव को या विषम भाव को आत्म-भावरूप चारित्र नहीं कहा है। क्यों कि रागादि भाव बन्ध का कारण है और यह आत्मभावरूप चारित्र संवर-निर्जरा रूप होने से मुक्ति (मोक्ष) का कारण है। इसलिए सराग भाव या विषम भाव जहाँ हो, वहाँ बाह्य आचार या कल्प मर्यादाएं हो सकती हैं, उसे व्यवहार चारित्र भी कहा जा सकता है। व्यवहार चारित्र, कल्प, या बाह्य आचार कभी एक-सा नहीं रहता, वह देश, काल के अनुसार बदलता रहता है, बदलता रहा है। तीर्थंकर अपने देशकालानुरूप चतुर्विध संघ के बाह्य आचार, कल्प या व्यवहार चारित्र में परिवर्तन करते हैं।

समता-वीतरागता ही आत्मधर्म

यही कारण है कि जहाँ आत्मधर्म किस में है? यह प्रश्न आया, वहाँ समभाव को आत्मा का स्वभाव = परिणतिरूप होने से धर्म=आत्मधर्म कहा है। आचारांग सूत्र में कहा है – आर्यो ! तीर्थंकरों ने समता में धर्म कहा है।[२१] जो त्रस और स्थावर सभी प्राणियों पर समभाव रखता है, उसी के जीवन में समता धर्म/आत्मधर्म है।[२२] भगवती सूत्र में कहा गया है - **आत्मा ही सामायिक है, आत्मा ही संवर है। आत्मा ही वीतराग भाव है, वही समता, संवर और वीतरागता का प्रयोजन है।**[२३] जो सर्वप्राणियों के प्रति आत्मभूत = आत्मोपम्यभाव से ओतप्रोत है, सभी प्राणियों को अपने समान देखता है, आस्रवों (कर्मबन्ध के कारणों) से दूर रहता है, वह पाप कर्म नहीं करता।[२४] जैन संस्कृति समत्व की संस्कृति है। जैन धर्म के तीर्थंकरों, आचार्यों या साधु-साध्वियों ने अपने सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को सम बने रहने की, समभाव रखने की प्रेरणा दी है। भगवान् महावीर ने आत्म-समत्व पर जोर देते हुए एक सूत्र दिया - **'एगे आया'**। अर्थात् आत्मस्वरूप की दृष्टि से, विश्व की समस्त आत्माएँ एक हैं। स्वरूप की दृष्टि से हमारी और सिद्धों की आत्मा में कोई अन्तर नही है। उन्होंने कहा – सब प्राणियों के प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरा समभाव=एक जैसा भाव है।[२६] तथागत बुद्ध ने भी कहा- "जैसा मैं हूँ वैसे ही जगत् के ये सब प्राणी हैं और जैसे ये हैं वैसा ही मैं हूँ।" सूत्रकृतांग में कहा है – जो समस्त जगत् को समन्वय की दृष्टि से देखता है वह किसी का रागभाववश प्रिय या द्वेषवश अप्रिय नहीं करता।

जब मानव के अन्तःकरण में आत्मा-एकत्व, या आत्मौपम्य की भावना सुदृढ़ रूप से जम जाती है या **"आत्मवत्सर्वभूतेषु"** की निष्ठा जागृत हो जाती है; अन्य प्राणियों में स्वात्मदर्शन की दृष्टि उद्‌बुद्ध हो जाती है, उस स्थिति में वह संसार में कहीं भी सामाजिक, राष्ट्रीय या आर्थिक किसी भी क्षेत्र में रहे उसके मन-वचन-काया से हिंसा, असत्य, चोरी, बेईमानी, भ्रष्टाचार, अब्रह्मचर्य आदि पापकर्म कैसे हो सकते हैं? ऐसे विराट् और विश्वव्यापी विचार जहाँ पर व्याप्त हों, वहाँ पाप के लिए अवकाश कहाँ है। इसके विपरीत सूत्रकृतांग सूत्र में स्पष्ट कहा है– **जो व्यक्ति अपने सम्प्रदाय तथा साम्प्रदायिक व्रत नियमों की प्रशंसा करते हैं और आत्मधर्म से अनुप्राणित दूसरे के व्रत-नियम की गर्हा-निन्दा करते हैं, वे उसी में रचे पचे रहते हैं। ऐसे लोग जन्म-मरणी रूप संसार में ग्रस्त रहते हैं।'**

समता से ही समस्याएं हल

जैन जगत् के एक मूर्धन्य आचार्य ने इसी समत्वधर्म के परिपालनार्थ एक अनुपम विचार सूत्र प्रस्तुत किया है- "जो अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए भी चाहो।"[२८] **यदि इस समत्व (आत्म) धर्म का पाठ जीवन के कण-कण में समा जाए तो विश्व की सभी समस्याओं का शीघ्र ही समाधान हो सकता है और सारे संसार को इस धर्म से सुखशांति प्राप्त हो सकती है। फिर वे समस्याएँ चाहे पारिवारिक हों, सामाजिक हों, राजनैतिक हों अथवा धार्मिक क्षेत्र की हों, उन सबका यथार्थ समाधान या हल हो सकता है और जगत् की खोई हुई शान्ति फिर से लौट सकती है। सर्वत्र अमन चैन स्थापित हो सकता है। आवश्यकता है, सिर्फ समत्व की कसौटी पर कसकर इस (आत्म) धर्म को पल-पल पर प्रतिक्षण, प्रत्येक प्रवृत्ति में आचरण में लाने की, इस जीवन में साकार करने की।**

समभाव के अभाव में साधना निष्प्राण

जिस प्रकार घृत में स्निग्धता, शर्करा में मधुरता और द्राक्षा में मृदुता इनका मौलिक गुण है, स्वभाव है, उसी प्रकार समता आत्मा का मौलिक गुण है। आत्म धर्म की साधना का मूलाधार है, प्राण है। वही साधक का साध्य है। इसके अभाव में जिस आचरण या साधना में हिंसादि विषमता हो, वह आचरण या वह साधना निष्प्राण है, निष्फल है। निष्प्राण साधना आदरणीय नहीं, हेय है, त्याज्य है। क्योंकि निरर्थक कष्ट देना या काया को पीड़ित करने पर भी उस साधना में अहिंसा, समता आत्मौपम्यभाव या करुणा भाव नहीं है तो वह साधना धर्म (संवर निर्जरा रूप) न होकर पाप बन जाती है, इसलिए वह अनुपयोगी है।

कषायादि हैं तो आत्मधर्म से दूर

कोई व्यक्ति कितनी ही कठोर क्रियाएँ करता है, लम्बे-लम्बे तप करके शरीर को सूखा डालता है, बाह्य आचार में फूंक-फूंक कर चलता है, स्वयं को उत्कृष्टाचारी और क्रियापात्री होने का दिखावा करता है परन्तु अन्तःकरण में क्रोध, अहंकार, दम्भ, माया, परपरिवाद, अभ्याख्यान, ईर्ष्या, द्वेष, मायामृषा, प्रतिष्ठा-प्रशंसा-सम्मान प्राप्ति की लालसा है, प्रसिद्धि के लिए आडम्बर परायण जीवन अपनाता है, अपने अनुयायियों की संख्या-बढ़ाने के लिए छल-प्रपंच करता है, शास्त्रज्ञान का, बौद्धिक प्रतिभा का एवं बाह्याचार-पालन का अभिमान या प्रदर्शन है तथा वह दूसरे साधकों को तुच्छ दृष्टि से देखता हैं, तो समझना चाहिए, उसके जीवन में कषायादि उपशान्त नहीं है, उसकी आत्मा समभाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से भावित नहीं है, उसके आन्तरिक जीवन में विषमता है और वह सम्यग्चारित्र रूप समभाव अर्थात् – आत्मधर्म से अभी कोसों दूर है।

अन्तर में समभाव रहना ही सामायिक-सम्यग्चारित्र है

आगमों का स्पष्ट कथन है – "सामायिक आत्मा का स्वभाव समभाव है।[२९] उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। 'समभाव ही चारित्र (भावचारित्र) है।"[३०] जीवन का संयम, सदाचार, तप आदि सब कुछ इसी में सन्निहित है। 'समता से भावित आत्मा ही मोक्ष को प्राप्त होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।[३१]

भगवान् महावीर ने भी कहा है-"लाभ और अलाभ में, सुख और दुःख में, जीवन और मरण में निन्दा और प्रशंसा में तथा सम्मान और अपमान में जो साधक सम रहता है, वही वस्तुतः श्रमण है, समन है, शमन है।[३२] प्रश्नव्याकरण सूत्र में भी कहा गया है – "जो सब प्राणियों के प्रति सम बना रहता है वही सच्चे अर्थों में श्रमण है।[३३] यही कारण है कि साधुवर्ग तथा तीर्थंकर / अरिहंत आदि भी दीक्षा लेते समय जीवन भर के लिए सामायिक-आचरण करने की प्रतिज्ञा (संकल्प) करते है।[३४(i)] यही सामायिक चारित्र है। सम्यक् चारित्र है। इसमें अहिंसादि सभी महाव्रत आ जाते हैं। जो सदा के लिए सामायिक की साधना में संलग्न रहता है, वह साधु है, श्रमण है। आगमों में श्रावकों (श्रमणोपासकों) के लिए भी बारह व्रतों में 'सामायिक' एक स्वतंत्र व्रत है। श्रावक वर्ग भी समता की आय = लाभरूप सामायिक की अमुक निश्चित समय तक के लिए साधना करता है, अभ्यास करता है, ताकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समभाव रख सके।[३४(ii)]

साधु धर्म का मापदण्ड केवल बाह्याचार नहीं

आगमों तथा धर्मग्रन्थों में यत्र-तत्र जहाँ-जहाँ साधकों की जीवनचर्या का, बाह्य आचार का उल्लेख है, वहाँ सर्वत्र प्रमुखता समभाव की है। उत्सर्ग और अपवाद की, कल्प्य-अकल्प्य की, अनाचीर्ण और आचीर्ण की, विधि-निषेधरूप में आगमों में जहाँ-जहाँ चर्चा की गई है वहाँ-वहाँ समभाव को प्रमुखता दी गई है। समभाव में सत्य, अहिंसा आदि सभी का समावेश हो जाता है। किन्तु **वर्तमान युग में जब हम वैचारिक वातायन से देखते हैं तो साधुधर्म का साधुओं के लिए आत्मधर्म की साधना का मापदण्ड कुछ और ही बना लिया गया है। सिर्फ बाह्य आचार, क्रियाकाण्ड या बाह्य विधि-निषेधों के गज से साधुता को नापा जा रहा है। बाहर में क्रियाकाण्डों का नाटक चल रहा है, द्रव्य चारित्र या बाह्य आचार का अभिनय किया जाता है भले ही अंदर में क्रोधादि कषायों की होली जल रही हो, पर-परिवाद, अभ्याख्यान आदि पापस्थानों का दावानल सुलग रहा हो। फिर भी कह दिया जाता है कि सच्चा साधु तो यही है।**

किसी मुनि ने मर्यादानुसार आवश्यक वस्त्रों का उपयोग किया और अन्य सम्प्रदाय के मुनि ने बिल्कुल निषेध ही कर डाला। वस्त्रों का सर्वथा त्याग करने वाला वह मुनि वस्त्र रखने वाले साधुवर्ग को मुनि मानने से ही इन्कार कर देता है। क्योंकि इसमें वह परिग्रह की कल्पना करता है। जहाँ परिग्रह है, वहाँ साधुता की भूमिका नहीं आ सकती। सूत का एक तार भी उनकी दृष्टि में संयमविघातक बन जाता है; परन्तु वस्त्र के अतिरिक्त अन्य पदार्थों को ग्रहण करने, अनेक प्रपंचों में संलग्न रहने तथा आभ्यन्तर परिग्रह में आकण्ठ डूबे रहने पर भी उनका साधुत्व-मुनित्व रह सकता है। इस प्रकार के एकान्त व गलत निर्णय के पीछे अपने साम्प्रदायिक व्यामोह तथा मिथ्या विचारों के दुराग्रह के सिवाय और क्या कारण है? एक साधारण सी बात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को कितना तूल दिया गया है? जरा तटस्थ बुद्धि से सोचने समझने का प्रयास करें तो यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है कि परिग्रह पदार्थों, व्यक्तियों और वस्तुओं में नहीं, उन पदार्थों, व्यक्तियों और वस्तुओं के प्रति ममता-मूर्च्छा में है। भगवान् महावीर ने तथा आचार्य उमास्वाति आदि ने मूर्च्छा को ही वस्तुतः परिग्रह कहा है। अध्यात्मवेत्ता वास्तव में मूर्च्छा या ममत्व भाव को ही परिग्रह बताते हैं। निश्चय दृष्टि से विश्व की प्रत्येक वस्तु परिग्रह भी है और अपरिग्रह भी। वस्तु ही क्यों, यदि शरीर, अन्य उपकरण तथा कर्म आदि पर भी यदि मूर्च्छा है तो वह भी परिग्रह है और मूर्च्छा नहीं है तो परिग्रह नहीं है। आशय यह है कि परिग्रह पदार्थ के होने, न होने पर अवलम्बित नहीं, वह अवलम्बित है – पदार्थ के प्रति ममता, मूर्च्छा एवं आसक्ति होने, न होने पर।[३५]

साधुता असाधुता का निर्णय?

बाह्य आचार पर से साधुत्व-असाधुत्व का झटपट निर्णय करने वाले लोग अपनी युगबाह्य जड़ स्थितिस्थापक नियमोपनियमों, परम्पराओं या बाह्य विधि-निषेधों पर से ही ऐसा अविचारपूर्वक निर्णय कर बैठते हैं। जैसे कोई दण्ड रखने में साधुत्व की मर्यादा मान रहे हैं, तो कोई मुखवस्त्रिका को लम्बी या चौड़ी रखने में। कुछ श्रमण वर्ग एक घर से एक बार आहार ग्रहण करना ही श्रमणाचार के अनुकूल बताते हैं तो कतिपय श्रमणवर्ग अवसर आने पर अनेक बार आहारादि लेना जरूरी समझें तो ले लेना भी, साध्वाचार के अनुकूल मानते हैं। कुछ महानुभाव वस्त्रादि का प्रक्षालन करने वाले मुनि को शिथिलाचारी और मलिन वस्त्र वालों को उत्कृष्टचारी या दृढ़ाचारी समझते हैं। कुछ साधक साबुन, पाउडर आदि से वस्त्र-प्रक्षालन को साधु मर्यादा-विरुद्ध समझते हैं और सिर्फ पानी से एवं सोडे आदि से धोने में उत्कृष्टता। जब कि उद्देश्य है; कपड़े की सफाई, फिर चाहे कोई यतनापूर्वक सोडे से धोए या साबुन पाउडर से, इसमें क्या फर्क पड़ता है? दर्शनार्थ आने वाले बन्धुओं से आहारादि लेने, न लेने में पेन-बालपेन आदि से लिखने, न लिखने में भी उभयपक्षीय परम्परा चलती है। पत्रादि का अपने हाथ से लिखना भी मर्यादा भंग समझा जाता है, जब कि ऐसे साधक किसी गृहस्थ से लिखवाने में दोष नहीं मानते। अगर लिखने में दोष है तो लिखवाने में मर्यादाभंग का दोष क्यों नहीं लगेगा? आगमों में जिस कार्य को करने में पाप, दोष अपराध या मर्यादाभंग बताया है तो उसी कार्य को दूसरों से कराने तथा उस कार्य का अनुमोदन-समर्थन करने में भी पाप, दोष आदि कहा है, पुण्य या धर्म नहीं। इसी प्रकार हाथ-पैर का प्रक्षालन, केशलुंचन, विद्युत द्वारा चलित ध्वनिवर्धक यंत्र आदि का उपयोग इत्यादि छोटी-छोटी बाह्याचार की अनेक बाते हैं।

शिथिलाचारी, उत्कृष्टाचारी का निर्णय कैसे?

भगवान् महावीर के पहले के तीर्थंकरों के युग में तथा भगवान् महावीर के समय में भी, एवं उनके निर्वाण के पश्चात् भी बाह्याचारों में द्रव्य क्षेत्र, काल, भावानुसार बहुत ही परिवर्तन हुए हैं। इस युग में भी हुए हैं और आगे भी होंगे। केवल बाह्याचार के आधार पर शिथिलाचार या उत्कृष्टाचार मान लेना या कहना कथमपि उचित नहीं है। यदि ऐसा माना जाएगा तो भगवान् अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ तक अचेल परम्परा को तथा नियतकालिक प्रतिक्रमण की एवं वर्षावास में चार महीने एक क्षेत्र में निवास की परम्परा को बदला तथा भगवान् पार्श्वनाथ के साधुवेश में पांचों ही रंग के वस्त्र पहनने की परम्परा प्रचलित हुई, ब्रह्मचर्य महाव्रत को पंचम महाव्रत में समाविष्ट करने की परम्परा प्रचलित हुई, एवं अनाचीर्णों की सूची में आई हुई शय्यातर, राजपिण्ड आदि कतिपय बाह्याचारों की मर्यादाएं भी बदलीं, तो क्या बाह्याचार, क्रियाकाण्ड, रूढ़ परम्परा, तथा विधि-निषेध के कुछ नियमोपनियमों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही चारित्र मानने वाले आग्रहशील साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के व्यक्तियों की दृष्टि में बीच के२२ तीर्थंकर तथा उनके अनुगामी साधु-साध्वी शिथिलाचारी थे, या वे तीर्थंकर क्या शिथिलाचार के उपदेशक या पोषक थे?

गणधर गौतम स्वामी से भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य केशीस्वामी मिले, तब भी गणधर गौतम ने उन्हें तथा उनके साधुओं को शिथिलाचारी नहीं कहा। इससे यह स्पष्ट है कि केवल उक्त बाह्याचार, क्रियाकाण्ड तथा कतिपय स्थूल नियमोपनियमों के आधार पर से ही चारित्र को शिथिल या उत्कृष्ट मानना या इसी आधार पर किसी साधु को उत्कृष्ट या हीन मानना साम्प्रदायिक उन्माद के सिवाय और कुछ नहीं है। ये बाह्य आचार या क्रियाकाण्ड अथवा परम्पराएँ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार बदलती रही हैं और-भविष्य में भी बदलेंगी।[३६]

समभावी साधक तथापि परपरिवाद

आत्मधर्म की साधना का मूल चारित्र (भावचारित्र) है। इसमें महत्व सिर्फ क्रियाकाण्डों या बाह्याचार का नहीं, स्वात्मभाव की परिणति का है। चारित्र समभाव या वीतराग भाव में है। जो मोहकर्म के क्षय या क्षयोपशम से होता है। अतः बाह्य विधि-विधानों से चारित्र को, आत्म संयम को नापना ठीक नहीं है। कुछ महाशय तो अपने माने हुए परम्परागत बाह्य आचार-विचार से भिन्न समभावपोषक प्रणाली को देखते हैं तो तुरंत ही आगबबूला हो उठते हैं वे अपने मुख से अथवा लेखनी से उन शान्त विरक्त समभावी साधकों के लिए भ्रष्टाचारी, भेषधारी पतित या धर्मभ्रष्ट, सम्यक्त्वभ्रष्ट आदि अनर्गल अपशब्दों और गालियों का प्रयोग करते रहते हैं। सूत्रकृतांग सूत्र में पर-परिभव एवं परनिंदक को संसार में परिभ्रमण का कारण बताया है।[३७]

परनिन्दा-माया : जन्म-मरण के कारण

काश! ये लोग शान्तचित से विचार करें, महावीर के उपासक होने का दावा करने वाले ये व्यक्ति अपनी भाषासमिति का विचार करते और अपने जीवन के आन्तरिक पृष्ठों को पढ़ते। कठोर क्रियाकाण्ड एवं बाह्य नियमोपनियमों के पालन का अहंकार एवं दम्भ करते हैं, दूसरों को नीचा दिखाने एवं तिरस्कृत करने के लिए बाह्यक्रियाओं का प्रायः प्रदर्शन करते हैं उनकी कषायें तथा वासनाएँ उपशान्त नहीं, प्रत्युत अधिक उद्दीप्त होती हैं। ऐसे प्रदर्शन में प्रायः दम्भ, दिखावा और माया का सेवन होता है। आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने ऐसे मायावी जीवन के लिए सचोट बात कही है-"जो मायावी है, सत्पुरुषों की निन्दा करता है वह अपने लिए किल्विषक भावना (पाप योनि की स्थिति) पैदा करता है।[३८] मायापूर्वक की गई क्रियाएँ आत्म कल्याण में सहयोगी नहीं बन पातीं। यदि आभ्यन्तर जीवन में ग्रन्थियाँ हैं तो उसका बाह्य त्याग यथार्थ में सम्यक् त्याग नहीं है। आगमकार स्पष्ट विधान करते हैं – "यदि कोई व्यक्ति नग्न रहता है, मास-मास भर अनशन करके शरीर को कृश कर डालता है, किंतु अंतर में माया एवं दम्भ रखता है, वह जन्म-मरण के अनन्त चक्र में भटकता रहता है।[३९]

भगवान् महावीर ने भी कहा है - "केवल मस्तक मुंडाने से या बाह्य वेष से अथवा क्रियाकाण्डों से कोई श्रमण नहीं हो जाता। समतायोग को अपनाने, जीवन में आनेवाली हर परिस्थिति में सम रहने वाला, समभाव रखने वाला ही श्रमण होता है।"[४०] स्थानांगसूत्र के अनुसार-शिरोमुंडन के साथ-साथ चार कषायों तथा पंचेन्द्रियविषयों का मुण्डन=शमन - सन्तुलन - सममन रखने से वास्तविक मुण्डन होता है।[४१] भाव-मुण्डन का अभिप्राय है, प्रत्येक कार्य(कर्म) करते हुए किसी प्रकार की आसक्ति, फलाकांक्षा, विचिकित्सा आदि का त्याग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करके सिद्धि और असिद्धि में सम होकर कर्म करो, समत्व में स्थित होना ही योग कहलाता है। समत्वयोग में स्थित पुरुष भगवद्गीता के अनुसार मन-वचन-काय को रागादि से दूषित न होने देकर समबुद्धि से युक्त रहता है, पुण्य और पाप दोनों का त्याग करना ही कर्मबंधन से छूटने का उपाय है, यह समत्व योग ही कर्मों में कुशलता है।" अर्थात् कर्म करते हुए भी उससे किसी भी प्रकार से लिप्त नहीं होना है।[४२] अतः आत्मधर्म के साधक को अपनी साधना में समदृष्टि एवं समत्वयोग को अपनाकर जीवन यात्रा करना हितावह है।

✣ ✣ ✣

सन्दर्भः

१. तेऽमी मानुष-रक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।
— भर्तृहरि नीतिशतक ६४

२. (क) येषां न विद्या, न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति।।

३. धम्मो वत्थु सहावो — कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७८

४. सुखस्य मूलं धर्मः — चाणक्यनीति सूत्र - २

५. धम्मोमंगलमुक्किट्ठं — दशवैकालिक १/१

६. 'ओसहमउलं च सव्व दुक्खाणं' - धम्मोबलमवि विउलं।'
दीर्घनिकाय ३/४/२

८. यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः — वैशेषिक दर्शन

६. संसार दुःखतः सत्वान् यो धरति उत्तम सुखे।
सद्दृष्टि - ज्ञान - वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।।
- रत्नकरण्ड श्रावकाचार २

१०. आत्मशुद्धि साधनं धर्मः — जैनतत्त्वदीपिका

११. धारणाद्धर्म मित्याहुः - मनुस्मृति

१२. दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मानं धारयतीति धर्मः। - मनुस्मृति

१३. ' न लिंगम् धर्मकारणम्।' - मनुस्मृति ६/६६

१४. पच्चयत्थं च लोगस्स नाणाविह विगप्पणं।
- उत्तराध्ययन, सूत्र २३/३२

१५. धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।' -मनुस्मृति ८/१५

१६. अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो, सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइसु रक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ।।
- दशवैकालिक विवित्तचरिणा, बीया चूला।१६

१७. एस धम्मे धुवे णिच्चे सासए......। — आचारांग

१८. आवश्यकसूत्र चउवीसत्थव पाठ।

१६. चारित्तं खु धम्मो, सो धम्मो समोत्ति णिद्दिट्ठो। - प्रवचन सार

२०. चारित्तं समभावो। - पंचास्तिकाय १०७

२१. समयाए धम्मे आरिएहिं पवेइए।' आचारांग/समया धम्ममुदाहरे मुणी — सूत्रकृतांग १/२/२/६

२२. जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं।। — अनुयोगद्वार

२३. आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे।
आया संवरे, आया संवरस्स अट्ठे...।। भगवती सूत्र

२४. सव्वभूयप्पभूयस्स समं भूयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दंतस्स पावकम्मं न बंधइ।। दशवै ४/६

२५. (क) 'एगे आया।' स्थानांग १/१
(ख) सिद्धां जैसो जीव है, जीव सोइ सिद्ध होय।'

२६. 'समं मे सव्वभूदेसु।' — नियमसार १०२

२७. 'यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।'
सुत्तनिपात ३/३७/२७

२८. 'जं इच्छसि अप्पणतो, तं इच्छस्स परस्स वि।'
— बृहत्कल्पभाष्य ४५८४

सव्वं जगं तु समयाणुप्पेही पियमपियं कस्सइ णो करेज्जा।
— सूत्रकृतांग १/१०/७

सयं सयं पसंसंता, गरहंता परं वदं।
जे उ तत्थ विउस्संति, संसारे ते विउस्सिया
— सूत्रकृतांग १/१/२/२३

२६. "समभावो सामाइयं" — आवश्यकनिर्युक्ति

३०. "चारित्तं समभावो" — पंचास्तिकाय

३१. समभावभावियप्पा लहइ मुक्खं न संदेहो। — हरिभद्रसूरि।

३२. लाभालाभे सुहे-दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो णिंदा-पसंसासु, तहा माणावमाणओ।।
—उत्तरा. १६/६०

३३. 'सव्वपाणेसु समो से समणो होई' — प्रश्नव्याकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. (क) दुविहे सामाइए पण्णत्ते – आगार सामाइए अणगार सामाइए। – स्थानांग ठाणा - २

(ख) समस्स आयाः लाभः सामायिकम् - 'करेमि भंते सामाइयं' – आवश्यक

३५. तत्त्वार्थसूत्र, मूलाचार

३६. (क) मूर्च्छा परिग्रहः – तत्त्वार्थसूत्र

(ख) मुच्छा परिग्गहो वुत्तो। दशवै.

३७. जो परिभवइ परं जणं, संसारे परिवत्तइ महं।
अदु इंखिणियाउ पाविया, इइ संखाय मुणीण मज्जए।।"
– सूत्रकृतांग १/२/२/२

३८. जइविय णगिणे किसे चरे, जइ वि भुंजिय मास मंत सो।

३९. जे इह मायाइ मिज्जइ आगंता गब्भाय णंतसो।।
– सूत्रकृतांग १/२/१/८९

४०. (क) न वि मुंडिएण समणो। (ख) समयाए समणो होइ....।"

४१. स्थानांग सूत्र ठा.-१०

४२. (क) सिद्धयसिद्‌योः समं भूत्वा, समत्वं योग उच्यते।
योगः कर्मसु कौशलम्। – भगवद्‌गीता।

विद्वद्वर्य श्री विनोद मुनिजी ने डूंगरपुर (राजस्थान) के एक सम्भ्रान्त ओसवाल परिवार में जन्म लिया। आपके हृदय में लघु वय में ही वैराग्य की भावना जगी और आपने आचार्य प्रवर श्री गणेशीलालजी महाराज के श्रीचरणों में श्रमण दीक्षा ग्रहण की। आपने अपने लघु भ्राता श्री सुमेर मुनिजी महाराज के सहयात्री बन कर अनेकों प्रदेशों की यात्रा की और धर्म का प्रचार किया। आपने प्राकृत, हिन्दी व संस्कृत आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। आप एक श्रेष्ठ प्रवक्ता हैं। वर्तमान में आप अपने पारम्परिक गुरुजन श्री मगन मुनिजी एवं पण्डितरत्न श्री नेमीचन्दजी महाराज के साथ अहमदनगर (महाराष्ट्र) में निवसित हैं।

— संपादक

नारी जीवन के मूल्य को, उसके अस्तित्व को समझकर, स्वीकार करके ही भगवान् महावीर ने अपने धर्मसंघ में / तीर्थ में पुरुष के साथ ही नारी को स्थान दिया था। उन्होंने किसी प्रकार कोई हिचक/संकोच नहीं किया था, जब कि समकालीन तथागत बुद्ध ने अपने संघ में नारी को सम्मिलित करने में संकोच किया था। शिष्य भिक्षु आनन्द के निवेदन को नकार दिया था। अन्ततः इस आग्रह को स्वीकार करना पड़ा किन्तु अन्तर में उपेक्षा ही थी।

✤ ✤ ✤

मर्यादाएं बंधन कब बनती हैं, जब मन न माने। जब मन ठीक हो तो ये बन्धन नहीं कहलाती। फिर मर्यादा, मर्यादा रहती है। लक्ष्मण रेखा की तरह रक्षात्मक बन जाती है। इनके पीछे भाव जुड़ा रहता है मन का कि "ये जो सीमा रेखाएं हैं," मुझे मेरी आत्मा को मेरी जीवन साधना के क्षेत्र में बनाये रखने के लिए हैं। नहीं तो, कभी भी मैं उच्छृंखल उद्दण्ड बन सकता हूँ, कभी भी लड़खड़ाकर बाहर गिर सकता हूँ। उसको थामने के लिए ये सीमा रेखाएं हैं।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनागम : पर्यावरण संरक्षण

❑ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

जैन-आगमों में षट्काय के हनन का साधकों को त्रिकरण-त्रियोग से निषेध इसलिए किया गया है कि प्राकृतिक सन्तुलन बना रहे एवं पर्यावरण में विकृति न आये। व्रतों/अणुव्रतों की संरचना का भी यही उद्देश्य था। एक पूर्ण पर्यावरण की साधना है तो दूसरी आंशिक साधना। पर्यावरण-प्रदूषण का संबंध प्रकृति से ही नहीं है अपितु आत्मिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक जगत् भी प्रदूषण की परिधि में आते हैं । इसी को विश्लेषित कर रहे हैं— श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा।

— सम्पादक

पर्यावरण शब्द परि उपसर्ग पूर्वक आवरण से बना है। जिसका अर्थ है जो चारों ओर से आवृत्त किए हो, चारों ओर छाया हुआ हो, चारों ओर से घेरे हुए हो। पर्यावरण शब्द का अन्य समानार्थक शब्द है – वातावरण। वातावरण का शाब्दिक अर्थ वायुमंडल होता है परन्तु वर्तमान में वातावरण शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिसे कहा जाता है कि व्यक्ति जैसे वातावरण में रहता है उसके वैसे ही भले-बुरे संस्कार पड़ते हैं। इस रूप में पर्यावरण शब्द भारत के प्राचीन धर्मों में वातावरण अर्थात् मानव जीवन से संबंधित सभी क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। पर्यावरण दो प्रकार का होता है – परिशुद्ध, अशुद्ध। जो पर्यावरण जीवन के लिये हितकर होता है वह परिशुद्ध पर्यावरण है और जो पर्यावरण जीवन के लिये अहितकर होता है वह अशुद्ध पर्यावरण है। इसी अशुद्ध पर्यावरण को प्रदूषण कहते हैं।

पाश्चात्य देशों में प्रदूषण का सूचक प्राकृतिक प्रदूषण है। परन्तु भारतीय धर्मों में विशेषतः **जैन धर्म में पर्यावरण प्रदूषण केवल प्रकृति तक ही सीमित नहीं है प्रत्युत आत्मिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक आदि जीवन से संबंधित समस्त क्षेत्र इसकी परिधि में आते हैं। जीवन संबंधित ये सभी क्षेत्र परस्पर जुड़े हुए हैं। इनमें से किसी भी एक क्षेत्र में उत्पन्न हुए प्रदूषण का प्रभाव अन्य सभी क्षेत्रों पर पड़ता है। जैन धर्म में प्रदूषण, दोष, पाप, विकार, विभाव, एकार्थक शब्द हैं। जैन धर्म सभी क्षेत्रों के प्रदूषणों का मूल कारण आत्मिक प्रदूषण को मानता है शेष सभी प्रदूषण इसी प्रदूषण के कटु फल, फूल, पत्ते व कांटे हैं। अतः जैनधर्म मूल प्रदूषण को दूर करने पर जोर देता है** और इस प्रदूषण के मिटने पर ही अन्य प्रदूषण मिटाना संभव मानता है, जबकि अन्य संस्थाएँ, सरकारें, राजनेता प्राकृतिक प्रदूषण को मिटाने पर जोर देते हैं। परन्तु उनके इस प्रयत्न से प्रदूषण मिट नहीं पा रहा है। एक रूप से मिटने लगता है तो दूसरे रूप में फूट पड़ता है, केवल रूपान्तर मात्र होता है जबकि जैन वाङ्गमय में प्रतिपादित सूत्रों से सभी प्रदूषण समूल रूप से नष्ट होते हैं। इसी विषय का अति संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है।

ऊपर कह आए हैं कि समस्त प्रदूषणों का मूल कारण है – आत्मिक प्रदूषण अर्थात् आत्मिक विकार। आत्मिक विकार है – हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि अगण्य पाप। इन सब पापों की जड़ है विषय-कषाय से मिलने वाले सुखों के भोग की आसक्ति। भोगों की पूर्ति के लिये भोग सामग्री व सुविधा चाहिये। भोगजन्य, सुख सामग्री व सुविधा प्राप्ति के लिये धन-सम्पत्ति चाहिये। धन प्राप्त करने के लिये लोभ से ही मानव हिंसा, झूठ, चोरी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह, परिग्रह, शोषण करता है, स्वास्थ्य के लिये हानि कारक वस्तुओं का उत्पादन करता है, असली वस्तुओं में हानिप्रद नकली वस्तुएँ मिलाता है कई प्रकार के प्रदूषणों को जन्म देता है। वर्तमान में विश्व में जितने भी प्रदूषण दिखाई देते हैं इन सबके मूल में भोग लिप्सा व लोभ वृत्ति ही मुख्य है।

जब तक जीवन में भोग-वृत्ति की प्रधानता रहेगी तब तक भोग सामग्री प्राप्त करने के लिये लोभ वृत्ति भी रहेगी। कहा भी है कि **लोभ पाप का बाप है** अर्थात् **जहाँ लोभ होता है वहाँ पाप की उत्पत्ति होगी ही। पाप प्रदूषण पैदा करेगा ही। अतः प्रदूषण के अभिशाप से बचना है तो पापों से बचना ही होगा, पापों को त्यागना ही होगा। पापों का त्याग ही जैन धर्म की समस्त साधनाओं का आधार व सार है। पापों से मुक्ति को ही जैन धर्म में मुक्ति कहा है। अतः जैन धर्म की समस्त साधनाएँ, प्रदूषणों (दोषों) को दूर करने की साधना है।** जैन धर्म में अनगार एवं आगार ये दो प्रकार के धर्म कहे हैं। अनगार धर्म के धारण करने वाले साधू होते हैं जो पापों के पूर्ण त्याग की साधना करते हैं। आगार धर्म के धारण करने वाले गृहस्थ होते हैं उनके लिये बारह व्रत धारण करने, तपस्या, कुव्यसनों के त्याग का विधान किया गया है। यही आगार धर्म प्रदूषणों से बचने का उपाय है। इसी परिपेक्ष्य में यहाँ बारह व्रतों का विवेचन किया ज रहा है: –

(१) स्थूल प्राणातिपात का त्याग

प्राणातिपात उसे कहा जाता है जिससे किसी भी प्राणी के प्राणों का घात हो। प्राण दश कहे गये हैं। श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण २. चक्षु इन्द्रिय बल प्राण ३. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण ४. रसनेन्द्रिय बल प्राण ५. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण ६. मन बल प्राण ७. वचन बल प्राण ८. कायबल प्राण ९. श्वासोश्वास बल प्राण और १०. आयुष्य बल प्राण। इन दस प्राणों में से किसी भी प्राण को आघात लगे, हानि पहुँचे वह प्राणातिपात है। वह प्राणातिपात प्राणी का ही अर्थात् चेतना का ही होता है निष्प्राण अचेतन का नहीं। क्योंकि अचेतन (जड़) जगत् पर प्राकृतिक प्रदूषण या अन्य किसी भी प्रकार का प्रदूषण का कोई भला-बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है न ही उसे सुख-दुख होता है। अतः प्रदूषण का संबंध प्राणी से ही है। इस प्रकार के प्रदूषण से प्राणी के ही प्राणों का अतिपात होता है। प्राणातिपात को वर्तमान में प्रदूषण कहा जाता है अतः प्रत्येक प्रकार का प्रदूषण प्राणातिपात है, प्राणातिपात से बचना प्रदूषण से बचना है, प्रदूषण से बचना प्राणातिपात से बचना है।

जैन धर्म में समस्त पापों का, दोषों का प्रदूषणों का मूल प्राणातिपात को ही माना है। अब यह प्रश्न पैदा होता है कि प्राणी प्राणातिपात या प्रदूषण क्यों करता है? उत्तर में कहना होगा कि प्राणी को शरीर मिला है इससे उसे चलना, फिरना, बोलना, खाना, पीना, मल विर्सजन आदि कार्य व क्रियाएँ करनी होती हैं परन्तु इन सब क्रियाओं से प्रकृति का सहज रूप में उपयोग करे तो न तो प्रकृति को हानि पहुँचती है और न प्राण शक्ति का ह्रास होता है इससे प्राणी का जीवन तथा प्रकृति का संतुलन बना रहता है। यही कारण है कि लाखों-करोड़ों वर्षों से इस पृथ्वी पर पशु-पक्षी, मनुष्य आदि प्राणी रहते आए हैं परन्तु प्रकृति का संतुलन बराबर बना रहा। पर जब प्राणी के जीवन का लक्ष्य सहज प्राकृतिक/स्वाभाविक जीवन से हटकर भोग भोगना हो जाता है तो वह भोग के सुख के वशीभूत हो अपने हित-अहित को, कर्तव्य-अकर्तव्य को भूल जाता है। वह भोग के वशीभूत हो वह कार्य भी करने लगता है जिसमें उसका स्वयं का ही अहित हो। उदाहरणार्थ – **किसी भी मनुष्य से कहा जाय कि तुम्हारी आँखों का मूल्य पाँच लाख रुपये देते हैं तुम अपनी दोनों आँखों को हमें बेच दो तो कोई भी आँखें बेचने को तैयार नहीं होगा। अर्थात् वह अपनी आँखों को**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी मूल्य पर बेचने को तैयार नहीं होगा, वह आँखों को अमूल्य मानता है। परन्तु वही मनुष्य चक्षु इन्द्रिय के सुख भोग के वशीभूत हो टेलीविजन, सिनेमा, आदि अधिक समय देखकर अपनी आँखों की शक्ति क्षीण कर देता है, वह अपनी आँखों की अमूल्य प्राण शक्ति को हानि पहुँचा कर अपना ही अहित कर लेता है। यही बात कान, जीभ आदि समस्त इन्द्रिय के प्राणों के प्राणातिपात पर होती है। जैन धर्म में पृथ्वी, पानी, हवा तथा वनस्पति में जीव माना है, इन्हें प्राण माना है, इन्हें विकृत करने को इनका प्राणातिपात माना है परन्तु मनुष्य अपने सुख-सुविधा संपत्ति के लोभ से इनका प्राण हरण कर इन्हें निर्जीव, निष्प्राण प्रदूषित कर रहा है यथा –

पृथ्वीकाय का प्राणातिपात-प्रदूषण

कृषि भूमि में रासायनिक खाद एवं एन्टीबायोटिक दवाएँ डालकर भूमि को निर्जीव बनाया जा रहा है जिससे उसकी उर्वरा शक्ति/प्राणशक्ति नष्ट होती है। परिणाम स्वरूप भूमि बंजर हो जाती है फिर उसमें कुछ भी पैदा नहीं होता है।

भूमि का दोहन करके खाने खोदकर, खनिज पदार्थ, लोह, तांबा, कोयला, पत्थर आदि प्रति वर्ष करोडों टन निकाला जा रहा है उसे निर्जीव बनाया जा रहा है तथा उसे कौड़ियों के भाव विदेशों को – अपने देश में उपभोग की वस्तुएँ प्राप्त करने के लिये विदेशी मुद्रा अर्जन करने के लिये बेचा जा रहा है। भले ही इस भूमि दोहन से भावी पीढ़ियों के लिये वह खनिज पदार्थ न बचे कारण कि खनिज पदार्थ नये निर्माण नहीं हो रहे हैं। और भावी पीढ़ियाँ इन पदार्थों के लिये तरस-तरस के मरें, अपने पूर्वजों के इस दुष्कर्म का फल अत्यन्त दुखी होकर भोगें। इस बात की चिन्ता वर्तमान पीढ़ी व सरकारों को कतई नहीं है। यही बात पैट्रोलियम पदार्थों पर भी घटित होती है उसका भी इसी प्रकार भयंकर दोहन हो रहा है। आज विश्व में पचास करोड़ कारें, लाखों दुपहिये वाहन, करोड़ों कारखानों में अरबों टन पैट्रोल जलाया जा रहा है, जिससे पेट्रोल के भंडार खाली होते जा रहे हैं इससे एकदिन भावी पीढ़ियों के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। इस प्रकार पेट्रोल तथा लोहा आदि धातुओं का दोहन तथा इनसे पैदा होने वाला जल-वायु प्रदूषण व तापमान वृद्धि का दुष्प्रभाव – ये सब भावी पीढ़ियों के लिए अभिशाप बनने वाले हैं।

अप्काय का प्राणातिपात प्रदूषण

जल में अन्य पदार्थ मिलने से अप्काय के प्राण का हरण होता है यही जल प्रदूषण है, वर्तमान काल में धन कमाने के लिये बड़े-बड़े कारखानें लगे हैं, उनमें प्रतिदिन करोड़ों अरबों लीटर जल का उपयोग होता है वह सब जल प्रदूषित हो जाता है, रसायनिक पदार्थों के संपर्क से, नगर के गंदे नालों का जल मल-मूत्र आदि गंदगी से दूषित होता जा रहा है। यह दूषित जल धरती में उतर कर कुँओं के जल को तथा नदी में गिरकर नदी के जल को दूषित करता जा रहा है। तथा दूषित जल के कीटाणुओं का नाश करने के लिये पीने के पानी की टंकियों में पोटिशियम परमेगनेट मिलाया जा रहा है जो स्वास्थ्य के लिये अहितकर है। नलों से भी जल का बहुत अपव्यय होता है। यह सब जल का प्रदूषण ही है। जैन धर्म में एक बूंद जल भी व्यर्थ ढोलना पाप तथा बुरा माना गया है। अतः धर्म के सिद्धान्तों का पालन किया जाय तो जल के प्रदूषण से पूरा बचा जा सकता है।

वायुकाय का प्राणातिपात-प्रदूषण

वायु में विकृत तत्व मिलने से वायु काय के प्राणों का अतिपात होना है। यही वायु प्रदूषण है। बड़े कारखानों की चिमनियों से लगातार विषैला धुआं निकल कर वायु को दूषित करता जा रहा है, करोड़ों, कारखानों में विषैली गैसों का उपयोग हो रहा है वे गैस वायु में मिलकर वायु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में निहित प्राणशक्ति को क्षय कर रही है। इस प्रदूषण के प्रभाव से ध्रुवों में ओजोन परत भी क्षीण हो गई है उसमें छेद होते जा रहे हैं जिसमें सूर्य की हानिकारक किरणें सीधे मानव शरीर पर पड़ेगी जिसके फलस्वरूप केंसर आदि भयंकर असंख्य असाध्य रोगों का खतरा उत्पन्न हो जाने वाला है। वायु प्रदूषण से नगरों में नागरिकों को श्वास लेने के लिये स्वच्छ वायु मिलना कठिन हो गया है दम घुटने लगा है, जिससे दमा/क्षय आदि रोग भयंकर रूप में फैलने लगे हैं। जैन धर्म में इस प्रकार के वायु के प्राणातिपात को, प्रदूषण को पाप माना है।

वनस्पति काय प्राणातिपात-प्रदूषण

जैनागम आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में वनस्पति की मलीनता की तुलना मनुष्य जीवन से की है जैसे मनुष्य का शरीर बढ़ता है, खाता है उसी प्रकार वनस्पति भी बढ़ती है, भोजन करती है। वर्तमान में वनस्पतिकाय का प्राणातिपात भयंकर रूप से हो रहा है। लकड़ी के प्रलोभन से जंगल/वन कटे जा रहे हैं। पहले जहाँ पहाड़ों पर व समतल भूमि पर घने जंगल थे, जिनमें होकर पार होना कठिन था, जिन्हें अटवी कहा जाता था उनका तो आज नामोनिशां ही नहीं रहा। जो जंगल बचे हैं और जिन वनों को सरकार द्वारा सुरक्षित घोषित किये गये हैं उन वनों में भी चोरी छिपे भयंकर कटाई हो रही है। इसका प्रभाव जल-वायु पर पड़ा है। इनके कट जाने से आर्द्रता कम हो गई जिससे वर्षा में बहुत कमी हो गई है। वन के घने जंगलों में लगे वृक्ष प्रदूषित वायु का कार्बन डाई आक्साईड ग्रहण कर बदले में आक्सीजन देकर वायु को शुद्ध करते थे वह शुद्धिकरण की प्रक्रिया अति धीमी हो गई है। फलतः वायु में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है जो मानव जाति के स्वास्थ्य के लिये अति हानिकारक है।

रासायनिक खाद एवं कीट नाशक दवाईयों के डालने से कृषि उपज में अनाज, फल, फूल, दालों की संरचना में उनका दूषित प्रभाव बढ़ता जा रहा है जो स्वास्थ्य के लिये अति हानिकारक है एवं पोष्टिक तत्व का, विटामिन, प्रोटीन, क्लोरी का भी घातक है। यही कारण है कि अमरीका में रासायनिक खाद से उत्पन्न हुए गेहूँ के भाव से बिना रासायनिक खाद में उत्पन्न हुए गेहूँ का भाव आठ गुना है।

त्रसकाय प्राणातिपात

दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव तथा केंचुए, चींटि, मधुमक्खी भौंरे, चूहे, सर्प, पक्षी, पशु आदि चलने फिरनेवाले जीव त्रसकाय कहे जाते हैं। इन जीवों की उत्पत्ति प्रकृति से स्वतः होती है तथा संतुलन भी बना रहता है। ये सभी जीव फसल का संतुलन बनाये रखने में सहायक होते हैं। केंचुआ भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है। आज दवाईयों से इन जीवों को मार दिया जाता है जिससे पैदावार में असंतुलन हो गया है तथा जीवों की अनेक प्रजातियाँ लुप्त हो गई है।

जैन धर्म में उपर्युक्त सब प्रकार के जीवों के प्राणातिपात करने रूप प्रदूषणों के त्याग का विधान किया गया है। यदि इस व्रत का पालन किया जाय और पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति आदि को प्रदूषित न किया जाय, इनका हनन न किया तो मानव जाति प्राकृतिक प्रदूषणों से सहज ही बच सकती है। फिर पर्यावरण के लिए तो किसी भी कानून बनाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी इस प्रकार से अहिंसा पालन से पर्यावरण की समस्त समस्याओं का समाधान संभव है।

२. मृषावाद विरमण

दूसरा व्रत है – झूठ का त्याग। अर्थात् जो वस्तु जिस गुण, धर्म वाली है उसे वैसी ही बताया जाय। आज चारों ओर व्यापार में मृषावाद का ही बोलबाला है। उदाहरण के लिये रासायनिक खाद दीर्घ काल की उपज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की खेतों की उर्वरा शक्ति को नष्ट करने वाला है तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है, उसकी इन बुराईयों को छिपाकर उसे खेती के लिये लाभ प्रद बताया जाता है। इसी प्रकार सिन्थेटिक सूत्र के वस्त्र स्वाथ्य के लिये अति हानिकर है उनकी इस यर्थाथता को छिपाया जाता है और उनके लाभ के गुण गाये जाते हैं। एन्टीवायोटिक दवाईयों से शरीर की प्रति रक्षात्मक शक्ति का भयंकर ह्रास होता है जिसमें वृद्धावस्था में रोगों से प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं रहती है। इस तथ्य को छिपाया जाता है और धड़ल्ले से विज्ञापन द्वारा इसके लाभप्रद होने का प्रचार किया जाता है। आज का विज्ञापन दाता क्षेत्र में विज्ञापित वस्तु से दीर्घ काल में होने वाली भयंकर हानि को छुपाकर, तथा उनके तात्कालिक लाभ को बढ़ा-चढ़ा कर, बताकर जनता को मायाजाल में फंसाता है यह धोखा है। जैन साधना में ऐसे कार्य को मृषावाद कहा है और इसका निषेध किया गया है। इस सिद्धान्त को अपना लिया जाय तो ऐसे प्रदूषणों से बचा जा सकता है।

३. अचौर्य व्रत

अपहरण करना चोरी है। वर्तमान में अपहरण के नये-नये रूप निकल गये हैं। व्यापार द्वारा उपभोक्ताओं के धन का अपहरण तो किया ही जाता है; कल-कारखानों में श्रमिकों को श्रम का पूरा प्रतिफल न देकर श्रम का भी अपहरण किया जाता है। उनकी विवशता का लाभ उठाया जाता है। जीवनरक्षक दवाईयों के बीस-तीस गुणें दाम रखकर तथा नकली दवाइयाँ बनाकर रोगियों को मृत्यु के मुख में धकेला जाता है। लाटरी के द्वारा गरीबों के कठिन श्रम से की गई कमाई का अपहरण किया जा रहा है। संक्षेप में कहे तो – **जितने भी शोषण के तरीके हैं वे सभी अपहरण के रूप हैं। बिना प्रतिफल दिये या कम प्रतिफल देकर अधिक लाभ उठाना शोषण या अपहरण है। यह अति भयंकर आर्थिक प्रदूषण है। इसी से आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है। दूसरे गरीब अधिक गरीब और धनवान अधिक धनवान होते जा रहे हैं। इस विषमता से ही आज आर्थिक जगत् में भयंकर प्रतिद्वन्द्व व संघर्ष चल रहा है। युद्ध का भी प्रमुख कारण यह आर्थिक शोषण व प्रतिद्वन्द्वता की होड़ ही है। जैन धर्म में अपहरण व संघर्ष शोषण का त्याग प्रत्येक मानव के लिये आवश्यक बताया है ताकि पर्यावरण संतुलित रहे।** यदि इस व्रत का पालन किया जाय तो भूखमरी, गरीबी, आर्थिक लूट अकाल मृत्यु, युद्ध आदि प्रदूणों का अंत हो जाय।

४. व्यभिचार का त्याग

चौथे व्रत में अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य समस्त प्रकार के यौन संबंधों को त्याज्य कहा है। जैन धर्मानुयायियों के लिये परस्त्रीगमन, वेश्यागमन तथा अतिभोग को सर्वथा त्याज्य कहा गया है। इससे एड्स जैसे असाध्य बीमार रोगों से सहज ही वचा जा सकता है। **आज जो एड्स तथा यौन संबंधी अनेक रोग व प्रदूषण बड़ी तेजी से फैल रहे हैं जिससे मानव जाति के विनाश का खतरा उत्पन्न हो गया है इसका कारण इस व्रत का पालन न करना ही है। कामोत्तेजक तथा अश्लील चित्र बनाना व देखना भी इस व्रत के अंग है। इससे आज विदेशों में अविवाहित लड़कियों के गर्भ रहने, गर्भपात कराने तथा तलाक आदि घटनाओं में वृद्धि हो रही है। ब्यूटी पार्लर, प्रसाधन सामग्री से शारीरिक अस्वस्थता बढ़ती जा रही है। इन भयंकर प्रदूषण से बचाव भी इस व्रत के पालन करने से ही संभव है।**

५. परिग्रह परिमाण व्रत

गृहस्थ को भूमि, भवन, खेत, वस्तु, धन-धान्य, गाय, भैंस आदि की आवश्यकता पड़ती है। अतः इन्हें अपने परिवार की आवश्यकता के अनुसार रखना, इनसे अधिक धन उपार्जन की दृष्टि से न रखना, इस व्रत के अन्तर्गत आता है। इस व्रत में परिग्रह या संग्रह को बुरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बताया गया है। उत्पादन को बुरा नहीं कहा है। आनन्द कामदेव आदि आदर्श श्रावकों के हजारों गायें थी उनका परिमाण किया है, बेचा नहीं है। परिमाण की गई गायों के बछड़े-बछड़ी होते, ये परिमाण में अधिक हो जाते ; वे दूसरों को दान दे दिये ; जिससे वे उनका पालन पोषण कर आजीविका चलाते। कोई भोजन करना तो उपादेय माने और अन्न उत्पादन को हेय (बुरा) माने, यह घोर विसंगति है। अतः उत्पादन सर्व हितकारी प्रवृत्ति से करना अपने सुख-सुविधा के लिये उसका संग्रह न करना ही इस व्रत का मुख्य उद्देश्य है। इस व्रत के पालन से उदारता-सेवा-परोपकार की श्रेष्ठवृत्ति का विकास होता है। सेठ व श्रेष्ठ कहा ही उसे है – जो अपने धन का उपयोग दूसरों की सेवा में करे। इस व्रत का पालन किया जाय तो विश्व की गरीबी दूर हो जाय। आर्थिक शोषण का अन्त हो जाय और जीवन के लिये आवश्यक अन्न, वस्त्र, मकान आदि की कमी न रहे। **आज जो आर्थिक जगत में होड़ लगी है - संघर्ष हो रहा है उसका कारण परिग्रह ही है। इस आर्थिक बुराई या प्रदूषण से बचने का उपाय है — परिग्रह परिमाण व्रत।** इस प्रकार व्रत के पालन से पर्यावरण का स्वयमेव शुद्धिकरण हो जाता है।

६. दिशा-परिमाण व्रत

धन कमाने तथा विषय सुख भोगने के लिये मनुष्य देश-देशान्तरों का भ्रमण करता है। यह भ्रमण वित्त भोग परिग्रह-लोक एषणा का व भोग वृद्धि का हेतु होता है। ऐसे भ्रमण को जैन धर्म में मानव जीवन के लक्ष्य शान्ति, मुक्ति, स्वाधीनता तथा परमानन्द प्राप्ति में बाधक माना है और इससे यथा संभव बचने के लिये इसकी मर्यादा करने का विधान किया गया है। वर्तमान में लोग धन कमाने, सुख-सुविधा प्राप्ति एवं अधिकाधिक भोग भोगने के लिये अपनी जन्मभूमि को छोड़कर शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। फलस्वरूप एक ही शहर में लाखों, करोड़ों लोगों की भीड़ इकट्ठी होती जा रही है। उन लोगों के यांत्रिक लाखों वाहनों तथा उद्योगों में लगे यंत्रों से निकली विषैली गैसों से उनके मल-मूत्र से, उनके द्वारा फैंके हुए कूड़े कचरे से, उनके श्वास से निकली कार्बन-डाई आक्साईड़ से भयंकर प्रदूषण फैलता जा रहा है। भारत में दिल्ली, कलकत्ता, कानपुर आदि शहर इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। जहाँ श्वास लेने के लिये शुद्ध वायु मिलना कठिन हो गया है जिससे दमा, क्षय, हृदय, केंसर जैसी भयंकर बीमारियाँ बड़ी तीव्र गति से फैलती जा रही है। यदि दिशा परिमाण व्रत का पालन किया जाय अर्थात् अपने गाँव में रहकर स्वास्थ्य प्रदायक, सादा, सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक जीवन जिया जाय तो बड़े-बड़े नगरों में उत्पन्न होने वाले समस्त प्रदूषणों एवं दूषित पर्यावरण संबंधी समस्या से सहज ही में बचा जा सकता है।

७. उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत

इस व्रत में फल-फूल, वस्त्र, विलेपन, खान-पान आदि समस्त उपभोग-परिभोग सामग्री की मर्यादा करने का विधान है। क्योंकि भोग-परिभोग ही आत्मिक दोषों, मानसिक द्वन्द्वों रूप प्रदूषणों के कारण हैं। अतः जैन धर्म में साधुओं के लिये तो इन्हें पूर्ण त्याज्य ही कहा है। गृहस्थ के लिये भी भोगों की वृद्धि को हेय माना है और इन्हें सीमित मर्यादित रखने का विधान है।

जैन धर्म का मानना है कि उपभोगवादी संस्कृति ही समस्त दोषों व प्रदूषणों की जननी है। अतः जब तक संस्कृति का आधार उपभोग रहेगा तब तक प्रदूषण भी बना रहेगा। कारण कि किसी वस्तु का दुरूपयोग करने से ही प्रदूषण पैदा होता है। वस्तु के सदुपयोग से वस्तु का जितना उपयोग होता है उससे अधिक उसका उत्पादन होता है। उसका अनावश्यक व्यय (अपव्यय) नहीं होता है। भोगवादी संस्कृति पशुता की द्योतक है, पशु जीवन प्रकृति के आधीन है। पशु-पक्षी भूख लगने पर ही खाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, भूख नहीं होने पर नहीं खाते हैं। इस प्रकार प्रकृति का संतुलन बना रहता है। परन्तु मनुष्य भूखा होने पर भी चाहे तो नहीं खाये और भूख न होने पर भी स्वाद के वश भोजन कर लेता है। अर्थात् मनुष्य का जीवन प्रकृति के आधीन नहीं है। वह प्रकृति से अपने को ऊपर उठाने में स्वतन्त्र है। यही मानव जीवन की विशेषता भी है। मानव इस स्वतन्त्रता का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों कर सकता है। सदुपयोग है – प्रकृति का यथा संभव कम या उतना ही उपयोग करना जितना जीवन के लिये अत्यावश्यक है। इससे प्रकृति की देन का / वस्तुओं का व्यर्थ व्यय नहीं होता है और जिससे प्रकृति का संतुलन बना रहता है तथा प्रकृति के उत्पादन में वृध्दि होती है। भारतवर्ष की संस्कृति में अन्न को देवता माना गया है। अन्न के एक दाने को भी व्यर्थ नष्ट करने को घोर पाप या अपराध माना जाता रहा है। पेड़ के एक फूल, पत्ते व फल को व्यर्थ तोड़ना अनुचित समझा जाता रहा है। पेड़-पौधों को क्षति पहुँचाना तो दूर रहा उलटा उन्हें पूजा जाता है – खाद और जल देकर उनका संवर्धन व पोषण किया जाता है। यही कारण है कि आज से केवल एक सौ वर्ष पूर्व भारत में घने जंगल थे। जब से उपभोक्तावादी संस्कृति का पश्चिम के देशों से भारत में आगमन हुआ, प्रचार-प्रसार हुआ इसके पश्चात् सारे प्रदूषण पैदा हो गये, वनों का विनाश हो गया। अगणित वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों की जातियों का अस्तित्व ही मिट गया। जहाँ पहले सिंह भ्रमण करते थे आज वहां खरगोश भी नहीं रहे।

वर्तमान में विज्ञान के विकास के साथ भोग सामग्री अत्यधिक बढ़ गई है तथा बढ़ती जा रही है, जिसे फलस्वरूप रोग बढ़ गये हैं और बढ़ते जा रहे हैं। उदाहरणार्थ टेलिवीजन को ही लें, टेलिवीजन के समीप बैठने से बच्चों में रक्त कैंसर जैसा असाध्य रोग बहुत अधिक बढ़ गये हैं। आँखों की दृष्टि तो कमजोर होती ही है। टेलिवीजन के पर्दे पर जो चल-चित्र दिखाये जाते हैं उनमें प्रदर्शित अभिनेता-अभिनेत्री का नृत्य, गान, हाव-भाव वेशभूषा, व अन्य भोग-सामग्री से दर्शकों के मन में कामोद्दीपन तो होता ही है साथ ही मन में अगणित भोग भोगने की कामनाएँ/वासनाएँ उत्पन्न हो जाती है, उन सब की पूर्ति होना संभव नहीं है। कामनाओं/वासनाओं की पूर्ति न होने से तनाव, हीनभाव, दबाव, और द्वन्द्व, कुंठाएँ तथा मानसिक ग्रंथियों का निर्माण हो जाता है। जिससे व्यक्ति मानसिक रोगी होकर जीवन पर्यन्त दुख भोगता है साथ ही रक्तचाप, हृदय, केंसर, अल्सर, मधुमेह जैसे शारीरिक रोग का शिकार भी हो जाता है। **जैन धर्म का मानना है कि भोग स्वयं आत्मिक एवं मानसिक रोग है और इसके फलस्वरूप शारीरिक रोगों की उत्पति होती है। फिर शारीरिक रोगों की चिकित्सा के लिये एन्टीबायोटिक दवाइयाँ ली जाती हैं जिससे लाभ तो तत्काल मिलता है परन्तु जीवन-शक्ति नष्ट हो जाती है फलतः आयु घटकर अकाल में ही काल के गाल में समा जाते हैं, वर्तमान में उत्पन्न समस्त समस्याओं का मूल भोगवादी संस्कृति ही है।**

८. अनर्थ दण्ड विरमण

अनर्थ शब्द, अन् उपसर्ग पूर्वक दंड शब्द से बना है। अन् उपसर्ग के अनेक अर्थ फलित होते हैं उनमें मुख्य हैं अभाव, विलोम। अर्थ कहते हैं – मतलब को। अतः अनर्थ शब्द का अभाव में अभिप्राय है बिना अर्थ, व्यर्थ, हित शून्य और विलोम रूप में अभिप्राय है – हानि-प्रद। अतः जो कार्य अपने लिये हितकर न हो और दूसरों के लिये भी हानिकारक हो उसे अनर्थ दण्ड कहते हैं। जैसे मनोरंजन के लिए ऊँटों की पीठ पर बच्चों को बांधकर ऊँटों को दौड़ाना जिससे बच्चे चिल्लाते हैं तथा गिरकर मर जाते हैं, मुर्गी को व सांडों को परस्पर में लड़ाना आदि। आजकल सौंदर्य प्रसाधन सामग्री के लिये अनेक पशु-पक्षियों की निर्मम हत्याएँ की जाती हैं, इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार प्रसाधन सामग्री से पशुओं का वध तो होता ही है तथा सामग्री का उपयोग करने वाले के स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जो स्वादिष्ट वस्तुएँ बनाती हैं उससे उन खाद्य-पदार्थों के विटामिन-प्रोटीन आदि प्रकृति प्राप्त पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं साथ ही उनका मूल्य बीसों गुना हो जाता है जो अर्थ को बहुत बड़ी हानि या दंड है अर्थात् अनर्थदण्ड है। **आज भोग-परिभोग के लिये जिन कृत्रिम वस्तुओं का निर्माण हो रहा है उन वस्तुओं के लाभकारी गुण या तत्व तो नष्ट हो ही जाते हैं साथ ही वे स्वास्थ्य तथा आर्थिक दृष्टि से हानिकारक भी होती है, अतः वे अनर्थदण्ड रूप ही हैं।** यही नहीं तली हुई चरपरी-चटपटी मिर्च, मसालेदार वस्तुओं को भी अनर्थदण्ड के रूप में लिया जा सकता है क्योंकि ये शरीर के लिये हानिकारक होती है, पाचन शक्ति बिगाड़ती है। आस्ट्रेलिया, यूरोप आदि देशों के विकसित नागरिक स्वास्थ्य के लिये ऐसी तली हुई, मिर्च मसालेदार हानिकारक वस्तुओं का उपयोग व उपभोग प्रायः नहीं करते हैं। सिन्थेटिक वस्त्र भी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है इसलिये अब विदेशों में पुनः सूती वस्त्रों को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। जिससे इनकी मांग बढ़ी है। यदि अनर्थदण्ड विरमण व्रत का पालन किया जाय तो इन सब प्रदूषणों से बचा जा सकता है।

९. सामायिक १०. देशावकासिक ११. पौषधव्रत

ये तीनों व्रत मानसिक एवं आत्मिक विकारों/प्रदूषणों से बचने तथा गुणों का पोषण करने के लिये हैं। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव से रहना, उनसे प्रभावित न होना, उसके प्रति राग-द्वेष न करना, मन का संतुलन न खोना **सामायिक** है। इससे व्यक्ति परिस्थिति से अतीत हो जाता है, ऊपर उठ जाता है। अतः सांसारिक सुख-दुख के प्रभाव से मुक्त हो जाता है फिर उसे तनाव, हीन भाव, अन्तर्द्वन्द्व, भय, चिंता जैसे मानसिक रोग या विकार नहीं सताते हैं।

देशावकासिक व्रत छठे दिशि तथा सातवें भोग-परिभोग परिमाण व्रत इन दोनों व्रतों का ही विशेष रूप है। छठे तथा सातवें व्रत में दिशा व भोग्य वस्तुओं की जो मर्यादा की है उसे प्रतिदिन के लिए घटाना इस व्रत का उद्देश्य है। **पौषध व्रत में सांसारिक प्रवृत्तियों से एक दिन के लिये विश्राम लेना है। इसमें साधुत्व का आचरण करना है। साधुत्व (त्याग) का रस चखना है। विश्राम से शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, विवेक का उदय होता है, संवेदन-शक्ति का विकास होता है अर्थात् आत्मिक गुणों का पोषण होता है।**

१२. अतिथि संविभाग व्रत

गृहस्थ जीवन में दान का बहुत महत्व है। **गृहस्थ जीवन का भूषण ही न्याय पूर्वक उत्पादन व उपार्जन करना तथा उसे आवश्यकता वाले लोगों में वितरण करना है।** जो **उत्पादन व उपार्जन नहीं करता है वह अकर्मण्य व आलसी है यह गृहस्थ जीवन के लिये दूषण है, इसी प्रकार जो उत्पादन करके संग्रह करता है वह भी दूषण है। गृहस्थ जीवन की सुंदरता व सार्थकता अपनी न्याय पूर्वक उपार्जित सामग्री से बालक, वृद्ध, रोगी, सेवक, संत महात्मा आदि उन लोगों की सेवा करने में है जो उपार्जन करने में असमर्थ है।**

जैन धर्म में तप का बड़ा महत्व है। तप में (१) अनशन २. ऊनोदरी-भूख से कम खाना। ३. आयंबिल-रस परित्याग आदि है। ये सभी तप भोजन से होने वाले प्रदूषणों को दूर करते हैं। अतिभोजन से तथा गरिष्ठ भोजन से भोजन पचने में कठिनाई होती है, जिससे पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है तथा भोजन में सड़ान्ध पैदा होती है जो गैस (वायु) बनाती है। जिससे अनेक रोग पैदा होते हैं। कहा जाता है कि सभी रोगों की जड़ उदर विकार है, पेट की खराबी है। यह पेट की खराबी तथा इससे संबंधित अगणित रोग उपवास, ऊनोदरी तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयंबिल से मिट जाते हैं। रूस में तो सभी रोगों के लिये उपवास चिकित्सा संचालित ही है। पूज्य श्री घासीलालजी म.सा. ने हजारों रोगियों का रोग आयंबिल तप से ही दूर किया था। आयंबिल में एक ही प्रकार का विगय रहित भोजन किया जाता है जिससे जितनी भूख है उससे अधिक भोजन से बचा जा सकता है। एक ही रस के भोजन में आमाशय को अनजाईम बनाने में – जिनसे भोजन पचता है कठिनाई नहीं होती है, इसीलिये आस्ट्रेलिया निवासी प्रायः एक समय में एक ही रस का भोजन करते हैं यदि मीठे स्वाद की वस्तुएँ खाते हैं तो उनके साथ खट्टे नमकीन आदि स्वाद की वस्तुएँ नहीं खाते हैं। शारीरिक रोगरूप प्रदूषण को दूर करने की दृष्टि से तप का बड़ा महत्व है।

इसी प्रकार रात्रि भोजन त्याग, मांसाहार त्याग, मद्य त्याग, शिकार त्याग आदि जैन धर्म के सिद्धान्तों से शारीरिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक प्रदूषणों से बचा जा सकता है। लेख के विस्तार के भय से इन पर यहाँ विवेचन नहीं किया जा रहा है।

उपसंहार

प्राणी के जीवन के विकास का संबंध प्राण शक्ति के विकास से है न कि वस्तुओं के उत्पादन से तथा भोग-परिभोग सामग्री की वृद्धि से। **आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक, भौतिक, पारिवारिक, सामाजिक जगत् में पर्यावरणों में शक्ति का ह्रास या विनाश प्राप्त वस्तुओं के दुरुपयोग से, भोग से होता है क्योंकि भोग से ही समस्त दोष पनपते हैं जो प्रदूषण पैदा करते हैं और भोग के त्याग से, संयम मय मर्यादित जीवन से उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में विकास या पोषण होता है। पर्यावरण प्रदूषण से बचे तथा पर्यावरण का समुचित पोषण हो, यही जैन धर्म के तत्त्वज्ञान का निरूपण है। इसी में मानव जीवन की सार्थकता व सफलता है।**

✣ ✣ ✣

❑ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा सुविख्यात विद्वान्, लेखक एवं जैन दर्शन के गम्भीर व्याख्याता हैं। आप एक ध्यान साधक हैं तथा श्री जैन सिद्धांत शिक्षण संस्थान, जयपुर के अधिष्ठाता हैं। आपका जन्म वि.सं. १९९६ में धनोप (भीलवाड़ा) में हुआ। जैन दर्शन के विभिन्न आयामों पर आपने शताधिक चिंतनपूर्ण निबंध प्रस्तुत किये हैं। विज्ञान और मनोविज्ञान से सम्बन्धित आपकी पुस्तक "जैन धर्म दर्शन" पुरस्कृत हुई है। — सम्पादक

वेष-व्यवस्था / संयम-यात्रा के निर्वाह और ज्ञान आदि साधना के लिए तथा लोक में साधक और संसारी के भेद को स्पष्ट करने के लिए है। यह व्यावहारिक साधन है। निश्चय में / तत्त्व दृष्टि से साधन-ज्ञान-दर्शन-चरित्र ही हैं।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान : स्वरूप और चिन्तन

❑ श्री रमेश मुनि शास्त्री

निर्जरा तत्त्व का ही एक प्रकार है - ध्यान। अशुभ ध्यान / आर्त्त-रौद्र संसार वृद्धि का कारण है तो शुभ ध्यान/धर्म-शुक्ल शाश्वत सुखों की प्राप्ति में सहायक है। वस्तुतः मन का अन्तर्मुखी एवं अन्तर्लीन हो जाना ही ध्यान है। ध्यान - बिखरी हुई चित्तवृत्तियों के एकीकरण का अमोघ साधन है। ध्यान अज्ञानांधकार को विनष्ट कर अन्तश्चेतना में आलोक ही आलोक व्याप्त कर उसे ज्योतिर्मय बना देता है। ध्यान का सांगोपांग विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं - विद्वद्वर्य श्री रमेशमुनि जी म. 'शास्त्री'।

— सम्पादक

तप अध्यात्म-साधना का प्राणभूत तत्त्व है। जैसे शरीर में उष्मा जीवन के अस्तित्त्व का ज्वलन्त प्रतीक है, वैसे ही साधना में तप उस के ज्योतिर्मय अस्तित्त्व को अभिव्यक्त करता है। तप के अभाव में न निग्रह होता है और न अभिग्रह ही हो सकता है।

तप मूलतः एक है, अखण्ड है तथापि सापेक्ष दृष्टि से उसके दो वर्गीकृत रूप है। प्रथम बाह्य तप है और द्वितीय आभ्यन्तर तप है। इन दोनों के छः - छः प्रकार हैं। कुल मिलाकर तप के द्वादश भेद हैं। संक्षेप में उन का निर्देश इस प्रकार हैं।

१. बाह्य तप - जो तप बाहर में दिखलाई देता है या जिस में शरीर तथा इन्द्रियों का निग्रह होता है, वह बाह्य तप है, इस के छह भेद हैं।

१- अनशन	४- रस परित्याग
२- अवमोदरिका	५- कायक्लेश
३- भिक्षाचर्या	६- प्रतिसंलीनता

२. आभ्यन्तर तप - जिस तप में अन्तःकरण के व्यापारों की प्रधानता होती है। वह आभ्यन्तर तप है। इस के छह प्रकार हैं।

१. प्रायश्चित	२. विनय
३. वैयावृत्य	४. स्वाध्याय
५. ध्यान	६. व्युत्सर्ग

यह जो वर्गीकरण है, वह तप की प्रक्रिया को समझाने के लिये है। बाह्य तप से, तप का प्रारम्भ होता है और उस की पूर्णता आभ्यन्तर तप में होती है। ये दोनों तप एक दूसरे के पूरक हैं।

ध्यान = तप के बारह भेदों में - "ध्यान" ग्यारहवाँ प्रकार है और आभ्यन्तर तप में ध्यान का पाँचवां स्थान हैं। मन की एकाग्र अवस्था "ध्यान" है। अपने[3] विषय में मन का एकाग्र हो जाना "ध्यान" है। चित्त को किसी भी विषय में एकाग्र करना, स्थिर कर देना "ध्यान" है[4]। शुभ और पवित्र आलम्बन पर एकाग्र होना "ध्यान" है[5]। इसी सन्दर्भ में एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि मन का किसी भी विषय में स्थिर होना ही यदि "ध्यान" है तो लोभी मानव का ध्यान तो धनार्जन में लगा रहता है, चोर का ध्यान वस्तु को चुराने में लगा रहता है, क्या वह भी ध्यान है? उक्त प्रश्न का समाधान है कि पापात्मक चिन्तन की एकाग्रता भी ध्यान है। ध्यान दो

१. स्थानांगसूत्र स्थान - ६ सूत्र ६५
२. समवायांग सूत्र, समवाय ६ सूत्र ३१
३. अभिधान चिन्तामणि कोष ६/४५
४. आवश्यक निर्युक्ति - १४५६
५. द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका - १८/११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार का है। प्रथम शुभ ध्यान है और द्वितीय 'अशुभ ध्यान' है। शुभ ध्यान मोक्ष-प्राप्ति का हेतु है और अशुभ ध्यान संसार वृद्धि का प्रमुख कारण है। शुभ ध्यान ऊर्ध्वमुखी होता है तो अशुभ ध्यान अधोमुखी होता है। मन की अन्तर्लीनता, अन्तर्मुखता शुभ ध्यान है। मन तो स्वभावतः चंचल है। वह लम्बे समय तक एक वस्तु पर स्थिर नहीं रह सकता। उसे किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करना अत्यन्त ही कठिन है। वह अन्तर्मुहूर्त से अधिक एकाग्र नहीं रह सकता[६]। यह ध्रुव सत्य है कि ध्यान साधना के लिये परिग्रह-त्याग, कषाय-निग्रह, व्रत-धारण और इन्द्रिय-विजय करना नितान्त आवश्यक है, अनिवार्य है।

ध्यान के भेदों और उपभेदों के विषय में विशद एवं विस्तृत रूप से विचारणा हुई है। ध्यान के मुख्य भेद चार हैं। उन के नाम इस प्रकार हैं –

१. आर्त्तध्यान	३. धर्म ध्यान
२. रौद्र ध्यान	४. शुक्ल ध्यान

इन चार भेदों में, प्रारम्भ के दो ध्यान, अप्रशस्त हैं, अशुभ हैं अतएव ये दोनों प्रकार तप की कोटि में नहीं आते हैं। अन्तिम के दो ध्यान प्रशस्त हैं, शुभ हैं और वे तप की सीमा में समाविष्ट हैं। इन चारों ध्यानों का स्वरूप एवं सविस्तृत विचारणा, इस प्रकार की जा रही है।

१. आर्त्तध्यान - आर्ति नाम दुःख अथवा पीड़ा का है। उस में से जो उत्पन्न हो, वह आर्त्त है अर्थात् दुःख के निमित्त से या दुःख में होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान" है। प्रस्तुत ध्यान मनोज्ञ वस्तु के वियोग एवं अमनोज्ञ वस्तु के संयोग से होता है। परिणामतः अवांछनीय पदार्थ की उपलब्धि तथा अवांछनीय वस्तु की अनुपलब्धि होने पर जीव दुःखी होता है। इस ध्यान के चार प्रकार हैं। उन का स्वरूप इस प्रकार है।

१. अमनोज्ञ वस्तुओं की प्राप्ति होने पर उनके वियोग की चिन्ता करना!
२. मनोज्ञ - वस्तुओं की प्राप्ति होने पर उनके अवियोग की चिन्ता करना।
३. आतंक - घातक रोग होने पर उसके दूर करने का चिन्तन करना।
४. परिसेवित या प्रीतिकारक काम भोगों का संयोग होने पर उस का वियोग न हो, ऐसा चिन्तन करना।

अमनोज्ञ, अप्रिय और अनिष्ट ये तीनों एकार्थक शब्द हैं। इसी प्रकार इष्ट, प्रिय और मनोज्ञ ये तीनों एकार्थकवाची हैं। अनिष्ट वस्तु का संयोग अथवा इष्ट वस्तु का वियोग होने पर जो दुःख, शोक, संताप, आक्रन्दन और परिवेदन करता है, वह सब आर्त्तध्यान कहलाता है।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण हैं, वे इस प्रकार हैं।

१. **क्रन्दनता** - उच्च स्वर से बोलते हुए रोना।
२. **शोचनता** - दीनता प्रगट करते हुए शोक करना।
३. **तेपनता** - बार-बार अश्रुपात करना।
४. **परिदेवनता** - विलाप करना।

---

६. (क) ध्यान शतक - ३
(ख) तत्त्वार्थ सूत्र -६/२८
(ग) योग प्रदीप - १५/३३
७. (क) स्थानांग सूत्र - स्थान ४, उद्दे. १, सूत्र २४
(ख) समवायांग सूत्र, समवाय ४ सूत्र २
(ग) भगवती सूत्र - शतक २५, उद्दे. ७ सूत्र २८२
(घ) औपपातिक सूत्र, सूत्र ३०
(ङ) आवश्यक निर्युक्ति - १४५८
(८) क. आवश्यक अध्ययन - ४
(ख) भगवती सूत्र - शतक २५ उद्दे ७. सू. २३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे ध्यानी प्राणी का मन आत्मा के ज्योतिर्मय - स्वभाव से हट कर सांसारिक वस्तुओं में केन्द्रित होता है उसी में तन्मय बन जाता है।

२. **रौद्र ध्यान** – इस ध्यान में जीव सभी प्रकार के पापाचार करने में समुद्यत होता है। क्रूर या कठोर भाव वाले प्राणी को रुद्र कहते हैं वह निर्दयी बन कर क्रूर कार्यों का कर्ता बनता है इसलिये उसे रौद्र ध्यान कहते हैं। इस ध्यान के चार प्रकार हैं। वे ये हैं –

१. **हिंसानुबन्धी** – निरन्तर हिंसक प्रवृत्ति में तन्मयता कराने वाली चित्त की एकाग्रता।

२. **मृषानुबन्धी** – असत्य भाषण सम्बन्धी एकाग्रता।

३. **स्तेनानुबन्धी** – चोरी करने -कराने सम्बन्धी एकाग्रता।

४. **संरक्षणानुबन्धी** – परिग्रह के अर्जन एवं संरक्षण सम्बन्धी तन्मयता।

रौद्र ध्यान के चार लक्षण हैं, उनका स्वरूप इस प्रकार है।

१. **उत्सन्न दोष** – हिंसादि किसी एक पाप में निरन्तर प्रवृत्ति करना।

२. **बहुदोष** – हिंसादि सभी पापों के करने में संलग्न रहना।

३. **अज्ञान दोष** – कुशास्त्रों के संस्कार से हिंसादि अधार्मिक कार्यों को धर्म मानना।

४. **आमरणान्त दोष** – मरण काल तक भी हिंसादि करने का अनुपान न होना।

रौद्रध्यानी व्यक्ति कठोर और संक्लिष्ट परिणाम वाला होता है। वह दूसरे के दुःख, कष्ट एवं संकट में तथा पाप कार्य में प्रसन्न होता है, उस के मन में दयाभाव का अभाव होता है।

३. **धर्म ध्यान** - प्रस्तुत ध्यान आत्म-विकास का प्रथम चरण है। उक्त ध्यान में साधक आत्म चिन्तन में प्रवृत्त होता है। शास्त्र वाक्यों के अर्थ, धर्म मार्गणाएँ, व्रत, समिति, गुप्ति आदि भावनाओं का चिन्तन करना धर्मध्यान है इस ध्यान के लिये ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वैराग्य नितान्त अपेक्षित है। इन से सहज रूप से मन सुस्थिर हो जाता है। इस ध्यान की सिद्धि के लिये मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य इन चार भावनाओं का चिन्तन करना अनिवार्य[११] है। धर्मध्यान का सम्यक् आराधन एकान्त स्थान में हो सकता है। ध्यान आसन सुखकारक हो, जिस से ध्यान की मर्यादा स्थिर रह सके। यह ध्यान पद्मासन से बैठकर या खड़े होकर भी किया जा सकता है।[१२] धर्मध्यान में मुख्य तीन अंग है – ध्याता, ध्यान और ध्येय। ध्यान का अधिकारी ध्याता है। एकाग्रता-ध्यान है। जिस का ध्यान किया जाता है, वह ध्येय है। चंचल मन वाला मानव ध्यान नहीं कर सकता। जहाँ आसन की स्थिरता ध्यान-साधना में आवश्यक है, वहाँ मन की स्थिरता भी अति अपेक्षित है। मानसिक चंचलता के कारण कभी-कभी साधक का मन ध्यान में स्थिर नहीं होता। इसलिये धर्म ध्यान के चार भेद हैं।[१३] उनका

---

९ (क) ज्ञानार्णव २४/३।
  (ख) तत्त्वार्थ सूत्र ४/३६।

१० ज्ञानसार १६।

११ ज्ञानार्णव २५/४।

१२ ध्यान शतक - श्लोक ३८-३९।

१३(क) स्थानांग सूत्र ४/१/६५
  (ख) भगवती सूत्र २५/७/२४२।
  (ग) योग शास्त्र - १०/७।
  (घ) ज्ञानार्णव ३०/५।
  (ङ) तत्त्वानुशासन ६/८।

१४. योगशास्त्र - १०/१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप इस प्रकार हैं –

१. **आज्ञा विचय** – जिन आज्ञा रूप प्रवचन के चिन्तन में संलग्न रहना।

२. **अपाय विचय** – संसार - पतन के कारणों का विचार करते हुए उन से बचने का उपाय करना।

३. **विपाक विचय** – कर्मों के फल का विचार करना।

४. **संस्थान विचय** – जन्म-मृत्यु के आधार भूत पुरुषाकार लोक के स्वरूप का चिन्तन करना।

यहाँ "विचय" शब्द का अर्थ – चिन्तन है।

ध्येय के विषय में तीन बातें मुख्य हैं। वे इस प्रकार हैं।

१. एक, **परावलम्बन** – जिस में दूसरी वस्तुओं का अवलम्बन लेकर मन को स्थिर करने का प्रयास किया जाता है। जब एक पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित हो जाती है तो मन स्थिर हो जाता है।

२. दूसरा प्रकार **स्वरुपालम्बन** है। इस में बाहर से दृष्टि हटा कर नेत्रों को बन्द कर विविध प्रकार की कल्पनाओं से यह ध्यान किया जाता है।

३. तीसरा प्रकार है – **निरावलम्बन**। इस में किसी भी प्रकार का कोई आलम्बन नहीं होता। मन विचार, विकार और विकल्पों से शून्य होता है। इस में निरंजन, निराकार सिद्ध-स्वरूप का ध्यान किया जाता है। और आत्मा स्वयं कर्म-मल से मुक्त होने का अभ्यास करता है। इस ध्यान में साधक यह सम्यकुरुपेण समझ लेता है कि मैं आत्मा हूँ, इन्द्रियाँ और मन अलग हैं। ध्यान-साधक स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है। रूप से अरूप की ओर बढ़ने के लिये अत्यधिक अभ्यास की आवश्यकता है। रूपातीत ध्यान जब सिद्ध हो जाता है, तब भेदरेखा समाप्त हो जाती है। ध्याता, ध्यान और ध्येय ये तीनों एकाकार हो जाते हैं। ध्येय के चार भेद हैं।[१५] उन का स्वरूप इस प्रकार है –

१. **पिण्डस्थ** – इस का अर्थ है - शरीर के विभिन्न भागों पर मन को केन्द्रित करना। पिण्डस्थ ध्यान पिण्ड से सम्बन्धित है। इस में पांच धारणाएँ होती हैं,[१६] उन के नाम ये हैं —

१. पार्थिवी।	३. मारुती।
२. आग्नेयी।	४. वारुणी।

५. तत्त्ववती।

इन पांच धारणाओं के माध्यम से साधक उत्तरोत्तर आत्म-केन्द्र में ध्यानस्थ होता है। चतुर्विध धारणाओं से युक्त पिण्डस्थ ध्यान का अभ्यास करने से मन स्थिर होता है जिस से शरीर और कर्म के सम्बन्ध को भिन्न रूप से देखा जाता है। कर्म नष्ट कर आत्मा के ज्योतिर्मय स्वरूप का चिन्तन इस में होता है।

२. **पदस्थ** – अपनी रुचि के अनुसार मन्त्राक्षर पदों का अवलम्बन लेकर किया जाने वाला ध्यान है। इस ध्यान में मुख्य रूप से शब्द आलम्बन होता है। अक्षर पर ध्यान करने से इसे वर्णमात्रिक ध्यान भी कहते है[१७]। इस ध्यान में नाभिकमल, हृदयकमल और मुख कमल की कमनीय कल्पना की जाती है। मन्त्रों और वर्णों में श्रेष्ठ ध्यान "अर्हन्" का माना गया है। जो रेफ से युक्त कला व बिन्दु से आक्रान्त अनाहत सहित मन्त्रराज[१८] है। इस

१५(क) योग शास्त्र ७/८।
(ख) योगसार - ९८।
(ग) ज्ञानार्णव - ३१ सर्ग, ३७ सर्ग, ४१ सर्ग।
१६ योगशास्त्र ७/९। ७/१० ३५
१७ ज्ञानार्णव ३५ - १,२।
१८ ज्ञानार्णव ३५ - ७-८।
१९ (क) ज्ञानार्णव ३६-१६।
(ख) योगशास्त्र १०/८।
२० (क) भगवतीसूत्र २५/७।। (ख) तत्त्वार्थसूत्र ९/४१।।
(ग) स्थानांगसूत्र ४/१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्त्रराज पर ध्यान किया जाता है। इस ध्यान में साधक इन्द्रियलोलुपता से मुक्त होकर मन को अधिक विशुद्ध एवं एकाग्र बनाने का प्रयास करता है।

३. **रूपस्थ** – इस में राग, द्वेष आदि विकारों से रहित, समस्त सद्गुणों से युक्त, सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रभु का ध्यान किया जाता है। उनका अवलम्बन लेकर ध्यान का अभ्यास किया जाता है।

४. **रूपातीत** – इस का अर्थ है रूप-रंग से अतीत, निरंजन-निराकार ज्ञानमय आनन्द-स्वरूप का स्मरण करना।[१८] इस ध्यान में ध्याता और ध्येय में कोई अन्तर नहीं रहता है।

इन चारों धर्मध्यान के प्रकारों में क्रमशः शरीर, अक्षर, सर्वज्ञ व निरंजन सिद्ध का चिन्तन किया जाता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ा जाता है।

धर्मध्यान के चार लक्षण हैं, उनका स्वरूप इस प्रकार हैं –

१. **आज्ञारुचि** – जिन-आज्ञा के चिन्तन - मनन में रुचि, श्रद्धा होना
२. **निसर्ग रुचि** – धर्म-कार्यों के करने में स्वाभाविक रुचि होना।
३. **सूत्र रुचि** – आगमों के पठन-पाठन में रुचि होना।
४. **अवगाढ़रुचि** – द्वादशांगी का गम्भीर ज्ञान प्राप्त करने में प्रगाढ़ रुचि होना।

धर्म ध्यान के चार आलम्बन हैं, इनका स्वरूप इस प्रकार हैं –

१. वाचना – आगम सूत्र का पठन - पाठन करना।
२. प्रतिपृच्छना – शंका निवारणार्थ गुरुजनों से पूछना।
३. परिवर्तना – पठित सूत्रों का पुनरावर्तन करना।
४. अनुप्रेक्षा – अर्थ का चिन्तन करना।

धर्म ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ हैं, उन का स्वरूप इस प्रकार है।

१. **एकत्वानुप्रेक्षा** – जीव के सदा अकेले परिभ्रमण और सुख - दुःख भोगने का चिन्तन करना।
२. **अनित्यानुप्रेक्षा** – सांसारिक - वस्तुओं की अनित्यता का चिन्तन करना।
३. **अशरणानुप्रेक्षा** – जीव को कोई दूसरा धन, परिवार आदि शरणभूत नहीं, ऐसा चिन्तन करना।
४. **संसारानुप्रेक्षा** – चतुर्गति रूप संसार की दशा का चिन्तन करना।

धर्म ध्यान, सभी प्राणी नहीं कर सकते। इस ध्यान से मन में स्थैर्य व पवित्रता आ जाती है। प्रस्तुत ध्यान शुक्ल ध्यान की भूमिका का निर्माण करता है।

४. **शुक्ल ध्यान** – प्रस्तुत ध्यान ध्यान की परम उज्ज्वल अवस्था है। मन की आत्यन्तिक स्थिरता और योग का निरोध शुक्ल ध्यान है। शुक्लध्यानी देहातीत स्थिति में रहता है। शुक्लध्यान के चार भेद हैं, उन का स्वरूप इस प्रकार है।

१. **पृथक्त्ववितर्क सविचार** – पृथक्त्व का अर्थ है – भेद। वितर्क का तात्पर्य है – श्रुत। प्रस्तुत ध्यान में द्रव्य, गुण और पर्याय पर चिन्तन करते हुए द्रव्य से पर्याय पर और पर्याय से द्रव्य पर चिन्तन किया जाता है। इस में भेद प्रधान चिन्तन होता है।

२. **एकत्त्व वितर्क अविचार** – पूर्वगत श्रुत का आधार लेकर उत्पाद आदि पर्यायों के एकत्व अर्थात् अभेद रूप से किसी एक पदार्थ या पर्याय का स्थिर चित्त से चिन्तन करना एकत्व वितर्क अविचार शुक्ल ध्यान कहलाता है।

३. **सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपाति** – यह ध्यान बहुत ही सूक्ष्म क्रिया पर चलता है। इस ध्यान में अवस्थित होने पर योगी पुनः ध्यान से विचलित नहीं होता। इस कारण इस ध्यान को सूक्ष्म-क्रिया-अप्रतिपाति कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. **समुच्छिन्नक्रिय-अनिवृत्ति** – शैलेसी अवस्था को प्राप्त केवली भगवान् सभी योगों का निरोध कर देते हैं। योगों के निरोध से सभी क्रियाओं का अभाव हो जाता है। इस ध्यान में लेश मात्र भी क्रिया शेष नहीं रहती है।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण हैं, उन का स्वरूप इस प्रकार है –

१. **क्षान्ति** – क्रोध न करना, और उदय में आये हुए क्रोध को विफल कर देना।
२. **मुक्ति** – लोभ का त्याग है, उदय में आये हुए लोभ को विफल कर देना।
३. **आर्जव** – सरलता। माया को उदय में नहीं आने देना, उदय में आयी माया को विफल कर देना।
४. **मार्दव** – मान न करना, उदय में आये हुए मान को निष्फल कर देना।

शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन हैं, उन का स्वरूप इस प्रकार हैं –

१. **अव्यय** – शुक्लध्यानी परिषहों और उपसर्गों से डर कर, ध्यान से विचलित नहीं होता।
२. **असम्मोह** – शुक्लध्यानी को देवादिकृत माया में या अत्यन्त गहन सूक्ष्म विषयों में सम्मोह नहीं होता।
३. **विवेक** – शुक्लध्यानी शरीर से आत्मा को भिन्न तथा शरीर से सम्बन्धित सभी संयोगों को आत्मा से भिन्न समझता है।
४. **व्युत्सर्ग** – वह अनासक्त भाव से शरीर और समस्त संयोगों को आत्मा से भिन्न समझता है।

शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ, उनका स्वरूप इस प्रकार है –

१. **अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा** – संसार में परिभ्रमण की अनन्तता का विचार करना।
२. **विपरिणामानुप्रेक्षा** – पदार्थों के भिन्न-भिन्न परिणमनों का विचार करना।
३. **अशुभानुप्रेक्षा** – संसार, शरीर और भोगों की अशुभता का विचार करना।
४. **अपायानुप्रेक्षा** – राग-द्वेष से होने वाले दोषों का विचार करना।

ये चारों अनुप्रेक्षाएँ शुक्ल ध्यान की प्राथमिक अवस्थाओं में होती है, जिससे आत्मा अन्तर्मुखी बनती है और स्वतः ही बाह्योन्मुखता समाप्त हो जाती है।

सारपूर्ण भाषा में यही कहा जा सकता है कि ध्यान एक सर्वोत्तम साधन है, जिससे, बिखरी हुई चित्तवृत्तियाँ एक ही केन्द्र पर सिमट आती हैं। यथार्थ अर्थ में ध्यान एक ऐसी अक्षय एवं अपूर्व ज्योति है, जो हमारी अन्तश्चेतना को ज्योतिर्मयी बनाती है, अन्तर्मन में रहे हुए अज्ञान रूपी अन्धकार को सर्वथा रूपेण विनष्ट कर देती है। और जीवन में जागृति का नव्य एवं भव्य संचार करती है।

✣ ✣ ✣

❑ **आपका जन्म नागौर जिलान्तर्गत बडू ग्राम में दि. २४-१-१९५१ को हुआ। चौदह वर्ष की अल्पायु में ही उपाध्याय प्रवर श्री पुष्करमुनि जी म.सा. के पास आर्हती दीक्षा धारण की। न्याय, व्याकरण, काव्य, जैनागम, जैन साहित्य का तलस्पर्शी ज्ञान। संस्कृत, प्राकृत भाषा के आधिकारिक विद्वान्। लेखक एवं साहित्यकार। शोध एवं चिंतन प्रधान लेखन में सिद्धहस्त। सिद्धान्ताचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यशास्त्री। संस्कृत-प्राकृत में श्लोकों की रचना करना आपकी विशिष्टता है। संस्कृत-प्राकृत के अध्यापन एवं शोध निर्देशन में अभिरुचि। स्वभाव से सहृदयी, सरल एवं सौम्यता की प्रतिमूर्ति। 'गुणिषु प्रमोदं' की भावना अहर्निश मानस में व्याप्त। जैन विद्वानों में अग्रणी, सैकड़ों शोध प्रधान आलेख प्रकाशित। - सम्पादक**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर पार्श्वनाथ का लोकव्यापी व्यक्तित्व और चिन्तन

❑ डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी

भगवान् महावीर के पूर्ववर्ती थे – तीर्थंकर पार्श्वनाथ ! तीर्थंकर पार्श्वनाथ का व्यक्तित्व और चिन्तन आगमों में यत्र-तत्र मुखरित हुआ है। उन्हीं के व्यक्तित्व एवं चिंतन कणों को शोध-खोज कर ले आये हैं – डॉ. फूलचंदजी जैन 'प्रेमी'।

– सम्पादक

वर्तमान में जैन परम्परा का जो प्राचीन साहित्य उपलब्ध है, उसका सीधा सम्बन्ध चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर से है। इनसे पूर्व नौवीं शती ईसा पूर्व काशी में जन्मे तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी इस श्रमण परम्परा के महान् पुरस्कर्ता थे। उनके विषय में व्यवस्थित रूप में कोई साहित्य वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, किन्तु अनेक प्राचीन ऐतिहासिक प्रामाणिक स्रोतों से ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में मान्य हैं और उनके आदर्शपूर्ण जीवन और धर्म-दर्शन की लोक-व्यापी छवि आज भी सम्पूर्ण भारत तथा इसके सीमावर्ती क्षेत्रों और देशों में विविध रूपों में दिखलाई देती है।

अर्धमागधी प्राकृत साहित्य में उनके लिए "पुरुसादाणीय" अर्थात् लोकनायक श्रेष्ठ पुरुष जैसे अति लोकप्रिय व्यक्तित्व सूचक अनेक सम्मानपूर्ण विशेषणों का उल्लेख मिलता है। वैदिक और बौद्ध धर्मों तथा अहिंसा और आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति पर इनके चिन्तन और प्रभाव की गहरी छाप आज भी अमिट रूप से विद्यमान है। वैदिक, जैन और बौद्ध साहित्य में इनके उल्लेख तथा यहाँ उल्लिखित **व्रात्य, पणि** और **नाग** आदि जातियाँ स्पष्टतः पार्श्वनाथ की अनुयायी थीं। भारत के पूर्वी क्षेत्रों विशेषकर बंगाल, विहार, उड़ीसा आदि अनेक प्रान्तों के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में लाखों की संख्या में बसने वाली **सराक, सद्गोप, रंगिया** आदि जातियों का सीधा और गहरा सम्बन्ध तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा से है। इन लोगों के दैनिक जीवन-व्यवहार की क्रियाओं और संस्कारों पर तीर्थंकर पार्श्वनाथ और उनके चिन्तन की गहरी छाप है। सम्पूर्ण सराक जाति तथा अनेक जैनेतर जातियां अपने कुलदेव तथा इष्टदेव के रूप में आज तक मुख्य रूप से इन्हीं को मानती रही हैं। ईसा पूर्व दूसरी-तीसरी शती के सुप्रसिद्ध जैन धर्मानुयायी कलिंग नरेश महाराजा खारवेल भी इन्हीं के प्रमुख अनुयायी थे। अंग, बंग, कलिंग, कुरु, कौशल, काशी, अवन्ती, पुण्ड, मालव, पांचाल, मगध, विदर्भ, भद्र, दशार्ण, सौराष्ट्र, कर्नाटक, कोंकण, मेवाड़, लाट, काश्मीर, कच्छ, वत्स, पल्लव और आमीर आदि तत्कालीन अनेक क्षेत्रों और देशों का उल्लेख आगमों में मिलता है, जिनमें पार्श्व प्रभु ने ससंघ विहार करके जन-जन को हितकारी धर्मोपदेश देकर जागृति पैदा की।

इस प्रकार तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा उनके लोकव्यापी चिन्तन ने लम्बे समय तक धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र को प्रभावित किया है। उनका धर्म व्यवहार की दृष्टि से सहज था। धार्मिक क्षेत्रों में उस समय पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा आदि के लिए हिंसामूलक यज्ञ तथा अज्ञानमूलक तप का बड़ा प्रभाव था, किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्होंने पूर्वोक्त क्षेत्रों में विहार करके अहिंसा का समर्थ प्रचार किया, जिसका समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा और अनेक आर्य तथा अनार्य जातियाँ उनके धर्म में दीक्षित हो गईं। राजकुमार अवस्था में कमठ द्वारा काशी के गंगाघाट पर पंचाग्नि तप तथा यज्ञाग्नि में जलते नाग-नागनी का णमोकार मंत्र द्वारा उद्धार की प्रसिद्ध घटना, यह सब उनके द्वारा धार्मिक क्षेत्र में हिंसा और अज्ञान के विरोध और अहिंसा तथा विवेक की स्थापना का प्रतीक है।

जैनधर्म का प्राचीन इतिहास (भाग १, पृष्ठ ३५९) के अनुसार, नाग तथा द्रविड़ जातियों में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मान्यता असंदिग्ध थी। श्रमण संस्कृति के अनुयायी व्रात्यों में नागजाति सर्वाधिक शक्तिशाली थी। तक्षशिला, उद्यानपुरी, अहिच्छत्र, मथुरा, पद्मावती, कान्तिपुरी, नागपुर आदि इस जाति के प्रसिद्ध केन्द्र थे। भगवान् पार्श्वनाथ नाग जाति के इन केन्द्रों में कई बार पधारे और इनके चिन्तन से प्रभावित होकर सभी इनके अनुयायी बन गये। इस दिशा में गहन अध्ययन और अनुसंधान से आश्चर्यजनक नये तथ्य सामने आ सकते हैं तथा तीर्थंकर पार्श्वनाथ के लोकव्यापी स्वरूप को और अधिक स्पष्ट रूप में उजागर किया जा सकता है।

हमारे देश के हजारों नये और प्राचीन जैनस्मारकों में सर्वाधिक तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्तियों की उपलब्धता भी उनके प्रति गहरा आकर्षण, गहन आस्था और व्यापक प्रभाव का ही परिणाम है।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ के बाद तथा तीर्थंकर महावीर के समय तक पार्श्वनाथ के अनुयायियों की परम्परा अत्यधिक जीवंत और प्रभावक अवस्था में थी। अर्धमागधी आगमों में **"पासावच्चिज्ज"** अर्थात् पार्श्वापत्यीय तथा **"पासत्थ"** अर्थात् पार्श्वस्थ के रूप उल्लिखित शब्द पार्श्वनाथ के अनुयायियों के लिए प्रयुक्त किया मिलता है। **"पार्श्वापत्यीय"** शब्द का अर्थ है पार्श्व की परम्परा के अर्थात् उनकी परम्परा के अनुयायी श्रमण और श्रमणोपासक।

अर्धमागधी अंग आगम साहित्य में पंचम अंग आगम भगवती सूत्र, जिसे व्याख्या-प्रज्ञप्ति भी कहा जाता है, में पार्श्वापत्यीय अणगार और गृहस्थ दोनों के विस्तृत विवरण प्राप्त होते हैं। इनके सावधानीपूर्वक विश्लेषण से प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर के युग में पार्श्व का दूर-दूर तक व्यापक प्रभाव था तथा में पार्श्वापत्यीय श्रमण एवं उपासक बड़ी संख्या विद्यमान थे। मध्य एवं पूर्वी देशों के व्रात्य क्षत्रिय उनके अनुयायी थे। गंगा का उत्तर एवं दक्षिण भाग तथा अनेक नागवंशी राजतंत्र और गणतंत्र उनके अनुयायी थे। उत्तराध्ययन सूत्र के तेईसवें अध्ययन का "केशी-गौतम" संवाद तो बहुत प्रसिद्ध है ही। श्रावस्ती के ये श्रमण केशीकुमार भी पार्श्व की ही परम्परा के साधक थे। सम्पूर्ण राजगृह भी पार्श्व का उपासक था। तीर्थंकर महावीर के माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी[२] पार्श्वापत्य परम्परा के श्रमणेपासक थे। जैसा कि कहा भी है –

"समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा वा वि होत्था (आचारांग २, चूलिका ३, सूत्र ४०१) भगवान् महावीर स्वयं कुछ प्रसंगों में पार्श्वापत्यीयों के ज्ञान और प्रश्नोत्तरों की प्रशंसा करते हैं[३]। एक अन्य प्रसंग में वे पार्श्व प्रभु को अरहंत, **पुरिसादाणीय** (पुरुषादानीय – पुरुष श्रेष्ठ या लोकनायक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे सम्मानपूर्ण विशेषणों से सम्बोधित करते हैं[४]।

भगवती सूत्र में तुंगिया नगरी में ठहरे उन पाँच सौ पार्श्वापत्यीय स्थविरों का उल्लेख विशेष ध्यातव्य है जो पार्श्वापत्यीय श्रमणोपासकों को चातुर्याम धर्म[५] का उपदेश देते हैं तथा श्रमणोपासकों द्वारा पूछे गये संयम, तप तथा इनके फल आदि के विषय में प्रश्नों का समाधान करते हैं। इन प्रश्नोत्तरों का पूरा विवरण जब इन्द्रभूति गौतम को राजगृह में उन श्रावकों द्वारा ज्ञात होता है, तब जाकर भगवान् महावीर को प्रश्नोत्तरों का पूरा विवरण सुनाते हुए पूछते हैं – **भंते, क्या पार्श्वापत्यीय स्थविरों द्वारा किया गया समाधान सही है? क्या वे अभ्यासी और विशिष्ट ज्ञानी हैं?** भगवान् महावीर स्पष्ट उत्तर देते हुए कहते हैं - **अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि भासामि, पण्णवेमि परूवेमि...। सच्चं णं एसमट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए**[६]। अर्थात्, हाँ गौतम ! पार्श्वापत्यीय स्थविरों द्वारा किया गया समाधान सही है। वे सही उत्तर देने में समर्थ हैं। मैं भी इन प्रश्नों का यही उत्तर देता हूँ। आगे गौतम के पूछने पर कि ऐसे श्रमणों की उपासना से क्या लाभ? भगवान् कहते हैं – सत्य सुनने को मिलता है[७]। आगे-आगे उत्तरों के अनुसार प्रश्न भी निरन्तर किये गये।

इन प्रसंगों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि तीर्थंकर महावीर के सामने पार्श्व के धर्म, ज्ञान, आचार और तपश्चरण आदि की समृद्ध परम्परा रही है और भगवान् महावीर उसके प्रशंसक थे।

पालि साहित्य में निर्ग्रन्थों के **"वप्प शाक्य"** नामक श्रावक का उल्लेख मिलता है, जो कि बुद्ध के चूल पिता (पितृव्य) थे[८]। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध का पितृत्व कुल पार्श्वापत्यीय था। कुछ उल्लेखों से यह भी सिद्ध होता है कि भगवान् बुद्ध आरम्भ में भगवान् पार्श्व की निर्ग्रन्थ परम्परा में दीक्षित हुए थे। किन्तु, बाद में उन्होंने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाया।

भगवान् बुद्ध के एक जीवन-प्रसंग से यह पता चलता है कि वे अपनी साधनावस्था में पार्श्व-परम्परा से अवश्य सम्बद्ध रहे हैं। अपने प्रमुख शिष्य सारिपुत्र से वे कहते हैं – **"सारिपुत्र, बोधि-प्राप्ति से पूर्व मैं दाढ़ी, मूंछों का लूंचन करता था। मैं खड़ा रहकर तपस्या करता था। उकडू बैठकर तपस्या करता था। मैं नंगा रहता था। लौकिक आचारों का पालन नहीं करता था। हथेली पर भिक्षा लेकर खाता था।.... बैठे हुए स्थान पर आकर दिये हुए अन्न को, अपने लिये तैयार किए हुए अन्न को और निमंत्रण को भी स्वीकार नहीं करता था। गर्भिणी और स्तनपान कराने वाली स्त्री से भिक्षा नहीं लेता था**[१०]। यह समस्त आचार जैन साधुओं का है। इससे प्रतीत होता है कि गौतम बुद्ध पार्श्वनाथ-परम्परा के किसी श्रमण-संघ में दीक्षित हुए और वहाँ से उन्होंने बहुत कुछ सद्ज्ञान प्राप्त किया।

देवसेनाचार्य (८वीं शती) ने भी गौतम बुद्ध के द्वारा प्रारम्भ में जैन दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख करते हुए कहा है – जैन श्रमण पिहिताश्रव ने सरयू नदी के तट पर पलाश नामक ग्राम में श्री पार्श्वनाथ के संघ में उन्हें दीक्षा दी और उनका नाम मुनि बुद्धकीर्ति रखा। कुछ समय बाद वे मत्स्य-मांस खाने लगे और रक्त वस्त्र पहनकर अपने नवीन धर्म का उपदेश करने लगे[११]। यह उल्लेख अपने आप में बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व नहीं रखता, फिर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी यथा प्रकार के समुल्लेखों के साथ अपना एक स्थान अवश्य बना लेता है[१२]।

पालि दीघनिकाय के सामण्णफल सुत्त में मक्खलि गोशालक आदि जिन छह तीर्थंकरों के मतों का प्रतिपादन है, उनमें निग्गण्ठनातपुत्त के नाम से जिन चातुर्याम संवर अर्थात् **सव्ववारिवारित्तो, सव्ववारियुतो, सव्ववारिधुतो** और **सव्ववारिफुटो** की चर्चा है, वैसी किसी भी जैनग्रन्थों में नहीं मिलती। स्थानांग, भगवती उत्तराध्ययन आदि सूत्र ग्रन्थों में तो पार्श्व प्रभु के सर्व प्राणातिपात विरति, सर्वमृषावाद विरति, सर्व अदत्तादान विरति और सर्व बहिर्धादान विरति रूप चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन मिलता है। जबकि दिगम्बर परम्परा के अनुसार सभी तीर्थंकरों ने पाँच महाव्रत रूप आचार धर्म का प्रतिपादन समान रूप से किया है। यह भी ध्यातव्य है कि अर्धमागधी परम्परानुसार चातुर्याम का उपदेश पार्श्वनाथ ने दिया था, न कि ज्ञातपुत्र महावीर ने। किन्तु इस उल्लेख से यह अवश्य सिद्ध होता है कि भगवान् बुद्ध के सामने भी पार्श्वनाथ के चिन्तन का काफी व्यापक प्रभाव था और पार्श्वापत्यियों से भी उनका अच्छा परिचय था।

कुछ इतिहासकारों का यह भी मानना है कि यज्ञ-यागादि प्रधान वेदों के बाद उपनिषदों में आध्यात्मिक चिन्तन की प्रधानता में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चिन्तन का भी काफी प्रभाव पड़ा है। इस तरह वैदिक परम्परा के लिए तीर्थंकर पार्श्वनाथ का आध्यात्मिक रूप में बहुमूल्य योगदान कहा जा सकता है।

इस प्रकार तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रभावक व्यक्तित्व और चिन्तन ऐसा लोकव्यापी था कि कोई भी एक बार इनके या इनकी परम्परा के परिपार्श्व में आने पर उनका प्रबल अनुयायी बन जाता था। उनके विराट् व्यक्तित्व का विवेचन कुछ शब्दों या पृष्ठों में करना असम्भव है, फिर भी विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन और सीमित शक्ति से उन्हें जितना जान पाया, यहाँ श्रद्धा विनत प्रस्तुत किया है ताकि हम सभी उनके प्रभाव को जानकर उन्हें जानने-समझने के लिए आगे प्रयत्नशील हो सकें।

— रीडर एवं अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

✣ ✣ ✣

सन्दर्भ

०१. क. पार्श्वापत्यानां-पार्श्वजिन शिष्याणामयं पार्श्वापत्यीयः — भगवती टीका १/६

ख. पार्श्वापत्यस्य-पार्श्वस्वामि शिष्यस्य अपत्यं शिष्यः पार्श्वापत्यीयः - सूत्र ०२/७

०२. वेसलिए पुरीए सिरियासजिणे ससासणसणहो।
हेहयकुलसंभूओ चेड़गनामा निवो आसि।। उपदेशमाला गाथा ६२.

०३. भगवई २/५, पैरा ११०, पृष्ठ. १०८.

०४. पासेणं अरहया पुरिसादाणिएणं सासए लोए बुइए अणादीए अणवदग्गे परित्ते परिवुडे हेट्ठा विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते,
उप्पिं विसाले-भगवई २/५/९/२५५ पृष्ठ. २३१

०५. भगवई २/५/९८ पृष्ठ. १०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

०६. वही २/५/११० पृष्ठ. १०८
०७. वही २/५/११० पृष्ठ. १०६
०८. पालि अंगुत्तर निकाय चतुष्कनिपात महावग्गो वप्पसुत्त ४-२०-५
०९. क. मज्झिमनिकाय महासिंहनाद सुत्त १/१/२, दीघनिकाय पासादिकसुत्त
ख. पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म पृष्ठ. २४
१०. मज्झिमनिकाय महासिंहनाद सुत्त १/१/२, धर्मानन्द कौशाम्बी भ.बुद्ध पृष्ठ.६८-६६
११. सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थी।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो वड्ढकित्तिमुणी।।... रत्तबरं धरित्ता पवट्टिय तेण एयतं ।। दर्शनसार श्लोक ६-८
१२. आगम और त्रिपिटकः एक अनुशीलन पृष्ठ. २

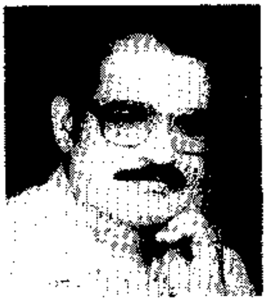

❑ जैनदर्शन, साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति के संवर्द्धन, संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार में सदैव तत्पर डॉ. श्री फूलचन्दजी जैन 'प्रेमी' का जन्म १२ जुलाई १९४८ को दलपतपुर ग्राम (सागर - म.प्र.) में हुआ। प्रारंभिक शिक्षोपरांत आपने जैनधर्म विशारद, सिद्धान्त शास्त्री, साहित्याचार्य, एम.ए. एवं शास्त्राचार्य की परीक्षाएं दी। "मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन" विषय पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा पी.एच.डी. की उपाधि से विभूषित डॉ. प्रेमी जी को कई पुरस्कारों से आज दिन तक सम्मानित किया गया है।

जैन जगत् के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. प्रेमी ने अनेक कृतियों का लेखन-संपादन करके जैन साहित्य में श्री वृद्धि की है। अनेक शोधपरक निबंध जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित! राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में जैनदर्शन विषयक व्याख्यान ! 'जैन रत्न' की उपाधि से विभूषित डॉ. प्रेमी जी सरलमना एवं सहृदयी सज्जन है।

— सम्पादक

कर्म क्या है ? मन-वाणी और शरीर द्वारा शुभ-अशुभ, स्पन्दना का होना तथा क्रोधादि संक्लेश भावों से कार्य करना उससे आत्मप्रदेशों पर कर्माणुओं का संग्रह होना कर्म है। उसका कालान्तर में जागृत होना कर्मफल का भोग है। किया हुआ व्यर्थ नहीं जाता वह फलवान होता है। आदमी के चाहने न चाहने, मानने न मानने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

✤ ✤ ✤

जब अपने पर ही भरोसा नहीं है तो फिर परमात्मा पर भरोसा कैसे आयेगा? फिर संभ्रान्त, दिशा-विमूढ़ की भाँति इतस्ततः संसार में भटकते रहोगे। इसलिए आत्मा पर विश्वास होना अति आवश्यक है। आत्मा का अस्तित्व है तो वहाँ पर लोक का अस्तित्व है, लोक है तो वहाँ कर्म का अस्तित्व है, कर्म है वहाँ क्रिया भी है।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनागम में भारतीय शिक्षा के मूल्य

❑ दुलीचन्द जैन "साहित्यरत्न"

जैनागमों में शिक्षा के श्रेष्ठ सूत्र व्याख्यायित है। शिक्षा मनुष्य के जीवन में उच्च संस्कारों की स्थापना करने में सक्षम होनी चाहिये। सम्यक शिक्षा मनुष्य को न केवल भौतिक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराती है परंतु उसकी आंतरिक शक्ति का भी विकास करती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य के जीवन में विनय, विवेक, चरित्रशीलता व करुणा आदि गुणों का विकास होना चाहिये। जैनागमों के आधार पर भारतीय शिक्षा के मूल्यों की व्याख्या कर रहे हैं जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, चेन्नई के सचिव श्री दुलीचन्द जैन।

— सम्पादक

पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के दुष्परिणाम-

हमारे देश को स्वतंत्र हुए अर्द्धशताब्दी व्यतीत हो चुकी है और सन् १९९७ में हमने आजादी की स्वर्ण जयन्ती मनाई थी। लेकिन यह हमारा दुर्भाग्य है कि इतने वर्षों के बाद भी हमने भारतीय शिक्षा के जो जीवन-मूल्य हैं उनको हमारी शिक्षा-पद्धति में विनियोजित नहीं किया। हम लोगों ने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को ही अपनाया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि जहाँ एक ओर देश में शिक्षा संस्थाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिनमें करोडों बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, वहीं जीवन- उत्थान के संस्कार हमारे ऋषियों, तीर्थकरों एवं आचार्यों ने जो प्रदान किये थे, वे आज भी हम हमारे बच्चों को नहीं दे पा रहे हैं। एक विचारक ने ठीक ही कहा है - "वर्तमान भारतीय शिक्षा-प्रणाली न "भारतीय" है और न ही वास्तविक "शिक्षा"। भारतीय परंपरा के अनुसार शिक्षा मात्र सूचनाओं का भंडार नहीं है, शिक्षा चरित्र का निर्माण, जीवन-मूल्यों का निर्माण है। **डॉ. अल्तेकर** ने प्राचीन भारतीय शिक्षा के संदर्भ में लिखा है - "प्राचीन भारत में शिक्षा अन्तज्योति और शक्ति का स्रोत मानी जाती थी, जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के संतुलित विकास से हमारे स्वभाव में परिवर्तन करती और उसे श्रेष्ठ बनाती है। इस प्रकार शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि हम एक विनीत और उपयोगी नागरिक के रूप में रह सकें।[१]" स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक समितियों एवं शिक्षा आयोगों ने भी इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया और इस बात पर जोर दिया कि हमारे राष्ट्र के जो सनातन जीवन मूल्य हैं, वे हमारी शिक्षा पद्धति में लागू होने ही चाहिए। सन् १९६४ से १९६६ तक डॉ. दौलतसिंह कोठारी - जो एक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक थे, की अध्यक्षता में 'कोठारी आयोग' का गठन हुआ। इसने अपने प्रतिवेदन में कहा - "केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों को नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा का प्रबन्ध अपने अधीनस्थ संस्थाओं में करना चाहिये।" सन् १९७५ में एन.सी.ई.आर.टी. ने अपने प्रतिवेदन में कहा - "विद्यालय पाठ्यक्रम की संरचना इस ढंग से की जाए कि चरित्र निर्माण शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य बने।"

हमारे स्थायी जीवन मूल्य

हमारे संविधान में "धर्म-निरपेक्षता" को हमारी नीति का एक अंग माना है। "धर्म निरपेक्षता" शब्द भ्रामक है क्योंकि भारतीय परंपरा के अनुसार हम "धर्म" से निरपेक्ष

१. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति - डॉ. अनंत सदाशिव अल्तेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं रह सकते। धर्म निरपेक्षता का अर्थ मात्र इतना ही हो कि राज्य किसी विशेष धर्म का प्रचार नहीं करे, तब तक तो ठीक है, लेकिन इसका अर्थ धर्म से विमुख हो जाना कदापि नहीं है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही तीन धर्मों की धाराएं मुख्य रूप से प्रवहमान है - वैदिक धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म। बाद में सिक्ख धर्म भी प्रारम्भ हुआ। इन चारों धाराओं ने कुछ ऐसे नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य स्थापित किये, जिन्हें सनातन जीवन-मूल्य कह सकते हैं और वे प्रत्येक मानव पर लागू होते हैं। उनका हमारी शिक्षा प्रणाली में विनियोजन होना अत्यावश्यक है।

भौतिक व आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय

प्राचीन आचार्यों ने विद्या का स्वरूप बताते हुए कहा है- "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या वह है जो हमें विमुक्त करती है। विद्या किस चीज से विमुक्त करती है, तो कहा गया कि हममें जो तनाव की स्थिति है, दुःख की स्थिति है, आकुलता और व्याकुलता है, वे सब चाहे शारीरिक स्तर पर हों या मानसिक स्तर पर, उनसे मुक्त करानेवाला साधन विद्या ही है। जैन भावना के अनुसार हम कह सकते हैं कि हमें तृष्णा से, अहंकार से, राग और द्वेष से मुक्ति चाहिए। इसलिए हमारे देश के ऋषियों, मुनियों और आचार्यों ने सहस्रों वर्षों से विद्या के सही संस्कारों का सारे देश में प्रचार- प्रसार किया। ये संस्कार इस देश की संपदा हैं तथा अनमोल धरोहर हैं। प्राचीन काल में विद्या के दो भेद कहे गये - विद्या और अविद्या। अविद्या का अर्थ अज्ञान नहीं है, अविद्या का अर्थ है भौतिक ज्ञान और विद्या का अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान। जिस प्रकार से एक स्कूटर दो पहियों के बिना नहीं चल सकता है, वैसे ही विद्या – आध्यात्मिक ज्ञान और अविद्या-भौतिक ज्ञान दोनों का संयोग नहीं हो तो जीवन की गाड़ी भी नहीं चल सकती है। अतः भौतिक ज्ञान के साथ आध्यात्मिक ज्ञान भी आवश्यक है। भगवान् महावीर के जीवन संदेश पर प्रकाश डालते हुए आचार्य विनोबा भावे (जो सर्वोदय के प्रणेता तथा महान् शिक्षा-शास्त्री थे) ने कहा कि जीवन में शांति प्राप्त करने का एक महान् सूत्र महावीर ने दिया था। वह सूत्र है - "अहिंसा + विज्ञान = मानव जाति का उत्थान तथा अहिंसा - विज्ञान = मानव जाति का विध्वंश।" कहने का अर्थ है कि हमारे यहाँ पर भौतिक ज्ञान की अवहेलना, उपेक्षा नहीं की गई किन्तु उसके साथ आध्यात्मिक ज्ञान को भी अपनाने पर जोर दिया गया।

जैन आचार्यों ने शिक्षा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए अध्यात्म विद्या पर बहुत जोर दिया और उसे महाविद्या की संज्ञा प्रदान की। ऋषिभाषित सूत्र में आया है-

"इमा विज्जा महाविज्जा, सव्वविज्जाण उत्तमा।
जं विज्जं साहित्ताणं, सव्वदुक्खाण मुच्चती।।
जेण बन्धं च मोक्खं च, जीवाणं गतिरागतिं।
आयाभावं च जाणाति, सा विज्जा दुक्खमोयणी।।"[१]

अर्थात् वही विद्या महाविद्या है और सभी विद्याओं में उत्तम है, जिसकी साधना करने से समस्त दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है। जिस विद्या से बंध और मोक्ष का, जीवों की गति और अगति का ज्ञान होता है तथा जिससे आत्मा के शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार होता है, वही विद्या सम्पूर्ण दुःखों को दूर करनेवाली है।

प्राचीन ज्ञान का नवीन प्रस्तुतिकरण

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद ने प्राचीन शिक्षा पद्धति का नवीनीकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि शिक्षा मात्र उन सूचनाओं का संग्रह नहीं है जो ठूंस-ठूंस कर

१. इसिभासियाइं सूत्र-१७/१-२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे मस्तिष्क में भर दिये जायें और जो वहां निरंतर जमे हुए रहते हैं, हमें जीवन का निर्माण, मनुष्यता का निर्माण व चरित्र का निर्माण करनेवाले विचारों की आवश्यकता है।[1] उन्होंने आगे पुनः कहा कि हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो चरित्र को ऊँचा उठाती है, जिससे मन की शक्तियां बढ़ती है और जिससे बुद्धि का विकास होता है ताकि व्यक्ति अपने पैरों पर स्वयं खड़ा हो सके।[2]

जीवन का सर्वांगीण विकास

उपरोक्त विवेचन से यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि भारतीय शिक्षा ने जीवन के भौतिक अंगों की उपेक्षा कर दी, ऐसी बात नहीं है। हमारे यहाँ शास्त्रों में जीवन का समग्र अंग लिया गया है अर्थात् मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का पूर्ण विकास करना शिक्षा का उद्देश्य है। चतुर्विध पुरुषार्थ मनुष्य जीवन के सम्पूर्ण विकास की उद्भावना है। इसको स्पष्ट करने के लिए हम एक नदी का उदाहरण लें। अगर नदी के दोनों किनारें, दोनों तटबंध मजबूत होते हैं तो उस नदी का पानी पीने के, सिंचाई के, उद्योग-धंधों आदि के काम आता है, उससे जन-जीवन समृद्ध होता है। लेकिन जब उसके किनारे कमजोर पड़ जाते हैं तो नदी बाढ का रूप धारण कर लेती है और तब वही पानी अनेक गाँवों को जलमग्न कर देता है, अनेक मनुष्य और पशु उसमें बह जाते हैं, भयंकर त्राही-त्राही मच जाती है। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन धर्म और मोक्ष के दो किनारों की तरह है, इन दो तटों की मर्यादा में अर्थ और काम का सेवन किया जाये तो मनुष्य का जीवन स्वयं के लिए एवं अन्यों के लिए भी उपयोगी और कल्याणकारी सिद्ध होता है। हमारे यहाँ पर जगत् और जीवन की उपेक्षा नहीं की गई, लेकिन संयममय, मर्यादानुकूल जीवन के व्यवहार पर जोर दिया गया है। हमारे यहाँ पर पारिवारिक जीवन में इसी धर्म भावना को विकसित करने को कहा गया। शास्त्रों में पत्नी को "धर्मपत्नी" कहा गया जो धर्म भावना को बढ़ानेवाली होती है। वह वासना की मूर्ति नहीं है। आगम में पत्नी के बारे में बड़ा सुन्दर वर्णन आता है-

"भारिया धम्मसहाइया, धम्मविइज्जिया।
धम्माणु रागरत्ता, समसुहदुक्ख सहाइया।।"[3]

अर्थात् पत्नी धर्म में सहायता करनेवाली, साथ देनेवाली, अनुरागयुक्त तथा सुख-दुःख को समान रूप में बंटानेवाली होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम दुनियां की सभी सूचनाएँ प्राप्त करें, विज्ञान व भौतिक जगत् का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें, सारी उपलब्धियां प्राप्त करें लेकिन इन सबके साथ धर्म के जीवन - मूल्यों की उपेक्षा नहीं करें। उस स्थिति में विज्ञान भी विनाशक शक्ति न होकर मानव जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

तीन प्रकार के आचार्य

राजप्रश्नीय सूत्र में तीन प्रकार के आचार्यों का उल्लेख मिलता है - कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। कलाचार्य जीवनोपयोगी ललित कलाओं, विज्ञान व सामाजिक ज्ञान जैसे विषयों की शिक्षा देता था। भाषा और लिपि, गणित, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत और नृत्य-इन सबकी शिक्षाएं कलाचार्य प्रदान करता था। जैनागमों में पुरुष की ६४ और स्त्री की ७२ कलाओं का विवरण मिलता है। दूसरी प्रकार की शिक्षा शिल्पाचार्य देते थे जो आजीविका या धन के अर्जन से संबंधित थी। शिल्प, उद्योग व व्यापार से संबंधित सारे कार्यों की शिक्षा

१. स्वामी विवेकानंद संचयन भाग ३ पृष्ठ ३०२
२. स्वामी विवेकानंद संचयन भाग ५ पृष्ठ ३४२
३. उपासकदशांग सूत्र ७/२२/७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देना शिल्पाचार्य का कार्य था। इन दोनों के अतिरिक्त तीसरा शिक्षक धर्माचार्य था जिसका कार्य धर्म की शिक्षा प्रदान करना व चरित्र का विकास करना था। धर्माचार्य शील और सदाचरण का ज्ञान प्रदान करते थे। इन सब प्रकार की शिक्षाओं को प्राप्त करने के कारण ही हमारा श्रावक समाज बहुत सम्पन्न था। सामान्य व्यक्ति उनको सेठ और साहूकार जैसे आदरसूचक सम्बोधन से पुकारता था। भगवान् महावीर ने कहा है-"जे कम्मे सूरा से धम्मे सूरा" अर्थात् जो कर्म में शूर होता है वही धर्म में शूर होता है।

जीवन में शिक्षा का स्थान

शिक्षा का मनुष्य के जीवन में क्या स्थान होना चाहिए, इसके बारे में दशवैकालिक सूत्र में अत्यन्त सुन्दर विवेचन मिलता है। वहाँ कहा गया है-

"नाणमेगग्गचित्तो अ, ठिओ अ ठावयई परं।
सुयाणि अ अहिज्जित्ता, रओ सुअसमाहिए।।"[१]

अर्थात् अध्ययन के द्वारा व्यक्ति को ज्ञान और चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है। वह स्वयं धर्म में स्थित होता है और दूसरों को भी स्थित करता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के श्रुत का अध्ययन कर वह श्रुतसमाधि में अभिरत हो जाता है। अगर शिक्षा मनुष्य के जीवन में विवेक, प्रामाणिकता व अनुशासन का विकास नहीं करे तो वह शिक्षा अधूरी है। मूलाचार में कहा गया कि "विणो सासणे मूलं।" अर्थात् विनय जिनशासन का मूल है। जिस व्यक्ति में विनयशीलता नहीं है वह ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। दशवैकालिक सूत्र में भी विनय का बडा सुन्दर वर्णन है। वहाँ कहा गया कि अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति - ये दो बातें जिसने जान ली है, वही शिक्षा प्राप्त कर सकता है।[२] विद्यार्थी का दूसरा गुण है - अनुशासन - निज पर शासन फिर अनुशासन। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया कि जो व्यक्ति गुरुजनों के आज्ञाकारी हैं, श्रुत धर्म के तत्त्वों को जानते हैं, वे महा कठिन संसार समुद्र को तैर कर कर्मों का क्षय कर उत्तम गति को प्राप्त करते हैं[३]। विद्यार्थी का तीसरा गुण है-दया की भावना। दया, करुणा, अनुकम्पा, जीवन मात्र के प्रति प्रेम, आत्मैक्यता की भावना - ये जैन संस्कृति की मानवता को अनुपम देन हैं। सारे विश्व में कहीं भी जीव दया पर इतना जोर नहीं दिया गया। भगवान् महावीर अहिंसा और करुणा के अवतार थे। उन्होंने कहा है-

"संसार के सभी प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है। सुख अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है। सब लम्बे जीवन की कामना करते हैं। अतः किसी जीव को त्रास नहीं पहुंचाना चाहिये। किसी के प्रति वैर विरोध भाव नहीं रखना चाहिए। सब जीवों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए।"[४]

शिक्षा प्राप्ति के अवरोधक तत्त्व

उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया कि पाँच ऐसे कारण हैं जिनके कारण व्यक्ति सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता। ये पाँच कारण है - अभिमान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य।[५] अभिमान विद्यार्थी का सबसे बडा शत्रु

१. दशवैकालिक सूत्र ९/४/३
२. दशवैकालिक सूत्र ९/२/२२
३. दशवैकालिक सूत्र ९/२/२४
४. आचारांग सूत्र १/२/३/४, उत्तराध्ययन सूत्र २/२० एवं ६/२
५. उत्तराध्ययन सूत्र ११/३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। घमण्डी व्यक्ति ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। क्रोध की भावना भी विद्याध्ययन में बाधक है। प्रमादी व्यक्ति ज्ञानार्जन कर नहीं सकता। अतः भगवान् ने बार-बार अपने प्रधान शिष्य गौत्तम को संबोधित करते हुए कहा - **"समयं गोयम मा पमाये।"** हे गौत्तम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो, अप्रमत्त रहो। प्रमाद पाँच प्रकार का है-मद, विषय (कामभोग), कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ), निद्रा और विकथा (अर्थहीन, रागद्वेषवर्द्धक वार्ता)। ये दुर्गुण आज हमारे समाज में बढ़ रहे हैं जो शिक्षा प्राप्ति में बाधक हैं। विद्यार्थी को सदैव जागरुक रहना चाहिए तथा अपना समय आलस्य, व्यसनों के सेवन, गप-शप आदि में नहीं बिताना चाहिए।

शिक्षाशील कौन?

उत्तराध्ययन सूत्र में एक स्थान पर प्रश्न आता है कि शिक्षाशील विद्यार्थी किसे कहें? जिस व्यक्ति में आठ प्रकार के निम्न लक्षण हैं वह शिक्षा के योग्य कहा गया है। वे लक्षण इस प्रकार है-

१. जो अधिक हँसी - मजाक नहीं करता है।

२. जो अपने मन की वासनाओं पर नियन्त्रण रखता है।

३. जो किसी की गुप्त बात को प्रकट नहीं करता।

४. जो आचारविहीन नहीं है।

५. जो दोषों से कलंकित नहीं है।

६. जो अत्यधिक रस-लोलुप नहीं है।

७. जो बहुत क्रोध नहीं करता है।

८. जो हमेशा सत्य में अनुरक्त रहता है। इस प्रकार की शिक्षा मनुष्य को ऊँचा उठाने की प्रेरणा देती है।

चरित्र को ऊँचा उठाएं

आज सूचना तकनीकी (Information Technology) का द्रुतगामी विकास हुआ है। रेडियो, टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि द्वारा विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान सहजता से उपलब्ध हो रहा है, लेकिन अगर बालक के चरित्र निर्माण पर ध्यान नहीं दिया गया तो ये वैज्ञानिक साधन उसे पतित कर सकते हैं। आज विश्व के सर्वाधिक समृद्ध राष्ट्र अमेरिका का एक विद्यार्थी १८ वर्ष की उम्र तक कम से कम १२००० हत्याएं, बलात्कार आदि के दृश्य टी.वी. आदि पर देख लेता है। उस विद्यार्थी के कोमल मस्तिष्क पर इसका कितना भयंकर प्रभाव पड़ता है? आज यही तकनीकी हमारे देश में भी सुलभ हो गई है। अनेक प्रकार के चैनल व चलचित्र टी.वी. पर प्रदर्शित होते हैं जो २४ घण्टे चलते रहते हैं। उनमें से अनेक हिंसा व अश्लीलता को बढ़ावा देनेवाले, हमारे पारिवारिक जीवन को विखण्डित करनेवाले होते हैं। हमारी सरकार भी अधिक आमदनी के लालच में उन्हें बढावा देती है। इसलिए समाज का यह दायित्व है कि जो व्यक्ति शिक्षण शालाएं चलाते हैं उनके द्वारा विद्यार्थियों को चरित्र-निर्माण के संस्कार दिए जाए। केवल नाम के जैन विद्यालय चलाने से काम नहीं होगा, उन विद्यालयों में जैन संस्कारों का भी ज्ञान देना होगा यथा माता-पिता की भक्ति, गुरु-भक्ति, धर्म भक्ति व राष्ट्र - भक्ति। इसी प्रकार से विद्यार्थियों को मानव मात्र से प्रेम, परोपकार की भावना, जीव रक्षा के संस्कार देने होंगे। उन्हें यह महसूस कराना होगा कि कोई दुःखी व्यक्ति है तो उसको यथाशक्य मदद देना, सामान्य - जन के सुख-दुःख में सम्मिलित होना, किसी के भी प्रति द्वेष नहीं रखना आदि संस्कार जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाते हैं। आज विश्व का बौद्धिक विकास बहुत हुआ पर आध्यात्मिक विकास नहीं हुआ। महाकवि दिनकर ने बडा सुन्दर कहा है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**"बुद्धि तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान।
चेतता अब भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा भगवान्?"**

मनुष्य की बुद्धि तृष्णा की दासी हो गई है। तृष्णा निरन्तर बढ़ती जा रही है। विज्ञान का भी उपयोग अधिकांशतः विध्वंसक अस्त्रों के सृजन में हो रहा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को सुख और शान्ति कैसे प्राप्त होंगे?

भारतीय शिक्षा का आदर्श है - भौतिक ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय। जैन शिक्षा के तीन अभिन्न अंग है - श्रद्धा, भक्ति और कर्म। सम्यक् दर्शन से हम जीवन को श्रद्धामय बनाते हैं, सम्यक् ज्ञान से हम पदार्थों के सही स्वरूप को समझते हैं और सम्यक् चरित्र से हम सुकर्म की ओर प्रेरित होते हैं। इन तीनों का जब हमारे जीवन में विकास होता है तभी हमारे जीवन में पूर्णता आती है। यही जैन शिक्षा का संदेश है, हम अप्रमत्त बनें, संयमी बनें, जागरुक बनें, चारित्र-सम्पन्न बनें। तभी हमारे राष्ट्र का तथा विश्व का कल्याण संभव है।

✣ ✣ ✣

कर्मठ समाजसेवी एवं प्रबुद्ध लेखक श्री दुलीचन्दजी जैन का जन्म १-११-१६३६ को हुआ। आपने बी.कॉम., एल.एल.बी. एवं साहित्यरत्न की परिक्षाएं उत्तीर्ण की। आप विवेकानन्द एजुकेशनल ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं तथा जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान के सचिव हैं। आपने 'जिनवाणी के मोती' 'जिनवाणी के निर्झर' एवं 'Pearls of Jaina Wisdom' आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों की संरचनाएं की हैं। आप कई पुरस्कारों से सम्मानित – अभिनन्दित।

– सम्पादक

किए हुए उपकार को न मानना अकृतज्ञता है। माता-पिता, गुरुदेव, भर्त्ता, पोषक मित्र आदि द्वारा किए गए उपकारों को स्वीकार न कर विपरीत प्रतिकार करना "मेरे लिए क्या किया है, इन्होंने?" मन की यह अभिमान वृत्ति है। यह गुणों की नाशक है।

✣ ✣ ✣

स्वप्न के समान संसार का स्वरूप है। जिस प्रकार सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न में नाना प्रकार के दृश्य देखता है और स्वयं को भी स्वप्न में राजा आदि के रूपों में देखता है किन्तु जागृत होते ही वे सब दृश्य लुप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार जगत् भी बनता है, बिगड़ता है, एकावस्था में नहीं रहता।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।

FIFTH CHAPTER

ENGLISH SECTION

GLORY OF JAIN CULTURE

- A Brief Account of Jaina Tamil Literature
- The Uniqueness of Jain Spirituality
- Studies on Biology in Tattvartha Sutra (Formulae on Reals)
- Mathematical Philosophy in the Jaina School of thought

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

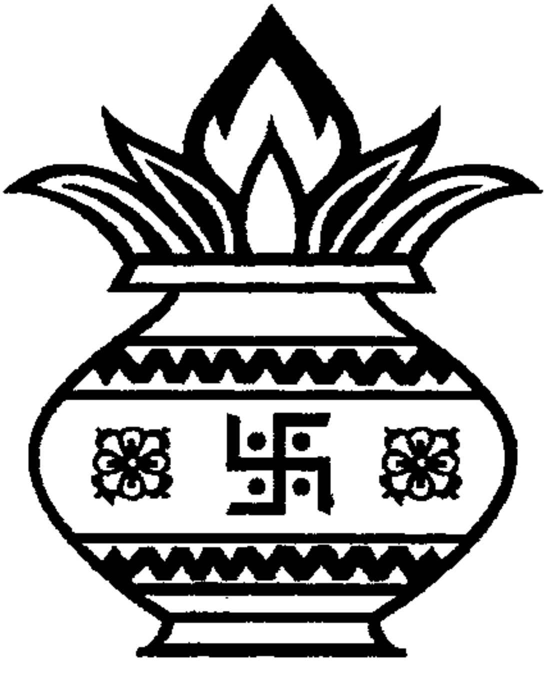

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

A Brief Account of Jaina Tamil Literature

S. Krishnachandd Chordia
M.A. (Journalism & MC) M.A., M.Phil (Jainology) P.hd.
Research Scholar, Department of Jainology, University of Madras

India is well known for its most ancient literature in different languages. Tamil is one of the languages of India having the claim for its ancient literature of great humanistic value. Scholars have proposed three phases in the Tamil Literature :

1. Literature prior to *Sangam* Age;
2. Literature of *Sangam* Age; and
3. Later Literature

Scholars are of the opinion that most of the literature belonging to the phase of prior to *Sangam* Age is lost. But, fortunately, we should say one work by name *Tolkãppiyam*, belonging to this age is surviving and it throws a flood of light not only on the grammatical structure of Tamil language, but also on the culture and the way of life of our Indian People in more particular about the Tamil people.

In addition to this, the *Siddha* literature *"Siddhar Pãdalgal"*, it appears has its own claim to be included in this first phase of Tamil Literature.

I. (1) **Tolkãppiyam :** This authoritative work on Tamil Grammar is supposed to be written by a Jaina Scholar. This grammatical treaties consists of **three great chapters** - *Eluthu, Sol* and *Porul* i.e. letters, words and meaning respectively. Each chapter consists of nine *Iyals* or Sections. On the whole, it contains 1612 *Sûtras*. This forms the foundation of the later grammatical works in the Tamil Language. It is said that there are five commentaries on this treatise written by *Ilampuranãr, Perãsiriyãr, Senavaraiyãr, Naccinarkkiniyãr* and *Kallãdãr*.

(2) **Kural :** This ethical work is the most important work in Tamil Literature, composed in the form of couplets known as *Kural Venbã*. This work is considered so important by the Tamil people that they use various names to designate this great work, such as *"Uttara Veda"*, *"Tamil Veda"*, "Divine Scripture", "The great truth", "Non-denominational *Veda*" and so on. The work is claimed by almost all the religious sects of the Tamil land.

This book contains **three great topics** *aram, porul, inbam* i.e. *Dharma, Artha*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and *Kãma*. These three topics are interpreted and expounded as to be in thorough conformity with the basic doctrine of *Ahimsa*. This great ethical work, which contains the essence of Tamil Wisdom, consists of three parts and of 133 chapters. Each chapter contains 10 verses. Thus, we have 1330 verses in the form of couplets. There are commentaries which are written by *Ilampooranãr, Kãlingar* and many others. Of these, one is by the great commentator *Naccinarkkiniyãr,* whose creation is unfortunately lost to the world. We can see the influence of this magnanimous work on such great literary pieces as :- *Neelakesi, Jeevaka Cintãmani, Cûdamani, Arungalacheppu* and many others.

(3) **Nãladiyãr :** *Nãladiyãr* derives its name from the nature of the metre i.e. a Quatrain or 4 lines in *Venbã* metre. The work consists of 400 quatrains and is also called the "*Velãlar - Vedam*", the *Bible* of the cultivators. It is not the work of a single author. Tradition supposes that each verse is composed by different Jaina monks and put together to form a single work.

The 400 isolated stanzas are arranged according to a certain plan after the model of the *Kural*. Each chapter consists of 10 stanzas. The first part on aram i.e. *Dharma* consists of 13 chapters and 130 quatrains. The second section on *porul* i.e. *Artha,* contains 26 chapters and 260 quatrains. The third chapter on *inbam* i.e. *Kãma,* contains 10 quatrains. Thus 400 quatrains are arranged into 3 sections. This arrangement is attributed by one tradition to the *Pandya* King *Ugraperuvaludi* and by another tradition to the Jaina Scholar named *Padumanãr.* There are 18 didectic works in Tamil language among which *Kural* and *Nãladiyãr* are considered to be the most ancient and the important work.

(4) **Aranericcãram :** "The essence of the way of virtue", is composed by a Jaina author by name *Thirumanaippadiyãr.* He is said to have flourished in the last *Sangam* period. He describes in this great work, five moral principles, associated with Jainism. These principles go by the name of "*Pañca Vratãs*", the five rules of conduct governing the house holder as well as ascetic. These are *Ahimsã, Satya, Asteya, Brahmacarya* and *Parimita - Parigraha.*

(5) **Palamoli :** The author of *Palamoli* (means proverbs) is a Jain by name *Munruraiaraiyanãr.* It consists of variable old sayings containing not merely principles of conduct, but also a good deal of worldly wisdom.

(6) **Tinaimalai - Nutraimbadu :** The author's name is *Kanimoliyãr,* who is also said to be one of the *Sangam* poets. This work treats of the principles of love and war and quoted freely by the great

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

commentator like *Naccinarkkiniyãr* and others. Of the same author, the other book is called '*Elãdi*'.

Elãdi : "Cardamom and others" refers to the mixture of the perfumes of *Ela* (cardamom), *Karpuram* (Camphor), *Erikarasu* (the oderous wood), *Candanam* (Sandal), and *Tên* (honey). The name is given to this work because each quatrain is supposed to contain 5 or 6 such fragrant topics.

(7) **Nãnmanikkadigai :** "The Solver of the four gems" by the Jaina author by name *"Vilanbinãthar"*. This is also in the Venbã metre, well known in the other works. Each stanza deals with 4 important moral principles like jewels.

So far we have spoken of Jaina Ethical Poetries and next the *Kãvyas* shall be dealt with.

II. *Kãvyas are classified into 2 main heads :-*

(a) **Mahã kãvyas :-** *Śilappadikãram*, *Jeevaka Cintamani* and *Valaiyãpathi*.

(b) **Laghu Kãvyas :-** *Yaśodhara Kãvyam*, *Cûḍamani*, *Perum kathai*, *Nãga Ḳumãra-Kãvyam* and *Nilakesi*.

1. **Silappadikãram :** The author of this great work is a *Chera* prince, who became a Jaina ascetic by name "*Elango Adigal*". It is considered to be composed by about 2nd century A.D. and hence it is having its place among the ancient Tamil Literature. Its impact of Tamil Society is vast and wide. From top most scholars to a man of lowest, it is known to all. '*Kannagi*' happens to be centre figure of this great work and happens to be "*Sita*" of Dravidian culture. She is deitified and worshipped.

The sentiment of pathas is well known throughout the work. In addition to this *Sambhoga Shringãra*, *Vipralambha Shringãra* and also the other *Rasas* are well brought up in the extraordinary prose *Kãvya*. Not only this much, it potentially depects what exactly is the *Grhastha Dharma*, but also presents a valuable material on all arts such as *vastu*, music, dance, folk dance music, global trade and economics. In fact, it is a store house of every thing that human life requires.

The work is having its own message and the same can be brought in three important valuable truths :-

(1) If a king deviates from the path of righteousness even to a slight extent, he will go down and his kingdom meets with catastrophe. In this context, the couplet in *Tirukkural* is worth noting.

"Seiyãmai Setrãrkum innãdha seidhapin
Viyã Vijuman tharum. 313

"Even in the case of a person, who causes injury without any provocation, retaliation by doing evil for evil is sure

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

to cause innumerable inescapable woes".

(2) A woman walking on the path of chastity deserves adoration and worship not only by human beings, but also by *devas*.

(3) The working of *Karma* is such that there is an inevitable fatality from which no one can escape, and the fruits of one's previous *Karma* must necessarily be experienced in later period.

This is an epic in other words "*Ãrsa Mahã Kãvya*", just as *Rãmãyana* and *Mahãbhãrata* in Sanskrit. It consists of three great divisions and 30 chapters on the whole. The great work has a very valuable commentary by *Adiyarkkunallãr*,

2. **Jeevaka Cintãmani :** Scholars consider this work as the best of the *Mahã Kãvyas*. This great romantic epic, which is at once the *Iliad* and the *Odyssey* of the Tamil language is said to have been composed in the early youth of the poet named "*Tiruttakkadeva*". As the result of the challenge from his friendly poet of Madurai *Sangam*, the Cintamani was composed by *Tiruttakkadeva* to prove that a Jaina Monk can also produce a work containing '*Śringãra-rasa*. It was admitted on all sides that he had succeeded wonderfully well.

The work is divided into *Ilambakas* or chapters. The first beginning with the birth and education of the hero, "*Jeevaka*", and the last ending with his *Nirvãṇa*.

The names of Ilambakas are :-

(1) Nãmagal Ilambagam;

(2) Govindaiyãr Ilambagam;

(3) Gãndharvadattaiyãr Ilambagam;

(4) Guṇamãlaiyãr Ilambagam;

(5) Padumaiyãr Ilambagam;

(6) Kemãsariyãr Illambagam;

(7) Kanakamãlaiyãr Ilambagam;

(8) Vimalaiyãr Ilambagam;

(9) Suramanjari Ilambagam;

(10) Manmagal Ilambagam;

(11) Pumagal Ilambagam;

(12) Ilakkaṇaiyãr Ilambagam; and

(13) Mukti Ilambagam.

This classic contains 3145 stanzas. An excellent edition containing a fine commentary by *Naccinarkkiniỹãr* is now available.

Five Laghu Kãvyas were composed by Jaina authors :-

1. **Yaśodhara Kãvyam :** Jainism advocates the observance of any vow by *Trikarana* - i.e. mind, speech and body. If any one of these is lacking, then it will not fulfil the observance of *vrata*. For Jains, *Ahimsã* is the fundamental *vrata*. This

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

means one should obstain from killing animals or in other words to avoid injury to any living beings. So, in this regard the *Ahimsã* is looked upon mainly in two forms :-

(a) ***Dravya Hiṃsã***

(b) ***Bhãva Hiṃsã***

Even though a person does not kill actually an animal, in other words, does not commit *dravya hiṃsã* and in his mind, out of *Rãga* or *Dvesa* thinks of killing, then there is *Bhãva Hiṃsã*. For the fulfilment of *Ahiṃsã Vrata*, both *Dravya Hiṃsã* and *Bhãva Hiṃsã* should be avoided. Even with *Bhãva Hiṃsã*, one commits as much of sin as with *Dravya Hiṃsã*.

In earlier days in *yãga* and *yagnãs* there were offering of animals as *bali*. But, later on because of the influence of Jainism, a modification in offering animal sacrifice came up. As a result, animals made of flours were offered in the *yãga* and *yagnãs*. But Jainism did not accept this as *Ahiṃsã*, as there was *Bhãva Hiṃsã* in it.

This *Yasodhara Kãvyam* is centres around this thought and presents in a picturesque way, the sin how shall fractifies even with the *Bhãva Hiṃsã*.

2. **Cûlãmaṇi :** It is composed by the Jaina author and poet *Tholamolithevar*. *Cûlãmaṇi* resembles Cintãmaṇi in poetic excellence. It contains 12 *sargas* and 2131 stanzas on the whole. According to Sri Damodaran Pillai, it must be earlier than some of the major *Kãvyas*.

3. **Perunkathai :** This work was named after the *Brhat Kathã* of *Guṇãḍhya* written in what is known as *paisãcabhãṣã*, a *prãkrit* dialect. The author is known as *Konguvelira* prince of the *Kongudesa*. The portions relating to the life of Prince *Udayana*, has taken by the author.

The story consists of 6 main chapters :

(1) Unjaik Kãṇḍam;

(2) Lavanak Kãṇḍam;

(3) Magadak Kãṇḍam;

(4) Vattavak Kãṇḍam;

(5) Naravahana Kãṇḍam; and

(6) Turuvuk Kãṇḍam, all relating to the rich life of Udayana.

4. **Nilakesi :** It is a controversial work dealing with the systems of Indian philosophy and it has an excellent commentary called, "*Samayadivãkara*" by *Vãmana Muni. Nilakesi* which is one of the five *laghu kãvyas* in Tamil, is evidently an answer to *Kundalakesi*, the Buddistic work.

It contains 10 chapters namely :

(1) Dharma-Urai Carukkam;

(2) Kuṇḍalakeśi Vãda Carukkam;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(3) *Arhacandra Vãda Carukkam;*
(4) *Mokkala Vãda Carukkam;*
(5) *Buddha Vãda Carukkam;*
(6) *Ãjîvaka Vãda Carukkam;*
(7) *Sãnkhya Vãda Carukkam;*
(8) *Vaiśesika Vãda Carukkam;*
(9) *Veda Vada Carukkam;*
(10) *Bhûta Vãda Carukkam.*

It must be latter than the age of Kural and Kuṇḍalakesi.

III. Purãna Kãvyãs : There are many purãṇa kãvyas among which two are very popular.

1. **Meru Mandira Purãnam :** It resembles in excellence of literary diction, the best of *kãvya* literature in Tamil. It is based upon a *purãṇic* story relating to *Meru* and *Mandira*. The author is *Vãmana Muni*, who lived in 14th century. It contains of 30 chapters of 1405 stanzas on the whole.

2. **Śri Purãṇa :** It is written in an enchanting prose style in *Maṇipravãla*-mixed Tamil and Sanskrit. It is based on *Jinesena's* and *Guṇabhadra's Mahãpurãṇa* and is also further called *Trisaṣthisalãkãpurusa carita* dealing with 63 prominent personalities - 24 *Tirthankaras;* 12 *Cakravartins;* 9 *Bala Bhadras;* 9 *Vãsudevas*; 9 *Prativãsudevas* of the present *Avasarpiṇi* era. In Tamil, there is another work by name *Periyapurãnam* by *Sekkizar* which presents the stories of 63 *Nayaṇmãrs.* The frame of which appears to be worked out on the model of *Mahãpurãna* or *Trišasthi Šalãka puruša carita* of Jains.

IV. Prosody and Grammatical Literature :

1. **Yãpparungalakkãrikai :** This work on Tamil prosody is by *Amṛtasãgara.* There is a commentary on this work by *Guna Sãgara.* It is considered as an authority on metres and poetic composition, and that it is used as such by latter writers are evident from the references to it found in Tamil Literature.

2. **Yãpparungala-Vrutti :** This is a commentary on *Yãpparungalakkãrikai* written by the same author, *Amrta Sãgara.* There is an excellent edition of this *Yãpparungala Vrutti* by the late S. Bhavanandan Pillai.

3. **Neminatham :** A work on Tamil Grammar by *Guṇavîra Pandita.* He was a disciple of *Vaccananda Muni* of *Karandai.* The object of this work is to give a short and concise account of Tamil Grammer, because the earlier Tamil works were huge and elaborate. It must be placed in the early centuries of the Christian era.

It consists of 2 main chapters :-

(1) *Eluttadikãram*
(2) *Solladikãram.*

It is composed in the well known *venbã* metre.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. **Nannual :** *Nannul* means "The good book" and is the most popular grammar in Tamil Language. It is held only next to the *Tolkãppiyam* in esteem. It is by *Bavanandimuni*, who wrote this grammer at the request of a subordinate king called *Siya Ganga*. It consists of two parts, *Eluttadikãram* and *Solladikãram* which are sub divided into five minor chapters. *Mailainathar* has written a fine commentary on this work.

5. **Agapporulvilakkam :** It is written by *Nãrkavirãja Nambi*. His proper name is *Nambi Nainãr*, he was expert in 4 different kinds of poetic composition, he was given the title of *Nãrkavirãya*. It is based upon the chapter on *Porul Ilakkanam* in *Tolkãppiyam*. It is an exposition of the pychological emotion of love and allied experiences.

***V. Three important works on Tamil Lexicography :** The three nighantus are*

(1) The Divãkara nighaṇṭu;
(2) Pingala nighaṇṭu;
(3) Cûḍãmaṇi nighaṇṭu

1. **Divâkara Nighaṇṭu :** This is written by *Divãkara Muni*. At present it is not available.

2. **Pingala Nighaṇṭu :** This is written by *Pingala Muni*.

3. **Cûḍãmani Nighaṇṭu :** This is written by *Mandalapurusa*.

The author refers to *Gunabhadrãcãrya*, a disciple of *Jinasenãcãrya*, author of *Uttara Purãṇa* which is the continuation volume to Jainasena's *Âdipurãna*. It is written in *Viruttam* metre and contains 12 chapters. The **first** section deals with the names of Devas, the **second** with the names of human beings, the **third** with lower animals, the **fourth** with the names of trees and plants, the **fifth** with place names, the **sixth** dealing with the names of several objects, the **seventh** deals with the several artificial objects made by man out of natural objects such as metals and timber, the **eighth** chapter deals with names relating to attributes of things in general, the **ninth** deals with names relating the sounds articulate and inarticulate, the **eleventh** section deals with words which are rhyming with one another and hence relating to a certain aspect of prosody; the **twelfth** section is a miscellaneous section dealing with the groups of related words.

An old commentary by the late *Ârumukha Nãvalar* of Jaffna is a useful edition.

VI. Two miscellaneous works :-

1. Tirunarrantãdi by Avirodhi Âlvãr.
2. Tirukkalambagam by Udicidera.

1. **Tirunarrantâdi :** *Antãdi* is a peculiar form of composition where the last word in the previous stanza becomes the first and the leading word in the next stanza. *Antãdi* literally means "the end and the beginning". This constitutes a

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

string of verses connected with one another by a catch word which is the last in the previous stanza and the first in the succeeding stanza. It is such a composition containing 100 verses. It is a devotional work addressed to god *Nemināthа* of Mylapore. The author *Avirodhi Âlvār* was a convert to the Jaina faith.

2. **Tirukkalambagam :** *Kalambagam* implies a sort of poetic mixture where the verses are composed in diverse metres. This besides, being devotional is also philosophical in which the author tries to discuss the doctrines of the rival faiths such as Buddhism.

Conclusion

Jainas contribution to Tamil Literature does not limit itself to *Kāvyas*, Grammar or prodody. It extends to *Śāstra* works such as Mathematics, *Jyotisa, Vaidhya*, Metallurgic and such other branches. This contribution has gained appreciation by one and all.

❑ ***Sri. S. Krishna Chand Chordia*** *is a double M.A. and M.Phil in Jainology. He was instrumental in starting a full fledged Department of Jainology at University of Madras. As General Secretary of Research Foundation for Jainology, he is now involved in developing Jain Vidyashram at Chennai. A profound scholar in Hindi, Tamil and English, he is also a powerful speaker connected with several social service Associations.*

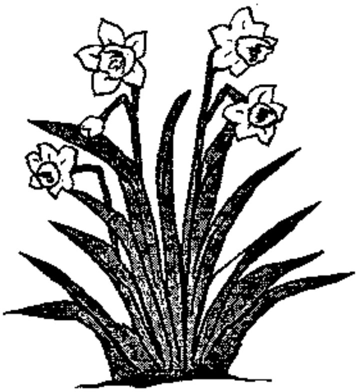

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

THE UNIQUENESS OF JAIN SPIRITUALITY

Prof. Ramjee Singh
Emeritus Fellow
Bhagalpur University, Bhagalpur (INDIA)

When we look to this universe, many questions come to us.. who created and who sustains it ? Where do we stand in this great structure and who governs our destinies.. some outside force like God or is there any other set of rules called Fate ? The most simplistic explanation is to rest with the concept of God, who is at once regarded not only the creator, preserver and destroyer but also all perfect i.e., omniscient, omnipotent, omnipresent etc. Connected with such magestic concept of God, there is the doctrine of God's grace. The redemption of every individual lies in offering sincere repentence and prayers to be relieved of the sin. Those who are somewhat sophisticated in their explanation attribute the sustenance and control of our destinies to some outside divine force and so on.

The *Jainas* need no such hypothesis. It conceived an autonomous universe and an autonomous self. When we transcend the limits of ordinary biological man, we come in contact with our pure personality which is called self (*Atman* or *Jiva*). This, is the experience of pure spirituality or pure experience. This is the absolute concrete truth. *Jainism* conceives the whole universe as a great cosmic mechanism with its own structure and functions and also with its own "self-propelling force". It does not look outside but looks within and finds the truth that man is the master of his own destinies. All our pleasures and pains are result of our own actions, called *karma*. Our saviours or enemies are not outside us.

But there is no caprice or irrationality in the universe of *karma*. The Law of *Karma* works in the moral field just as the law of causation which works in the field of physical phenomenon. This law of moral causation is autonomous and independent and also supreme. Hence the *Jainas* do not need a Creator God or a Dispensor of fruits of one's action. It has faith in the capacity of the spirit in man.. the spiritual creative force called the *Atman*. It can achieve the four-fold infinities.. infinite faith, infinite knowledge, infinite power and infinite bliss (*ananta-chatustaya*). Thus the individual self is raised to an infinite temporal and spiritual hight. We can see raising the self to the status of the Supreme also in the Upanisadic-Vedantic philosophy of That Thou Art *(Tat tvam asi)*. When the Self is raised to the status of the supreme itself, he does not need anybody's grace. Hence salvation of the self is not the gift of any capricious being but it is the direct result of our earnest effort and self-descipline.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

However, it will be unjust to designate Jainism as an atheist descipline. For this, we must distinguish between naive atheism and philosophical atheism. The former is the cult of materialism and the rejection of the reality of the spirit or self. In this sense Jainism cannot be branded as atheism. The philosophical atheism rejects the concept of a creator God. In this context, we know that even some of the most important orthodox vedic systems like the *Sakhya*, the *Mimamsakas* and even the *Advait Vedanata* denied the existence of God. Even in the *Vaisesika* and *Nyaya* system, God does not seem to be an integral part. But nevertheless, they believe in the spiritual order of the universe. Similarly, although *Jainism* does not accept the existence of a Creator God, it has firm faith in the spirituality of self. By recognising both the self (*Jiva*) and matter (*Pudgala*) as two-fold substances, *Jainism* steers clear of the two extremes of materialism and idealism. The problem of self is the most fundamental problem of *Jain* philosophy : Though this problem of self is not a new enterprise, the special points of the Jaina view consists in substantiating the notion of Self without blinking the loftist mystical heights on the one hand and without condemning the unabstracted experience as shree illusion on the other. The Self is an ontologically underived fact subsisting independently of anything else. The experience of knowing, feeling and willing immediately proves the existence of self. Everyone is conscious of onself. *(Sarvo hi atma astivama - Sankar-bhasya on Brahma-Sutra,* I.1.1). There is no proof that negates its existence because by negating it, we posit itself. *Sankara* using the dialectics says that the negator is the self. *(Ya eva nirakarta tadeva hi tasya svarupam; B.S. (S.B.)* II.3.1.7) Hence *Acharya Kundakunda* calls the existence of self as "a great objectivity". (*Pravachana Sara,* II.100). However, to the *Jainas*, self is neither merely an immutably principle as advocated by *Vedanta, Sankhya-Yoga* and the *Nyaya-Vaisesika*, nor merely a momentarily transmutable series of psychical status as in *Buddhism* but it is a synthesis of permanence and change. Hence the *Jainas* recognise the self from two view-points to make a synthesis. From the transcendental view, the self is the unadulterated state of existence and from the empirical view, there is self which has been in a state of transmigration and corruption since an indeterminable past leading to origination, decay and permanence. The empirical self is potentially transcendental. There is metaphysical identity between the two status of the same self but the difference is also undeniable in respect of the potential attributes. The relation between the empirical self and the transcendental one is identity-cum-difference. Apart from the rational arguments and testimonies of the saints and scriptures, we can bring into the opinions of modern scientists. James Jeans, Arthur Eddington, Sir Oliver Lodge, Lord Calvin etc. have found strong idealistic tendencies in modern physics. Some of the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

scientists refute to accord consciousness as different from matter. They have found that without independent existence of consciousness, we cannot think of the embodied self. They do not regard consciousness merely as an epiphenomenon of matter, but regards as the medium of origination of consciousness.

Many problems of the present life such as the state of pleasure and pain from the period of incubation to the time of birth of a child can neither be attributed either to the child or to his or her parents. The child in mother's womb has no role to play towards his pleasures or pain. The parents cannot be attributed because how can an innocent child be made responsible for actions of his parents. On the other hand if we assume that the child enjoys or suffers without any cause or reason, is to accept irrationality. All these and many other such questions cannot be explained without the hypothesis of rebirth. And rebirth can only be explained when we admit the hypothesis of a permanent substance such as soul. Even the so-called agnostic Lord *Buddha* and modern German atheist thinker *Neitzche* admit of rebirth.

Jainism, therefore regards *Karma* as the matrix of the universe and the ground man of individual's destiny and the mould in which anything and everything takes shape. *Karma* is generally regarded as the principle of determination of individual's destiny, his well-being and suffering. There are three reasons : first, the problem of individual happiness and suffering is not an isolated affair, because it is somehow related to the entire universe. The past *Karma* puts a world before the individual which brings appropriate pleasure and pain to him. In short, *Karma* determines both his heredity and environment. Secondly, even Time, Nature, Matter etc. are not outside the scope of *karma* and they are merely the different expressions of working of the universal law of *karma*. Thirdly, *karma* is the principle of determination of the world. The variation in matter and time can only be ascribed to *karma* if we are to avoid the erroneous philosophical theories of Temporalism, Naturalism, Determinism, Accidentalism, Materialism, Scepticism and Aguesticism etc.

In an important sense, science of *karma* has been described as the science of spirituality. Spirituality aims at unfolding the real nature of spirit or self. This is self-knowledge or self-realization. But to know the self if also to know that it is different from the non-self, with which it is in beginningless conjunction. *Karma* is the material basis of bondage and nescience of the soul. The beginningless relation between soul and non-soul is due to nescience (*mithyatva*) which is responsible for the worldly existence. This is determined by the nature, duration, intensity, and quantity of karmas. The self take matter in accordance with their non *karmas* because of self-possession (*Kasâya*). It is therefore clear that the science of *karma* is a necessary part of the science of spirituality. Unless we have

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

a thorough knowledge of the *karmas*, we cannot know about the true nature of spirit or self. The knowledge of karma removes the false notion of identity between the body and the self, and so on and this is nothing other than the science of spirituality.

Jainism has a special interest in the philosophy of *karma*. While other system of Indian philosophy generally limit themselves to the two-fold or three-fold divisions of *karmas* -- (a) Those which have not yet begun to bear fruits (*anãrbdha*); (b) Those which have already begun to bear fruits like the present body (*ãrabdha*). The former (*anãrbdha*) again can be subdivided into two classes according as it has been accumulated from past lives (*sanchita* or *prãktana*) or is being gathered in this life (*sanchiyamana*); or *vartamãna* or *ãgamĩ*). However the Jainas go much deeper and present an eightfold classification of *karma* spreading into 148 subdivisions. According to the law of *karma*, first a man attains the fruits of actions in accordance with the moral quality of those actions; secondly, the attainment of the fruits concerned is an automatic process. The law of *karma* is not itself a force, but a general statement based on facts that all actions of all kinds are followed by their appropriate effects and that the sequence between actions and their effects is invariable and inviolable. Like all laws of nature including the law of gravitation of law of natural causation, it is grounded on empirical facts, uncontradicted experience.

We are born into a world governed by the law of causation including the moral law of causation called *karma*. There is no caprice of a step-motherly nature and her blind, mechanical forces. In the life of man as a spiritual being, we find three phases or aspects namely desire, thought and will. The character of a man is the accumulated effect of his thoughts as expressed in deeds. Just as it is the case with a man's thoughts and desire so it is his will and acts. We are effects of the infinite past, that the child is ushered into the world, not as something flashing from the hands of nature but he has the burden of an infinite past, for good or evil he comes to work out his own past deeds. We, and we, and none else, are responsible for what we suffer. We are the effects, and we are the causes. Each one of us is the matter or his own fate thus the law of *Karma* knocks on the head at once all doctrines of predestination and fate. Those.... that also believe in the existence of God and the Law of *Karma* admit the law of *karma* as autonomous that works independently of the will of God. They hold that the origin and order of the world may be explained by the law of *karma* without the supposition of a creator God. But it does not militate against that doctrine of free will in man. They bind us in a sense no doubt but that is just in the same sense in which old habits of action put certain limitations on our present actions. Just as it is quite possible, though difficult for us to uproot old habits of action, so it is

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

possible to alter and avert the consequences of our past deeds through spiritual *sadhana.*

The law of *Karma* in its different aspects may be regarded as the law of conservation of moral values, merits and demerits of actions. Nothing befalls a man except as the result of his own actions and nothing merited by a man by his actions is lost unto him. As 'religion' is said to be 'faith in the conservation of value' (Harold Hoffding. The Philosophy of Religion, p.6-12), the law of *Karma* may be defined as faith in an eternal moral order that inspires hope and confidence in many and makes him the master of his own destiny. The human will stands beyond all circumstances. Before it, the strong, gigantic, infinite will and freedom in man, all the powers, even of nature, must bow down succumb and become its servants.

Not only the modern man in the search of a soul, the first requisite for any philosophical adventure is the recognition of the idea of the Self. This is the spiritual basis of our ethical life which can be traced in the endeavour of man to find out ways and means by which he could become happy. Hence, Alexis Carrel has dwelth upon the "Science of Man" in his famous book 'Man, the Unknown'. The Jainas subscribe to the doctrine of constitutional freedom of the soul and its potential four fold infinities meaning thereby that the soul is intrinsically pure and innately perfect. But the soul and *Karma* stand to each other in the relation of beginningless conjunction. The soul by its commerce with the outer world become literally penetrated with the particles of subject matter. The *Karmic*-matter mixes with the soul as milk mixes with water. Thus formless *Karma* is affected by the *Karma* with form as consciousness is affected by drink or medicine. Logically, the cause is non-different from the effect. The effect is physical- Hence the cause (*Karma*) has indeed a physical form. But unless karma is associated with the *Jiva* (Soul) it cannot produce any effect because *karma* is only an instrumental cause; it is the soul which is the essential cause of all experiences. This explains the theory of the soul as the possessor of *Karma*. A question may arise as to why the conscious soul is associated with unconscious matter ? The Jainas reply that the *Karma* is a substantive force or matter in a subtle form, which fills all cosmic space. It is due to *Karma* that the soul acquires the conditions of nescience or ignorance. The relation between soul and non-soul is beginningless, and is due to nescience or *avidyã*, which is responsible for worldly existence or bondage The soul takes matter in accordance with its own *Karmas* and Passions. This is our bondage, the causes of which are delusion, lack of control, inadvertence, passions, and vibrations.

Moksa or liberation is the total deliverance of the soul from the *Karmic*-veil or *Karmic*-matter. Influx of *Karmic*-matter into the soul is caused by the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

actions of the body, speech and mind. Hence what is necessary precondition of liberation is not only stoppage of the fresh-flow of karmic matter but also dissipation of the old one through austerities. Then only the soul experiences eternal bliss. However, there is a dilemma : If *Moksa* or liberation is the product of spiritual *sadhana*, it is non-eternal and if it is not such a product, it is either constitutional or inherent or at least impossible of attainment. Even the Jaina doctrine of constitutional freedom of the soul and the four infinities present a difficulty. If the self is inherently good and perfect, how can *karma* be associated with the soul ? If *karma* is said to be cause of bondage and bondage the cause of *karma*. Then there is the fallacy of circumlarity and also regressusad-infinitum. If the *karma* is beginningless, then now can the soul be essentially perfect ? Thus all the doctrines of means of liberation become quite meaningless. Hence, logic will force the *Jainas* to make a distinction between the manifest and unmanifest Liberation is not the attainment of what is already attained but manifestation of what was latent in the soul. In this sense, liberation in *Jainism* is not something new but a rediscovery of man himself through self-realisation. True happiness lies within.

The soul has, no doubt, inherent capacity for emancipation but this capacity remains dormant unless it gets an opportunity for expression, through some spiritual exertion through fourteen stages of spiritual evolution. Here mysticism and metaphysics co-mingle.

We can broadly classify these 14 stages of spiritual advancement under the following heads :-

(1) Dark period of Self prior to its awakening.

(2) Awakening of the self and fall from awakening.

(3) Purgation.

(4) Illumination.

(5) Dark period post-illumination and

(6) Transcendental life.

The dark period of self prior to awakening is a period of discontent and disquiet, due to deluding *Karma*. This is *Mithyãtva* which is responsible for turning our perspective to such an illegitimate direction that in effect there ensures perverted belief or non-belief in ultimate values. It is also corruption of knowledge and conduct as well. The plight of self is like an eclipsed moon or completely clouded sky. It is a stage of spiritual slumber with the peculiarity that the self itself is not cognisant of its drowsy state. It aims at moral-intellectual and spiritual conversion. Mere intellectual enlightenment is not enough. So also mere moral life is not enough. What is required is tripple transformation in mental, moral as well as spiritual life. Intellectual attainments and moral achievements are unequivocally

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

fraught with social utility, but morality pervaded with spiritualism can alone lead us to the transcendental heights. Right Faith (*Samyagdarsana*) is origination of spiritual conversion or awakening of the self (*Aviratsamyagdrsti Gunasthãn*), which is sometime consequent upon the instruction of those who have realised the divine within themselves or on the path of realisation through instruction from the spiritual teacher (*Sad-Guru*) - *Arahanta* (Bodily liberated), *Siddha* (Disembodied liberated), *Acharya* (Spiritual Initiator), *Upadhyaya* (Teacher) and *Sadhus* (Saints). There are types of spiritual conversion and there are requisites of mystic's journey after spiritual conversion. Then at the stage of purgation, the aspirant achieves a mental attitude of self-denial and self-control. Scriptural study is also necessary to develop right knowledge. Then devotion is also required which implies the sublime affection, circumscribed by immaculacy of thought and emotion towards the divinity-realised souls. Then there are 16 kinds of reflection as the embodiment of knowledge, action and devotion. After purgation, there are higher stages of advancement with the rise of Samjvalana and nine sub-types of passion in such a mild form that it cannot generate *Pramada* in the constitution of the Self. Onward 7th stage to the 12th stage of Spiritual Development are meditational stages or the stages of illumination and ecstacy. The spiritual aspirant who possesses the fresh fruits of contemplation may encounter his outright purification, and expend a swing-back into darkness. This divides the first mystic life (illuminative way) to the second mystic life (transcendental life), where the shombering and unawakened soul, after passing through the stages of spiritual conversion, moral and intellectual preparation, arrives at a sublime destination by ascending the rungs of meditational ladder. Now by virtue of his metamorphoses into transcendental self neither abandons nor adopts anything, but rests in eternal peace and tranquility. The self which was once swayed by perversion, non-abstinence, spiritual inertia and other types of passions and quasi-passions refuses to be deflected by them. It is an example of divine life on earth. Potentiality has been turned into actuality. The discrepancy between belief and living has vanished. It is the final consumation of spiritual life (*Sayoga Kevali Gunasthana*). The next and the final stage is that of disembodied liberated stage (*Ayogi Kevali Gunasthan*), where the soul annuals even the vibratory activities. At both these stages, the Self is called *Arahanta* having seven kinds differing in certain outward circumstances. The *Arahanta* is the ideal saint, the supreme spiritual teacher and the divinity-realised soul, and established in truth in all direction. He is freed from anger, pride, deceit, greed, attachment, hatred, delusion, animal existence and pain. He has a life of super-moralism but not a a-moralism. He is the overplus surpassing all that can be clearly understood and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

appraised. In eternal divinity, there is no devotional control of breath, no object of meditation, no mystical diagram, no miraculous spell, and no charmed circle.

However, the transcendental life par-excellence (*Siddhahood*) immediately follows the final emancipation and is in the disembodied state. This state of Self is beyond even *Gunasthanas*. It transcends the realm of cause and effect. It is without body, without resurrection, without contact of matter, he is neither masculine nor feminine nor neuter. Its essence is without form, there is no condition of the unconditioned. Hence it is the termination of the spiritual adventure.

Conclusion :

The uniqieness of *Jain* spirituality lies in more than one sense. It is integral as it combines the empirical with the transcendental, intellectual with devotional : faith with knowledge and conduct. Secondly, its supermoralism does not conflict with the highest virtuous life. Thus it reconciles the life of spirit with the life of Virtues, individual perfection with social goodness unlike the Platonic Contemplation or Aristotle's Theories. In fact, *Jainism* treats life as a unity in which the empirical and the transcendental are not treated as watertight compartments. Even in the *Jain* enumeration and classification of cardinal virtues, we find mention of spiritual conversion, scriptural study, meditation and devotion also. It is not fair to criticise to say that the *Jaina* list does not include the other regarding virtues of benevolence, succour, and social service because in the comprehensive list provided by Professor R.D. Ranade there is threefold division of virtues - individual, social and spiritual, which are found in *Jain* scriptures also. The *Jain* Saints adheres to the observance of not only five great vows but is also an example of the dedication of his integral energies to the cessation and shedding of *Karmas* and subjugating 22 kinds of *Parisahas* and the practice of 12 kinds of austerities. Of the six kinds of internal austerities, *Dhyana* (meditation) is of supreme consideration. All the disciplinary practices form an integral constituent of right conduct. But the most important contribution of *Jainism* is to provide practical guidance for the attainment of transcendental life through *Gunasthanas*.

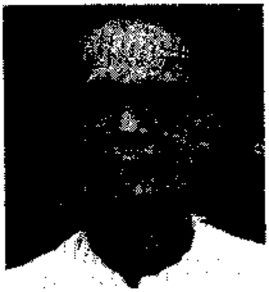

❑ ***Professor Dr. Ramjee Singh*** *is an eminent Educationalist, writer and thinker. Born on 20-12-1931 in Munger District, Bihar, Dr. Singh served as Head, Department of Gandhian thoughts in Bhagalpur University (1980-92). He also served as Vice-Chanellor, Jain Vishwa Bharati Institute, Ladanun from 1992-1994. He has written 38 books in Hindi and English. Associated with a number of Educational Bodies and Social Institutions.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

STUDIES ON BIOLOGY IN TATTVARTHA SUTRA (FOMULAE ON REALS)

N.L. Jain,
Jain Kendra, Rewa, M.P.

Introduction

One does not know when the animistic Jain System became dualistic or pluralistic. However, *Tattvartha Sutra* (Formulae on Reals)[1] is the first Sanskrit Jain text propounding Jinstic pluralism of seven reals and six realities. Its author has been an area of scholarly dispute with respect to his name (*Aryadeva, Grddhapiccha, Umasvati, Umasvami*), lineage, location and ideology. Overlooking the earlier tradition of modesty towards the omniscients, in not giving encomium in texts desregarding historical perspective and basing arguments on sufficiently late epigraphic (11th century onwards), literary (4th century onwards), lineage and contental evidences, many scholars[2] have started not only calling the *Digambara* tradition as southern tradition (only) despite the fact that Mahavira and other victors propagated it throughout north and south of India but that almost all their current canon - like texts are post fifth century C.E. This trend should be scholastically reversed with proper studies and publications for conceptual globalisation of this church. However, it is pleasing to note that *Tattvartha Sutra* is an exceptional text which is recognised as a pre- schismic text covering a period of second to fourth century C.E. and containing the formulae of freedom or release from worldly woes leading to ultimate happiness. Its scholarly popularity can be judged from the number of its commentaries in many lauguages from fifth century onwards to date.

The text contains 10 chapters with 357 (or 344) aphorisms covering details about the basic concepts on reals and realities. The living being is the first real (and reality also) related/associated with all others. Though realitywise, it numerically forms about 15% only, but the text has 35% chapters and 40% aphorism dealing with the living. Incidentally, it is interesting to point out that the aphorisms do not contain the term *'Atma'* (Soul) at all, the term *'Jiva'* also being found in 11 places. It seems that the term 'Soul' could not have become popular in Jain system upto the age of *Tattvartha Sutra*. It entered through the same process as the terms *'Dravya'* (Reality) in place of 'Existents' and the term *'Visesa'* (Particularity) in place of 'mode'. The Jain Seers tried to establish equivalance in terminology with other philosophies and they accepted the term *'Atma'* (Soul) for *'Jiva'* or living like the terms 'Sense perception' and 'Supra-sensual perception'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(two kinds of perception) and 'ideal atom' and 'Practical or real atom' (two kinds of atoms) - thus serving dual purpose - equivalence and maintainence of their own concepts[3]. The commentators of the texts have mostly used the term 'Soul' for *'Jiva'* (living) and many - a - times, they have been interchangeably used to create some confusion in details as - later Soul becoming supreme, pure or auspicious soul. The soul, being non-material, is out of bounds of current biology atleast now. *Hence this paper will deal with the living or impure soul which is described in Biology.*

Soul = Living - (*Karmic*) body
Living = Soul + body = Impure Soul = *Jiva.*

The living one is described in many spiritual texts *in a highly degraded way to create psychological thrust for moving towards detachmental path*[4]. This trend may be one of the causes of detestation of religiosity among young people. However, the description shows fine observation power of the seers. But *Tattvartha Sutra* is free from this defect and it really serves as freedom formula for the living to move towards soulhood. The text is more realistic than many others of earlier or latter dates. Chaturvedi[5] points out that there has been a period in the development of Indian thought when every physical system or entity (vitality, senses, mind) was spiritualised and got defined in terms of physical or psychical, real or ideal, alienable or non-alienable etc. Consequently, it became difficult to be understood by common man. This spiritualisation became instrumental in cultivating individualism over socialism. This is the basic cause of our sad physical status today.

The biological sciences[6] deal with the canonical impure living beings of all types with respect to (1) the origin of life in general (2) characteristics of livingness (3) classification (4) external and internal details (5) working mechanism and (6) life cycle besides many other points. The *Tattivartha Sutra* and its commentaries also describe these points in terms of 40 disquistion doors. It is, therefore, interesting to compare and contrast the canonical and current knowledge on the basis of the data provided on both sides. It is observed, on comparison, that there is good correlation on many points in both cases on surfacial or gross level. *However, when one goes into deeper, internal or functional mechanistic points, one finds a gap involving deficiency and discrepancies in almost all points.* This contrast suggests the historical perspective and development of biological sciences between the current age and the age of T.S. *It seems that the canonical contents of early christian era serve as historical mile stone for the life sciences of today.* However, it is seen that biological sciences have added to some scriptural contents while posing some points for reconsideration or modification. They cannot, perhaps, be rejected like the astronomical contents therein.

Data

The date used in the study are taken from the original *T.S.*, its commentaries[7,8]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and other earlier or later sources along with texts of biological sciences. They have been tabulated in Table 1 and analysed for probable conclusions. The experimental data have been procured through microscopes of different fine power.

Results : Analysis and Discussions : 1. Description and Definition of *Jiva*

Jains are noted for their aspectwise studies. They have described the living beings through 40 physical and psychical disquistion doors in the ratio of 3:1.[9] The *T.S.* has about 12 disquisition doors which contain the distillate of Biological knowledge since Mahaviran age. It seems that the doors of Investigations and Spiritual stages were not fully developed in the age of *T.S.* and that is why they do not find place in D.D's in *T.S.* The current biology also discribes the living beings under 28 branches given in Table 2. *It is observed that all the Jaina D.D's fall under 11 branches. Whereas the biological sciences do not have volitional and spiritual doors (totalling 17), we do not find the same number of branches (17) in our canons – most of these branches originating within the last 200 years.* However, the canonical descriptions there are comparatively less advanced. Further, some of the subjects are discussed in psychology or ethics.

Despite too many D.D's about the living, we will discuss some important doors in this paper: (a) Differentia of the living (b) Classification with respect to mobility, physical senses, gender and mind (c) Types of birth (d) Bodies and their possessors (e) Death and transmigratory motion. These topics have been elaborated in commentaries of *T.S.* which will also form the basis for this presentation.

Differentia and Synonyms of the living

A two - fold definition of the living being has been described in the *T.S.* commentaries: non-alienable and alienable - a later development. The alienable differentia seems to be the effect of spiritualisation of physical entities. Looking back to some earlier or later literature, we find 10 to 23 synonyms of the living in *Acaranga* (10), *Bhagavati* (23), *Panchastikaya* (17) and *Dhavala* (20).[10] The etymological meanings of these synonyms indicate many properties of the living. It is seen that while the primary canons mostly mean physical properties of the living including birth, death etc. if consciousness is also taken nearly physical as it is said to be a product of physiological mechanism of the brain - a functional brain like *upayoga* - a functional consciousness.[11] Even the terms *'Atma'* (movement) and *'Antaratma'* (pervasive in body) have different meanings in canons. When the non-materiality was associated with these terms, has to be investigated deeply. Some texts mention even the size, weight, reproduction characters of the living - indicating they are dealing with the current biological living.[12] In contrast, the *Digambara* canons mention many non-material properties like weightlessness, intangibility and volitionality etc. All these synonyms represent definitive characteristics.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Table 1: Comparative study for Biology in *T.S.* and current Biology

No.	Point	T.S. Biology	Biological Texts
1.	Disquisition doors	40	28
2.	Origin of life	eternal, Mutation	Evolutionary, Cellular
3.	Concepts of living	10	30
4.	Birth	Uterine/Non-uterine	Uterine / Non-uterine in one sensed, Uterine in 2-5 sensed.
5.	Death	Natural/continual 5 types, 17 causes	Clinical death Brain death
6.	Senses, physical	Vary with perceptibility of organs.	4 senses in primary living 5 senses in the rest
7.	Senses, psychical	vary with physical senses.	All psychical senses in cellular theory
8.	Mind, physical	No physical/psychical mind in 1-4 sensed Physical / Psychical mind in 5 - sensed.	Physical mind (Brain) in all living beings except 1- sensed
9.	Mind, psychical-	-	Psychical mind associated with physical mind.
10.	Food	Grains, pulses, Til, etc.	Carbohydrates, proteins, fats, vitamins etc.
11.	Metabolic products	Blood, fat, bones, bone marrow etc.	Cellular regeneration, hormonal secretions DNA - RNA and genes etc.
12.	Transmigration	Yes	Not agreeable
13.	Bodies	5 types	3 types agreeable
14.	Classification	2 (Botany, Zoology)	2
15.	Sub - classification		
	(a) Botany	406	48
	(b) Zoology	450	302 (17) (invertebrate vertebrates)
16.	Nomenclature	Non-universal, Ancient languages	Natural, Based on binomial system

Table - 2 : Disquisition Doors or Branches of Studies of the living beings.

	Canonical D.D's	Biological Branches
1.	***General studies:***	
	1. Definition/naming	-
	2. Numeration	-
	3. Destination/Destinity	-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. *Physical disquistion doors*	
(a) Anatomy/Tectology/Osteology	
1. Body	Anatomy
2. Sense Organs	Tectology
3. Vision	Osteology
4. Speech	
5. Modification	
6. Bone joints.	
(b) Morphology	
7. Shape/Configuration	
8. Fineness (min./max.)	Morphology
9. Colours	
(c) Physiology/Endocrinology/Trophology	
10. Intake, Directions	
11. Intake, Types	
12. Respiration	Physiology
13. Completions	Endocrinology
14. Vitalities	Trophology
15. Life Span (min./max.)	
(d) Embryology/Phylogeny/Taxonomy	
16. Sex	
17. Birth types	
18. Birth places	Embryology
19. Species	Phylogeny
(e) Habitat	
20. Directions	
21. Location	Habitat
3. *Doors not found in Biology - 17*	***Branches not found in canons - 17***
(f) Volitional	
22. Mind	Cytology
23. Instincts	Histology
24. Passions	Ecology
25. Colourations	Parasitology
26. Feeling (pain/pleasure)	Pathology
27. Faith	Toxicology
28. Activity	Eugenics
(g) Spiritual doors	Actinobiology
29. Functional consciousness	Aerobiology
30. Ownership	Limnology
31. Karmic bondage	Enzymology
32. Ownership	Genetics
33. Extrications	Paleo-ontology
34. Attachment	Evolution
35. Restraint	Ontogeny
36. Spiritual stages	Euthenics
37. Liberatability	Euphenics
38. Cognitions/Conations	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

It seems Umasvati has involved the five major canonical characteristics[13] of *'Jiva'* in terms of (1) Physical forms (bodies, birth, growth) (2) Cognitive (cognition, conation, consciousness, mind, instincts etc.) (3) Volitional form (five types of *Karma*-based or inherent volitions involving passions, colourations etc.) (4) Actional form (Activity and restraint) and (5) Experiencial form (Pleasure, pain, heat, coolness, sensitivity, or consciousness) in his two-fold definition :

(a) Volitional or current psychological

(b) Capacitative and functional consciousness (*Upayoga, Cetana*)

The commentator, Akalanka, has mentioned a third point in the definition.:

(c) An entity with vitality (sense-organs, respiration, life-span, strength - all physical attributes).

He has described all these definitions in second and other chapters of *T.S.* *However, in the days of spiritualisation, the cognitive differentia became primary, non-alienable or ideal one, others getting secondary positions.* But the ideal property cannot be without its substratum and the commentators have, therefore, mentioned dual nature of difference and non-difference between an attribute and attributed, materiality and non-materiality of the living being etc. *When one faces logical difficulty on one side, it could be solved from the other side.*

On this trend, there could be three types of the definitions of the living beings:

(a) Purely physical : vitality

(b) Purely non-physical : Consciousness

(c) Mixed definition : Physical-cum-non-physical (vitality and consciousness).

Umasvati has not mentioned purely physical definitions of the living - though he has 'completion' as a form of physique - making *Karma* and 'vitalities' have been mentioned by Akalanka in 2.13 - 14. However, he has mentioned two definitions as above - the other ones fall into either of these two categories. These seem not to involve non-materiality as consciousness is a faculty of brain and mind. This definition is also in tune with the extant primary canons where the terms *'Jiva'* and *'Atma'* connote more or less physical synonymity. Thus, the *'Jiva'* may be defined as an entity which has two characteristics similtaneously-(1) Vitality and (2) Consciousness (capacitative and functional. Akalanka has proved the existence of the livingness in the body by (1) I-usage (2) doubt (3) reversal (4) exertion or resolution which apply to *'Jiva'* (worldly living) also as every point is applicable to physical entities.

The biologists have also characterised the living entity on the basis of its manifold attributes shown in Table 3.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. Jaina Taxonomy and current Taxonomy -

The T.S. classifies the living beings on three important basis;

(1) evolution of sense organs,

(2) mobility or otherwise and

(3) mind as shown in Table-3. However, the earlier texts and *Gommatsara*[14] classify them on the basis of about thirteen physical or volitional factors like body, size, completions, libido, embodiment, passion, colouration, consciousness, destinities, gender, besides the three above. The current biology, however, classifies the living beings on not only external similarities of structure, shape etc. (like flowering and non-flowering plants or chordata and non-chordata classes of animals) but on the basis of internal compositional similarity also (like genetic relationship). But one thing is clear that *T.S.* and current biology-both have two main classes of the living beings :

(1) Plants, non-mobilies and

(2) *animals (mobiles, sub-humans and humans). However, Jainas will tell that human beings (hellish and celestials also) are not animals.* They form a separate class in the mammalian category of biologists. Moreover, the biologists do not classify living beings on volitional or other bases as in canons.

Table 4 indicates the almost all details under *the four heads have better numeration in Jainology but the fineness seems to be better in current biology.* Moreover, there is no direct basis of senses of mind in biological classification, though they become part of the structural systems of any living being. The basis of volitions or psychology is also not there in Biology but this forms the most important part of *Jainology* as it is the purity of the psyche of the living beings the leads to happiness.

3. Classification on the basis of senses

The *T.S.*, classifies the living beings on the basis of evolution of cognitive senses and sense-organs. *It is worthy of note that the senses of the living beings mentioned in T.S. seem to be physical only and they may represent a pre-microscopic age description.* The T.S. mentions five classes of 1-sensed or non-mobile beings and one class each of 2,3,4 and five sensed beings, mentioning one representative of each class. Other members of the same class are not mentioned there though the *Svetambara* canons,[15] *Mulacara*[16] and other texts have listed them.

Table 5 gives the *T.S.* description of senses and other organs among the various classes along with current biological information. It is clear that *T.S.* sense - based description represents eye-perceptible senses which goes contrary to biologically and microscopically observed senses. The botany and zoology texts.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Table 3 : Scientific and Canonical Concepts about the Living.

S.No.	Scientific Concepts		Canonical concepts	Agamic terms
	A. Characteristics			
1.	Food, nutrition, metabolism, secretions		food	-
2.	Celluar structure		body, strength	mattergic
3.	Body organisation		Mattergic	multi-*pradeshi*
4.	Reproduction		Sex	*Yoni*
5.	Birth		Sex	*Jantu*
6.	Death		life span	*Jiva*
7.	Movements		senses, strength	*Jagat, Atma etc.*
8.	Respiration		respiration	*Prani*
9.	Excretion		respiration	*Prani*
10.	Irritability/consciousness		mind, mental strength, fear	*Vijna, Veda, Cetna*
11.	Adaptation		-	-
12.	Growth		-	-
13.	Life cycle		-	-
14.	Shape/form		-	-
15.	Locomotion/circulation		-	-
	B. Origin of Life			
16.	Evolutionary, Mutation not possible		eternal, mutation possible	-
	C. Characteristics			
17.	Irritablity		capacitative and fanctional	cetna
	D. Classification			
18.	Botany, Zoology		mobile, non-mobile Minded, non-minded	-
19.	Basis of classification : Structural similarity :	(a) plants (b)animals	32 (senses, mind etc.), 9	-
20.	Classes :	(a) plants 9 (b) animals 17	1 - 570 2 - 40	-
21.	***F. Life cycle:***	(a) Birth 2	3	-
22.	Life cycle :	(b) Growth	linear / vertical	-
23.	Life cycle : - not counted	(c) Birth places	9,8,4 lacs of species	-
24.	Shape of birth places	5	3	-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

25.	Death Types 2	5, 17 causes	-
26.	Life spans-not mentioned	detailed mention in T.S.	-
	G. Sex and heredity All three sexes	Neuter - 1-4 sensed 3 Sexes - 5- sensed	-
27.	Sex basis of progeny (a) specific chromosomal Combination, XX or XY (b) genes, secretions, stimulations, volitions etc.	excess of semen/germs stray mention of some factors	-
28.	H. Volitional Character little description	five-fold volitions with their 53 kinds, karmic/inherent	-

Table 4 : Jaina Taxonomy and Biological Taxonomy

S.N.	**Classification**	**Canonical**		**Scientific**	
		Plants	***Animals***	***Plants***	***Animals***
1.	Basis	32	9	4	2
2.	No. of major classes	406	48	202	13
3.	No. of types	350+100	302	-	-
4.	No. of types of human beings	←———	742-845	———————	——→

Table 5 : Senses of different classes of beings

S.N.	**Living beings**	**Canonical**			**Biological**		
		Senses	***Mind***	***Gender***	***Senses***	***Mind***	***Gender***
1.	Earth, Fire, Air, Water	1	-	H	-	-	-
2.	Plants	1	-	H (Dormant)	1,4	-	M/F/H
3.	Worms/insects	2	-	H	5	Yes	bi-/uni sex
4.	Ants	3	-	H	5	Yes	Uni sex
5.	Bees	4	-	H	5	Yes	Uni sex
6.	Human beings (including many animals)	5	Yes	M/F/H	5	Yes	Uni sex, M/F/H

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

can be consulted on the point. Though it is said that every living being may possess all the senses psychically but they do not perform their functions because of physical sense organs. However, *Panca Sangraha* 1.69[17] indicates that the onesensed plants to perform the functions of all the senses with their one sense. This is in tune with the researches of J.C. Bose and Haldane. There is one superattainment of sensibility of all senses through one sense. It leads to the fact that whatever be the number of eye-perceptible senses, all the psychical senses could be there in the living. The work of the above scientists supports the cellular theory of the living which has sensibility towards all senses directly or indirectly. Thus, current biologists would tell almost all the physical and psychical five sense sensibility in all types of living beings except earth, fire, water and air which they do not presume as living. Per chance, they are called living in *T.S.* and canons because of substratum-substrate relationship.

4. Gender or Sex organs

The 1-4-sensed living beings have been called hermaphrodites by gender in *T.S.* 2.50. However, Table 5 indicates that the livingness developed with no sex-signs at primary level, it developed to bi-sex and then uni-sex characteristics later with two-sensed beings. Even sex-characteristics are observed in plant kingdom also.[18] Thus, hermaphroditism is only a partial statement. These species could be female and males also by sex in addition to their hermaphrodite gender. Thus, 1-4 sensed beings may be mono-sex or bi-sex by gender. The bi-sex nature could have two varieties - one having reproductive capacity and other having no capacity of reproduction. The biologists agree to both these types in contrast with the canons. However, the five sensed beings are said to be having all the three genders or sex organs physically and psychically.

5. Mind : Physical and Psychical

The 1-4 sensed beings (as well as some 5-sensed beings) are also said to have no mind. In fact, the term mind requires proper definition. It is said to be of two kinds - physical and psychical. The physical mind could be equated with the brain of living beings while the psychical mind could be the functional part of the brain as it cannot work without physical mind. The biologists point out the existence of physical brain in the living beings with two or more senses. Lodha mentions that even plants show some brain functions.[19] Thus, physical mind exists in almost all living beings. How, otherwise, they could go for desirable and not for undesirable. The psychical mind is associated with the physical one, they should have also to be presumed to possess this mind also in dormant or developed form. It is also said to be mattergic because of the *Karmic* destruction-cum-subsidence in *Rajvartika* 5.19. There are some functions of mind - thinking, memory, learning, desire for food etc. Quite a number of them are found in all the living beings if not wholly but partially. That is why, biologists have observed physical mind (Brain) in almost all living beings from 2-sensed onwards at least. The psychical mind should follow it. Thus, there is some point for reconsideration of mindedness of all-sensed beings.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. Bodies of the Living Beings

Ethymologically, a body is defined as that which is formed due to fruition of physique - making karma which undergoes shattering. It is made up of infinite mattergic particles. It is the instrument of senses, activity and enjoyment. It could be material and it can also be living if it is an embodiment of the living. Every living being is, in fact, found embodied in the world. The fourteen aphorisms 2.36-49 describe about the five types of bodies and their characteristics in which embodiments are observed. These move from gross form to fine form, eye-perceptible to invisible forms. Table 6 gives their details. These embodiments are produced by uterine or non-uterine processes.

The biologists also agree with different bodies of the living beings depending on their class. However, they have described the various systems and organisation under the observable body surface, (i.e. skin etc.). *It seems that T.S. term body is a generic term covering all the current scientific descriptions, of course, which are not found there.* The finer bodies of luminous and *karmanic* type are generally not termed as bodies by biologists, but they are the forms of metabolic products like caloric energy produced therein to run the body and cells, secretions and genes etc. which are produced during in take metabolism to augur different functions properly. If they are not there, there will be difficulty. Some Jain authors have equated luminous body with caloric or electromagnetic energy in the body, but *karmanic* body is said to be finer than cells etc. However, if *karma* is taken as equivalent to these fine parts in the body, it may sound more scientific to explain many phenonmena properly. The scientists do not seem to agree with protean and projectable body but they also seem unable to explain many observed phenomena based on them.

Table 6 : Details about five bodies

S.No.	Body	Form	Space points	Ownership	Birth-base
1.	Gross	Gross	Infinite	All living beings	Uterine/Non-uterine
2.	Protean (Transformable)	Fine	A_s	(Men, animals) Hellish, Celestials	Special bed birth
3.	Projectable	Finer	$A_s.A_s$	Sixth stagers	Uterine
4.	Luminous	Finer	N.∞, (1/∞L)	All living beings	Uterine/Non-uterine
5.	*Karmanic*	Finest	N.(∞), $1/\infty^2$L	All living beings	Uterine/Non-uterine

Where N = Non-liberatable; L = Liberated beings; A_s = innumerable.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

7. Life Cycle of Living Beings : (a) Birth.

Every living being has a life cycle of birth, growth and death. The birth is defined as the first appearance through conception (invisible in general) or delivery of a new living embodiment in the world. The conceiving factors are not given in *T.S.* though they are given in *Sthananga* (Page 576-578, 628-29). The T.S. 2.31 mentions three types of birth through which new living species of different types are born (1) Non-uterine or spontaneous (2) Uterine (incubatory, placental, non-placental) and (3) Special bed. We do not have any concern here with the third type as it relates to the upper and lower world and we are dealing with middle world only. The remaining two types of birth are important here. Table -7 indicates the types of birth which different types of living being may have as per *T.S.* and biological science. *T.S.* mentions a-sexual birth for 1-4 sensed ones and sexual birth for the 5-sensed ones. In contrast, the biologist have three types of birth mechanisms; (1) Vegetative (2) a-sexual and (3) Sexual. Many plants have vegetative reproduction but most have indirect sexual reproduction. Similarly the 2-4 sensed beings also do have sexual reproduction. It may be indirect as there is no fixed place for birth and most of the times, no internal receptors for sperms. Thus, external sexual birth takes place in many cases. Of course, there is uterine birth for 5-sensed beings in *T.S.* and biology.

Table 7 : Different types of Birth for Living Beings.

S.No.	Birth	T.S.	Biological Science
1.	Uterine birth (Direct sexual)	5-sensed (men, animals)	5-sensed (men, animals) 1-4 sensed have also indirect sexual birth.
2.	Spontaneous or a-sexual birth	1-4 sensed, some 5-sensed beings	Very few categories of primary living beings.

The *Digambara* Commentators of *T.S.* have defined the term ***'Sammurchima'*** as production of a living species from critical collection of surrounding material bodies when spontaneous generation takes place. This definition suggests that the Jains could accept the Carvaka or Aristotlean theory of materialistic origin of primary or higher life which goes against their concept of living begets living. To alleviate this, the term should be redefined. The *Sthanangvrtti* (P.108) has defined it in terms of non-uterine birth which may also involve vegetative reproduction. It is because, the prefix 'a' could have two meanings: (1) Complete negation of sex as in vegetative reproduction or (2) Indirect (not-perceptible to eye) sex as in many cases of 1-4 sensed beings as is pointed out in *Kalpsutra* in the form of oviparous uterine births of honey-bees,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

spiders and ants besides reptiles.[20] There is no mention of this type of explanation in *T.S.* commentaries by *Digambaras*. If '***Sammurchina***' is defined as a-sexual with two meanings of the prefix 'a', a better scientificity could be attached to the birth process of 1-4 sensed ones. All the Indian philosophies have devised theories for the livingness produced through non-living entities by assuming seminal fluid or sex-cells as non-living which does not seem to be correct in current days.

(b) Growth :

The *T.S.* does not have details about growth. But other texts like *Dhavala*-6, *Gommatasara* and *Tandulveyaliya* give some details about the growth process of plants and human beings. They also give growth of foetus upto delivery. This has been omitted by *T.S.* as it does not serve any spiritual purpose. It is said that plants grow mostly vertically by assimilating sap from soil, water, air, fire and even other plants through their roots and shoots to build up their body parts. Similarly, the human beings grow by assimilating and metabolishing food materials into blood, flesh, fat, bones, bone marrow and semen. During growth, it passes through ten stages of growth described in decadic years in two ways as below (Table 8).

Table 8 : Growth stages of human beings

S.No.	Decad	Growth-1	Growth-2
1.	0-10 yrs.	Child age	Sacraments and celebrations
2.	11-20 yrs.	Sportive age	Age of education
3.	21-30	Slow growth	Age of enjoyment
4.	31-40	Youth or strength	Age of earning experience
5.	41-50	Family breeding	Age of weakening eye sight
6.	51-60	Adulthood	Age of weakening strength
7.	61-70	Old age	Age of de-sexing
8.	71-80	Contracting stage	Age of weakening knowledge
9.	81-90	De-sexed stage	Age of bending body
10.	91-100	Sorrowful stage	Age of departure/death

The Jaina seers could think of an average worldly life of 100 years. It is clear that these are external observations and no factors responsible for different stages have been given. The biologists have tried to do that. They are also trying to lengthen the life by chilling, undereating, medication, meditation and telomer control bucklecter (clustar) etc. in order to move towards immortality.

(c) Death

Death is the natural process of termination of functioning of ten vitalities of cognitive senses, respiration, life-span *karma* and strength. *Akalanka* in his commentary on 7.22 points out that death

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

has two varieties - (1) This- worldly death (2) Continuual death. This - worldly death means destruction of vitalities while continuual death seems to mean ever-lasting process of cellular destruction and regeneration or continuual loss of particles of life span *karma.* There may be natural death, there may be accidental death. There may be fool's death, there may be prudent's death or there may be holy death. The texts describe 17 causes of death including physical and psychical (fear, sorrow, pains etc). and demigodal ones. The *T.S.* 2.53 mentions that some class of excellent persons may not have accidental death and that death may be delayed by *Ayurvedic* treatments.

The death process is also described by medical biologists. They also tell us it is a natural phenomena caused due to internal or external physical factors like accidents, failure of body parts, suicide etc. and many psychological factors as indicated in Canons. However, they do not approve of demonical death, it being taken as a form of psychological death. They point out that at normal death, there are certain changes like (1) Stoppage of cellular regeneration processess (2) Zeroing of bio-electrical charges of the living beings so that circulatory systems stop functioning and (3) Stoppage of heart beat etc., as given in the Table 9 below.

Table 9 : Death in Canons and Biology

S. No.	Details	Canonical	Biological
1.	Characteristics	Destruction of vitalities	(1) Stoppage of cellular regeneration (2) Zeroing of bio-electric charges. (3) Failure of body parts etc.
2.	Types	5; Natural, accidental, demonical continual, holy	Clinical death, brain death
3.	*Causes :*		
	Physical	14	10
	Psychological	2	2
	Demonical	1	-
	Euthanasia	Not mentioned	Rarely permitted
4.	Death delay	Medication, Meditation	Medication, Meditation, Chilling, Under-eating, Telomer control, reducing neurological defects etc.
5.	Full span of life	Excellent-bodied, Long- lived	No restriction
6.	Transmigration	Yes	Can't say

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

While the canonical concepts of continuual death represents quite a fine observation, other forms of death are factors of death rather than forms of death. In contrast, medical biologists have indicated two forms of deaths-in one heart beat, pulse beat stop functioning while the brain functions for some time, in the other the brain also stops functioning - thus all functioning mechanisms stop working. Secondly, man has always been thinking of immortality. The biologists have been successful in lengthening the life of many creatures even ten-fold. They have also been successful in increasing the longevity of life by many other physical methods shown in Table 9. The canons have a restricted view about this concept because of limitations due to life-span *karma*. Of course, austerites and meditators may have much longer life. However, it seems the biologists are moving towards overcoming control of life-span *karma* for the process of longevity.

(d) Transmigratory Phenomena

The T.S. 2.25-30 describe the after-death phenomenon. In fact, these aphorisms should have been placed in the end of the chapter two after describing irreducibility of life-span. These six aphorisms point out that the living beings have transmigratory motions for 1-3 (or four) *Samayas* to acquire new state of birth after their this - worldly death.

The *T.S.* 2 is mostly concerned with the physical aspects of living-mind, senses, bodies, birth, gender and vitalities keeping their psychic aspects underground. Nearly 70% (37/53) of this chapter deals with these aspects. The volitions are generally psycho-physical. The above aphorisms seem to indicate a new aspect of *Jiva* which seems more than physical adding to the psychic phenomena. The *Acarya* was not only reformist but a traditionalist also. He has reformed/ reframed many concepts without much deviation from tradition. He has followed the same practice through these aphorisms to maintain that though the *Jiva* is mostly physical but it is associated with some specific non-physical phenomenon too. The transmigration process exemplifies it. In fact, this concept is based on two religious postulates:

(1) The concept of eternal non-material soul

The living body consists of at least three types of bodies -

(1) Gross, eye-perceptible bodies
(2) Fine body (microscope-perciptible)
(3) Superfine *Karmic* body.

Besides it has something else. At death, this something associated with these superfine bodies moves out of the gross body. What is this something? The religionists call it soul - the *karma* - free eternal non-material entity. Its nature is

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

not subject to scientific investigations, only it is accepted on the basis of its functioning-consciousness etc. Many scholars have discussed the indirect acceptance of this concept by the scientific community.[21] However, *imaginative concepts differ from realistic ones.* The equivalance of soul, mind and consciousness raises some points to call it as a fine force. At death, the finer bodies associated with this force fly away for next place of birth, through transmigratory motion.

(2) The Concept of Rebirth and Salvation

The pure soul does not have rebirth. It is called salvated or *karmically* freed. However, the worldly being is always *karmically* associated with a strong desire for being *karmically* freed. He has to wander in the world to a cycle of spiritual upgradation - degradation until he becomes free of rebirth. Thus, the concept of rebirth is meant only for worldly beings. The forceful finder bodies of the dead worldly being take rebirth.

Both these concepts seem to be more of psychological origin like the concept of God which lead men to be always optimistic for better life, efforts and brotherhood. On the whole, the transmigratory motion is beyond the scope of science at this time. The para - psychologists are not unanimous on both of these concepts. They feel it a question of faith and self-experience.

8. Volitional or Psychic attributes of the living

It has been pointed out that *T.S.* and other Jaina Texts refer to more than a dozen volitional or psychic attributes of the living beings such as (i) cognitions (ii) conations (iii) faith (iv) colourations (v) passions (vi) restraints (vii) spiritual stages (viii) feelings / experiencing (ix) attachment and aversion (x) instincts (xi) mind (xii) *karmic* bondage and liberatability. Most of these attributes are the subject of psychology of today. They are subject for a new paper. However, it must be indicated that these subjects are dealt with in psychology in a more detailed and finer way than our texts. The reader is referred to the English translation of *Rajvartika* chapter 2 for details about these attributes.

9. Conclusion

The analysis and discussions above indicate that the living kingdom between the age of *T.S.* and tenth century have very few points consistent with the current biology. Moreover, many more disquisitions doors (17) and points of definition (11) about the living have been added over the period by biologists which represent finer peep by them. The taxonomy has also gone deeper and has universal binomial nomenclature. There seems to be a large amount of discrepancy in the *T.S.* descriptions about the (1) type of bodies (2) number of senses (3)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

existence of mind (4-5) types of birth and gender (6) details of growth and (7) intricacies of death in comparison to biological ones. The question of physical and psychical nature of many descriptions is also intriguning - requiring clarification. The cellular theory does not agree with transmigration and eternalism of the living though many cases in support are reported without any confirmed opinion. The volitional factors are a field of psychology, hence not detailed in biology.

In summary, it seems clear that *T.S.* descriptions are pre-microscopic and form milestones in the history of development of biological science. In many cases, the biology has added finer points in details alongwith mechanisms-not found in *T.S.* or its commentaries. In cases of physical descriptions, descrepancies regarding senses, mind, birth and gender etc. are observed requiring modifications for their scientificity. Despite all these points, it is to the credit of Jaina seers that they could look into the various gross aspects of the living on the basis of which new and finer biology has developed despite their main theme of spiritualism. Secondly, looking at the newer and finer facts about the living is also an indicator of the fact that ancient texts should not be taken to have tri-timal value as far as physical or biological phenomena are concerned. Their contents should be considered with historical perspective. However, their ethical, moral or happiness related contents will always have an all-time value.

References

1. (a) *Acarya, Uma Swami; Tattvartha Sutra, Varni Granthmala, Kashi, 1950.*

   (b) *Acarya, Kanak Nandi, Svatantrata Ke Suta, Tattvartha Suta, Dharm- darshan Vijnana Shodha, Prakshan, Baraut, 1992.*

2. *Dhaky, M.A; Jain Journal, Calcutta, 21.2.1996.*

3. *Jain, N.L.; Tulsi Prajna, Ladnun, 22.4.1997 P.275.*

4. *............; Tandulvayaliya, Sadhumargi Sansthan, Bikaner, 1949.*

5. *Chaturvedi, G.S.; Vedic Vijnan aur Bhartiya Sanskriti, Rastrabhasa Prachar Parishad, Patna, 1972 P.8,18.*

6. *Tyagi, B.D.; Prani Vijnam, Raj Hans Prakashan, Meerut, 1988.*

7. *Acarya, Pujyadada; Sawartha Siddhi, Bhartiya Jnanpith, Delhi, 1970.*

8. *Bhatta, Akalanka; Rajvartika-1, Ibid, 1953.*

9. *Jain, N.L.; Scientific Contents in Prakrita Canons, Parshvanath Sodhapith, Varanasi-5, 1996 P.440.*

10. *Ibid., P. 371-72*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11. See reference 3.
12. See reference 4.
13. See reference 4.
14. Cakravarthi, Nemchandra; Gommatsara Jivakanda, Rajchandra Ashram, Agas, 1972.
15. Arya, Shyama; Prajnapana-1, APS, Beawar, 1984.
16. Acarya, Battakera; Mulacara-1, Bhartiya Jnanpith, Delhi, 1984 P. 173-84.
17. Acarya, Virsen, Sat-prarupana Sutra, Varni Granthamala, Kashi, 1971 P. 30.
18. Tyagi, Y.D. & Agrawal, S.B.; Vanaspati Vijnana, Arun Prakashan, Gwalior, 1988 P. 263-300.
19. Lodha, K.M..; Marudhar Kesri Fel. Vol., 1968 P. 144-73.
20. Acarya, Bhadrabahu; Kalpasutra, A.J.A. Shodh Sansthan, Shivana, 1968 P.343.
21. Muni, Mahendra Kumar; Jain Dashan aur Vijnana, Jain Vishva Bharti, Ladnun, 1994

❑ **Dr. N.L. Jain** was born at Chhatarpur, M.P., Dr. Jain studied in Varanasi and did his P.hd. from U.K. and Doctorate in U.S.A. A great writer in Hindi and English, he has published 58 Research Papers and 20 books on Jainology and related subjects. He has represented Jain Society in many International forums and received many awards. His book "Scientific contents in Prakrit Canons" is a very important publication in Jainology.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

MATHEMATICAL PHILOSOPHY IN THE JAINA SCHOOL OF THOUGHT

L.C. Jain * S.K. Jain **

"The words or the language, as they are written or spoken, do not seen to play any role in my mechanism of thought. The psychical entities which seem to serve as elements in thought are certain signs and more or less clear images which can be voluntarily reproduced and combined"

-**Albert Elinstein,** Ideas and Opinions, Calcutta, 1979.

I. Introduction

The word, "Mathematical Philosophy", seem to have originated by Bertrand Russell (1872-1970), the world famous author of the "Principia Mathematica" in the coauthorship of Whitehead. Russell is also known as the creator of the Russell paradox in the fringes of the set theory of the infinities propounded by Georg Cantor (1845-1918) According to him the early Greek geometers passing from the empirical rules of Egyptian land-surveying to the general propositions by which those rules were found to be justifiable, and then to Euclid's axioms and postulates, were engaged in mathematical philosophy. Recently it has been observed that the Jaina School of Mathematics was also engaged in the mathematical philosophy contained the *Karma* theory of the *Purvas* (the second and the fifth) still in possession of the *Digambara Jaina* School with its mathematical manoeuvre through symbolism. This can be seen in the project of the *Labdhisara* (1984-1987) at the Indian National Science Academy, New Delhi. The last worker in this field was the *Pandita Todaramala* of Jaipur (c. 1721-61) on whom an article has already been published in the Indian Journal of History of Science. It was due to his undying credit to have given a guide to the non-universal mathematics of the *Karma* theory contained in the *Dhavalas* and the *Gommatasara*, the *Tiloyapannatti* and the *Trilokasara*. These monumental works are due to the credit of *Virasenacarya* (c. 9th century), *Nemicandra Siddhanata cakravarti* (c. 11th century), *Madha vacandra Traividya* (c. 12th century) and *Kesava Varni* (c. 13th century A.D.), of the *Digambara Jaina* School.

It was already felt by Boole, Frege and Russell that deeper realms of philosophy could be approached only through words or symbols which could express the propositions between the truth and untruth. The parallel to this is the concept of the *Syadvada* in the *Jaina* philosophy. Thus the status of an object being relative to different

* *Director, Acharya Shri Vidyasagar Research Institute, over Diksha Jewellers, 554 Sarafa, Jabalpur.*
** *Computer Centre, D.N. Jain College, Gol Bazar, Jabalpur.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

points of view, a single proposition about its state marred the prospects of its description in various aspects in the old philosophies. But the *Jaina* philosophy was free from this mono-ended pursuit and it followed the poly-endedness. This led it to the existential and constructive spheres of the innumerate and the infinities in a proper and simple way through its set theory (rasi siddhanta). The secret of the mathematical philosophy in the *Jaina* School, thus lay in their attempt to give a new shape to the expressions in logic and intuition, through the word *"syat"* in the course of the *parikarmastaka* not only among the finitie sets but also for the innumerate and infinite sets of various comparabilities. Today the problem of the compara bills still unsolved in the modern set theory infinities of various types. In the *Jaina* set theory there are not only the constant sets but also the variable sets scaling the infinites of the *Karma* theory through constructions and other analytical methods. The various types of units, measures and calculations between them were needed of their *Karma* system and cybernetics which was an aggregate of various subsystems and groups of operations to annihilate the *Karma* state matrix. Thus the School had its own formalism of symbolism and its symbolic logic applied in the *Karma* theory became mathematics as in terms of Russell.

2. THE INNUMERATE IN THE JAINA SET THEORY : A PHILOSOPHICAL SUBSYSTEM

The Cantor's theory of sets, faced the contradictions, antinomies, and the inconsistencies as any theory has to face for its survival. His sets included the infinite sets, not of the philosophies, but of proper characteristics that could prove that a set though infinite could be greater than another set and also could be constructed through the principle of generalized induction. Comparability between infinite sets arose a new arena of research, beyond the old philosophical domain in which there was no place to compare infinities as in old mathematical improper infinities for their smallness of greatness. With such a new prospect of the infinities, the *Jaina Karma* philosophy took a start. Through the various sequences ranging from the unity to the supermum set of omniscience (*Kevala Jnana*), the *Jainas* located the terms of various types of sets involved in the calculations of annihilation of the *Karma* perpetual cycle of births and deaths. They filled up the gaps between such types of sets which had the number of members as numerate, the innumerate and the infinite.

Thus the *Jaina* School took a positivistic approach in introducing the innumerate and the infinite. They were meant to explain the endless processes from ab aeterno to ad infinitum, the relations between various sets involved in the realities of life of various types. They had to find, mathematically, a path to perpetual immortality in which there was neither births, rebirths and the agonies of the old age, perpetual and endless bliss, infinite power and knowledge. They

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

created the indivisible system of units, as the indivisible instant (*samaya*) and the indivisible space *(pradesa)*, against which the Eleatic School of Zeno's paradoxes were not directed. Zeno's paradoxes have an interesting history baffling the Greeks and the mathematician philosophers till Russell who explained through the process of infinite regression or the innumerate regression. The Greeks were thus obliged to leave the pursuits for infinities and had to be satisified with the as small as we please and as great as we please. We state here the miraculous paradoxes of Zeno (the sample of Parmenides, fi. 5th century B.C.) which were regarded by Socrates as truisms rather than the paradoxes :

1. **(Dichotomy):** There is no motion, for whatever is transformed into motion, it will be required to reach the middle (of the distance) before it reaches the end (and for reaching that half part it will have to reach half of the half part, and so on ad infinitium).

2. **(The Arrow) :** If, Zeno states, every object is either at rest or in motion when it occupies the space equal to its own, when that object is in that now (instant) always then the moving arrow is at rest (and not moving).

There are two more paradoxes of Zeno which could be seen in the Jowett's, The Dialogues of Plato, vol.2. The above paradoxes could not be explained without the innumerate processes in the nature of motion of physical objects which could not be divided ad infinitum. Such sequences which could have a finite sum may come under the sets with innnumerate members. According to Socrates the Zeno's paradoxes were not directed against the Pythagorean Schools because they dealt with ultimate units. The *Jaina* Schools also dealt with the *Karma* theory through ultimate units as we have seen already. Even the phases of the bios are dealt with the measure in terms of the indivisible-corresponding-sections (*avibhagi-praticchedas*), calculating the emotions in terms of the tetrads in the ultimate particles of matter bound as *karma* paramanus. These have the configuration (*prakrti*), mass number (*pradesas*), life-time (*sthiti*) and energy-level (*anubhaga*). The innumerate number plays a role in between the finite and infinite.

3. Paradoxes of Cantor's Infinite Sets and Jaina Set Theory

Let us have a look at the paradoxes of Cantor's set theory when it was in its inception. Hausdorff remarks about the work of Cantor, "It is to the undying credit of Georg Cantor that, in the face of conflict, both internal and external against apparent paradoxes, popular prejudices, and philosophical dicta (infinitum actu non datur) there is no actual infinite and even in the face of doubts that had been raised by the very greatest mathematicians, he dared this step into the realm of the infinite". (Set Theory, 1962, New York, p.11). In 1901 Bertrand Russell discovered that a contradiction could be derived from the axiom of abstraction (which was one of the basis of the Cantor's Set Theory). He

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

considered the set of all things which have the property of not being members of themselves. The paradox can be related through the barber's paradox. There is a barber in a village who shaves all those who do not shave themselves. The problem is as to who shaves the barber. Such a set is contradictory to its very existence. But in the *Jaina Karma* theory the act of indivisible-corresponding-sections of Omniscience could have as its constitutent member as the set itself. In the physical nature of things we have to set a limit even to the measure of the greatest infinite set. The Russell's paradox is called the logical of the mathematical paradox arising from purely mathematical constructions. The barber's paradox may be called the linguistic or the semantical one. Russell's paradox was introduced to show that the obvious, direct axiomatization of intuitive set theory is inconsistent. The set of all things automatically leads to an infinite set and perhaps to the greatest set. Could this set be a member of itself? In the *Jain* theory of *Karma* sets are constructed which have real existence, otherwise the constructs are refuted. Similarly, whenever occasion arises to calculate terms, one gets terms beyond a limit which are avoided as inconsistent. Take for example, the set of the omnisciences of all the accomplished souls. This set will have only one value and that will be the omniscience itself. This solves the Russell's paradox. However, it was unfortunate for the creator of set theory, Georg Cantor, whose foundational edifice fell before him. Attempts to revise the foundations of mathematics were soon at hand and various schools arose in Europe to have the school of logistics, the school of intuitionism, and the school of the formulism.

References for Further Reading

1. *T. Heath, Greek History of Mathematics, vol. I, 1921, Oxford.*
2. *B. Jowett, The Dialogues of Plato, vol.2, 1953 Oxfore.*
3. *F. Hausdorff, Set Theory, 1962, New York*
4. *L.C. Jain, The Tao of Jaina Sciences, 1992, Delhi. Cf. also projects in INSA.*
5. *L.C. Jain, Divergent Sequences Locating Transfinite Sets in Trilokasara, IJHS, 14.1.1979.*
6. *R. WIlder, The Foundations of Mathematics, 1952, New York.*

❑ ***Prof. Laxmi Chandra Jain*** *is a great writer, thinker and Educationalist. Born at* ***Sagar****, M.P. in 1926, he has teaching experience for 33 years. He has done great work in the field of Jain Mathematics and brought out 91 publications. His book "TAO of Jain Sciences" is a significant contribution in this field. He is Hon. Director of Acharya Vidyasagar Research Institute, Jabalpur.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समारोह रिपोर्ट

द्विदिवसीय श्री सुमनमुनि दीक्षा-स्वर्ण-जयंति अभिनन्दन समारोह

छायाचित्रों के माध्यम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समारोह रिपोर्ट

परम श्रद्धेय श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री श्री सुमनकुमार जी म. का पचासवां दीक्षा-वर्ष द्वि दिवसीय भव्य समारोह के साथ सानंद सम्पन्न हुआ। इस शुभ प्रसंग पर मद्रासवासी भक्तजनों के अतिरिक्त सुदूर प्रान्तों के भक्तजन भी समुपस्थित थे।

यह समारोह श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री **श्री सौभाग्यमुनि जी म. 'कुमुद'** की पावन निश्रा में मनाया गया। **शासन प्रभावक श्री सुरेशमुनि जी म. 'शास्त्री'** एवं वयोवृद्धा स्थविरा महासती **श्री अजितकंवर जी म.सा.** का पदार्पण भी हुआ।

दिनांक २२ अक्टूबर १९९९ के प्रातःकालीन कार्यक्रम की अध्यक्षता की **श्री युत गुमानमलजी सा. लोढ़ा** (चेयरमेनः भारतीय जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली) ने तथा मुख्य अतिथि थे - **श्रीमान् मोहनलालजी चोरड़िया,** मैलापुर, चेन्नई।

सर्वप्रथम श्री पारसमल जी नाहर ने मंगलाचरण प्रस्तुत किया एवं पधारे विशिष्ट अतिथि जनों को मंच पर आसीन करवाया गया तदनन्तर माल्यार्पण एवं शालार्पण, स्मृति चिह्न द्वारा श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम द्वारा भव्य स्वागत किया गया। श्री रिद्धकरणजी बेताला (संघ-अध्यक्ष) ने पधारे अतिथियों के सम्मान में स्वागत अभिभाषण प्रस्तुत किया।

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री का संक्षिप्त जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया श्री भीकमचंद जी गादिया (चातुर्मास समिति अध्यक्ष) द्वारा। समारोह के अध्यक्ष का परिचय श्री महावीरचंद जी मूथा (कोषाध्यक्ष) ने दिया।

तदनंतर समारोह अध्यक्ष महोदय ने सार गर्भित भाषण दिया एवं जन-मानस में चेतना की नई लहर जागृत की। उन्होंने जैन समाज को 'गोवध-निषेध' हेतु सांसदों, प्रांत के मुख्यमंत्री एवं स्थानीय लोगों को प्रेरणा देने का पुरजोर आग्रह किया।

महामंत्रीवर श्री सौभाग्यमुनि जी म. 'कुमुद', श्री सुरेशमुनि जी. म. 'शास्त्री', श्री सुमंतभद्र जी म. एवं महासती श्री अजितकंवर जी म. ने गुरुदेव श्री के सर्वतोमुखी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला और स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन की मंगल भावनाएं व्यक्त कीं।

लुधियाना से पधारे सर्वश्री टी.आर. जैन, राजेन्द्रपालजी जैन, रामकुमारजी जैन ने भी गुरुदेव श्री का गुणानुवाद किया। श्री सुभाष जी ओसवाल दिल्ली, श्री राजेन्द्रकुमार जी कीमती, हैदराबाद एवं अन्य अनेक वक्ताओं ने भी गुरुदेव श्री के चरणों में विनयांजलि प्रस्तुत की। लगभग दो हजार की जनमेदिनी के मध्य मुख्य अतिथि महोदय ने भी गुरुदेव श्री का भावभीना हार्दिक वन्दन-अभिनन्दन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस अवसर पर रायचूर (कर्नाटक) कुंडीतोप, चेन्नई श्री संघो ने चातुर्मासार्थ एवं एस.एस. जैन महासभा पंजाब के पदाधिकारियों ने पुनः पंजाब की ओर पधारने की पुरजोर विनती प्रस्तुत की।

विकलांगो को कृत्रिम पैर वितरित किये गये एवं गरीब अनाथ महिलाओं एवं पुरुषों को वस्त्र प्रदान किये गये। दवाईयाँ भी प्रदान की गई तथा ६०० से भी अधिक गरीबों असहायों को भोजन करवाया गया। इस प्रकार मानव-सेवा का सराहनीय कार्यक्रम रहा। इस कार्यक्रम के आयोजक थे – एस.एस. जैन संघ, भगवान महावीर सेवा समिति, श्री एस.एस. जैन महिला मंडल, श्री सुमन मुनि फाउंडेशन। कार्यक्रम का संचालन सुन्दर ढंग से किया श्री उत्तमचंद जी गोठी (मंत्री) ने।

श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम की ओर से गौतम प्रसादी की व्यवस्था समुचित रूपेण थी। गुरुदेव श्री के मांगलिक वचन के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

यह अभिनंदन समारोह श्री एस.एस. जैन संघ, माम्बलम द्वारा समायोजित था। संघ के प्रयासों की भक्तजनों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा की गई।

मध्याह्न में ३ बजे से ५ बजे तक जैन विद्यागोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें ब्यावर से पधारे डॉ. श्री नरेन्द्रसिंहजी एवं श्री भद्रेशकुमार जी जैन ने प्रभावशाली प्रवचन प्रस्तुत किये। इसकी अध्यक्षता की डॉ. नरेन्द्रसिंह जी ब्यावर ने।

धन्यवाद के साथ सभा गोष्ठी समापन हुई।

दिनांक २३-१०-१९९९ का समारोह – "श्री सुमनमुनिजी म. दीक्षा स्वर्ण जयन्ति अभिनंदन समारोह समिति" की ओर से आयोजित था। समारोह अध्यक्ष थे - श्री सम्पतराजजी डूंगरवाल, सिकन्दराबाद। स्वागताभिभाषण प्रस्तुत किया – समिति के मानद् अध्यक्ष श्री सोहनलालजी कांकरिया, सेलम ने।

वन्दन-अभिनंदन की श्रृंखला में बाहर से पधारे गुरुभक्तों संघाध्यक्षों, मंत्रियों ने अपने-अपने श्रद्धा – सुमन गुरुदेव श्री को अर्पित किये एवं अपने आप को धन्य-धन्य एवं कृतकृत्य समझा।

"साधना का महायात्री : प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि" ग्रंथ का लोकार्पण किया – डॉ. श्री युत छगनलाल जी शास्त्री ने। प्रथम प्रति गुरुदेव श्री के कर-कमलों में सविनय अर्पित की गई। 'जय' निनादों से वातावरण गूंज उठा।

डॉ. नरेन्द्रसिंहजी ने गुरुदेव श्री के जीवन पर अपना सारगर्भित प्रवचन प्रस्तुत किया। श्री भद्रेशकुमार जैन ने ग्रंथ-परिचय दिया एवं डॉ. श्री इन्दरराज जी बैद ने भी गुरुदेव श्री का अभिनन्दन किया।

श्री एस.एस. जैन महिला मंडल ने भी गुरुदेव श्री का हार्दिक अभिनन्दन किया।

विद्वद्जनों का स्वागत समिति की ओर से एवं ग्रंथ अर्थसहयोगियों का स्वागत श्री एस.एस. जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघ, माम्बलम की ओर से किया गया। स्मृति चिन्ह भी प्रदान किये गये।

ऐतिहासिक भव्य आयोजन हेतु समिति की ओर से संघ के समस्त पदाधिकारियों का स्वागत कर उन्हें स्मृति चिह्न भेंट किये।

"सुमनवाणी" का लोकार्पण किया – डॉ. श्री नरेन्द्रसिंह जी ने। 'वेदना विहीन' के "श्री सुमनमुनि दीक्षा स्वर्ण जयंति" अंक का अनावरण किया श्री संपतराजजी डूंगरवाल सिकन्द्राबाद ने।

धन्यवाद अभिभाषण दिया -- श्री महावीरचंद जी मूथा ने। सभा का संचालन कुशलता के साथ किया - श्री भीकमचंद जी गादिया ने।

मंगलवचन, गुरु वन्दन के साथ प्रातः कालीन सभा सानंद सम्पन्न हुई।

मध्याह्न में जैन विद्या गोष्ठी सम्पन्न हुई, जिसमें प्रभावशाली प्रवचन प्रस्तुत किये – श्रीमती विजया कोटेचा, श्री दुलीचंद जी जैन, डॉ. श्री छगनलाल जी शास्त्री, श्री कृष्णचन्द्रजी चौरड़िया ने। विद्या गोष्ठी की अध्यक्षता की, श्री डॉ. छगनलाल जी शास्त्री ने।

जैन विद्या गोष्ठी के कुशल संचालन व आयोजन हेतु श्री दुलीचंद जी जैन का संघ की ओर से भावभीना हार्दिक स्वागत किया गया। जैन विद्यागोष्ठी का समायोजन था श्री भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ, माम्बलम ओर से।

इस प्रकार द्वि दिवसीय विशाल समारोह तप-त्याग एवं सामाजिक, लोकोपकारी कार्यक्रमों के साथ सादर सम्पन्न हुआ। तथा समापन समारोह के अन्त में एस.एस. जैन संघ की ओर से मंत्री उत्तमचन्द गोठी द्वारा दीक्षा स्वर्ण जयंति समारोह समिति, एस.एस. जैन महिला मंडल एवं श्री संघ के सभी कार्यकर्त्ताओं तथा प्रत्येक ज्ञात-अज्ञात सभी महानुभावों को आभार प्रकट करते हुए धन्यवाद दिया गया।

भीकमचन्द गादिया
मंत्री, दीक्षा स्वर्ण जयंति समारोह समिति
चेन्नई, तमिलनाडु

प्रेषकः
डॉ. एम. उत्तमचन्द गोठी
मंत्री - एस.एस. जैन संघ, माम्बलम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्ण-जयन्ति दीक्षा अभिनन्दन का भव्य दृश्य

श्रमणसंघीय महामन्त्री श्री सौभाग्यमुनिजी 'कुमुद' के साथ श्री गुरुदेव व श्री सुरेशमुनिजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माननीय श्री गुमानमलजी लोढ़ा, चेयरमेन, भारतीय जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड
अपना अभिभाषण देते हुए

सभा मंच पर विराजित अतिथि व विद्वद्जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एस.एस. जैन महिला मंडल द्वारा महोत्सव के उपलक्ष में वस्त्र वितरण

माननीय श्री गुमानमलजी लोढ़ा द्वारा अपंग बालकों को कृत्रिम पैर भेंट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

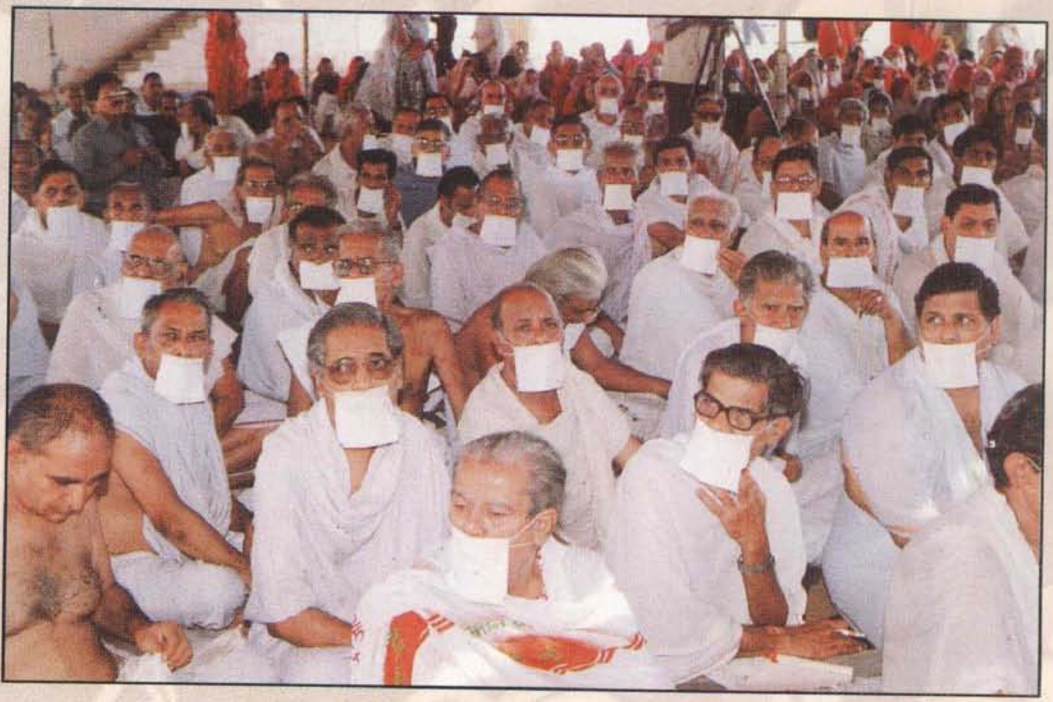

श्रद्धाशील श्रावकों का समूह

भक्तिपूर्ण श्राविकाओं का समूह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माननीय डॉ. छगनलालजी शास्त्री द्वारा
"साधना का महायात्री : प्रज्ञा महर्षि श्री सुमन मुनि" ग्रन्थ लोकार्पित

ग्रन्थ लोकार्पण के समय श्री टी.आर. जैन, लुधियाना
अपनी भावाभिव्यक्ति व्यक्त करते हुए

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

जैन विद्यागोष्ठी में अभिभाषण देते हुए
संयोजक श्री दुलीचन्दजी जैन

जैन विद्यागोष्ठी में व्यावर के डॉ. नरेन्द्रसिंहजी का व्याख्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ प्रकाशन में सहयोगी महानुभाव

श्री के. सोहनलाल जी कांकरिया

श्री के. सोहनलालजी कांकरिया नागौर जिले के हरसोलाव ग्राम के निवासी हैं तथा सेलम में वस्त्र के व्यापार में कार्यरत हैं। आप एक श्रेष्ठ समाजसेवी व धर्मनिष्ठ श्रावक हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सरोजा देवी एक सुगृहिणी श्राविका हैं। आपके तीन सुपुत्र हैं – श्री सुशील कुमार जी, श्री गजेन्द्र कुमार जी व श्री महावीर चन्द जी। आपके दो सुपुत्रियाँ हैं – सुश्री इंदिरा एवं संतोष बी.काम.।

आप अनेक जनोपयोगी सेवाकार्यों से जुड़े हुए हैं। आप अपंगों के लिए स्थापित **श्री कांकरिया केवलचन्द स्मृति फाउंडेशन** तथा **श्री DSSCOD मर्सी होम के अध्यक्ष** एवं **तमिलनाडु एजुकेशनल ट्रस्ट सेलम के कोषाध्यक्ष** हैं। इनके अतिरिक्त आप **श्री स्थानकवासी जैन संघ, सेलम** के उपाध्यक्ष भी हैं। अन्य अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी व सदस्य हैं।

स्वधर्मी भाइयों की सहायता करने में आप सदैव तत्पर रहते हैं। आपने आर्थिक दृष्टि से कमजोर अनेक परिवारों की मदद की है। इनके अतिरिक्त समाज के अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों को भी प्रतिदिन भोजन, वस्त्र व अन्य वस्तुओं का दान देते रहते हैं। आपने सेलम बस स्टैण्ड पर एक प्याऊ का तथा अन्ध विद्यालय में दो कमरों के निर्माण में भी सहयोग प्रदान किया है। आपने दिनांक ६-१-९६ को २००० पिछड़े वर्ग के बच्चों को वस्त्र प्रदान किए। समाज कल्याण में संलग्न संस्थाओं यथा अंध व बधिर विद्यालय, अपंगों की सहायता, विद्यालयों आदि में आप सदैव आवश्यक उपकरणों की मदद करते रहते हैं। आप प्रतिदिन स्वधर्मी भाइयों की सहायतार्थ एक मनीआर्डर भेजते हैं।

समाज सेवा व पिछड़े वर्ग की मदद करने वाले श्री कांकरिया जी ने सेवा कार्यों में अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। आप पूज्य श्री सुमन मुनि जी म. के अनन्य भक्त हैं तथा **'श्री सुमन मुनि दीक्षा स्वर्ण जयन्ती अभिनन्दन समारोह समिति"** के अध्यक्ष हैं।

श्री भंवरलाल जी सांखला

श्री भंवरलाल जी सांखला राजस्थान के मोहरा ग्राम के निवासी हैं। आपकी आयु ६२ वर्ष है। आप स्व. श्री मंगत राज जी सांखला के सुपुत्र हैं। आपने न केवल व्यावसायिक क्षेत्र में अपितु सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रों में भी अनेक उपलब्धियाँ हस्तगत की हैं।

आप श्री मरुधर केशरी गुरु सेवा समिति के ट्रस्टी हैं तथा श्री मरूधर केशरी जी म. के नाम से चलने वाली सभी संस्थाओं से सक्रियता से जुड़े हुए हैं तथा **'श्री जैतारण पावन धाम'** एवं **'मरूधर केशरी शिक्षा समिति'** राणावास के उपाध्यक्ष हैं।

आप एक उदारहृदयी श्रावक हैं। आपने अनेक संस्थाओं को तन-मन-धन से सहयोग दिया है जिनमें मुख्य हैं – 'श्री गुरु सेवा-समिति-पावन धाम जैतारण, जैन भवन मेट्टुपालयम, जैन स्थानक भवन पाली, स्वधर्मी फण्ड वेलूर, अमोलक जैन विद्या प्रसारक मण्डल आदि।

शिक्षा, जनसेवा, जीवदया आदि सत्कार्यों में आप सदैव अग्रणी रहते हैं। आपने अनेक गोशालाओं, कबूतर खानों आदि में उदार हृदय से सहयोग दिया है। धर्म कार्यों व आतिथ्य सेवा में आपकी धर्मपत्नी भंवरी बाई भी हमेशा सहयोग प्रदान करती रहती है।

१८-११-९६ को जब आपका षष्ठी वर्ष पूर्ति समारोह मनाया गया तब आपके परिवार वालों ने एक ट्रस्ट का निर्माण किया तथा श्री मरुधर केशरी जैन विद्यालय व श्री मरुधर केशरी निशुल्क चिकित्सालय बनाने का निर्णय किया।

आपके पांच पुत्र तथा दो पुत्रियां हैं। आपके पांचों पुत्र मेट्टुपालयम व चेन्नई में व्यापार कार्य का संचालन करते हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री नवरतन मल जी बी.काम. हैं तथा लायन्स क्लब जिला ३२४ बी. के ९८-९९ के गवर्नर हैं। द्वितीय पुत्र श्री महावीर चन्दजी रोटरी क्लब के सदस्य हैं तथा मेट्रो मेट्रिक्यूलेशन स्कूल के कोषाध्यक्ष हैं। आपके तृतीय पुत्र श्री रमेश चन्द जी भी जेसीज क्लब के उपाध्यक्ष हैं। आपके चतुर्थ पुत्र श्री विमल चन्द जी बी.ए. हैं तथा पांचवें पुत्र ज्ञान चन्दजी बी. टेक्नलो. हैं। इस प्रकार आपका पूरा परिवार धार्मिक, सामाजिक तथा लोककल्याणकारी प्रवृत्तियों में संलग्न है।

आप पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी म. के अनन्य भक्त हैं तथा इस ग्रन्थ के प्रेरक हैं। सन १९९७ में पूज्य गुरुदेव के मेट्टुपालयम चातुर्मास में आपने असीम भक्ति भावना का परिचय दिया। आपने गुरुदेव के सान्निध्य में मेट्टुपालयम व कुन्नूर के बीच एक **जैन विश्रामगृह** का उद्घाटन कार्यक्रम सम्पन्न किया। आप **श्री सुमन मुनि दीक्षा स्वर्ण जयन्ती समारोह समिति के कार्याध्यक्ष** हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री भीकमचन्द जी गादिया

श्री भीकमचन्दजी गादिया चेन्नई महानगर के सामाजिक कार्यकर्ता ा कुशल व्यवसायी हैं। राजस्थान के पाली जिलान्तर्गत चंडावलनगर के निवासी हैं तथा श्रीमान् सेठ बख्तावंमल जी गादिया के सुपुत्र हैं। आपका जन्म के.जी.एफ. कर्नाटक में हुआ। आप पिछले चालीस वर्षों से चेन्नई में व्यवसायरत हैं।

आपके तीन पुत्र व चार पुत्रियां हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री सुरेशकुमार जी गिरवी व ज्वैलरी का व्यवसाय करते हैं। द्वितीय पुत्र श्री दिलीप कुमार चार्टर्ड एकाउंटेंट एवं आडिटर हैं तथा फाइनेंस का व्यवसाय करते हैं। तृतीय पुत्र श्री महेन्द्र कुमार आटोमोबाइल फाइनेंस का कार्य करते हैं।

चेन्नई के सामाजिक क्षेत्र में आपने कई उपलब्धियां हासिल की हैं। आप **श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम के १६८६ से १६६८ तक निरंतर मंत्री पद** पर रहे हैं। १६६३ में आपने **माम्बलम्** स्थानक भवन के निर्माण में तन-मन-धन से सहयोग प्रदान किया तथा भवन के निर्माण के कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने में श्री संघ के स्वप्न को साकार किया। आपके मन्त्रीत्व काल में जैन श्रमण संघ के श्रेष्ठ संतों के अनेक चातुर्मास सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए जिनमें मुख्य हैं – पूज्य तपस्वीरत्न, सलाहकार श्री सुमतिप्रकाश जी महाराज, उपाध्याय प्रवर श्री विशाल मुनि जी म. एवं मंत्री प्रवर श्री सुमन मुनिजी म. आदि। श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम् के भव्य स्थानक भवन का उद्घाटन भी १६६३ में पूर्ण हुआ। आपकी विशेष प्रेरणा से पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी म. के सान्निध्य में इसी श्री संघ के अंतर्गत **'भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ'** की भी स्थापना हुई।

आपने अनेक संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की जिनमें जैन विद्याश्रम मुख्य है। **आप एस.एस.जैन संघ माम्बलम् ट्रस्ट के ट्रस्टी**, श्री **एस.एस. जैन संघ माम्बलम् के १६६६ के चातुर्मास समिति** के **अध्यक्ष** व **श्री सुमन मुनि दीक्षा स्वर्ण जयंन्ती समारोह समिति के मंत्री** हैं। साथ ही आप राजस्थानी जैन समाज पांडी बाजार, **श्री एस.एस. जैन एजुकेशनल सोसायटी चेन्नई** आदि अनेक संस्थाओं के **सदस्य** हैं तथा उनकी गतिविधियों में सक्रियता से जुड़े हुए हैं। आप पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी महाराज के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं।

श्री हनुमानचन्द जी नाहर

श्री हनुमान चन्द जी नाहर राजस्थान के जोधपुर जिले के अन्तर्गत हरियाडाणा ग्राम के निवासी हैं। आपके दादा श्रीमान् बख्तावरमल जी नाहर के तीन पुत्र थे – श्रीमान् अभयराज जी नाहर, श्रीमान घेवर चन्द जी नाहर एवं श्रीमान् मिश्रीमल जी नाहर। श्रीमान् मिश्रीमल जी नाहर के दो पुत्र और दो पुत्रियां हैं। आप उनके छोटे पुत्र हैं। आप की धर्मपत्नी श्रीमती पद्माकुंवर नाहर एक सुगृहिणी एवं धर्मपरायणा महिला हैं। आपके एक पुत्र हैं जिनका नाम प्रसन्नचन्द्र नाहर है जो एम.कॉम. व चार्टर्ड एकाउंटेंट हैं। आपका मेट्टुपालयम में समृद्ध व्यापार है।

श्रीमान हनुमानचन्द जी सहृदय एवं उदारमना व्यक्ति हैं। सामाजिक व धार्मिक कार्यों में आपका पूर्ण सहयोग मिलता है। पूज्य गुरुदेव श्री सुमनमुनि जी म. के १६६७ के मेट्टुपालयम चातुर्मास में आपने अपनी भक्ति भावना का पूर्ण परिचय दिया एवं पूज्य गुरुदेव द्वारा अनुवादित ग्रन्थ **'देवाधिदेव रचना'** का भी प्रकाशन कराया। आप एक धर्मशील सद्गृहस्थ हैं। समाज सेवा के क्षेत्र में आपका योगदान प्रशंसनीय है।

संपर्क सूत्र :
श्री हनुमानचन्दजी नाहर,
ओटोमोबाइल फाइनेन्सियर
३, कोर्ट स्ट्रीट, मेट्टुपालयम,
जि. कोयम्बटूर, चेन्नई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जे. पारसमल जी नाहर

श्री जे. पारसमल जी नाहर का जन्म दिनांक ३-१२-१९३७ को जोधपुर जिले के हरियाडाणा ग्राम में हुआ। आप सेठ श्री जुगराज जी नाहर के सुपुत्र हैं। आपने अर्थ शास्त्र में बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की। आपके एक पुत्र एवं पांच पुत्रियाँ हैं।

आपकी स्वाध्याय, ज्ञानार्जन एवं धर्म क्रियाओं में विशेष अभिरुचि है। आपको धर्म के सुसंस्कार अपने माता-पिता से प्राप्त हुए। आप बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के जैन संत-सतियों की निरन्तर सेवा करते रहते हैं। धार्मिक कार्यक्रमों में भाग लेने में आपको विशेष अनुराग है। आपकी साहित्य पठन व लेखन में भी अत्यधिक अभिरुचि है। **आपके कई लेख, बोधकथाएं विषयक सामग्री आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है।**

संगीत में आपकी विशेष रुचि है तथा आप श्रेष्ठ गायक हैं। **दूरदर्शन एवं आकाशवाणी द्वारा आप अनेक कार्यक्रमों में भजन गायन के लिए आमंत्रित किए जाते हैं। आप स्वयं सुन्दर गीतों की रचना करते हैं तथा गाते हैं। आपकी दो पुस्तकें 'गीत गुलशन' व 'गीतों का गुलदस्ता'** प्रकाशित हो चुकी है।

चेन्नई महानगर की अनेक संस्थाओं से जुड़े श्रीमान नाहर जी गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी के प्रति विशेष सेवा भक्ति रखते हैं।

चेन्नई नगर में आपका फाइनेंस का समृद्ध व्यवसाय है।

सम्पर्क सूत्र-
श्री जे. पारसमल जी नाहर
जे.पी. फाइनेंस
१२-डी, हवीबुल्लाह रोड, टी. नगर, चेन्नई-६०० ०१७.

श्री लूणकरण जी सेठिया

श्री लूणकरण जी सेठिया चेन्नई के श्रेष्ठ समाज सेवी व उदार हृदय श्रावक हैं। आप राजस्थान में जोधपुर जिलान्तर्गत धणारी ग्राम के निवासी हैं तथा श्रीमान् स्वर्गीय गणेशमल जी सेठिया के सुपुत्र हैं।

आपने इंटरमीडियेट तक शिक्षण प्राप्त किया तथा जैन सिद्धान्त विशारद की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मनोहर देवी एक धर्मपरायण सुगृहिणी हैं जिनकी तपस्या में बहुत रुचि है तथा मासखमण तक की तपस्या कर चुकी हैं। आपके एक पुत्र तथा चार पुत्रियाँ हैं। आपका पुत्र सुनील चार्टर्ड एकाउंटेंट है तथा चारों पुत्रियाँ स्नातक हैं। आपका साहूकार पेट में फाइनेंस का व्यवसाय है।

आप **राजस्थान श्वे. स्था. जैन एसोसियेशन के भूतपूर्व मंत्री हैं। आप श्री एस.एस. जैन संघ चेन्नई के उपाध्यक्ष तथा राजस्थानी एसोसिएशन तमिलनाडु के सहमंत्री हैं। शिक्षा और स्वाध्याय के कार्यों में आपकी विशेष रुचि है।** आप **श्री बादलचन्द सायरचन्द चोरडिया जैन विद्यालय के कोरस्पोन्डेन्ट हैं। आप पर्यूषण पर्व में प्रतिवर्ष स्वाध्याय सेवा प्रदान करते हैं।** आपकी वृत्ति असाम्प्रदायिक है तथा आचार्य डॉ. श्री शिमवुनि जी महाराज व मंत्री श्री सुमन मुनि जी महाराज के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं।

संपर्क सूत्र-
सेठिया क्रेडिट कारपोरेशन
६३, आदियप्पा नायकन स्ट्रीट,
साहुकारपेट,
चेन्नई - ६०० ०७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जवाहरलाल जी बाघमार जैन

श्री जवाहरलाल जी बाघमार जैन एक कर्मठ समाज सेवी एवं स्वाध्यायी हैं। आपका चेन्नई में फाइनेंस का व्यवसाय है जिसे आपके तृतीय पुत्र श्री राजेन्द्र कुमार जी बागमार संभालते हैं। आपके परिवार का कानपुर में किराणे का व्यापार है जिसे आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री प्रेमचन्द जी बाघमार व द्वितीय पुत्र श्री सुरेशकुमार जी बाघमार सम्भालते हैं।

आपका जन्म दिनांक १६-१-१६३७ को जोधपुर जिले के कोसाना ग्राम में हुआ। स्व. श्रीमान सोनराज जी बाघमार आपके पिता थे। आपने डी.ए. वी. कालेज कानपुर से एम.काम. तक शिक्षण प्राप्त किया।

आप **श्री राजस्थान वेलफेयर सोसायटी** एवं **श्री कोसाना एसोसिएशन चेन्नई के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं। वर्तमान में आप श्री रत्न हितैषी जैन श्रावक संघ तमिलनाडु संभाग** के **क्षेत्रिय प्रधान** हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शान्ताकंवर जी बाघमार एक धर्मशीला सन्नारी हैं। आपके परिवार ने ४० वर्षों पूर्व कोसाना में एक स्कूल का निर्माण कर सरकार को भेंट किया था।

आपकी साहित्य पठन, लेखन एवं संगीत-भजन के प्रकाशन में विशेष अभिरुचि है। अब तक आप द्वारा संकलित नौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। आप एक सुमधुर गायक भी हैं।

आप धार्मिक एवं जन कल्याणकारी कार्यों में उदार हृदय से सहयोग करने हेतु सदैव तत्पर रहते हैं तथा अनेक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं से सक्रियता से जुड़े हैं।

सम्पर्क सूत्र -
श्री जवाहर लाल जी बाघमार
६, चन्द्रपा मुदली स्ट्रीट, साहुकार पेट, चेन्नई - ६०० ०७६

श्री अमृतराज डी. सिंगवी

श्री अमृतराज डी. सिंगवी श्रीमान् जे. देवराज जी सिंगवी विल्लीपुरम के सुपुत्र हैं तथा जैन समाज के लोकप्रिय युवा कार्यकर्ता हैं। आपकी आयु इकातालीस वर्ष है। आपका टी. नगर चेन्नई में दवा-वितरण का थोक व्यापार है तथा आप सुपर डिस्ट्रीब्युटर हैं। साथ ही आप क्लीयरिंग व फारवार्डिंग का भी व्यापार करते हैं।

आप अनेक सामाजिक व व्यावसायिक संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़े हैं जिनमें से मुख्य निम्न हैं –

(१) **कैमिस्ट ड्रगिस्टस् एसोसिएशन**

(२) **क्लीयरिंग एंड फोरवार्डिंग एसोसिएशन**

(३) **एस.एस.जैन संघ माम्बलम, टी. नगर**

(४) **मरुधर केसरी सेवा समिति**

आप के दो पुत्र श्री सुदर्शन एवं श्री सिद्धार्थ तथा एक पुत्री सुश्री यशोमती हैं। आप श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम् टी.नगर के सभी कार्यक्रमों में उत्साहपूर्वक सहयोग देते हैं। आपका स्वभाव सरल व मधुर है। सभी जनकल्याणकारी कार्यों में आपका उदारता पूर्ण सहयोग रहता है।

सम्पर्क सूत्र-
३१, मन्नार स्ट्रीट
टी. नगर, चेन्नई-६०० ०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शोभाचन्द जी कोठारी

श्री शोभाचन्द जी कोठारी राजस्थान में बगड़ी के निवासी हैं। आप सन् १९४७ में व्यवसाय हेतु ऊटी पधारे। यहाँ आपने कपड़े का व्यवसाय शुरू किया और आज **"हिन्द स्टोर्स"** और **"शोभा सायर"** नाम से जाने जाते हैं। आपने अपने निकटतम परिजनों को अपने व्यवसाय में भागीदार बनाकर उनका उत्थान किया। आप तीस वर्षों तक ऊटी श्रीसंघ के अध्यक्ष पद को शोभित करते रहे। आप ऊटी पधारने वाले साधु-सन्तों की सेवा में अग्रगण्य रहते हैं।

आपके तीन सुपुत्र श्री इन्दरचन्द जी, श्री उत्तमचन्द जी, एवं श्री गौतम चन्द जी और दो पुत्रियां श्री उगम बाई एवं श्री सुशीला बाई हैं। आपने अपना व्यवसाय सन् १९६८ में कोयम्बत्तूर में स्थापित किया जो आज **"कोठारी साड़ी सदन"** एवं **"शोभा सिंडीकेट"** के नाम से प्रसिद्ध है। आप हमेशा सामाजिक कार्यक्रमों में अग्रणी रहते हैं।

कोयम्बत्तूर में **श्री नेहरू विद्यालय** एवं **श्री नेहरू महाविद्यालय के आप ट्रस्टी हैं, बैंगलोर स्थित भगवान् महावीर जैन कॉलेज के भी आप ट्रस्टी हैं** एवं अन्य अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी के रूप में सेवा करते हैं।

कोयम्बत्तूर में पूज्य श्री सुमनमुनि जी म.सा. के चातुर्मास काल में आपने गुरुदेव की सेवा की है। आपका परिवार धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में सदैव अग्रणी रहता है। आपके पुत्र श्री इन्दरचन्द जी कोठारी स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेन्स दिल्ली कार्यकारिणी समिति के सदस्य हैं।

श्री शोभाचन्द जी सरल स्वभावी एवं उच्च विचारों के धनी हैं।

आप सादगी पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

श्री एन. इंदरचन्द जी गादिया

श्री एन. इंदरचन्द जी गादिया कोयम्बत्तूर के श्रेष्ठ समाजसेवी व उदारहृदय श्रावक हैं। आप राजस्थान में पाली जिला के अन्तर्गत चंडावल नगर के निवासी हैं। आपका कोयम्बत्तूर में कपड़े का थोक व्यापार है तथा आपने मफतलाल, मोरारजी, विकटोरिया तथा स्टानरोस आदि मिलों के वस्त्रों की एजेंसियां ली हैं। **आपका उदय टैक्सटाइल्स के नाम से वस्त्रों का सुप्रसिद्ध व्यवसाय है।**

आप अनेक धार्मिक व सामाजिक कार्यों में निरंतर भाग लेते हैं तथा कई सामाजिक संस्थाओं से सम्बन्धित हैं। पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी के प्रति आपके हृदय में असीम भक्ति है। आप एक सरलमना, उदारहृदय, सुश्रावक हैं तथा धार्मिक क्रियाओं में विशेष अभिरुचि रखते हैं।

सम्पर्क सूत्र-
उदय टैक्सटाइल्स
३४३, ओपनकारा स्ट्रीट
कोयम्बत्तूर (तमिलनाडु)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री हरीश एल. मेहता

श्री हरीश एल. मेहता श्रेष्ठ समाज-सेवी व शिक्षानुरागी डॉ. श्री सी.एल.मेहता के सुपुत्र हैं। डॉ.सी.एल. मेहता ने चेन्नई में अनेक शिक्षण संस्थाओं यथा – धनराज बैद जैन कॉलेज, सी.एल. बैद मेहता कालेज ऑफ फॉरमेसी, मिश्रीमल नवाजी मुणोत जैन इंजिनियरिंग कालेज आदि संस्थाओं की स्थापना की व शिक्षा प्रचार में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

श्री हरीश मेहता का जन्म ३-२-५८ को हुआ। आपने बी.कॉम. तक शिक्षा प्राप्त की तथा व्यवसाय व विक्रय कला का विशेष अध्ययन किया। आप **हुल्टा फार्मास्युटिकल एक्सपोर्ट लि.** के मैनेजिंग डायरेक्टर व **श्री मीनाक्षी एजेन्सीज** के मैनेजिंग पार्टनर हैं। आप तमिलनाडु के फार्मेसी कालेजों की मेनेजिंग एसोसिएशन के उपाध्यक्ष एवं नेशनल चेम्बर आफ कॉमर्स तथा आल इंडिया मेन्युफेक्चरर्स एसोसिएशन के तमिलनाडु बोर्ड के उपाध्यक्ष हैं। इनके अतिरिक्त आप अनेक शिक्षण संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। आप एम.एन.एम. जैन इंजिनियरिंग कॉलेज, सी.एल.बैद मेहता फार्मेसी, श्री बी.एस. मूथा गर्ल्स स्कूल के मंत्री हैं तथा धनराज बैद जैन कालेज के संयुक्त मंत्री हैं।

आपके लघु भ्राता श्री उदय एल. मेहता भी अनेक सामाजिक व शैक्षणिक संस्थाओं से सक्रियता से जुड़े हुए हैं।

इनके अतिरिक्त आप अन्य अनेक शैक्षणिक, सामाजिक, औद्योगिक व व्यावसायिक संस्थाओं की समितियों के सदस्य हैं। एक युवा उद्यमी व श्रेष्ठ समाज सेवी के रूप में आपने काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। आप श्री सुमन मुनि फाउंडेशन के मेनेजिंग ट्रस्टी हैं।

सम्पर्क सूत्र-
६२, बर्किट रोड, टी.नगर, चेन्नई-६०० ०१७

श्री एल. सुदर्शनलाल जी

श्री एल. सुदर्शनलालजी पीपाड़ा कुन्नूर के निवासी है। आपने बी.ए., एल.एल.बी. तक का उच्च कोटि का शिक्षण प्राप्त किया तथा वकालत के व्यवसाय में निरत हैं। आपके पिताजी श्रीमान् लालचन्दजी बड़े ही धर्म परायण सज्जन हैं और उनके द्वारा श्री सुदर्शनलालजी को धर्म के सुसंस्कार प्राप्त हुए। कुन्नूर में ही आपका ज्वेलरी का भी समृद्ध व्यवसाय है।

आपका सामाजिक, धार्मिक व शैक्षणिक क्षेत्र की अनेक संस्थाओं से सक्रिय सम्बन्ध है। धर्मध्यान में आपकी विशेष अभिरुचि है। पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनिजी महाराज के मेट्टुपालयम चातुर्मास में आपने गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धा भावना का परिचय दिया। आप सभी पधारने वाले साधु संतों का बड़ी भक्ति भावना से सम्मान करते हैं। आप स्वभाव से मिलनसार, उदार हृदय व नियमों के बहुत दृढ़ व्यक्ति हैं।

बरलियार और कुन्नूर के मध्य में आपका कॉफी-चाय का एस्टेट है। वहाँ ठहरने की व्यवस्था है, साधु-साध्वी वृन्द को वहीं ठहराते हैं। यहाँ से कुन्नूर घाटी के भव्य दृश्य झरना, रेल, नीलगिरि वृक्ष आदि हरित घाटियां दिखाई देती हैं।

सम्पर्क सूत्र –
"थिरुकुरल बिल्डर्स",
३३-ए, क्रोस बाजार,
कुन्नूर, नीलगिरीज।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री डॉ. उत्तमचन्दजी गोठी

आप विलाड़ा निवासी आदर्श श्रावक, लेखक एवं स्वाध्यायी बंधुवर श्रीमान मदनलालजी गोठी के सुपुत्र हैं। आपके परिवार ने विलाड़ा नगर के श्री मरुधर केसरी जैन राजकीय रेफरल चिकित्सालय में ऑपरेशन थियेटर का निर्माण किया है। आपके दो बड़े भाई श्रीमान् गौतमचन्दजी गोठी व श्रीमान् सरदारमलजी गोठी हैं। आपके एक पुत्र श्री विशाल व एक पुत्री सुश्री दीपिका हैं।

व्यवसाय से प्रखर सिविल इन्जिनियर एवं वास्तुकार श्री गोठी समाज सेवा के क्षेत्र में भी अग्रणी हैं। आप एक प्रख्यात वेल्युअर हैं तथा **गोठी कन्सट्रक्सन्स** के प्रबंध निर्देशक हैं। आप भवन निर्माण कला में निपुण हैं तथा **इंजिनियरिंग एंड आर्किटेक्ट एसोशिएसन** के उपाध्यक्ष हैं। आपने श्री एस.एस. जैन संघ माम्बलम् के स्थानक का निर्माण निःस्वार्थ सेवा भाव से किया जिसमें ३५ फीट चौड़ा व ६० फुट लम्बा हाल है जो बीच में बिना किसी स्तम्भ के खड़ा है। यह भवन निर्माण कला का आदर्श नमूना है। आप **जैन सोशियल एन्ड कल्चरल एकेडमी** के अध्यक्ष एवं श्री एस.एस.जैन संघ माम्बलम् के मंत्री हैं। आप अन्य अनेक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं। अपनी विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष में आपको **प्रिय दर्शिनी इंदिरा गाँधी अवार्ड, एम.जी.आर. अवार्ड, मदर टेरेसा अवार्ड व लीडर शिप अवार्ड,** (यू.एस.ए.) से सुशोभित/समादरित किया गया है। तमिलनाडु के मुख्य मंत्री ने भी आपको सामाजिक कार्यों के लिए सम्मानित किया है। आप अमेरिकन वायोग्राफिकल एसोशियन द्वारा सन् १९९९ के लिए **'मेन ऑफदि ईयर'** चुने गए हैं। आपको ओपन युनिवर्सिटी श्री लंका द्वारा डाक्टरेट की उपाधि से सुशोभित किया गया है।

नवयुवकों के लिए आदर्श श्री उत्तमचन्दजी गोठी व्यवसाय में भी नैतिकता को प्रमुखता देते हैं।

सम्पर्क सूत्र –
गोठी कन्ट्रक्शन लिमिटेड, १०ए, बर्किट रोड़, टी.नगर, चेन्नई

श्री चम्पालालजी तातेड

श्री चम्पालालजी तातेड़ राजस्थान के पाली जिला के अंतर्गत बगड़ी ग्राम के निवासी हैं। आपके पिताजी श्रीमान पूनमचन्दजी तातेड़ धार्मिक प्रकृति के श्रावक थे। आपकी माताजी श्रीमती गुलाब बाई भी धार्मिक स्वाध्याय, सेवा व दान में अग्रणी रहती थी। आपके तीन भाई व तीन बहनें हैं। आपके सबसे बड़े भ्राता स्व. श्री हीरालालजी का परिवार सिकंदराबाद में व्यवसायरत हैं। आपके दूसरे बड़े भाई श्री लालचन्दजी मालुर (बैंगलूर) में व्यवसाय रत हैं। आपका अपना रसायनिक पदार्थों का चेन्नई में समृद्ध व्यापार है।

आपका जन्म सन् १९३९ में बगड़ी गांव में हुआ। आपने व्यावर में शिक्षा प्राप्त की। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती तुलसी कंवर धर्म के अनुराग में रत सुगृहिणी हैं। आप स्वयं सरलस्वभावी, विनम्र एवं उत्साही व्यक्ति हैं। सभी प्रकार के सामाजिक, धार्मिक व लोकोपकारी कार्यों में आप लगन से सहयोग देते हैं।

आपके दो सुपुत्र श्री उत्तमचंद एवं श्री संजयकुमार हैं जो आपके व्यवसाय के कार्यों को संभालते हैं। आपके तीन पुत्रियां हैं।

पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनिजी के प्रति आपके मन में असीम भक्ति व श्रद्धा का भाव है।

संपर्क सूत्र :
एशियन केमिकल्स
६/८, मनिकन्डा मुदली स्ट्रीट
चेन्नई ६०० ००१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री मीठालाल जी दुग्गड़

सुश्रावक व उदारमना श्री मीठा लाल जी दुग्गड़ राजस्थान के नागौर जिला के कुरड़ायां ग्राम के निवासी श्रीमान् बिरदीचन्द जी दुग्गड़ के सुपुत्र हैं तथा ज्वेलरी के व्यापार में कार्यरत हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती चूका देवी एक सुगृहिणी एवं धर्मपरायण महिला हैं तथा आपके एक पुत्र तथा चार पुत्रियाँ हैं। आपके बड़े भाई श्रीमान सुरेश कुमार जी मेट्टुपालयम में ही गिरवी व ज्वेलरी का व्यवसाय करते हैं।

श्री मीठालाल जी की धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में गहरी रुचि है तथा आप इन कार्यों को निष्ठा से सम्पन्न करते हैं। आपके पिताजी श्रीमान् बिरदी चन्दजी दुग्गड़ अत्यन्त धर्मपरायण सुश्रावक हैं जिन्होंने आपके जीवन को बचपन से ही धर्म के संस्कार प्रदान किए हैं। पूज्य गुरुदेव श्री सुमन मुनि जी म. के प्रति आपके हृदय में असीम श्रद्धा भक्ति है तथा गुरुदेव के चातुर्मास में आपने अपनी सेवा-भावना का पूर्ण परिचय दिया है।

सम्पर्क सूत्र –
श्री मीठालाल जी दुग्गड़,
मेट्टुपालयम, जि. कोयम्बत्तूर,
तमिलनाडु

श्री भंवर लाल जी सुराणा

उदारहृदयी श्री भंवरलालजी सुराणा राजस्थान के नागौर जिले के अलाय ग्राम के निवासी हैं। आप स्वर्गीय श्रीमान् रामलाल जी सुराणा के सुपुत्र हैं। बचपन से ही आपको माता-पिता ने धर्म के सुसंस्कार प्रदान किए हैं। आपने बी.काम. तक शिक्षण प्राप्त किया है। पिछले १८ वर्षों से मेट्टुपालयम में फाइनेंस के व्यापार में संलग्न हैं। आपके लघुभ्राता श्रीमान नवरतनमल जी सुराणा भी मेट्टुपालयम के ही निकट कारमडै ग्राम में ज्वैलरी व गिरवी के व्यापार में कार्यरत हैं।

श्रीमान सुराणाजी की धार्मिक व सामाजिक कार्यों में विशेष अभिरुचि है तथा आप इन कार्यों में सदैव अग्रणी रहते हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मलादेवी धर्मपरायणा सद्गृहिणी हैं। आपके दो पुत्र श्री पवनकुमार एवं श्री अभिषेक कुमार तथा एक पुत्री सुश्री मोनिका है जो कि अध्ययन रत हैं।

श्रेष्ठ व्यवसायी श्री भंवरलाल जी ने पूज्य गुरुदेव श्री सुमन कुमार जी म. के १९९७ के मेट्टुपालयम चातुर्मास में गुरुदेव के प्रति अपार भक्ति भावना व अटुट आस्था का परिचय दिया। अपने जन्म स्थान अलाय ग्राम में निर्माणाधीन "समता भवन" में भी आपने विशेष सहयोग प्रदान किया है।

सम्पर्क सूत्र-
श्री भंवरलाल जी सुराणा
मेट्टुपालयम
जि. कोयम्बत्तूर (तमिलनाडु)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

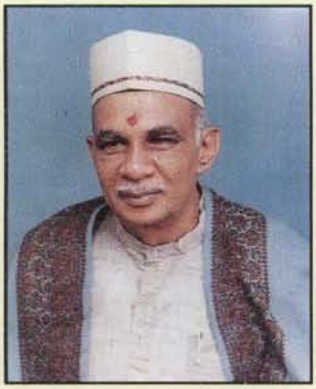

श्री जे. मोहनलाल जी चोरड़िया

श्री जे. मोहनलाल जी चोरड़िया चेन्नई के श्रेष्ठ समाजसेवी, शिक्षा प्रेमी एवं उदार हृदयी हैं। आप मैलापुर के दानवीर सेठ स्व. श्री जेवन्तमल जी चोरड़िया के सुपुत्र हैं। आपका जन्म दिनांक १-५-१६३२ को हुआ।

आपको धर्म के संस्कार आपके माता-पिता से प्राप्त हुए। श्रीमान् जेवन्तमल जी मद्रास के सुप्रसिद्ध व्यापारी थे, जिन्होंने औषधालय, विद्यालय, छात्रावास व जीव दया के कार्यों में मुक्त हस्त से लाखों रुपयों का दान दिया था।

श्रीमान् मोहनलाल जी ने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की तथा व्यापारिक कौशल द्वारा अपने पारम्परिक व्यापार को समृद्ध किया। आपको जैन धर्म में एवं साधु-सन्तों का सत्संग करने में विशेष अभिरुचि है। जैन समाज का कोई भी कार्य हो आप उसे बड़ी तत्परता से पूरा करते हैं। साधुओं का दर्शन करने सारे भारत में निरन्तर भ्रमण करते हैं।

आपको शिक्षा-प्रचार व प्रसार में विशेष अनुराग है। आप चेन्नई स्थित एस.एस. जैन एजुकेशनल सोसायटी के कार्यों में अत्यन्त रुचि रखते हैं तथा उसके अध्यक्ष पद को भी शोभित कर चुके हैं। आप **अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के उपाध्यक्ष** रह चुके हैं। तथा वर्तमान में इसकी तमिलनाडु शाखा के अध्यक्ष हैं। आप **तमिलनाडु पॉन ब्रोकर्स एसोसियेशन** के तथा **एस.एस.जैन संघ मैलापुर** के अध्यक्ष हैं। जैन समाज की अन्य अनेक संस्थाओं यथा डी.वी.जैन कॉलेज, ए.एम.जैन कॉलेज, जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी आदि से सक्रिय जुड़े हुए हैं। सहधर्मी भाईयों तथा अतिथियों की सेवा में आपको विशेष अनुरक्ति है।

आपके चार पुत्र एवं चार सुपुत्रियाँ हैं जो सभी उच्च शिक्षा संपन्न हैं, तथा आपके दो सुपुत्र अमेरिका में शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं।

सम्पर्क सूत्र :
११, रोसरी चर्च रोड, मैलापुर, चेन्नई - ६०० ००४

श्री सी. इन्दरचन्द जी मेहता

श्री सी. इन्दरचन्द जी मेहता चेन्नई नगर के सुविख्यात समाज सेवी हैं। आप राजस्थान के पाली जिले में सादड़ी गांव के निवासी हैं तथा श्रीमान चन्दनमलजी मेहता के सुपुत्र हैं। चेन्नई में आपका रसायनिक वस्तुओं का समृद्ध व्यापार है। आप अनेक सामाजिक, धार्मिक व जनकल्याणकारी संस्थाओं से सक्रियता से जुड़े हुए हैं। आप **श्री मरूधर केशरी स्थानकवासी जैन गुरु सेवा समिति ट्रस्ट सोजत सिटी**, एवं **श्री मरुधर केसरी जैन सेवा संघ, चेन्नई** के अध्यक्ष हैं। इनके अतिरिक्त आप **राजस्थानी एसोसिएशन तमिलनाडु, श्री ज्ञानाथाई सावित्री अम्माल ट्रस्ट, वडलूर, श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ, सादड़ी**-मारवाड़ आदि कई संस्थाओं के **उपाध्यक्ष** हैं। साथ ही आप **अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस दिल्ली, श्री राजस्थान एस.एस. जैन संघ चेन्नई, श्री महावीर जैन फाउंडेशन फॉर हेंडीकेप्ड** आदि संस्थाओं के **मंत्री** का काम सुचारू रूप से सम्पन्न कर रहे हैं। चेन्नई नगर की अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक संस्थाओं को आपका सदैव सहयोग मिला है। आप उदार हृदयी हैं। अपने सेवा कार्यों द्वारा आपने समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया है।

सम्पर्क सूत्र-
चन्दन टावर्स
११६, नयन्नप्पा नायकन्न स्ट्रीट
चेन्नई-६०० ००३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री आर. सम्पतराजजी गुन्देचा

श्री आर. सम्पतराजजी गुंदेचा चेन्नई के श्रेष्ठ समाज सेवी व उदारमना श्रावक है। आप की आयु ६५ वर्ष है। आप स्व. श्री रावतमल जी गुन्देचा के सुपुत्र हैं। आप राजस्थान के जोधपुर जिले के हरियाडाणा (विलाड़ा) ग्राम के निवासी हैं। आपका चेन्नई में वस्त्र निर्यात, फाइनेंस व दवा वितरण का समृद्ध व्यापार है। आप श्री एस.एस.जैन संघ नंगनलूर के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं तथा अन्य कई धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं के सक्रिय सदस्य हैं। आपकी धर्मपत्नी पतासकंवर एक धर्मपरायण सुश्राविका हैं।

आपके चार सुपुत्र तथा एक सुपुत्री है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री मदनलाल गुन्देचा चार्टर्ड एकाउंटेंट हैं तथा **साउथ इंडिया हायर पर्चेज एसोसिएशन के भूतपूर्व चेयरमैन** रह चुके हैं। वर्तमान में वे **मद्रास हायर पर्चेज एसोसियेशन** के **उपाध्यक्ष** व **एस.एस.जैन एजुकेशनल सोसाइटी** की कमेटी के **सदस्य** हैं। आपके अन्य पुत्र श्री पारस मल, श्री सुरेश कुमार व श्री संजयकुमार तीनों स्नातक हैं तथा व्यवसाय में सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

धर्म क्रियाओं में आपका विशेष अनुराग है। आप गुरुदेव श्री सुमन मुनिजी के प्रति विशेष भक्ति एवं श्रद्धा रखते हैं।

सम्पर्क सूत्र –
१६, ग्रिफीत रोड, टी.नगर,
चेन्नई - ६०० ०१७

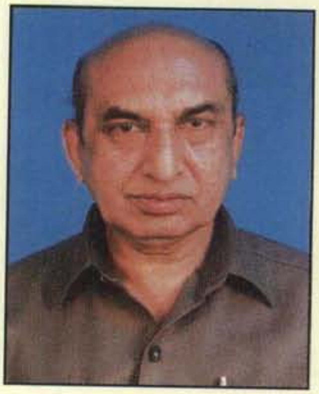

श्री प्यारेलाल जी गुन्देचा

श्री प्यारेलाल जी गुन्देचा चेन्नई में टी.नगर के धर्म परायण श्रावक हैं। आप राजस्थान में जोधपुर जिले के अन्तर्गत हरियाढ़ाणा (विलाड़ा) ग्राम के निवासी हैं तथा स्व. श्रीमान रावतमल जी गुन्देचा के सुपुत्र हैं। आप की उम्र साठ वर्ष की है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मानकुंवर एक धर्मशीला सुगृहिणी हैं। आपके चार पुत्र हैं जिनके नाम हैं – श्री गौतम चन्द बी.एस.सी., बी.एल., श्री महावीर चन्द बी.काम., चार्टर्ड एकाउंटेंट, श्री दिलीपकुमार बी.काम. एवं श्री महेन्द्र कुमार बी.काम.। आपकी एक सुपुत्री है जिसका नाम श्रीमती सुमनलता मेहता है।

आपका वस्त्र निर्यात, फाइनेंस व दवाओं के थोक वितरण का समृद्ध व्यवसाय है। आपकी धर्मक्रियाओं में विशेष अभिरुचि है तथा आप सभी सामाजिक व धार्मिक कार्यक्रमों में सदैव भाग लेते हैं। आप एक मृदुभाषी सरल हृदय श्रावक हैं, आप पूज्य गुरुदेव श्री सुमनमुनिजी के प्रति विशेष श्रद्धा एवं भक्ति रखते हैं।

सम्पर्क सूत्र-
१६, ग्रिफीत रोड, टी.नगर
चेन्नई ६०० ०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री पुखराज जी मुणोत

श्री पुखराज जी मुणोत का जन्म दिनांक ७-८-१६२० को राजस्थान के पीपाड़ शहर के सन्निकट जोधपुर जिले के **रणसी गांव** में हुआ। आप स्व. श्री फूलचन्दजी मुणोत के सुपुत्र हैं। आपका जीवन बहुत संघर्ष पूर्ण रहा, किन्तु अपने साहस, पुरुषार्थ व परिश्रम से निरन्तर आगे बढ़ते गए। आप १३ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय शिक्षणार्थ तिण्डीवनम् में संखलेचा परिवार के पास आए। १४ वर्ष तक वहीं रहे। अपनी कर्तव्य परायणता से आपने व्यवसाय का शिक्षण प्राप्त किया तथा बाद में ताम्बरम में अपना स्वतन्त्र व्यवसाय प्रारम्भ किया। कुशाग्रबुद्धि, कड़ी मेहनत एवं न्यायपूर्वक व्यावहारिकता से आपने अपने व्यापार को समृद्ध किया तथा उसमें सफलता प्राप्त की। बचपन से ही सप्त कुव्यसनों से दूर रहे। अनेक स्वजनों को सहायता दी। आपकी धर्म-पत्नी श्रीमती रुक्मा बाई सुशील, विनम्र एवं सेवा भावी सुगृहिणी थी जिनका समाधि-मरण दिनांक ५-३-६८ को हुआ।

श्रीमान् मुणोत जी धर्म-क्रियाओं में बहुत निष्ठावान हैं, तथा सहधर्मी वात्सल्य को बहुत महत्व देते हैं। आपने अनेक विद्यालयों, स्थानकों, जीव-दया संस्थाओं तथा लोकोपकारी संस्थाओं को उदारता पूर्वक सहयोग दिया है। आपने अपने जन्म स्थान रणसी में **"रुक्मा बाई पुखराज मुणोत चिकित्सालय"** का निर्माण करवाया।

आपके एक सुपुत्र श्री ज्ञानचन्द पी. जैन हैं जिन्हें धर्म के सुसंस्कार अपने माता-पिता से प्राप्त हुए। आप भी अनेक शिक्षा एवं सेवा संस्थाओं से जुड़े हैं तथा सभी धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं को उदारता पूर्वक सहयोग देते हैं।

आपका **"जैन एपेरेल्स"** के नाम से वस्त्र निर्यात का समृद्ध व्यापार है। सादा जीवन व उच्च विचार के धनी श्रीमान् पुखराज जी मुणोत का जीवन सबके लिए अनुकरणीय आदर्श है।

श्री मांगीलाल जी कोठारी

श्री मांगीलाल जी कोठरी आलन्दुर निवासी एक समाज सेवी सुश्रावक हैं। आप श्रीमान बिजैराज जी कोठारी के सुपुत्र हैं, तथा राजस्थान प्रान्त के नागौर जिलान्तर्गत खजवाणा ग्राम के निवासी हैं। आलन्दुर में आप फाइनेन्स के व्यापार में कार्यरत हैं। आपको धर्म-भक्ति के संस्कार आपकी पूज्य माता जी से प्राप्त हुए जो हमेशा धर्म-क्रियाओं को जीवन में प्रधानता देती थी। आपके छ पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं।

व्यवसाय के अतिरिक्त आप समाज सेवा के कार्यों में भी सदैव अग्रणी रहते हैं। आप **एस.एस. जैन संघ आलन्दुर के अध्यक्ष** हैं। आलन्दुर संघ द्वारा निर्मित **जैन स्थानक** में आपने तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त आप **एस.एस.जैन एजुकेशनल सोसायटी जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान** आदि संस्थाओं के भी सक्रिय सदस्य हैं।

सम्पर्क सूत्र-
१००, एगाम्बरम दफेदार स्ट्रीट,
अलन्दूर, चेन्नई - ६०० ०१६

श्री किशनलाल जी वेताला

श्री किशनलालजी वेताला का जन्म १ सितम्बर१९२६ को राजस्थान प्रान्त के नागौर जिले के अन्तर्गत डेह गांव में हुआ। आपके पिता स्व. श्री पूनमचन्दजी वेताला तथा माता स्व. श्रीमती राजीबाई से आपको धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए। आप १८ वर्ष की उम्र में ही मद्रास आ गए थे जहां आपने ऑटोमोबाइल्स क्षेत्र में विशेष सफलता पाई। व्यापार के साथ-साथ आप सामाजिक तथा धार्मिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहे हैं।

पूर्व में आप मद्रास के **एस.एस. जैन महिला विद्या संघ** के **अध्यक्ष, एस.एस.जैन ऐजुकेशनल सोसायटी के अध्यक्ष, एस.एस. जैन संघ वेपेरी के अध्यक्ष, जैन महासंघ के उपाध्यक्ष तथा वर्धमान जैन सेवा समिति** के **मंत्री** रह चुके हैं।

वर्तमान में आप **भगवान महावीर जैन सेवा ट्रस्ट के अध्यक्ष एस.एस. जैन संघ साहुकार पेठ** के **उपाध्यक्ष, भगवान महावीर विकलांग समिति** के **पेट्रन** तथा **अ.भा.स्था.जैन कांफ्रेंस की कार्यकारिणी के सदस्य हैं।**

आपके चारों पुत्र श्री प्रकाश चन्दजी, श्रीचन्दजी, श्री प्रेमचन्दजी, श्री राजेन्द्र जी आपके पदचिह्नों पर चलकर अपने-अपने ढंग से समाज-सेवा कर रहे हैं।

सम्पर्क सूत्र-

५५, एकलप्पन स्ट्रीट, साहुकारपेट, चेन्नई - ६०० ७९

श्री रिखभचन्द जी लोढ़ा

श्री रिखमचन्दजी लोढ़ा स्व. श्री लूणकरणजी लोढ़ा (कुचेरा राज.) के सुपुत्र हैं। आप साहुकार पेठ मद्रास में व्यवसाय रत हैं। आप चेन्नई के एक प्रतिष्ठित व्यवसायी और जैन समाज के सम्माननीय व्यक्ति हैं। आप युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी महाराज के अग्रगण्य श्रावक हैं।

धार्मिक और सामाजिक कार्यों में आपकी विशेष रुचि रही है। साधु-साध्वियों की सेवा के साथ-साथ आप धर्मार्थ संस्थानों आदि में सहयोग के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। आप अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं। **"श्री एस.एस. जैन संघ साहुकार पेठ", "श्री दक्षिण भारत जैन स्वाध्याय संघ साहुकार पेठ"** के आप **मंत्री** हैं तथा **"श्री एस.एस. जैन महिला विद्या संघ मद्रास"** जिसके अन्तर्गत "गणेशीबाई गर्ल्स हायर सैकण्ड्री स्कूल", "मांगीकंवर अन्न राज चोरड़िया प्राइमरी स्कूल", **"जैन एकेडमी फोर वुमैन कालेज" आदि संस्थाएं हैं के आप जनरल सेक्रेटरी** हैं। **"श्री जैन संघ किलपाक मद्रास", "श्री आकाश गंगा एसोसिएशन"** के आप **अध्यक्ष** तथा **"श्री राजस्थानी जैन ओसवाल ट्रस्ट मद्रास"** के **सहमंत्री** हैं। इसके अतिरिक्त "श्री लोढ़ा भाईप्पा संस्थान मद्रास" के आप मंत्री तथा **"श्री महावीर फाउंडेशन फॉर हैंडीकेप्स् मद्रास"** के **कोषाध्यक्ष** हैं। अहिंसा प्रचार संघ, मैडिकल रीलिफ सोसायटी, एजुकेशन सोसायटी आदि संस्थाओं में आप पूरा-पूरा सहयोग देते रहते हैं।

श्री अजितमल लोढ़ा आपके छोटे भाई हैं एवं शांतिवाई आपकी बहन हैं। आपके दो पुत्र तथा दो पुत्रियां हैं जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – श्री गौतमचन्दजी लोढ़ा, श्री आनन्द कुमारजी लोढ़ा, श्रीमती ललिताकुमारी नाहर एवं श्रीमती स्नेहलता लुणावत। सिद्धार्थ, सुदर्शन तथा श्रेयांस आपके पौत्र एवं प्रियंका आपकी पौत्री का नाम है।

विगतवर्ष पूज्यश्री सुमन मुनिजी म. के साहुकारपेठ चातुर्मास में आपने पूरी-पूरी सेवा का लाभ लिया था तथा इस वर्ष पूज्य महामंत्री श्री सौभाग्य मुनि जी म. के चातुर्मास में आप पूर्ण सेवा लाभ ले रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

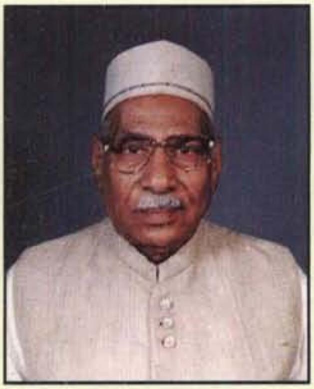

श्री कुशलचन्द शिशोदिया

श्री दिलीप कुमार जी शिशोदिया स्व. धर्मनिष्ठ श्रावक श्री कुशलचन्द जी शिशोदिया के कनिष्ठ पुत्र हैं। आपकी माता श्रीमती भंवरी बाई शिशोदिया एक धर्मप्राण सन्नारी है।

मूलतः आप निम्बड़ी (नागौर-राज.) के निवासी हैं। सन् १९६८ से बैंगलोर में व्यवसायरत हैं। आप फायनेंस के व्यवसाय से जुड़े हैं।

सामाजिक और धार्मिक कार्यों में आपकी रुचि बचपन से ही रही है। सृजनात्मक कार्यों में आप बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते हैं और तन-मन-धन से अपना सहयोग प्रदान करते हैं।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सरोज शिशोदिया भी एक धर्मरूचि सम्पन्न सुसंस्कारित महिला हैं। कुणाल और प्रचिता आपके पुत्र तथा पुत्री हैं।

श्रद्धेय पूज्य प्रवर श्री सुमन मुनि जी म. के प्रति आपके पूरे परिवार में गहरी श्रद्धा है।

सम्पर्क सूत्र-
श्री दिलीप कुमार शिशोदिया
मै. खेमचन्द दिलीप कुमार
आटोमोटिव फायनेंसर्ज
फ्लेट नं. ११, नं. १२, प्लेन स्ट्रीट
इन्फेन्ट्री रोड़ क्रॉस, बैंगलोर - ५६० ००१

हार्दिक आभार

श्री सुमन मुनि दीक्षा-स्वर्ण जयन्ति अभिनन्दन समारोह समिति की ओर से हम सभी उदार हृदयी महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं, जिनके आर्थिक सहयोग से इस ग्रन्थ का प्रकाशन समय पर संभव हुआ।

-: आभारी :-

रिद्धकरण बेताला
(संघ-अध्यक्ष)
फोन : ८२५०१८८

भीकमचन्द गादिया
(चातुर्मास-समिति अध्यक्ष)
फोन : ४३४०५१६

डॉ. एम. उत्तमचन्द गोठी
(संघ-मंत्री)
फोन : ४३४२३५८

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ, माम्बलम

-: तथा :-

सोहनलाल कांकरिया
(समिति-अध्यक्ष)

भंवरलाल सांखला
(समिति-कार्याध्यक्ष)

भीकमचन्द गादिया
(समिति-मंत्री)

श्री सुमनमुनि दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति अभिनन्दन समारोह समिति, चेन्नई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री माणकचन्द जी सुराणा

श्री माणिकचन्द जी सुराणा स्व. श्री भंवरलाल जी सुराणा एवं श्रीमती भंवरी बाई जी सुराणा के सुपुत्र हैं। आप मूलतः राजस्थान के कुचेरा ग्राम के निवासी हैं। वर्तमान में आप साहुकार पेठ चेन्नई में निवास करते हैं जहाँ आपका तिरपाल एवं फाइनेंस का व्यवसाय है।

आप एक धर्मरूचि सम्पन्न श्रावक हैं। प्रत्येक चतुर्दशी पर आप उपवास करते हैं तथा आजीवन चौविहार व्रती हैं। आप युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी महाराज के अनन्य भक्तों से एक हैं पर आपकी भक्ति भावना तथा सेवानिष्ठा प्रत्येक साधु-साध्वी के लिए एक समान है। पूज्यवर्य श्री सुमन मुनि जी महाराज के साहुकार पेठ में वर्षावास के समय आपने भी सेवा लाभ लिया।

आप कई संस्थाओं के पदाधिकारी तथा सम्माननीय सदस्य हैं। एस.एस.जैन संघ साहुकार पेठ के आप कोषाध्यक्ष हैं तथा "वर्धमान सेवा समिति चेन्नई", "आगम प्रकाशन समिति ब्यावर", "युवक संघ साहुकार पेठ चेन्नई", "महावीर सेवा समिति" के सदस्य हैं।

आपके भरे-पूरे परिवार में श्री पारसमल जी सुराणा तथा श्री चंपालाल जी सुराणा आपके लघुभ्राता हैं। श्रीमती इचरज बाई, श्रीमती माडी बाई एवं श्रीमती मन्जुला आपकी बहनें हैं। श्री किशोर मल सुराणा आपके पुत्र तथा श्रीमती विमला सुराणा आपकी पुत्र वधु हैं। चिरंजीव दिनेश एवं कुमारी मेघा आपके पौत्र तथा पौत्री हैं।

आप विनम्र, सरल और मृदुभाषी श्रावक हैं। पूज्य गुरूदेवश्री सुमन मुनि जी महाराज के आप परम भक्त हैं।

सम्पर्क सूत्र-
४८, आदीयप्पानायकन स्ट्रीट, साहुकारपेठ, चेन्नई-६०० ०७६

श्री भंवरलाल जी वेताला

श्री युत भंवरलाल जी वेताला का जन्म २४-११-१६४२ को कुचेरा में हुआ। आपके पिता श्री मोहनलालजी बैताला एवं मातेश्वरी का नाम झणकार कंवर बैताला था। आपके भ्राता हैं– श्री डूंगरमलजी एवं श्री जीतमलजी वेताला। बहन है – श्रीमती पुष्पादेवी दरड़ा।

आपका परिणय भोपालगढ़ – जोधपुर निवासी श्री जवरचंदजी छाजेड़ की सुपुत्री सौ. कमलाकंवर साथ सम्पन्न हुआ।

श्री बेताला सत्य के प्रति समर्पित, कर्मठ कार्यकर्ता एवं प्रसिद्ध समाजसेवी है। आप अन्याय का प्रतिकार करने वाले और निडर बुलन्द एवं स्पष्टवक्ता है। संत-सती सेवा में मूक बनकर अग्रणी रहते है।

आपके ज्येष्ठ पुत्र है – श्री रूपचंदजी बैताला जो कि बैताला ग्लोबल सिक्यूरिटीज लिमिटेड के नाम से शेयर के व्यापार में संलग्न है। द्वितीय पुत्र – श्री भोपालराज जी हैदराबाद में शेयर एवं फाइनेंस के व्यवसायरत है। तृतीय पुत्र श्री शांतिलाल जी वेताला वेताला प्लास्टिक इण्डस्ट्रीज के नाम से व्यापार में कार्यरत है तथा लघुपुत्र श्री सोहनलाल जी बैताला 'बैताला इन्वेस्टमेंट' के तहत फाइनेंस के कार्य में सुचारूरूप से संलग्न है।

श्री वेताला जी स्वयं वेताला टॉय इण्डस्ट्रीज जो कि 'सोनू टॉय' के उत्पादन करती है।

आपश्री ने श्रद्धेय मुनिश्री सुमनकुमार जी म.सा. की उनके साहूकारपेठ वर्षावास (१६६८) में अविस्मरणीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय तन-मन-धन से सेवा की है।

आपश्री की सेवा से गद्‌-गद्‌ गुरुदेव श्री कहा करते है – "भंवरलाल जी बैताला की सेवाएं वस्तुतः मेरे लिए स्मरणीय है।"

आप प्रतिदिन सामायिक करते है। इसी वर्षावास में आपने सजोड़े अठाई की। आप अनन्य आस्थावान्‌ है तथा धर्म परायण है।

सम्पर्क सूत्र-
नं. २, वीरप्पन स्ट्रीट, साहूकारपेठ, चेन्नई-६०० ०७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विनोद शर्मा

श्री विनोद शर्मा हिन्दी-साहित्य के आकाश के उभरते हुए नक्षत्र हैं। इनकी लेखनी में साधना, समन्वय और रचनात्मकता को अभिव्यक्त करने की अपूर्व कला है। शब्द में अर्थ और अर्थ में शब्द के अन्वेषी श्री विनोद शर्मा हरियाणा के एक छोटे से ग्राम बुटाना में दिनांक ४-३-६७ को जन्मे।

आपने 'साहित्यरत्न' की परीक्षा श्रेष्ठ अंकों से उत्तीर्ण की। तदनंतर आपने साहित्य-जगत् में प्रवेश किया। बोधकथाओं से युक्त कृतियाँ 'श्रुति' एवं 'बिखरे पुष्प' आपकी श्रेष्ठ रचनाएं है। 'मंजिल की खोज' आपके चिंतनपरक निबंधों का संग्रह है। 'महाश्रमण', एवं 'श्री रणसिंहजी म. संक्षिप्त जीवनी' - इन कृतियों के आप संपादक-लेखक हैं।

बचपन से ही जैन संस्कारों में रचे-बसे इनके सर्जक व्यक्तित्व ने निबंध, बोध-कथानकों से हिन्दी साहित्य को अलंकृत किया है।

सम्प्रति लेखन, सम्पादन और साहित्यिकअन्वेषण में अहर्निश संलग्न इस युवा लेखक से सम्पूर्ण साहित्य जगत् को कई रचनात्मक अपेक्षाएं हैं। आशा है व अपनी सृजन-शीलता से इन आशाओं को आकार प्रदान करेंगे।

– डॉ. राजेन्द्र 'रत्नेश'

सम्पर्क सूत्र-
S/o. श्री रामरूप शर्मा,
मु.पो. बुटाना, जिला सोनीपत, (हरियाणा)

श्रीमती विजया कोटेचा

आप एक श्रेष्ठ स्वाध्यायी, प्रतिभावान लेखिका एवं प्रभावशाली वक्तृ हैं। आपने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन-लेखन में बचपन से ही रुचि है। अनेक धार्मिक शिविरों एवं कक्षाओं का सञ्चालन किया। धार्मिक-शिक्षिका !! सम्प्रतिः साहित्य मंथन एवं निष्कर्ष। पूज्य श्री सुमन मुनिजी के प्रवचनों में से सार्थक सूक्तियों का संकलन "सुमन-वाणी" का प्रस्तुतीकरण किया। समाज सेविका एवं बालक – किशोर जीवन निर्देशिका। श्रीमती विजया कोटेचा से समाज को कई अपेक्षाएं हैं।

सम्पर्क सूत्र-
७७, स्टेशन रोड,
अम्बत्तुर, चेन्नई - ६०० ०५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधुत्व की सौरभ से महकते

सुभाष ओसवाल

परमवंदनीय मुनिश्री सुमनकुमार जी महाराज 'श्रमण' का दर्शन सान्निध्य जिन्हें भी प्राप्त हुआ है, वे मेरी एक बात से तो सहमत होंगे ही कि गुरूदेव "यथानाम तथागुण" सम्पन्न मुनिराज हैं। आप जन-मन को अपने साधुत्व की सौरभ से तो मुग्ध करते ही हैं साथ ही कदापि अपने श्रमणाचार से समझोता नहीं करते हैं।

आपकी जीवन शैली अद्‌भुत है। आप ऊपर से अखरोट की तरह कठोर दिखाई देकर भी अन्दर से अत्यन्त सुकोमल, करुणामूर्ति और मृदु हैं।

आपके प्रति मेरी भक्ति का आधार निर्मित किया मेरे पिता श्री लाल बनारसी दास जी ने। उन्होंने ही आपके साथ अपने अनन्य सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए आपके विशिष्ट गुणों से मुझे परिचित कराया। तभी से मेरा हृदय आपके प्रति आस्थासम्पन्न रहा है।

आप सामाजिक संगठन के प्रबल पक्षधर रहे हैं। विखण्डन आपको पसन्द नहीं है। संगठन के लिए... एकता के लिए आप बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने को सदैव तत्पर रहते हैं।

पूना मुनि सम्मेलन में एक स्वर से आपको संत-संसद का सभापति मनोनीत किया गया था। आचार्य भगवन श्री आनन्द ऋषिजी म. ने आपको श्रमणसंघीय सलाहकार तथा मंत्रीपद प्रदान किया।

आपका संयमीय जीवन चतुर्विध संघ को संयमीय सौरभ से सुरभित करता रहा है। पचास वर्षों के प्रलम्ब साधना काल में एक भी टेढ़ी अंगुली आपकी ओर नहीं उठी है। आपके संयमीय जीवन की सफलता का यह एक सशक्त प्रमाण है।

आप एक कुशल व्याख्याता और लेखक मुनिराज हैं। आपका लेखन तत्त्वपरक और शोधपूर्ण होता है। आपकी कृति "पंजाब श्रमण संघ गौरव" एक कालजयी कृति है। 'शुक्ल प्रवचन' नाम से आपके प्रवचनों के कई भाग प्रकाशित हो चुके हैं। 'तत्त्व चिन्तामणि' नव तत्त्वों की गम्भीर व्याख्या वाला ग्रन्थ है।

आप एक सर्वतोमुखी व्यक्तित्व सम्पन्न महासाधक हैं। मैं चाहता हूँ कि मेरी आस्था की किश्ती आपके चरण तीर्थ से सदैव बन्धी रहे।

दीक्षा के पचासवें वर्ष में प्रवेश पर मैं हृदय की अनन्त आस्थाओं के साथ आपका अभिनन्दन करता हूँ।

सुभाष ओसवाल
दिल्ली
(पूर्व युवाध्यक्ष)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चम खण्ड में देश के ख्यातनामा विद्वानों एवं विचारकों के विश्लेषणात्मक तथा शोधपूर्ण निबंध हैं, जिनके कारण यह ग्रन्थ एक सार्वजनिक महत्वपूर्ण अध्येय सामग्री से संपुटित होकर और अधिक महिमा-मंडित हुआ है।

निर्मल, कोमल एवं मृदुल हृदय के सजीव प्रतीक, संयतचर्या और सेवा के अनन्य संवाहक, गुरुसमर्पित चेता सम्मानास्पद श्री सुमन्त भद्र मुनि जी म. का प्रस्तुत ग्रन्थ की संरचना में जो प्रेरणात्मक संबल रहा, वह ग्रन्थ की स्पृहणीय निष्पत्ति में निश्चय ही बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है जो सर्वथा स्तुत्य है।

भारतीय संस्कृति एवं जीवन-दर्शन के अनन्य अनुरागी, प्रबुद्ध चिन्तक, लेखक तथा शिक्षासेवी प्रस्तुत ग्रन्थ के व्यवस्थापक श्रीयुत दुलीचंद जैन, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार तथा जैन धर्म एवं साहित्य के समर्थ विद्वान्, सुप्रसिद्ध लेखक और इस ग्रन्थ के संपादक श्रीयुत डॉ. भद्रेश कुमार जैन एम.ए., पी.एच.डी. ने जिस लगन, निष्ठा तथा तन्मयता के साथ इस ग्रन्थ का अविश्रान्तरूपेण जो कार्य किया, उसी का यह सुपरिणाम है कि ग्रन्थ इतने सुन्दर तथा आकर्षक रूप में प्रकाशित हो सका। ये दोनों विद्वान् शत्-शत् साधु वाद के पात्र हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सभी सहयोगी बन्धुवृन्द, जिन्होंने इस पावन सारस्वत कृत्य में मेधा, श्रम और वित्तादि द्वारा सहयोग किया, सुतरां प्रशंसास्पद हैं।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ एक महापुरुष का गरिमान्वित जीवन-वृत्त होने के साथ साथ आध्यात्मिक साधना, भक्ति, सद्गुण सम्मान, सत्कर्त्तव्यनिष्ठा और पुरुषार्थ जैसे विषयों से सम्बन्ध वह महत्त्वपूर्ण सामग्री लिये हुए है, जो संयम, सेवा और त्याग-पथ के पथिकों के लिए निःसंदेह उद्बोधप्रद सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

— डॉ. छगनलाल शास्त्री
एम.ए. (त्रय), पी.एच.डी.
कैवल्य धाम सरदारशहर (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालजयी व्यक्तित्त्व

परम श्रद्धेय श्रमणसंघीय सलाहकार मंत्री मुनि श्री सुमनकुमारजी महाराज विलक्षण व्यक्तित्व के धारक है। मात्र पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही आर्हती दीक्षा अंगीकार कर साधना के दुष्कर एवं कंटकाकीर्ण पथ पर बढ़ चले। जीवन में अनेक झंझावात आये किंतु इस तपोधनी के आत्मबल से टकराकर चकनाचूर हो गये। दम्भ और आत्मश्लाघा के दानवों ने आप श्री को घेरना चाहा किंतु सत्यप्रिय एवं स्पष्टवादी फक्कड़ बनकर मुकाबला करते रहे।

समाज में प्रचलित कुरीतियों, अन्धविश्वासों एवं बुराइयों पर करारा प्रहार करते रहे। कथनी और करणी की एकरूपता का दिग्दर्शन आपकी वाणी और व्यवहार में पाया जाता है। 'सर्वजन हिताय, सर्व जन सुखाय' आपके धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों की एक लम्बी श्रृंखला है।

आपको जैन एवं जैनेतर दर्शनों का सूक्ष्म एवं तलस्पर्शी ज्ञान है। आपके प्रवचन तुलनात्मक, विवेचनात्मक एवं व्याख्यात्मक होते हैं। आप द्वारा शासन के लिए की जा रही प्रभावना कालजयी है। देश-काल की सीमाओं से परे आपके चिन्तन ने हजारों-हजार व्यक्तियों को नूतन जीवन-दिशा प्रदान की है।

आप बहु भाषाविद् है एवं श्रेष्ठ साहित्य सर्जक भी। यही कारण है कि आपके सर्वतोमुखी व्यक्तित्व से अनुप्राणित होकर संघ एवं समाज ने इतिहासकेसरी, प्रवचन दिवाकर, उपप्रवर्त्तक, सलाहकार, मंत्री, शांतिरक्षक आदि विविध पदों पर प्रतिष्ठित करके आपकी धर्म एवं समाज सेवा को वन्दित-अभिनन्दित किया है।

सरलता, निर्भीकता, स्पष्टवादिता तथा सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ता इस महामनीषि एवं प्रज्ञामहर्षि में सदैव अनुगूंजित है। बाह्य व्यक्तित्व जितना सम्मोहक है उससे भी ज्यादा आन्तरिक व्यक्तित्व प्रभावक है।

विद्वद्वरेण्य, सृजनधर्मी, तर्कणाशक्ति के धारक परम श्रद्धेय मुनिवर की श्रमण-साधना से ज्योतित पचास वर्ष / दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति की पुनीत सुवेला पर यह ग्रन्थ सश्रद्ध उनके करकमलों में भक्तजनों द्वारा अर्पित है।

हे यशस्वी ! जिन शासन प्रभावक ! आपश्री के पावन चरणों में हार्दिक भावाञ्जलि ! विनयाञ्जलि !!.... प्रणमाञ्जलि ! वन्दनाञ्जलि !! सुमनाञ्जलि..! अभिवन्दनाञ्जलि !!

– डॉ. भद्रेशकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org